कंब रामायण

[महाकवि कबन-रचित मूल तमिल से अनूदित]

[भाग १]

अनुवादक

श्री न० वी० राजगोपालन

कंब रामायण

[[illegible] मूल तमिल से अनूदित]

[भाग १]

अनुवादक
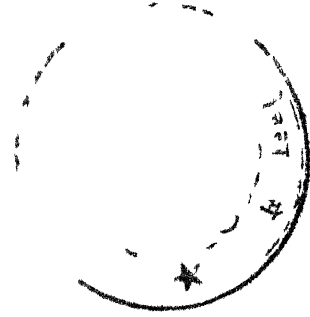
श्री न० वी० राजगोपालन

संपादक

श्रीअवधनन्दन
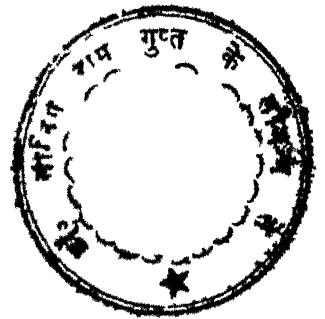
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना

वक्तव्य

सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्र की एकात्म भावना और अखण्ड संस्कृति के निर्माण का सारा श्रेय संस्कृत भाषा को है, जिसने कैलास से रामेश्वरम तथा पश्चिम समुद्र से पूर्व सागर तक के जनमानस को एक साँचे में ढाल दिया था। आज उसी संस्कृत की तरह राष्ट्र को एक सूत्र में गूँथे रखने की शक्ति यदि किसी भाषा में है, तो वह राष्ट्रभाषा हिन्दी है। राष्ट्रभाषा देश की आत्मा होती है, जिसे राष्ट्र रूपी शरीर की सभी धमनियों में रक्त प्राप्ति आवश्यक है। दूसरी बात कि अब हिन्दी को स्वयं इस प्रकार समर्थ होना है, जिसके माध्यम से चाहे तो कोई भी समस्त भारतीय साहित्य और संस्कृति को समझ ले। इन्हीं दृष्टिकोणों के अनुसार बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने ग्रन्थ-प्रकाशन का श्रीगणेश किया था और निश्चय किया था कि दक्षिण के चारों भाषाओं (तेलुगु, तमिल, कन्नड और मलयालम) की रामायणों के हिन्दी-अनुवाद यहाँ से प्रकाशित किये जायँ। आज हमें प्रसन्नता है कि परिषद् ने तेलुगु की 'रंगनाथ रामायण' को प्रकाशित तो किया ही, अब तमिल की 'कंब रामायण' का भी हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कर अपना संकल्प पूरा कर लिया।

यह 'कंब रामायण' परिषद् की अनुवाद योजना का बारहवाँ ग्रन्थ है। परिषद् ने इससे पहले जर्मन, फ्रेंच, अँगरेजी, संस्कृत और तेलुगु भाषाओं के ग्रन्थों के अनुवाद प्रकाशित किये थे। यह तमिल से अनूदित है, जिसका साहित्य, संस्कृत को छोड़कर, सभी जीवित भारतीय भाषाओं के साहित्य से प्राचीन है। आज भी दक्षिण की सभी भाषाओं के साहित्य में तमिल साहित्य सुसम्पन्न और सुष्ठु माना जाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ तमिल का महाकाव्य है, जो बारह सौ वर्ष (कुछ के मतों से आठ सौ वर्ष) पुराना है। इस महाकाव्य की रचना शैली बाणभट्ट की 'कादम्बरी' की सी है, किन्तु इसका रचना आधार वाल्मीकीय रामायण है। यद्यपि 'कंब-रामायण' वाल्मीकीय रामायण का अनुगामी है, तथापि दाक्षिणात्य संस्कृति से यह ओतप्रोत है, जो वाल्मीकीय में दृष्टिगोचर नहीं होती। यह एक महान् आश्चर्य है कि काव्य के सौष्ठव की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ वाल्मीकीय रामायण से जरा भी घटकर नहीं है। हमारे ऐसे कथन की यथार्थता प्रबुद्ध पाठक स्वयं इसमें आँकेंगे। किन्तु, आश्चर्य की बात यह है कि ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का अनुवाद आजतक दुनिया के किसी भी भाषा में नहीं छपा था, यहाँतक कि अँगरेजी भाषा में भी नहीं। हिन्दी में इसका अनुवाद कराकर सर्वप्रथम प्रकाशित करने का सौभाग्य परिषद् को ही है।

परिषद् ने जब 'कंब रामायण' के अनुवाद कराने का निश्चय किया, तब एक जटिल समस्या सामने आई कि अनुवाद किससे कराया जाय? क्योंकि दक्षिण की भाषाओं में भी दुरूह तमिल भाषा है और उसके काव्यों में भी अत्युच्च महाकाव्य 'कंब रामायण' है, जिसका सजीव हिन्दी अनुवाद केवल तमिल और हिन्दी जाननेवाला नहीं कर सकता था। इसके लिए उक्त दोनों भाषाओं के साहित्य मर्मज्ञ के साथ-साथ संस्कृत साहित्य के

प्रथम सस्करण

विक्रमाब्द २०१९, शकाब्द १८८४, खृष्टान्द १९६३

मूल्य ९ ७५ न० प०

20/-

वक्तव्य

सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्र की एकात्म भावना और अखण्ड संस्कृति के निर्माण का सारा श्रेय संस्कृत भाषा को है, जिसने कैलास से रामेश्वरम् तथा पश्चिम समुद्र से पूर्व सागर तक के जनमानस को एक साँचे में ढाल दिया था। आज उसी संस्कृत की तरह राष्ट्र को एक सूत्र में गूँथे रखने की शक्ति यदि किसी भाषा में है, तो वह राष्ट्रभाषा हिन्दी है। राष्ट्रभाषा देश की आत्मा होती है, जिसे राष्ट्र रूपी शरीर की सभी धमनियों से रक्त प्राप्ति आवश्यक है। दूसरी बात कि अब हिन्दी को स्वयं इस प्रकार समर्थ होना है, जिसके माध्यम से चाहे तो कोई भी समस्त भारतीय साहित्य और संस्कृति को समझ ले। इन्हीं दृष्टिकोणों के अनुसार बिहार राष्ट्रभाषा परिषद ने ग्रन्थ प्रकाशन का श्रीगणेश किया था और निश्चय किया था कि दक्षिण के चारों भाषाओं (तेलुगु, तमिल, कन्नड और मलयालम) की रामायणों के हिन्दी अनुवाद यहाँ से प्रकाशित किये जायँ। आज हमें प्रसन्नता है कि परिषद् ने तेलुगु की 'रंगनाथ रामायण' को प्रकाशित तो किया ही, अब तमिल की 'कंब रामायण' का भी हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कर अपना संकल्प पूरा कर लिया।

यह 'कंब रामायण' परिषद् की अनुवाद योजना का बारहवाँ ग्रन्थ है। परिषद् ने इसके पहले जर्मन, फ्रेंच, अँगरेजी, संस्कृत और तेलुगु भाषाओं के ग्रन्थों के अनुवाद प्रकाशित किये थे। यह तमिल से अनूदित है, जिसका साहित्य, संस्कृत को छोड़कर, सभी जीवित भारतीय भाषाओं के साहित्य से प्राचीन है। आज भी दक्षिण की सभी भाषाओं के साहित्य से तमिल साहित्य सुसम्पन्न और सुष्ठु माना जाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ तमिल का महाकाव्य है, जो बारह सौ वर्ष (कुछ के मतों से आठ सौ वर्ष) पुराना है। इस महाकाव्य की रचना शैली बाणभट्ट की 'कादम्बरी' की सी है, किन्तु इसका रचना आधार वाल्मीकीय रामायण है। यद्यपि 'कंब रामायण' वाल्मीकीय रामायण का अनुगामी है, तथापि दाक्षिणात्य संस्कृति से यह ओतप्रोत है, जो वाल्मीकीय में दृष्टिगोचर नहीं होती। यह एक महान् आश्चर्य है कि काव्य के सौष्ठव की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ वाल्मीकीय रामायण से जरा भी घटकर नहीं है। हमारे इस कथन की यथार्थता प्रबुद्ध पाठक स्वयं इसमें आँकेंगे। किन्तु, आश्चर्य की बात यह है कि इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का अनुवाद आजतक दुनिया के किसी भी भाषा में नहीं छपा था, यहाँतक कि अँगरेजी भाषा में भी नहीं। हिन्दी में इसका अनुवाद कराकर सर्वप्रथम प्रकाशित करने का सौभाग्य परिषद का ही है।

परिषद् ने जब 'कंब रामायण' के अनुवाद कराने का निश्चय किया, तब एक जटिल समस्या सामने आई कि अनुवाद किससे कराया जाय? क्योंकि दक्षिण की भाषाओं में भी दुरूह तमिल भाषा है और उसके काव्यों में भी अत्युच्च महाकाव्य 'कंब रामायण' है, जिसका सजीव हिन्दी अनुवाद केवल तमिल और हिन्दी जाननेवाला नहीं कर सकता था। इसके लिए उक्त दोनों भाषाओं के साहित्य मर्मज्ञ के साथ साथ संस्कृत साहित्य के

तत्त्वदर्शी विद्वान् की आवश्यकता थी। किन्तु, इन सारे गुणों के रहते भी [illegible]
लेखन कला में दक्ष न हुआ, तो भी समस्या उलझी ही रह जाने का भय था। [illegible]
उपयुक्त अनुवादक को ढूँढ़ निकालने का सारा श्रेय श्रीअवधनन्दनजी को [illegible]
ही निवासी हैं, पर उस समय ये दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा (मद्रास) [illegible]
तमिलभाषी क्षेत्र में हिन्दी प्रचार का काम कर रहे थे। परिषद् के [illegible]
तेलगु और तमिल—दोनों की रामायणों के अनुवाद करा देने का जिम्मा [illegible]
तदनुसार तमिल रामायण के अनुवाद का काम श्री न० वी० राजगोपालन [illegible]
व्यक्ति को सौंपकर इसके सम्पादन का भार स्वयं सँभाला। श्रीअवधनन्दनजी [illegible]
सहयोग के लिए परिषद् सदा इनका आभारी है।

श्री न० वी० राजगोपालन तमिलनाड के तिरुचिरापल्ली [illegible]
आपने तिरुपति के श्रीवेंकटेश्वर प्राच्यकला शाला जैसी संस्था में संस्कृत [illegible]
से व्याकरण, न्याय और मीमांसा शास्त्र का अध्ययन किया है। आपने काञ्चीपुरी में [illegible]
परिव्राजक श्रीरंग रामानुज महादेशिक और उ० वीर राघवाचार्य सदृश म[illegible]
दर्शन का भी अध्ययन किया। आपने फिर काशी विश्वविद्यालय [illegible]
मद्रास विश्वविद्यालय से तमिल में एम्० ए० की उच्च उपाधि प्राप्त की। [illegible]
तेलुगु, संस्कृत, अँगरेजी, हिन्दी और खूबी यह कि उर्दू के भी सुलेखक हैं। [illegible]
केन्द्रीय हिन्दी शिक्षक महाविद्यालय, आगरा में प्राध्यापक हैं। इसके पहले [illegible]
कालेज (मद्रास) और दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा (मद्रास) में भी अध्यापन [illegible]
कार्य कर चुके हैं।

कम्ब रामायण दस हजार श्लोकों का एक बृहत्काय महाकाव्य है, [illegible]
में विभक्त है। अतः, इसका प्रकाशन हम दो भागों में कर रहे हैं, जिससे [illegible]
प्रकार सुहावना बना रहे। यह पहला भाग बालकाण्ड से किष्किन्धाकाण्ड तक है। [illegible]
भाग में केवल दो काण्ड होंगे—सुन्दरकाण्ड और युद्धकाण्ड। किन्तु, [illegible]
आकार प्रायः समान होंगे, क्योंकि केवल युद्धकाण्ड ही लगभग [illegible]
आज हिन्दी जगत् के समक्ष 'कम्ब रामायण' के इस पहले भाग को प्रस्तुत [illegible]
संतोष है और विश्वास है कि हिन्दी के प्रकाशनों में यह चार चाँद लगायेगा। [illegible]
महाकवि कम्बन की कवित्व शक्ति की पराकाष्ठा का दर्शन कर [illegible]
मानेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है। परिषद् का यह प्रकाशन उत्तर और दक्षिण [illegible]
निर्माण करेगा और हमारे राष्ट्र की चिर एकात्मनिष्ठा का अधिकाधिक [illegible]

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पौष, कृष्णा एकादशी, २०१६ वि०

भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'
संचालक

प्रस्तावना

बहुत दिनों से मेरे मन में यह अभिलाषा थी कि तमिल साहित्य के कुछ प्राचीन ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया जाय, जिससे हिन्दीभाषा भाषी जनता को तमिल भाषा के प्राचीन साहित्य का रसास्वादन करने तथा वहाँ की समृद्ध संस्कृति एवं विचार धारा को समझने का अवसर मिले। किन्तु, किसी योग्य प्रकाशक के अभाव में यह कार्य संभव नहीं था। सन् १९५५ ई० में मेरी भेंट आदरणीय श्रीशिवपूजन सहायजी से हुई। उस समय वे बिहार राष्ट्रभाषा परिषद के संचालक थे। जब मैंने उनसे इस विषय की चर्चा की, तब वे बहुत प्रसन्न हुए और परिषद की ओर से ऐसे ग्रन्थों को प्रकाशित करने का आश्वासन भी दिया। उसी वर्ष २७ जुलाई को उनका एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था कि राष्ट्रभाषा परिषद ने दक्षिण भारत की चारों भाषाओं में प्रचलित रामायणों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने का निश्चय किया है। योग्य अनुवादक चुनने तथा अनुवाद के संशोधन आदि का भार उन्होंने मुझे सौंपा था। मैं उस समय दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की तमिलनाड शाखा के मंत्री की हैसियत से कार्य कर रहा था और तिरुच्चिरापल्ली में रहता था। सहायजी का पत्र पाकर मैं उत्साह से भर गया और योग्य अनुवादकों की तलाश करने लगा।

दक्षिण में चार प्रधान भाषाएँ बोली जाती हैं, जिनका अपना अपना साहित्य है। वे हैं—तमिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम। तमिल मद्रास राज्य में, मद्रास नगर तथा उसके दक्षिण में कन्याकुमारी तक बोली जाती है। तेलुगु आन्ध्रदेश की भाषा है और मद्रास के उत्तर में विजगापट्टम तक तथा हैदराबाद में बोली जाती है। कन्नड मैसूर राज्य की भाषा है और मद्रास राज्य के पश्चिम में अरब समुद्र के तट तक बोली जाती है। मलयालम केरल प्रान्त की भाषा है और दक्षिण में तिरुवनन्तपुरम (त्रिवन्द्रम्) से अरब सागर के किनारे किनारे कासरगोड तक बोली जाती है। ये चारों भाषाएँ द्रविड परिवार की हैं और आर्य परिवार की भाषाओं से बहुत भिन्न हैं। तमिल को छोड़कर शेष तीन भाषाओं पर संस्कृत का बहुत प्रभाव पड़ा है और उन्होंने संस्कृत से बहुत से शब्द ग्रहण किये हैं। इन चारों भाषाओं में तमिल सबसे प्राचीन है और उसका प्राचीन साहित्य सबसे अधिक समृद्ध है।

उपर्युक्त चारों प्रान्तों में रामकथा का प्रचार है और चारों भाषाओं में रामायण की रचना हुई है। किन्तु, मलयालम रामायण एक आधुनिक रचना है और वाल्मीकि रामायण का छायानुवाद मात्र है। मलयालम रामायण रामानुजन् एषुत्तच्चन् नामक किसी कवि की रचना है, जो ईसवी सन् १६वीं और १७वीं शती के मध्य वर्त्तमान थे। उन्होंने अपनी रामायण अध्यात्मरामायण के आधार पर लिखी है, जिसकी भाषा संस्कृत गर्भित है। कन्नड की सबसे प्राचीन रामायण 'पंप रामायण' के नाम से प्रसिद्ध है और 'पंप' नामक एक जैनकवि की रचना है। पंप ने रामकथा में बहुत हेर फेर किया है और जैन दृष्टिकोण से

उसकी रचना की है, अतएव यह निश्चय हुआ कि इस समय उक्त नागा रामायणा का अनुवाद स्थगित रखा जाय और तलुगु से रगनाथ रामायण तथा तामल स कबरामायण का अनुवाद कराया जाय। ये दोनो रामायण वाल्मीकि रामायण की कथा के आधार पर लिखे गये ह, किन्तु दोनों की रचना म पर्याप्त मौलिकता प्रदर्शित की गई है।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् की इसी योजना क अनुसार रगनाथ रामायण के हिन्दी अनुवाद का कार्य मद्रास क्रिश्चियन कालेज क हिन्दी अध्यापक श्री ए सी कामाक्षिराव, एम्० ए०, बी० ओ० एल्० का सोपा गया। प्रसन्नता की बात है कि रगनाथ रामायण का हिन्दी अनुवाद परिषद् की आर स प्रकाशित हो चुका है।

कब रामायण तमिल भाषा की एक अत्यन्त लोकप्रिय तथा सवश्रेष्ठ रचना है और भारतीय भाषाओ म जितनी रामायणे उपलब्ध हैं, उनम सबस प्राचीन है। प्राचीन क अनुसार कबन का जन्म ईसा की नवी शताब्दी (कुछ लाग उनका जन्म बारह्वी शताब्दी म मानते है) म हुआ था। उनकी भाषा अत्यन्त प्रवाहपूर्ण, ओजस्विनी तथा आलकारिक है। वह तमिल की प्राचीन शैली का एक बहुत सुन्दर नमूना है। कवि न अपनी रचना म सस्कृत तथा तमिल अलकारो और मुहावरो का प्रचुर मात्रा म प्रयाग किया है। अतः, उसके अनुवाद के लिए एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी, जा सस्कृत, तमिल और हिन्दी तीनो भाषाओ का अच्छा ज्ञान रखता हो तथा जो वैष्णव सप्रदाय की विचारधारा म भी परिचित हो। सौभाग्य से इस कार्य क लिए हम श्री न० वी० राजगोपालनजी मिल गये जो सस्कृत म मद्रास विश्वविद्यालय के शिरोमणि परीक्षोत्तीण हैं, हिन्दी म 'प्रवीण' है तथा तमिल का भी अच्छा ज्ञान रखते हैं। अभी हाल म उन्होंने तमिल म भी 'विद्वान' की परीक्षा पास कर ली है। उनक अथक परिश्रम का ही यह फल है कि कब रामायण का हिन्दी अनुवाद हिन्दीभाषी जनता के सम्मुख उपस्थित किया जा रहा है।

एक भाषा से दूसरी भाषा म अनुवाद का कार्य साधारणत कठिन होता है और किसी काव्य का अनुवाद करने म तो यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है। कब की भाषा नवी शती की है और प्राचीन तमिल शैली की है, जिसे 'शेन् तमिल' कहते हैं। अनुवादक का लक्ष्य यह था कि जहाँतक हो सके, मूल का सौन्दर्य नष्ट न होने पाये और कबन की वर्णन शैली मे फर्क न पडे। स्वतत्र अनुवाद करने से मूल की विशेषता नष्ट हो जाने का भय था। इसी कारण अनेक स्थाना म अनुवाद की भाषा उलझी हुई और अस्वाभाविक दिखाई देगी। पाठक इसके लिए क्षमा करेंगे।

अबतक सपूर्ण कब रामायण का अनुवाद किसी भी भाषा म नहीं हुआ है। यह प्रसन्नता का विषय है कि ऐसे आदरणीय ग्रन्थ का अनुवाद प्रकाशित करने का यह प्रथम गौरव राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्राप्त हो रहा है। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् भी बधाई का पात्र है, जिसने सवप्रथम इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के प्रकाशन का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेकर उसे सफलतापूर्वक सपन्न किया है।

भूमिका

तमिल साहित्य २००० वर्ष पुराना माना जाता है। ईसा पूर्व चौथी शती तक उसमें काव्य, नाटक तथा गीति साहित्य का विस्तृत प्रणयन हो चुका था। इस भाषा का सर्वप्रथम व्याकरण, जो 'तोलकाप्पियम्' के नाम से प्रसिद्ध है, ईसवी सन् पूर्व तीसरी शती में लिखा गया था। यह एक बृहदाकार लक्षण ग्रन्थ है और अब उपलब्ध तमिल ग्रन्थों में सबसे प्राचीन है। इस ग्रन्थ में तमिल भाषा के व्याकरण के अतिरिक्त काव्य पद्धतियाँ, छन्द, अलंकार एवं काव्य में वर्ण्य विषय वस्तु (जिसे तमिल में 'पोरुल्' कहते हैं) का विशद विवेचन है। तमिल व्याकरण में 'पोरुल्' के दो विभाग किये गये हैं—'अहम्' और 'पुरम्'। अहम् में शृंगार रस का पोषण होता है, और 'पुरम्' में शृंगारेतर रसों का पोषण होता है, विशेष कर वीर रस का। अहम् और पुरम् मनुष्य के जीवन के अंतरंग एवं बहिरंग पक्ष के प्रतिपादक हैं। यह विभाजन तमिल काव्यशास्त्र की विलक्षणता है, जो अन्य किसी भाषा के साहित्य में प्राप्त नहीं होता।

तमिल साहित्य का आदिकाल 'संघम काल' के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि साहित्य की अभिवृद्धि के लिए मदुरा के पांडिय राजाओं ने, एक के पश्चात् एक, तीन 'संघम्' स्थापित किये थे। अपने समय के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् एवं कवि इस संघम् के सदस्य होते थे। संघम् का कार्य कवियों की रचनाओं की समीक्षा करके उनपर प्रामाणिकता एवं श्रेष्ठता की मुहर लगाना होता था। संघम् द्वारा स्वीकृत रचनाओं को ही लोक में प्रतिष्ठा मिलती थी। यह विश्वास प्रचलित है कि इन तीनों संघमों में कुल ६५७ कवि सदस्य बने थे और हजारों वर्ष तक इन संघमों ने कार्य किया था। इस काल के कुछ कवियों की रचनाएँ पृथक् पृथक् पुस्तकों में संगृहीत हैं।

ईसवी सन् पूर्व तीसरी शती से ईसा की छठी शताब्दी तक तमिल देश में जैन तथा बौद्ध धर्मों का विस्तार रहा। जैन तथा बौद्ध कवियों ने अनेक सुन्दर ग्रन्थ लिखे और उनके द्वारा अपने धर्म का प्रचार तथा तमिल भाषा की सेवा की। ईसा की दूसरी और तीसरी शताब्दियों में तमिल में पाँच महाकाव्य रचे गये, जिनके नाम हैं—१ शिलप्पधिकारम्, २ मणिमेखलै, ३ जीवकचिन्तामणि, ४ वलयापति तथा ५ कुंडलकेशी। इनमें से प्रथम दो बौद्ध कवियों की रचनाएँ हैं और तमिल की विशिष्ट कला के परिचायक हैं। 'जीवकचिन्तामणि' किसी जैनकवि की रचना है। इसका छंद संस्कृत के गणवृत्तों पर आधृत है और अलंकार भी संस्कृत साहित्यशास्त्र के अनुकूल बने हैं। अपने काव्य सौन्दर्य के कारण यह ग्रन्थ अपने समय में बहुत लोकप्रिय बना था। 'कुंडलकेशी' और 'वलयापति'—ये दोनों काव्य अब अनुपलब्ध हैं।

ईसा की छठी शती से तमिल देश में भक्ति का आन्दोलन जोर पकड़ने लगा और बौद्ध तथा जैनधर्मों का प्रभाव कम होने लगा। छठी तथा तेरहवीं शतियों के मध्य तमिलनाड में अनेक वैष्णव तथा शैव संत उत्पन्न हुए, जिन्होंने अत्यन्त सुन्दर काव्य रचना

उसकी रचना की है, अतएव यह निश्चय हुआ कि इस समय उक्त नाना रामायणों का अनुवाद स्थगित रखा जाय और तेलुगु से रंगनाथ रामायण तथा तमिल से कंब रामायण का अनुवाद कराया जाय। ये दोनों रामायण वाल्मीकि रामायण की कथा के आधार पर लिखे गये हैं, किन्तु दोनों की रचना में पर्याप्त मौलिकता प्रदर्शित की गई है।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् की इसी योजना के अनुसार रंगनाथ रामायण के हिन्दी अनुवाद का कार्य मद्रास क्रिश्चियन कालेज के हिन्दी अध्यापक श्री [illegible] कामाक्षिराव, एम्० ए०, बी० ओ० एल्० को सौंपा गया। प्रसन्नता की बात है कि रंगनाथ रामायण का हिन्दी अनुवाद परिषद् की ओर से प्रकाशित हो चुका है।

कंब रामायण तमिल भाषा की एक अत्यन्त लोकप्रिय तथा सर्वश्रेष्ठ रचना है और भारतीय भाषाओं में जितनी रामायणें उपलब्ध हैं, उनमें सबसे प्राचीन है। [illegible] के अनुसार कंबन का जन्म ईसा की नवीं शताब्दी (कुछ लोग उनका जन्म बारहवीं शताब्दी में मानते हैं) में हुआ था। उनकी भाषा अत्यन्त प्रवाहपूर्ण, ओजस्विनी तथा आलंकारिक है। वह तमिल की प्राचीन शैली का एक बहुत सुन्दर नमूना है। कवि ने अपनी रचना में संस्कृत तथा तमिल अलंकारों और मुहावरों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। [illegible], उसके अनुवाद के लिए एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी, जो संस्कृत, तमिल और हिन्दी तीनों भाषाओं का अच्छा ज्ञान रखता हो तथा जो वैष्णव सम्प्रदाय की विचारधारा से भी परिचित हो। सौभाग्य से इस कार्य के लिए हम श्री न० वी० राजगोपालन [illegible] मिल गये, जो संस्कृत में मद्रास विश्वविद्यालय के शिरोमणि परीक्षोत्तीर्ण हैं, हिन्दी में 'प्रवीण' हैं तथा तमिल का भी अच्छा ज्ञान रखते हैं। अभी हाल में उन्होंने तमिल में भी एम० ए० की परीक्षा पास कर ली है। उनके अथक परिश्रम का ही यह फल है कि कंब रामायण का हिन्दी अनुवाद हिन्दीभाषी जनता के सम्मुख उपस्थित किया जा रहा है।

एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद का कार्य साधारणतः कठिन होता है और किसी काव्य का अनुवाद करने में तो यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है। कंब की भाषा नवीं शती की है और प्राचीन तमिल शैली की है, जिसे 'शेन तमिल' कहते हैं। अनुवादक का लक्ष्य यह था कि जहाँतक हो सके, मूल का सौन्दर्य नष्ट न होने पाये और कंबन की वर्णन शैली में फर्क न पड़े। स्वतंत्र अनुवाद करने से मूल की विशेषता नष्ट हो जाने का भय था। इसी कारण अनेक स्थानों में अनुवाद की भाषा उलझी हुई और अस्वाभाविक दिखाई देगी। पाठक इसके लिए क्षमा करेंगे।

अबतक संपूर्ण कंब रामायण का अनुवाद किसी भी भाषा में नहीं हुआ है। यह प्रसन्नता का विषय है कि ऐसे आदरणीय ग्रन्थ का अनुवाद प्रकाशित करने का सर्वप्रथम गौरव राष्ट्रभाषा हिन्दी को प्राप्त हो रहा है। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् भी बधाई का पात्र है, जिसने सर्वप्रथम इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के प्रकाशन का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेकर उसे सफलतापूर्वक संपन्न किया है।

[illegible]

भूमिका

तमिल साहित्य ००० वर्ष पुराना माना जाता है। ईसा पूर्व चौथी शती तक उसमें काव्य, नाटक तथा गीति साहित्य का विस्तृत प्रणयन हो चुका था। इस भाषा का सर्वप्रथम व्याकरण, जो 'तोलकाप्पियम्' के नाम से प्रसिद्ध है, ईसवी सन् पूर्व तीसरी शती में लिखा गया था। यह एक बृहदाकार लक्षण ग्रन्थ है और अब उपलब्ध तमिल ग्रन्थों में सबसे प्राचीन है। इस ग्रन्थ में तमिल भाषा के व्याकरण के अतिरिक्त काव्य पद्धतियां, छंद, अलंकार एवं काव्य में वर्ण्य विषय वस्तु (जिसे तमिल में 'पोरुल्' कहते हैं) का विशद विवेचन है। तमिल व्याकरण में 'पोरुल्' के दो विभाग किये गये हैं—'अहम' और 'पुरम'। अहम में शृंगार रस का पोषण होता है, और 'पुरम' में शृंगारेतर रसों का पोषण होता है, विशेष कर वीर रस का। अहम और पुरम् मनुष्य के जीवन के अंतरंग एवं बहिरंग पक्ष के प्रतिपादक हैं। यह विभाजन तमिल काव्यशास्त्र की विलक्षणता है, जो अन्य किसी भाषा के साहित्य में प्राप्त नहीं होता।

तमिल साहित्य का आदिकाल 'संघम काल' के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि साहित्य की अभिवृद्धि के लिए मदुरा के पांडिय राजाओं ने, एक के पश्चात् एक, तीन 'संघम्' स्थापित किये थे। अपने समय के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् एवं कवि इस संघम के सदस्य होते थे। संघम् का कार्य कवियों की रचनाओं की समीक्षा करके उनपर प्रामाणिकता एवं श्रेष्ठता की मुहर लगाना होता था। संघम द्वारा स्वीकृत रचनाओं को ही लोक में प्रतिष्ठा मिलती थी। यह विश्वास प्रचलित है कि इन तीनों संघमों में कुल ६५७ कवि सदस्य बने थे और हजारों वर्ष तक इन संघमों ने कार्य किया था। इस काल के कुछ कवियों की रचनाएँ पृथक् पृथक् पुस्तकों में संगृहीत हैं।

ईसवी सन् पूर्व तीसरी शती से ईसा की छठी शताब्दी तक तमिल देश में जैन तथा बौद्ध धर्मों का विस्तार रहा। जैन तथा बौद्ध कवियों ने अनेक सुन्दर ग्रन्थ लिखे और उनके द्वारा अपने धर्म का प्रचार तथा तमिल भाषा की सेवा की। ईसा की दूसरी और तीसरी शताब्दियों में तमिल में पांच महाकाव्य रचे गये, जिनके नाम हैं—१ शिलप्पधिकारम, २ मणिमेखलै, ३ जीवकचिन्तामणि, ४ वलयापति तथा ५ कुंडलकेशी। इनमें से प्रथम दो बौद्ध कवियों की रचनाएं हैं और तमिल की विशिष्ट कला के परिचायक हैं। 'जीवकचिन्तामणि' किसी जैनकवि की रचना है। इसका छंद संस्कृत के वर्णवृत्तों पर आधृत है और अलंकार भी संस्कृत साहित्यशास्त्र के अनुकूल बने हैं। अपने काव्य सौन्दर्य के कारण यह ग्रन्थ अपने समय में बहुत लोकप्रिय बना था। 'कुंडलकेशी' और 'वलयापति'—ये दोनों काव्य अब अनुपलब्ध हैं।

ईसा की छठी शती से तमिल देश में भक्ति का आन्दोलन जोर पकड़ने लगा और बौद्ध तथा जैनधर्मों का प्रभाव कम होने लगा। छठी तथा तेरहवीं शतियों के मध्य तमिलनाडु में अनेक वैष्णव तथा शैव भक्त उत्पन्न हुए, जिन्होंने अत्यन्त सुन्दर काव्य रचना

क साथ साथ विष्णु तथा शिव भक्ति की पीयूष धारा बहाइ, जिसने दक्षिण भा [illegible] नहा, वरन् सारे भारतवर्ष को प्रभावित किया और हिन्दू जनता को मुक्ति [illegible] मार्ग दिखलाया। पीछे चलकर इन धाराओं ने हिन्दी जगत [illegible] भी आप्लावित कर दिया।

वैष्णवधर्म के अनुयायी बारह संत हुए, जिन्हें 'आलवार' [illegible] शब्द, का अर्थ होता है 'ज्ञानी'। उन्होंने भगवान् विष्णु का परम तत्त्व [illegible] उपासना की और उनकी प्रशंसा में सहस्रों सुन्दर तथा मधुर गीत गाए। [illegible] चार हजार हैं, जो तमिल में 'नालायिरप्रबंधम्' या 'दिव्यप्रबंधम्' [illegible] श्रीमद्रामानुजाचार्य इन्हीं आलवारों द्वारा प्रतिपादित वैष्णव धर्म के [illegible]।

जिस समय वैष्णव संत भगवान् विष्णु का अपार [illegible] भक्ति का प्रचार कर रहे थे, प्रायः उसी समय शैव संत भगवान् शिव के गुण [illegible] अमृतमय वाणी को सफल बना रहे थे। इस मत में ६३ संत हुए, जिन्हें 'नायन्मार' कहते हैं। इन्होंने भगवान् शिव की प्रशंसा में हजारों ललित [illegible] भी शिवभक्तों की अमूल्य निधि है। इनके द्वारा विरचित तिरुमुरै [illegible] विभाजित है।

कंबन का स्थान तमिल साहित्य में अत्यन्त श्रेष्ठ है और [illegible] से प्रसिद्ध हैं। उनकी रचना 'रामायण', जो 'कंब रामायण' के नाम से प्रसि[illegible] से अधिक पद्यों का एक विशाल ग्रन्थ है।

कंबन का समय निश्चित नहीं है। कुछ विद्वान् उन्हें [illegible] मानते हैं, किन्तु अधिक प्रामाणिक समय बारहवीं शताब्दी है।[1] [illegible] आलवार हो चुके थे और यामुन, रामानुज आदि आचार्यों की परम्परा भी [illegible] इन आचार्यों ने भक्ति एवं प्रपत्ति का शास्त्रीय विवेचन किया। [illegible] आलवार 'नम्मालवार' की उन्होंने प्रस्तुति की है और उनके काव्य में [illegible] की श्रीसूक्तियों की छाया दृष्टिगत होती है, तो भी कंबन ने [illegible] साम्प्रदायिक नहीं बनाया है। प्रो० टी० पी० मीनाक्षिसुन्दरम् के [illegible] रामायण केवल वैष्णव सम्प्रदाय का ग्रन्थ नहीं है। ग्रन्थारम्भ में तथा [illegible] मंगलाचरण के जो पद्य हैं, उनमें यह तथ्य प्रकट होता है। कंबन ने परमात्मा का [illegible] शिव और विष्णु के रूप से भी अतीत, केवल सृष्टिकर्त्ता के रूप में किया है। [illegible] रामचन्द्र को उस परमात्मा का अवतार ही माना है।

इसका परिणाम यह हुआ कि शैवों और वैष्णवों के [illegible] 'कंब रामायण' का आदर हुआ और इन दोनों सम्प्रदायों में जो वैमनस्य था, उसके [illegible] मिली।

कंबन का जन्मवृत्त कुछ निश्चित ज्ञात नहीं हुआ है। [illegible] किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं, जिनकी प्रामाणिकता संदेहास्पद है। कवि ने कहीं भी अपना

१ प्रो० टी० पी० मीनाक्षिसुन्दरम्—(तमिल-विभाग ध्यक्ष, अन्नामलै विश्वविद्यालय) इसी को प्रामाणिक [illegible]

परिचय नहीं दिया है, किन्तु उन्होंने अपनी रामायण में तिरुवण्णेयनल्लूर नामक ग्राम के 'शडयप्पवल्लर' नामक एक दानी और यशस्वी व्यक्ति का उल्लेख कई स्थानों पर किया है। अनुमान किया जाता है कि इसी उदार व्यक्ति ने महाकवि कम्बन को आश्रय दिया था, जिसकी कृतज्ञता में महाकवि ने अपने काव्य में उस व्यक्ति का स्मरण किया है। यह ज्ञात होता है कि कम्बन चोल और चेर राजाओं के दरबार में गये थे, लेकिन अपनी महान् कृति को किसी राजा को अर्पित नहीं किया।

कम्बन की रामायण तमिल साहित्य की सर्वोत्कृष्ट कृति एवं एक बृहद ग्रन्थ है।[1] तमिल, हिन्दी, अँगरेजी आदि के साहित्यों के बड़े विद्वान् श्री वी० वी० एस्० अय्यर ने लिखा है कि 'यह (कम्ब रामायण) विश्व साहित्य में उत्तम कृति है, 'इलियड' और 'पैरेडाइस लास्ट' और महाभारत से ही नहीं, वरन् मूलकाव्य वाल्मीकि रामायण की तुलना में भी यह अधिक सुन्दर है। यह केवल आदरातिरेक से कही हुई उक्ति नहीं है, वरन् अनेक वर्षों तक किये गये गहन अध्ययन से धीरे धीरे पुष्ट हुआ विचार है।'[2]

कम्ब रामायण वाल्मीकि रामायण का अनुवाद मात्र नहीं है, उसका छायानुवाद कहना भी संगत नहीं है। कथानक मात्र मूल से लिया गया है, लेकिन घटनाओं में सैकड़ों परिवर्त्तन किये गये हैं। प्रत्येक घटना के चित्रण में, परिस्थितियों को उपस्थित करने में, पात्रों के सम्भाषण में, प्राकृतिक दृश्यों के उपस्थापन में एवं पात्रों की मनोभावनाओं की अभिव्यक्ति में कम्बन ने पर्याप्त मौलिकता दिखलाई है। तमिल भाषा की अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी कम्बन ने मौलिकता प्रदर्शित की है। छंदोविधान में, अलंकारों के प्रयोग में तथा शब्द गुम्फन में अपूर्व सौंदर्य प्रकट किया है। सीता राम-विवाह, शूर्पणखा प्रसंग, वालिवध, हनुमान् के द्वारा सीता संदर्शन, इन्द्रजित् का वध, राम रावण युद्ध इत्यादि प्रसंगों में प्रत्येक अपनी विशिष्ट सुन्दरता के कारण अत्यन्त आकर्षक हुआ है। प्रत्येक प्रसंग अपने में संपूर्ण सा लगता है, प्रत्येक में काफी नाटकीयता है, प्रत्येक घटना का आरम्भ, विकास और परिसमाप्ति एक निश्चित क्रम से विकसित होते हैं। यह शिल्प विधान कम्बन के काव्य की एक विशिष्टता है।

राम के चरित्र को कम्बन ने जिस ढंग से चित्रित किया है, वह विशेष अध्ययन का विषय है। वाल्मीकि के सम्मुख यह प्रश्न था कि लोकोत्तर आदर्श पुरुष कौन है? उन्हें 'पुरुषोत्तम' की खोज थी। नारद तथा ब्रह्मा से उन्हें ऐसे पुरुषोत्तम का परिचय प्राप्त हुआ। रामचरित का गान करके वाल्मीकि ने संसार के सम्मुख 'पुरुष पुरातन' की ही नहीं, अपितु एक 'महामानव' का चित्र उपस्थित किया था। कम्बन के युग तक आते आते वही आदर्श महामानव परमात्मा के अवतार के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था। यह विश्वास दृढ हो गया था कि केवल राम-नाम का जप मात्र अपवर्गप्रद हो सकता है। वैष्णव भक्ति का ज्यों ज्यों प्रचार समाज में बढ़ा, त्यों त्यों राम के प्रति आस्था अधिकाधिक बद्धमूल होती गई।

---

1 डा० आर० पी० सेतुपिल्लै, (तमिल विभागाध्यक्ष मद्रास विश्वविद्यालय) का अँगरेजी ग्रन्थ 'तमिल लिटरेचर'।

2 श्री वी० वी० एस० अय्यर 'कंब रामायणम्—ए स्टडी'।

कबन ने समयुगीन भावनाओ को भली भाँति पहचाना था। [illegible]
भावना के कारण राम के चरित्र मे जो महत्ता और परम परिपूर्णता [illegible]
उन्हे इस कुशल कवि ने अपने काव्य के द्वारा परिपुष्ट कर दिया। [illegible]
नही था। केवल यह कहते रहने से कि राम परमात्मा है या [illegible]
विशेषणो को जोडते रहने से यह ज्ञान हो सकता है कि राम परमात्मा [illegible]
उससे पाठको पर राम के चरित्र का मानवोचित प्रभाव पडना [illegible]
के मार्ग मे इस प्रकार की पुनरुक्ति से बाधा पडने की सम्भावना है। [illegible]
का साहित्यिक प्रभाव उत्पन्न करना, पूरे काव्य मे सब प्रसगो [illegible]
निर्वाह करना एव साथ ही मानव जीवन की विविध सुख दु खात्मक परिस्थितियो [illegible]
उस दैवी तत्त्व की सगति बिठाना—यह एक अनन्यसुलभ प्रतिभाशाली [illegible]
कार्य है। कबन ऐसे ही कवि थे। कब रामायण का कोई भी प्रसग [illegible]
सकता है।

कबन ने बालकाड से युद्धकाड तक छह काडो की रचना की। [illegible]
के कारण अनेक प्रक्षेप भी इसमे जुड गये है। किन्तु, इन प्रक्षेपो [illegible]
दुष्कर नही है, क्योकि कबन की भाषा और प्रतिपादन की [illegible]
उनका अनुकरण नही हो सकता। अब उपलब्ध ग्रन्थ मे [illegible]
प्राप्त हुआ है, जो कबन के समकालिक एक अन्य महाकवि 'ओट्टक्कूत्तर' [illegible]
माना जाता है।

तमिलनाड मे ही नही, उसके बाहर भी धीरे धीरे इस रामायण का प्रचार [illegible]
तजाउर जिले मे स्थित तिरुप्पणान्दाल मठ की एक शाखा काशी मे [illegible]
से तीन साढे तीन सौ वर्ष पूर्व कुमरगुरुपर नामक एक तमिल सत [illegible]
के समकालीन थे। वे नित्य प्रति सध्या के समय गगा तट पर कब रामायण [illegible]
हिन्दी मे सुनाया करते थे। गोस्वामी तुलसीदासजी उन्ही दिनो काशी मे [illegible]
मानस की रचना कर रहे थे। दक्षिण के लोगो मे यह विश्वास प्रचलित है कि [illegible]
मानस लिखने मे अनेक स्थलो पर कब रामायण से प्रेरणा प्राप्त की थी। [illegible]
प्रामाणिकता निर्विवाद नही है। किन्तु, इतना तो सत्य है कि [illegible]
कृतियो मे कई घटनाओ मे आश्चर्यजनक समानता दिखाई पडती है।[1]

अनुवाद का काम अनेक कारणो से कठिन होता है। [illegible]
और भी बहुत श्रमसाध्य है। कबन की कृति बारहवी शताब्दी की तमिल [illegible]
गई है, उसका आधुनिक हिन्दी मे यह अनुवाद लगभग पाँच [illegible]
हो सका है। मूल की अभिव्यक्तिगत सौदर्य को भाषातर मे [illegible]
असम्भव है। कबन के भावगत सौदर्य की किचित् झलक मात्र सभव [illegible]
भाषा की एक विशेषता यह है कि उसमे मिश्रवाक्य की रचना नही होती। [illegible]

[1] डा० एस० शकरराजुनायुडु (हिन्दी विभागाध्यक्ष, मद्रास विश्वविद्यालय) [illegible]
तुलसी' पृ० [illegible]

वाक्य होते हैं। पूर्वकालिक कृदन्तों के सहारे लम्बे से लम्बे वाक्य लिखे जा सकते हैं। हिन्दी में ऐसा संभव नहीं है। हिन्दी में कृदन्त विशेषण के द्वारा भूत और भविष्य काल को स्पष्ट नहीं किया जा सकता। इस कारण कंबन के कुछ लम्बे वर्णनों का अनुवाद यथामूल प्रस्तुत करने में बड़ी कठिनाई का अनुभव हुआ।

मूल में अनेक वृक्षों, लताओं, पशुओं, पक्षियों और विविध वस्तुओं का उल्लेख आया है। कहीं कहीं मछलियों की अनेक जातियों और स्वभाव का वर्णन आया है। युद्ध वर्णन में अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों तथा विविध व्यापारों का वर्णन हुआ है। इन सबका हिन्दी अनुवाद यथामूल उपस्थित करने की भरपूर चेष्टा की गई है, फिर भी हिन्दी में उपयुक्त शब्दों के न मिलने के कारण कहीं कुछ नये शब्द गढ़ने पड़े हैं, कहीं तमिल का ही नाम देना पड़ा है।

यदि इस अनुवाद से मूल के सौंदर्य की थोड़ी सी झलक भी पाठक पा सकेंगे, तो यह लेखक अपने को कृतार्थ समझेगा।

इस अनुवाद कार्य में कई विद्वानों के परामर्श मुझे प्राप्त हुए हैं। पं० अवध नन्दन ने पूरी पाडुलिपि को देखकर उसका संपादन किया और कई सुझाव देने की कृपा की। वै० मु० गोपालकृष्णमाचार्य की कंब रामायण व्याख्या बहुत उपकारक रही। समय समय पर अनेक तमिल तथा हिन्दी विद्वानों ने मुझे इस कार्य में मार्गदर्शन प्रदान किया है। इन सबके प्रति मैं हृदय से धन्यवाद समर्पित करता हूँ।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् ने इस अनुवाद को प्रकाशित करने का भार अपने ऊपर लिया है। इससे न केवल राष्ट्रभाषा हिन्दी की, अपितु तमिल भाषा की भी सेवा हो रही है। परिषद् को मेरे धन्यवाद हैं।

न० वी० राजगोपालन

विषय-सूची

बालकाड

अयोध्याकाड

कंब रामायण

बालकांड

मगलाचरण

काव्य पीठिका

हम उस भगवान् की ही शरण म ह, जो समस्त लोको का सृजन, उनकी रक्षा और उनका विनाश ये तीनो क्रीडाएँ निरतर करता रहता है।

बडे बडे आत्मज्ञानी भी उस परमात्मा के पूर्ण स्वरूप का नही जान सकते, उस परमात्मा (के तत्त्व) को समझना मेरे जैसे (मन्दबुद्धि) व्यक्ति के लिए असभव है, फिर भी शास्त्रो म प्रतिपादित त्रिगणो (सत्त्व, रज और तम) म जिनका प्रतिरूप बनकर वह परमात्मा त्रिमूर्त्ति के रूप म प्रकट हुआ, उनम से प्रथम गण के स्वरूप (विष्णु) भगवान् के कल्याणकारक गुणो के सागर म गोते लगाना तो उत्तम ही है।

जिन ज्ञानियो ने आरभ तथा समाप्ति म 'हरि ॐ' कहकर नित्य और अनन्त वेदो को अधिगत (प्राप्त) कर लिया है और जो अपने परिपक्व ज्ञान के कारण ससार त्यागी बन चुके है, वे महानुभाव उस (विष्णु) भगवान् के उन चरणो को जो सन्मार्ग पर चलनेवाले भक्तो के उद्धारक है, छोडकर अन्य किसी से प्रेम नही करते।

अकलक विजयश्री से विभूषित (श्रीरामचन्द्र) के गणो का वर्णन करने की अभिलाषा मै कर रहा हूँ, यह ऐसा ही है, जैसा कि कोई बिल्ली, घोर गर्जन करनेवाले ऊची तरगो से भरे क्षीरसागर के निकट पहुँचकर उसके समस्त क्षीर को पी जाने की अभिलाषा करे।

अभिशाप[1] की वाणी म (उस दिन) सप्त तालवृक्षो को एक साथ भेदन कर देनेवाले (श्रीराम) की महान गाथा आविर्भूत हो गई थी, उस गाथा को मधुर काव्य के रूप म कहनेवाले (वाल्मीकि) की वाणी जिस देश म सुस्थिर हो चुकी है, वही मै भी अपने (अर्थगाभीर्य हीन) सरल तथा दुर्बल शब्दो म इसकी काव्य रचना चाहता हूँ— यह भी कैसा (बुद्धिहीन) प्रयास है।

1 क्रौंच को मारनेवाले व्याध के प्रति वाल्मीकि के मुँह स जो अभिशाप वचन निकल पडा था, वही रामायण का प्रथम मगलाचरण भी हुआ।

(मेरी इस मूर्खता पर) समार [illegible]
होगा, फिर भी मै रामचरित का गान करने लगा हूँ [illegible]
तथा अलौकिक प्रतिभा से संपन्न (वाल्मीकि [illegible])
अधिक प्रकट हो।

जिन (सहृदय व्यक्तियों) के कान [illegible]
के आदी हो चुके हैं, उन्हें मेरी कविता उसी प्रकार ([illegible])
(वीणा) के मधुर स्वर को सुनते [illegible] मुग्ध [illegible]
(चमड़े के ढोल) की ध्वनि लगे।

(काव्य, नाटक और संगीत रूपी) [illegible]
भली भाँति अध्ययन किया है, उन उत्तम विद्वानों और [illegible]
"क्या उन्मत्तों के वचन, मंद बुद्धिवालों के वचन तथा भक्तों [illegible]
करना उचित हो सकता है?"

बालक (खेलते समय) धरती पर घरौंदे [illegible]
नृत्यशाला आदि स्थानों को कुछ टेढ़ी मेढ़ी [illegible]
देखकर) क्या कुशल कारीगर (उन घरौंदों में शिल्प शास्त्र [illegible])
होंगे? किंचित् भी काव्य ज्ञान से रहित मैं [illegible]
क्या मर्मज्ञ विद्वान् क्रुद्ध होंगे?

देववाणी (संस्कृत) में जिन तीन महापुरुषों[3] [illegible]
उनमें प्रथम कवि वाग्मी (वाल्मीकि) [illegible]
यह रामायण रची है।

धर्म रक्षा के लिए, परम पुरुष ने जो अवतार लिया [illegible]
वर्णन करनेवाला यह प्रसिद्ध काव्य 'शडैयप्प वल्लर'[4] [illegible]
निर्मित हुआ। (१-११)

●

१ 'याल्' एक प्रकार की वीणा। प्राचीन तमिल साहित्य में [illegible]
जाता था कि याल का स्वर सुनकर हिरन मुग्ध [illegible]
ध्वनि को वह सहन नहीं कर सकता था और कभी कभी [illegible]
देता था।

२ हिरन की एक जाति।

३ संस्कृत के तीन रामायणकर्त्ता हैं—वाल्मीकि, वसिष्ठ और बोधायन। [illegible]
पर व्यास का नाम लेते हैं, जिन्होंने 'अध्यात्मरामायण' की रचना की थी। [illegible]
में अध्यात्मरामायण का अनुसरण किया है।

४ शडैयप्प वल्लर एक धनी और उदार व्यक्ति थे। उन्होंने महाकवि कंबर को आश्रय दिया था।
यद्यपि बाद को महाकवि कंबर चोलराजा के आश्रय में भी रहे थे, तथापि अपने प्रथम आश्रयदाता
का ही स्मरण कृतज्ञता के साथ उन्होंने इस प्रबंध के आरंभ में कई स्थानों में किया है।

अध्याय १

नदी पटल

[कोशल देश का वर्णन करने के लिए प्रस्तुत होकर कवि पहले उस देश को हरा-भरा करनेवाली सरयू नदी का वर्णन कर रहा है ।]

कोशल देश में, जहाँ न तो ही अपराधकर्मा (पुरुषों की) पंचेन्द्रिय रूपी बाण एवं रत्नहारों से विभूषित युवतियों के कटाक्ष रूपी बाण—ये दोनों सन्मार्ग की सीमा को लाँघ कर कभी नहीं चलते, उस समस्त भूप्रदेश को सुशोभित करती हुई सरयू नदी बहती है।

भस्मधारी (शिव) के रंगवाले मेघ ने, गगनमार्ग से चलकर, समुद्र के जल का पान किया और (जल पीकर) वक्ष पर लक्ष्मी को धारण करनेवाले विलक्षण कांतिपूर्ण विष्णु का रंग पाकर लौटा।

मेघ उमड़कर उठा और हिमाचल के ऊपर छा गया, मानो सागर हो, यह सोचकर कि शिवजी का ससुर यह (हिमाचल) पर्वत सूर्यातप से संतप्त हो रहा है और उस ताप से उसकी रक्षा करनी चाहिए, हिमाचल पर फैल गया हो।

मेघ ने जलधाराएँ क्या बरसाईं, एक महान दाता के सदृश अपनी समस्त संपत्ति को ही लुटा दिया। (वह दृश्य ऐसा था कि) आकाश ने जब देखा कि यह भारी हिमाचल[1] (पर्वत) स्वर्णमय है, तो उस सोने को खोदकर निकालने के उद्देश्य से अपने चाँदी के बने हथौड़े उस पर मार रहा हो।

वर्षा के जल की धारा बड़े वेग से धरती पर प्रवाहित हो चली और उसने सर्वत्र शीतलता उत्पन्न कर दी, मानो मनु के उपदिष्ट धर्म मार्ग पर चलनेवाले किसी प्रजावत्सल और गौरव संपन्न राजा की कीर्त्ति ही सर्वत्र फैल रही हो, अथवा चारों वेदों को पूरा अधिगत किये हुए ब्राह्मण के हाथ में प्रदत्त दान (का यश) हो।

हिमाचल के ऊपर से वर्षा की धारा प्रबल वेग के साथ नीचे बह चली और किसी रूपाजीवा (वेश्या) नारी के समान वह (पर्वत की) शिखा, हृदय तथा पाद से संलग्न होती हुई उसकी सीमा से बाहर चली गई, क्षण भर के लिए वह पर्वत से लगी रही, परन्तु दूसरे ही क्षण वहाँ की सभी वस्तुओं को अपने साथ बहाकर आगे बढ़ गई।

वर्षा का प्रवाह हिमाचल के रत्न, मोर पंख, हाथियों के दाँत, स्वर्ण, चन्दन आदि अमूल्य पदार्थों को समेटकर ले चला, जिससे वह वाणिज्य करनेवाले व्यक्ति की समानता करने लगा।

वह प्रवाह कभी रंग बिरंग पुष्पों से भर जाता, कभी मृदु मकरंद उस पर छा जाते, कभी मधु धारा, कभी हाथियों का मदजल और कभी लोहित धातु उसमें मिले

[1] प्राचीन तमिल-साहित्य में हिमाचल और मेरु पर्वत दोनों को कभी-कभी एक ही माना गया है अतः यहाँ हिमाचल को (मेरु के जैसे) सोने का पहाड़ कहा गया है।

वह नदी, किनारे के छोटे छोटे गाँवों में से, जमा हुआ गोरस और सुगन्धित दही, दूध, मक्खन और घी की छींकों के साथ ही उठा ले जाती है (बहा ले जाती है), कटहल वृक्षों को गिरा देती है, हिरनी के समान भीरु नयनवाली ग्वालिनों के दुकूल बहा ले जाती है। प्रबल वेग से बहती हुई वह नदी, कालिय नाग पर, जो अपने फनों और मणियों से भयंकर लगता है, नाचनेवाले कृष्ण की समानता करती है।

सरयू का वह प्रबल प्रवाह अपने मार्ग में (बाँधों) के किवाड़ों को ढकेलकर आगे बढ़ जाता है, कृषक उसे देखते ही आनन्दित हो जाते हैं और हाथ उठा उठाकर आनन्द रव करने लगते हैं, नदी का पूरा भरा हुआ अग्रभाग किनारों से उमड़ता हुआ आगे बढ़ जाता है, उसके ऊपर भौंरे झुण्ड के झुण्ड मँडराते जाते हैं, वह यत्र तत्र मोतियों और रत्नों को बिखेर देता है, बाढ़ को रोकने के लिए जहाँ तहाँ गाड़े हुए खूँटों को वीचि रूपी अपने विशाल हाथों से उखाड़ता हुआ, लहलहाते हुए खेतों से भरे 'मरुदम'[1] (कहलाने वाले) प्रदेश में ऐसे आ पहुँचता, जैसे कोई मत्तगज मदजल बहाता हुआ आया हो।

हिमाचल के ऊपर से आया हुआ वह प्रवाह, पर्वत (कुर्रिजि) के पदार्थों को पर्वत की तलहटी पर के अरण्य (मुल्लै) प्रदेश में बहा ले जाता है और अरण्य के पदार्थों को खेतों और बगीचों से भरे हुए (मरुदम) प्रदेश में लाकर फैला देता है तथा समुद्री तट (नेयदल) प्रदेश को अपनी उपजाऊ मिट्टी के द्वारा लहलहाते खेतों में परिवर्तित कर देता है। इस प्रकार, वह पर्वत अरण्य, खेतों आदि की वस्तुओं को अपने अपने स्थानों से हटा हटाकर दूसरे स्थानों पर रख देता है। देव, मनुष्य, पशु पक्षी तथा स्थावर—इन चार प्रकार की योनियों में भ्रमण करते रहनेवाले प्राणियों के साथ जिस प्रकार उनके संचित कर्म (पाप और पुण्य) लगे चलते हैं और उन्हें भिन्न भिन्न योनियों में उत्पन्न होने के लिए बाध्य करते हैं, उसी प्रकार यह नदी भी विभिन्न भू प्रदेशों के पदार्थों को स्थानान्तरित करती हुई आगे बढ़ती है।

नदी की बाढ़ को बढ़ते हुए देखकर कृषकजन आनन्दित हो उठते हैं और 'पटह'[2] बजाकर उसकी सूचना देते हैं। वह नदी अपनी वीचियों से जल बिंदुओं तथा स्वर्ण और मोतियों को बिखेरती हुई, धरती को चीरती हुई, नालों की शाखा प्रशाखाओं में बँटकर बहती हुई इस प्रकार दौड़ चलती है, जिस प्रकार किसी पुण्यवान मनुष्य की वंशावली विभक्त होकर विकसित हो रही हो।

सरयू का प्रवाह हिमाचल पर उत्पन्न हुआ, वहाँ से चलकर वह समुद्र में जा मिला। वह आरंभ में एक ही रहा, परन्तु धीरे धीरे असंख्य नालों, नहरों, तालाबों और

[1] तमिल लक्षणकार भूमि को पाँच प्रकारों में विभाजित करते हैं —(१) कुर्रिजि—पार्वतीय प्रदेश, (२) मुल्लै—अरण्य प्रदेश, (३) मरुदम—नदियों के जल से सिंचित समतल प्रदेश, (४) नेयदल—समुद्री तट और (५) पालै—बालुमय प्रदेश या मरुभूमि।

[2] प्राचीन तमिल देश में नहरों और नालों की रखवाली करने के लिए 'मल्ल' नामक लोग नियुक्त थे, नदी में जब पानी आता था, तब वे पटह बाजा बजाकर लोगों को सूचना देते थे, जिससे तट पर के गाँवों के लोग सूचना पाकर सावधान हो जाते थे।

करती हो और कुवलय पुष्पों का समुदाय अपने विशाल नयनों (पखुडियों) को खोलकर इस सुमधुर दृश्य को मन मुग्ध होकर देखता खड़ा है।

वहाँ के विकसित कमल पुष्पों पर भ्रमर तथा लक्ष्मी देवी विश्राम करती है पुष्पमालाओं से अलंकृत रसिक जनों पर रमणियों के कटाक्ष तथा कामदेव के बाण आघात करते हैं, बड़ी बड़ी मेघराशियों से गिरनेवाली जलधाराएँ प्रवाल तथा मोतियों की सम्पत्ति उत्पन्न करती हैं, वहाँ के निवासियों की जिह्वा पर सदा सत्यवचन तथा शास्त्र चर्चा निवास करती है।

शंख कोट तालाबों में (निर्भय होकर) विश्राम करते हैं, (क्योंकि) भैंस (उन्हें कष्ट न देकर) वृक्षों की शीतल छाया में विश्राम कर रही है, भ्रमर (नगर निवासियों की पुष्पमालाओं पर) विश्राम करते हैं, (क्योंकि) लक्ष्मी देवी कमल पुष्प पर विश्राम कर रही है, सीपियाँ (खेत की) मेडों पर विश्राम करती हैं, (क्योंकि) कछुए कीचड़ में विश्राम कर रहे हैं, हंस धान के अंबारों पर विश्राम करते हैं, (क्योंकि) मोर (उन्हें कष्ट न देकर) उपवनों में विश्राम कर रहे हैं।

(उस देश के वैभव की कितनी प्रशंसा करूँ?) वहाँ खेतों में हल जोतने पर सोना निकल पडता है, उसको समतल बनाने पर रत्न बिखर जाते हैं, शंख मोती उगलते हैं, धान की सुनहली बालियाँ हैं, मछलियाँ हैं और कोमल पत्तेवाले गन्ने हैं, भ्रमरों कमल पुष्पों एवं कृषकों के हर्षोत्फुल्ल मुखों से परिपूर्ण वह देश कितना नयनाभिराम है?

प्रभात के समय मधुर स्वरवाले 'याल्' वाद्य (एक प्रकार की वीणा) को हाथ में लेकर, मृदंग की ध्वनि के साथ जब मधु पान से मस्त गवैये गान लगते हैं, तब उस संगीत लहरी को सुनकर रजत प्रासादों में, सुनहली धूप की छटा बिखेरनेवाले स्वर्ण पर्यंकों पर निद्रामग्न मयूर पंख के जैसे नयनवाली तरुणियाँ, जाग उठती हैं।

वहाँ एक ओर कोल्हुओं से गन्ने का रस निर्झर के रूप में बहता है, तो दूसरी ओर नारियल के कटे हुए घौदों से मीठा रस प्रवाहित होता है, कहीं उपवनों में पके हुए फलों का मीठा रस चू रहा है, तो कहीं पुष्पों से मकरन्द झरकर नीचे गिर रहा है। ये सभी रस मिलकर, लहराती हुई धारा बनकर जब समुद्र में जा गिरते हैं तब समुद्र के मीन उन रसों को पीकर मस्त हो जाते हैं।

मधु पीकर मस्त हुए कृषक लोग खेत निराने जाते हैं, वहाँ वे खेतों में पौधों के साथ उगे हुए कमल, कुमुद आदि पुष्पों में, मधुर स्वरवाली कृषक बालाओं के नयन, कर, चरण आदि अंगों की छटा देखते हुए निराना भूल जाते हैं और यों ही इधर उधर फिरते रहते हैं। नीच जन जब स्त्रियों पर आसक्त हो जाते हैं, तब उस आसक्ति को किसी भी अवस्था में नहीं छोड़ते।

वहाँ की रमणियों के सौन्दर्य का क्या कहना? उनके मधुर स्वर, मनोहर कटाक्ष, जो कटार के जैसे पैने हैं, पुरुषों के मन को हर लेते हैं, उनकी विद्युत् की सी छटा अवर्णनीय है, उनके केश पुष्प, कस्तूरी आदि सुगंधित द्रव्यों से सुवासित हैं, जब वे नदियों में स्नान करती हैं तो नदी का जल उनके केशों की सुगंधि से सुवासित हो जाता है,

अन्धकार अब दो पक्षों में विभक्त होकर इन भैंसों के भयंकर रूप में आ गया हो और लड़ रहा हो, उस युद्ध को देखनेवाले दर्शक जब प्रसन्नता से अट्टहास कर उठते हैं और सिर हिलाने लगते हैं, तब उनके सिर के फूलों पर बैठे हुए भ्रमर गुंजन करते हुए उड़ जाते हैं। वहाँ जो कोलाहल होता है, उसका शब्द मेघ मंडल तक गूँज उठता है।

किसान खेतों को हल से जोतते हैं, वे बड़े बड़े बलवान् बैलों को जोर जोर से हाँक लगाते हुए ललकारते हैं, उनकी ललकारों की गंभीर ध्वनि से कमल के नाल टूट टूटकर गिर जाते हैं, मोती और सोना धरती से फूट निकलते हैं, मणियाँ बिखर जाती हैं, 'चलचल' नामक सीप मुँह खोलकर रो उठते हैं, हल की क्यारियों में तैरती हुई मछलियाँ छटपटाती हुई उछल पड़ती हैं, कछुए अपने पैरों और सिर को अपने पेट में समेटकर निःस्तब्ध हो पड़ जाते हैं और मीन खेतों से भागकर नालों के गहरे जल में छिप जाते हैं।

बड़ी बड़ी नौकाएँ, जो अमूल्य वस्तुओं को लेकर विदेशों में गई थीं और वहाँ अपने बोझ उतारकर वापस लौट आई हैं, समुद्र तट पर पड़ी हैं, मानो भारी बोझ ढोने से दुखती हुई अपनी लंबी पीठ को आराम दे रही हों। ये नौकाएँ भी उस पृथ्वी के ही समान दीखती हैं, जो मनु नीति का अनुसरण करनेवाले, उचित स्थान पर क्रोध दिखानेवाले, दंड का भी उचित प्रयोग करनेवाले, इच्छाहीन, धर्मज्ञ और प्रजावत्सल राजा के द्वारा सुरक्षित होने के कारण पाप भार से मुक्त हो गई हो।

धान की कटी बालियों का ढेर आसमान को छूता हुआ पड़ा है, कृषक लोग, (हाँकनेवाले के) संकेतों को समझकर चलनेवाले बैलों के द्वारा उन बालियों की दौनी करके धान निकाल लेते हैं, दरिद्रों को दान देने के बाद बचा हुआ धान गाड़ियों में लादकर अपने घर ले जाते हैं, जिससे अतिथियों तथा कुटुम्ब के संग वे भरपेट भोजन कर सकें। गाड़ियाँ जब धान लादकर चलती हैं, तब भार के मारे पहिये धँस जाते हैं, मानो धरती भी उस बोझ के आगे अपनी पीठ मरोड़ रही हो।

उस देश में सभी आवश्यक पदार्थ उपजते हैं, बान के खेतों में धान, महँकते बागों में पके फल, बाँगर भूमि में चना आदि अनाज, लताओं में फल, कंद मूल —जो मिट्टी के भीतर से खोदकर निकाले जाते हैं —आदि वहाँ पर होते हैं, जिन्हें कृषक उसी प्रकार बटोर लेते हैं, जिस प्रकार भ्रमर पुष्पों से मधु को एकत्र कर लेते हैं।

उस देश के सभी प्रान्तों में अन्न का सदाव्रत बड़ी धूम से चलता है, ब्राह्मणों को भोजन देने के उपरान्त गृहस्थजन अपने अतिथियों तथा बंधुओं के साथ स्वयं भोजन करते हैं, भोजन के पदार्थ में तीन श्रेष्ठ फल[1] (आम, कटहल और केला), त्रिविध रसमय दाल, उस दाल को दुनी देनेवाला घी, लाल लाल दही के टुकड़े, खाँड इत्यादि होते हैं और इन व्यंजनों से घिरा हुआ भात होता है।

भ्रमर उस प्रदेश में निरन्तर निवास करते हैं, क्योंकि वहाँ की कामिनियों के

१ तमिल देश के तीन प्रधान फल हैं—आम, कटहल और केले। इन्हीं तीन फलों का वर्णन तमिल साहित्य में प्रायः मिलता है।

पकज ममान मुख मडल पर जा काजल अकित रमणीय नयन ह, उन्हे व भ्रमरगण [illegible]
ओर उन्ही की सगति की कामना करते हुए सदा वही मॅडरात रहत ह ।

कामदव जिन पुरुषा को विचलित नही कर सकता, उन्हे भी [illegible]
का दृष्टि पात अ[illegible] ता है, उनके मनोज्ञ स्तन, मामने आ जाने पुरुषा का सिर [illegible]
तरह झुका दते ह, जैसे मालिक अपने नोकरो पर क्रोध करके उनका सिर नीचा कर [illegible]
उधर नारियल के पौदो से जा मधु धारा बहती है, उसे पीकर मोटे मीन मस्त [illegible] ।

धरती पर चलनेवाले काले बादला जैसी भैंसे, नदी के ठडे जल म [illegible]
हुई अपने बछडो को याद करती हे, तो उनके थनो से दध स्रावित होने लगता है, [illegible]
दध नदी के जल से मिलकर खेतो मप हुँचता है, तब उसी दुग्ध धारा [illegible]
शस्य बढ़ता है ।

वहाँ की अति समृद्ध पाक शालाओ मे बडे बडे भाडा म चावल पकाया जाता [illegible]
चावल धोने का पानी कल कल शब्द करता हुआ वहाँ से बहकर [illegible]
धान के खेता म पहुँचता हे और अकुरा को पुष्ट करता है ।

कूडे के ढेरो पर बैठे हुए और सिर पर कलॅगी से शोभायमान लाल [illegible]
अपने नखो से कूडे को कुरेदने है, तब उसमे से चमकती हुई मणियाँ बिखर जाती [illegible]
उन्हे जुगनू समझकर अपने घोसलो म लाकर रखती ह ।

अहीर तरुणियाँ उज्ज्वल और गाढे दही को अपने सुन्दर करा [illegible]
मथती ह, तब मथानी की ध्वनि रह रहकर जोर से उमड पडती है, उनके [illegible]
शख क नक्काशीदार सफेद कगन बाल उठते ह, और उनकी पतली [illegible]
लचक जाती ह ।

फुलवारिया म तात बोलत ह, पुष्पा म भ्रमर गाते ह, [illegible]
मधुर कलरव होता है, दानो लागा के घरा म अतिथिया [illegible]
ओरतें गृहस्थ को प्रशसा म गीत गाती रहती ह ।

भोली ओर काली आँखोवाली बालिकाएँ नदी [illegible]
भर भरकर ले आती ह ओर घर के आगन म उनम घरा [illegible]
बिखरे हुए मोती गुवाक (सुपारी) क फला म मिल जाते ह, और [illegible]
लोग उन मातिया का असार वस्तु समझकर फक देते ह ।

टढे सीगो और कठोर कपालवाले भेडो के बलवान [illegible]
लडते ह, तब उनके टकराने की कर्कश ध्वनि से [illegible] पवत [illegible]
बिजली कौध जाती है ।

पवतो के बीच अरण्या म जगली हाथिया का [illegible]
बनाकर उनम हाथियोके झुण्ड को—बच्चोवाली हथनिया स उन्ह अलग कर [illegible]
और जब उन मत्त हाथियो का सुदृढ शृखलाओं स वे वीर बाँधने लगते ह [illegible]
विकट कोलाहल होता है, उस कोलाहल को सुनकर सरोवर म [illegible]
करनेवाले मराल (हस) डरकर भाग खडे होत ह ।

पकन ममान सुख मडल पर जो काजल अकित रमणीय नयन ह, उन्ह न भ्रमरिया ।‌। ।
ओर उन्ही को सगति की कामना करते हुए सदा वही मॅडगात रन्त है।

कामन्व जिन पुरुषो को विचलित नही कर सकता, उन्ह भी ग । को ग ।।
का दृष्टि पात अ गीर नना न्ता हे उनके मनोज्ञ स्तन, मामने आनेवाल पुरुषा का ।
तरह झुका दते ह, जैसे मालिक अपने नौकरो पर क्रोध करके उनका मिर नीचे कर ।
उधर नारियल के घौदो से जो मधु धारा वहती है, उसे पीकर मोटे मीन मस्त प र ।

धरती पर चलनेवाले काल बादला जैमी भैसे, नदी के ठडे जल म गाता लगा।
हुई अपने बछडो को याद करती ह, तो उनके थना से दूध स्रवित होने लगता है, त ।
दूध नदी के जल मे मिलकर खेतो मप हुॅचता है, तब उसी दुग्ध धारा मे ग्चिकर धान के
शस्य वढ्ता है।

वहाॅ की अति समृद्ध पाक शालाओ म बडे बडे भाडा म चावल पकाया जाता
चावल धोने का पानी कल कल शब्द करता हुआ वहाॅ स बहकर समुद्र ।
धान के खेतो म पहुॅचता ह और अकुरो को पुष्ट करता है।

कूडे के ढेरा पर बैठे हुए और सिर पर कलॅगी से शाभायमान लाल मुर्ग
अपने नखो से कूडे को कुरेदने हैं, तब उसमे से चमकती हुई मणिया बिखर जाती ,
उन्हे जुगनू समझकर अपने घोमलो मे लाकर रखती ह।

अहीर तरुणियाॅ उज्ज्वल और गाढे दही को अपने सुन्दर कर ।
मथती ह, तब मथानी की ध्वनि रह रहकर जोर से उमड पडती है, उन ।
शख के नक्काशीदार सफेद कगन बोल उठते ह, और उनकी पतली कमर ।
लचक जाती हं।

फुलवारिया म तोते बोलत ह, पुष्पा म भ्रमर गात ह, नलाश ।
मधुर कलरव हाता है, दानो लागा क घरा म अतिथिया क भाजन ।
ओरत गृहस्थ को प्रशमा प गीत गाती रहता है।

भोली ओर काली ऑखोवाली बालिकाएँ नदी म मा ।
भर भरकर ले आती ह ओर घर के आगन म उनग घराैदे बनाा ।
बिखरे हुए मोती गुवाक (सुपारी) क फला म मिल जा ।
लोग उन मातियो को असार वस्तु समझकर फेक देत ह।

टढे मीगो और कठोर कपालवाले भेडा के बलवान ।
लडते ह, तव उनके टकराने की कर्कश ध्वनि से ।
बिजली कौंध जाती है।

पवतो के वीच अरण्या म जगली हाथिया का ।
बनाकर उनम हाथियो के झुण्ड को—बच्चोवाली हथिनिया म ।
और जब उन मत्त हाथियो को सुदृढ शृखलाओ से व वीर बा ।
विकट कोलाहल होता है, उम कोलाहल को सुनकर सरोवर म हंसिनो ।
करनेवाले मराल (हस) डरकर भाग खड होत ह।

किसान लोग जब भूमि में कन्द मूल खोदकर निकालते है, तब उन कन्दों के साथ कई श्रेष्ठ रत्न भी निकल पड़ते है, फलों के भार से झुकी हुई आम्रवृक्षों की डालियों से निरन्तर मधु धारा बहती रहती है, सदा कमल पुष्पों से प्रेम करनेवाले हंस 'पुन्ने' (नामक) पुष्पों से आकृष्ट होकर उनके पास पहुँच जाते हैं।

कृषक रमणियाँ 'करव' नृत्य (एक प्रकार का लोक नृत्य) करती हुई गाती है, उनके गायन का मधुर स्वर सुनकर ग्वालों के आँगन में बँधे हुए बछड़े, जो बाँसुरी का नाद सुनने के अभ्यस्त है, निद्रा निमग्न हो जाते है वहाँ की स्त्रियों के राग सुनकर खेतों की रखवाली करनेवाले कृषक बेसुध हो जाते है।

पहाड़ों पर उगे हुए बाँस, हवा के झोंके खाकर टकराने लगते है, उनकी चोट खाकर शहद के बड़े बड़े छत्तों से शहद बह निकलता है, ऊँची चट्टानों पर से गिरती हुई मधु की धारा ऐसी लगती है, मानो कोई विशाल सर्प चट्टानों से लटक रहा हो, यह मधु की धारा कुसुम पुष्पों से होकर सर में जा गिरती है, तो (शरभ) कीट उसे पीकर तृप्त होते है।

वहाँ की सुन्दरियाँ, जिनके विशाल नयन और अर्द्धचन्द्र सदृश ललाट है, वे विद्या एवं धन से सम्पन्न है, अत जो कोई दुःखी पुरुष उनके यहाँ आता है, उसे धन आदि देकर तृप्त करती है, वे सदा इस तरह के धर्म कर्मों में निरत रहती है, उनका अन्य कोई दैनिक कार्य नहीं है।

भोजनालयों में, जहाँ रोज अनागनत अतिथियों को भोजन दिया जाता है, अर्द्ध चन्द्राकार कटारों से काटी गई तरकारियाँ, दालों और मोती के दानों जैसे चावलों की बड़ी बड़ी राशियाँ लगी रहती है।

वहाँ के निवासियों की विभूतियों का वर्णन कौन कर सकता है? बड़ी बड़ी नावें विदेशों से अनन्त निधियाँ ला देती है, धरती शस्य के रूप में अनन्त समृद्धि देती है, खान श्रेष्ठ रत्न प्रदान करती है तथा उनके विभिन्न कुल उन्हें दुर्लभ सदाचार की शिक्षा देते है।

वहाँ कभी भी कोई पाप कृत्य नहीं होता, अत किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती, लोगों के चित्त विशुद्ध रहते है, अत किसी के मन में वैर या द्वेष भाव नहीं रहता, वहाँ के निवासी धर्म कृत्यों को छोड़ अन्य कोई कार्य नहीं करते, अत सदा प्रजा की उन्नति ही होती रहती है।

(उस देश में) नदियों के प्रवाह के सिवाय अन्य कोई अपना मार्ग छोड़कर नहीं चलता, नारियों की कुसुमपत्र लताओं से चित्रित (पुरुषों की) भुजाओं को छोड़कर अन्य किसी वस्तु का (धान की राशियों पर लगाये गये निशान आदि) चिह्न नहीं मिटता, रमणियों के कटि प्रदेश के अतिरिक्त अन्य कोई क्षुद्र नहीं होता, नारियों के पुष्पालंकृत घुँघराले और सुगंधित केशों को छोड़कर और कोई विक्षिप्त (बिखरा हुआ या पागल) नहीं दीखता।

अगरु का धूम, पाकशालाओं का धूम, गन्ने की भट्ठियों का धूम एवं वेद ध्वनि से गुंजायमान यज्ञशालाओं का धूम ये सब मिलकर मेघ बन जाते हैं और (अयोध्या के) गगन में फैल जाते है।

पकज ममान मुख मडल पर जो काजल अकित रमणीय नयन ह, उन्ह ज भ्रमरिया ... ओर उन्ही की सगति की कामना करते हुए सदा वही मॅडरात रहत है।

कामदव जिन पुरुषा को विचलित नही कर सकता, उन्ह भी ... का दृष्टि पात ... है उनके मनोज्ञ स्तन, सामने आ... पुरुषा ... तरह भुका दते ह, जैसे मालिक अपने नौकरो पर क्रोध करके उनका सिर नीचा ... उधर नारियल के घौदो से जो मधु धारा वहती है, उसे पीकर मोटे मीन मस्त पड़े रहते ... ।

धरती पर चलनेवाले काले वादलो जैमी भैंस, नदी के ठडे जल म गोता लगाते हुई अपने वछडो को याद करती है, तो उनके थना से दूध स्रवित होने लगता ..., ... दूध नदी के जल से मिलकर खेतो मप हुँचता है, तब उसी दुग्ध धारा से सिंचकर ... शस्य बढ़ता है।

वहाँ की अति समृद्ध पाक शालाओ म बडे बडे भाडो म चावल पकाया जाता ... चावल धाने का पानी कल कल शब्द करता हुआ वहाँ स बहकर ... धान के खेता म पहुँचता ह और अकुरो को पुष्ट करता है।

कूडे के ढेरो पर बैठे हुए और सिर पर कलॅगी से शोभायमान लाल ... अपने नखो से कूडे को कुरेदने हैं, तब उसमे से चमकती हुई मणिया बिखर जाती ... उन्हे जुगनू समझकर अपने घोसलो मे लाकर रखती है।

अहीर तरुणियाँ उज्ज्वल और गाढे दही को अपने सुन्दर ... मथती ह, तब मथानो की ध्वनि रह रहकर जोर से उमड पडती है, उनके ... शख के नक्काशीदार सफेद कगन ... उठत ह, और उनकी पतली ... लचक जाती है।

फुलवारिया म तोते बोलत ह, पुष्पा म भ्रमर गात ह ... मधुर कलरव होता है, दानो लोगा क घरो म अतिथियो क भोजन ... औरते गृहस्थ की प्रशसा म गीत गाती रहती है।

भोली ओर काली आँखोवाली बालिकाए नदी ... भर भरकर ले आती ह और घर के आगन म उनम ... बिखरे हुए मोती गुवाक (सुपारी) क फलो म मिल जाते ह, ... लोग उन मातियो को असार वस्तु समझकर फेंक दे ह।

टेढे सीगो और कठोर कपालवाले भेडा के ... लडत ह, तब उनके टकराने की कर्कश ध्वनि ... बिजली कौंध जाती है।

पवतो के बीच अरण्यो म जगली हाथिया को ... बनाकर उनम हाथियो के झुण्ड को—बच्चोवाली हथनिया ... और जब उन मत्त हाथिया को सुदृढ शृखलाओं स वे वीर बाधने लगत ह, तब ... विकट कोलाहल होता है, उस कोलाहल को सुनकर सरोवर म हसिनी के साथ ... करनेवाले मराल (हस) डरकर भाग खडे होते है।

किसान लोग जब भूमि से कन्द मूल खोदकर निकालते हैं, तब उन कन्दों के साथ कई श्रेष्ठ रत्न भी निकल पड़ते हैं, फलों के भार से झुकी हुई आम्रवृक्षों की डालियों से निरन्तर मधु धारा बहती रहती है, सदा कमल पुष्पों में भ्रमण करनेवाले हंस 'पुन्ने' (नामक) पुष्पों से आकृष्ट होकर उनके पास अटक जाते हैं।

कृषक रमणियाँ 'कुरव' नृत्य (एक प्रकार का लोक नृत्य) करती हुई गाती हैं, उनके गायन का मधुर स्वर सुनकर शाला के आँगन में बँधे हुए बछड़े, जो बाँसुरी का नाद सुनने के अभ्यस्त हैं, निद्रा निमग्न हो जाते हैं। वहाँ की स्त्रियों के राग सुनकर खेतों की रखवाली करनेवाले कृषक बेसुध हो जाते हैं।

पहाड़ों पर उगे हुए बाँस, हवा के झोंके खाकर टकराने लगते हैं, उनकी चोट खाकर शहद के बड़े बड़े छत्तों से शहद बह निकलता है, ऊँची चट्टानों पर से गिरती हुई मधु की धारा ऐसी लगती है, मानो कोई विशाल सर्प चट्टानों से लटक रहा हो, यह मधु की धारा कुमुद पुष्पों से भरे सर में जा गिरती है, तो (शंख) कीट उसे पीकर तृप्त होते हैं।

वहाँ की सुन्दरियाँ, जिनके विशाल नयन और अर्द्धचन्द्र सदृश ललाट हैं, वे विद्या एवं धन से सपन्न हैं, अतः जो कोई दुःखी पुरुष उनके यहाँ आता है, उसे धन आदि देकर संतुष्ट करती हैं, वे सदा इस तरह के धर्म कर्मों में निरत रहती हैं, उनका अन्य कोई दैनिक कार्य नहीं है।

भोजनालयों में, जहाँ रोज अनगिनत अतिथियों को भोजन दिया जाता है, अर्द्धचन्द्राकार कटारों से काटी गई तरकारियों, दालों और मोती के दानों जैसे चावलों की लम्बी बड़ी राशियाँ लगी रहती हैं।

वहाँ के निवासियों की विभूतियों का वर्णन कौन कर सकता है? बड़ी बड़ी नावें विदेशों से अनन्त निधियाँ ला देती हैं, धरती शस्य के रूप में अनन्त समृद्धि देती है, खान श्रेष्ठ रत्न प्रदान करती हैं तथा उनके विभिन्न कुल उन्हें दुर्लभ सदाचार की शिक्षा देते हैं।

वहाँ कहीं भी कोई पाप कृत्य नहीं होता, अतः किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती, लोगों के चित्त विशुद्ध रहते हैं, अतः किसी के मन में वैर या द्वेष भाव नहीं रहता, वहाँ के निवासी शुभ कृत्यों को छोड़ अन्य कोई कार्य नहीं करते, अतः सदा प्रजा की उन्नति ही होती रहती है।

(उस देश में) नदियों के प्रवाह के सिवाय अन्य कोई अपना मार्ग छोड़कर नहीं चलता, नारियों की कुंकुमपत्र रेखाओं से चित्रित (पुरुषों की) भुजाओं को छोड़कर अन्य किसी वस्तु का (धान की राशियों पर लगाये गये निशान आदि) चिह्न नहीं मिटता, रमणियों के कटि प्रदेश के अतिरिक्त अन्य कोई क्षुद्र नहीं होता, नारियों के पुष्पालंकृत घनवाले और सुगंधित केशों को छोड़कर और कोई विक्षिप्त (बिखरा हुआ या पागल) नहीं दीखता।

अगरु का धूम, पाकशालाओं का धूम, गुड़ की भट्ठियों का धूम एवं वेद ध्वनि से गुंजायमान यज्ञशालाओं का धूम ये सब मिलकर मेघ बन जाते हैं और (अयोध्या के) गगन में फैल जाते हैं।

उपस्थित रहते हैं, विवाह मंगल में व्यस्त युवकों के घरों में उस समय के अनुकूल मंगल वाद्य बजते रहते हैं, और, संगीत कला निपुण 'बाण' (एक गायक जाति) लोगों के घरों में घुमावदार 'विक्ल' (एक प्रकार की वीणा) वाद्य विद्यमान रहते हैं।

वहाँ पुष्प मालाएँ शीतल नव मधु बरसाती हैं, जल पात उत्कृष्ट रत्नों को (दिशाओं से लाकर) बरसाते हैं, हवाएँ प्राणों को स्थिर रखनेवाला अमृत बरसाती हैं और कवियों की वाणी कर्ण पथ मधुर कवित्व रस बरसाती है।

पुष्पों से अलंकृत केशों और मुक्ता मालाओं से भूषित वक्षों से अतिरमणीय दिखनेवाली कामिनियों को उद्यानों में देखकर बड़े कलापवाले मयूर भ्रम में पड़ जाते हैं कि वे भी मयूरी हैं और इसलिए युवकों के मन के जैसे ही वे मयूर भी उनके पीछे पीछे चलने लगते हैं।

उस देश में दान का महत्त्व नहीं, क्योंकि वहाँ कोई भी याचक नहीं है, शूरता का महत्त्व नहीं, क्योंकि वहाँ युद्ध नहीं होते, सत्यवचन का महत्त्व नहीं, क्योंकि वहाँ कोई कभी असत्य भाषण नहीं करता, और, पंडितों का भी महत्त्व नहीं, क्योंकि वहाँ के सभी लोग बहुश्रुत तथा ज्ञानी हैं।

तिल, जौ, मासा, कुलथी आदि धान्यों से भरी हुई गाड़ियाँ और नमक के खेतों में नमक लादकर लानेवाली गाड़ियाँ, वहाँ की गलियों में पहुँचकर एक दूसरे की कतारों में इस प्रकार खो जाती हैं कि उन्हें अलग अलग पहचानना कठिन हो जाता है।

वहाँ के विभिन्न प्रान्तों में उत्पन्न होनेवाले खाँड, शहद, दही, मद्य आदि पदार्थ दूसरे प्रान्तों में यों स्थानान्तरित होते रहते हैं, जैसे मोक्ष प्राप्ति के उपाय से वंचित प्राणी अपने किये कर्मों के फल भोगते हुए विभिन्न जन्म ग्रहण कर भटकते रहते हैं।

यज्ञों को देखने के लिए आई हुई जन मंडली और मेलों को देखने के लिए आई हुई जन मंडली गाना, संगीत और बाँसुरी की ध्वनियों से प्रतिध्वनित होनेवाली गलियों में इस तरह मिल जाती है जैसे अलग अलग दिशाओं से बहती हुई दो नदियाँ एक स्थान पर आकर मिल जाती हों।

शंख ध्वनि, मृदंग का नाद, पटहों का रव आदि स्वर, खेतों में बड़े बड़े बैलों को हाँकनेवाले कृषकों की हाँक में समा जाते हैं।

माताएँ अपने नन्हें बच्चों को दूध पिलाकर अपने हाथ से अन्न उठाकर खिलाती हैं, उन बच्चों के मुँह से लार उनके वक्ष पर गिरती है, जो (विष्णु भगवान के) पाँच आयुधों के चिह्नोंवाली माला पड़ी है, अन्न उठाते समय उन नारियों के मुकुलित होनेवाले कर यों दीखते हैं, जैसे चन्द्र की कांति में पंकज मुकुलित हो रहे हों।

वहाँ के लोग शीलवान हैं, इसलिए उनका सौन्दर्य नित नवीन रहता है, वे सत्यवादी हैं, इसलिए वहाँ नीति स्थिर रहती है, वहाँ स्त्रियों का आदर होता है, इसलिए धर्म सुरक्षित रहता है, और, वर्षा समय पर होती है, क्योंकि वहाँ की स्त्रियाँ पवित्र आचरणवाली हैं।

उस विशाल कोशल देश की, जो उपवनों से घिरा हुआ है सीमा का पता कोई

भी नहा लगा मकता, मरयू नदी अपनी अनन्त शाखा प्रशाखा ... नी ...
को खोज रही ह, फिर भी उसे पहचान नही पाई है।

यह काशल देश इतना पुण्यभूयिष्ठ है कि यदि प्रम ...
जलराशि भूमि पर चढ आवे, तो भी उस देश की काई हानि न ...
का वर्णन करने के पश्चात् अब हम अयोध्या नगर का वणन करग। ( )

अध्याय ३

नगर पटल

अयोध्या नगरी सस्कृत भाषा क महाकावियो तथा विद्वानो द्वारा ...
गभित, मधुर शब्दो म वणित हुई है, जिस स्वगलाक की प्राप्ति ...
के निवासी तपस्या म लीन रहते ह, उम स्वग के निवासी भी ...
प्राप्त करने की कामना करते रहते ह।

क्या वह अयोध्या नगरी भूदवी का मुख है या उसका ...
नयन है? उसके स्तनो पर सुशोभित मनोहर रत्नहार है ...
का निवास है?

क्या वह नगरी लक्ष्मी देवी का आवास भूत अति सुन्दर कमल ...
स्वणमजूषा हे, जिसके भीतर विष्णु भगवान् क वक्ष पर प्रकाशित होनेवाले ...
जेसे सुन्दर रत्न रखे हुए ह? अथवा वह देवलोक से भी ऊँचा वैकुण्ठधाम ...
यह वह स्थान हे, जहाँ प्रलय के समय सारी सृष्टि समा जाती है। इस नगर ...
और क्या कहे?

अपने अर्धांग म उमा देवी का स्थापित करनेवाले (परमेशिव) ...
(श्री और भूमि) के पति अतुलनीय (विष्णु) भगवान तथा ब्रह्मा ... (...) ...
भी इस अयोध्या की समानता करनेवाला दूसरा नगर नहा देखा। ...
इसके उपमान हो मकनेवाले एक नगर को देखने की प्रबल इच्छा ...
निर्निमेष नयनो से अभी तक अतरिक्ष म घूम रह है अन्यथा उनके ...
का दूसरा कारण क्या हो सकता है?

ब्रह्मदेव ने बहुप्रशसित इस रमणीय अयोध्यापुरी का निमाण ...
वज्रायुध धारण करनेवाले (देवेन्द्र) की नगरी अमरावती ...
(अलकापुरी) की सृष्टि करके पहले ही नगर निमाण का अभ्यास ...
आदि देवशिल्पी भी इस नगर की शोभा देखकर लज्जित हो ...
अपनी हार स्वीकार कर सकल्पमात्र से सृष्टि करनेवाली अपनी शक्ति ...
मेघ मडल को छूनेवाले इन प्रासादो का वर्णन कैसे किया जाय?

अपरिमेय वेदो म यह अर्थ प्रतिपादित हुआ है कि (...) ...

कर्म करते है, व परलोक में आनन्द प्राप्त करते है'- ऐसे धर्म का पालन करते हुए इस पृथ्वी पर श्रीरामचन्द्र के अतिरिक्त और किन्होंने बड़ा तप किया है ? धर्म के ज्ञाता, अनिर्वचनीय गुणों से भूषित (रामचन्द्र) ने जिस नगर में रहकर सात लोकों की रक्षा की, उस अयोध्या से भी बढ़कर सुखप्रद स्थान दूसरा कोई हो सकता है ऐसा मानना भी क्या उचित है ?

महान करुणा (भगवान की करुणा) और धर्म की सहायता से पंचेन्द्रिय रूपी अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके, उत्तरोत्तर बढ़नेवाली तपस्या और ज्ञान प्राप्त करनेवाले महापुरुष जिस भगवान् की शरण में जाते हैं, वह अरुण नयनवाले विष्णु इस नगर में अवतीर्ण हुए और (सीता देवी के रूप में रहनेवाली) लक्ष्मी के साथ यहाँ रहकर अनन्त काल तक लोक पालन करते रहे, तो इस अयोध्या की समता कर सकनेवाला स्वर्णमय नगर देवलोक में भी कहाँ मिल सकता है ?

सभी राज्यों के नरेश उसी अयोध्या में एकत्र रहते हैं, सभी श्रेष्ठ आभरण और दुर्लभ रत्न वहीं पर होते हैं, वहीं जंजीरों से बँधे मत्त गज, तुरग, रथ आदि इस संसार की सभी श्रेष्ठ वस्तुएँ वहीं पर होती हैं, मुनि, देव, यक्ष, विद्याधर आदि सब उसी नगर में जमा रहते हैं, तो उस नगर की उपमा किसके साथ दी जा सकती है ? ऐसे नगरी के विषय में क्या मुझ जैसा व्यक्ति कुछ कह सकता है ?

[नीचे के छह पद्यों में नगर के प्राचीर का वर्णन है ।]

हिमावृत, अति उन्नत पर्वत श्रेणियों में भी शिल्प शास्त्र के अनुसार बने चतुष्कोण आकारवाले पर्वत इस सृष्टि में कहीं नहीं है, अतः (अयोध्या के) उस प्राचीर का उपमान भी कहीं नहीं है, वे स्वर्णमय प्राचीर उन विद्वानों के उन्नत ज्ञान के सदृश हैं, जिन्होंने बड़ी तत्परता के साथ सब शास्त्रों का अध्ययन किया हो ।

गंभीर ज्ञान से भी उसका स्वरूप तथा अंत नहीं जाना जा सकता, अतः वह प्राचीर वेदों के समान है, उसके अति उन्नत शिखर ऊपर लोक तक पहुँचते हैं, अतः वह देवों के समान है, पंचेन्द्रिय तुल्य बलवान यंत्रों को अपने वश में रखने के कारण वह मुनियों के समान है, रक्षा करने में वह [illegible] कन्या (दुर्गा देवी) के समान है, शूलायुधों को धारण करने के कारण वह कालिका के समान है, अपनी विशालता के कारण वह सभी महान् पदार्थों के समान है, किसी के लिए भी अगम्य (पहुँच के बाहर) होने के कारण वह स्वयं भगवान् के समान है ।

ऊपर उठा हुआ वह प्राचीर अंतरिक्ष में पहुँच गया है, मानो वह देखना चाहता है कि क्या देवताओं का निवास (स्वर्गपुरी) इस [illegible] से भी अधिक सुन्दर है, [illegible] इस नगर में मधुर स्वरवाली ऐसी असंख्य रमणियाँ हैं जिनके पद [illegible], लाक्षा रस से अंकित श्रेणी में [illegible] चन्द्रा के सदृश हैं, पद रक्त कमल [illegible] हैं, कटियाँ नाल [illegible] हैं, उरोज छोटे नारियल के समान हैं तथा जिनकी भुजाएँ [illegible] कोमल बाँस के सदृश सुकुमार हैं ।

वह प्राचीर उस नगर के चक्रवर्ती के ही समान है, क्योंकि वह संसार के मापकदंड से युक्त है (चक्रवर्ती [illegible] संसार की रक्षा करता है, उसी प्रकार प्राचीर

धरती को भेदकर जो परिखा बनाई गई है, उसके भीतर बड़े बड़े मगर निवास करते हैं और ऊपर उठ उठकर इस प्रकार डुबकियाँ लगाते रहते हैं, जिस प्रकार अतिगभीर समुद्र के मध्य, अगम्य मद से डूबे हुए हाथी हों।

वे मगर, चोरों करवालों की जैसी अपनी पूँछों को हिलाते हुए ज्वाज्वल्यमान नेत्रों से चिनगारियाँ उगलते हुए, एक दूसरे के साथ चढ़ा ऊपरी करते हुए आगे बढ़ते हैं, तो ऐसा लगता है, जैसे युद्धरंग में क्रोधोन्मत्त राक्षस टूट पड़े हों।

वह परिखा चक्रवर्ती की सेना की जैसी है, क्योंकि वहाँ उड़ते हुए हंस पक्षी श्वेत छत्रों के सदृश हैं, वहाँ के भयंकर मगर, ग्रहों से घिरे हुए पर्वताकार हाथियों के सदृश हैं, नालदंडों के साथ स्पंदित होनेवाले कमल पुष्प घोड़ों के सदृश हैं, तथा वहाँ के मीन त्रिशूल, करवाल आदि शस्त्रों के सदृश हैं।

उस खाई के किनारे पर चाँदी के चबूतरे बने हैं और उन चबूतरों के मध्य फर्श पर स्वर्ण और स्फटिक खंड बिछे हैं, इस कारण, देवताओं के लिए भी यह असंभव है कि वे उस स्वच्छ धरती और उस खाई के स्वच्छ जल को पृथक् पृथक् पहचान सकें।

विचार करने पर ऐसा लगता है कि उस अति विशाल तथा दीर्घ परिखा रूपी समुद्र के निकट फैले हुए वनों को, समुद्र के निकट स्थिर होकर पड़े हुए घनीभूत अंधकार कह सकते हैं, वे उपवन उस स्वर्णमय प्राचीर की नीले रंग की साड़ी के समान हैं।

उस नगर के चारों दिशाओं में चार नगर द्वार हैं, जो दिगंतों में रहनेवाले गजों के समान खड़े हैं, पूर्वकाल में स्वर्गलोक को नापनेवाले त्रिविक्रम के चरण से भी अधिक उन्नत होकर, समस्त संपत्तियों से भरी इस धरती पर रहनेवाले प्राणियों को सन्मार्ग पर चलाते रहने के कारण वे चारों नगर द्वार चारों वेदों की समानता करते हैं।

कबूतरी के बुलाते रहने पर भी कबूतर उसके पास जाकर प्यार से उसका आलिंगन नहीं करता, किंतु वहाँ पर निर्मित एक कपोती की प्रतिमा के पास (उसे सजीव समझकर) मुग्ध हो खड़ा रहता है। यह देखकर कबूतरी रूठकर अकलंक स्वर्णमय स्वर्गलोक में स्थित, पुण्यवान् लोगों के निवासभूत कल्पक उद्यान में जा छिपती है।

[यहाँ से तीन पद्यों में नगर के गोपुर (शिखर) का वर्णन किया गया है।]

कटे हुए पत्थरों को चुनकर भित्तियाँ बनाई गई हैं, जिनके ऊपर स्फटिक पत्थर लगाये गये हैं, उनके ऊपर चमकते हुए स्वर्ण पत्र बिछाये गये हैं, जिनके मध्य कांति बिखेरते हुए विविध रत्न जड़े हुए हैं, उन भित्तियों के ऊपर रुचिर रजतमय आ. .री छतें रखी गई हैं, जिनके ऊपर वज्रमय स्तंभ खड़े कर दिये गये हैं।

उन स्तंभों के ऊपर मरकत जड़ी हुई छतें बिछाई गई हैं, उन छतों पर हीरक पत्थर चुने गये हैं, स्वर्ण पत्रों और विद्युत् के समान चमकते रत्नों से निर्मित सिंह की प्रतिमाएँ यत्र तत्र रखी गई हैं, उन सिंहों के ऊपर गोमेदक की छत बिछाई गई है।

उस छत के ऊपर एक दूसरी मंजिल निर्मित है, इस प्रकार सात मंजिल बनी थी, जो इस भाँति विशाल थीं, मानों सप्तलोकों के निवासियों के रहने के लिए ही बनाई गई हों,

भी अपने भीतर दंडों से युक्त है), वह शत्रुओं के मुकुटधारी शिर [illegible]
(राजा अपने शस्त्रों से और प्राचीर अपने भीतर लगे [illegible]
करता है।), वह मानव शास्त्र के अनुसार स्थित है (राजा [illegible]
चलन है और प्राचीर मानवों के शिल्प शास्त्र के अनुसार बनता [illegible]
(नगर की) सुरक्षा करता है कि कोई (शत्रु) आँख उठाकर भी [illegible]
वह अत्यन्त बलिष्ठ है, वहाँ धनुष, तलवार आदि का अभ्यास होता [illegible]
तंत्र—(राजतंत्र तथा सेना का प्रबंध) रहता है, वह शत्रुओं [illegible]
(ऊँचाई) से युक्त है तथा चक्र—(शासन चक्र तथा यंत्र) चलाता [illegible]

उस प्राचीर में निष्ठुर त्रिशूल, प्राणघातक खड्ग, धनुष [illegible]
तोमर, मूसल, मेघ के गर्जन के सदृश भयंकर 'कवणकल' (पत्थर [illegible])
अनेक कल पुरजे और यंत्र लगे हैं, जो मशकों का, पक्षिराज (गरुड़) का [illegible]
अहित विचारवाले के मन को भी भग्न करनेवाले हैं।

अष्ट दिशाओं में भी अंधकार को हटाकर सुन्दर रूप में प्रकाश [illegible]
के कुल में उत्पन्न जो राजा हैं, वे आभरणों की अपेक्षा यश [illegible]
माननेवाले हैं, अतः वे अच्छे चरित्रवाले बनकर संसार के प्राणियों [illegible]
उनका शासन चक्र, अनुपम वेत्रदंड तथा आज्ञा, अष्ट दिशाओं में तथा ऊपर [illegible]
फैलकर रक्षा करते हैं। इसलिए, उस नगर के चारों ओर जो प्राचीर बना [illegible]
अलंकार मात्र है।

[नीचे के आठ पद्यों में परिखा (खाई) का वर्णन है।]

अब हम जिस परिखा (खाई) का वर्णन करने लगे हैं, वह उस [illegible]
को इस प्रकार घेरे हुए पड़ी है, जिस प्रकार उन्नत चक्रवाल पर्वत को [illegible]
भरा सागर पड़ा रहता है। वह (परिखा) वारनारी के मन के समान [illegible]
के समान स्वच्छता हीन (गंदी), कुलीन कन्याओं के जघन तट के समान [illegible]
भी अगम्य होकर सुरक्षित, तथा ऐसे मगरों से भरी है, जो (लोगों को) [illegible]
बुरे मार्ग पर खींच ले चलनेवाली इंद्रियों के समान प्रबल हैं।

गगन में संचरण करनेवाला मेघ समुदाय, उस विशाल तथा [illegible]
परिखा को देखकर समझता है कि यही भयंकर समुद्र है और [illegible]
लेता है फिर ऊपर उठकर उस प्राचीर को देखकर समझता है कि [illegible]
पर्वत है और उसी पर अपनी जलधाराएँ बरसाने लगता है।

ऊँचे प्राचीर के बाहर स्थित विशाल परिखा में अपनी सुरभि [illegible]
फेंकता हुआ पंकज वन खिला हुआ है, वह ऐसा लगता है, मानो [illegible]
वदनों से जो कमल पहले परास्त हो गये थे, वे अब अपने समरत [illegible]
करने के लिए आ जुटे हों और उस प्राचीर को घेरकर पड़े हों।

बड़ी कुशलता के साथ लगाये गये यंत्रों से शोभित उस प्राचीर के [illegible]

धरती को भेदकर जो परिखा बनाई गई है, उसके भीतर बड़े बड़े मगर निवास करते हैं और ऊपर उठ उठकर इस प्रकार डुबकियाँ लगाते रहते हैं, जिस प्रकार अतिगंभीर समुद्र के मध्य अत्यन्त मद से डूबे हुए हाथी हों।

वे मगर, चोरों करवालों की जैसी अपनी पूँछों को हिलाते हुए जाज्वल्यमान नेत्रों से चिनगारियाँ उगलते हुए, एक दूसरे के साथ घेरा ऊपरी करते हुए आगे बढ़ते हैं, तो ऐसा लगता है, जैसे युद्धरंग में क्रोधोन्मत्त राक्षस टूट पड़े हों।

वह परिखा चक्रवर्ती की सेना की जैसी है, क्योंकि वहाँ उड़ते हुए हंस पक्षी श्वेत छत्रों के सदृश हैं, वहाँ के भयंकर मगर, ग्राहों से घिरे हुए पर्वताकार हाथियों के सदृश हैं, नालदंडों के साथ स्पंदित होनेवाले कमल पुष्प घोड़ों के सदृश हैं, तथा वहाँ के मीन त्रिशूल, करवाल आदि शस्त्रों के सदृश हैं।

उस खाई के किनारे पर चाँदी के चबूतरे बने हैं और उन चबूतरों के मध्य फर्श पर स्वर्ण और स्फटिक खंड बिछे हैं, इस कारण, देवताओं के लिए भी यह असंभव है कि वे उस स्वच्छ धरती और उस खाई के स्वच्छ जल को पृथक् पृथक् पहचान सकें।

विचार करने पर ऐसा लगता है कि उस अति विशाल तथा दीर्घ परिखा रूपी समुद्र के निकट फैले हुए वनों को, समुद्र के निकट स्थिर होकर पड़े हुए घनीभूत अंधकार कह सकते हैं, वे उपवन उस स्वर्णमय प्राचीर की नीले रंग की साड़ी के समान हैं।

उस नगर के चारों दिशाओं में चार नगर द्वार हैं, जो दिगंतों में रहनेवाले गजों के समान खड़े हैं, पूर्वकाल में स्वर्गलोक को नापनेवाले त्रिविक्रम के चरण से भी अधिक उन्नत होकर, समस्त संपत्तियों से भरी इस धरती पर रहनेवाले प्राणियों को सन्मार्ग पर चलाते रहने के कारण वे चारों नगर द्वार चारों वेदों की समानता करते हैं।

कबूतरी के बुलाते रहने पर भी कबूतर उसके पास जाकर प्यार से उसका आलिंगन नहीं करता, किंतु वहाँ पर निर्मित एक कपोती की प्रतिमा के पास (उसे सजीव समझकर) मुग्ध हो खड़ा रहता है। यह देखकर कबूतरी रूठकर अकलंक स्वर्णमय स्वर्गलोक में स्थित, पुण्यवान् लोगों के निवासभूत कल्पक उद्यान में जा छिपती है।

[यहाँ से तीन पद्यों में नगर के गोपुर (शिखर) का वर्णन किया गया है।]

कटे हुए पत्थरों को चुनकर भित्तियाँ बनाई गई हैं, जिनके ऊपर स्फाटिक पत्थर लगाये गये हैं, उनके ऊपर चमकते हुए स्वर्ण पत्र बिछाये गये हैं, जिनके मध्य कांति बिखेरते हुए विविध रत्न जड़े हुए हैं, उन भित्तियों के ऊपर रुचिर रजतमय आदि की छतें रखी गई हैं, जिनके ऊपर वज्रमय स्तंभ खड़े कर दिये गये हैं।

उन खंभों के ऊपर मरकत जड़ी हुई छत बिछाई गई हैं, उन छतों पर हीरक पत्थर चुने गये हैं, स्वर्ण पत्रों और विद्युत् के समान चमकते रत्नों से निर्मित सिंह की प्रतिमाएँ यत्र तत्र रखी गई हैं, उन सिंहों के ऊपर गोमेदक की छत बिछाई गई है।

उस छत के ऊपर एक दूसरी मंजिल निर्मित है, इस प्रकार सात मंजिल बनी थी, जो इस भाँति विशाल थीं, मानों सप्तलोकों के निवासियों के रहने के लिए ही बनाई गई हों,

शिल्प शास्त्र के अनुसार निर्मित वह स्वर्ण पत्रों से आवृत गोपुर ...
सप्त लोकों तक फेंकता है, उस गोपुर पर माणिक्य के कलश ...
लगता है, मानो भूमिदेवी को मुकुट पहनाया गया हो।

धवल प्रासाद, जिनपर सफेद कौड़िया ...
गई है और जो इतने उज्ज्वल है कि उनके सम्मुख ...
मानो भयंकर प्रभंजन के चलने से क्षीर सागर से उठती तरंगें ...

(उन धवल सौधों के उपरिभाग में) ...
लिए दरबे (कबूतरों के आवास) बने हुए हैं, ...
प्रासाद पर ये सुनहले तारे ऐसे लगते हैं, मानो हिमाचल ...
प्रभातकालीन सुनहली किरणों के पुञ्ज पड़े हों।

(उस नगर में) इस प्रकार के असंख्य ... प्रासाद ...
खंभों के मस्तकों पर मरकत मय छतों को सुचारु रूप ...
दीखनेवाले चित्र अंकित किये गये हैं, वे प्रासाद ...
देखकर विस्मित हो जाते हैं।

(उस नगर में) ऐसे अनेक सौध हैं, जिनके चन्द्रकान्त ...
खड़े करके, उनके प्रवालमय मस्तकों पर रक्तवर्ण के माणिक्य ...
जिनकी दीवारें इन्द्रनील रत्नों से जड़ी हैं।

वे प्रासाद ऐसे हैं कि उनके खंभों के पाद कमल ...
सर्पों को छूनेवाले हैं, अतिमनोहर दर्शनीय अलंकारों से भरे ...
स्थान) से युक्त हैं, बाहर से सोने के उपकरणों से अलंकृत ... (...)
नारियों की तुलना करते हैं।

(वारनारियाँ) जिनके पाद कमल के समान ... (...)[1]
का आलिंगन करती हैं, सुन्दर अलंकारों से सुशोभित ...
होता है, पर बाहर स्वर्णाभरणों से भूषित रहती हैं।

उन मनोहर प्रासादों के भीतर जानेवाले ...
निर्निमेष नयनों से उसे देखते रह जाते हैं और जब ...
पड़ती है, तब वे देवों के समान दीखते हैं, अतः अपनी ...
पहुँचे हुए वे प्रासाद उन दिव्य विमानों के जैसे ही हैं, जो ...
जाते हैं।

वे प्रासाद, जो मनोहर आभरण भूषित रमणियाँ और माला ...
और धर्म मार्ग से कभी विचलित न होनेवाले (गृहस्थों) के आगार ...
अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु से नहीं बने हैं, वे अपनी कान्ति ... सूर्य ...

गगन तक उन्नत, अपार संपत्ति से युक्त, अति प्रसिद्ध तथा ...

१ तमिल में 'चेट' शब्द के दो अर्थ होते हैं—(१) शेषनाग, ( ) ...
दोनों, चेटों को आलिंगित करते हैं।

खरोच खरोचकर गड्ढ बना दत ह, जिसस मनोहर राजकुमारा का ... (ऊबड खाबड) हो जाता ह, फिर (खेलत हुए राजकुमारो के ...) सुगंध चूर्णो से वे सब गड्ढे पट जात ह।

युवतियाँ गेंद खेलती ह, तब उनके आभरणो म मोती गिर गिर ... जाते ह, उन गिर हुए मोतियो को असख्य परिजन बुहार ... रहते ह, इस प्रकार एकत्र मोतियो की राशियाँ शीतल काति बिखरती ... मद बना देती हैं।

नृत्यशालाओ म सुन्दरियाँ नृत्य करती ह, उनके ... व्यक्तियो के हृदयो को खात ह (अर्थात् उनके हृदयो पर चोट करत ...) ... के प्राण, उन रमणियो की कटि के समान ही क्षीण हान लगत है और (... रमणियो के प्रति) मोह बढ़ने लगता है।

कुछ उपवन सद्याविकसित पुष्पो स मधु प्रवाहित करत ... करने की इच्छा से दक्षिण पवन और भ्रमर मद मद गति स (उन उपवनो म) प्रवेश ... उनके प्रविष्ट हात ही विरह स पीडित रमणियो क तप्त हुए ... कृश ...

वक्र आकृतिवाली मकर वीणा से उठनेवाले मधुर स्वर (रमणियो के) ... संगीत के साथ ध्वनित हात रहत हैं, उस संगीत के अनुकूल ही चर्म स ढके (मृदग आदि) वाद्य बज उठत ह, (उस संगीत को सुनकर) रमणियो के साथ खेलत रहनेवाले शुक ... बद कर सोने लगते ह।

गाँठदार धनुष से युक्त ललाट (अर्थात्, सुपुष्ट भौहो स सुशोभित) और ... के समान लाल अधर, इन (दोनो) स शोभायमान सुन्दरियो के घन कमल पुष्प सदृश चरणो के आघात पाकर, जिनपर मृदुल महावर आदि से अलकरण किया गया है, (पुरुषो की) बलिष्ठ भुजाएँ लाल हो उठती ह।

उस नगर म, जहाँ (नारी मणियो की सुन्दर काति के कारण) ... होना भी कठिन है, मन के द्वारा वदनीय (सद्गुणवती) युवतियो के ... शरीर की काति को देखने की इच्छा से ही चित्रो म अकित प्रतिमाएँ भी ... रहती ह।

शीतल कमल पुष्प पर निवास करनेवाली (लक्ष्मी) देवी के ... सदृश बने हुए (अयोध्या के) प्रासादो म अधकार को हटाता हुआ व्यापक काति पुज क्या पुष्ट शिखाओ से युक्त घृत दीपो से निकलता है, या रत्न दीपो स निकलता है ... सुन्दरियो के शरीर से ही निकलता ह।

नृत्य म कुशल युवतियाँ, मदल ताल, संगीत आदि के अनुरूप शास्त्र सम्मत ढग स, विविध पदगतियाँ दिखाती ह, उनकी पद गतियो का विश्लेषण करके ... समझानेवाले, उन रमणियो के मजीर (पायल) ही नहीं, वहाँ के अश्व भी हैं।[१]

१ वहा के अश्व भी उनकी पदगति का अनुकरण करके नाचने लगते हैं।

(वहाँ की रमणियो के मुख मंडल पर) मदहास उत्पन्न होते रहते है, (उनको देखकर) कामुको के मन मे काम वेदना उत्पन्न होती रहती है, इतना ही नही, (उन रमणियो के) मृदु स्तनों पर मुक्ताहार और रक्तस्वण के हार निरतर पड रहते हैं, जिस कारण उनकी कटियाँ दिन दिन क्षीण होती रहती हैं।

अपने अपने स्थानो मे निरतर नशे मे चूर रहनेवाले तथा मनोहर गतिवाले बाल राजहंस है, कमल पुष्प है, तडागो मे स्थित मीन है, भ्रमरियो से युक्त भ्रमर हैं, पुष्प केसरो का आस्वाद लेनेवाले मत्त गज हैं, और इनके अतिरिक्त रमणियो के नेत्र है।

पर्वत की समता करनेवाले मत्तगजो से, जिनके भय से आँखो से आग उगलनेवाले सिंह भी सिंहनियो के साथ पर्वत की कंदराओ मे (छिपे) रहते हैं, त्रिविध मदजल का प्रवाह ज्यो ज्यो बहता है, त्यो त्यो भूमि भी गहरी होती जाती है, उस (मदजल) से जो कीचड उत्पन्न होता है, उसमें ऊँची ध्वजावाले सुदृढ रथ भी धँस जाते हैं।

अपने को अलंकृत करनेवाले जन अपने जिन पुष्पहारो को उतारकर फेक देते है, वे नर्तनशील रमणियो के नूपुरो मे उलझ जाते है, अपने प्रियतम के साथ विहार मे मग्न होकर सुन्दरियाँ अपने स्तनो पर से जिन चन्दन आदि के लेपो को उतारकर फेक देती है, उन लेपो के कारण मार्ग पर चलनेवाले लोग फिसल जाते है।

अश्व, कभी न थकनेवाले अपने खुरो से धरती को कुरेदते रहते है, जिससे धूलि उठकर (उन अश्वो के रत्नालंकारो और सवारो के रत्नाभरणो के) रत्नो पर छा जाती है, इस प्रकार मंद पडी हुई रत्न कांति को अश्वारोही पुरुषो की भुजाओ के पुष्पहारो से गिरनेवाला मधु फिर चमका देता है।

अदम्य मत्तगजो का मदजल 'वगे' पुष्प के सदृश महकता है, उच्च कुल मे उत्पन्न रमणियो के मुख कुमुद गंध से युक्त है, सुन्दरियो के अलक जाल विविध पुष्पो की सुरभि से सुगंधित हैं, और (उस नगर वासियो के) आभरणो से अपार कांतिजाल छिटकता रहता है।

अनेक नगरो मे से देव नगरी (अमरावती) के विषय मे क्या कहे, जो इस (अयोध्या नगरी) के उपमान के रूप मे बनी हुई है। वह अमरावती तो किसी भी गुण से उसकी समता नहीं करती है। स्वयं अलकापुरी भी, जो इस नगर के समान सब वस्तुएँ दे सकती है, यहाँ की पण्यवीथी (बाजार) को देखकर परास्त हो जाती है।

पुरुष समाज मे सुरक्षित वीर वलय शब्द करते रहते है, बरछे चमकते रहते है, कांतिपूर्ण रत्नाभरण धूप फैलाते रहते हैं, कस्तूरी, चंदन आदि अत्यधिक सुरभि को फैलाते रहते है, मुक्ताएँ कौंधती रहती हैं, भ्रमर गाते रहते हैं।

(उस नगर मे) शंखो के नाद, शृंगो के नाद, मकर वीणा आदि वाद्यो के नाद, मर्दल का नाद, किन्नर वाद्य का नाद, छिद्रवाले वाद्यो (शहनाई, बाँसुरी आदि) के नाद तथा विविध प्रकार के बाजो के नाद, इस प्रकार उमडते रहते हैं कि समुद्र का घोष भी उस शब्द से मंद पड जाता है।

(सामंत) राजाओ के द्वारा (उस नगर मे) दिये जानेवाले राजस्व तथा अन्य द्रव्यो को मापकर लेने के लिए मंडप बने है, इस सम मदगतिवाली रमणियो के नृत्य

लिए) व्याधि के समान थे, तो (सज्जनों के लिए) [illegible] के समान [illegible] तत्वज्ञान मे तो वे स्वय ज्ञान के ही समान थे।

दान रूपी नौका पर चढ़कर उन्होंने याचक रूपी समुद्र को पार किया था। अपनी बुद्धि रूपी नौका से गभीर ज्ञान से परिपूर्ण दुस्तर शास्त्र सागर को पार किया था। अपने खड्ग रूपी नौका के द्वारा शत्रु रूपी समुद्र का सतरण किया था। [illegible] भोग वैभव के समुद्र को, उसमे मन भर गोता लगाते हुए ही पार किया था।

उनके शासन चक्र मे पक्षी, मृग तथा वेश्याओं के हृदय, [illegible] चलते थे। इस प्रकार, महाराज दशरथ अमर कीर्तिसपन्न [illegible] दानी तथा [illegible] पराक्रमी थे।

उनका राज्य भी कैसा था? पृथ्वी के सीमात पर स्थित [illegible] राज्य के प्राचीर बने थे, अनन्त सागर उनके राज्य की परिधि बना था [illegible] कुल पर्वत उनके विविध रत्नमय प्रासाद बने थे, मानो सारी पृथ्वी [illegible] नगरी बन गई थी।

ज्योही महाराज दशरथ अपने शत्रुओ का बल पराक्रम ठीक ठीक आंककर अपना भाला उन पर चलाने के लिए तेज करने लगते थे, त्योंही वे शत्रुनरेश उनके चरणों पर आ गिरते थे और उन राजाओ के रत्नजटित बडे मुकुटों से महाराज के चरण वलय[1] [illegible]।

दशरथ का विशाल श्वेतछत्र अत्यन्त उन्नत तथा उज्ज्वल था, पृथ्वी की सारी प्रजा को वह शीतल छाया प्रदान करता था तथा कही भी अधकार को रहने नहीं देता था। उसकी उपस्थिति में गगन मे चमकनेवाले चन्द्रमा की क्या आवश्यकता थी?

रत्नजटित आभूषणों से सुशोभित वे चक्रवर्ती (दशरथ) सिंह सदृश पराक्रमी थे और सभी प्राणियों की रक्षा अपने ही प्राणों के समान करते थे, मानों सारी चर अचर सृष्टि उनके अक में आनन्द से निद्रामग्न हो।

पर्वत के समान उन्नत भुजाओंवाले दशरथ का शासन चक्र उष्ण किरण [illegible] समान ही ऊँचा था, वह भुवन भर में सचरण करता हुआ सर्वप्राणियो की रक्षा करता था।

भुवन में कही भी कोई ऐसा वीर नही रहा, जो युद्ध मे दशरथ का सामना कर सके, मर्दल (वाद्य) के आकार की दशरथ की भुजाएँ युद्ध करने के लिए फड़क [illegible] थी। जैसे कोई गरीब किसान अपनी छोटी सी खेती की बड़ी सावधानी से [illegible] वैसे ही दशरथ अपनी प्रजा की रक्षा करते थे। ([illegible])

●

१ चरण-वलय प्राचीन तमिल राजा लोग अपने दाहिने पैर मे सोने का एक कड़ा पहनते थे [illegible] उनकी वीरता का चिह्न होता था।

अध्याय ५

शुभावतार

एक दिन राजा ... भगवान तपस्वी वसिष्ठ को प्रणाम करके कहने लगे मेरे लिए माता, पिता, दयालु भगवान, ऐहिक, आमुष्मिक सुख—सब कुछ आप ही हैं।

मेरे पूर्व पुरुषों ने संसार की रक्षा इस प्रकार की थी कि उनकी कीर्ति सदा अक्षय बनी हुई है, उनके कारण ... वंश का यश सूर्य से भी अधिक उज्ज्वल बना हुआ है। अब भी मैं आपकी कृपा से इस विशाल धरती की उसी प्रकार से रक्षा कर रहा हूँ।

मैं सभी शत्रुओं का नाशकर साठ सहस्र वर्ष तक शासन करता रहा हूँ। अब मुझे इस बात के अतिरिक्त अन्य कोई भी चिन्ता नहीं है कि मेरे पश्चात यह संसार शासक के अभाव में दुःख पायेगा।

(मेरे शासन में) महान तपस्या सपन्न मुनि तथा विप्र बिना किसी विघ्न बाधा के सुखमय जीवन व्यतीत करते रहे हैं, मेरे पश्चात् (संरक्षक के न होने से) सब लोग बहुत दुःख पायेंगे—यही बात मेरे मन में गहरी व्यथा उत्पन्न कर रही है।

उस चक्रवर्ती ने, जिसके विराट् प्रासाद के द्वार पर नगाड़े बजते रहते हैं और जो मणिमय मुकुट धारण किये रहते हैं, जब यह बात कही, तब कमल से उत्पन्न (ब्रह्मा) के पुत्र (वसिष्ठ) सोचने लगे।

तरंगायित क्षीर सागर के मध्य शेषनाग की पीठ पर नील पर्वत के सदृश शयन करनेवाले, महान् मेघ सदृश विष्णु भगवान ने दुःख से पीड़ित देवों को यह वचन दिया था कि स्वर्ग का विनाश में निरत (रावण आदि) राक्षसों का मैं वध करूंगा।

स्वर्ग वासी देवता असुरों के आतंक से पीड़ित होकर नीलकंठ (शंकर) के पास गये और प्रार्थना की कि हे भगवन, असुरों से हमारी रक्षा कीजिए। शिवजी ने उत्तर दिया 'हमसे यह कार्य नहीं हो सकता।' तब शिवजी को भी साथ लेकर देवता ब्रह्मा के पास गये।

देवताओं का समाज उत्तर दिशा में चलकर मेरु पर्वत पर स्थित रत्नमय मण्डप में पहुँचा, जहाँ चतुर्मुख (ब्रह्मा) निवास करते हैं। ब्रह्मा की प्रस्तुति करके, उन्होंने राक्षसों के आतंक तथा अपनी दुःख की कहानी उनसे कह सुनाई।

तब ब्रह्मा ने शिवजी से कहा, एक बार रावण का पुत्र मेघनाद इन्द्र को बन्दी बनाकर लंका ले गया था, मैंने उसे (मेघनाद से) छुड़ाया था। (अब आगे मैं वैसा कोई काम नहीं कर सकता)।

बीस करों तथा दस शिरों से युक्त, समृद्धि रूपी संपत्ति से हीन उस (रावण) के बल का प्रतिकार हमसे संभव नहीं, नील मेघ के सदृश नयनवाले दयासागर विष्णु भगवान ही युद्ध करके (असुर बाधाओं का) निवारण करेंगे, तो हमारा निस्तार हो सकता है—इस प्रकार विचार कर—

उन्होंने ऊँची तरंगों से पूरित क्षीर सागर में योग निद्रा में शयन करनेवाले

उन्नत मरकत पर्वत सदृश विष्णु का अपने पास से [illegible]
रहे उस समय ज्ञानियों को परमगति प्रदान करनेवाले (भगवान) [illegible]

गरुड पर आसीन होकर उनके सम्मुख पकड [illegible]
कमलपुंजो[1] के साथ, दीप्तिमान् सूर्य और चन्द्रमा [illegible]
विकसित कमल पर आसीन लक्ष्मी के संग, स्वर्ण पर्वत [illegible]

नीलकंठ और कमलासन (ब्रह्मा) अन्य देवता [illegible]
भगवान् के सम्मुख आकर उनकी स्तुति करने लगे। [illegible]
उनका आनन्द बढता ही जाता और वे सब विष्णु के चरणों [illegible]

(उन देवताओ ने) तुलसीदल शोभित विष्णु के चरण [illegible]
अपने मस्तक पर धारण किया और यह मानकर कि राक्षसो का नाश [illegible]
से भर गये और आनन्द मदिरा का पान करके मत्त हो गये और [illegible]
उधर दौडने भी लगे।

स्वर्णगिरि से उतरनेवाले मेघ के समान मेरे स्वामी[2] (विष्णु भगवान) [illegible]
भुजाओ पर से नीचे उतर आये और गगनचारी मंडप में आ विराजे। [illegible]
वाले सोने के सिंहासन पर आसीन हुए।

ब्रह्माजी के साथ देवर्षि, स्वर्गवासी (देवता) तथा [illegible]
धारण किये त्रिशूलधारी शिव, सब विस्मयाविष्ट हो और उमंग [illegible]
उपस्थित हुए और अत्याचारी राक्षसो के क्रूर कृत्यो का वर्णन करने लगे।

हे लक्ष्मीनाथ ! शरीर बल से परिपूर्ण दशानन (रावण) तथा [illegible]
राक्षसो के कारण स्वर्गवासी और मर्त्यलोक के निवासी अपने [illegible]
रहे हैं, अब हमे जीने का मार्ग नही मिल रहा है— यो कहकर [illegible]

जब देवताओ ने ये वचन कहे, तब चन्द्र [illegible] मधु भरे पुष्प [illegible]
धारण करनेवाले शिवजी ने उन देवो को अपने हाथ से मौन रहने [illegible]
स्वामी की ओर देखकर, इस प्रकार निवेदन करने लगे—

अरुण नयनो से शोभित हे प्रभु ! राक्षस कहलानेवाले ये लोग [illegible]
गये शक्तिशाली वरो के प्रसाद से तीनों भुवनो को आक्रान्त कर रहे हैं। [illegible]
संहार नही करेंगे, तो क्षणमात्र मे वे तीनो भुवनो को मिटा देंगे।

शिवजी के यो कहने पर देवो ने भगवान की स्तुति की, तब अत्यंत [illegible]
सुन्दर तुलसी की माला धारण किये हुए विष्णु ने उनसे कहा—आपलोग [illegible]
मैं धरणी पर वंचक जनो के शिर काटकर (आपको) दुःख से मुक्त करूंगा। [illegible]
सुनिए—

स्वर्ग के निवासी आप सब वानर रूप धारण कर काननों, पर्वतो, और [illegible]
उपवनों में, दलबल के साथ, जाकर रहिए। क्षीर सागरशायी विष्णु [illegible]

१ कमलपुंज—कर, चरण आदि, सूर्य और चन्द्रमा—शंख और चक्र, स्वर्ण का पर्वत—गरुड।
२ कंबर विष्णु-भक्त थे इसलिए उन्होंने 'मेरे स्वामी' कहकर संबोधित किया है।

मायावी नीच राक्षसों के वर और उनके जीवन को अपने तीक्ष्ण शरों से विनष्ट करने के लिए हम, चतुरंग सेना रूपी सागर के प्रभु दशरथ के पुत्र बनकर धरती पर जन्म लेंगे।

शंख, चक्र एवं आदिशेष (जिसका विष बड़वाग्नि को भी झुलसा देता है) मेरे अनुज बनकर मेरी चरण सेवा करेंगे। इस प्रकार, हम प्राचीरों से आवृत अयोध्या में अवतार लेंगे।

भगवान् के इस प्रकार कहने पर (वे देवता) यह जानकर कि सुगंधित तुलसी धारी विष्णु ने हमारी रक्षा की, आनन्द से उछल पड़े, और कृतज्ञता सूचक मंगल गीत गाने लगे।

हमारी विपत्तियाँ दूर हो गई—यह सोचकर इन्द्र आनंदित हो उठा परिशुद्ध कमलपुष्प पर निवास करनेवाले (ब्रह्मदेव), चन्द्रशेखर (शिव) और ऊँचे स्वर्ग के निवासी (देवता) कहने लगे कि हमारी अवनति (नीची अवस्था) का अंत हो गया। विष्णु भगवान ने, जिन्होंने विशाल भूमि को अपने अन्तर्गत कर लिया था, गरुड पर चरण रखा।

मेरे प्रभु के गरुड पर सवार होकर चले जाने के पश्चात् पितामह ने देवताओं से कहा—रीछों के राजा जाम्बवान, जो कि मेरे अंशभूत हैं, पहले ही धरती पर अवतरित हो चुके हैं। विष्णु के कथनानुसार आप सब भी पृथ्वी पर अवतार लीजिए।

इन्द्र ने कहा—शत्रुओं के लिए अशनितुल्य (वालि) तथा उसका पुत्र (अङ्गद) मेरे अंश हैं, सूर्य ने कहा कि उस (वालि) का अनुज (सुग्रीव) मेरा अंश है और अग्निदेव ने 'नील' को अपना अंश बतलाया।

वायुदेव ने कहा कि 'मारुति' मेरा अंश है, दूसरे देवता भी (शत्रुओं का) विध्वंस करनेवाले वानर बनकर भूमि पर जाने को सन्नद्ध हो गये, शिवजी ने भी वायु के अंशभूत हनुमान् को ही अपना अंश बताया, देवताओं ने अपने अपने अंश को लेकर अन्यान्य दिशाओं में भी जन्म लिया।

कृपालु कमलनयन (विष्णु भगवान्) के कथनानुसार ही कमलासन (ब्रह्मा), नीलकंठ (शिव) तथा अन्य देवताओं के अंश, मनोहर काननों में और अन्य भू प्रदेशों में वानर बनकर अवतरित हुए। इस प्रकार, अपने अपने अंश के रूप में पुत्रों को उत्पन्न करनेवाले देवता अपने अपने स्थान को लौट गये।

पूर्वकाल में निष्पन्न इस वृत्तान्त को मन में विचारकर वसिष्ठ ने कहा पर्वत समान बलिष्ठ भुजावाले नृपति! तुम चिन्ता मत करो, जो यज्ञ चौदह भुवनों पर शासन करनेवाले पुत्रों को दे सकता है, उसे अविलम्ब सपन्न करो, तो तुम्हारी मनोव्यथा दूर हो जायगी।

जब वसिष्ठ ने इस प्रकार कहा, तब बड़ी उमंग से भरे हुए राजाधिराज (दशरथ) ने उस महान् ऋषि के चरणों पर नतमस्तक होकर निवेदन किया—मैं तो आपकी ही शरण में रहता हूँ, मुझे कोई दुःख किस तरह सता सकता है? उस यज्ञ के लिए मेरे करने योग्य कार्य क्या क्या हैं, कहने की कृपा कीजिए।

ऋष्यशृंग ने उन्हें अर्घ्य आदि उपचारों के साथ उचित आसन दिये। उनसे मधुर बात कर, पलाश पुष्प सदृश अधरवाली वे नारियाँ मुनि को प्रणाम करके शीघ्र ही अपनी पर्णशाला को लौट आई।

सुन्दर आभूषण पहनी हुई उन रमणियों ने कुछ दिनों के पश्चात् देवामृत से भी मधुर कटहल, केले तथा आम के फलों के साथ मीठे नारियल भी उस ऋषि को प्रेम के साथ समर्पित किये और विनती की कि हे अपूर्व तपस्सम्पन्न, आप इनका भोजन करें।

इसी प्रकार जब कुछ काल व्यतीत हो गया, तब एक दिन सुन्दर और उज्ज्वल ललाटवाली उन रमणियों ने ऋष्यशृंग से विनती की कि हे ऋषि! आप हमारे आश्रम में पधारें। मुनि भी उनके साथ चल पड़े।

अपने मन के ही समान दूसरों को मोह में डालनेवाली वे रमणियाँ उमंग भरी और आश्चर्य चकित होकर, उस श्रेष्ठगुणभूषित मुनि को साथ लेकर दीर्घ मार्ग पारकर यह कहती हुई चलीं कि 'हे महर्षे! वह देखो, वह, वही हमारा आश्रम है।'

सब विभूतियों से सम्पन्न (राजा रोमपाद के) नगर में उस ऋषिश्रेष्ठ के पदार्पण करने के पहले ही आकाश के बादलों ने, नीलकण्ठ के कण्ठस्थ विष जैसे काले होकर, घोर गर्जन के साथ ऐसी वृष्टि की कि तालाब, नदी आदि सभी जलाशय जल से परिप्लावित हो गये।

गगन पर उमड़कर काले मेघों के वर्षा करने से नदियों और तलावों की प्यास बुझ गई। ईख, लाल धान आदि की फसल लहलहाने और बढ़ने लगी। यह देखकर उस समय रोमपाद नरेश ने विचार किया कि—

बिम्बफल के समान अधर, कमलतुल्य वदन, मोतो के जैसे स्वच्छ दाँत, धूम के समान काले केशपाश—इनसे शोभित वारवनिताओं के प्रयत्न से, काम, क्रोध और मोह इन तीनों से रहित हो उन्नत हुए ऋष्यशृंग महर्षि उस नगर में पधार रहे हैं।

सुगठित भुजाओंवाले वह रोमपाद, वेदों के ज्ञाता मुनियों और अपनी सेना के साथ दो योजन आगे बढ़कर (वहाँ) सुगन्धित केशवाली रमणियों के मध्य तप के बने पर्वत के समान ऋष्यशृंग मुनि के सम्मुख पहुँचा।

'अब हमारा त्राण हो गया' यों कहता हुआ आनन्द के साथ वह ऋष्यशृंग के चरणों पर गिरा। उसके नयनों से अश्रु बहने लगे, फिर (राजा के चरणों पर गिरकर) नमस्कार कर उठनेवाली उन वेश्याओं से उसने कहा—तुम लोगों ने अपने प्रयत्न से मेरी विपदा दूर की है।

जब रोमपाद और मुनिगण वहाँ आये, तब ऋष्यशृंग को यह ज्ञान हुआ कि यह सब कपट है। उस समय देवता भी भयभीत हो उठे, (परन्तु) रोमपाद नरेश की प्रार्थना के कारण महर्षि मर्यादा का उल्लंघन न करनेवाले तरंगायित समुद्र के समान स्थित रहे।

वज्र समान खड्गधारी उस नरेश ने उस मुनिश्रेष्ठ को प्रणाम किया और (अनावृष्टि से होनेवाली) अपनी विपदा, जिसे कोई भी दूर नहीं कर सका था और जो अब ऋषि

के आगमन से दूर हो गई थी, कह सुनाई। [illegible]
के मन का सारा क्रोध दूर हो गया।

विशुद्ध ज्ञानी और वरप्रदाता उन [illegible]
आशीर्वाद दिये, अब राजा तत्त्वज्ञानी मुनियों सहित रथ पर [illegible]
पहुँचा।

रोमपाद उस ऋषिश्रेष्ठ के साथ अलंकृत नगर में पहुँचा [illegible]
प्रासाद में ले जाकर एक अनुपम सिंहासन पर उन्हें आसीन कराया।

उस नरेश ने, इस प्रकार से कि कोई त्रुटि न [illegible]
चार किये और आनन्दित हो पलाश सम अधर युक्त शान्ता नामक [illegible]
विधान से (उन मुनि को) दान किया।

वसिष्ठ ने कहा—हे राजन्! उस अंगदेश की सारी विपत्तियाँ [illegible]
वहाँ वर्षा होने लगी है, जिससे वहाँ का दुर्भिक्ष दूर हो गया है। [illegible]
वे (मुनि) राजा के द्वारा दान में दत्त शान्ता नामक नारी की संगति [illegible]
पर रहते हैं।

वसिष्ठ के यह कहते ही महाराज दशरथ ने उनके चरणों में प्रणाम [illegible]
कि मैं अभी जाकर उन (ऋष्यशृंग महर्षि) को ले आता हूँ। (उस समय) [illegible]
स्तुति कर रहे थे, सुमंत्र आदि महान् मेधा शक्ति संपन्न मंत्रिगण दशरथ के [illegible]
हो गये, जब दशरथ रथ पर चढ़े, तब देवताओं ने उन्हें आशीर्वाद [illegible]
कि हमारी विपदाएँ आज से मिट गईं, उनपर पुष्पवर्षा की।

'काहल' और अन्य वाद्य समुद्र से भी बढ़कर नाद करने लगे, [illegible]
तथा वेदपाठी ब्राह्मणों ने राजा की प्रशंसा की और आशीर्वाद दिये। [illegible]
रमणियों ने उनकी जय जयकार की और उनके आयुष्मान् [illegible] गीत गाये। [illegible]
तुल्य सेना से घिरे हुए राजा दशरथ दीर्घ मार्ग पार करके [illegible]
रोमपाद के देश में जा पहुँचे।

चरों ने रोमपाद को समाचार दिया कि चक्रवर्ती दशरथ, [illegible]
प्रशाखाओं में बढ़कर व्याप्त हो रहा है, (नगर के) निकट आ पहुँचे हैं। [illegible]
वीर कंकण पहनकर उनकी अगवानी करने चला, दृढ़ धनुष धारण करनेवाली [illegible]
उसकी विशाल सेना भी उसे घेरकर चली, मागध स्तुति पाठ करने लगे [illegible]
साथ वह एक योजन दूर तक गया।

अपने सम्मुख आनेवाले वीर रोमपाद को देखकर दशरथ [illegible]
अपने रथ से उतर पड़े। उस समय रोमपाद दशरथ के चरणों पर आ गिरा। अपने [illegible]
प्रेम की बाढ़ सी उत्पन्न करते हुए दशरथ ने उसे उठाकर गले लगा लिया। रोमपाद ने
आनन्द से भरकर तीक्ष्ण धार भाला धारण किये हुए चक्रवर्ती दशरथ से निवेदन किया।

बलवान् भुजाओं से विशिष्ट वह रोमपाद, जिसके भाले की चोट से शत्रु [illegible]
मात्र रह जाते हैं, यों कहने लगा—देवलोक की रक्षा करनेवाले भाले [illegible]

मेरे नटे तप के फलस्वरूप ही आपका यहाँ पदार्पण हुआ है, अथवा ... की ही यह पुण्य फल है। फिर, वह मधुवर्षा करनेवाले पुष्पों की मालाएँ पहने हुए चक्रवर्ती दशरथ को रत्नमय रथ पर आसीन कराकर अपने नगर में ले आया।

घनी पुष्पमाला को धारण करनेवाला रोमपाद, हाटक नामक स्वर्ण से निर्मित अपने प्रकाशमान प्रासाद के एक मंडप में पहुँचा, वहाँ रक्तकमल के समान चरणवाली, प्रतिभा समान सुन्दर रमणियाँ जयगान कर रही थी, स्वर्णमय सिंहासन पर चक्रवर्ती दशरथ को, जिनके भाले में जयमाला लिपटी हुई थी, बिठाकर (अर्घ्य आदि) सभी उपचारों के साथ भोजन कराया। महाराज दशरथ जिन्होंने देवलोक की रक्षा की थी, (रोमपाद के स्वागत सत्कार से बहुत) आनन्दित हुए।

उपचार के पश्चात् सुगंधित चन्दन दिया। दशरथ को देख रोमपाद ने पूछा आपके यहाँ पधारने का कारण क्या है, कृपाकर बताइए। जब दशरथ ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया, तब नरेश (रोमपाद) ने विनती की कि हे मनोहर मुकटधारी राजन्! ईर्ष्या (आदि दुर्गुणों) से रहित महान् तपोधन ऋष्यशृंग को मैं वहाँ (अयोध्या में) ले जाऊंगा। (इसके बाद) दशरथ रथ पर सवार हो अपनी सेना के साथ अयोध्या जा पहुँचे।

दशरथ के चले जाने पर वीर रोमपाद वेद स्वरूप मुनिवर के निवास पर पहुँचा और उनके चरण कमलों को अपने स्वर्ण मुकुट पर धारण किया। ऋष्यशृंग ने उससे उसके वहाँ आने का उद्देश्य पूछा, तो उत्तर दिया मुझे एक वर दीजिए। मुनि से पूछा—कौन सा वर?

रोमपाद ने विनती की— उज्ज्वल कीर्त्तिमान्, नीतिज्ञ, शासक दशरथ, जो कबूतर की रक्षा के निमित्त तुला पर अपने शरीर को रखनेवाले उदारगुण शिबि के प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न हुए हैं, जिनका मन धर्म में सुस्थिर है, जिनके भाले ने देवों को पीडा देनेवाले असुरों के बल को नष्ट किया था, उनके रत्नखचित अट्टालिकाओं से शोभित अयोध्या नगर को (आप एक बार) जाकर और फिर लौटने की कृपा करें।

तपस्वी ऋष्यशृंग ने कहा कि हमने वर दे दिया (स्वीकार किया), अब तुम रथ ले आओ। तब तीक्ष्णधार भाला धारण करनेवाले रोमपाद ने उनके चरणों को प्रणाम किया और कहा कि अब राजाधिराज (दशरथ) की चिन्ता मिटी। वह गर्जन करनेवाले रथ को ले आया और निवेदन किया कि हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ! आप सुन्दर ललाट लक्ष्मी सदृश शान्ता के साथ इस रथ पर सवार हो जाइए।

वक्र धनुष को धारण करनेवाला रोमपाद हाथ जोडकर खडा रहा। ऋष्यशृंग मुनि जो अपूर्व वेदों के समान थे, अपनी पत्नी शान्ता के साथ रथ पर (आसीन हो) अयोध्या की दिशा में चल पडे। उनके साथ शान्तस्वरूप अनेक ऋषि उनका अनुगमन करते हुए चले।

समदेवता, इन्द्रादि देवगण, यह सोचने लगे कि उत्तेजित राक्षसों के अत्याचारों का विध्वंस करनेवाले (समस्त सृष्टि) के आदिभूत भगवान् जिस उपाय से (इस मर्त्यलोक में) अवतरित हों, वह उपाय (ये मुनिवर) अवश्य करने की कृपा करेंगे—यह सोचकर अत्यन्त आनन्दित हो उठे और दुंदुभि बजाकर श्रेष्ठ पुष्पों की वर्षा की।

दशरथ के ये वचन कहते ही ऋष्यशृंग उन्हें उल्लसित दृष्टि से देखकर बोले—राजाओं के राजन्, सुनो, तुम्हें वसिष्ठ नामक एक महान् तपस्वी की सहायता प्राप्त है, तुम्हारे कार्य पुण्यमय हैं क्या तुम्हारी समानता इस संसार के क्षत्रिय कर सकते हैं?

इसी प्रकार के विविध मीठे वचनों को कहकर पूछा—पर्वत के समान दृढ धनुष धारण करनेवाली स्फीत भुजाओंवाले (हे राजन्) तुमने मुझे यहाँ जो बुलाया है, क्या वह अश्वमेध यज्ञ करने के लिए ही, स्पष्ट कहो।

(दशरथ ने निवेदन किया) मैंने अनेक वर्षों तक, बिना किसी कष्ट के, धरती का भार उठाया है, अबतक मेरे कोई संतान नहीं हुई (जो मेरे बाद इस भार का वहन करे), आप हमें समुद्र से घिरी हुई इस पृथ्वी की रक्षा करनेवाले पुत्र दीजिए और मुझे अमल यशस्वी बनाइए।

दशरथ के इस प्रकार वचन कहते ही, ऋष्यशृंग ने कहा—राजन्! तुम चिन्ता मत करो, एकमात्र इस मर्त्य लोक की ही क्या, चतुर्दश भुवनों की रक्षा करनेवाले महाबली पुत्रों का प्रदान करनेवाला यज्ञ करने के लिए अभी, इसी स्थान पर, सन्नद्ध हो जाओ।

उस यज्ञ के लिए आवश्यक सभी वस्तुएँ (सेवकगण) शीघ्र ही ले आये, चक्रवर्त्ती (दशरथ) भी परिशुद्ध (सरयू) नदी में स्नान करके वेदशास्त्रोक्त विधान से बिना किसी त्रुटि के सम्यक् रीति से बनाई गई यज्ञशाला में जा पहुँचे।

शब्दायमान हो उठनेवाली तीनों अग्नियों को प्रज्वलित करके उसमें आहुति देने लगे। बारह मास व्यतीत होने के पश्चात् देव वाद्य बज उठे, देवगण विशाल आकाश में इस प्रकार छा गये कि कहीं थोडी भी जगह खाली नहीं रही।

विकसित कमल जैसे कांतिमय वदनवाले देवता, सुगंधित कल्पवृक्ष के पुष्प बरसा रहे थे, (उसी समय) मरुद्गणों से विभूषित ऋष्यशृंग ने भी उस अग्नि के मध्य पुत्र दात्री आहुतियों का होम किया।

उसी समय (उस होमकुंड से) एक भूत प्रकट हुआ, जिसके केश दमकनेवाली अग्नि के समान थे और जिसके नेत्र लाल थे वह एक मनोहर सोने के थाल में पवित्र मधुर सुधा सदृश एक पिंड लिये हुए होम की अग्नि से शीघ्रता के साथ ऊपर आ उठा,

उसने थाल को धरती पर रख दिया और पुनः होमाग्नि में अदृश्य हो गया। तपस्वी ऋष्यशृंग ने दशरथ से कहा—इस (भूत के) दिये हुए अमृतसम पदार्थ को यथाक्रम अपनी पत्नियों को दो।

उन मुनिवर के आज्ञानुसार ही दशरथ चक्रवर्त्ती ने उस अमृत पिंड का एक भाग धूम के सदृश काले, कोमल और घुँघुराले अलकों तथा बिंबफल के समान अधरोंवाली लावण्य पूर्ण कौसल्या को दिया। उस समय शंखध्वनि हो रही थी।

उस कोशल देश पर, जहाँ के तालाबों, नदियों और बागों में हंस विचरते हैं, शासन करनेवाले दशरथ चक्रवर्त्ती ने बचे हुए पिंड का आधा भाग केकय राजकुमारी कैकयी के हाथ में दिया, तब देवता आनन्दोच्चारण कर रहे थे।

(इसके बाद) दशरथ चक्रवर्त्ती ने, जो शत्रुओं के हृदयों में कंपन उत्पन्न करने

वाले जल से विभूषित थे और निमि नामक चक्रवर्ती के श्रेष्ठ [illegible] का बचा हुआ भाग सुमित्रा को दिया। [illegible] गया, अपने साथियों के साथ हर्ष रव कर उठा।

और, उदार स्वभाववाले उन चक्रवर्ती [illegible] को ताड़ने पर) निखर थे, उन्हें भी सुमित्रा देवी को [illegible] अग और संसार के अन्य सभी प्राणियों के दक्षिण अंग फड़क उठे।

अश्वमेध यज्ञ तथा पुत्रकामेष्टि यज्ञ के सभी कार्य [illegible] समाप्त होने पर सब लोगों से अपनी प्रशंसा सुन [illegible] आनन्द के साथ (यज्ञ मंडप से) बाहर आये।

विधि विहित यज्ञ कर्म जब समाप्त हुए, तब [illegible] उठे, (राक्षसों के अत्याचारों के कारण) [illegible] मंडप में आ पहुँचे।

(राजा दशरथ ने) वेदों के अनुसार [illegible] भगवान् को समर्पित किये,[1] उसी विधान के अनुसार देवता [illegible] महामहिम श्रेष्ठ विप्रों को भी अपने करों से स्वर्ण दान दिये।

(यज्ञ में उपस्थित) राजाओं को धन, रथ, [illegible] प्रत्येक की योग्यता के अनुसार भेंट किये, फिर बाजे गाजे के साथ [illegible] पर पहुँचे और (अघमर्षण) स्नान किया।

नगाड़े बज रहे थे, मुक्तामंडित श्वेतच्छत्र ऊपर छाया [illegible] घेरे हुए आ रहे थे, इस प्रकार दशरथ राजसभा में [illegible] लजानेवाले वसिष्ठ महर्षि के चरणों पर नत [illegible]।

फिर तपस्वी वसिष्ठ की आज्ञा से, [illegible] ऋष्यशृङ्ग के चरणों को प्रणाम करके ये वचन कहे "तपस्विवर! (आपकी कृपा से) [illegible] कृतकार्य हो गया, इससे उत्कर [illegible] प्राप्य फल मेरे लिए और क्या [illegible]

हे प्रभो! आपकी कृपा से यह जन [illegible] (राजा की बात सुनकर) ऋष्यशृङ्ग मन में आनंदित हुए और आशीर्वाद दिया। [illegible] मुनिगण के सहित वे रथ में बैठकर (रोमपाद की नगरी के लिए) [illegible]।

दशरथ नरेश ने [illegible] मुक्त हो फिर एक बार [illegible] चरणों की वंदना की, वे (मुनिवर) आनंदित हो, आशीर्वाद [illegible] स्थानों को) चले गये। दशरथ चक्रवर्ती सुखी जीवन बिताने लगे।

कुछ दिन व्यतीत होने पर चक्रवर्ती की तीनों पत्नियाँ गर्भधारण [illegible] करने लगीं। उनके अनुपम सुन्दर मुख ही नहीं, परन्तु उनके [illegible] शरीर भी [illegible] समान कांतिपूर्ण दीखने लगे।

---

[1] वैष्णवों के बीच यह प्रथा प्रचलित है कि कोई भी कार्य करने के बाद उसे भगवान् विष्णु को समर्पित कर देते हैं। इसे 'सात्विक त्याग' कहते हैं।

जब उन गर्भवती देवियों के प्रसव का उपयुक्त समय आया, तब विशाल भू देवी आनंदित हुई, पुनर्वसु नक्षत्र और देवों में प्रशंसित कर्कटक लग्न, दोनों आनन्द से उछलने लगे।

सिद्ध, यक्ष, यक्षों की देवियाँ, तत्त्वज्ञानी ऋषिगण, देवगण, नित्यसूरिगण[1] पंक्ति-पंक्ति में (खड़े) आनंदित हो जयघोष कर उठे, त्रस्त देवता का मनस्ताप मिट गया और वह आनन्द से भर गया।

सद्गुणों से भरी कौसल्या देवी ने, काजल और नव मेघों की छटा दिखानेवाली उस तेजोमय विष्णु को जन्म दिया, जो समस्त सृष्टि को अपने उदर में लीन कर लेता है और जो महान् वेदों के लिए भी ज्ञानातीत है, (उसके जन्म से) संसार की विभूति बढ़ गई।

देवता लोग दसों दिशाओं में और आकाश में स्थित हो आनन्द घोष कर रहे थे, इन्द्र आदि प्रणाम करके जय जयकार कर रहे थे, ऐसे 'पुष्य नक्षत्र' और 'मीन लग्न' से युक्त शुभ घड़ी में निष्कलंक कैकय राजपुत्री ने एक पुत्र को जन्म दिया।

कल्पवृक्ष के अधिपति, पर्वतों के पंखों को काटनेवाले इन्द्र तथा उनके साथी अंतरिक्ष में आनन्द नाद कर रहे थे। बाँबी में रहनेवाले सर्प (आश्लेषा नक्षत्र[2]) के साथ 'कर्कटक' (लग्न) ने भी नया जीवन पाया, पट्टमहिषियों में सबसे छोटी, कोमल लता तुल्य सुमित्रा ने लक्ष्मण को जन्म दिया।

आदिशेष के सहस्र फणों से वहन की गई भूमि आनन्द से नाच उठी, वेद नाट्य करने लगे, सिंहराशि और मघा नक्षत्र ने ऊँचा जीवन पाया, (इसी समय) विष के समान काले नयनोंवाली सुमित्रा ने एक दूसरे पुत्र को जन्म दिया।

'राक्षस मिट गये'—इस खयाल से आनंदित हो अप्सराएँ नाच उठीं, किन्नर अपने अमृत मधुर स्वर में गा उठे, विविध वाद्य बजने लगे, देवगण (आनन्द से) इधर उधर दौड़ने लगे।

रानियों की सखियाँ दौड़कर दशरथ के पास गई, पुत्र जन्म का समाचार सुनाकर आनन्द नृत्य किया, (ज्योतिष में निपुण) ब्राह्मणों ने एकत्र होकर नक्षत्र और ग्रहों की स्थिति का अवलोकन करके कहा कि अब यह संसार दुःखों से मुक्त हो जायगा।

मुखपट्ट[3] से सुशोभित गज के समान गंभीर और नीतियुक्त श्रीरामचन्द्र के शुभावतार के समय मेष (चैत्र) मास था, तिथि नवमी थी, नक्षत्र पुनर्वसु था, श्रेष्ठ लग्न

१ वैष्णवों के अनुसार श्रीवैकुंठ में विष्णु की चरण सेवा करनेवाले गरुड़, अनंत, विष्वक्सेन आदि भक्त 'नित्यसूरि' कहे जाते हैं। भगवान् की आज्ञा से ये लोक-कल्याण के लिए कभी-कभी पृथ्वी पर अवतार भी लेते हैं।

२ लक्ष्मण का जन्म कर्कट राशि और आश्लेषा नक्षत्र में हुआ था। आश्लेषा नक्षत्र सर्पाकार होता है। साँप और ककड़े की मित्रता बतलाकर कवि ने चमत्कार दिखाया है।

३ मुखपट्ट = हाथियों के मुख पर लगाया हुआ सोने या चाँदी का रत्न जटित वस्त्र।

कर्कटक था, ग्रहस्थानो की परीक्षा करके देखने पर [illegible]
ग्रह उच्च स्थान मे थे।

ज्योतिषियो ने श्रीरामचन्द्र की जन्म पत्री तैयार [illegible]
की जन्मपत्रियाँ भी उपयुक्त क्रम से परीक्षा करके, [illegible]
देवगुरु बृहस्पति की प्रशसा करते हुए, फल सुनाए।

दशरथ चक्रवर्ती ने आनन्द से (सरयू नदी मे) [illegible]
दान दिये, फिर जब श्वेत शख बज रहे थे, तब वसिष्ठ [illegible]
कुमारो के मुख देखे।

दशरथ महाराज ने ढिढोरा पिटवा दिया और आज्ञा [illegible]
वर्षो के लिए लगान माफ कर दिया जाय, अन्न भॉडारो [illegible]
गरीब अपनी अपनी इच्छा के अनुसार अन्न उठा ले जाय।

(यह भी आज्ञा दी कि) युद्ध कार्य बन्द हो [illegible]
राजाओ को मुक्त कर दिया जाय और वे अपने अपने [illegible]
नियमाचरण विना विघ्न के पूर्ण हो, (मदिरो मे प्रतिष्ठित) [illegible]
जानेवाले उत्सवो से सतुष्ट किये जाये।

देवालयो का सस्कार किया जाय, ब्राह्मणो के [illegible]
सन्धियो का नव निर्माण हो, प्रात एव सन्ध्या के समय (देवालयो मे) [illegible]
पुष्पहार समर्पित किये जाय।'

(चक्रवर्ती के यह) आज्ञा देते ही ढिढोरा पीटनेवाले [illegible]
श्रुतिसुखद ढिढोरे पीटकर सर्वत्र राजाज्ञा सुना दी, नगर [illegible]
क्षीणकटि नारियाँ आनन्द सागर मे डूब गई।

नगर निवासी प्रेम से भरकर आनन्द नाद कर उठे, [illegible]
गये और स्वेद बिन्दुओ से भर गये, राजा के सामने आकर [illegible]
सुनाया, उन सबको बहुमूल्य भेट दी गई, कदाचित् उनके [illegible]
(राजकुमारो के रूप मे) स्वय विष्णु भगवान् ही अवतरित हुए थे।

विशाल अयोध्या नगर मे नारियो के भरे, [illegible]
मित्रो के दल ने अतीव आनन्द के साथ तेल, चन्दन, घी, कस्तूरी [illegible]
अयोध्या की वीथियो मे छिडके।

इस प्रकार उस महानगरी के निवासियो ने [illegible]
अपने मन मे उमडनेवाले आनन्द के कारण अपने आपको भूल गये, [illegible]
सत्य तपस्यावाले वसिष्ठ ने (बालको का) नामकरण करने की [illegible]।

मगर के साथ युद्ध करते समय जब गजराज के [illegible]
आदिशेष पर शयन करनेवाले आदिमूल भगवान् विष्णु का स्मरण किया [illegible]
उसकी रक्षा करनेवाले उस परमार्थभूत विष्णु भगवान् का (वसिष्ठ ने) 'श्रीराम' नाम
रखा।

अभीष्ट फल देनेवाले वसिष्ठ ने, जिनके लिए वेदों के यथार्थ तत्त्व हस्तामलक के समान थे, (रामचन्द्र के बाद) अवतरित दूसरे ज्योति पुंज का 'भरत' नाम रखा।

(जिसके उत्पन्न होते ही) वंचक (राक्षस) लोग मिट गये और देवता लोग तर गये , भूमिदेवी करोड़ों कष्टों से मुक्त हुई , उस अजेय और महाबली ज्योतिमय पुत्र का नाम 'लक्ष्मण' रखा।

ज्योति स्वरूप चौथा बालक ऐसा लगता था, मानो मोतियों के पुंज के मध्य रक्त कमल विकसा हो। शत्रुओं का नाशक समझकर कुलगुरु ने उसका 'शत्रुघ्न' नाम रखा।

भूलकर भी असत्य पर न चलनेवाले (वसिष्ठ) मुनि ने जब उत्कृष्ट वेदमंत्रों का उच्चारण करके (चारों बालकों का) नामकरण किया, तब दान नदियों ने चक्रवर्ती के हाथों से प्रवाहित होकर वेदशास्त्रों में निपुण ब्राह्मणों के सत्य अर्थों से भरे हुए हृदय रूपी समुद्र को भर दिया।

समस्त संसार पर शासन करनेवाले राजाधिराज दशरथ (अपने ज्येष्ठ) कुमार से इस प्रकार प्रेम करते थे, मानो नीलोत्पलों के मध्य विराजमान रक्तकमल जैसे अतीव सुन्दर लगनेवाले श्रीरामचन्द्र के अतिरिक्त उन्हें दूसरे प्राण एवं शरीर ही न हों।

चारों कुमार, जिनकी तोतली बोली से अमृत बरसता था, अपनी सुन्दर विकसित गात से भूमिदेवी की शोभा बढ़ाते हुए उसी प्रकार बढ़ने लगे, जिस प्रकार अंधकार को दूर करते हुए सूर्य बढ़ता है और स्वरों की ध्वनि के साथ चारों वेद (संसार में) बढ़ते हैं।

समय आने पर धवल चन्द्र से विभूषित शंकर समान वसिष्ठ मुनि ने यथाविधि उनके चूड़ाकरण तथा उपनयन संस्कार कराये। (फिर) अमर वेदों एवं अनन्त शास्त्रों का इस प्रकार से अध्ययन कराया कि उनके ज्ञान की कोई सीमा ही नहीं रही।

देवताओं के एकमात्र नेता रामचन्द्र ने अपने भाइयों के साथ हाथी, रथ, घोड़े आदि सवारी तथा इसी प्रकार की अन्य (क्षत्रियोचित) विद्याओं की शिक्षा यथाविधि प्राप्त की और शत्रुओं का नाश करनेवाली सेना संचालन कि रीति तथा धनुर्विद्या का भी अभ्यास किया।

वेदों के ज्ञाता मुनि, देवता, भूमिदेवी और उस नगर के सभी निवासी, यह सोचकर कि इन (राजकुमारों) से हमारे कष्ट एवं उनके कारण भूत पाप और पुण्य कर्म भी मिट जायेंगे, उनके निकट से हटना नहीं चाहते थे।

श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण नदियों में, मेघों से आवृत (ऊँचे वृक्षों से भरे) उपवनों में और तड़ागों में साथ साथ संचरण करते थे, जैसे तान के साथ भरनी का सूत मिल गया हो, इससे भूमिदेवों कि तपस्याएँ प्रकट होती थीं।

भरत और शत्रुघ्न एक क्षण के लिए भी एक दूसरे से अलग नहीं होते थे, रथ या घोड़े की सवारी करते समय या वेद शास्त्रों का अध्ययन करते समय सदा एक साथ रहते थे। वे मानो मेरे (लेखक के) स्वामी श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण के (जोड़े) जैसे रहते थे।

पराक्रमी राम और भरत अपने अनुज लक्ष्मण और शत्रुघ्न के साथ (प्रतिदिन) श्रेष्ठ नगर से बाहर सुगंध भरे उपवनों में दयालु मुनियों के पास (अध्ययन के लिए)

उस सिंहबली दशरथ के सामने एकाग्र बड़े क्रोधी विश्वामित्र ऋषि आ गए, जिन्होंने कभी सभी प्राणियों और लोकों का अलग सर्जन करके नये देवगण त ब्रह्मा की भी सृष्टि करने का उपक्रम किया था।

मुनि के आते ही, दशरथ झट अपने आसन से उठकर उनके चरणों म न जैसे कमलासन (ब्रह्मा) के आगमन पर इंद्र उठ खड़ा हुआ हो, तब दशरथ के (उनके उठने के साथ) हार भी हिलडुलकर यों किरण फेंकने लगे, जिससे सूर्य क भी परास्त हो जाती थी।

(दशरथ ने मुनि को) प्रणाम कर उन्हें रत्नों से जड़े हुए स्वर्णासन पर से बिठाया और उनके चरणकमल युगल की अर्चना करके, हाथ जोड़कर कहा कि (आगमन से) मेरे प्रारब्ध कर्म की परंपरा अभी टूट गई। (अर्थात्, मैं कर्म बंधन हो गया।

हे महात्मन्! आप इस नगर में सुलभता से पधारे और मैं आपकी प करके आपको प्रणाम कर सका, इस सौभाग्य का कारण यदि इस देश का किया हु मानें, तो वह नहीं है या मेरे किये अच्छे कर्म मानें, तो वह भी नहीं है, हाँ इसका मेरे पूर्वजों के द्वारा किया हुआ तप ही हो सकता है। जब दशरथ ने इस प्रकार क विश्वामित्र ने उत्तर दिया—

शत्रुओं का वध करके उनके मांस से युक्त भाला धारण करनेवाले, हे (दश मुझ जैसे मुनियों और देवताओं पर यदि कोई विपदा आ पड़े, तो सभी पर्वतों का करनेवाला धवल हिमाचल, क्षीरसागर, कमलासन के नगर (सत्य लोक) तथा से सुशोभित अमरावती के सदृश सुन्दर अट्टालिकाओं से विभूषित अयोध्या नगरी को शरण देनेवाला स्थान क्या अन्य कोई हो सकता है?

हे चक्रवर्ती! मनोहर कल्पवृक्ष कि छाया में, जहाँ सुगंधित मधु बिखरा रहता है, बैठकर शासन करनेवाला इंद्र जब राज्य से वंचित होकर तुम्हारे श की छाया में शरणागत हुआ था और अपने कष्ट बताकर सहायता की अभ्यर्थना क तुम्हारे सम्मुख आया था, तब तुमने ही तो उसपर कृपादृष्टि फेरकर कुलपर्वत समान से युक्त 'शंबर' नामक असुर का समूल नाश करके इन्द्र को उसका राज्य दिलवाय इन्द्र आज जो राज्य कर रहा है, वह तुम्हारा दिया हुआ ही तो है।

जब विश्वामित्र महर्षि ने इस प्रकार कहा, तब दशरथ के हृदय में आनन्द समुद्र सा उमड़ पड़ा, जिसका अंत कोई देख नहीं सकता था, उन्होंने हाथ जोड़कर विनती की कि राज्यभार प्राप्त करने का जो फल हो सकता है, वह (आपके दर्शनों स प्राप्त हो चुका, अब मुझे जो करना हो, उसकी आज्ञा दें, तब विश्वामित्र ने उत्तर दि

मैं एक यज्ञ करना चाहता हूँ, उस यज्ञ की रक्षा उन राक्षसों से करनी उसमें विघ्न डालने आयेंगे, जिस प्रकार काम, क्रोध आदि दुर्गुण, मुनियों को इन उनके पास आ पहुँचते हैं, तुम अपने चार पुत्रों में श्यामल (श्रीरामचन्द्र) को, अडिग रहकर उन राक्षसों से मेरे यज्ञ की रक्षा करने का आदेश देकर मेरे साथ भे

सत्य के समान ही दो अक्षय तूणीर अपनी पर्वत जैसी मानो ऊँची भुजाओं से बाँध ओ (वाम कर में) विजय देनेवाला धनुष धारण किया।

(रामचन्द्र) अपने अनुज के साथ सभी प्रकार से (आयुधों से) सन्नद्ध हो विश्वामित्र की छाया के समान उनका अनुसरण करते हुए, अयोध्या का ऊँचा स्वर्णमय प्राची पारकर यों चले, मानो पिता दशरथ के प्राण शरीर छोड़कर जा रहे हों।

(वे तीनों) अयोध्या नगरी को, जिसकी समानता करने में देवताओं की अमरावत भी असमर्थ थी, पारकर सरयू नदी पर पहुँचे, जिसमें हंसों का कल्लोल नृत्यशाला में नर्त्तकिय के मजीरों की ध्वनि सा प्रतीत होता था।

(वे लोग) एक उपवन में ठहर गये, जिसके चारों तरफ के खेतों में ईख के डंठल के परस्पर संघर्ष से निकला हुआ मधुरस खेत की मेड़ों को पारकर बह रहा था और जहाँ भ्रमर कुड्मल समान स्तनोंवाली रमणियों के केशपाश जैसे दीखते थे।

जब सात सुनहले घोड़ों के रथ पर सवार होनेवाला सूर्य, अपने शिखरों पर ठह हुए मेघों के कारण, मुखपट्टधारी गज के जैसे शोभायमान दीखनेवाले रत्नाचल की ह चोटी पर पहुँचा, तब वे (तीनों) सरयू के पार पहुँच गये।

श्रीराम ने एक वन को देखा, जहाँ ऐसे यज्ञ होते थे, जिनमें देवता स्वयं आक अपनी इच्छा से आहुति ग्रहण करते थे, जहाँ का सारा वन धुएँ से भरा हुआ था, चर तत्त्वों के ज्ञाता भगवान् श्रीरामचन्द्र ने दिव्य और महातपस्वी विश्वामित्र को प्रणाम कर पूछा कि यह कौन सा वन है? (१—२४)

●

अध्याय ७

ताड़का-वध पटल

(विश्वामित्र ने कहा—) यह वही स्थान है, जहाँ मन्मथ ने चन्द्रशेखर शिव पर पुष्प बाण चलाये थे और शिव के ललाट नेत्र की क्रोधाग्नि ने उसे जलाकर भस्म कर दिया था उसी समय से वह (मन्मथ) अपने कुसुम समान अंग के दग्ध हो जाने से अनंग बन गया।

हे देवों के अधिष्ठाता! जब हस्तिचर्म धारण करनेवाले (शिवजी) ने उस मन्म को जलाकर भस्म कर दिया, तब उसका शरीर राख बनकर इस स्थान में बिखर गया। इसी लिए इस प्रान्त को अनंग देश कहते हैं और इसी कारण से इस आश्रम का नाम 'कामाश्रम पड़ गया है।

आसक्ति, इच्छा आदि का समूल नाश करके आत्मज्ञान के इच्छुक (भक्त लोग जन्म मरण के चक्कर से मुक्ति पाने के लिए जिस (शिव) का ध्यान करते हैं, उन्हीं (शिवजी) स्वयं इस स्थान पर रहकर तपस्या की थी फिर इस स्थान की पवित्रता का क्या कहना है?

जात और सूयास्त क समय अपने सुन्दर नगर म लौट आत , उस समय उनका स्वागत करन वाले नागरिक जन आनन्द के कारण मेघा क आगमन से उल्लसित नाचनेवाले मयूरा क समान दिखाइ दते थ।

अयाध्यापुरी की नारियाँ, वहाँ के पुरुष, जो उन नारियों क योग्य रूप क अनुरूप ही बलिष्ठ थे, तथा उनक बधुजन, कौसल्या एव दशरथ क सदृश ही अपन इष्टदवा स प्राथना करते कि ये कुमार चिरजीवी हो।

वदो क लिए अगोचर, अनन्य समान श्रीरामचन्द्र और उनक साथ सदा लगे रहनेवाले लक्ष्मण को आते दखकर लोग उपमा देते हुए कहते थ कि (रामचन्द्र का दशन म ही ऐसा प्रतीत होता है) मानो नीलसमुद्र या कालमेघ उज्ज्वल विकसित कमलपुज स शोभायमान हो, उत्तर दिशा म स्थित मेरु पर्वत क साथ आ रहा हो।

हमारे स्वामी रामचन्द्र अपने समक्ष आनेवाले नागरिकों का दखकर अपन मुख कमल को विकसित कर बडी कृपा के साथ पूछते कि तुम्हारे काय क्या ह ? कोइ कष्ट तो तुम्हे नही ह ? तुम लोगो की गृहिणियाँ एव ज्ञानवान् सतति सुखी और स्वस्थ ह न ?

नगर निवासी उत्तर देते—स्वामिन् ! हम बडे भाग्यवान् ह , आपक समान राजा का पाने पर हम किस बात का अभाव हो सकता हे ? हमारे लिए सुखी जीवन प्राप्त करना कोई बडी बात नही , (हमारी यही कामना हे कि) जबतक ब्रह्मा जीवित रह, तबतक आप हमारी आत्माओं पर एव सप्तद्वीप विशिष्ट भूतल पर शासन करत रह।

इस प्रकार, उस सुन्दर नगर के निवासियो की प्रशसा प्राप्त करत हुए तथा अपन भाइयो क द्वारा अनुगत रहते हुए त्रिमूर्त्तियो क नेता श्रीरामचन्द्र जीवन बिताने लगे।

राजाधिराज दशरथ समस्त ससार का अपने श्वेत छत्र की छाया म आश्रय दत हुए, नगाडो की जय ध्वनि सुनते हुए, मुनियो क द्वारा प्रशसित होत हुए, नि सीम आनन्द सागर मे गोते लगाते रहते। (१—१३८)

●

अध्याय ६

समर्पण पटल

(दशरथ चक्रवर्त्ती) आकाश का छूनेवाला रत्न खचित सभा म पहुँचे। पुष्पभार स लदे कल्पवृक्ष से सुशोभित स्वर्गलोक क निवासियो का स्वागत करनेवाले इद्र क सभा मडप की भ्राति हो गई।

(मडप म पहुँचकर महाराज दशरथ) परिशुद्ध और स्वर्ण (सिंहासन) सिंहासन पर विराजमान हुए। (उन्हे दखकर) गगन म सचरण करनेवाली अप्सराओं को भ्रम हो गया कि यही उनक अधिपति इद्र ह, फिर (दशरथ क) हजार नयन न होने स उनका सदह दूर हुआ।

जात और सूयास्त क समय अपने सुन्दर नगर म लौट आते, उस समय उनका स्वागत करने वाले नागरिक जन आनन्द के कारण मेघों क आगमन से उल्लसित होनेवाले मयूर के समान दिखाई दते थे।

अयाध्यापुरी की नारियाँ, वहाँ क पुरुष, जो उन नारियों के योग्य होने के अनुरूप ही बलिष्ठ थे, तथा उनक बधुजन, कोसल्या एव दशरथ क सदृश ही अपने हृदय से प्रार्थना करते कि ये कुमार चिरजीवी हों।

वदों क लिए अगोचर, अनन्य समान श्रीरामचन्द्र और उनके साथ सदा लगे रहनेवाले लक्ष्मण का आते दखकर लोग उपमा दत हुए कहत थ कि (रामचन्द्र को देखने से ही ऐसा प्रतीत होता है) मानो नीलसमुद्र या कालमेघ उज्ज्वल विकसित कमलपत्र से शोभायमान हो, उत्तर दिशा म स्थित मेरु पवत क साथ आ रहा हो।

हमारे स्वामी रामचन्द्र अपने समक्ष आनेवाले नागरिकों का दखकर अपने मुख कमल को विकसित कर बडी कृपा के साथ पूछते कि तुम्हारे काय क्या ह? कोई कष्ट तो तुम्हे नहीं ह? तुम लोगों की गृहिणियाँ एव ज्ञानवान् सतति सुखी और स्वस्थ ह न?

नगर निवासी उत्तर देते—स्वामिन्! हम बड भाग्यवान् ह, आपक समान राजा को पाने पर हम किस बात का अभाव हो सकता ह? हमारे लिए सुखी जीवन प्राप्त करना कोई बडी बात नहीं, (हमारी यही कामना हे कि) जबतक ब्रह्मा जीवित रह, तबतक आप हमारी आत्माओं पर एव सप्तद्वीप विशिष्ट भूतल पर शासन करत रह।

इस प्रकार, उस सुन्दर नगर के निवासियों की प्रशसा प्राप्त करत हुए तथा अपने भाइयों क द्वारा अनुगत रहते हुए त्रिमूर्त्तियों क नेता श्रीरामचन्द्र जीवन बिताने लगे।

राजाधिराज दशरथ समस्त ससार का अपने श्वत छत्र की छाया म आश्रय देत हुए, नगाडों की जय ध्वनि सुनते हुए, मुनियों क द्वारा प्रशसित होत हुए, निःसीम आनन्द सागर मे गोते लगाते रहते। (१—१२८)

●

अध्याय ६

समर्पण पटल

(दशरथ चक्रवर्त्ती) आकाश का छूनेवाले रत्न खचित सभा मडप म गए। पुष्पभार स लदे कल्पवृक्ष से सुशोभित स्वगलोक क निवासियों का भ्रम होने लगा कि यह इद्र क सभा मडप की भ्राति हो गइ।

(मडप म पहुँचकर महाराज दशरथ) परिशुद्ध और कोमल (रत्न जटित) सिंहासन पर विराजमान हुए। (उन्हे दखकर) गगन म सचरण करनेवाले अमरगणों को भी सदेह हो गया कि यही उनक अधिपति इद्र ह, फिर (दशरथ क) चार नयन न होने से उनका सदेह दूर हुआ।

उस सिंहासनवाली दशरथ के सामने एकाएक बड़े क्रोधी विश्वामित्र ऋषि आ उपस्थित हुए, जिन्होंने कभी सभी प्राणियों और लोकों का अलग सर्जन करके नये देवगण तथा नये जगों की भी सृष्टि करने का उपक्रम किया था।

मुनि के आते ही, दशरथ झट अपने आसन से उठकर उनके चरणों में नत हुए जैसे कमलासन (ब्रह्मा) के आगमन पर इंद्र उठ खड़ा हुआ हो, तब दशरथ के वक्ष पर (उनके उठने के साथ) हार भी हिलडुलकर यों किरण फैलाने लगे जिससे सूर्य की कांति भी पराभूत हो जाती थी।

(दशरथ ने मुनि को) प्रणाम कर उन्हें रत्नों से जड़े हुए स्वर्णासन पर बड़े प्रेम से बिठाया और उनके चरणकमल युगल की अर्चना करके, हाथ जोड़कर कहा कि (आपके आगमन से) मेरे प्रारब्ध कर्म की परंपरा अभी टूट गई। (अर्थात्, मैं कर्मबंधन से मुक्त हो गया।

हे महात्मन्! आप इस नगर में सुलभता से पधारे और मैं आपकी परिक्रमा करके आपको प्रणाम कर सका, इस सौभाग्य का कारण यदि इस देश का किया हुआ तप मानें, तो वह नहीं है या मेरे किये अच्छे कर्म मानें, तो वह भी नहीं है, हाँ इसका कारण मेरे पूर्वजों के द्वारा किया हुआ तप ही हो सकता है। जब दशरथ ने इस प्रकार कहा, तब विश्वामित्र ने उत्तर दिया—

शत्रुओं का वध करके उनके मांस से युक्त भाला धारण करनेवाले, हे (दशरथ)! मुझ जैसे मुनियों और देवताओं पर यदि कोई विपदा आ पड़े, तो सभी पर्वतों का उपहास करनेवाला धवल हिमाचल, क्षीरसागर, कमलासन के नगर (सत्य लोक) तथा कल्पवृक्ष से सुशोभित अमरावती के सदृश सुन्दर अट्टालिकाओं से विभूषित अयोध्या नगरी को छोड़, शरण देनेवाला स्थान क्या अन्य कोई हो सकता है?

हे चक्रवर्ती! मनोहर कल्पवृक्ष कि छाया में, जहाँ सुगंधित मधु यत्र तत्र बिखरा रहता है, बैठकर शासन करनेवाला इंद्र जब राज्य से वंचित होकर तुम्हारे श्वेतच्छत्र की छाया में शरणागत हुआ था और अपने कष्ट बताकर सहायता की अभ्यर्थना करते हुए तुम्हारे सम्मुख आया था, तब तुमने ही तो उसपर कृपादृष्टि फेरकर कुलपर्वत समान भुजाओं से युक्त 'शंबर' नामक असुर का समूल नाश करके इंद्र को उसका राज्य दिलवाया था, इन्द्र आज जो राज्य कर रहा है, वह तुम्हारा दिया हुआ ही तो है।

जब विश्वामित्र महर्षि ने इस प्रकार कहा, तब दशरथ के हृदय में आनन्द का एक समुद्र सा उमड़ पड़ा, जिसका अंत कोई देख नहीं सकता था, उन्होंने हाथ जोड़कर मुनि से विनती की कि राज्यभार प्राप्त करने का जो फल हो सकता है, वह (आपके दर्शनों से) मुझे प्राप्त हो चुका, अब मुझे जो करना हो, उसकी आज्ञा दें, तब विश्वामित्र ने उत्तर दिया—

मैं एक यज्ञ करना चाहता हूँ, उस यज्ञ की रक्षा उन राक्षसों से करनी है, जो उसमें विघ्न डालने आयेंगे, जिस प्रकार काम, क्रोध आदि दुर्गुण, मुनियों को डराते हुए उनके पास आ पहुँचते हैं, तुम अपने चार पुत्रों में श्यामल (श्रीरामचन्द्र) को, युद्ध में अडिग रहकर उन राक्षसों से मेरे यज्ञ की रक्षा करने का आदेश देकर मेरे साथ भेज दो।

जाते और सूर्यास्त के समय अपने सुन्दर नगर में लौट आते, उस समय उनका स्वागत करने वाले नागरिक जन आनन्द के कारण मेघों के आगमन से उल्लसित [illegible] शस्य के समान दिखाई देते थे।

अयोध्यापुरी की नारियाँ, वहाँ के पुरुष, जो [illegible] के अनुरूप ही वलिष्ठ थे, तथा उनके बंधुजन, कौसल्या एवं दशरथ के सदृश [illegible] प्रार्थना करते कि ये कुमार चिरजीवी हों।

वेदों के लिए अगोचर, अनन्य समान श्रीरामचन्द्र और उनके साथ [illegible] रहनेवाले लक्ष्मण को आते देखकर लोग उपमा देते हुए कहते थे कि (रामचन्द्र को देखने से ही ऐसा प्रतीत होता है) मानो नीलसमुद्र या कालमेघ उज्ज्वल विकसित कमलपुंज से शोभायमान हो, उत्तर दिशा में स्थित मेरु पर्वत के साथ आ रहा हो।

हमारे स्वामी रामचन्द्र अपने समक्ष आनेवाले नागरिकों को देखकर अपने मुख कमल को विकसित कर बड़ी कृपा के साथ पूछते कि तुम्हारे कार्य क्या हैं? कोई कष्ट तो तुम्हें नहीं है? तुम लोगों की गृहिणियाँ एवं ज्ञानवान् संतति सुखी और स्वस्थ हैं न?

नगर निवासी उत्तर देते—स्वामिन्! हम बड़े भाग्यवान् हैं, आपके समान राजा को पाने पर हम किस बात का अभाव हो सकता है? हमारे लिए सुखी जीवन प्राप्त करना कोई बड़ी बात नहीं, (हमारी यही कामना है कि) जबतक ब्रह्मा जीवित रहें, तबतक आप हमारी आत्माओं पर एवं सप्तद्वीप विशिष्ट भूतल पर शासन करते रहें।

इस प्रकार, उस सुन्दर नगर के निवासियों की प्रशंसा प्राप्त करते हुए तथा अपने भाइयों के द्वारा अनुगत रहते हुए त्रिमूर्त्तियों के नेता श्रीरामचन्द्र जीवन बिताने लगे।

राजाधिराज दशरथ समस्त संसार को अपने श्वेत छत्र की छाया में आश्रय देते हुए, नगाड़ों का जय ध्वनि सुनते हुए, मुनियों के द्वारा प्रशंसित होते हुए निःसीम आनन्द सागर में गोते लगाते रहते। (१—१३८)

●

अध्याय ६

समर्पण पटल

(दशरथ चक्रवर्त्ती) आकाश को छूनेवाले रत्नखचित सभा मण्डप में [illegible]। पुष्पभार से लदे कल्पवृक्ष से सुशोभित स्वर्गलोक के निवासियों को [illegible] मंडप [illegible] इंद्र के सभा मंडप की भ्रांति हो गई।

(मंडप में पहुँचकर महाराज दशरथ) परिशुद्ध और कोमल ([illegible]) [illegible] पर विराजमान हुए। (उन्हें देखकर) गगन में संचरण करनेवाली अप्सराओं को [illegible] हो गया कि यही उनके अधिपति इंद्र हैं, फिर (दशरथ के) [illegible] संदेह दूर हुआ।

उस सिन्धली दशरथ के सामने एकाएक बड़े प्रभावी विश्वामित्र ऋषि आ उपस्थित हुए, जिन्होंने कभी सभी प्राणियों और लोकों का अलग सर्जन करके नये देवगण तथा नये ब्रह्मा की भी सृष्टि करने का उपक्रम किया था।

मुनि के आते ही, दशरथ झट अपने आसन से उठकर उनके चरणों में नत हुए जैसे कमलासन (ब्रह्मा) के आगमन पर इन्द्र उठ खड़ा हुआ हो, तब दशरथ के वक्ष पर (उनके उठने के साथ) हार भी झिलमिलाकर यों किरण फैलाने लगे, जिससे सूर्य की कांति भी परास्त हो जाती थी।

(दशरथ ने मुनि को) प्रणाम कर उन्हें रत्नों से जटे हुए स्वर्णासन पर बड़े प्रेम से बिठाया और उनके चरणकमल युगल की अर्चना करके, हाथ जोड़कर कहा कि (आपके आगमन से) मेरे प्रारब्ध कर्म की परंपरा अभी टूट गई। (अर्थात्, मैं कर्म बंधन से मुक्त हो गया।

हे महात्मन्! आप इस नगर में सुलभता से पधारे और मैं आपकी परिक्रमा करके आपको प्रणाम कर सका इस सौभाग्य का कारण यदि इस देश का किया हुआ तप मानें, तो वह नहीं है या मेरे किये अच्छे कर्म मानें, तो वह भी नहीं है, हाँ इसका कारण मेरे पूर्वजों के द्वारा किया हुआ तप ही हो सकता है। जब दशरथ ने इस प्रकार कहा, तब विश्वामित्र ने उत्तर दिया—

शत्रुओं का वध करके उनके मांस से युक्त भाला धारण करनेवाले, हे (दशरथ)! मुझ जैसे मुनियों और देवताओं पर यदि कोई विपदा आ पड़े, तो सभी पर्वतों का उपहास करनेवाला धवल हिमाचल, क्षीरसागर, कमलासन के नगर (सत्य लोक) तथा कल्पवृक्ष से सुशोभित अमरावती के सदृश सुन्दर अट्टालिकाओं से विभूषित अयोध्या नगरी को छोड़, शरण देनेवाला स्थान क्या अन्य कोई हो सकता है?

हे चक्रवर्ती! मनोहर कल्पवृक्ष कि छाया में, जहाँ सुगंधित मधु यत्र तत्र बिखरा रहता है, बैठकर शासन करनेवाला इंद्र जब राज्य से वंचित होकर तुम्हारे श्वेतच्छत्र की छाया में शरणागत हुआ था और अपने कष्ट बताकर सहायता की अभ्यर्थना करते हुए तुम्हारे सम्मुख आया था, तब तुमने ही तो उसपर कृपादृष्टि फेरकर कुलपर्वत समान भुजाओं से युक्त 'शंबर' नामक असुर का समूल नाश करके इंद्र को उसका राज्य दिलवाया था, इन्द्र आज जो राज्य कर रहा है, वह तुम्हारा दिया हुआ ही तो है।

जब विश्वामित्र महर्षि ने इस प्रकार कहा, तब दशरथ के हृदय में आनन्द का एक समुद्र सा उमड़ पड़ा, जिसका अंत कोई देख नहीं सकता था, उन्होंने हाथ जोड़कर मुनि से विनती की कि राज्यभार प्राप्त करने का जो फल हो सकता है, वह (आपके दर्शनों से) मुझे प्राप्त हो चुका, अब मुझे जो करना हो, उसकी आज्ञा दें, तब विश्वामित्र ने उत्तर दिया——

मैं एक यज्ञ करना चाहता हूँ, उस यज्ञ की रक्षा उन राक्षसों से करनी है, जो उसमें विघ्न डालने आयेंगे, जिस प्रकार काम, क्रोध आदि दुर्गुण, मुनियों को डराते हुए उनके पास आ पहुँचते हैं, तुम अपने चार पुत्रों में श्यामल (श्रीरामचन्द्र) को, युद्ध में अडिग रहकर उन राक्षसों से मेरे यज्ञ की रक्षा करने का आदेश देकर मेरे साथ भेज दो।

-स प्रकार विश्वामित्र न दशरथ क मन म पीडा उत्प- करत ग क । गाग। -म ी प्राणो की याचना कर रहा हो।

अपरिमेय तपस्या सपन्न विश्वामित्र क वचन (दशरथ को) ऐग ।ग ग।। शत्र प्रयुक्त भाले से उत्पन्न मर्मस्थान क घाव मे लूक घुस गया हो। भतर ।। पो । । । जानेवाले उनके प्राण दोलायमान हो उठे, जिमम उन्हें ऐमी वेदना ई कि । । म । अधा आँखे पाकर फिर खो बैठा हो।

निरतर बहनेवाले मधु क छत्ते क ममान मधुधारी मालाओ म मशोभित -म चक्रवर्त्ती ने किमी प्रकार अपनी पीडा को त्यागकर मुनि म निवेदन किया । यह राम तो अभी छोटा है, शस्त्र चलाने का अभ्याम भी इसे नही है, यदि रा। ही आपका उद्देश्य हो, तो अपनी जटा क एक ओर मे गगा को प्रवाहित करनेवाला शिव चतुर्मुख ब्रह्मा अथवा पुरदर भी आकर विघ्नकारी बने, तो उन विघ्नो का भी । आपके यज्ञ की रक्षा करूगा। आप यज्ञ करने के लिए प्रस्तुत हो जाये।

दशरथ के इस प्रकार कहते ही मुनि, जो किसी ममय अपर सृष्टि करन क लिए उद्यत हो गये थे, क्रोध से उबल पडे, देवता यह आशका करने लग कि सृष्टि का अन्तकाल आ गया है, आकाश म चमकनेवाला सूर्य भी अदृश्य हो गया, जहाँ तहा स्थावर वस्तुएँ भी घूर्णायित होने लगी, (मुनि की) भौहो के घने कोने (उनक) उठे हुए ललाट पर फैल गये, नयन रक्त वर्ण हो गये, सभी दिशाओ म अधेरा छा गया।

मुनि (विश्वामित्र) को क्रुद्ध जानकर (वमिष्ठ ने) उनसे प्रार्थना की । मुनि क्षमा करे, और (दशरथ से) कहा—जब तुम्हारे पुत्र का अप्राप्य हित स्वय आकर प्राप्त । रहा है, तब क्या उसका अवरोध करना उचित है?

हे राजन्। आज वह ममय आया है, जब तुम्हारे पुत्र श्रीराम को ... उमी प्रकार प्राप्त हो रही है, जिम प्रकार वर्षा मे बढी हुई नदी की ... (...) ... म जा मिलती है। (वसिष्ठ के) ये वचन सुनकर

और गुरु की आज्ञा मानकर जयशील नरपति ने (अपने मेवको को) आज्ञा दी कि तुम लोग जाकर राम को यहाँ ले आओ, सेवको ने जाकर राम मे निवेदन किया कि चक्रवर्त्ती आपको बुला रहे है, ममाचार पाकर ज्ञानातीत श्रीरामचन्द्र अपने पिता क निकट आये।

दशरथजी ने रामचन्द्र को तथा उनक साथ आये हुए भाई लक्ष्मण को, चारो वेदो म निष्णात विश्वामित्र को दिखाकर कहा—प्रभो। इनके सत्पिता आप ही है, अनुपम माता आप ही हैं, मैंने इन्हे आपक सुपुर्द कर दिया, इनक अनुकूल जो भी कार्य है। इनमे लीजिए। यो कहकर मुनिवर को अपने पुत्र माप दिये।

कुमारो को प्राप्त करके (कामादि) दुर्गुणो मे रहित विश्वामित्र का क्रोध शान्त । गया। उन्होने (दशरथ को) आशीर्वाद दिया। फिर कुमारो से कहा ... जाकर यज्ञ सम्पन्न करेंगे। तीनो वहाँ से चलने को उद्यत हुए।

मभी लोको की रक्षा करवाले (राम) ने विजयप्रद ... अपनी कटि म बाधा

मत्य क समान ही ना अनय तूणीर अपनो पवत जैसी गोनो ऊची भुजाआ म बाँध और (राम कल्प) विजय दिलानेवाला धनुष धारण किया।

(रामचन्द्र) अपन अनज क साथ सभी प्रकार स (आयुधा स) सन्नद्ध हो, विश्वामित्र की आज्ञा क अनुसार उनका अनुसरण करत हुए, अयोध्या का ऊचा स्वर्णमय प्राचीर पारकर या चले, मानो पिता दशरथ क प्राण शरीर छोडकर जा रहे हो।

(व तीनो) अयोध्या नगरी को, जिसकी समानता करन म दवताओ की अमरावती भी असमर्थ थी, पारकर सरयू नदी पर पहुँचे, जिसम हसो का कल्लोल नृत्यशाला म नर्त्तकियो क मजीरो की ध्वनि सा प्रतीत होता था।

(वे लोग) एक उपवन म ठहर गये, जिसके चारो तरफ क खेतो म ईख क डठलो क परस्पर सघर्ष स निकला हुआ मधुरस खेत की मेडो को पारकर बह रहा था और जहाँ क भ्रमर कुसुमस समान स्नाताली रमणियो क केशपाश जैसे दीखत थे।

जब सात सुनहले घोडो के रथ पर सवार होनेवाला सूर्य, अपनी शिखरो पर ठहर हुए मेघो क कारण, मुखपट्टधारी गज क जैसे शोभायमान दीखनेवाला अस्ताचल की दृढ चोटी पर पहुँचा तब व (तीनो) सरयू क पार पहुँच गये।

श्रीराम न एक वन को देखा, जहाँ ऐसे यज्ञ होत थे, जिनम दवता स्वय आकर अपनी इच्छा से आहुति ग्रहण करत थे, जहाँ का सारा वातावरण शान्ति से भरा हुआ था, चरम तत्त्वो क ज्ञाता भगवान श्रीरामचन्द्र ने दिव्य और महातपस्वी विश्वामित्र को प्रणाम करक पूछा कि यह कौन सा वन है? (१–२८)

●

अध्याय ७

ताडका-वध पटल

(विश्वामित्र न कहा—) यह वही स्थान है, जहाँ मन्मथ न चन्द्रशेखर शिव पर पुष्प बाण चलाये थे और शिव के ललाट नत्र की क्रोधाग्नि ने उसे जलाकर भस्म कर दिया था। उसी समय से वह (मन्मथ) अपन कुसुम समान अग क दग्ध हो जान स अनग बन गया।

हे देवो के अधिष्ठाता! जब हस्तिचर्म धारण करनवाले (शिवजी) ने उस मन्मथ को जलाकर भस्म कर दिया, तब उसका शरीर राख बनकर इस स्थान म बिखर गया। इसी लिए इस प्रान्त को अनग देश कहते हैं और इसी कारण से इस आश्रम का नाम 'कामाश्रम' पड़ गया है।

आसक्ति, इच्छा आदि का समूल नाश करक आत्मज्ञान क इच्छुक (भक्त लोग) जन्म मरण के चक्कर से मुक्ति पाने के लिए जिस (शिव) का ध्यान करत हैं, उन्ही (शिवजी) ने स्वय इस स्थान पर रहकर तपस्या की थी, फिर इस स्थान की पवित्रता का क्या कहना है?

न्स प्रकार विश्वामित्र न दशरथ क मन म पीडा उत्पन्न करत [illegible] ऐस [illegible]
प्राणा की याचना कर रहा हो।

अपरिमेय तपस्या सपन्न विश्वामित्र क वचन (दशरथ को) [illegible] शत्रु
प्रयुक्त भाले से उत्पन्न मर्मस्थान क घाव म लूक घुस गया [illegible] [illegible]
जानेवाले उनके प्राण दोलायमान हो उठे, जिसस उन्हे ऐसी वेदना [illegible]
अधा आँखे पाकर फिर खो बैठा हो।

निरतर बहनेवाले मधु क छत्त क ममान मधुस्रावी मालाओ स सुशोभित [illegible]
चक्रवर्ती ने किसी प्रकार अपनी पीडा को दबाकर मुनि स निवेदन किया [illegible]
यह राम तो अभी छोटा है, शस्त्र चलाने का अभ्यास भी इसे नही है, [illegible]
ही आपका उद्देश्य हो, तो अपनी जटा के एक ओर से गगा को प्रवाहित करनेवाला शिव
चतुर्मुख ब्रह्मा अथवा पुरदर भी आकर विघ्नकारी बने, तो उन विघ्नो का भी [illegible]
आपके यज्ञ की रक्षा करूगा। आप यज्ञ करने के लिए प्रस्तुत हो जाय।

दशरथ के इस प्रकार कहते ही मुनि, जो किसी समय अपर सृष्टि करन क लिए
उद्यत हो गये थे, क्रोध से उबल पडे, देवता यह आशका करने लगे कि सृष्टि का
अन्तकाल आ गया है, आकाश म चमकनेवाला सूर्य भी अदृश्य हो गया, जहाँ तहाँ
स्थावर वस्तुएँ भी घूर्णायित होने लगी, (मुनि की) भौहो के घने कोने (ऊपर) उठे हुए
ललाट पर फैल गये, नयन रक्त वर्ण हो गये, सभी दिशाओ म अधेरा छा गया।

मुनि (विश्वामित्र) को क्रुद्ध जानकर (वसिष्ठ ने) उनसे प्रार्थना की [illegible]
क्षमा कर, और (दशरथ से) कहा—जब तुम्हारे पुत्र को अप्राप्य हित स्वय आकर प्राप्त [illegible]
रहा है, तब क्या उसका अवरोध करना उचित है ?

हे राजन्! आज वह समय आया है, जब तुम्हारे पुत्र श्रीराम का अनन्त [illegible]
उसी प्रकार प्राप्त हो रही है, जिस प्रकार वर्षा से बढी हुई नदी की [illegible] (स्वय) सागर
म जा मिलती है। (वसिष्ठ के) ये वचन सुनकर

और गुरु की आज्ञा मानकर जयशील नरपति न (अपने सेवको को) आज्ञा दी
कि तुम लोग जाकर राम को यहाँ ले आओ, सेवको न जाकर राम स निवेदन किया [illegible]
चक्रवर्ती आपको बुला रहे हैं, समाचार पाकर ज्ञानातीत श्रीरामचन्द्र अपन पिता क [illegible]
आये।

दशरथजी ने रामचन्द्र को तथा उनके साथ आये हुए भाई लक्ष्मण को, [illegible]
वेदो म निष्णात विश्वामित्र को दिखाकर कहा—प्रभो! इनके सतिपता आप ही [illegible]
अनुपम माता आप ही हैं, मैंने इन्हे आपके सुपुर्द कर दिया, इनके अनुकूल जो भी कार्य हो
इनसे लीजिए। यो कहकर मुनिवर को अपने पुत्र सौप दिये।

कुमारो को प्राप्त करके (कामादि) दुर्गुणो से रहित विश्वामित्र का [illegible] शान्त [illegible]
गया। उन्होने (दशरथ को) आशीर्वाद दिया। फिर कुमारो से [illegible] म
जाकर यज्ञ सम्पन्न करेंगे। तीनो वहाँ से चलने को उद्यत हुए।

सभी लोको की रक्षा करनेवाले (राम) ने विजयप्रद खड्ग अपनी [illegible]

शल्य के समान होते हुए तृणीर अपनी पर्वत जैसी दोनों ऊँची भुजाओं से बाँध और (बाम कर में) विशाल धनुष धारण किया।

(रामचन्द्र) अपने अनुज के साथ सभी प्रकार से (आयुधों से) सन्नद्ध हो, विश्वामित्र की आज्ञा के समान उनका अनुसरण करते हुए, अयोध्या का ऊँचा स्वर्णमय प्राचीर पारकर यों चले, मानो पिता दशरथ के प्राण शरीर छोड़कर जा रहे हों।

(वे तीनों) अयोध्या नगरी को, जिसकी समानता करने में देवताओं की अमरावती भी असमर्थ थी, पारकर सरयू नदी पर पहुँचे, जिसमें रम्भा का कल्लोल नृत्यशाला में नर्त्तकियों के संगीत की ध्वनि सा प्रतीत होता था।

(वे लोग) एक उपवन में ठहर गये, जिसके चारों तरफ के खेतों में ईख के डंठलों के परस्पर संघर्ष से निकला हुआ मधुरस खेत की मेड़ों को पारकर बह रहा था और जहाँ के भ्रमर इन्द्रनील समान श्यामवर्णी रमणियों के केशपाश जैसे दीखते थे।

जब सात सुनहले घोड़ों के रथ पर सवार होनेवाला सूर्य, अपने शिखरों पर ठहरे हुए मेघों के कारण, मुखपट्टधारी गज के जैसे शोभायमान दीखनेवाले उदयाचल की दृढ़ चोटी पर पहुँचा, तब वे (तीनों) सरयू के पार पहुँच गये।

श्रीराम ने एक वन को देखा, जहाँ ऐसे यज्ञ होते थे, जिनमें देवता स्वयं आकर अपनी इच्छा से आहुति ग्रहण करते थे, जहाँ का सारा वन पुण्य से भरा हुआ था, चरम तत्त्वों के ज्ञाता भगवान श्रीरामचन्द्र ने दिव्य और महातपस्वी विश्वामित्र को प्रणाम करके पूछा कि यह कौन सा वन है? (१–२८)

●

अध्याय ७

ताडका-वध पटल

(विश्वामित्र ने कहा—) यह वही स्थान है, जहाँ मन्मथ ने चन्द्रशेखर शिव पर पुष्प बाण चलाये थे और शिव के ललाट नेत्र की क्रोधाग्नि ने उसे जलाकर भस्म कर दिया था। उसी समय से वह (मन्मथ) अपने कुसुम समान अंग के दग्ध हो जाने से अनंग बन गया।

हे देवों के अधिष्ठाता! जब हस्तिचर्म धारण करनेवाले (शिवजी) ने उस मन्मथ को जलाकर भस्म कर दिया, तब उसका शरीर राख बनकर इस स्थान में बिखर गया। इसी लिए इस प्रान्त को अनंग देश कहते हैं और इसी कारण से इस आश्रम का नाम 'कामाश्रम' पड़ गया है।

आसक्ति, इच्छा आदि का समूल नाश करके आत्मज्ञान के इच्छुक (भक्त लोग) जन्म मरण के चक्कर से मुक्ति पाने के लिए जिस (शिव) का ध्यान करते हैं, उन्ही (शिवजी) ने स्वयं इस स्थान पर रहकर तपस्या की थी फिर इस स्थान की पवित्रता का क्या कहना है?

–स प्रकार विश्वामित्र न दशरथ क मन म पीडा उत्पन्न करत ग ऐ, मानो यम ? प्राणो की याचना कर रहा हो।

अपरिमेय तपस्या सपन्न विश्वामित्र क वचन (दशरथ का) लग लग भा।। शत्रु प्रयुक्त भाले मे उत्पन्न मर्मस्थान क घाव म लूक घुस गया हो। अतर ओ प। । । जिनका जानेवाले उनके प्राण दोलायमान हो उठे, जिमम उन्हे ऐमी वेदना , जैसे की ाम की अधा आँखे पाकर फिर खो बैठा हो।

निरतर बहनेवाले मधु क छत्त क ममान मधुस्रावी मालाओ म सुशोभित ग चक्रवर्ती ने किमी प्रकार अपनी पीडा को दबाकर मुनि स निवेदन किया " महात्मन। यह राम तो अभी छोटा है, शस्त्र चलाने का अभ्याम भी इमे नही , यदि राक्षमो का वध ही आपका उद्दश्य हो, तो अपनी जटा क एक ओर से गगा को प्रवाहित करनेवाला शिव चतुर्मुख ब्रह्मा अथवा पुरदर भी आकर विघ्नकारी बने, तो उन विघ्नो का भी विघ्न बनकर म आपके यज्ञ की रक्षा करूगा। आप यज्ञ करने के लिए प्रस्तुत हो जाय।

दशरथ के इम प्रकार कहते ही मुनि, जो किसी ममय अपर सृष्टि करन क लिए उद्यत हो गये थे, क्रोध से उबल पडे, देवता यह आशका करने लगे कि सृष्टि का अन्तकाल आ गया है, आकाश म चमकनेवाला सूर्य भी अदृश्य हो गया, जहाँ तक स्थावर वस्तुएँ भी घूर्णायित होने लगी, (मुनि की) भोहो के घने कोने (ऊपर) उठे हुए ललाट पर फैल गये, नयन रक्त वर्ण हो गये, मभी दिशाओ म अधेरा छा गया।

मुनि (विश्वामित्र) को क्रुद्ध जानकर (वमिष्ठ ने) उनम प्रार्थना की । क । मुनि क्षमा कर, और (दशरथ से) कहा—जब तुम्हारे पुत्र का अप्राप्य हित स्वय आकर प्राप्त हो रहा हे, तब क्या उसका अवरोध करना उचित हे ?

हे राजन्। आज वह ममय आया है, जब तम्हारे पुत्र श्रीराम को अनन्त विभूति उमी प्रकार प्राप्त हो रही है, जिम प्रकार वर्षा से बढी हुई नदी की धाराए (स्वय) मागर म जा मिलती ह। (वसिष्ठ के) ये वचन सुनकर–

ओर गुरु की आज्ञा मानकर जयशील नरपति ने (अपने सेवको को) आज्ञा दी कि तुम लोग जाकर राम को यहाँ ले आओ, सेवको ने जाकर राम म निवेदन किया कि चक्रवर्ती आपको बुला रहे हें, ममाचार पाकर ज्ञानातीत श्रीरामचन्द्र अपने पिता के निकट आये।

दशरथजी ने रामचन्द्र को तथा उनक साथ आये हुए भाई लक्ष्मण को, चारो वेदो म निष्णात विश्वामित्र को दिखाकर कहा—प्रभो। इनक माँ-पिता आप ही है अनुपम माता आप ही हैं, मैंने इन्हे आपक सुपुर्द कर दिया, इनक अनकूल जो भी कार्य हो उनमे लीजिए। यो कहकर मुनिवर को अपने पुत्र मौप दिये।

कुमारो को प्राप्त करके (कामादि) दुर्गुणो से रहित विश्वामित्र का क्रोध शात हो गया। उन्होने (दशरथ को) आशीर्वाद दिया। फिर कुमारो से कहा चलो हम जाकर यज्ञ मम्पन्न करेंगे। तीनो वहाँ से चलने को उद्यत हुए।

मभी लोको की रक्षा करनेवाले (राम) ने विजयप्रद खड्ग अपनी कटि म बाधा

सत्य के समान थी । उनके तूणीर अपने पर्वत जैसी भारी ऊँची भुजाओं में बाँये ओर (वाम कंधे में) दिखाई दे रहे थे। धनुष धारण किया।

(रामचन्द्र) अपने अनुज के साथ सभी प्रकार से (आयुधों से) सन्नद्ध हो, विश्वामित्र की छाया के समान उनका अनुसरण करते हुए, अयोध्या का ऊँचा स्वर्णमय प्राचीर पारकर आगे चले, माता पिता दशरथ के प्राण शरीर छोडकर जा रहे हों।

(वे तीनों) अयोध्या नगरी को, जिसकी समानता करने में देवताओं की अमरावती भी असमर्थ थी, पारकर सरयू नदी पर पहुँचे, जिसमें हंसों का कल्लोल नृत्यशाला में नर्त्तकियों के मंजीरों की ध्वनि सा प्रतीत होता था।

(वे लोग) एक उपवन में ठहर गये, जिसके चारों तरफ के खेतों में ईख के डंठलों के परस्पर संघर्ष से निकला हुआ मधुरस खेत की मेडों को पारकर बह रहा था और जहाँ के भ्रमर इन्द्रनील समान स्तनोंवाली रमणियों के केशपाश जैसे दीखते थे।

जब सात सुनहले घोडों के रथ पर सवार होनेवाला सूर्य, अपने शिखरों पर ठहरे हुए मेघों के कारण, मुखपट्टधारी गज के जैसे शोभायमान दीखनेवाले उदयाचल की हरी चोटी पर पहुँचा, तब वे (तीनों) सरयू के पार पहुँच गये।

श्रीराम ने एक वन को देखा, जहाँ ऐसे यज्ञ होते थे, जिनमें देवता स्वयं आकर अपनी इच्छा से आहुति ग्रहण करते थे, जहाँ का सारा वायु गुग्गुल से भरा हुआ था, चरम तत्त्वों के ज्ञाता भगवान श्रीरामचन्द्र ने दिव्य और महातपस्वी विश्वामित्र को प्रणाम करके पूछा कि यह कौन सा वन है? (१-२८)

●

अध्याय ७

ताडका-वध पटल

(विश्वामित्र ने कहा-) यह वही स्थान है, जहाँ मन्मथ ने चन्द्रशेखर शिव पर पुष्प बाण चलाये थे और शिव के ललाट नेत्र की क्रोधाग्नि ने उसे जलाकर भस्म कर दिया था। उसी समय से वह (मन्मथ) अपने कुसुम समान अंग के दग्ध हो जाने से अनंग बन गया।

हे देवों के अधिष्ठाता! जब हस्तिचर्म धारण करनेवाले (शिवजी) ने उस मन्मथ को जलाकर भस्म कर दिया, तब उसका शरीर राख बनकर इस स्थान में बिखर गया। इसी लिए इस प्रान्त को अनंग देश कहते हैं और इसी कारण से इस आश्रम का नाम 'कामाश्रम' पड गया है।

आसक्ति, इच्छा आदि का समूल नाश करके आत्मज्ञान के इच्छुक (भक्त लोग) जन्म मरण के चक्कर से मुक्ति पाने के लिए जिस (शिव) का ध्यान करते हैं, उन्ही (शिवजी) ने स्वयं इस स्थान पर रहकर तपस्या की थी फिर इस स्थान की पवित्रता का क्या कहना है?

विश्वामित्र की बात सुनकर राम और लक्ष्मण आश्चर्य में पड़ गये [illegible] उस स्थान में पहुँचे, वहाँ पहुँचकर उन्होंने, उनके स्वागत के लिए आये [illegible] मुनियों की सत्संगति में पूरा दिन व्यतीत किया और (दूसरे दिन) जब [illegible] प्रकाशमान सूर्य उदयाचल के शिखर पर चढ़ने लगा, तब (वे वहाँ से प्रस्थान करके) [illegible] मरुस्थल में पहुँचे, जो (धूप में) तप रहा था।

उस मरुस्थल में ग्रीष्म ऋतु को छोड़कर अन्य कोई ऋतु नहीं [illegible] सूर्यदेव भूमि का समस्त सार पीने के लिए विजय ध्वजा फहराते हुए सञ्चरण कर [illegible] के ताप के कारण वह स्थान ऐसा हो गया था कि यदि अग्निदेव भी उसका स्मरण कर [illegible] उनका मन भी कुम्हला उठे और उसकी ओर देखे तो उनके नेत्र भी झुलस जाय।

यदि कोई उस मरुभूमि की उष्णता का वर्णन करना चाहे, तो वर्णन करनेवाले की जिह्वा झुलस जाय, वहाँ पहुँचकर (सारी सृष्टि को) आवृत कर फैलनेवाला [illegible] अंतरिक्ष रूपी आवरण भी झुलस जाये, वहाँ उदय होने पर सूर्य भी झुलस जाय [illegible] झुलस जाये, बिजली और वज्र भी झुलस जाय, ऐसी कौन सी वस्तु [illegible] झुलस न जाय?

वह बालुकामय प्रदेश उन योद्धाओं के हृदय के समान ही सदा तपता [illegible] और कभी ठंडा नहीं होता था, जो लड़ने की शक्ति खोकर, [illegible] सहते हुए युद्ध क्षेत्र में पड़े हों और जो वंचक शत्रुओं के कुकृत्यों के कारण अपना [illegible] श्रेष्ठ रत्न खो बैठे हों।

उस बीहड़ प्रदेश में कहीं सूखे हुए सहुड, अगरु आदि के वृक्ष [illegible] जिनके तनों को चीरकर भूत के जैसा काला अगरु निकल रहा था, कहीं [illegible] फट जाने से श्वेत मोती बिखर रहे थे, कहीं विषैले नागों के मुख से गिरे माणिक्य [illegible] हो रहे थे।

भू माता उस स्थान से हट नहीं सकती थी, क्योंकि वह अचला है, (उस स्थान की अधिष्ठात्री देवी) कालिका भी वहाँ से हट नहीं सकती थी, क्योंकि उसे अपना स्थान नहीं छोड़ना चाहिए, उस स्थान के ऊपर सूर्य का रथ भी दौड़ नहीं पाता था, वहाँ के आकाश में मेघ भी नहीं जा सकते थे, न वहाँ वायु का सञ्चरण हो सकता था।

वहाँ (दर्शकों के) नेत्रों को झुलसानेवाली विषाग्नि उगलनेवाला [illegible], आकाश को चीरनेवाली बिजली के समान चमकदार माणिक्य बिखेरता था। [illegible] की छाती को विदीर्ण करनेवाली सूर्य की प्रचण्ड किरणें उन माणियों पर [illegible] ऐसा लगता था, मानो भू देवी के शरीर में खुले हुए घावों से रक्त निकल [illegible]।

व्याकुल करनेवाली क्षुधा से बेचैन होकर बड़ा अजगर जोर [illegible] लिए अपना मुँह खोलकर वहाँ पड़ा रहता था, गर्जन करनेवाले [illegible] जलनेवाले सूर्य की उष्ण किरणों से रक्षा पाने के लिए छाया की [illegible] और सामने अजगर के खुले मुख को देखकर उसके भीतर शीघ्रता से प्रवेश कर जाता था।

उस बालुका-भूमि में जहाँ अग्निदेव अपनी अतुलनीय उष्णता के साथ शासन

[illegible] जलकर [illegible] हो जाते थे और यत्र तत्र पड़े रहते थे, जिन्हें [illegible] उस मरुभूमि से उठकर सारे गगन में छा जानेवाली उष्णता के कारण [illegible] ।

उस [illegible] मृग मरीचिका सञ्चरण करती थी, उसे देखने से भ्रम होता था [illegible] (उस मरुभूमि की) उष्णता कहीं बढ़कर गगन [illegible] जल जाय। (अर्थात्) देवताओं पर अनुग्रह [illegible] ।

उस सतप्त भूमि पर जो ग्रीष्म रूपी राजा राज्य करता था, उसके बैठने के लिए [illegible] स्फटिक सिंहासन के समान ही, वह मृग मरीचिका ऊपर उठी हुई दिखाई देती थी।

वह धरती इस प्रकार शुष्क थी, जिस प्रकार उन आत्मज्ञानियों का हृदय (शुष्क) होता है, जो (पुण्य और पाप रूपी) दुःख दायक विविध कर्मों को मिटाकर तथा दुर्निवार्य काम, [illegible] और मोह रूपी [illegible] तीनों मार्चों को पार कर, भक्ति मार्ग पर चलते हैं, [illegible] के समान (शुष्क) था, जो सुवर्ण के लिए अपना शरीर बेच [illegible] ।

[illegible] गरमी से सुलगते हुए छोटे छोटे कंकड़ जहाँ बिखरे पड़े थे, (गरमी के कारण) धरती में जो दरार पड़ गई थी, वे पाताल लोक तक चली गई थीं, इस प्रकार [illegible] जगत् को तपानेवाली सूर्य किरणें श्रेष्ठ माणिक्य से विभूषित सर्पराज के लोक में भी अनायास ही पहुँच जाती थी।

जब इस प्रकार जलनेवाली वालुकामय उस भूमि में तीनों पहुँचे, तब विश्वामित्र ने सोचा कि यद्यपि राम और लक्ष्मण अपार शक्ति सपन्न हैं, तथापि वे पुष्प से भी अधिक कोमल हैं, अतः (इस मरुभूमि में चलने से) उन्हें किंचित् कष्ट हो सकता है।

(यह सोचकर) विश्वामित्र ने उनके मुखों की ओर दृष्टि डाली। इंगित को सहज ही जाननेवाले वे कुमार भी अपनी ओर देखनेवाले विश्वामित्र के चरणों के निकट जा पहुँचे। तब विश्वामित्र ने उन्हें ब्रह्मा द्वारा आविष्कृत दो विद्याएँ (बला तथा अतिबला) सिखाई। दोनों ने उन मत्रों का जप किया।

जब वे उन मत्रों का जप करते हुए चलने लगे, तब प्रलयाग्नि को भी पराजित करनेवाली भीषण अग्नि से उत्तप्त उस प्रदेश में यात्रा करना उसी प्रकार सरल हो गया, जैसे स्वच्छ तथा शीतल जल में चलना होता है। उस समय भक्तों की इच्छा पूरी करनेवाले (श्रीराम) ने विश्वामित्र को प्रणाम करके पूछा —

हे ज्ञानशिरोमणे। क्या यह प्रदेश, भवरों से भरी हुई गंगा को पुष्पमाला के रूप में अपनी जटा में धारण करनेवाले (शिव) की ललाट दृष्टि पड़ने से इस प्रकार जल गया है, अथवा कोई और कारण है? क्या कारण है कि यह प्रदेश किसी निन्दनीय अत्याचारी नरेश के राज्य से भी अधिक उजड़ा हुआ पड़ा है?

(राम के) यह प्रश्न पूछने पर विश्वामित्र ने उत्तर दिया — एक ऐसी स्त्री का

वृत्तान्त तुम्हे सुनाता हूँ, जो अन्छे अच्छे प्राणियो को मारकर खा जाती है, जिसका रंग यमराज के जैसा भयकर है और जिसमे हजार मदमत्त हाथियो का बल है।

यक्षो के कुल मे सुकेतु नामक निर्मल स्वभाववाला एक व्यक्ति उत्पन्न हुआ था, जो अपने बल से सारे ससार को चकित कर देता था, जिसका [illegible], जो मोह से रहित था और जो हाथी जैसा बलवान् होने पर भी बडा कृपालु था।

सुकेतु के कोई सतान नही थी, इसलिए वह बहुत चिन्तित रहता था। [illegible] (सतान प्राप्ति के लिए) एक लबी अवधि तक कमल पुष्प पर [illegible] कठोर तपस्या की।

हे सूक्ष्म ज्ञानयुक्त (रामचन्द्र)! (सुकेतु के तपस्या करते समय) [illegible] ब्रह्मदेव उसके सम्मुख प्रकट हुए और पूछा कि तुम्हारा अभीष्ट क्या है? सुकेतु ने प्रार्थना की कि मेरे कोई पुत्र नही, इसलिए मै दुखी हूँ। पुत्र प्राप्ति का वर दीजिए। ब्रह्मा ने उत्तर दिया—तुम्हारे कोई पुत्र नही होगा, एक पुत्री ही होगी।

तुम्हारे एक ऐसी पुत्री होगी, जो कमल पुष्प पर निवास करनेवाली सरस्वती के सदृश नित्य यौवना, मयूर जैसी सुन्दर, लक्ष्मी की समता करनेवाली तथा एक [illegible] हाथियो के बल से युक्त होगी। तुम चिन्ता छोडकर अपने घर जाओ।

ब्रह्मदेव के वरदान के अनुसार उसके एक पुत्री हुई। जब वह पुत्री [illegible] वासिनी सुन्दर लक्ष्मी के सदृश युवती हुई, तब सुकेतु ने सोचा कि इसके अनुकूल पति कौन हो सकता है? अत मे अपनी ही जाति के अधिपति सुद नामक यक्ष से उसका विवाह कर दिया।

सुद और उसकी पत्नी ताडका, रात दिन आनन्द सागर मे डूबे रहते। उनके सुख की कोई सीमा नही रही।

बहुत दिन बीतने पर, लक्ष्मी समान उस ताडका के गर्भ से पर्वत सदृश भुजाओवाला मारीच एव मल्ल युद्ध मे निपुण सुबाहु उत्पन्न हुए, जिनके जन्म से सारा ससार भय से कॉप गया।

ये दोनो कुमार माया मे, वचना मे और अपार बल मे इस प्रकार उन्नति करते गये कि उन्होने अपनी माँ से भी बढकर इन कलाओ का अभ्यास कर लिया और उससे भी आगे बढ गये। उनका पिता सुद, जिसका क्रोध जलानेवाला होता था, आनन्द की [illegible] के कारण—

दुर्गुणो से भरे असुरो का अत्याचार मिटानेवाले तथा विस्तृत सागर [illegible] को ही चुल्लू मे भरकर पी जानेवाले महातपस्वी (अगस्त्य) के आश्रम मे [illegible] ऊँचे वृक्षो को जड से उखाडकर फेकने लगा।

अधिक स्पृहणीय तपस्या करनेवाले मुनि जिस आश्रम मे रहते [illegible] कृष्णसार, रुरु, ऋष्य आदि (जातियो के) हिरणो को मारकर खा लिया और [illegible] आदि वृक्षो को तोड दिया। इसपर महातपस्वी (अगस्त्य) ने क्रोध से अपनी [illegible] फेरकर देखा, तो वह जलकर भस्म हो गया।

वृत्तान्त तुम्हे सुनाता हूँ, जो अच्छे अच्छे प्राणियों को मारकर खा जाती है, जिसका रूप यमराज के जैसा भयकर है और जिसमे हजार मदमत्त हाथियों का बल है।

यक्षो के कुल मे सुकेतु नामक निर्मल स्वभाववाला एक व्यक्ति उत्पन्न हुआ था, जो अपने बल से सारे ससार को चाकत कर देता था, जिसका क्रोध अग्नि के समान जलानेवाला था, जो मोह से रहित था और जो हाथी जैसा बलवान् होने पर भी बडा कृपालु था।

सुकेतु के कोई सतान नही थी, इसलिए वह बहुत चिन्तित रहता था। उसने (सतान प्राप्ति के लिए) एक लबी अवधि तक कमल पुष्प पर आसीन ब्रह्मदेव के निमित्त कठोर तपस्या की।

हे सूक्ष्म ज्ञानयुक्त (रामचन्द्र)! (सुकेतु के तपस्या करते समय) वेदो के आश्रय ब्रह्मदेव उसके सम्मुख प्रकट हुए और पूछा कि तुम्हारा अभीष्ट क्या है? सुकेतु ने प्रार्थना की कि मेरे कोई पुत्र नहीं, इसलिए मै दुःखी हूँ। पुत्र प्राप्ति का वर दीजिए। ब्रह्मा ने उत्तर दिया—तुम्हारे कोई पुत्र नही होगा, एक पुत्री ही होगी।

तुम्हारे एक ऐसी पुत्री होगी, जो कमल पुष्प पर निवास करनेवाली सरस्वती के सदृश नित्य यौवना, मयूर जैसी सुन्दर, लक्ष्मी की समता करनेवाली तथा एक हजार मत्त हाथियो के बल से युक्त होगी। तुम चिन्ता छोडकर अपने घर जाओ।

ब्रह्मदेव के वरदान के अनुसार उसके एक पुत्री हुई। जब वह पुत्री कमल पुष्प वासिनी सुन्दर लक्ष्मी के सदृश युवती हुई, तब सुकेतु ने सोचा कि इसके अनुकूल पति कौन हो सकता है? अत मे अपनी ही जाति के अधिपति सुद नामक यक्ष से उसका विवाह कर दिया।

सुद और उसकी पत्नी ताडका, रात दिन आनन्द सागर मे डूबे रहते। उनके सुख की कोई सीमा नही रही।

बहुत दिन बीतने पर, लक्ष्मी समान उस ताडका के गर्भ से पर्वत सदृश भुजाओवाला मारीच एव मल्ल युद्ध मे निपुण सुबाहु उत्पन्न हुए, जिनके जन्म से सारा ससार भय से कॉप गया।

ये दोनो कुमार माया मे, वचना मे और अपार बल मे इस प्रकार उन्नति करते गये कि उन्होने अपनी मॉ से भी बढकर इन कलाओ का अभ्यास कर लिया और उससे भी आगे बढ गये। उनका पिता सुद, जिसका क्रोध जलानेवाला होता था, आनन्द की अधिकता के कारण—

दुर्गुणो से भरे असुरो का अत्याचार मिटानेवाले तथा विक्षुब्ध सागर को एक ही चुल्लू मे भरकर पी जानेवाले महातपस्वी (अगस्त्य) के आश्रम मे पहुँचकर ऊचे वृक्षो को जड से उखाडकर फेकने लगा।

अधिक स्पृहणीय तपस्या करनेवाले मुनि जिस आश्रम मे रहते थे, वहाँ के कृष्णसार, रुरु, ऋष्य आदि (जातियो के) हिरणो को मारकर खा लिया और ऊचे 'सुरपुन्ना' आदि वृक्षो को तोड दिया। इसपर महातपस्वी (अगस्त्य) ने क्रोध से अपनी अग्निमय दृष्टि फेरकर देखा तो वह जलकर भस्म हो गया।

स्वण कंकण धारण करनेवाली उस ताडका ने जब सुन्द की मृत्यु का समाचार सुना, तब वह शाप द्वारा आग के समान क्रोध से भर गई और यह कहते हुए कि उस मुनि का समूल नाश कर दूँगी, अपने दोनों पुत्रों के साथ अगस्त्य के आश्रम में जा पहुँची।

वे तीनों बड़ा भीषण गर्जन करते हुए और चिल्ला चिल्लाकर अगस्त्य मुनि को पुकारते हुए (आश्रम में) जा पहुँचे। (उन्हें देखकर) वज्र, प्रलयाग्नि और युगान्तकाल के पवन भी भयग्रस्त हो उठे, देवता (भय के कारण) कान्तिहीन हो गये, सूर्य तथा चन्द्र भीत हो गये, विद्युत युक्त मेघ भी थरथराने लगे और ब्रह्माण्ड टूटने सा लगा।

तामस भाव रूपी अपारमेय समुद्र को लाँघनेवाले उस मुनि (अगस्त्य) ने अपने नेत्रों से अग्नि निकालते हुए हुंकार भरा और वज्र से भी कठोर ध्वनि में उन्हें शाप दिया कि विनाश का कार्य करने के कारण तुम लोग तुरन्त राक्षस बनकर पतित हो जाओ।

तुरन्त (वे तीनों) ऐसे राक्षस बन गये, जिनके नेत्रों से पिघले हुए ताँबे के समान क्रोधाग्नि निकल रही थी, जो इस संसार तथा देवलोक के निवासियों को मारकर खाते हुए तथा उन्हें भयभीत करते हुए संसार में विचरने लगे।

उस समय उस मुनि के क्रोध तथा उनके दिये हुए अभिशाप का प्रतिकार करने में असमर्थ होने के कारण वे वहाँ से हट गये और सुमाली[२] नामक राक्षसराज के पास आ पहुँचे, सुबाहु और मारीच ने सुमाली से निवेदन किया कि हम आपके पुत्र के समान आपकी सेवा में रहेंगे।

उस पातकी ताडका के पुत्र, एक लंबी अवधि तक छिपे रहे। जब रावण ने उत्पन्न होकर तपस्या के द्वारा महान बल प्राप्त किया और उन दोनों को मामा कहकर सम्बोधित किया। तब, वे बाहर निकल आये और सभी लोकों का विध्वंस करते हुए प्रलय काल के प्रभंजन के समान विचरने लगे।

१ दक्षिण में यह कथा प्रसिद्ध है कि तमिल भाषा की अभिवृद्धि करने के लिए काशी में ऋषियों का एक संघ स्थापित हुआ था। अगस्त्य भी उस संघ के सदस्य थे। एक बार अन्य ऋषियों के साथ अगस्त्य का विकट मतभेद हो गया। इस पर अगस्त्य उस संघ से पृथक् हो गए और उन ऋषियों का गर्व चूर करने का निश्चय किया। उन्होंने शिवजी के निकट पहुँचकर अपना अभीष्ट सूचित किया। उसी समय जिस मंडप में अगस्त्य शिवजी के साथ वार्त्तालाप कर रहे थे, वहाँ एक दिव्य सुगन्ध फैल गई। अगस्त्य ने जब उसके संबंध में शिवजी से पूछा, तो शिवजी उन्हें उस मंडप के एक कोने में ले गये, जहाँ तालपत्रों का एक ढेर लगा हुआ था। उस ढेर को देखते ही अगस्त्य के मुँह से 'तमिल' शब्द निकल पड़ा जिसका अर्थ होता है मधुर। उन तालपत्रों पर जो भाषा लिखी हुई थी, उसका नाम उसी समय से तमिल हो गया। अगस्त्य ने शिवजी से तमिल भाषा का उपदेश प्राप्त किया और दक्षिण दिशा में चले आये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने 'पोदिगमलै' की पहाड़ी पर अपना आश्रम स्थापित किया और तमिल भाषा के दो व्याकरण लिखे १ पेरअगत्तियम (बड़ा अगस्तीयम्) और २ शिरुअगत्तियम (लघु अगस्तीयम्)। फिर, उन्होंने अपने बारह शिष्यों को उस व्याकरण का उपदेश दिया। इस प्रकार उन्होंने तमिल की अभिवृद्धि की। उपर्युक्त पद्य में इसी कथा की ओर संकेत है। —अनु

२ सुमाली रावण की माता कैकशी का पिता था, जो पाताल में रहता था।

वृत्तान्त तुम्हे सुनाता हूँ जो अच्छे अच्छे प्राणियो को मारकर खा जाती है, जिसका रूप यमराज के जैसा भयकर है और जिसमे हजार मदमत्त हाथियो का बल है।

यक्षो के कुल मे सुकेतु नामक निर्मल स्वभाववाला एक व्यक्ति उत्पन्न हुआ था, जो अपने बल से सारे ससार को चकित कर देता था, जिसका क्रोध अग्नि के समान जलानेवाला था, जो मद से रहित था और जो हाथी जैसा बलवान् होने पर भी बडा कृपालु था।

सुकेतु के कोई सतान नही थी, इसलिए वह बहुत चिन्तित रहता था। उसने (सतान प्राप्ति के लिए) एक लबी अवधि तक कमल पुष्प पर आसीन ब्रह्मदेव के निमित्त कठोर तपस्या की।

हे सूक्ष्म ज्ञानयुक्त (रामचन्द्र)। (सुकेतु के तपस्या करते समय) वेदो के आश्रय ब्रह्मदेव उसके सम्मुख प्रकट हुए और पूछा कि तुम्हारा अभीष्ट क्या है? सुकेतु ने प्रार्थना की कि मेरे कोई पुत्र नही इसलिए मै दुःखी हूँ। पुत्र प्राप्ति का वर दीजिए। ब्रह्मा ने उत्तर दिया—तुम्हारे कोई पुत्र नही होगा, एक पुत्री ही होगी।

तुम्हारे एक ऐसी पुत्री होगी, जो कमल पुष्प पर निवास करनेवाली सरस्वती के सदृश नित्य यौवना, मयूर जैसी सुन्दर, लक्ष्मी की समता करनेवाली तथा एक हजार मत्त हाथियो के बल से युक्त होगी। तुम चिन्ता छोडकर अपने घर जाओ।

ब्रह्मदेव के वरदान के अनुसार उसके एक पुत्री हुई। जब वह पुत्री कमल पुष्प वासिनी सुन्दर लक्ष्मी के सदृश युवती हुई, तब सुकेतु ने सोचा कि इसके अनुकूल पति कौन हो सकता है? अत मे अपनी ही जाति के अधिपति सुद नामक यक्ष से उसका विवाह कर दिया।

सुद और उसकी पत्नी ताडका, रात दिन आनन्द सागर मे डूबे रहते। उनके सुख की कोई सीमा नही रही।

बहुत दिन बीतने पर, लक्ष्मी समान उस ताडका के गर्भ से पर्वत सदृश भुजाओवाला मारीच एव मल्ल युद्ध मे निपुण सुबाहु उत्पन्न हुए, जिनके जन्म से सारा ससार भय से कॉप गया।

ये दोनो कुमार माया मे, वचना मे और अपार बल मे इस प्रकार उन्नति करते गये कि उन्होने अपनी मॉ से भी बढकर इन कलाओ का अभ्यास कर लिया और उससे भी आगे बढ गये। उनका पिता सुद, जिसका क्रोध जलानेवाला होता था, आनन्द की अधिकता के कारण—

दुर्गुणो से भरे असुरो का अत्याचार मिटानेवाले तथा विक्षुब्ध सागर को एक ही चुल्लू मे भरकर पी जानेवाले महातपस्वी (अगस्त्य) के आश्रम मे पहुँचकर ऊचे वृक्षो को जड से उखाडकर फेकने लगा।

अधिक स्पृहणीय तपस्या करनेवाले मुनि जिस आश्रम मे रहते थे, वहा के कृष्णसार, रुरु, ऋष्य आदि (जातियो के) हिरणो को मारकर खा लिया और ऊचे 'सुरपुन्ना' आदि वृक्षो को तोड दिया। इसपर महातपस्वी (अगस्त्य) ने क्रोध से अपनी अग्निमय दृष्टि फेरकर देखा तो वह जलकर भस्म हो गया।

स्वर्ण कंकण धारण करनेवाली उस ताडका ने जब सुन्द की मृत्यु का समाचार सुना, तब वह अग्नि के समान क्रोध से भर गई और यह कहते हुए कि उस मुनि का समूल नाश कर दूँगी, अपने दोनों पुत्रों के साथ अगस्त्य के आश्रम में जा पहुँची।

वे तीनों घोर भीषण गर्जन करते हुए और चिल्लाकर अगस्त्य मुनि को पुकारते हुए (आश्रम में) जा पहुँचे। (उन्हें देखकर) वज्र, प्रलयाग्नि और युगान्तकाल के पवन भी भयग्रस्त हो उठे, देवता (भय के कारण) कान्तिहीन हो गये, सूर्य तथा चन्द्र भीत हो गये, विद्युत्-युक्त मेघ भी थरथराने लगे और ब्रह्माण्ड टूटने सा लगा।

तामिल भाषा रूपी अपारमय समुद्र को लाँघनेवाले[1] उस मुनि (अगस्त्य) ने अपने नेत्रों से अंगारे बरसाते हुए हुंकार भरा और वज्र से भी कठोर ध्वनि में उन्हें शाप दिया कि विनाश का कार्य करने के कारण तुम लोग तुरन्त राक्षस बनकर पतित हो जाओ।

तुरन्त (वे तीनों) ऐसे राक्षस बन गये, जिनके नेत्रों से पिघले हुए ताँबे के समान अग्नि निकल रही थी, जो इस संसार तथा देवलोक के निवासियों को मारकर खाते हुए तथा उन्हें भयभीत करते हुए संसार में विचरने लगे।

उस समय उस मुनि के क्रोध तथा उनके दिये हुए अभिशाप का प्रतिकार करने में असमर्थ होने के कारण वे वहाँ से हट गये और सुमाली[2] नामक राक्षसराज के पास आ पहुँचे, सुबाहु और मारीच ने सुमाली से निवेदन किया कि हम आपके पुत्र के समान आपकी सेवा में रहेंगे।

उस पातकी ताडका के पुत्र, एक लंबी अवधि तक छिपे रहे। जब रावण ने उत्पन्न होकर तपस्या के द्वारा महान् बल प्राप्त किया और उन दोनों को मामा कहकर संबोधित किया। तब, वे बाहर निकल आये और सभी लोकों का विध्वंस करते हुए प्रलय काल के प्रभंजन के समान विचरने लगे।

---

1. दक्षिण में यह कथा प्रसिद्ध है कि संस्कृत भाषा का आभिजात्य (?) करने के लिए काशी में ऋषियों का एक संघ स्थापित हुआ था। अगस्त्य भी उस संघ के सदस्य थे। एक बार अन्य ऋषियों के साथ अगस्त्य का विकट मतभेद हो गया। इस पर अगस्त्य उस संघ से पृथक् हो गये और उन ऋषियों का गर्व चूर करने का निश्चय किया। वे शिवजी के निकट पहुँचकर अपना अभीष्ट सूचित किया। उसी समय, जिस मंडप में अगस्त्य शिवजी के साथ वार्तालाप कर रहे थे, वहाँ एक दिव्य सुगन्ध फैल गई। अगस्त्य ने इसका कारण शिवजी से पूछा, तो शिवजी उन्हें उस मंडप के एक कोने में ले गये, जहाँ तालपत्रों का एक ढेर लगा हुआ था। उस ढेर को देखते ही अगस्त्य के मुँह से 'तमिल' शब्द निकल पड़ा, जिसका अर्थ होता है मधुर। उन तालपत्रों पर जो भाषा लिखी हुई थी, उसका नाम उसी समय से तमिल हो गया। अगस्त्य ने शिवजी से तमिल भाषा का उपदेश प्राप्त किया और दक्षिण दिशा में चले आये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने 'पादियमले' की पहाड़ी पर अपना आश्रम स्थापित किया और तमिल भाषा के दो व्याकरण लिखे—१ पेरअगत्तियम (बड़ा अगस्तीयम्) और २ शिरुअगत्तियम (लघु अगस्तीयम)। फिर, उन्होंने अपने चार शिष्यों को उस व्याकरण का उपदेश दिया। इस प्रकार उन्होंने तमिल की अभिवृद्धि की। उपर्युक्त पद्य में इसी कथा की ओर संकेत है। —अनु०
2. सुमाली रावण की माता कैकसी का पिता था, जो पाताल में रहता था।

इसके पश्चात् ताडका अपने अति प्रचंड पुत्रों से अलग होकर, इस वन में आकर रहने लगी। तपस्वी अगस्त्य के क्रोध का स्मरण करके उसका मन अग्नि के समान धधकता रहता है और इस वन के प्रान्तों में अग्नि की ज्वालाएँ फैली रहती हैं।

चाहे सारी धरती को उखाड फेंकना हो, चाहे सभी समुद्रों के जल को पी लेना हो, या गगन को ढाट देना हो—यह ताडका सर्वसमर्थ है, वह जो चाहे कर सकती है। उसके लिए कोई भी कार्य असंभव नहीं, वह ऐसी लगती है, मानो संख्या और परिमाणहीन पाप ही इस स्त्री का रूप धारण करके आ गये हों।

यदि कोई चलने फिरनेवाला ऐसा समुद्र हो, जिसके पास दो बडे पर्वत हों, जिससे विष निकल रहा हो, जिसमें वज्रध्वनि से भी अधिक भीषण गर्जन हो, जिसके पास प्रलय काल की अग्नि एवं दो अर्ध चन्द्र[1] हों तो उस स्त्री के भीषण शरीर से उसकी उपमा हो सकती है।

जिन सुन्दर भुजाओं को देखकर पुरुष भी स्त्रीत्व की कामना करते हैं, (जिससे कि उन भुजाओं का आलिंगन प्राप्त कर सकें) ऐसी भुजा विशिष्ट (हे राम)! काल नाग को कंकण के रूप में पहननेवाली, हाथ में शूलायुध धारण करनेवाली और अरण्य में निवास करनेवाली उस कठोर स्त्री का नाम है—ताडका।

लोभ नामक एकमात्र दुर्गुण यदि किसी के मन में जमकर बैठ जाय, तो वह असंख्य सद्गुणों को मिटा देता है, उसी प्रकार अकथनीय अत्याचार करनेवाली उस राक्षसी ने इस विशाल भू प्रदेश का विध्वंस कर डाला है, जहाँ पहले शस्य और वृक्षों की विस्तृत संपत्ति भरी पडी थी।

हे पुष्पमालाओं से सुशोभित मेघ सदृश (राम)! यह ताडका लंकेश्वर (रावण) की आज्ञा के अधीन रहती है, उसके दोनों पुत्र पर्वत के समान बलशाली होने के कारण मेरे लिए बडी बाधा बन गये हैं और मेरा यज्ञ अपवित्र कर देते हैं। यह (ताडका) सभी प्राणियों को उनके कुल समेत मिटाती हुई अंगदेश भर में विचरण करती रहती है।

विश्वामित्र ने कहा—हे पुरातन लोकों की रक्षा करते हुए सन्मार्ग पर चलनेवाले, सभी जन को अपने प्राण समान समझनेवाले, सत्यकृतिवान् चक्रवर्ती (दशरथ) के पुत्र! अब उसके विषय में अधिक क्या कहूँ? वह कुछ ही दिनों में यहाँ के सभी प्राणियों को अपने उदर में समा लेगी।

विश्वामित्र की बात सुनकर पांचजन्य (शंख) धारण करनेवाले, (वाम) हस्त में धनुष धारण किये हुए (श्रीरामचन्द्र) ने सुगंधित पुष्पों से शोभायमान अपने सिर को हिलाकर पूछा—इस प्रकार का अत्याचार करनेवाली वह (राक्षसी) कहाँ रहती है?

पंचेन्द्रियों को अपने वश में रखनेवाले (विश्वामित्र) ने पर्वत, हाथी तथा वृषभ सदृश (रामचन्द्र) के वचन सुने और उत्तर दिया कि हे तात! यहाँ से निकट ही वह रहती है। उनके इतना कहने के पूर्व ही वह (ताडका) स्वयं वहाँ आ उपस्थित हुई, मानो अग्नि ज्वालाओं से भरा हुआ कोई अग्निमय पर्वत ही आ उपस्थित हुआ हो।

[1] दो अर्धचन्द्र ताडका के मुख से बाहर निकले हुए दो टेढे दाँतों के उपमान हैं।

नन वह (ताडका) चली आ रही थी, तन उसके नूपुर अलकृत पैरो के नीचे दन कर पवन नरती के भीतर ुस गये थ, जिससे धरती के तल म अस्त व्यस्तता उत्पन्न हो रही थी और पहाडो के नम जा । मे नने गड्ढो म समुद्र का जल भर रहा था। अग्नि के समान तथा निर्भीक यमराज भी उसके डरकर जिल के अन्दर जा छिपा था और अचल कहे जाने वाले पवत भी (उसकी गति के वेग म उखड उखडकर) उसके पीछे पीछे उडते हुए आ रहे थे।

बनो की विरोधिनी उस ताडका की भौंहो के तीन बुछ कुपित हो रहे थे उसका गहा सदृश मुँह बन था, उसके मुँह के दोनो छोरो पर दो लब दाँत, दो अर्धचद्रो के समान, नाहर निकले हुए दिखाई दे रहे थे।

उसने मदजल बहानेवाले बड बड हाथिया को लेकर तथा उनकी सूँडो को एक दूसरे से बाँधकर उनका हार बनाकर अपने गले म पहन रखा था, अत (चलते समय) उसकी कमर लचक रही थी। जब उसने भयकर गजन किया, तब देवलोक, दसो दिशाएँ, सातो लोक सभी भयभीत होकर थरथराने लगे (उसका) गर्जन सुनकर स्वय वज्र ध्वनि भी डर गई।

गरजनेवाले मेघो के सदृश वह ताडका उन तीना (राम, लक्ष्मण और विश्वामित्र) को देखकर अट्टहास कर उठी, फिर अपने तीन पैनी नोकावाले, यम के समान भयकर त्रिशूल पर दृष्टि रखती हुई और दाँतो को पीसती हुई, खुली हुई गुफा के समान अपना मुँह खोलकर कहने लगी—

मुझ दुर्दम बलशालिनी के शासन म रहनेवाले इस वन के सभी प्राणियो को मैने खा डाला है, अब मेरे लिए स्वादिष्ठ भोजन दुलभ हो गया है, क्या इसी कारण से विधि से प्रेरित होकर मरने के लिए तुम लोग यहाँ आये हो, बताओ।

(यह कहते हुए) जब उसने अपनी आँखे खोलकर देखा, तब मेघ चूर चूर होकर नीचे गिर पडे, जब उसने क्रोध से भरकर अपना पैर पटका, तब गगनस्पर्शी पर्वत भी टूट फूट गये, चद्रमा के सुन्दर नुकीले छोरो के सदृश बडे दाँतो को पीसती हुई वह क्रोध से यह कहकर दौडी कि इस भाले से इनकी छाती फाड दूगी।

महात्मा (विश्वामित्र) चाहते थे कि उस ताडका का वध किया जाय, तथापि सद्गुण सपन्न (राम) ने उसको मारने के लिए अपने तीखे शिरो का प्रयोग नही किया, (क्योकि) यद्यपि वह उनके प्राण हरने के लिए उद्यत थी, तथापि उस महाभाग ने अपने मन म सोचा कि यह स्त्री है।

वह, मटमैले केशो और श्वेत दाँतोवाली (ताडका) शूल फेककर मारने के लिए उद्यत थी, फिर भी मालाओ से विभूषित (राम) उसका वध करने की इच्छा न करते हुए चुपचाप खडे रहे। उनके मनोभाव को समझकर चतुर्वेदज्ञ कौशिक ने कहा

हे रत्नविभूषित (श्रीराम)! जितने पापकृत्य हो सकते है, वे सब यह कर चुकी है, इसने हम तपस्वियो को इसलिए विना खाये छोड़ दिया है कि हमारे शरीर सार रहित, फीके और ठठल मात्र हैं। क्या इस अत्याचारिणी को भी स्त्री समझना उचित है?

लज्जाशील स्त्री का वध करना उपहास का कारण हो सकता है, (परन्तु) इस (ताडका) का नाम लेने मात्र से पौरुषयुक्त बलवानों का सारा भुजबल नष्ट हो जाता है। फिर, पौरुष नामक गुण (इस ताडका के अतिरिक्त) अन्यत्र कहाँ स्थित है?

इन्द्र इससे हार गया, असुर तथा स्वर्गवासी देवता इसने अपनी सेना के पराजित होने पर हारकर भाग गये। यदि इसकी भुजाएँ मन्दर पर्वत की तुलना करती हैं तो पौरुष से पुरुष और इसमें क्या अंतर है?

राजाधिराज के प्रिय पुत्र (राम)! और एक वृत्तान्त तुमको सुनाना बाकी है, उसे भी सुन लो। प्राचीन काल में कभी ऐसा हुआ। इस प्रकार अनन्त तपस्यायुक्त विश्वामित्र कहने लगे—

भृगु नामक तपस्वी की मीन जैसे सुन्दर नयनोंवाली पत्नी ख्याति ने, बलवान् असुरों को शरण देकर उन्हें छिपा रखा था और (उन्हें मारने के लिए दौड़कर उनके पीछे आनेवाले) चक्रपाणि विष्णु से उन्हें बचाया था, तब विष्णु ने उस नारी का वध किया था।

देवाधिराज इंद्र ने अपने वज्रायुध से कुमति नामक स्त्री का वध किया था, जो देव लोक तथा भू लोक के सभी निवासियों को अपना आहार बनाती थी।

स्त्री हत्या के उस कार्य से विष्णु तथा इन्द्र को इतनी कीर्ति प्राप्त हुई, जिसका वर्णन हम नहीं कर सकते। उन्हें क्या किसी तरह का अपवाद मिला था? हे पुष्पों की घनी माला पहने हुए (राम)! तुम्हीं बताओ।

अपने अत्यंत बलशाली शासन चक्र से समस्त पृथ्वी पर राज्य करनेवाले सूर्यवंश में उत्पन्न गरिमामय (रामचंद्र)! जिसने महात्माओं से विरोध किया, जिसने इस धरती के सत्वी प्राणियों का वध किया और दृढ़तापूर्वक धर्म का विनाश किया, क्या उस ताडका के लिए पौरुष (पुरुषत्व) गुण भी आवश्यक है? (अर्थात्, इससे बढ़कर पुरुष कौन हो सकता है?)

हे यम के समान भयंकर शूलधारी (राम)! यम तो यह विचार करके ही कि प्राणियों का विधि विहित जीवन काल समाप्त हुआ या नहीं, उनके पुण्य कर्मों का भी खयाल करके, उन्हें अमरलोक में ले जाता है, परन्तु यह ताडका तो प्राणियों की गंध पाते ही उन्हें खा डालने की इच्छा रखती है, भला क्या, इससे बढ़कर भी कोई दूसरा यम हो सकता है?

हे प्रभो! अनेक जीवित प्राणियों को एक साथ अपने मुँह में डालकर चबा जाने से बढ़कर अधम तथा कठोर कृत्य और क्या हो सकता है? इस ताडका को जूड़ा बाँधने योग्य केशोंवाली तथा भोली भाली स्त्री मानने से हमारी निर्बलता ही प्रकट होगी।

शाश्वत धर्म का विचार करके ही मैंने तुम से (यह सब) कहा है, ऐसा मत समझो कि इस ताडका के साथ द्वेष भाव रखने के कारण मैं ऐसा कह रहा हूँ। तुम जो इस पर क्रोधरहित हो रहे हो, यह धर्म नहीं है। इस राक्षसी का संहार करो। —इस प्रकार मुनि ने (राम से) कहा।

उन्होंने विश्वामित्र के ये वचन सुनकर कहा—हे सत्यस्वरूप! यदि धर्म विरुद्ध

ाय भी करना आवश्यक हो जाय और आप उसे करने का आदेश दें, तो आपका वचन वेद वाक्य मानकर करना ही मेरे लिए परम धर्म है।

स्त्री रूप में भी आग के समान भयंकर उस ताडका ने, गंगा (सरयू ?) के मधुर गाह से शोभित कोशल देश के राजकुमार (रामचंद्र) का मनोभाव जान लिया और अपने) कठोर नयनों से क्रोधाग्नि प्रज्वलित करते हुए, अपने रक्तवर्ण हाथ के शूलाग्नि रूपी तीक्ष्णाग्नि को (रामचंद्र के ऊपर) फेंका।

नवीन यम स्वरूपिणी उस ताडका ने जाज्वल्यमान तीन फलोंवाले त्रिशूल रूपी लयकर अग्नि को फेंका, वह त्रिशूल (रामचंद्र की ओर) इस प्रकार बढ़ा, मानो पूर्णचंद्र को ग्रसने के लिए राहु आ रहा हो।

उस क्षण विष्णु के अवतारभूत (राम) ने किस तरह तीर उठाकर उसका प्रयोग किया और कब अपने धनुष को झुकाया, यह किसी ने नहीं देखा। सबने इतना ही देखा कि ताडका ने यम के हाथों से छीनकर जिस शूल को राम पर फेंका था, वह शूल दो टुकड़े होकर नीचे पड़ा है।

(इसके पश्चात्) अंधकार तथा मेघों की समता करनेवाली, काले रंगवाली, उस ताडका ने बड़े बड़े पत्थरों को अपने हाथों में उठा उठाकर इतना बरसाया कि समुद्र भी उन पत्थरों से पट जाय। पर, वीर (राम) ने पत्थरों की उस वर्षा को अपने धनुष से की गई शर वर्षा से एकदम रोक दिया।

नीलवर्ण (श्रीराम) ने मुनि के शाप के समान अत्यन्त तीक्ष्ण तथा जलानेवाले एक शर को उस अंधकार रूपिणी ताडका के ऊपर ज्यों ही प्रयोग किया, त्यों ही वह तीर ताडका के वज्र पर्वत के समान कठोर छाती में घुसकर उसी प्रकार दूसरी ओर निकल गया, जिस प्रकार सज्जनों का उपदेश मूर्ख जनों के हृदय को पार कर निकल जाता है।

अत्यन्त उन्नत स्वर्णमय मेरु पर्वत के समान गंभीर (रामचंद्र) के तीक्ष्ण अनी वाले बाणों का प्रलयकारी प्रभंजन ज्यों ही उठा, त्यों ही ताडका इस प्रकार (मृत हो) गिर पड़ी, जिस प्रकार गगन में गरजते हुए तथा पत्थरों की वर्षा करते हुए प्रलयकालिक मेघ, प्रभंजन से आहत हो, अपनी बिजली के साथ पृथ्वी पर आ गिरा हो।

जब गुफा जैसा अपना मुँह खोलकर ताडका, जिसके बड़े बड़े दाँतों में कई प्राणियों के मांस लगे हुए थे, नीचे गिरी, तब उसके शरीर से जो रक्त प्रवाहित हुआ, उससे वहाँ की धूल भरी बीहड़ मरुभूमि भी सिंचित हो गई, उसका गिरना क्या था, दस सिरों पर मुकुट धारण करनेवाले (रावण) को उसके सर्वनाश की सूचना ही थी, मानो उस दिन उस (रावण) की विजय पताका ही टूटकर धरती पर गिर गई हो।

ताडका के कठोर वक्ष स्थल में तीर लगने से जो रक्त प्रवाह हुआ, उससे वह सारा वन अपना रूप बदलकर समुद्र बन गया। उस वन में फैली हुई रक्त की बाढ़ देखने से ऐसा प्रतीत हुआ, मानो सन्ध्याकालिक लालिमायुक्त गगन आधारहीन हो पृथ्वी पर गिर पड़ा हो।

सुगंधित कमल पुष्प पर बैठनेवाले ब्रह्मा के समान मुनि (विश्वामित्र) की आज्ञा

न पालन करने रत्नमय स्वर्णाभरण पहननेवाले काकुत्स्थ (रामचद्र) ने जो प्रथम युद्ध किया उससे यम को जो अबतक राक्षसों का रक्त पीने की अभिलाषा रखते हुए भी खड्गादि आयुधधारी राक्षसो से भयभीत होकर रहता था, राक्षसो के रक्त का थोड़ा सा स्वाद मिला।

तब देवताओ ने मुनि (विश्वामित्र) के निकट आकर कहा कि आज हमने अपना आश्रय स्थान वापस पा लिया है आपको भी अब कोई बाधा नही रही, इसलिए अब आप चक्रवर्ती के कुमारो को दिव्य अस्त्र प्रदान करे। फिर, उन्होने धनुर्धारी काल मेघ सदृश (श्रीराम) पर पुष्पो की वर्षा की और उन्हे बधाइयाँ देकर वहाँ से विदा किया। (१—७६)

अध्याय ८

यज्ञ पटल

जब देवताओ की पुष्पवर्षा से वह उष्ण मरुप्रदेश शीतल हो गया, तब दूसरो के लिए दुर्लभ तपस्या से सपन्न विश्वामित्र ने (राम लक्ष्मण के साथ) बडी सरलता से उस पार कर लिया, फिर उन्होने उस महानुभाव (रामचन्द्र) को ऐसे अस्त्र दिये, जो तिरुवण्णय्नल्लूर के निवासी तथा महान् दानी शडैयप्पवल्लर के[1] भूलोकवासियो के दारिद्य रोग को दूर करनेवाले औषध स्वरूप, वचन के समान अमोघ थे।

सयमी और त्रिकालज्ञ मुनिवर ने जो जो अस्त्र, उनके मत्रो को बताकर, महानुभाव (राम) को दिये, वे सब बडी उमग के साथ वैसे ही उनके पास आ पहुँचे, जैसे शुद्ध मन से किये गये सत्कर्मो के फल दूसरे जन्म मे स्वय अपने कर्त्ताओ को प्राप्त हो जाते हैं।

(देवास्त्रो ने श्रीरामचन्द्र से निवेदन किया कि) हे वीर। हम आपके आश्रय मे आ पहुँचे हैं, अब आपको छोडकर अन्यत्र नही जायेगे, आप विधि के अनुसार जो भी आदेश हम देगे, हम उसका पालन आपके भाई लक्ष्मण के समान करेगे। उन्होने भी यह वचन सुनकर अपनी स्वीकृति दे दी। तब से वे देवास्त्र नीलकमल तुल्य (श्रीराम) की सेवा मे निरत हुए।

इन घटनाओ के पश्चात् वे लोग दो कोस आगे चले, वहाँ एक बडा शोर सुनाई पडा, जो क्रमश उनके निकट आने लगा। तब उन्होने मुनि से पूछा कि 'हे महात्मन्। यह ध्वनि कैसी है?' तपस्या से अपने कर्मो को मिटा देनेवाले मुनि (विश्वामित्र) ने उत्तर दिया—

---

[1] तिरुवण्णयनल्लूर के शडैयप्पवल्लर कवि के आश्रयदाता थे और समय समय पर धन देकर उनकी सहायता करते थे। कवि ने स्थान स्थान पर उनका स्मरण करके उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की है।—अनु

'मानस (मानस सरोवर) से निकलनेवाली (और इसीलिए) सरयू' कहलानेवाली, देवताओ से भी प्रशस्यमान नदी यहाँ बहती है, जिसमे गोमती नामक नदी आकर मिलती है , उन दोनो के मिलने से ही यह ध्वनि उत्पन्न होती है ।' उनके (विश्वामित्र के) यह कहने पर तीनो आगे बढे और भवसागर से पार उतारनेवाली एक पवित्र नदी के पास पहुँचे ।

उस महानुभाव ने विश्वामित्र से पूछा कि हे देवगण से स्तुत्य मुनि ! यह बडी पावन नदी कौन सी है ? वे बोले—"कमलासन ब्रह्मा ने प्राचीन काल मे कुश नामक एक प्रतापी तथा गुणशील राजा को जन्म दिया था । उसके अपनी धर्मपत्नी से चार पुत्र हुए । उनके नाम थे—कुश, कुशनाभ, सद्गुणविशिष्ट आधूर्त्त और जयशील वसु । इनमे से कुश कौशाबी नगर मे, कुशनाभ महोदय नामक नगर मे, आधूर्त्त दोषहीन धर्मवन नामक नगर मे और वसु गिरिव्रज नामक नगर मे राज करते थे ।

उनमे से कुशनाभ के एक सौ लडकियाँ उत्पन्न हुइ , जो मिष्टभाषी, सुन्दर होठोवाली और सद्गुणो से विभूषित थी । वे जब सयानी हुईं, तब एक दिन अपनी सखियो के साथ क्रीडा करती हुई एक उपवन मे जा पहुँची । उसी समय वायुदेव वहाँ आये और उनके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उन कन्याओ से कहा —

'हे आम की फाँक के समान नुकीले नयनयुक्त कन्याओ ! मै मकरकेतु (मन्मथ) के झुके हुए धनुष से निकले हुए पुष्प बाणो से विद्ध हो गया हूँ, (अत) तुमलोग मुझसे विवाह कर लो ।' तब उन कन्याओ ने उत्तर दिया कि आप जाकर हमारे पिता से यह बात कहे यदि वे कन्यादान करके हमे आपकी पत्नी बनायेंगे, तो हम आपके सग जा सकती हैं । यह सुनकर वायुदेव बहुत क्रुद्ध हुए और उनकी पीठो को तोडकर उन्हे कूबड बना दिया जिससे सुन्दर प्रकाशमान ककण पहनी हुई वे कन्याएँ धरती पर गिर पडी ।

जब वायुदेव चले गये, तब वे कन्याएँ किसी प्रकार घिसटती हुई अपने पिता के पास पहुँची और करुणा भरी वाणी मे सारा वृत्तात कह सुनाया , राजा ने उन दीर्घ केशोवाली अपनी कन्याओ को आश्वासन दिया और महान् तपस्वी चूलि के पुत्र ज्ञानी ब्रह्मदत्त से उनका विवाह कर दिया ।

उस ब्रह्मदत्त के कर कमल का स्पर्श पाते ही उनका कूबड मिट गया और उन्होने अपना पूर्व सौन्दर्य प्राप्त कर लिया । पूरी पृथ्वी पर शासन करनेवाले कुशनाभ ने अपुत्र होने के कारण मुनियो की सहायता से एक यज्ञ किया । उस यज्ञकुण्ड के मध्य मे गाधि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसकी तीव्रगामी अश्वसेना (प्रसिद्ध) हुई ।

कुशनाभ गाधि को राज्य देकर स्वर्ग सिधारा , प्रसिद्ध महोदय नगर मे राज्य करनेवाले गाधि के मै और मुझसे पहले कौशिकी नामक एक कन्या उत्पन्न हुई । राजाओ के राजा गाधि ने कौशिकी का विवाह भृगु महर्षि के पुत्र ऋचीक के साथ कर दिया, जिनकी तपस्या की समानता स्वय उनके पिता भी नही कर सकते थे । वह वेदज्ञ कुछ समय तक धर्म, अर्थ और काम को सम्पन्न कर फिर बडी तपस्या करके ब्रह्मलोक को प्राप्त हुए ।

जब कौशिकी का प्रिय पति उसको छोडकर स्वर्ग चला गया, तब वह पति

वियोग नहीं सह सकी। वह भी नदी का रूप धारण कर पति की अनुगामिनी हुई। तपस्वियो म प्रधान ऋचीक मुनि ने उसे देखकर आशीर्वाद दिया कि तुम इसी भूतल पर रहो जिसम भूतलवासी तुमम (तुमम स्नान करके) अपने दु ख मिटा सक और ब्रह्मलाभ प्राप्त कर सके।

मेरी यी ज्येष्ठ बहन कोशिकी इस महान् नदी के रूप म भूतल पर रह रही है। विश्वामित्र स यह कथा सुनकर वह उत्तम कुमार (राम) तथा उनके अनुज लक्ष्मण आश्चर्य म पड गये। कुछ दूर आगे जाने पर उन्हे एक उपवन दिखाई दिया, जहाँ मेघ आकर विश्राम करते थे, उनके पूछने पर कि यह कौन सा उपवन है, महान् तपस्वी विश्वामित्र कहने लगे—

यह उपवन उतना ही विशुद्ध है, जितना उन नारियो का मुख होता है, जो अपने पति क अतिरिक्त अन्य किसी दैव या तपस्या को नहीं मानती। और सुनो, अरुण नयनो वाले श्रीविष्णु जिनका स्वरूप चार वेदो, देवताओ तथा मुनियो क लिए भी अज्ञेय है, कभी इस स्थान म रहकर तपस्या करते थे।

भूलोक तथा देवलोक के निवासी बधनो से मुक्त होने के लिए जिसका नाम जपते हैं और जिसकी माया के रहस्य को कोई भी नहीं जान पाता, वही प्रसिद्ध अमल मूर्त्ति (विष्णु) ने इस स्थान पर एक सौ कल्प तक घोर तपस्या की थी।

जिस समय वे इस उपवन म तप कर रहे थ, उस समय महाबलि नामक एक राजा ने स्वर्ग और भूलोक दोनो को अपने अधीन कर लिया। वह महाबलि उस महावराह के समान बलवान् था, जिसने इस भूतल को अपने एक वक्र दन्त पर अनायास ही उठा लिया था।

'ससार म उसको कोई भी पराजित कर सकेगा', ऐसी शका से मुक्त होकर, तपस्या म निरत उस चक्रवर्त्ती ने ऐसा एक महायज्ञ सपन्न करने का निश्चय किया, जो देवताओ के लिए भी असाध्य हो और जो घृत आदि होम द्रव्यो से सपूर्ण हो। उसने निश्चय किया कि वह उस यज्ञ म अपनी भूमि तथा अन्य सभी सपत्ति ब्राह्मणो को दे देगा।

देवो ने जब इस यज्ञ का समाचार सुना, तब इस उपवन म आये। यहाँ तपस्या म निरत विष्णु को प्रणाम करके प्रार्थना की कि हे भगवन्! आप उस अत्याचारी महाबलि के दुष्कृत्यो को रोकिए। विष्णु ने भी ऐसा करने की सम्मति दे दी।

नीलवर्ण तथा सद्गुणो से विभूषित विष्णु, त्रिकालज्ञ कश्यप और अदिति के पुत्र के रूप में अवतरित हुए। वे वामन रूप म थे, जैसे एक बडे वटवृक्ष को अपने भीतर छिपाये हुए एक छोटा सा बीज हो।

अद्भुत गुणो एव कार्यो से युक्त (विष्णु), हाथ म अग्नि लिये हुए एक वामन का रूप धारण करके चले। इसका तत्त्व केवल ज्ञानी ही जानते है, उनकी यह आकृति ब्रह्म के ज्ञान स्वरूप ही थी।

सभी लोको को जीतनेवाले महाबलि ने जब यह समाचार सुना कि एक वामन मूर्त्ति उसके यहाँ आये हैं, तब वह आश्चर्य चकित हो गया, उसने उठकर उनका स्वागत किया और कहा—हे परिपूर्ण! आपसे श्रेष्ठ ब्राह्मण ससार म दूसरा नहीं है, आपके दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हो गया।

पौरुषवान् महाबलि की बात सुनकर सर्वज्ञ वामन ने कहा— तुमने याचकों की इच्छा से भी अधिक दान दिये हैं। (इसलिए) हे दीप्त करवाले! अब याचक बनकर तुम्हारे समीप जो आये, वही महान् है और जो न आये, वह कैसे महान् हो सकता है?

यह सुनकर महाबलि आनन्दित हुआ और उत्तर में उसने पूछा—कहिए अब आपके लिए मैं क्या करूँ? महाबलि के इतना कहते ही वामन ने कहा—यदि दे सको तो तीन पग भूमि मात्र मुझे दो। वामन के 'दो' कहने के पूर्व ही बलि ने कहा—'दिया।' इतने में शुक्राचार्य ने उसे रोका।

(शुक्र ने कहा) राजन्! जिस वामन रूप को हम सामने देख रहे हैं, वह छल मात्र है। यह मत सोचो कि जल भरे मेघ सदृश नीलवर्णवाला यह वामन साधारण मनुष्य है। यह वह पुरुष है, जिसने कभी सभी अंडों को तथा (उसमें रहनेवाले) सभी वस्तु समूह को निगल लिया था। इस मर्म को समझो।

(बलि ने कहा) आप यह नहीं देख रहे हैं कि मेरा कर दान देने के लिए ऊपर उठा हुआ है और मेरे सम्मुख जलसमृद्ध मेघ जैसे विष्णु का कर दान लेने के लिए नीचे फैला हुआ है, जो उनकी महत्ता के अनुकूल नहीं है। अब इससे बढ़कर मेरा गौरव और क्या हो सकता है

आदर योग्य, सन्मार्ग बतानेवाले धर्मशास्त्रों के ज्ञाता (दान देते समय) यह नहीं सोचते कि यह (दान माँगनेवाला) अपना है या पराया, वे तो यह कहते हैं कि मेरे इस दान को कोई उत्तम व्यक्ति आकर ग्रहण करे। इस वामन के समान योग्य व्यक्ति और कौन हो सकता है?

आप वेल्ली[1] कहलाते हैं, इसलिए आपने इस प्रकार कहा। उत्तम नर याचकों के सभी अभीष्टों को पूर्ण करते हैं। यदि कोई उनके प्राण भी माँगे, भले हो किसी याचक के लिए ऐसा दान माँगना अनुचित है, तो वे अपने प्राणों का भी दान कर देते हैं।

हे पितृ तुल्य! संसार में प्राण रहित लोग (वास्तव में) मृत नहीं हैं, परन्तु जो प्राणों का त्याग न करते हुए भी दूसरों से याचना करते हैं, वे ही मृत हैं। जो शरीर त्याग कर मृत कहलाते हैं, वे मृत होने पर भी यदि दानी हों, तो अमर बन जाते हैं। ऐसे दानियों के सिवा संसार में कौन जीवित रहने योग्य है?

वे (वास्तव में) शत्रु नहीं होते, जो उत्तरोत्तर बढ़नेवाली हानि उत्पन्न कर देते हैं। दानियों के सच्चे शत्रु वे ही होते हैं, जो दान देते समय उनको रोकते हैं। वे दूसरों की ही नहीं, प्रत्युत अपनी भी हानि करते हैं। दाता को दान देने से रोकने के समान पापकृत्य दूसरा नहीं है।

(धर्मशास्त्रों के) वचनों के अनुसार जब संपत्ति अपने वश में रहती है, तब दान देना चाहिए और इस लोक में यश तथा उस धर्म का फल—पुण्य भी प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रकार प्रयत्न करनेवालों के अंतरंग शत्रु वे लोग ही होते हैं, जो यह कहकर उन्हें दान देने से मना करते हैं कि 'लोभ गुण का त्याग मत करो।'

१ तमिल में वेल्ली का अर्थ 'शुक्र' तथा 'अज्ञान' दोनों होते हैं।

हे मदगर्वहीन शुक्र, दान देते समय बाधा डालनेवाले निष्ठुर! किसी याचक को दान न दो, कहकर किसी दाता को रोकना क्या तुम्हें शोभा देता है? तुम्हारे इस कार्य से तुम्हारे बन्धु भी वस्त्र और अन्न से वंचित हो जायगे।

इस प्रकार कहकर महाबलि ने शुक्राचार्य के सभी वचनों को यह समझकर कि सभी कठोर हृदयवाला है, अस्वीकार कर दिया और (वामन से) यह कहते हुए कि तुम्हीं तीन पग (भूमि) नापकर ले लो, उस वामन के छोटे से हाथ में जल दे दिया।

सरोवर का स्वच्छ जल ज्यों ही वामन के हाथ में गिरा, त्यों ही वह वामन मूर्त्ति, जिसका बौनापन उसके माता पिता की भी घृणा का विषय हो सकता था, इस प्रकार गगन तक ऊंचा बढ़ गया कि सामने खड़े रहकर उसे देखनेवाले लोग विस्मय और भय में डूब गये। वह उसी प्रकार बढ़ता चला गया जिस प्रकार उत्तम पात्र को दिये गये दान का फल बढ़ता चला जाता है।

उस वामन का जो पग धरती पर रहा वह समस्त विश्व पर छा गया और धरती के छोटी होने के कारण और आगे नहीं फैल सका। दूसरा पग जो गगन भर में व्याप्त होकर स्वर्गलोक को भी पार कर गया था, आगे बढ़ने के लिए और स्थान न पाने के कारण लौट पड़ा।

समस्त भूतल और गगन मंडल को अपने दो पगों में अन्तर्गत कर लेने के कारण तीसरे पग के लिए स्थान ही बाकी न रहा। उस तीसरे पग के लिए भक्त महाबलि का सिर ही स्थान बना। हे धनुष शोभित भुजावाले (रामचन्द्र)! तुलसी माला से विभूषित सिर वाले विष्णु (सचमुच) बहुत छोटे हैं।[1]

बृहद्रूप विष्णु ने तीनों लोकों का राज्य इन्द्र को स्वत्व कहकर उसे दे दिया और स्वयं क्षीरसागर में जाकर शयन करने लगे, जहाँ उनके भुवनव्यापी चरण लक्ष्मी देवी के कर स्पर्श से लाल दिखाई देते हैं।

कर्मबन्धनों को समूल नष्ट करनेवाले (रामचन्द्र)! इस उपवन में विष्णु भगवान ने तपस्या की थी, अतः जो भक्ति श्रद्धा के साथ इस प्रदेश के दर्शन करते हैं, वे फिर जन्म नहीं ग्रहण करेंगे। वेदोक्त विधि से यज्ञ करने के निमित्त मेरे लिए इस आश्रम से बढ़कर अन्य कोई उन्नत स्थान नहीं है।

इसी स्थान में रहकर मैं अपना यज्ञ करूँगा, यह कहकर विश्वामित्र उस सुन्दर उपवन में पहुंचे और यज्ञ के उपकरण एकत्र करके, रमणीय रूप विशिष्ट राम तथा लक्ष्मण को रक्षा के लिए नियुक्त करके, अपना यज्ञ करने लगे।

देवताओं को उद्दिष्ट करके विश्वामित्र ने छह दिनों तक ऐसा यज्ञ किया, जो दूसरों के लिए दुष्कर था, भूमि की रक्षा करनेवाले दशरथ चक्रवर्त्ती के उन दोनों कुमारों ने उस यज्ञ की रक्षा इस प्रकार की, जैसे पलकें नेत्रों की रक्षा करती हैं।

यज्ञ की रक्षा करते हुए वृषभ समान बली उन दोनों कुमारों में से ज्येष्ठ ने सर्वज्ञ

---

[1] भाव यह है कि भगवान के चरण संसार के लिए बहुत बडा होने पर भी भक्तों के सिर के सामने बहुत छोटा बन जाता है।

मुनिवर के निकट जाकर पूछा— हे अवर्णनीय गुण विभूषित मुने। आपने जिन अत्याचारी राक्षसों के सम्बन्ध में कहा था, वे कब आयेंगे ?"

विश्वामित्र मौन व्रत धारण किये हुए थे, इसलिए कुछ उत्तर नहीं दिया। युद्ध निपुण कुमार उन्हें प्रणाम करके यज्ञशाला से बाहर आये और आकाश की ओर देखा। वहाँ (आकाश में) राक्षस लोग वर्षाकाल के काले मेघों के समान गर्जन कर रहे थे, जिसे सुनकर वज्र भी डर जाय।

उन राक्षसों ने बाण चलाये, भाले फेंके, आग और पानी बरसाये, बड़े बड़े पहाड़ उखाड़कर फेंके, निन्दा वचन कहे, डराया, धमकाया, कुठार, परशु आदि आयुधों का प्रयोग किया, एक नहीं, ऐसे अनेक माया कृत्य किये।

(राक्षसों द्वारा) क्रोध के साथ फेंके हुए आयुधों में जिनमें (मारे गये) प्राणियों के मांस लगे हुए थे, प्रलय काल की वर्षा के समान सारा वन प्रदेश ढक गया। चारों ओर से राक्षस सेना घिर आई और आकाश पर छा गई। (यह दृश्य ऐसा था) मानो मछलियों से भरे हुए लहराते समुद्र ने ही गगन को ढक लिया हो।

राक्षस सेनाएँ, जिनमें बाण एवं चमकनेवाले खड्ग बहुत ही घने दिखाई दे रहे थे मारू बाजा बजाती हुई संचरण कर रही थीं मानो वे प्रलय काल में उठी हुई तथा गर्जन करनेवाली अनुपम घटा ही हों।

राक्षसों के मुंह के दोनों ओर वराहदन्त निकले हुए थे, वे क्रोध से ओठ चबा रहे थे, उनके बाल रक्तवर्ण थे और नेत्रों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। इस प्रकार के उन राक्षसों की ओर संकेत करके रामचन्द्र ने लक्ष्मण से कहा—जटाधारी मुनि ने जिन राक्षसों के विषय में कहा था, वे ये ही हैं।

उन राक्षसों के आते ही क्रोध से अग्नि ज्वाला बिखरते हुए लक्ष्मण ने आँखों के कोरों से गगन की ओर देखा और फिर अपने धनुष की ओर देखा, फिर राम को प्रणाम करके कहा—अभी इसी स्थान पर आप इन राक्षसों को टुकड़े टुकड़े होकर गिरते हुए देखेंगे।

धूम्रवर्ण एवं शूलधारी राक्षस कहीं होमकुण्ड की अग्नि में मांस और रक्त न डाल दें, यह सोचकर कमललोचन (राम) ने अपने शरों से उस मुनि श्रेष्ठ के निवास के ऊपर एक दूसरी छत सी बना डाली।

क्षीरसागर के मंथन समय उसमें से हलाहल विष निकलकर जब सृष्टि का विनाश करने लगा था, तब देवता लोग जिस प्रकार भयभीत हो चन्द्रचूड़ (शिव) की शरण में गये थे, उसी प्रकार महा तपस्वी मुनि भी वंचकराक्षसों से भयभीत हो रामचन्द्र से बोले— 'हे अंजनवर्ण! हम आपकी शरण में हैं, हमें अभय दान दीजिए।'

तब कमललोचन (राम) ने यह कहकर कि आपलोग व्याकुल मत होइए— उन्हें अपनी भुजाओं की छाया में ले लिया और अपने धनुष की दिव्य प्रत्यंचा को अपने कान तक खींचकर सारे भूतल को (उन राक्षसों के) रक्त का समुद्र बनाया और उनके सिरों के पहाड़ बनाये।

लक्ष्मी के प्रियतम (श्रीराम) के दिव्य अस्त्रों ने भयंकर ताडका से उत्पन्न दोनों पुत्रों में प्रथम मारीच को समुद्र में फेंक दिया और दूसरे सुबाहु को यमलोक में पहुँचा दिया।

पुष्पगुच्छों की मालाओं से सुशोभित (रामचन्द्र) ने जो बाण बरसाये, उन बाणों से क्षण भर में सारा अंतरिक्ष भर गया। (बचे हुए राक्षस) यह सोचकर कि ये दोनों राघववीर अब लाशों के पर्वत पर चढ़कर हम (जीवित) पकड़ लेंगे अहमहमिका से (आपस में चढ़ा ऊपरी करते हुए) वहाँ से भाग चले।

वज्र के समान भयंकर राम के बाण भागते हुए राक्षसों का पीछा करते हुए चले तब उन राक्षसों की शिरहीन धड़ें तड़प तड़पकर नाचने लगीं, भूत पिशाच भी, जो शव भक्षण करने आये थे (लेखक के) प्रभु (रामचन्द्र) का यश गाने लगे, मांसभक्षी पक्षियों का एक चँदोवा सा वहाँ तन गया।

(देवताओं से की गई) पुष्पवर्षा (उन पक्षियों के) चँदोवे को चीरती हुई नीचे बरस पड़ी, गगन में मेघों के समान दुंदुभि गरज उठीं, इन्द्रादि देवता एकत्र हो गये और सुन्दर धनुधारी (रामचन्द्र) की जय जयकार करने लगे।

पावन तपस्वियों ने आशीष रूपी पुष्पों की वर्षा की तथा उस कानन के वृक्षों ने भी पुष्पों की वर्षा की। विश्वामित्र ने उसी समय अपना यज्ञ यथाविधि सम्पन्न किया और मुदित मन से (रामचन्द्र से) ये बातें कहीं—

सभी भुवनों का सृजन करनेवाले तथा (प्रलय के समय) उन्हें अपने उदर में रखकर उनकी रक्षा करनेवाले तुम्हीं हो। आज तुमने मेरे इस छोटे से यज्ञ की रक्षा की। मैं यही मानता हूँ कि यह सब मेरे पुण्यों का फल है नहीं तो इस छोटे से यज्ञ की रक्षा तुम्हारे लिए कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं है।

(दूसरे दिन प्रातःकाल) पुष्पों से भरे उस वन में, अपूर्व तपस्याशील अनेक ऋषियों के साथ निवास करनेवाले, पर्वत समान सद्गुणों से पूर्ण विश्वामित्र के सम्मुख कौसल्या पुत्र उपस्थित हुए और प्रणाम करके पूछा—'आज मैं आपकी क्या सेवा करूँ? आज्ञा दीजिए।

"पुत्र यदि मैं किन्हीं कार्यों को दुःसाध्य समझकर तुमसे करने के लिए कहता भी हूँ, तो वे तुम्हारे लिए दुःसाध्य नहीं होते। अभी (कुछ) बड़े कार्य करने बाकी हैं, जिन्हें बाद में किया जा सकता है। अभी हम विशाल और जल सपन्न खेतों से घिरे हुए मिथिला नगर में जायेंगे और वहाँ जाकर महाराज जनक से किये जानेवाले यज्ञ का सदर्शन करेंगे। चलो। विश्वामित्र के यह कहते ही तीनों चल पड़े। (१—५६)

•

अध्याय ६

अहल्या पटल

वे तीनों (महर्षि विश्वामित्र एवं राम लक्ष्मण) शोण (सोन ?) नदी रूपी नारी के निकट जा पहुँचे। विविध रत्नों (से सुशोभित) तथा चंदन, अगरु आदि सुगंध द्रव्यों से सुरभित सिकता राशि ही उस शोण रमणी के स्तन थे, सुकोमल लताएँ उसकी कटि थीं, (भ्रमर कुल से) गुंजरित नव विकसित पुष्प पंक्तियाँ उसकी मेखला बनी थीं, उस स्थान में फैली हुई काली मिट्टी उसके केशपाश थी, निकटस्थ पर्वतों की परिक्रमा करती हुई उसकी जो लहर बह रही थी, वे उसके नूपुर थे। इसप्रकार, वह नदी नारी शोभायमान थी।

ज्यों ही वे तीनों शोण नदी के तट पर पहुँचे, त्यों ही सूर्य भी अस्त हो गया, मानो वह अगले दिन प्रातःकाल उदित होते समय उन तीनों को शीतलता पहुँचाना चाहता हो और अपनी स्वाभाविक उष्णता को शांत करने के लिए, अरुण[1] के नयनों से भी तीव्र गति से जानेवाले अपने घोड़ों सहित, पश्चिम सागर में डूब गया हो।

(पक्षियों के) कलरव से भरे सरोवरों में सुरभिमय दीर्घ नालवाले बड़े कमल पुष्प खिले हैं, जो (प्यासे भ्रमरों को तृप्त करने के कारण) धर्म के आलय स्वरूप हैं। वे कमल सूर्यास्त होते ही अपने दल कपाटों को बंद कर लेते हैं, तो आश्रय की खोज में विलंब से आये हुए मस्त भ्रमर अपनी भ्रमरियों के साथ, उन पुष्पों से लौट जाते हैं और शोण नदी के तीरस्थ सुगंधित पुष्प भरे उद्यानों में विश्राम पाते हैं। वे तीनों रात्रि में विश्राम करने के लिए उसी उद्यान में प्रविष्ट हुए।

श्रीराघव ने विश्वामित्र से प्रश्न किया—यह कैसा उद्यान है? तपस्वी एवं कर्म बंधन से विमुक्त (विश्वामित्र) महर्षि ने उत्तर दिया—पुरातन काल में काश्यप महर्षि की पत्नी दिति ने अपने असुर पुत्रों के शोक में इसी स्थान पर तप किया था।

[यहाँ से आगे २५ पद्यों में इस उद्यान का इतिहास वर्णित है।]

कालमेघ की ममता करनेवाले मेरे (लेखक के) स्वामी (महाविष्णु) इस अंडगोल से पर परमपद स्थान में रहते हैं। एक विद्याधर स्त्री उस परमधाम में पहुँच गई और पुंडरीक के कोमल आवास में रहनेवाली लक्ष्मी का स्तवन किया। लक्ष्मी देवी ने प्रसन्न होकर एक पुष्पहार उस विद्याधर रमणी को दिया, जो पुष्पमधु से पूरित एवं भ्रमरों से युक्त था।

उस विद्याधर कन्या ने लक्ष्मी देवी के प्रसाद भूत उस पुष्पहार को अपनी वीणा में बाँध लिया और ब्रह्मलोक को लौट आई। इसी समय अतिक्रोधी दुर्वासा मुनि उसके सम्मुख आये। उन्होंने उस कन्या को लक्ष्मी देवी की भक्ता जानकर उसके चरणों की वन्दना की।[2]

---

1. 'अरुण' सूर्य के सारथी का नाम है।
2. दक्षिण में श्रीवैष्णव अपने को भगवान और भगवान के भक्तों का भी दास मानते हैं। विद्याधरी विष्णु की भक्तिन होने के कारण दुर्वासा के लिए भी वन्दनीय थी।

उस विद्याधर कन्या ने दुर्वासा महर्षि से कहा — हे महाभाग महर्षि ! इस माला में यह पुष्पहार श्रीमन्नारायण की लक्ष्मी के मुकुट का भूषण था, जो (लक्ष्मी) सृष्टि तथा स्थिति के कारण भूत सारे विश्व को निगलने और उगलनेवाले, उस विष्णु भगवान् के विशाल वक्ष पर आसीन रहती है। मैं तुमको प्रेम से इसे देती हूँ। यह कहकर उसने उस हार को दुर्वासा के हाथ में दे दिया।

दुर्वासा ने सोचा, सभी देवों की स्वामिनी लक्ष्मी देवी ने जो हार अपने मुकुट पर धारण किया था, उसे प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे मिला है, न जाने पूर्वजन्म में मैंने कौन सा बड़ा तप किया था, दुर्वासा अत्यन्त आनन्दित होकर नर्तन करने लगे अपने को कर्म विमुक्त समझने लगे और अन्त में देवलोक में जा पहुँचे।

वहाँ इन्द्र अपने समस्त वैभव के साथ ऐरावत हाथी पर सवार होकर स्वर्ग वीथि में जा रहा था। उस दृश्य को देखकर दुर्वासा विस्मय तथा आनन्द से भर गये। (वह दृश्य कैसा था?) मानो कोई रजत पर्वत हो, जिस पर जलपूर्ण बादल छाये हों सहसा विकसित कमलपुष्प भी फूले हों और जिनपर सूर्य की स्वर्णिम किरणों की आभा पड़ रही हो ऐरावत का वैसा ही भव्य दृश्य था।

रंभा मेनका, तिलोत्तमा उर्वशी — ये अप्सराएँ इन्द्र के आगे आगे नृत्य करती हुई जा रही थीं, उनकी वाणी इतनी मधुर थी कि इक्षु रस भी फीका पड़ गया था, उनके पल्लव कोमल चरण मन्मथ के पुष्पबाणों से भरे तूणीर जैसे थे, उनके नूपुर मधुर नाद करते थे तथा साथ साथ संगीत भी हो रहा था।

इन्द्र के दोनों पार्श्वों में चामर डुल रहे थे, वह दृश्य ऐसा था, मानो किसी बड़े नीलम के पर्वत के दोनों ओर चंद्रकिरणों का पुंज संचरण कर रहा हो, उसके शिर पर भव्य श्वेत छत्र ऐसा शोभित था, जैसे पूर्णचंद्र अपनी ज्योत्स्ना फैलाता हुआ स्थिर खड़ा हो।

भेरी ताल शंख आदि बाजे ऐसा नाद उत्पन्न कर रहे थे, जिसमें मंगल गीत भी डूब जाते थे। चतुर्वेदों का घोष समुद्र गर्जन के समान हो रहा था। इन्द्र का वह मनोहर वीथि विहार (जुलूस)[1] ऐसा आ रहा था, मानो वह सारे विश्व को (आनन्द में) डुबा देगा।

उपमा रहित (दुर्वासा) मुनि इस वैभव को देख हर्षित हुए और विद्याधर कन्या का दिया हुआ पुष्पहार इन्द्र को उपहार दिया। इन्द्र ने अपने हाथ में रखे अंकुश से उस हार को उठा लिया और उसे ऐरावत के सिर पर डाल दिया। ऐरावत ने अपनी सूँड से उसे खींचकर पैरों तले रौंद दिया।

यह देखते ही दुर्वासा मुनि की आँखों से कठोर क्रोधाग्नि की ज्वाला उमड़ पड़ी। सारे अंडगोल जलकर भस्म हो जायेंगे — ऐसी आशंका से भयभीत होकर देवता बिखरकर भाग गये, सूर्य चंद्र भी अपनी गति रोककर स्थिर खड़े हो गये अष्ट दिशाओं में अँधेरा फैल गया, सारे लोक चक्कर काटने लगे।

उस दुर्वासा महर्षि की साँसों से धुआँ निकलने लगा, वे क्रोध से अट्टहास कर

[1] तमिल में जुलूस के लिए 'पवान' शब्द का प्रयोग होता है। यहाँ उसके लिए वीथि-विहार शब्द का प्रयोग किया गया है।—अनु

उठ, जैसे त्रिपुर दाह के समय शिवजी हस रहे हो। उनकी भौह उनके विशाल भाल पर चढ गई, (उन्होंने अपनी) आँखो से ज्वाला उगलते हुए ऐसा गर्जन किया, जिससे स्वय वज्र भी डर गया। उन्होंने कहा—हे पापिष्ठ शतमख! सुन

पंच महाभूतो के नायक, भूमि वल्लभ एव अनुपम वेदो के प्रभु महाविष्णु के वक्ष पर आसीन आदिलक्ष्मी के द्वारा यह हार प्रेम के साथ धारण किया गया था और विद्याधर कन्या ने उनसे इसे प्राप्त किया था। बडी तपस्या की महिमा के कारण मैने उनसे यह हार प्राप्त किया।

तेरे इस वैभव को देखकर मै आनन्दित हुआ और आदर के साथ वह हार तुझे प्रदान किया, किंतु तूने इसका अनादर किया, अत तेरी सारी निधियाँ और अपार संपत्ति समुद्र मे डूब जाये तथा तू महिमाहीन होकर दु खी बन जा।—क्रोधी मुनि ने इस प्रकार इन्द्र को शाप दिया।

(दुर्वासा के शाप देते ही) रंभा आदि अप्सराएँ, कल्पवृक्ष, नौ निधियाँ, सुरभि पशु, श्वेत अश्व, पर्वताकार मत्तगज (ऐरावत) इत्यादि सभी संपत्तियाँ इन्द्र के पास से हट गई और ऊर्मियो से आकुल समुद्र मे जाकर छिप गई।

क्रोधी दुर्वासा मुनि के शाप के कारण स्वर्ग आदि सभी लोको को दरिद्रता पीडित करने लगी। तब सभी देवगण, अर्धनारीश्वर एव चतुर्मुख को साथ लेकर श्रीविष्णु भगवान के समीप पहुँचे, जिनका वक्ष रक्त कमल पर आसीन महालक्ष्मी तथा श्रीवत्स के चिह्नो से अंकित है।

नवविकसित कमल से उत्पन्न ब्रह्मा तथा शिव प्रभृति अन्य देवो ने दुर्वासा के कठोर शाप की बात बतलाई और प्रार्थना की कि आपके अतिरिक्त अन्य कोई शरण नही है, अतएव आप हम सबकी रक्षा करे। तब सभी लोको को नापनेवाले (उस त्रिविक्रम) ने प्रेम से कहा—'डरो नही।—

तुमलोग असुरो को अपने साथ मिलाकर, गर्जन करनेवाले सागर को मथो, मन्दर पर्वत को मथानी बनाओ, वासुकि सर्प को रस्सी बनाओ, शीतल चन्द्रमा को मथानी की टेक बनाओ और ओषधियो से भरकर इस सागर का मथन करो और उसमे से अमृत को निकालो।

हम भी उस स्थान पर आयेगे। तुमलोग शीघ्र ही अपना कार्य आरंभ कर दो।' विष्णु के ये वचन सुनकर देवता उनकी प्रशसा करने लगे और दरिद्रता से मुक्त होने की बात सोचकर आनंद से नाचने लगे।

देवता मंदर पर्वत को उखाड लाये, उसमे वासुकि नाग को लपेटा, चद्र को टेक बनाया, ओषधियो से (समुद्र को) भरा और क्षीरसागर को मथने लगे, तो उसमे उथल पुथल मच गई। भूमि डोल उठी, भूमि के नीचे स्थित आदिशेष भी मरोड खाने लगा।

धर्म रहित व्यक्तियो के मन जिन सद्गुणो को जान भी नही सकते, ऐसे सद्गुणो से युक्त (विष्णु भगवान) ने महान कूर्म का रूप धारण किया, अपने सहस्रो बलिष्ठ करो को

फलाकर दृढ खडे रहे घूमनेवाला मंदर पर्वत उनकी पीठ पर था। इस प्रकार, उन्होंने दुर्वासा के शाप से नष्ट हुई सभी वस्तुओं को पुनः प्राप्त किया।

सभी खोई हुई वस्तुएँ प्रभु (विष्णु भगवान्) की कृपा से पुनः प्रकट हुईं। उस समय सुर तथा असुर आपस में कलह करने लगे। विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण कर असुरों का विनाश किया और सुरों ने अमृत का पान किया।

श्रीधर मूर्त्ति ने हलाहल विष एवं चंद्रकला वृषभ वाहन (शंकर) को दिया, पंचवृक्ष तथा अन्य उत्कृष्ट वस्तुएँ इन्द्र को प्रदान किया, शेष पुष्पक आदि संपत्तियाँ को अन्यान्य देवों को दिया और लक्ष्मी देवी तथा कौस्तुभमणि को अपने हृदय का हार बनाया।

उस समय, दिति अपने पुत्र असुरों के विनाश से अत्यन्त दुःखित हुई। उसने अपने पति कश्यप ऋषि के निकट पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया तथा उनसे प्रार्थना की कि इन्द्रादि देवों के षड्यन्त्र से मेरे पुत्र मारे गये हैं, इसलिए एक ऐसा पुत्र प्रदान करो, जो उन देवों को मिटाने में समर्थ हो।

कश्यप ने दिति की प्रार्थना सुनकर कहा—तुम्हें पुत्र का वरदान देता हूँ, तुम पृथ्वी पर जाकर एक सहस्र वर्ष तक कड़ी तपस्या करोगी, तो तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। दिति तपस्या करने लगी।

इन्द्र ने दिति की तपस्या की बात सुनी। वह उसकी परिचर्या में लग गया। एक बार तपस्या से श्रान्त होकर जब दिति लेटी हुई थी, तब सूक्ष्म रूप धारण करके इन्द्र उसके गर्भ में प्रविष्ट हुआ और दिति के गर्भस्थ शिशु के सात खंड कर दिये। दिति जगकर रोने लगी, तब इन्द्र ने उन सातों खंडों को सप्त मरुत् बना दिया।

यही वह स्थान है, जो दिति की तपस्या से पवित्र हुआ है। यहाँ का शरवण (सरकंडा का वन) ही उमा और शंकर के पुत्र सुब्रह्मण्य (कार्त्तिक) का उद्भव स्थान है, जिन्हें आदिवायु एवं गंगा देवी भी भरण नहीं कर सकी थी। इस प्रकार, विश्वामित्र ने श्रीरामचंद्र को कथा सुनाई।[1]

फिर सूर्यदेव, यम के सदृश काल अंधकार को हटाकर, संसार की रक्षा करते हुए, अपने रथ पर आरूढ होकर, सहस्रों किरणों के साथ नील सागर से उदित हुए, जैसे विष्णु की नाभि से ब्रह्मा को लिये हुए आदिकमल निकला हो।

सूर्योदय होते ही त्रिमूर्त्तियों के सदृश वे तीनों (विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण) वहाँ से प्रस्थान कर चले और दोनों कूलों पर अपनी उमड़ती लहरों से टकराती हुई बहनेवाली सुंदर गंगा नदी को देखा, जो रक्त नेत्र तथा वृषभ वाहन शंकर की 'कोण्णी' तथा 'कोण्डै' फूलों से अलंकृत घने जटाजूट से निकलने के कारण, सुनहली धारा युक्त कावेरी[2] नदी के समान है।

राघव ने विश्वामित्र से कहा— पितृ सदृश ऋषीश्वर! इस महान् नदी की

1. यह कथा विस्तार के साथ कालिदास-कृत कुमारसंभव में वर्णित है।
2. कावेरी की धारा सुनहली होती है। गंगा की धारा भी शिवजी की जटा के फूलों तथा रक्त नेत्रों की छाया पड़ने से सुनहली दीखती है।

महिमा बताइए। विश्वामित्र कहने लगे—सर पालक राजकुमार! पुराने काल में तुम्हारे श्रेष्ठ सूर्यकुल में सगर नामक चक्रवर्त्ती उत्पन्न हुए थे, जिन्होंने अपनी बलिष्ठ भुजाओं से अयोध्या नगरी में रहते हुए सारी पृथ्वी पर शासन किया था।

उस विजयी चक्रवर्त्ती के दो पत्नियाँ थी। विदर्भ देश में उत्पन्न पत्नी से 'असमजस' नामक पुत्र हुआ, जिसका पुत्र 'अशुमान्' था। उनकी दूसरी पत्नी, गरुड की भगिनी सुकुमारी 'सुमति' थी, जिसके धर्मपरायण साठ हजार बलवान पुत्र हुए।

अत्यत पराक्रमी सगर चक्रवर्त्ती अपने सभी पुत्रों की सहायता से अश्वमेध यज्ञ करने लगे। देवता लोग इससे असतुष्ट हो उठे और देवेंद्र से यह समाचार निवेदित किया। इन्द्र ने जाकर यज्ञ के सुन्दर अश्व को पकड लिया और उसे ले जाकर पाताल में तपस्या करनेवाले कपिल महर्षि के पीछे छिपा दिया।

तीव्र गति से चलनेवाले उस यज्ञाश्व के पीछे पीछे अशुमान् जा रहा था। इन्द्र द्वारा उस अश्व का अपहरण होते ही वह आश्चय चकित हुआ। इन्द्र के द्वारा अपहरण को नही जानने के कारण वह सर्वत्र भू लोक में उसकी खोज करता रहा, किंतु असफल रहा। अत में अपने पितामह सगर के पास आकर सारा वृत्तात कहा।

अशुमान् से समाचार पाकर सगर ने अपने साठ हजार पुत्रों से यह समाचार कहा, तो वे वडवाग्नि के समान कोपाग्नि से जल उठे और समस्त पृथ्वी पर घोडे की खोज करके अन्त में (पृथ्वी को) खोदते खोदते पाताल में उतर पडे।

कहते हैं कि वे साठ सहस्र सगर पुत्र उत्तर दिशा में खोदने लगे और शतयोजन चौडा और शतयोजन गहरा गर्त्त खोद डाला। पाताल में पहुँचकर उन्होने महातपस्वी कपिल के पीछे अपना यज्ञाश्व देखा। वे आग की तरह क्रोध से जल उठे और कपिल महर्षि को गाली देने लगे। वे इस प्रकार अहकार से भरकर उन (महर्षि) के निकट जा पहुँचे।

(उनकी बात सुनकर) उस मुनि ने अत्यन्त उमडते हुए क्रोध के साथ अग्नि सदृश अपनी आँखें खोलकर उन्हे देखा। तब, परमशिव के मदहास से जिस प्रकार तीनो पुर जलकर भस्म हो गये थे, उसी प्रकार वे साठ हजार राजकुमार जलकर भस्मावशेष हो गये। चरों ने यह समाचार सगर चक्रवर्त्ती को दिया।

सगर, पुत्र शोक में अत्यन्त उद्विग्न हो उठे। उन्होंने अपने शोक का अन्त न पाने पर भी अपने कर्त्तव्य का स्मरण करते हुए अपने पौत्र अशुमान को बुलाया और कहा—वे (पुत्र) तो मिट गये, अब क्या आरभ किये हुए यज्ञ कृत्य को रोकना उचित होगा? अशुमान् अपने पितामह के यज्ञ की पूर्त्ति के निमित्त चल पडा और कपिल के निवास स्थान पाताल में जा पहुँचा।

पाताल में अपने मृत पितृव्यों (चाचाओं) की भस्मराशियों को देख वह उद्विग्न हो उठा। फिर, कपिल मुनि के चरण कमलों पर नत होकर खडा रहा, तब मुनि ने अश्व को ले जाने की आज्ञा दे दी और अश्व किस प्रकार वहाँ आया था, इसका सारा वृत्तात भी कह सुनाया।

फलाके दृढ खडे रहे घूमनेवाला मदर पर्वत उनकी पीठ पर था। इस प्रकार, उन्होंने दुर्वासा के शाप से नष्ट हुई सभी वस्तुओं को पुन प्राप्त किया।

सभी खोई हुई वस्तुएँ प्रभु (विष्णु भगवान्) की कृपा से पुन प्रकट हुई। उस समय सुर तथा असुर आपस मे कलह करने लगे। विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण कर असुरो का विनाश किया और सुरो ने अमृत का पान किया।

श्रीधर मूर्त्ति ने हलाहल विष एव चद्रकला वृषभ वाहन (शकर) को दिया पचवृक्ष तथा अन्य उत्कृष्ट वस्तुएँ इन्द्र को प्रदान किया, शेष पुष्पक आदि सपत्तियो को अन्यान्य देवो को दिया और लक्ष्मी देवी तथा कौस्तुभमणि को अपने हृदय का हार बनाया।

उस समय, दिति अपने पुत्र असुरो के विनाश से अत्यन्त दुखित हुई। उसने अपने पति कश्यप ऋषि के निकट पहुँचकर उन्हे प्रणाम किया तथा उनसे प्रार्थना की कि इन्द्रादि देवो के षड्यत्र से मेरे पुत्र मारे गये है, इसलिए एक ऐसा पुत्र प्रदान करे, जो उन देवो को मिटाने मे समर्थ हो।

कश्यप ने दिति की प्रार्थना सुनकर कहा—तुम्हे पुत्र का वरदान देता हूँ, तुम पृथ्वी पर जाकर एक सहस्र वर्ष तक कडी तपस्या करोगी, तो तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी। दिति तपस्या करने लगी।

इन्द्र ने दिति की तपस्या की बात सुनी। वह उसकी परिचर्या मे लग गया। एक बार तपस्या से श्रान्त होकर जब दिति लेटी हुई थी, तब सूक्ष्म रूप धारण करके इन्द्र उसके गर्भ मे प्रविष्ट हुआ और दिति के गर्भस्थ शिशु के सात खड कर दिये। दिति जगकर रोने लगी, तब इन्द्र ने उन सातो खडो को सप्त मरुत् बना दिया।

यही वह स्थान है, जो दिति की तपस्या से पवित्र हुआ है। यहाँ का शरवण (सरकडो का वन) ही उमा और शकर के पुत्र सुब्रह्मण्य (कार्त्तिक) का उदभव स्थान है, जिन्हे आदिवायु एव गगा देवी भी भरण नही कर सकी थी। इस प्रकार, विश्वामित्र ने श्रीरामचद्र को कथा सुनाई।[1]

फिर सूर्यदेव, यम के सदृश काल अधकार को हटाकर, ससार की रक्षा करते हुए, अपने रथ पर आरूढ होकर, सहस्रो किरणो के साथ नील सागर से उदित हुए, जैसे विष्णु की नाभि से ब्रह्मा को लिये हुए आदिकमल निकला हो।

सूर्योदय होते ही त्रिमूर्त्तियो के सदृश वे तीनो (विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण) वहाँ से प्रस्थान कर चले और दोनो कूलो पर अपनी उमडती लहरो से टकराती हुई बहनेवाली सुदर गगा नदी को देखा, जो रक्त नेत्र तथा वृषभ वाहन शकर की 'कोण्णी' तथा 'कोण्डे' फूलो से अलकृत घने जटाजूट से निकलने के कारण, सुनहली धारा युक्त कावेरी[2] नदी के समान है।

राघव ने विश्वामित्र से कहा— पितृ सदृश ऋषीश्वर! इस महान् नदी की

१ यह कथा विस्तार के साथ कालिदास-कृत कुमारसभव मे वर्णित है।

२ कावेरी की धारा सुनहली होती है। गगा की धारा भी शिवजी की जटा के फूलो तथा रक्त नेत्रो की छाया पड़ने से सुनहली दीखती है।

महिमा बताइए। विश्वामित्र कहने लगे—मेरे पालक राजकुमार! पुराने काल में तुम्हारे श्रेष्ठ सूर्यकुल में सगर नामक चक्रवर्त्ती उत्पन्न हुए थे, जिन्होंने अपनी बलिष्ठ भुजाओं से अयोध्या नगरी में रहते हुए सारी पृथ्वी पर शासन किया था।

उस विजयी चक्रवर्त्ती के दो पत्नियाँ थीं। विदर्भ देश में उत्पन्न पत्नी से 'असमंजस' नामक पुत्र हुआ, जिसका पुत्र 'अंशुमान्' था। उनकी दूसरी पत्नी, गरुड की भगिनी सुकुमारी 'सुमति' थी, जिसके धर्मपरायण साठ हजार बलवान् पुत्र हुए।

अत्यंत पराक्रमी सगर चक्रवर्त्ती अपने सभी पुत्रों की सहायता से अश्वमेध यज्ञ करने लगे। देवता लोग इससे असंतुष्ट हो उठे और देवेंद्र से यह समाचार निवेदित किया। इन्द्र ने जाकर यज्ञ के सुन्दर अश्व को पकड़ लिया और उसे ले जाकर पाताल में तपस्या करनेवाले कपिल महर्षि के पीछे छिपा दिया।

तीव्र गति से चलनेवाले उस यज्ञाश्व के पीछे पीछे अंशुमान् जा रहा था। इन्द्र द्वारा उस अश्व का अपहरण होते ही वह आश्चर्य चकित हुआ। इन्द्र के द्वारा अपहरण को नहीं जानने के कारण वह सर्वत्र भूलोक में उसकी खोज करता रहा, किंतु असफल रहा। अंत में अपने पितामह सगर के पास आकर सारा वृत्तांत कहा।

अंशुमान् से समाचार पाकर सगर ने अपने साठ हजार पुत्रों से यह समाचार कहा, तो वे वडवाग्नि के समान कोपाग्नि से जल उठे और समस्त पृथ्वी पर घोड़े की खोज करके अन्त में (पृथ्वी को) खोदते खोदते पाताल में उतर पड़े।

कहते हैं कि वे साठ सहस्र सगर पुत्र उत्तर दिशा में खोदने लगे और शतयोजन चौड़ा और शतयोजन गहरा गर्त्त खोद डाला। पाताल में पहुँचकर उन्होंने महातपस्वी कपिल के पीछे अपना यज्ञाश्व देखा। वे आग की तरह क्रोध से जल उठे और कपिल महर्षि को गाली देने लगे। वे इस प्रकार अहंकार से भरकर उन (महर्षि) के निकट जा पहुँचे।

(उनकी बात सुनकर) उस मुनि ने अत्यन्त उमड़ते हुए क्रोध के साथ अग्नि सदृश अपनी आँखें खोलकर उन्हें देखा। तब, परमशिव के मंदहास से जिस प्रकार तीनों पुर जलकर भस्म हो गये थे, उसी प्रकार वे साठ हजार राजकुमार जलकर भस्मावशेष हो गये। चरों ने यह समाचार सगर चक्रवर्त्ती को दिया।

सगर, पुत्र शोक में अत्यन्त उद्विग्न हो उठे। उन्होंने अपने शोक का अन्त न पाने पर भी अपने कर्त्तव्य का स्मरण करते हुए अपने पौत्र अंशुमान को बुलाया और कहा—वे (पुत्र) तो मिट गये, अब क्या आरंभ किये हुए यज्ञ कृत्य को रोकना उचित होगा? अंशुमान् अपने पितामह के यज्ञ की पूर्त्ति के निमित्त चल पड़ा और कपिल के निवास स्थान पाताल में जा पहुँचा।

पाताल में अपने मृत पितरों (चाचाओं) की भस्मराशियों को देख वह उद्विग्न हो उठा। फिर, कपिल मुनि के चरण कमलों पर नत होकर खड़ा रहा, तब मुनि ने अश्व को ले जाने की आज्ञा दे दी और अश्व किस प्रकार वहाँ आया था, इसका सारा वृत्तांत भी कह सुनाया।

मगर के द्वारा प्रशंसित (रामचन्द्र)। उस निष्कलंक मुनि के वचन सुनकर अंशुमान् ने आदर के साथ उनकी वंदना की और अश्व लेकर लौट आया। सगर ने यज्ञ पूर्ण किया। कुछ समय उपरान्त अंशुमान् को राज्य सौंपकर चक्रवर्त्ती दिवंगत हो गये।

सगर पुत्रों के द्वारा खोदे जाने से मकर मत्स्यों से पूरित समुद्र तो 'सागर' कहलाया। अंशुमान् अप्रतिम पराक्रम के साथ भूमि का शासन करता रहा। उसके दीर्घवंश में भगीरथ नामक कुमार अवतरित हुआ।

वे चक्रवर्त्ती भगीरथ समस्त वस्तों पर अपना एकमात्र शासन चक्र चलाते रहे। एक बार उन्होंने वसिष्ठ से अपने पूर्वज सगर कुमारों की मृत्यु का वृत्तान्त सुना। तब उन्होंने वसिष्ठ के चरणतल को सिर पर लगाकर प्रणाम किया और निवेदन किया—

कपिल की कठोर कोपाग्नि में मेरे पूर्वज दग्ध हुए और दीर्घकाल से निरय (नरक) में पड़े हैं। मैं उनके उद्धार के लिए तपस्या करना चाहता हूँ। कृपया आप तपस्या का क्रम मुझे बतला दें। मुनिवर ने कहा—

हे भूमि पालकों के प्रभु! तुम ब्रह्मा को लक्ष्य करके अपने प्रपितामहों के उद्धार के निमित्त निरंतर कई दिनों तक अश्रान्त तपस्या करो।

तब भगीरथ सारी पृथ्वी का भार अपने मन्त्री सुमंत्र को सौंपकर हिमालय के अंक में जा पहुँचे। जब उन्होंने दस सहस्र वर्ष तक कठिन तपस्या की, तो आदिकमल से उद्भूत ब्रह्मा प्रकट हुए।

ब्रह्मा ने भगीरथ से कहा—तुम्हारी इस बड़ी तपस्या से मैं संतुष्ट हुआ। महान तपस्वी कपिल के क्रोध से तुम्हारे पूर्वपुरुष जल गये थे। यदि उनके भस्मावशेष आकाश गंगा के प्रवाह से सिंचित हों, तो वे सद्गति को प्राप्त होंगे।

विशाल गगन में बहनेवाली गंगा नदी यदि भूमि पर उतर आयगी, तो उसके वेग का त्रिनेत्र के अतिरिक्त और कोई वहन नहीं कर सकता, अतः शिवजी को लक्ष्य कर तुम तपस्या करो। यह कहकर विश्व के निर्माता ब्रह्मदेव अदृश्य हुए।

फिर, भगीरथ ने शिवजी का ध्यान करते हुए पूर्वोक्त समय तक ही (दस सहस्र वर्ष) तप किया। अग्नि समान कांतियुक्त देव (शिवजी) वहाँ पहुँचे और यह कहकर अदृश्य हो गये कि हम तुम्हारी इच्छा पूर्ण करेंगे। उसके पश्चात् पाँच सहस्र वर्ष तक गंगा देवी को लक्ष्य कर भगीरथ ने तप किया।

नदियों में श्रेष्ठतम (गंगा) नदी, तरुण नारी का रूप धारण कर भगीरथ के सम्मुख प्रकट हुई और उससे कहा—तुम किस प्रयोजन के निमित्त यह कठोर तप कर रहे हो? उत्तुंग तरंग भरित (गंगा) प्रवाह यदि स्वर्ग से भूमि पर उतर आयगा, तो उसका वेग कौन सह सकेगा? शिव ने जो वचन कहा है, वह विनोद मात्र है, उससे कुछ नहीं होगा। दुबारा तुम शिवजी की तपस्या करो और ठीक ढंग से यह जान लो कि शिव गंगा के वेग को सहने के लिए सन्नद्ध हैं या नहीं।

गंगा के वचन सुनकर वह (भगीरथ) खिन्नमन हो गया और फिर जाकर दो सहस्र वर्ष तक स्वर्णमय जटावाले एवं अग्नि ज्वाला स्वरूप (शिवजी) को लक्ष्य करके तप किया।

तब भगवान् (शिवजी) उसके सम्मुख प्रत्यक्ष हुए और उसकी इच्छा के विषय में पूछा। भगीरथ ने निवेदन किया—मेरे प्रभु! गगा नदी ने कहा है कि इनके वेग को रोक लेने का आपका पूर्व वचन केवल विनोद मात्र है, तो तथ्य क्या है, बतलाइए। यह सुनकर उन्होंने (शकर ने) उत्तर दिया—डरो नही, मैं गगा को इस प्रकार रोक लूँगा कि उसकी एक बूँद भी नही बिखरेगी। और फिर, वे (शिवजी) अदृश्य हो गये। तब उसने (भगीरथ ने) गगा को लक्ष्य करके ढाई हजार वर्ष तक कडी तपस्या की।

उस राजा ने क्रमश पत्ते, भस्म, जल, पवन, सूर्य किरण—इनका आहार करते हुए और फिर इनका भी त्याग करके तीस सहस्र वर्ष तक महान् श्रद्धा के साथ तपस्या की।

(भगीरथ की तपस्या पूर्ण होते ही) श्रेष्ठ नदी आकाश से भू लोक में आकर प्रकट हुई। वह इस प्रकार गर्जन करती हुई उतरी कि ब्रह्मदेव का सत्यलोक और इन्द्रादि देवों का स्वर्गलोक भी कॉप उठे। पार्वती के पति (शिवजी) ने अपने विलक्षण जटाजूट में उसे पूर्णरूप से छिपा लिया।

घास की नोक पर पडी हुई ओस की बूँद के समान, भगवान् (शकर) की जटा में उस श्रेष्ठ नदी को छिपे हुए देखकर वह (भगीरथ) अत्यन्त विभ्रम के साथ सिर झुकाये मौन खडा रहा। उन्होंने (शकर ने) उसे धीरज बँधाते हुए कहा कि डरो नही अब गगा मेरी जटा के मध्य में है, और फिर उसके एक थोडे से अश को बाहर निकलने दिया। गगा का वह अश भूमि पर उतर पडा।

आगे आगे राजा चलने लगा और उसके पीछे पीछे गगा, मृत सगर पुत्रों को सदगति देने की उमग में, बडी तेजी से बह चली, उसने मार्ग में तपोनिरत जह्नु महर्षि के यज्ञ का ध्वस कर दिया। जह्नु ने क्रोधाविष्ट होकर गगा प्रवाह को चुल्लू में भरकर पी लिया।

उस दृश्य को देखकर वेदज्ञ मुनि विस्मित रह गये। उसने (भगीरथ ने) जह्नु को नमस्कार करके गगा को लाने का सारा वृत्तात कह सुनाया, तब जह्नु ने द्रवीभूत होकर कान के मार्ग से गगा को बाहर निकाल दिया, तब वह मृतक राजपुत्रों की भस्मराशि पर उछलती हुई बह चली।

'निरय' (नामक नरक) में पडे हुए सगर कुमार अनन्त मार्ग (स्वर्गलोक) में जा पहुँचे। इस दृश्य को देखकर आनन्दित स्वर्गवासियों (देवों) ने सुगन्धित पुष्पों की वर्षा की। नगाडे बज उठे। तब, भगीरथ अयोध्यापुरी को लौट आया।

(विश्वामित्र ने रामचन्द्र से कहा)— हे नृपकुमार! इस अण्डगोल से परे विद्यमान, समस्त विश्व को एक ही पग में नापनेवाले (त्रिविक्रम) के कमल चरण से निस्सृत होकर कमलभव (ब्रह्मा) के कमडल में जो जल सचित हुआ था, वही भगीरथ की तपस्या से लाया जाकर गगा नदी के रूप में भूतल पर आया है।

भगीरथ ने अपने पितरों की सदगति के लिए अनेक सहस्र वर्षों तक तपस्या करके यह जल भूतल पर लाया, अत यह नदी भागीरथी कहलाई और जह्नु महर्षि के कर्ण मार्ग से बहने के कारण यह जाह्नवी कहलाई।

(विश्वामित्र ने) गगा की कहानी कह सुनाई, तो वे (राम और लक्ष्मण) सुनकर आश्चर्य और आनन्द म डूब गये। फिर, वे गगा को पार कर विशाला नामक नगर म पहुँचे जहाँ के पर्वत सदृश भुजावाले नरेश ने उनका आदर सहित स्वागत किया और (विश्वामित्र के) चरणो की वन्दना की। तीनो कुछ समय उस स्थान म ठहरे और (फिर) आगे बढ चले।

वे तीनो मिथिला देश म जा पहुँचे, जहाँ खेतो म असख्य कमलपुष्प निद्रा स जग उठे थ। (जहाँ) खेतो को निराने म लगी हुई कृषक नारियो के भाले सदृश नुकीले एव दीर्घ चचल नयनो की परछाई पानी म पडती थी, जिन्हे देखकर सारस पक्षी भ्राति मे उन्हे 'कयल' मीन समझ लेते थे और उन परछाइयो पर अपनी चोच मारने लगते थे किन्तु मीन न पाकर लज्जित हो जाते थे।

[नीचे विदेह देश के उद्यानो का वर्णन है।]

(विदेह देश के) उद्यान कैसे है ?

बडे बडे असख्य बाँधो के जलमार्गो से होकर जल बहता है, तो मृदग नाद होता है, अशोकवृक्ष अपने नवीन पुष्पो के रूप म उज्ज्वल दीप लिये खडे हैं, तारो के सदृश मधु राग बहानेवाले पुष्प रूपी वीणा म भ्रमर सगीत गाते ह तथा मयूर अपने पख फैलाकर नाचते ह।

वहाँ के खेतो म पकज पुष्प के साथ नीलोत्पल को देखकर कृषक भ्राति से उन्हे किसी रमणी का वदन तथा नयन समझ लेते ह और (उनमे) आकृष्ट हो उनके समीप आ पहुचते ह, किन्तु वहाँ रमणी के बदले केवल पुष्प को देखकर खीझ उठते हैं और उन पुष्पो को उखाडकर फेक देते ह। ऐसे उखाडे गये पुष्प वहाँ बहुत से पडे हुए हैं।

उस देश की कोकिलकठी रमणियाँ जब मदगति से चलती हैं, तब वहाँ के हस (उनकी गति से) उन्हे अपनी ही जाति की समझकर उनके पीछे चल पडते ह, वे रमणियाँ जब नदियो म स्नान करती ह, तब उनके शरीर का कुकुम लेप जल म मिल जाता है और जलचर पक्षी उन रगो से लिप्त होकर विविध दृश्य उपस्थित करते ह, एक ही जाति के पक्षी उनके (विविध रगो के) कारण एक दूसरे को अन्य जाति का पक्षी समझ लेते ह तथा (आपस म) कलह करने लगते हैं, सध्या होने पर कमलपुष्प तो निद्रित हो जाते ह, किंतु कलह करनेवाले पक्षी शब्द करते हुए जागरित ही रहते ह।

कभी पक्ति बाँधकर चलनेवाली बडी बडी भैसो के थनो से बहता हुआ दूध, वहाँ की नदियो मे प्रवाहित होता हैं, कभी तट पर रहनेवाले आम के पेडो स उनके फलो का रस झरकर बहता है, तो कभी कोल्हू म पेरे जानेवाले गन्ने का रस ही बह चलता है, और कभी आहत मधु के छत्तो से शहद गिरकर उन नदियो म प्रवाहित हो पडता है। इन वस्तुओ के कारण शीतल जल के बहने के लिए उनम (नदियो मे) स्थान ही नही रह गया है।

वहाँ की नृत्य शालाओ म जलद समान शीतल दृष्टिवाली रमणियाँ नाचती ह, जिनके पर्वत सदृश स्तनो के भार से सूत से भी सूक्ष्म (उनकी) कटियाँ लचक लचक जाती ह

उनके नृत्यो के साथ सगीत तथा मृदग ताल की ध्वनियाँ होती रहती हैं जिन (शब्दों) से भडककर भैंसे भागकर नदियो में जा गिरती हैं, जिनके कारण (पानी में) उथल पुथल उत्पन्न हो जाती है, जिससे मीन उछल उछलकर तट पर के नारियल गवाक (सुपारी) आदि वृक्षों के पत्तों पर जा गिरते हैं।

वहाँ के सरोवरो में कोमलागी सुन्दरियाँ (जब) भाल सदृश अपनी आँखें मीच कर और जलमग्न होकर ऊपर उठती हैं, तब वे क्षीर सागर के मथने के समय जल में ऊपर उठती हुई लक्ष्मी देवी का दृश्य उपस्थित करती है। उनके करो के श्वेत कगन वहाँ के जल पक्षियों के साथ बोल उठते हैं। उन सरोवरो में भ्रमर सुगधित पुष्प की कलिया को भेदकर भीतर पहुँचते हैं तथा मधुपान करके मत्त रहते हैं।

इस प्रकार के मिथिला देश में वे तीनो जा पहुँचे और प्राचीरो से आवृत, ऊँची ध्वजाओं से अलकृत उस मिथिला नगर के बाहर आकर ठहरे। वहाँ एक उजडे हुए स्थान में उन्होंने एक ऊँचा प्रस्तर पडा देखा जो गृहस्थ धर्म से च्युत होकर अभिशप्त हो पडी रहनेवाली गौतम पत्नी अहल्या का ही रूप था।

उस प्रस्तर पर काकुत्स्थ (श्रीरामचन्द्र) की चरण धूलि जा लगी , तुरन्त ही वह (अहल्या देवी) प्रस्तर रूप छोडकर अपना पूर्व स्वरूप धारण करके उठ खडी हुई, जैसे कोई नर अविद्या मोह को मिटानेवाला तत्त्वज्ञान पाने पर मायावृत रूप छोड दे और यथार्थ आत्म स्वरूप को पहचान ले और भगवान के चरणो को प्राप्त हो जाय। महामुनि (विश्वामित्र) कहने लगे—

गगन से भूतल पर गगा का ले आनेवाले भगीरथ के वश में उत्पन्न (रामचन्द्र)! यह विद्युत् समान नारी, जो अत्यन्त आनन्द के साथ एक ओर खडी है, उस गौतम मुनि की पत्नी अहल्या है, जिस (मुनि) ने पापकर्म करनेवाले देवेन्द्र को सहस्र रक्त वर्ण नेत्र दिये थे।

सुनहली जटावाले (विश्वामित्र) का कथन सुनकर, पकज पर विद्युत् द्युति के साथ आसीन लक्ष्मी के वल्लभ (रामचन्द्र) ने आश्चर्य से कहा—इस ससार की भी कैसी प्रकृति है ? इस प्रकार की घटनाएँ क्यों होती हैं ? क्या ये पूर्वजन्मो के कर्मों का परिणाम हैं अथवा उन कर्मों के अतिरिक्त कोई और भी कारण है ? ससार की माता सदृश अहल्या की ऐसी दशा क्यों हुई ?

रामचन्द्र की बात सुनकर ज्ञानी (विश्वामित्र) ने कहा— शुभाश्रय ! सुनो, पुराने समय में वज्रधारी इन्द्र कभी दुर्गुण रहित सयमी गौतम महर्षि की मृग के समान नयनोवाली पत्नी अहल्या के सौंदर्य पर मुग्ध हुआ और उसके स्तनो का स्पर्श प्राप्त करना चाहा।

अहल्या के नयन रूपी भाले तथा मन्मथ के बाण इन्द्र को पीडित करने लगे। उसने सोचा, किसी भी उपाय से अहल्या की सगति प्राप्त करनी चाहिए , एक दिन उसने कामान्ध होकर गौतम मुनि से अहल्या को पृथक् किया और सत्य स्वरूप गौतम का वेष धारण कर उसके पास जा पहुँचा।

नह अहल्या की मगति म सुगधित नवमधु का महान् आनन्द पा रहा था, उमी ममय अहल्या को अनुभव हुआ कि यह इन्द्र है तो भी उमने उसे अनुचित कृत्य मानकर दर नहा किया, उमी ममय त्रिनेत्र (शिवजी) के ममान मर्व शक्तिमान गौतम मुनि भी शीघ्र वहाँ लौट आय।

गौतम धनुर्बाण नही चला सकते थ, किन्तु प्रतिकार रहित शाप दने म अत्यन्त ममर्थ थ। उनको देखकर अमिट अपयश पाई हुई (अहल्या) भयभीत हो खडी रही, इन्द्र कॉपता हुआ बिल्ली के जैसे वहाँ से धीरे धीरे खिसकने लगा।

सदा तटस्थ दशा म रहनेवाले परिशुद्ध गौतम महर्षि ने अग्नि उगलती हुई आँखो मे देखा व सारी घटनाएँ समझ गये और तुम्हारे (राम के) बाणो के समान तीक्ष्ण वचन (इन्द्र के प्रति) कहे—'तुम्हारे शरीर मे एक हजार नारियो के चिह्न रूप अवयव उत्पन्न हो।' क्षण मात्र म इन्द्र का शरीर उन अवयवो से भर गया।

इन्द्र सभी का उपहास पात्र हो गया। अमिट अपयश लेकर वह लज्जित हुआ और वहाँ से चला गया। तब गौतम ने सुकुमारी अहल्या को देखकर कहा—'वारनारी के सदृश आचरण करनेवाली तुम पत्थर बन जाओ।' अहल्या पत्थर बनकर गिरने लगी।

(उस समय) उसने गौतम से प्राथना की कि हे अग्निमय रुद्र समान मुनिवर! (छोटो के) अपराधो को क्षमा करना महान् व्यक्तियो का स्वभाव होता है। अत, मुझे क्षमा करो और मेरे शाप का अत कब होगा, बताओ।

तब गौतम ने कहा—भ्रमरो से घिरे पुष्पहार धारण करनेवाले दशरथ पुत्र (श्रीरामचद्र) जब इस स्थान पर आयेगे, तब उनकी पद रज का स्पश होते ही तुम्हारा उद्धार होगा।

शाप से विकृताग इन्द्र का देखकर सभी देवता ब्रह्मा को अपने साथ लेकर गौतम मुनि के पास आये और उनसे प्राथना करने लगे। देवताओ की प्रार्थना सुनकर सयमी गौतम शात हुए और इन्द्र के शरीर पर के सहस्र स्त्री-चिह्नो को सहस्र नयन बना दिये। अहल्या प्रस्तर के रूप मे पडी रही।

हे मेघ समान कातियुक्त (रामचन्द्र)। प्राचीन काल म ऐसी घटना घटी थी। अब तुम इस भूतल पर अवतीर्ण हो गये हो, इसलिए आगे सभी प्राणिवर्ग का उद्धार होगा, फिर क्या उनकी दुर्गति कभी सभव हो सकती है? कदापि नही।[१] वहाँ अजन पर्वत की जैसी ताडका से तुमने जो युद्ध किया, उसमे तुम्हारा हस्त कौशल देखा था, अब यहाँ तुम्हारे चरणो का कौशल देख रहा हूँ।

श्यामल पुरुष (रामचन्द्र) ने, जिसके अरुण चरणो से अनन्त उपकार होता है, उनके (विश्वामित्र के) समस्त वचन सुनकर अहल्या के प्रति कहा—हे माता। तुम अब महान् तपस्वी (गौतम) की सेवा म निरत हो जाओ, जिससे उनके मन म तुम्हारे प्रति

१ कबर का यह भाव है कि श्रीरामचन्द्र के अवतार के पूर्व अहल्या-शाप जैसी घटनाए घटित होती थी। अब उनका अवतार होने के पश्चात् ऐसी घटनाए सभव नही होंगी और जड, चेतन सभी प्राणियों का उद्धार होगा। वैष्णव भक्तों का विश्वास है कि रामचन्द्र के चरणों के प्रभाव से अचेतन भी मुक्ति प्राप्त कर जाते हैं।—अनु०

करुणा उत्पन्न हो। बीच मे आये कष्टो का स्मरण करके दु खी मत होओ। अब तुम अपने पति के आश्रम मे जाओ। यो कहकर अहल्या के चरणो की वन्दना की।

आगे चलकर वे सब गौतम मुनि के आश्रम मे जा पहुँचे गौतम उन अतिथियो के आगमन से अत्यत हर्षित हुए और आगे बढकर आदर के साथ उनका स्वागत किया और सब प्रकार से उनका सत्कार किया। तब गाधिपुत्र ने उन तपस्वियो से कहा -

अजनवर्ण (रामचन्द्र) की चरण धूलि लगी नही कि अहल्या अपने पूर्व स्वरूप मे खडी हो गई, उसने अपने मन से कोई पाप नही किया था, अत अब तुम उसे स्वीकार करो। गाधिपुत्र के ऐसा कहने पर ब्रह्मदेव के समान उस (गौतम) ने अहल्या को स्वीकार कर लिया।

सकल सदगुणो से पूरित (रामचन्द्र) ने गौतम की परिक्रमा करके उनके चरण-कमलो को प्रणाम किया और अहल्या को उन्हे सौप दिया। फिर, तपस्वी (विश्वामित्र) के साथ मिथिला नगरी के निकट जा पहुँचे और उसके मणिमय प्राचीर को देखा। (१—८८)

●

अध्याय १०

मिथिला-दर्शन पटल

प्रहरियो से सुरक्षित वह मिथिला नगरी अपनी ऊँची और मनोहर ध्वजा रूपी हाथो को ऊँचा उठाये हुए है, मानों उस कमल नयन (रामचन्द्र) को यह कहकर आह्वान कर रही हो कि 'सुनहली आभावाली लक्ष्मी मेरी तपस्या के प्रभाव से अपना निवास कमल पुष्प को छोडकर यहाँ अवतीर्ण हुई हैं, अत आप शीघ्र आइए।'

उन्होंने देखा कि उस नगर के ऊँचे ऊँचे प्रासादो पर सुदर ध्वजाओ की पक्तियाँ नृत्य कर रही हैं, वे ऐसी लगती है, मानों धर्मरूपी दूत से सदेश पाकर, अनुपम सुदरी जानकी का पाणिग्रहण करने के लिए योग्य वर (रामचन्द्र) को आते हुए देखकर, गगन तल मे अप्सराएँ आनन्द से नाच रही हो।

उस नगर मे कही दो मत्त गज आपस मे टकरा रहे है, जो दो पहाडो के जैसे दीखते हैं, जिनके बडे बडे श्वेत दत वज्र के समान हैं और जिनकी आँखो मे कोपाग्नि निकल रही है, मानो प्रेमी दपति मन्मथ के बाणो से विद्ध होकर (एक दूसरे से) मिलने चले हो और इतने मे प्रणय कलह मे लग गये हो।

उन्होंने देखा कि जब सूर्य अस्तगत होने लगता है, तब वहाँ का आकाश क्षीर सागर के जैसा दीख पडता है, ऊँचे प्रासादो पर उडनेवाली ध्वजाएँ मेघों का स्पर्श करती हुई गीली होती रहती हैं और साथ साथ मेघों के समान ही फैले हुए अगरु धूम के स्पर्श से सूखती भी रहती हैं।

मन्मथ सीता देवी का चित्र खींचना चाहता है और अमृत मे अपनी लेखनी

टुवाता ह लेकिन व बेचारा मीताजी के अवयवों के सौन्दर्य को आकृत करने में असमर्थ हो होकर रह जाता है ऐसी अनुपम सुंदरी को अपने अंक में पाकर मिथिला नगरी अपने स्वर्णमय प्राचीरों के साथ ऐसी शोभायमान है जैसे लक्ष्मी का निवासभूत कमल पुष्प ही हो। ऐसी उस नगरी में वे तीनों प्रविष्ट हुए।

वे तीनों मिथिला की विशाल वीथियों में होकर जाने लगे, जहाँ चन्द्रोपम ललाट वाली नारियाँ एवं पुरुषों के रत्नमय आभरण बिखरे पड़े रहते थे (समागम काल में वे उन आभरणों को बाधाजनक पाकर उतारकर फेंक देते थे) वे वीथियाँ देखने में ऐसी लगती थीं जैसे तमिल भाषा के पिता (अगस्त्य) मुनिवर के पी जाने पर रत्नमय समुद्र का तल हो या रात्रि के समय घन नक्षत्रों से जड़ा हुआ आकाश हो।

वे लोग वहाँ की वीथियों में जाने लगे, जहाँ लोहे के अंकुशों को भी तोड़ देने वाले पवन के वेग मत्तगज मद जल बहाते थे जब उस मद जल की धारा बह चलती थी, तब लगाम में रत्नवाले घोड़ों के मुँह से जो झाग गिरता था, उसके मिलने से उस धारा का रूप बदल जाता था। फिर, रथों के निरंतर दौड़ने से कीचड़ बनता था और अनन्तर (उनके सूखने के बाद) धूल फैल जाती थी। यों उन वीथियों की आकृति क्षण क्षण में परिवर्तित होती रहती थी।

वे तीनों मिथिला की उन विशाल वीथियों से जाने लगे, जहाँ रात की वेला में मधुरभाषी रमणियों ने अपने पुष्प हार फेंक दिये थे, जिन से मधु धारा बह रही थी और जिनपर भ्रमर मँडरा रहे थे। वे मुरझाई हुई पुष्पमालाएँ उन कोमलांगी नारियों की जैसी ही लगती थीं, जो निरंतर रत्यानुराग भरे अपने प्रेमियों के साथ काम समर कर चुकने पर अत्यंत श्रांत हो पड़ी रहती हैं।

उन्होंने मिथिला नगर की स्वर्णमय नृत्यशालाएँ देखी, जिनमें 'याक' (वीणा के जैसा एक तंत्री वाद्य) के घन मधुर तारों के नाद, मधुर कंठ से गाये हुए गीत, उँगली से छेड़ी जानेवाली मकरवीणा की ध्वनि—ये सब एक दूसरे से एकश्रुति होकर गुंजित होते। और जहाँ अस्ति और नास्ति का संदेह उत्पन्न करनेवाली सूक्ष्म कटि रमणियाँ नृत्य करती थीं, जिनके हाथों के मार्ग पर उनके नयन चलते तथा उनके नयनों के मार्ग पर उनके मन (के भाव) चलते थे।

उन्होंने देखा—मरकत सदृश गुवाक (सुपारी) के वृक्षों में शुद्ध प्रवाल जैसे फल लगे हैं, उन वृक्षों में झूले लगे हैं उन में सुन्दर नारियाँ झूल रही हैं, झूले बार बार इधर से उधर और उधर से इधर आते जाते रहते हैं और यह स्मरण दिलाते हैं कि पापी जन भी इसी प्रकार पुन पुन इस संसार में आते जाते रहते हैं। उन रमणियों के पुष्पहारों पर से उड़ हुए भ्रमर गुंजार भरते हैं, मानों उनकी लचकती हुई सूक्ष्म कटियों पर दया उत्पन्न होने से वे चिल्ला उठे हों।

---

१ प्राचीन तमिल-साहित्य में चार प्रकार के याक् वाद्य प्रसिद्ध हैं। उनके नाम हैं—(१) बरियाक (२) कमरयाक (३) शोटयाक (४) शगोडयाक जिनमें क्रमश २१, १ १४ और ७ तंत्रियाँ होती थीं।—अनु

उन तीना ने मिथिला नगर की पण्यवीथि (बाजार) देखी, जहाँ दानो ओर अपार रत्न, स्वर्ण, मोती, कबरी मृग के केश, अरण्य म उत्पन्न अगरु की लकडी, मयूर पख हाथी के दाँत—इनके अबार लगे थे। वह हाट ऐसी लगती थी, जैसे कावेरी नदी हो, जिसके दोनो तटो पर कृषका ने माती, अगरु आदि एकत्र कर उनकी राशियाँ बना दी हा।

उस नगर म रमणियाँ नुकील और छाटे नाखूनवाले अपने कामल कर पल्लवो का दुखाती हुइ वीणा की खूटियो को घुमाती थी और प्रवहमाण मधु धारा सदृश तन्त्रियो का कसती थी , व अपने हाथ की उँगलियो के साथ मन को भी सलग्न करके, उज्ज्वल मदहास बिखरेती हुइ विस्पष्ट स्वर युक्त सगीत रूपी स्वच्छ मधु को पान कराती थी उस सगीत का पान करते हुए व तीनो आनद से आगे बढ चले।

कहा उन्होंने अतिवेग से दोडते हुए घोडा की पक्ति देखी जा कुम्हार के द्वारा घुमाये गये चाक के समान वर्तुल आकार म दौड रही थी। (वह पक्ति) महा पुरुषो की मित्रता के ही समान अटूट गतिवाली थी तथा ज्ञानियो की बुद्धि के सदृश एकाग्र थी। वे घोडे ऐसे दोडते थे कि उनका आकार स्पष्ट नही दिखाइ पडता था।

उन्होने ऊँचे प्रासादो के झरोखा म अनेक उदीयमान पूर्णचद्र देखे, जा पन भाते मन्मथ का धनुष, भ्रमर कुल से सकुल नील केशा का जूडा—इनसे शोभायमान थ तथा दीर्घकाल का कलक भी जिनसे मिट गया था।

उन्होंने अनेक मनोहर कमल भी देखे, जा स्फटिक चषको म भर नवसुरभित मद्य का पान करके हास प्रकट करते हुए मस्ती से अर्थहीन वचन वकते थे और अपने प्रियतमो के प्रति मान करने जाकर हँस पडते थे।

[उपर्युक्त दोनो पद्यो मे वारनारियो का वर्णन है।]

वारनारियाँ गेद खेल रही थी। शारीरिक सुख के साथ ही धन भी प्राप्त करने वाली, सपफन तुल्य जघनवाली वेश्याओ के मन के जैसे ही स्फटिकवर्णवाले, कदुक भी अपना स्वाभाविक रग छिपाते थे। व (कदुक) उनकी कज्जलाकित आँखो की छाया पडने मे काले तथा उनकी लाल हथेलियो की छाया से लाल होते रहते थ।

उन्होने कई द्यूतशालाए भी देखी, जहाँ भाले जैसी नुकीली आँखोवाली सुन्दर वेश्याएँ चौसर खेलती थी। वे अपने हाथ के कगन कर्णाभरण, रत्नहार कलिगदेश की बनी अमूल्य चादर, मकरवीणा आदि को भी दाँव पर रख देती थी। (खेलते खेलते थक जाने से) उनके पुष्पालकृत केशपाश शिथिल हो जाते थे और स्फटिक के बने कुत्ते के आकार की मुहरे उनकी हथेली की छाया से लाल दिखाइ देती था।

उस नगर म कई बावलियाँ भी थी, जिनम अनुपम अगावाली सुन्दरियाँ आनद से स्नान करती थी। उस समय वहाँ के कमल, नीलकमल, रक्तकुमुद, जल पर फैली हुई 'वल्लै' लता के पत्ते, नीलोत्पल, लाल लाल 'किडै' (नामक पोध), तरग, मीन आदि जलवर्त्ती वस्तुएँ (उनके अगा की सुन्दरता देख) लज्जित हो, दु ख अनुभव करती थी।

कहा तरुण पुरुष खड्ग चलाने का अभ्यास करते थे। उनकी भुजाओ पर चदन

डुबाता ” लेकिन वह बेचारा सीताजी के अवयवों के सौन्दर्य का अंकित करने में सर्वथा असमर्थ होकर हारकर रह जाता है। ऐसी अनुपम सुंदरी को अपने अंक में पाकर मिथिला नगरी अपने स्वर्णमय प्राचीरों के साथ ऐसी शोभायमान है, जैसे लक्ष्मी का निवासभूत कमल पुष्प ही हो। ऐसी उस नगरी में वे तीनों प्रविष्ट हुए।

वे तीनों मिथिला की विशाल वीथियों से होकर जाने लगे, जहाँ चन्द्रोपम ललाट वाली नारियाँ एवं पुरुषों के रत्नमय आभरण बिखरे पड़े रहते थे (समागम काल में वे उन आभरणों को बाधाजनक पाकर उतारकर फेंक देते हैं), वे वीथियाँ देखने में ऐसी लगती थीं जैसे तमिल भाषा के पिता (अगस्त्य) मुनिवर के पी जाने पर रत्नमय समुद्र का तल हो, या रात्रि के समय घन नक्षत्रों से जड़ा हुआ आकाश हो।

वे लोग वहाँ की वीथियों में जाने लगे, जहाँ लोहे के अंकुशों को भी तोड़ देनेवाले पर्वत सदृश मत्तगज मद जल बहाते थे, तब उस मद जल की धारा बह चलती थी, तब लगाम में रत्नवाले घोड़ों के मुँह से जो झाग गिरता था, उसके मिलने से उस धारा का रूप बदल जाता था। फिर, रथों के निरंतर लौटने से कीचड़ बनता था और अनन्तर (उनके सूखने के बाद) धूल फैल जाती थी। यों उन वीथियों की आकृति क्षण क्षण में परिवर्त्तित होती रहती थी।

वे तीनों मिथिला की उन विशाल वीथियों में जाने लगे, जहाँ रात की वेला में मधुरभाषी रमणियों ने अपने पुष्प हार फेंक दिये थे, जिन से मधु धारा बह रही थी और जिनपर भ्रमर मँडरा रहे थे। वे मुरझाई हुई पुष्पमालाएँ उन कोमलांगी नारियों की जैसी ही लगती थीं जो निरंतर प्रणयानुराग भर अपने प्रेमियों के साथ काम समर कर चुकने पर अत्यंत श्रांत हो पड़ी रहती हैं।

उन्होंने मिथिला नगर की स्वर्णमय नृत्यशालाएँ देखीं, जिनमें 'याक'[1] (वीणा के समान एक तन्त्री वाद्य) के घन मधुर तारों के नाद, मधुर कंठ से गाये हुए गीत, उँगली से छेड़े जानेवाली 'मकरवीणा' की ध्वनि—ये सब एक दूसरे से एकश्रुति होकर गुंजित होते थे और जहाँ अस्ति और नास्ति का संदेह उत्पन्न करनेवाली सूक्ष्म कटि रमणियाँ नृत्य करती थीं जिनके हाथों के मार्ग पर उनके नयन चलते तथा उनके नयनों के मार्ग पर उनके मन (के भाव) चलते थे।

उन्होंने देखा—मरकत सदृश गुवाक (सुपारी) के वृक्षों में शुद्ध प्रवाल जैसे फल लगे हैं, उन वृक्षों में झूले लगे हैं उन में सुन्दर नारियाँ झूल रही हैं, झूले बार बार इधर से उधर और उधर से इधर आते जाते रहते हैं और यह स्मरण दिलाते हैं कि पापी जन भी इसी प्रकार पुनः पुनः इस संसार में आते जाते रहते हैं। उन रमणियों के पुष्पहारों पर से उड़ते हुए भ्रमर गुंजार भरते हैं, मानो उनकी लचकती हुई सूक्ष्म कटियों पर दया उत्पन्न होने से वे चिल्ला उठे हों।

---

१ प्राचीन तमिल साहित्य में चार प्रकार के याज् वाद्य प्रसिद्ध हैं। उनके नाम हैं—(१) बरियाक (२) कमरयाक (३) गोडयाक (४) शगोडयाक जिनमें क्रमशः २१, १९, १४ और ७ तंत्रियाँ होती थीं।—अनु

उन तीनो ने मिथिला नगर की पण्यवीथि (बाजार) देखी, जहाँ दोनो ओर अपार रत्न, स्वर्ण, मोती, कबरी मृग के केश, अरण्य में उत्पन्न अगरु की लकडी, मयूर पंख, हाथी के दाँत—इनके अंबार लगे थे। वह हाट ऐसी लगती थी, जैसे कावेरी नदी हो, जिसके दोनो तटो पर कृषको ने मोती, अगरु आदि एकत्र कर उनकी राशियाँ बना दी हो।

उस नगर में रमणियाँ नुकीले और छोटे नाखूनवाले अपने कोमल कर पल्लवो को दुखाती हुई वीणा की खूटियो को घुमाती थी और प्रवहमाण मधु धारा सदृश तन्त्रियो को कसती थी, वे अपने हाथ की उँगलियो के साथ मन को भी संलग्न करके उज्ज्वल मंदहास बिखरेती हुई विस्पष्ट स्वर युक्त सगीत रूपी स्वच्छ मधु को पान कराती थी उस सगीत का पान करते हुए वे तीनो आनद से आगे बढ चले।

कहा उन्होने अतिवेग से दौडते हुए घोडा की पंक्ति देखी, जो कुम्हार के द्वारा घुमाये गये चाक के समान वर्तुल आकार में दौड रही थी। (वह पंक्ति) महा पुरुषो की मित्रता के ही समान अटूट गतिवाली थी तथा ज्ञानियो की बुद्धि के सदृश एकाग्र थी। वे घोडे ऐसे दौड़ते थे कि उनका आकार स्पष्ट नहीं दिखाइ पडता था।

उन्होने ऊँचे प्रासादो के झरोखो में अनेक उदीयमान पूर्णचद्र देखे, जो पने भोहे, मन्मथ का धनुष, भ्रमर कुल से सकुल नील केशो का जूडा—इनमें शोभायमान थे तथा दीर्घकाल का कलक भी जिनसे मिट गया था।

उन्होने अनेक मनोहर कमल भी देखे, जो स्फटिक चषको में भरे नवसुरभित मद्य का पान करके हास प्रकट करते हुए मस्ती से अर्थहीन वचन बकते थे और अपने प्रियतमो के प्रति मान करने जाकर हँस पडते थे।

[उपर्युक्त दोनो पद्यो मे वारनारियो का वर्णन है।]

वारनारियाँ गेंद खेल रही थी। शारीरिक सुख के साथ ही धन भी प्राप्त करने वाली, सर्पफन तुल्य जघनवाली वेश्याओ के मन के जैसे ही स्फटिकवर्णवाले, कदुक भी अपना स्वाभाविक रंग छिपाते थे। वे (कंदुक) उनकी कज्जलांकित आँखो की छाया पडने से काले तथा उनकी लाल हथेलियो की छाया से लाल होते रहते थे।

उन्होने कई द्यूतशालाएं भी देखी, जहाँ भाले जैसी नुकीली आँखोवाली सुन्दर वेश्याएँ चौसर खेलती थी। वे अपने हाथ के कंगन, कर्णाभरण, रत्नहार, कलिंगदेश की बनी अमूल्य चादर, मकरवीणा आदि को भी दाँव पर रख देती थी। (खेलते खेलते थक जाने से) उनके पुष्पालकृत केशपाश शिथिल हो जाते थे और स्फटिक के बने कुत्ते के आकार की मुहरे उनकी हथेली की छाया से लाल दिखाइ देती थी।

उस नगर में कई बावलियाँ भी थी जिनमें अनुपम अगोवाली सुन्दरियाँ आनद से स्नान करती थी। उस समय वहाँ के कमल, नीलकमल, रक्तकुमुद, जल पर फैली हुई 'वल्लो' लता के पत्ते, नीलोत्पल, लाल लाल 'किडै' (नामक पौधे), तरगे, मीन आदि जलवर्ती वस्तुएँ (उनके अगो की सुन्दरता देख) लज्जित हो, दुःख अनुभव करती थी।

[illegible] तरुण पुरुष खड्ग चलाने का अभ्यास करते थे। उनकी भुजाओ पर चदन

लप तथा पीनस्तनी नारिया क आलिगन से उत्पन्न चिह्न अंकित थे। उनका खड्ग प्रयोग यह स्मरण दिलाता था कि मनुष्य का मन भी विषयभोगी इद्रियो के द्वारा आकृष्ट होकर माह ग्रस्त हा इसी प्रकार भटकता रहता है।

उन्होने यत्र तत्र युवक समूह भी देखे, जिनका शरीर सूय क समान उज्ज्वल था, जिनका मन इतना उदार था कि व मॉगने पर कोइ भी अभीष्ट वस्तु द दत थे, जिनके लाल करा म धनुष थ और जिनके केश, अपनी मानिनी प्रेयसियो क चरणो पर भुकने स महावर लगकर लाल हा गये थ। उन्हे देखने से ऐसा लगता था, मानो स्वय मन्मथ शिवजी क नेत्र से वचकर भूतल पर आ गया हा।

उन्हाने मिथिला नगर की फुलवारियो को दखा और वहॉ पुष्प चयन करती हुइ मयूर की समानता करनवाली तरुणियो को भी दखा। वे तरुणियॉ तोतो स चाशनी जसी मीठी बोली म सभाषण कर रही थी। उनके सादय स अप्सराएँ भी लजा जाती थी। उनकी गति की कमनीयता से हस भी परास्त हो जाते थ और भ्रमर उन तरुणियो की विजय पर हर्षनाद कर उठते थ।

उन्होन चतुरगिनी सना विशिष्ट जनक महाराज क स्वणमय प्रासाद क चारो ओर एक विशाल खाइ दखी, जिसम देवो के निवास याग्य उन्नत अट्टालिकाओ की परछाइ पडती रहती थी और जहॉ देवनगर अमरावती की सुन्दरता उत्पन्न हो रही थी। तरगायमान वह खाई उमडती हुई गगा नदी के समान गभीर थी।

व तीनो राजप्रासाद म कन्यागृह की अट्टालिका क अग्रभाग का दखकर वहा खड हा गये, उस अट्टालिका म हस और हसिनियॉ इस प्रकार परस्पर मिलकर विचर रह थे, जैसे स्वर्ण ओर उसकी आभा, पुष्प और उसकी सुवास, भ्रमरो का भोज्य मधु ओर उसकी मिष्टता तथा सुगुम्फित कवि वचन तथा उसकी रसमयता।

अब हम सीताजी का वणन करना चाहत हैं, किन्तु कैसे कर? कमलासन ब्रह्मदेव स लकर सभी (व्यक्ति), किसी नारी का उपमान दत समय लक्ष्मी का उल्लेख करते हैं वही लक्ष्मी स्वय सीता का रूप लेकर अवतीण हुई ह, तो उनका उपमान कहॉ से और कैसे ढूढा जाय?

पावती प्रभृति दवियॉ भी सिर पर कर जाडकर, सकल सदगुण सपन्न सीता का प्रणाम करती हैं। वैसी सीता को जो भी देखते ह, वे कभी उस सुन्दरता का पार नही पात ह, मानव समझत ह, हाय! हम देवताओ के समान निर्निमेष दृष्टि से नही देख सकते, और, देवता लाग समझत ह कि हम अपनी इन दो ऑखो से सीता क सादय का कैसे दख सकत हैं (अथात् इसक लिए दो ऑखे पर्याप्त नही ह)?

सीताजी क व चचल नयन हरिण का भी अपने सादय गुण स मात करत ह। विजयशील भाला और तलवार भी उन नयनो की छटा मे परास्त हो जाते ह, अन्य नारियो के नयनो के उपमान भूत 'कयल' मीन भी उनसे डरत ह। उस समय (रामचन्द्र के लिए) सीताजी, मदर पवत के मथने से कल्लालित समुद्र से उत्पन्न अमृत नही, परन्तु उस कन्यागृह क उस प्रासाद से उत्पन्न अमृत थी।

यदि ब्रह्मदेव से प्रार्थना की जाय कि रथ सदृश पीनजघनवाली ऐसी ही एक अन्य तरुणी की सृष्टि कीजिए, तो वह चतुर्मुख भी वैसी सृष्टि नहीं कर सकेगा। अ मृतभोजी देवगण ही क्यो न प्रार्थना करे सागर अमृत नामक दिव्य औषध भले ही दुबारा दे दे, किन्तु ऐसी मनोहर रूपवती लक्ष्मी को कहाँ से लायगा ?

कातिपूर्ण भाले क फल के जैसे नयनोवाली मनका आदि अप्सराएँ, जिनपर स्वग के शासक इन्द्र तथा अन्य देवता भी मुग्ध होते रहत हैं, इन सीताजी क शरीर सादर्य को देखकर मन मसोसकर रह जाती है। अब उन अप्सराओ के मुख चन्द्र के लिए सर्वदा दिन ही रहता है (अर्थात्, दिन म चन्द्रमा जिस तरह कातिहीन दीखता ह, उमी प्रकार सीता की छवि के सामने व कातिहीन हो गई ह)।

कमल पुष्प पर निवास करनेवाली यह दवी इस धरती पर उतर आई है। इसक लिए किन्होने बडी तपस्या की थी ? क्या वह असरय ब्राह्मण थे, या स्वय धर्मदेवता थ, या सारा ससार था, या स्वर्ग था, अथवा सभी देवता ही थे, जिन्होने ऐसी तपस्या की थी ? हम कह नही सकते कि यह किनकी तपस्या का फल है।

अनुपम रूपवती नारियाँ मीताजी की सेवा म सलग्न रहती थी वे उन्हे, रक्त कमल समान करवाली। हरिणोपमे। माता। मधुतुल्य। अपूर्व अमृतसदृशे। आदि शब्दो मे सबोधित करती थी। सीताजी के चरण जहाँ जहाँ पडते थे, वहाँ वे, आगे आगे पुष्प राशि बिखेरती चलती थी। उन पराग भार मे लदे पुष्पो क मध्य सीताजी विलक्षण काति से शोभायमान दीखती थी।

स्वर्णमय किंकिणी, रत्नहार, पुष्पमालाएँ, विशाल नितबा पर पडी मेखलाएँ— इनसे भूषित लता जैसी उनकी सहचरियाँ उनके सौदर्य को मुग्ध होकर देखती खडी रह जाती थी। उन सहचरियो के मध्य सीताजी ऐमी लगती थी, मानो करोडो छोटी बिजलियो के बीच बडी विदयुत् राज्य कर रही हो।

'सबको मारनेवाले भाले तथा यम को भी पराजित करनेवाला कोइ ह'— यह जनश्रुति ससार मे उत्पन्न करने क लिए ही सीताजी न वैसे नयन पाये ह। व नयन अवर्णनीय हैं, उस सुन्दर कन्यारूपी फल (सीता) को देखकर पवत, दीवारे, प्रस्तर, पेड पौधे जैसे अचेतन पदार्थ भी द्रवित हो जाते है (तो चेतनो की बात ही क्या ?)।

पुरुषो की प्यासी आँखे जिन कामिनियो को देखकर उमग से भर जाती ह, वे रमणियाँ भी सीताजी के रूप सोदय को दख देखकर आनदित होती रहती हैं। नारियो के मन मे भी रूप लालसा (आकर्षण) उत्पन्न करनेवाली अमृत समान मीताजी हमारे प्रभु श्रीरामचन्द्र का न जाने कैसी लगेगी ?

कर्णाभरण आदि आभूषण पहले से ही जलद शीतल नयनयुक्त सुन्दरियो के शृङ्गार की वस्तु रह चुके हे, किन्तु अब इस सीताजी के जन्म मे सादर्य के साधन (वे आभूषण) नई शोभा से शोभित हो रहे हैं।

अकल्पनीय सौदर्य युक्त सीताजी कन्या प्रासाद पर खडी थी, उस महाभाग (राम) की दृष्टि उस (सीता) पर पडी और उसकी दृष्टि उस महाभाग पर, तब श्रीरामचन्द्र और सीताजी

की आँख एक दूसरे का पीने लगीं, उनकी प्रज्ञा भी अपना आश्रय छोड़कर एक दूसरे से जा मिला।

(सीताजी के) नयन रूपी दो अतितीक्ष्ण बरछे (रामचन्द्र की) पुष्ट भुजाओं में जा गड़े। मुखरित होनेवाले वीर पद कंकण पहने हुए (रामचन्द्र) के अरुण नयन भी मोहनी तरह उस देवी के स्तनों में गड़ गये।

रूप माधुर्य को पीनेवाले नयन पाश से दोनों के मन बंध गये और उस बंधन के द्वारा खिंच जाकर दृढ धनुष धारी महाभाग तथा नुकीली दृष्टियुक्त तरुणी एक दूसरे के हृदय में पहुँच गये।

कटिविहीन (सीता) एवं दोषरहित (राम), दो शरीर, किन्तु एक प्राण हो गये। विशाल क्षीरसागर में आदिशेष के पर्यंक पर साथ रहनेवाले वे दोनों एक दूसरे से वियुक्त हो गये थे, अब पुनः संयुक्त हो रहे हैं, तो फिर उनके प्रेम का वर्णन करना क्या आवश्यक है?

उस असीम सुन्दर की भुजाओं का आलिंगन नहीं पा सकी, अतः स्वर्ण कंकण धारिणी (सीता) प्रतिमा के जैसे स्थिर खड़ी रह गई। उधर सीताजी की स्मृति, मन की दृढता तथा शरीर सौंदर्य को साथ लेकर कुमार भी मुनिवर का अनुसरण करते हुए आगे चले और दृष्टि पथ से ओझल हो गये।

अपने नयन मार्ग से सुगन्धित पुष्पधारी (रामचन्द्र) के अदृश्य होते ही (सीताजी के) मन नामक मत्तगज का धृति नामक अंकुश भी हट गया। अब चन्द्रकला सदृश ललाट से शोभित उनके स्त्रीत्व की क्या दशा हुई? (स्त्री सुलभ लज्जा, संकोच आदि गुण भी छोड़ चले।)

विष्णु के अवतार भूत (रामचन्द्र) के सम्मुख होते ही सीता के मन और शरीर उनकी तनु सूक्ष्म कटि के जैसे ही कंपित हो उठे। प्रेम की व्याधि उनके नयन मार्ग से शरीर में जा पहुँची और तुरंत ही सारे शरीर में इस तरह फैल गई, जैसे दूध में जामन फैल जाता है।

सीता देवी काम व्याधि से पीड़ित हुई। क्षण क्षण वर्धमान उस व्याधि को वे किसी पर प्रकट भी नहीं कर सकती थीं। मूक व्यक्ति के समान अपनी पीड़ा को मन में ही छिपाये वे अति व्याकुल हो उठीं। उसी समय मन्मथ ने भी एक बाण उनके मन में छोड़ा, मानो जलते आग में किसी ने इंधन डाल दिया हो।

सीताजी की आँखें कान के उज्ज्वल ताटंकों तक फैल जाती थीं और बिना तेल लगाये तथा बिना आग में तपाये ही तीक्ष्ण फलवाले बरछे की जैसी लगती थीं। ऐसे नयन से शोभित (वैदेही) अब आग में पड़ी लता के सदृश झुलस गई। उनके केशपाश ढीले होकर बिखर गये और वस्त्र भी अंगों से नीचे फिसल पड़े।

वियोग व्याधि से पीड़ित होने के कारण (सीता) अपनी मेखला, रत्न निर्मित कंगन, शरीर की कांति, मन की दृढता, स्मृति आदि सब खो बैठीं। (क्षीरसागर मथन के बाद) अपनी समस्त संपत्ति देवताओं को देकर समुद्र जिस प्रकार कांतिहीन हो गया था, उसी प्रकार वह निश्चेष्ट रह गई।

सखियो ने देखा कि स्वर्ण ताटक धारिणी, मयूर सदृश उनके आभरण स्रस्त हो गए है, उनकी लज्जा भी गलित हो रही है, स्तनो पर मन्मथ बाण का आघात होने से वे शर विद्ध हरिणी के समान तड़प रही है। उस दशा का प्राप्त सीता को वे बडी कठिनाइ से उपचार के लिए ले गई।

जिनके मीन तुल्य नयन ताटक युक्त कानो के साथ सदा समर करते रहते थे, उनको (सखियो ने) कोमल शय्या पर लिटा दिया, जिसपर उनके कर चरण सदृश ही, अति मृदु पल्लव तथा पुष्पदल बिछाये गये थे और अतिशीतल ओस की बूदे भी छिड़काइ गइ थी।

सुगधि से भरे नवपुष्पो की उस सेज पर जब वे लेटी, तब उनके शरीर ताप से वह शय्या झुलसकर ऐसी हो गई, जैसे पाला पडने पर कमलो से भरा सरोवर या राहुग्रस्त होने पर चन्द्रमा।

पर्वत की चोटी पर मेघ वर्षा के समान सीताजी के स्तनो पर उनके दीर्घ नयनो से मोती की धारा झरने लगी। धनुष सदृश भौहो से शोभित उनके ललाट पर स्वेद बिदु छा जाते, किंतु दूसरे ही क्षण भट्ठी से निकले हुए धुएँ के जैसे उनके उष्ण उच्छ्वासो के लगने से तुरत सूख जाते थे।

कठोर हृदयवाले वन्य व्याध के शर से आहत मयूर की जो दशा होती है, वही उनकी भी हो गई। विरह की अग्नि में लता सुकुमार उनका शरीर झुलस गया और उस पुष्प पर्यंक पर लुढक गया।

उन्हे वे कोमल पुष्प भी कॉटे जैसे लगे। चदन का लेप शरीर के ताप से जलकर चिनगारी बनकर गिर पडा। आभरणो के भीतर के डोरे जलकर टूट गये और पर्यंक पर के पल्लव झुलसकर काले हो गये।

सीताजी की धाइयॉ, दासियॉ, माता, बहने—सब उनकी वेदना को देखकर बहुत ही व्याकुल हुई। उनकी समझ में नही आया कि उन्हे कौन सी व्याधि है। उन्होने सोचा कि किसी की नजर लग गइ है और वे नीराजन करके वह दोष दूर करने की चेष्टा करने लगी।

सखियॉ पखे झल रही थी, पर पखे की हवा से उनका विरह ताप शात न हुआ, और बढता ही गया, जिससे उनके आभरण तथा शरीर पर के पुष्पहार, जो अब तक कुम्हलाये से दीख पडते थे, अब झुलस गये और कुछ जलने भी लगे। उस समय सीताजी का वह दृश्य ऐसा था, मानो कोई सोने की प्रतिमा तपाइ जाकर पिघल रही हो।

वे विरह मे प्रलाप करने लगी। वह उनके (रामचन्द्र के) रूप लावण्य का स्मरण करती हुई, कभी उनके केशो को पुष्पालकृत अधकार वन कहती, उनके दोनो भुजाओ को दो स्तभ या मरकत रत्नमय दो पर्वत कहती, उनके नयनो को कमल पुष्प कहती, और कभी कहती कि यह तो कोइ मेघ इन्द्र धनुष के साथ ही आकाश से धरती पर उतर आया है।

वह कहती—जो सुन्दर पुरुष मेरे हृदय मे प्रवेश करके मेरी मनोदृढता मे हिलो

चित लज्जा आदि गुणा का गलाकर मेरे प्राणा के साथ ही पी गया ह, उसकी पर्वतोपम भुजाओं म आश्रित धनुष, इन्द्र धनुष नहा है और वह पुरुष मन्मथ भी नहो है।

अब म अपनी नारी निसर्ग रमणीयता, स्वाभाविक लज्जा, मन की स्मृति इन्हे कहा भी नहा देख पा रही हूँ, अत जा पुरुष अपने कोमल पदो का दुखाते हुए धरती पर चल रहा ह वह अवश्य ही एक चोर ह, जा नेत्रमार्ग से हृदय म प्रवेश करने म निपुण है।

इन्द्रनील तुल्य केश, चन्द्र सदृश मुख, लबी भुजाएँ, सुन्दर नीलरत्न पर्वत के जैसे उनके रूप ये मेरे प्राणो को पीनेवाले नही ह किंतु इन सबसे बढकर उनकी वह मुस्कान ह, जो मेरे प्राणो को पी रही ह।

विशाल उज्ज्वल तथा देखनेवालो के प्राण हरनेवाला उनका वक्ष तथा भव्य तामरस सदृश उनके चरण ही नही, किंतु मस्त हाथी की जैसी उनकी पदगति भी है जो, मेरे मन म अमिट रूप से अकित हो गई ह।

म क्या कहूँ? वह पुरुष देवलोक का निवासी नही ह, क्योंकि उनके पकज नयनो की पलकें स्पदित होती ह उनके विशाल कर म धनुष था तथा उनके वक्ष पर यज्ञोपवीत भी था अत वह युवक अवश्य कोई राजकुमार ही ह।

वह राजकुमार मेरे कौमार्य रूपी बडे प्राकार[१] को ढाहकर चला गया ह, जिसम मेरे सहजात महिलोचित लज्जा, सकोच आदि गुण सुरक्षित थे और मन की दृढता रूपी यत्र भी सुरक्षा के लिए सचालित होते थे। क्या मै अपने ये विरह व्याकुल प्राण त्यागने के पूर्व फिर एक बार उस सुन्दर पुरुष के दर्शन कर सकूँगी?

इस प्रकार के वचन कहती हुई (सीताजी) उन्मत्त सी प्रलाप करने लगी, वे कभी कहती—देखो, वह सुन्दर (कुमार) यहाँ मेरे सामने खडा ह, फिर कहती, हाय! वह अदृश्य हो गया है। वे अपने विरह उत्तप्त मन म विविध प्रकार की कल्पनाएँ करने लगी।

उस समय (सृष्टि के) आदिकाल से ही उष्ण किरणो का बिखरनेवाला सूर्य, मानो हसगतिवाली सुकुमारी सीता के विरह ताप की आँच का सह नही सका, अतएव काँपनेवाले अपने दीर्घ करों को समेटकर समुद्र म जा डूबा।

उसी समय सध्या रूपी कालदेव, पुष्पो की सुगन्धि लेकर बहनेवाले मलयानिल रूपी पाश को लिये हुए, रक्त गगन रूपी लाल लाल केश और अधकार रूपी अपने काल रूप को लेकर आ पहुँचा और ससार मे अपूर्व उस देवी को और अधिक सताने लगा।

वह सध्याकाल एक भूत के समान बढने लगा। उसके पास आकाश म शब्द करनेवाले विहग रूपी 'पटह' था। भूमि पर गर्जन करता हुआ सागर रूपी नूपुर था आसमान की लाली उसका रक्त था और उसके पास पापमय अधकार रूपी काला कबन्ध था। इस प्रकार, वह देखने मे अति भयकर लगता था।

१ यहा किसी यत्र का ओर सकेत ह जो प्राचीन काल मे दक्षिण के नगरो के प्राकारो म रक्षा के निमित्त लगे रहते थे।

सरोवर रूपी अग्नि मे तपा हुआ, सुगध पुष्पो के मधु रूपी विष म बुझा हुआ वह मद मारुत सचरण करता हुआ आया और मन्मथ क बाणों से विद्ध उनके शरीर म जा लगा, जिसस सीता अत्यन्त अधीर हो उठी और सध्याकालीन गगन को देखकर डर गई कि यह यम का ही भयकर रूप न हो।

वह सध्याकाल काले रग क साथ बढता हुआ आया। सीता सोचने लगी कि दु खपूर्ण युवतियो के प्राण हरनेवाला यह कौन है? काला समुद्र ह? कालमेघ ह? बहुत बडा इन्द्रनील पवत हे? 'काया पुष्प ह? नीलकुमुद ह? या नीलोत्पल पुष्प ह? उनके सामने राक्षसो के झुण्ड जैसे रात्रिकाल बढता आया। (सीताजी रात्रि को सबोधित करके कहती ह) हे रात्रि रूपी कालसप! य नक्षत्र तुम्हारे विषदत ह, मलय समीर तुम्हारी फुफकार है, अरुण गगन तुम्हारे मुँह का विषकोश ह। इनको लेकर तम कहाँ से आये हो?

मन्मथ रूपी अहेरी पहले से ही मुझपर तीर छोडने से विरत नही हो रहा ह, तुम भी क्यो अब अपना मुँह बाये मेरी ओर बढ रहे हो? मेरे दो प्राण नही ह एक ही ह, म किसी प्रकार से मन्मथ के बाणो से बचने की चेष्टा कर रही हूँ इतने म तुम कहाँ से आ निकले? मुझसे तम्हारा क्या विरोध है? क्यो तम स्त्री-हत्या का पाप अपने ऊपर लेना चाहते हो?

यह दु खद अधकार जो बढता चला आ रहा ह, विश्व भर म व्याप्त होनेवाला हलाहल तो नही ह? समुद्र ही तो नही ह, जो उमडता चला आ रहा ह? या उन (रामचन्द्र) का नीलवर्ण ही तो नही ह, जो सभी लोगो के द्वारा स्मरण किये जाने के कारण सवत्र फैल रहा है? अथवा यह यमराज का रग ह, जिसको अजन क साथ मिलाकर गगन ओर भूतल पर लीपा जा रहा ह?

उसी समय अपने जोडे से विलग होकर एक क्राच पक्षी शब्द करने लगा। (सीता उसको सबोधित कर कहती ह)—मेर दृष्टिपथ म क्षण भर के लिए स्थित होकर व ओझल हो गये। उन्हे रोककर रखनेवाला कोई नही रहा। मुझ निस्सहाय पर दया न करके रात्रि क अधकार म छिपा हुआ मन्मथ मुझपर बाण चला रहा ह। तम भी मुझे क्यो सताने आये हो? क्या उसी निष्ठुर कामदेव ने तुम्ह यह कम सिखा दिया है? अथवा मेरे पूर्वजन्म कृत पाप ही तुम्हारे रूप म अब मुझे सताने आये हे?

इस प्रकार सोचती हुई (सीता) जब बहुत दु खी हो रही थी, तब सखिया ने उन्हे गगनस्पर्शी प्रासाद के ऊपर एक चन्द्रकान्त वेदिका पर लिटा दिया। अति प्रकाशमान घृतदीपो को उष्णतावधक समझकर वहाँ से हटा दिया और तैल रहित रत्नदीपो को ला रखा जिनके प्रकाश से रात्रि का समय भी दिन के समान हो गया।

उसी समय चद्र उदित हुआ। जब देवताओ ने अपना भोजन अमृत को प्राप्त करन क लिए, मदर पर्वत म वासुकि सप को लपेटकर समुद्र का मथन किया था, तब समुद्र से गगन तल पर उठे हुए जलबिन्दु तथा रत्नजाल नक्षत्रो से भी अधिक चमक उठे थे, उस समय समुद्र से अमृत का स्वर्ण कलश जिस प्रकार ऊपर निकला था, उसी प्रकार अब चद्र समुद्र से ऊपर उठने लगा।

सृष्टि के आरंभ में समस्त विश्व को अपने उदर में आलीन करके जब विष्णु वट पत्र पर लेटे थे, तब उनकी नाभि रूपी समुद्र से एक कमल निकला था, जिसपर ब्रह्मदेव भ्रमर बनकर चार वेदों का गान करते हुए बैठे थे। समुद्र और चंद्रमा के उदय होने का दृश्य ऐसा था मानो वीचि भरा एक अन्य समुद्र श्वेतकमल को लेकर शोभायमान हो रहा हो।

आकाश पर नक्षत्र बिन्दियों के समान चमकते थे, जिनके मध्य उज्ज्वल चन्द्र निशा के अंधकार को चाटता हुआ बढ़ रहा था। उस समय प्राची दिशा की चंद्रिका रजतमय मंगल कलश के समीप रखे हुए कोमल क्रमुकपत्र के समान फैली हुई थी। न जाने, शुक भाषिणी सीता के लिए वह क्या बनकर रहेगी?

संध्याराग रूपी अपने हाथों को फैलाकर समस्त विश्व को आवृत करनेवाला जो अंधकार था उसको निगलने के लिए शीतल चन्द्रमा उदित हुआ। उसकी चन्द्रिका सर्वत्र इस प्रकार फैली, जिस प्रकार विशाल जलाशयों तथा खेतों से भरे तिरुवण्णैनल्लूर ग्राम के निवासी 'शडयप्पवल्लल' की कीर्ति नभ, धरती तथा दिशाओं में व्याप्त हो रही हो।

समुद्र के जल में विशद उज्ज्वल चन्द्रमा नामक एक चतुर राज निकला है। वह अपने करों को ऊपर फैलाकर अतिश्वेत चन्द्रिका रूपी सुधा (चूना) से समस्त ब्रह्मांड को पोत रहा है, क्योंकि विष्णु के नाभि कमल से उत्पन्न यह ब्रह्मगोल बहुत पुराना हो गया और उसे अब नया बनाना है।

इसी समय कमल पुष्प मुकुलित हो गये, जिससे लक्ष्मी तथा गुंजार भरनेवाला भ्रमर कुल तिरोहित हो गया। (उसके पश्चात) रक्तकुमुद सिर उठाकर ऐसे विकसित हुए, जैसे सर्वत्र अपने आज्ञा चक्र को संचालित करनेवाले चक्रवर्ती राजा के हटते ही अनेक सामन्त नरेश अपना अपना स्वतंत्र अधिकार चलाने लगते हैं।

(बढ़ते हुए चन्द्र को देखकर विरह तप्त सीता देवी कहने लगी)—समस्त विश्व को निगलकर बढ़नेवाले अंधकार रूपी काले रंग की अग्नि से तुम श्वेत रंग की अग्नि बन कर निकले हो। उस मायामय पुरुषोत्तम से समुद्र, रूप रंग में हार गया है, इधर मैं भी लोक मार्ग के विरुद्ध चलकर उनके प्रेम में अपने को खो बैठी हूँ। इस प्रकार, दुःखी होनेवाले हम दोनों (समुद्र और सीता) पर तुम निष्ठुरता कर रहे हो।

सागर में उत्पन्न हे चन्द्र! तुम तो कठोर नहीं हो, क्योंकि तुम किसी को हत्या करनेवाले नहीं हो। तुम्हारा जन्म क्षीर समुद्र से हुआ है और तुम्हारे सहोदर हैं अमृत तथा गजगामिनी सुन्दरी लक्ष्मी। ऐसे तुम, क्या अब मुझे जलाने पर तुले हो?

ऊपर उठा हुआ चन्द्र किरण रूपी हथौड़ा सीता के सुकुमार स्तनों पर चोट करने लगा। जैसे कोई हंसिनी आग में गिर पड़ी हो, उसी प्रकार सीता कमल पुष्पों की सेज पर तड़पने लगी।

जब चन्द्र किरण लगातार चोट करने लगी, तब उनका शरीर तप्त हुआ, शिथिल हुआ और सेज पर लुढ़क गया। उनके स्पर्श से कमलदल झुलस गये। उस शुक भाषिणी देवी की यह दशा हुई।

ज्यों ज्यों सखियाँ सुगन्धित चन्दन आदि का लेप उनके शरीर पर लगाती थीं

थी त्या उनका ताप बढ़ता ही जाता था। व तडफड़ा उठा। पखा झलने से उनके कोमल स्तनो म गरमी बढ गई, क्या समार म काम व्याधि का औषध भी है?

सीता के शरीर ताप से कोमल पुष्पो की सेज झुलसकर काली पड जाती थी तो माता से भी बढकर ममता रखनेवाली उनकी दासियाँ सहस्रो शय्याएँ सजा देती थी।

मनोहर कन्यावास म पुष्पो की सेज पर हसिनी सदृश पडी सीता इस प्रकार विरह विह्वल हो रही थी। उधर उनके विद्युत् जैसी देह लावण्य को हरने से इस कुमार की क्या दशा हुई, उसका भी थोडा वर्णन करेंगे।

जब ये (विश्वामित्र रामचन्द्र और लक्ष्मण) महाराज (जनक) के सम्मुख आये, तब उन्होंने अत्यन्त आनन्द के साथ उन तीनो की अगवानी की तथा अपने भोग वैभव मे अमरावती की समता करनेवाले गगन चुबी प्रासाद म उन्हे ठहराया।

वीर पुरुष (श्रीराम) की चरण धूलि के स्पर्श से शाप मुक्त होनेवाली अहल्या के पुत्र महर्षि (शतानन्द) वहाँ पधारे, मानो समस्त तपस्याएँ साकार होकर आ गई हो।

कुमारो ने उस आगत तपस्वी को आदर के साथ नमस्कार किया। अनत सद्गुण पूर्ण (शतानन्द) मुनि ने आशीष दिये और कौशिक के निकट आये।

गौतम के सत्पुत्र ने महान तपस्वी विश्वामित्र को देखकर कहा—इस मिथिला की भूमि ने कैसी तपस्या की थी कि आपके यहाँ पदार्पण का फल उसको प्राप्त हुआ?

शीतल कमल पर आसीन पुनीत ब्रह्मदेव की समानता करनेवाले सर्वमैत्री की भावना से पूर्ण तथा महान तपस्वी शतानन्द से सर्वज्ञ (विश्वामित्र) ने कहा—'हे तपस्विन्, सुनें, इस उदार रामचन्द्र ने वज्रघोष करनेवाली ताडका का शरीर, मेरा यज्ञ तथा आपकी माता का शाप—तीनो को समाप्त किया है और मेरे मन का क्लेश दूर किया है।

यह सुनकर शतानन्द ने उत्तर दिया—हे तपोधन! यदि आपकी कृपा रहे तो इन दोनो वीरो के लिए कोई भी कार्य असभव नही है। इस प्रकार कहकर—

उन्होने श्रीरामचन्द्र के चन्द्रमुख की ओर देखा, जो अतसी पुष्प नीलकांत मणि नील समुद्र, नील मेघ तथा नीलोत्पल के समान था, और बोले—

हे सुगन्धित पुष्पो की माला पहने हुए प्रभो! मैं आपको एक वृत्तात सुनाता हूँ, सुने। अपूर्व तपस्या करनेवाले ये विश्वामित्र पहले भूतल के राजा बनकर अनेक वर्षों तक नीति से शासन करते रहे।

राजधर्म मे निरत रहते समय एक बार ये आखेट करने के लिए एक घने अरण्य म गये और वहाँ अति प्रख्यात वसिष्ठ महर्षि के निकट जा पहुँचे।

अरुधती के पति (वसिष्ठ) ने विश्वामित्र नरेश का उचित सत्कार किया तथा बैठने के लिए समुचित आसन दिया। जब कौशिक बैठे तब उनको भोजन देने के उद्देश्य से वसिष्ठ ने अपनी सुरभि (गाय) को बुलाया और उसे आदेश दिया कि वह अमृत सदृश भोज्य पदार्थ दे। सुरभि ने आज्ञा के अनुसार तत्काल सभी वस्तुएँ उपस्थित कर दी।

उस मुनिवर (वसिष्ठ) ने कौशिक नरेश तथा उनकी सेना को षड्रस भोजन कराया और कहा—'आपलोग भर पेट खाइए।' उनके भोजन करने के उपरात सुवासित

पुष्प और श्रेष्ठ चन्दन लेप भी दिये, तब वे बहुत संतृप्त हुए। फिर कुछ सोचकर कहने लगे

हे तपस्विन! आप अपने स्थान से उठे भी नही, तो भी इस दिव्य धेनु ने मेरी सारी सेना को पवित्र तथा बढिया भोजन प्रदान कर दिया, ऐसी विशेषता से युक्त है यह गाय। शास्त्रों के पारगत वेदज्ञ पंडितो का कहना है कि सभी उत्तम वस्तुएँ राजाओ के ही भोग के योग्य होती हैं।

यह धेनु आप जैसे ब्राह्मणो के लिए रखने योग्य नही है। अत, यह सुरभि मुझे दे दीजिए। कौशिक के ये वचन सुनकर वसिष्ठ कुछ क्षण तक कुछ भी कहे बिना मौन रहे। फिर कहा —हे शत्रु भयकर शूलधारी राजन्! मै वल्कलधारी मुनि हूँ। मुझे यह अधिकार नही है कि मैं इसे और किसी को दूँ। यदि यह स्वय आपके पास जाय, तो इसे ले जाये।

यह सुनकर आप के कथनानुसार ही करूँगा —कहते हुए कौशिक उठे। उन्होने बडे उत्साह से उस सुरभि को बाँध लिया और चलने लगे, तो सुरभि बंधन तोडकर वसिष्ठ के पास आ पहुँची और उनसे पूछा—क्या आपने मुझे विश्वामित्र को दे दिया है? वेदादि सभी तत्त्वो के पारगत (वसिष्ठ) ने कहा—

मैने विश्वामित्र को दिया नही। वह विजयी नरेश स्वय ही तुम्हे ले जाना चाहता है। यह सुनते ही सुरभि क्रोध से भर गई तथा वसिष्ठ से यह कहती हुई कि आप देखे, वज्रनाद के समान भेरी बजानेवाली इस सारी सेना को मै किस प्रकार नष्ट कर देती हूँ, और उसने अपने रोंगटे खडे कर लिये।

तत्क्षण उस कपिला धेनु ने हथियारो के साथ बर्बर, किरात, चीन, शोणक आदि विविध जाति के सैनिक उत्पन्न किये। उन सैनिको ने कौशिक की बलवती सेना का सहार कर दिया। यह देखकर विश्वामित्र के पुत्र क्रुद्ध हो उठे।

यह सुरभि की शक्ति नही, श्रुतिशास्त्र मे पडित वसिष्ठ की ही माया है। यह कहते हुए उन कौशिक कुमारों ने वसिष्ठ का सिर काटने के लिए उन्हे आ घेरा। तब वसिष्ठ ने उनको क्रोधाग्नि की ज्वाला से भरी दृष्टि से देखा, तत्काल वे सब मृत होकर गिर पडे।

कौशिक ने अपने सौ पुत्रो को मरते हुए देखा, तो वे घृत डालने से भडकी हुई अग्नि के समान उग्र हो उठे। वे रथ पर बैठकर आये और अपने धनुष को खूब झुका कर वसिष्ठ पर एक के पश्चात् एक करके अतिवेग से तीर बरसाने लगे। वसिष्ठ ने अपने हाथ के ब्रह्मदड को आज्ञा दी कि वह उन तीरों को रोक ले।

(कौशिक ने) साधारण शस्त्रो से लेकर दिव्य अस्त्रो तक अपने अभ्यस्त सभी आयुधो का प्रयोग किया, पर वसिष्ठ का ब्रह्मदड सभी को निगलकर उज्ज्वल हो खडा रहा। तब कौशिक ने मेरु को धनुष बनानेवाले (शिव) का ध्यान किया शिव साक्षात् हुए तथा एक बलिष्ठ अस्त्र देकर चले गये।[1]

कौशिक ने उस रुद्रास्त्र का प्रयोग किया। उसे देख देवता डर गये कि अब

१ कब रामायण के कुछ संस्करणों में यह पद्य नहीं मिलता।—अनु०

तीनो लोक जल जायेंगे, अत व उस अस्त्र को आते हुए देखकर स्वयं आगे बढ़े तथा उसे स्वयं ही निगल लिया। उस अस्त्र की ज्वालाएँ उनके शरीर के भीतर से बाहर निकलने लगी, जिनसे वे और भी तेजस्वी हो निखर उठे। विध्वंसक रुद्रास्त्र की यह दशा हुई।

कौशिक ने यह सब देखा। व सोचने लगे—वेदो के ज्ञाता महर्षियो के वश म जो शक्ति तथा तेज रहते हैं, वे अन्य (लोगों) के पास नहा होते। समस्त पृथ्वी पर राज्य करने की शक्ति भी उस ब्रह्मतेज के सामने कुछ भी नही। यह सोचकर उन्होने कठिन तपस्या करने की ठानी और इद्र की दिशा में (प्राची म) चले गये।

राजाओ के अधिराज (विश्वामित्र) महिमामय (वसिष्ठ) की विजय का ही स्मरण करते हुए चले और घोर तपस्या करने लगे। यह देखकर इद्र डरा और अप्सराओ म श्रेष्ठ तिलोत्तमा को उनकी तपस्या भग करने के लिए भेजा।

कौशिक उस सुन्दरी के रूप को देखकर काम पीडित हो उठे, काम-समुद्र म डूबकर अपनी सुध बुध खो बैठे और उसकी सगति म असख्य दिन बिताये। जब उनका विवेक जागा, तब काम भोग को विष के समान मानकर वे अट्टहास कर उठे।

अब कौशिक ने जाना कि यह सब इद्र की वचना है, उन्होने क्रुद्ध हो तिलोत्तमा को शाप दिया कि वह मनुष्य योनि म जन्म ले। लाल नेत्रो और क्रोध भरे मन को लेकर व वहाँ से चल खडे हुए और यम दिशा (दक्षिण) की ओर चले गये।

कौशिक दक्षिण दिशा मे तप कर रहे थे। उसी समय अयोध्या के राजा त्रिशकु ने अपने गुरु वसिष्ठ से प्रार्थना की कि मै सदेह स्वर्ग जाना चाहता हूँ, आप मेरी इच्छा पूरी करे। उन्होने उत्तर दिया कि मुझसे यह कार्य नही हो सकता।

वसिष्ठ के ऐसा कहने पर त्रिशकु बोला—यदि आपसे यह कार्य नही हो सकता है, तो मैं किसी अन्य व्यक्ति की सहायता से अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए यज्ञ करूँगा। इस पर वसिष्ठ ने क्रुद्ध होकर उसे शाप दिया कि तुम अपने प्राचीन गुरु को छोडकर दूसरे का आश्रय खोज रहे हो, अत तुम चडाल बन जाओ।

(शतानद ने रामचद्र को आगे की कहानी सुनाई) हे वत्स। ब्रह्मा के मानस पुत्र (वसिष्ठ) के शाप से राजाधिराज त्रिशकु का वह तेज मिट गया, जिससे सूर्य भी लज्जित होता था। सूर्योदय वेला के विकसित कमल सदृश उसके मुख की वह काति नष्ट हो गई। वह चडाल बन गया, जिसके रूप की सर्वत्र निन्दा होती है।

उसके रत्नहार, मुकुट तथा अन्य आभरण लोहे के बन गये, उसके वस्त्र तथा यज्ञोपवीत चर्ममय हो गये, उसका शरीर मलिन हो गया और उसका सौदर्य मिट गया। जब वह इस रूप को लेकर अयोध्या को लौटा, तब सभी लोग उसका धिक्कार करने लगे। तब दुःखी होकर वह अरण्य म चला गया।

कुछ दिनो के उपरात वह उसी अरण्य म तप करनेवाले विश्वामित्र के आश्रम के पास आया। विश्वामित्र के पूछने पर कि तुम कौन हो, क्यो आये हो? त्रिशकु ने नमस्कार करके अपनी सारी कहानी सुनाई।

विश्वामित्र त्रिशकु का वृत्तात सुनकर हँस पडे और बोले—बस इतना ही।

——। न एक बडा यज्ञ करूँगा और तुम्हे सदेह स्वर्ग पहुँचा दूगा। उन्होने ... ...
... बुलाया। उनका निमत्रण पाकर आसपास के सभी मुनि आ गये।

किन्तु वसिष्ठ के पुत्रो ने कह दिया— 'हमने यह कभी नही पाया ... ...
... किसी चडाल के लिए यज्ञ कराये। हम इस यज्ञ के लिए नही आयेंगे। (यह सुनकर) उन्होने क्रुद्ध होकर उन्हे शाप दिया कि वे नीच कर्म करनेवाले व्याध बन जाय। ... वसिष्ठ कुमार व्याध बनकर जगलो में भटकने लगे। विश्वामित्र यज्ञ करने लगे और देवताओ को हविर्भाग स्वीकार करने के लिए बुलाया।

(परन्तु) देवो ने उस यज्ञ की निंदा की कि यह यज्ञ एक चाडाल के निमित्त किया जा रहा है और इसका हविर्भाग लेने के लिए उनसे शीघ्र आने को कहा जा रहा है। वे ... पर हँसे और हँसकर रह गये। किंतु विश्वामित्र रुकनेवाले नही थे। उन्होने कहा ... मै अपने तपोबल से कहता हूँ कि तुम स्वर्ग जाओ, इसके लिए किसी की सहायता आवश्यक नही। त्रिशकु स्वर्ग पर चढने लगा।

जब वह स्वर्ग मे पहुँचा, तब उसे देखकर देवता क्रुद्ध हो उठे। 'यह चडाल स्वर्ग मे कैसे रह सकता है? यह भूतल पर लौट जाय।' यह कहकर उसे नीचे गिरा दिया। निराधार हो औधा गिरता हुआ त्रिशकु कौशिक को सबोधित करके चिल्लाया कि हे मुनि, मेरी रक्षा करो। तब विश्वामित्र वज्र के जैसे गर्जन मे ... करते हुए बोले—'वहीं ठहर। वही ठहर।'

उन्होंने कहा—देवगण ने मेरा निरादर किया है। अब मै अपर स्वर्गलोक तथा उसके लिए इन्द्र आदि देवो की नई सृष्टि करूँगा ... नया आकाश सिरजूँगा, जिसमे नये सूर्य, नये चद्र तथा नये ग्रह एव नये नक्षत्र अपने पूरे प्रकाश सहित दक्षिण दिशा से उत्तर की ओर सचरण करते रहेगे। इतना ही नही, मै सभी स्थावर तथा जगम वस्तुओ की भी प्रति सृष्टि करूँगा।

मधु भरे कल्पक वृक्ष का स्वामी इद्र, चतुर्मुख ब्रह्मदेव, नीलकठ महादेव तथा अन्य देव और मुनिगण सब मिलकर विश्वामित्र के समीप आ पहुँचे और उनसे निवेदन किया कि हे मुनिवर। हमे क्षमा करें। शरणागत की रक्षा करने की आपकी यह प्रतिज्ञा नितान्त धर्मसगत है अत त्रिशकु तारागण के मध्य प्रकाशमान हो स्थित रहेगा।

फिर उन्होंने उनसे कहा—आप उत्तम राजर्षि है। आपकी महिमा को जानते हुए (सत्ताईस नक्षत्रों मे से) पाँच नक्षत्र दक्षिण दिशा मे आकर स्थित होगे। यह कहकर देवगण चला गया। तदुपरात वे तपोनिरत (कौशिक) शीघ्र ही महासमुद्र के अधिष्ठाता वरुण की दिशा (पश्चिम) में गये और वहाँ तपस्या करने लगे।

अबरीष नामक एक महाराज थे, जिनके पास धनुष बाण तथा दृढ खड्ग धारण किये विशाल सेना थी ... जो सुधासम मधुर भाषण करते थे, और जो ससार के समस्त प्राणिवर्ग के लिए प्राण समान ही प्रिय थे। वे एकबार नर मेध करने का उपक्रम करने लगे। एतदर्थ एक बालक को क्रय करने के उद्देश्य से वे सपत्तिवान् नरेश स्वर्णरथ पर आरूढ हो अरण्यों में (बालक को) ढूँढते हुए चले।

वह विजयी नरेश ऋचीक मुनि के पुष्प पल्लवों से पूर्ण उपवन में जा पहुँचे तथा उनने उनके एक पुत्र को माँगा। ऋचीक के तीन पुत्रों में से कनिष्ठ का विक्रय करने के लिए माता सम्मत नहीं हुई, क्योंकि माता का स्नेह कनिष्ठ पुत्र पर अधिक होता है। पिता (ऋचीक) ज्येष्ठ पुत्र में अधिक ममता रखने के कारण उसका विक्रय करने को राजी नहीं हुए। माता पिता दोनों से उपेक्षित मध्यम पुत्र शुन शेप अपनी असहाय दशा पर स्वयं हँस पडा और अंबरीष से बोला—

मेरे पोषणकर्त्ता पिता (ऋचीक) को अभीष्ट द्रव्य दो, जिससे उनका सारा दारिद्र्य दूर हो जाये। फिर अपने पिता को नमस्कार करके शुन शेप अंबरीष के निर्विरोध चलने वाले रत्नजटित रथ पर चढकर चल पडा। इतने में प्रखर किरणोंवाला सूर्य आकाश की चोटी पर जा पहुँचा।

दोपहर हो जाने से राजा उस स्थान पर (विश्वामित्र के तपोवन के निकट) रथ से उतर गये और मध्याह्नोचित नित्य कर्म करने लगे। सद्गुण शुन शेप ने भी अपने नित्य कर्म करने के निमित्त जाकर वहाँ निष्कलंकचित्त विश्वामित्र को देखा और उनके चरणों पर सिर रख दिया।

मृत्यु भय ग्रस्त तथा चरणों पर नत उस मुनि कुमार पर उत्तम गुणवान मुनि की मधुर दृष्टि पडी। उन्होंने उससे कहा—कहो, तुम्हारे भय का कारण क्या है? शुन शेप ने निवेदन किया—हे धर्म के तत्त्वज्ञ! आपकी अग्रजा मेरी माता तथा मेरे पिता ने बडी संपत्ति के बदले में मुझे अंबरीष को दे दिया है।

अपनी भगिनी और बहनोई के ऐसे कर्म को सुनकर मुनिवर (विश्वामित्र) ने शुन शेप को अभय वचन देकर कहा—तुम दुःखी मत होओ। मैं तुम्हारी प्राण रक्षा करूँगा। फिर, उन्होंने अपने पुत्रों से कहा कि उनमें से कोई अंबरीष के नर मेध के लिए आये। पर उनके सभी पुत्र उसके लिए सम्मत न होकर वहाँ से खिसक गये। यह देखकर—

विश्वामित्र के दोनों नेत्र क्रोध से लाल हो गये, जिनसे उदयकालीन सूर्य भी लज्जित हो गया। उनके मन में क्रोध ताप भर गया और उनके रोम रोम से चिनगारियाँ निकलीं, तो उनकी आँच से वडवाग्नि भी झुलस गई। उन्होंने अपने पुत्रों को शाप दिया—हे निष्ठुर चित्तवालो! तुम लोग असभ्य पुलिन्द बनकर अरण्यों में कष्ट भोगो।

वसिष्ठ महामुनि के कोप से जो चार पुत्र पहले बच गये थे, उन्हें अन्य व्याध बनाने के पश्चात् उन्होंने अपने अच्छे भाँजे को आश्वासन दिया कि तुम अपने मन की पीडा छोडो, मैं अभी तुम्हें दो मन्त्रों का उपदेश देता हूँ। फिर मन्त्रोपदेश करके कहा—

(शतानंद ने रामचन्द्र से कहा)—हे मधुपूर्ण मृदु पुष्पों से अलंकृत (राम)! विश्वामित्र ने शुन शेप को यह निदेश दिया कि तुम अंबरीष के संग जाओ और जब यूप स्तंभ के साथ तुम्हें (याग पशु के रूप में) बाँधा जाय, तब इन मन्त्रों का जप करो, तुरत ही ब्रह्मा, रुद्रादि देवता अपना अपना हविर्भाग लेने के लिए आ जायेंगे। इससे तुम्हारे प्राण बचेंगे तथा राजा का यज्ञ भी पूरा हो जायगा। शुन शेप संतुष्ट हो विश्वामित्र की प्रशंसा करता हुआ वहाँ से विदा हुआ।

उस मुनिकुमार ने वदज्ञ ऋषि के कथनानुसार ही यज्ञ म मत्र का जप किया। तुरत ही विशाल पक्ष युक्त गरुड हस, ऋषभ आदि वाहनो क अधिष्ठाता त्रिदेव, अन्य देव परिवार समेत, उस यज्ञशाला प आ उपस्थित हुए और उस मुनि कुमार क प्राणा की तथा वदविहित यज्ञ की भी रक्षा की। अब मुनिवर (विश्वामित्र) भी उत्तर दिशा की ओर चल पडे।

उत्तर दिशा म पहुँचकर विश्वामित्र तपामग्न हुए। अपन कर कमल स नासिका का बन्द किया, इडा का पिगला[1] से दबाया और हृदय मे एकाक्षर प्रणव का ध्यान करत रह। इस प्रकार, अनेक वर्ष (ध्यान मग्न) रहने पर कुडलिनी मूल की आग न स उनका सहस्रार स्फुटित हुआ और उनके कपाल से तमपुज उठे और सभी लाको का जाग्रत करने लगे, जिसस सभी डर गये।

उनके कपाल से उत्थित वह धुआँ विश्व भर म ऐसे फैल गया, जैसे त्रिपुर दाह करनेवाले (शिव) ने गजासुर का सहार करके उसके चर्म को अपने शरीर म समेट लिया हो, या प्रलय मेघ ही घिर आये हो।

सभी लोक अधकार म डूब गये। अति प्रखर सूय के किरण जाल भी उस तम म अदृश्य हो गये। दिक्पालो तथा धरणी को धारण करनेवाले दिग्गजो की आखे उस गाढ अधकार म अधी हो गई।

नभ म, जहाँ ससार के जीवन प्रद घन समूह घिरे रहत ह, वहाँ अब धुआ भर गया। इससे धरती के सभी चर अचर, पदाथ समुदाय भयभीत हो उठे। रवि किरण (सूर्य) के कर कही भी आगे न बढ सके और सवत मार्ग को रुद्ध पाकर लौट आये। सभी देवता थर थर काँपने लगे।

पडरीक पर स्थित ब्रह्मदेव, गरुडवाहन विष्णु, वृषभ पर सचरण करनेवाले शकर वज्रधारी इन्द्र तथा अन्य देवता पृथक् पृथक् चलकर उस तपोधन के समीप आ पहुँचे।

अर्धचद्र को सिर पर धारण करनेवाले (शिव), हरित तुलसीमाला धारी (विष्णु) तथा उस विष्णु के नाभि कमल पर आसीन ब्रह्मा—इन तीनो ने विश्वामित्र से कहा—हे महान् तपोधन ! तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कौन ऐसा है, जो वदो का पारगा हो।

उनके वचन सुनकर विश्वामित्र अपना सिर नवाकर, दोनो कर कमल जोडे खडे रहे और यह कहकर कि अभीष्ट पुण्य फल मुझे अभी प्राप्त हुआ है, आनद से फूल उठे। फिर सभी देव अपने अपने स्थान पर जा पहुँचे।

यह प्राचीन युग की घटना है। इन कौशिक के समान तपोमहिमा से युक्त अन्य कोई नही हैं। इस नियमनिष्ठ नीतिज्ञ की करुणा आप दोनो को मिली है। अब आपके लिए असभव कार्य कुछ भी नही है। अनतगुण पूर्ण शतानद ने इन शब्दो म राम लक्ष्मण को विश्वामित्र को कहानी सुनाई।

गौतम के प्रियपुत्र शतानद क मुख से यह वृत्तान्त श्रवण करके वे दोनो वीर

१ इडा को पिगला से दबाना—यह प्राणवायु की एक प्रक्रिया है।

विस्मय तथा आनन्द से भर गये। उन्होंने उन तपस्वी के चरणों की वन्दना की और व उन्हें आशीष देकर अपने आवास को लौटे।

विश्वामित्र तथा लक्ष्मण जब अपनी अपनी शय्या पर जाकर लेट, तब रामचन्द्र किसी तमोमय फल के समान ऐसे रह गये कि वहाँ पर केवल निशा थी चन्द्र था एकान्त था, सीता (की स्मृति) थी तथा स्वय राम थे।

(राम सोचने लगे) कदाचित् कोई बिजली मेघ से अलग होकर नारी के सुन्दर रूप म आ उपस्थित हुई है। बहुत सोचने पर भी म समझ नही पा रहा हूँ कि यह क्या ह, क्या नही है ? उस रूप को म अपने नेत्रो और मन म अकित देख रहा हूँ।

उस सुन्दरी (सीता) के नयन उस क्षीरसमुद्र के जैसे प्रकाशमान ह, जहाँ कालवर्ण विष्णु आदिशेष पर लेटे रहते ह। अब वह सुन्दरी मेरे हृदय रूपी कमल म आ विराजी है। अत, कदाचित् वह पकज निवासिनी लक्ष्मी ही हे।

यद्यपि मुझपर वह रमणी करुणाहीन है तथापि मेरा मन उसपर मुग्ध हो गया ह। उसने भयदायक काम पीडा उत्पन्न करनेवाले अपने विष सदृश नयनो से मुझे पी सा लिया ह, अत अब मुझे इस ससार के सभी चर अचर वस्तु समूह उसी रमणी के सोने के रग म अकित से दीखते ह।

यद्यपि म अपने इस अभागे वक्ष से उस सुन्दरी के स्वर्ण कलश तुल्य स्तनो का— जहाँ पर आभरण स्पदित होते रहते ह—आलिगन नही कर पाया हूँ, तथापि म सोचता हूँ कि क्या मै फिर उसकी उज्ज्वल चन्द्रिका जैसी हसी को तथा उसके बिबफल तुल्य अधर को कभी देख सकूँगा ?

मनोहर मेखला से भूषित रथ सदृश नितब एक है, खड्ग जैसे दो दो नयन हैं, दो पीन स्तन भी ह तथा मुख पर अकित मदहास भी एक है। हाय! अपने पराक्रम म प्रख्यात यम सदृश (मुझे मारने के लिए) क्या इतने आयुधो की आवश्यकता ह ?

रसपूर्ण इक्षु को धनुष बनाकर और सुन्दरी को व्याज बनाकर यदि मन्मथ मुझ पर पुष्पबाणो की वर्षा करे तथा मुझे परास्त कर द, तो अब शौर्य नामक गुण किसके पास बचेगा ?

यह चाँदनी ऐसी फैली है, मानो क्षीर समुद्र का गभीर जल ससार को निगलने के लिए उमड पडा हो। ज्यो ज्यो मे उस रमणी का स्मरण करता हूँ, त्यो त्यो वह चाँदनी मेरे प्राणो को समूल उखाडने लगती है। क्या ससार मे श्वेत रग का विष भी होता ह ?

क्या मेरा शुद्ध मन भी सन्मार्ग से हटकर अनैतिक मार्ग पर चल सकता हे ? (नही) अब यदि यह मन इस नारी पर मुग्ध हुआ है, तो इसका कारण यही ह कि वह चाशनी (मिसरी) जैसी मधुर बोलीवाली तथा सोने के रगवाली बाला कुमारी ही है, इसम कोई सन्देह नही है।

इतने म रात्रि व्यतीत हुइ, चन्द्र पश्चिम समुद्र म डूब गया, मानो रात्रिकाल रूपी राजा के मरने पर उसका उज्ज्वल श्वेतच्छत्र गिर गया हो, या पश्चिम दिशा रूपी नारी के अति प्रकाशमान भाल पर रहनेवाला वर्तुल आभरण खो गया हो।

अपने प्रियतम चन्द्र के चले जाने पर उसकी प्रेयसी दिशा नारियों ने मानो अपने शरीर पर लगे हुए मनोज्ञ श्वेतचन्दन रस को शोक के कारण पोंछ लिया हो, क्योंकि चन्द्र के अस्तङ्गत होते ही उसकी चन्द्रिका भी अदृश्य हो गई।

सघन पुष्पहार को धारण करनेवाले पुरुषोत्तम (श्रीरामचन्द्र) जिस समय काम पीडा से इस प्रकार व्याकुल हो रहे थे, उसी समय रक्तवर्ण उष्ण किरण (सूर्य) व्याकुल हृदय कमलिनी रूपी अपनी प्रियतमा का मुख विकसित करता हुआ उदित हुआ, मानो लाल बिन्दिया से अलकृत अंधकार रूपी मत्तगज का चर्म धारण करनेवाले, उदय पर्वत रूपी रुद्र के भाल का अग्नि नेत्र ही खुल गया हो।

उस महान् उदयाचल के समस्त शिखरों पर बालसूर्य की अरुण किरणें फैल गई, मानो सूर्य के अति वेगवान् तथा शक्तिशाली हरे रंग के घोडों के खुरों से उडी हुई धूलि ही उदयाचल पर फैल रही हो और अर्घ्य प्रदान के लिए द्विजों के हाथ में लिये हुए मधुसिञ्चित पुष्प तथा जल के प्रवाह से वह धूलि सिक्त हो रही हो (अथवा) मानो उष्ण किरण (सूर्य) प्राची (रूपी) दिग्गज (के मस्तक) पर सिन्दूर का तिलक लगा रहा हो।

जिस प्रकार शत्रु की विजय करने या धन कमाने के लिए दूर देशों में गये हुए प्राण समान अपने प्रिय पति को सुन्दर रथों पर चढ़कर वापस लौटते हुए देखकर साध्वी पत्नियों के मन आनन्द से भर जाते हैं और उनकी कांति लौट आती है, उसी प्रकार कमलिनी कुल के मुख विकसित हुए। उन कमलों के कारण सरोवर भी सौंदर्य से संपन्न हो गये।

आकाश रूपी रंगमंच पर असंख्य वेदों सहित किन्नरों के गाते हुए, सभी लोकों द्वारा स्तोत्र पाठ होते हुए, देवों, मुनियों तथा ब्राह्मणों के हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए एवं सागर रूपी गर्जन करनेवाले 'मद्दल'[1] के बजते हुए, सूर्य की किरणें चारों ओर फैल गई, मानो उज्ज्वल सूर्य रूपी ललाट नेत्र से सुशोभित रुद्र ही नृत्य कर रहा हो और उसकी लाल जटाएँ चारों ओर बिखरी हों।

विनाशकारी चक्रायुध का त्यागकर अनुपम वत्सल तथा दृढ धनुष को धारण करने वाले श्यामल (रामचन्द्र) जो सहस्रफन (आदिशेष) के सहस्र मणिमय दीपों से जाज्वल्यमान शेष शय्या का त्याग कर अब वियोग रूपी गंभीर समुद्र में लेटे हुए थे। एक चक्र रथवाला सूर्य जब अपने कोमल करों से उनके चरण धीरे धीरे सहलाने लगा, तब वे व्याकुल निद्रा का त्याग कर उठे और रात्रि रूपी समुद्र के तट पर पहुँचे।

वह रजनी भी ऐसी बीती, मानो एक कल्प व्यतीत हुआ हो। निद्रा से उठकर मत्तगज के समान वे नित्य कर्म से निवृत्त हुए। फिर, श्रुति सदृश महातपस्वी (विश्वामित्र) के चरणों पर नत हुए। तब वे अपने प्रिय भाई लक्ष्मण को साथ लेकर सुगन्धित पुष्पहार तथा रत्न किरीट से अलंकृत जनक महाराज की बडी यज्ञशाला में जा पहुंचे।

उन जनक महाराज ने क्रमानुसार वेदोक्त यज्ञकर्म को संपन्न किया। चारों ओर मेघ गर्जन जैसे नगाडों के बजते समय, इन्द्र के समान वे चल पडे और चन्द्रमंडल को छूने

[1] मद्दल, एक प्रकार का ढोल या नगाडा।

वाले अपने प्रासाद म आये। (वर्हाँ) रत्नखचित उन्नत मडप म आसीन हुए तथा उनके पारव म महातपस्वी (विश्वामित्र) सुन्दर विजयमाला धारण किये हुए धनुर्हस्त (रामचन्द्र) और उनके अनुज (लक्ष्मण) आसीन हुए।

जनक महाराज ने उर्हॉ पर आसीन उत्तमकुल चक्रवर्त्ती कुमारो को ऐसे देखा जैसे वे अपनी आँखो से उन दोनो के मुख लावण्य को पी रहे हो। फिर, तपस्वी विश्वामित्र के सम्मुख सिर नवाकर प्रश्न किया—हे पूज्यपाद ! ये कौन है ? विश्वामित्र ने उत्तर दिया—ये दोनो कुमार महिमामय दशरथ के पुत्र है। तुम्हारे यज्ञ के दर्शनार्थ आये है। तुम्हारे पास रहनेवाले शिव धनुष को भी वे देखेंगे। फिर, वे उन दोनो कुमारो की महिमा का बखान करने लगे। (१-१५७)

●

अध्याय ११

वंश-महिमा-वर्णन

सूर्य के प्रथम पुत्र मनु को कौन नहीं जानता ? उन्ही के वंश मे एक ऐसे नरेश (पृथु चक्रवर्त्ती) उत्पन्न हुआ था, जिसने सभी प्राणियो को भूख से बचाने के लिए अपने तेजस्वी धनुष की सहायता से धेनु रूप धारण किये हुए पृथ्वी से दुग्ध प्राप्त किया था।

नवरत्न खचित मनोहरकिरीटधारी (हे जनक)! इसी वंश के एक दूसरे नरेश (इक्ष्वाकु) ने जगत् की व्याधियो तथा पापो को मिटाते हुए अनेक वर्ष पर्यन्त ब्रह्मा की उपासना की थी और ब्रह्मा की कृपा से आदिशेष पर शयन करनेवाली उस परम ज्योति को हम जैसे लोगो के भी दर्शन का विषय बनाते हुए, मनोज्ञ श्रीरंगविमान सहित उस परम ज्योति को (पृथ्वी पर) ला दिया था। उन महाराज को जो नही जानते, वे अज्ञ है।

इन्ही कुमारो के वंश मे पहले एक दूसरा राजा उत्पन्न हुआ था। देवेन्द्र ने अपने शत्रु असुरो को पराजित करने मे असमर्थ हो, उस राजा से प्रार्थना की कि वह उन

१ दक्षिण के श्रीरंगक्षेत्र के संबंध मे यह प्रसिद्ध है कि यहाँ का प्रणवाकार विमान जिसमे विष्णु भगवान् श्रीभूमिनायिका समेत आदिशेष शय्या पर लेटे हुए है पहले सत्यलोक मे ब्रह्मा के द्वारा पूजित था। वैवस्वत मनु की नासिका से उत्पन्न इक्ष्वाकु महाराज ने ब्रह्मा को अपनी तपस्या से सतुष्ट किया तथा उनसे श्रीरंगविमान को प्राप्त कर उसे भूलोक पर ले आये। इक्ष्वाकु से श्रीरामचन्द्र तक सूर्यवंश के सभी नरेशो ने (कुलदेव के रूप मे) इसी श्रीरंगनाथ की पूजा की थी। रामायण की घटनाओ के पश्चात् जब विभीषण अयोध्या से लका को लौट रहा था, तब रामचन्द्र ने विभीषण को अपने कुलदेव की मूर्त्ति और श्रीरंगविमान दिया था। विभीषण ने उस विमान को कावेरी की दो शाखाओ के मध्य रखकर विश्राम किया फिर चलने के समय उसे उठाना चाहा, तो वह विमान उठा नही। तब विभीषण ने यह समझकर कि भगवान् की इच्छा वही पर रहने की है, उसने उस विमान को वहाँ प्रतिष्ठापित कर दिया। श्रीरामानुजाचार्य के अनुयायी मानते है कि भूतल के १०८ विष्णु-क्षेत्रों मे श्रीरंगक्षेत्र सर्वश्रेष्ठ है। —अनु०

असुरों से स्वर्ग की रक्षा करे। तब इन्द्र का अभयदान देकर वह नरेश हाथ में धनुष बाण लेकर गया था तथा असुरों को युद्ध में हराया था। स्वयं इन्द्र वृषभ का आकार लेकर (युद्ध में) उस नरेश का वाहन बना था। (यह 'ककुत्स्थ' नामक इक्ष्वाकुकुल के राजा की कहानी है।)

उस (ककुत्स्थ) महाराज के पश्चात् जो महान् व्यक्ति इस वंश में उत्पन्न हुए थे, उनका वर्णन करना मेरे लिए संभव नहीं है। इसी वंश में एक ऐसा नरेश उत्पन्न हुआ था, जिसने अपने पलित केशों, संकुचित चर्म तथा वार्द्धक्य को दूर कर दिया था। जिसने तरंगों से शब्दायमान क्षीरसागर को मंदर पर्वत से मथकर अमृत निकाला था और देवेन्द्र को अमर बनाया था। उसकी कीर्ति शब्दों में वर्णित नहीं हो सकती है। (इस पद्य में वर्णित राजा कौन है, यह मूल कथानक में नहीं है।)

युद्ध समाप्त करके भाले को कोश में ही रखनेवाले (हे जनक)! अब तुमसे युद्ध करने के लिए कोई सन्नद्ध नहीं है। इन राजकुमारों के ऐसे अनेक पूर्वज हुए हैं, जिनका आज्ञाचक्र त्रिभुवन में चलता था और जिनमें असंख्य श्रेष्ठ गुण थे। उनमें एक (मांधाता) ने इस प्रकार शासन किया था कि सहज वैरी व्याघ्र तथा हिरण एक ही घाट पर जल पिया करते थे।

अनेक विजयी राजाओं के द्वारा वंदित चरणवाले (हे जनक)! महनशील देवता और दानव एक बार युद्ध करने लगे थे तब इन्हीं के वंशज एक नरेश ने—जिसने वेदोक्त रीति से अपने राज्य पर अभिषिक्त होकर उसके चिह्नभूत रत्न किरीट तथा हार धारण किये थे—प्रकाशमान धनुष धारण करके, धर्मदेवता के समान एकाकी संचरण करता हुआ अमरावती की रक्षा की थी। (यह कदाचित् 'मुचुकुंद' नामक राजा है।)

हे विद्युत् सदृश ज्योतियुक्त दीर्घशूलधारी (जनक)! इस वंश के राजाओं की, जो सौन्दर्यवर्धक वीरकंकण धारण करनेवाले थे और जो सब प्यारे प्राणियों के प्राण समान रहकर भूलोक पर शासन करते थे, हम क्या प्रशंसा कर सकते हैं? इन्हीं में से एक (शिबि) ने एक पक्षी के प्राणों के बदले में अपने प्राण दे दिये थे।

शत्रु नरेशों के शरीर भेदनेवाले शूलधारी, हे नृपवर! इस वंश के नरेशों ने (एकबार अश्वमेध अश्व के खो जाने पर) बड़े बड़े पर्वतों को गेंद के समान उड़ा दिया था। इस भूलोक को एक ऊँचा टीला बनाते हुए लवण जल से भरे सागर को खोदा था। इनकी महिमा को जताने के लिए और क्या कहें? (यह सगर कुमारों से संबद्ध घटना है।)

हे (शत्रुओं के) मांस सिक्त कांतिवाले शूल को धारण करनेवाले! जब अनंतशेष ही इस वंश के महत्त्व का बखान नहीं कर सकते हैं तो क्या यह मेरे लिए सुलभ हो सकता है? पुष्प भूषित शिवजी के मस्तक पर जो पवित्र गंगा आकर ठहरी थी, उसे स्वर्ग से भूतल पर ले आनेवाला नरेश भी इसी वंश में उत्पन्न हुआ था।

कलंक रहित पूर्णचन्द्र समान उज्ज्वल श्वेतच्छत्रधारी (हे जनक)! इस वंश के एक नरेश ने जलचरों से भरे सागर से घिरी हुई धरती को हस्तामलक के समान अपने वश

म कर लिया था। उसने वदोक्त विधान म एक सो दुष्कर यज्ञ सपन्न किय थ, जिससे दवन्द्र भी सकट मे पड गया था। (कुछ विद्वानो का कहना है कि इसम वर्णित नरश 'नहुष' हे।)

इस वश म कोई एक ऐसा नरश हुआ था, जिसने चन्द्र को जीता था, किमी न रुद्र को परास्त किया था, किमी ने बाण से डुंद[1] नामक असुर को मारा था और रघु नामक राजा ने इन्द्र को परास्त करक आगे की दिशाओ पर विजय प्राप्त की थी।

इस वश क अज नामक राजा ने अपन धनु रूपी मदरपवत को मथनी बनाकर शत्रुराजकुल रूपी समुद्र का मथन किया था ओर मल्लयुद्ध म कुशल उस राजा ने ज्योतिमय मदहास से शोभायमान इन्दुमती रूपी लक्ष्मी दवी को, अपने वक्ष का उसी प्रकार आभरण बनाया था,

जिस प्रकार अधकार समान वर्णवाले विष्णु ने (लक्ष्मी को अपना आभरण) बनाया था। विविध वाद्य घोष से मुखरित राजद्वारवाले (हे जनक)। ऐसा कोई नही है, जो अज महाराज के पुत्र दशरथ को नही जानता। उन दशरथ क ही य दोनो पुत्र ह। यदि चतुमुख ब्रह्मा भी इनकी महिमा का यथावत् वणन करने लगे, तो उन्हे भी (इनकी महिमा का) पार पाना कठिन हे। फिर भी मुझसे जहाँतक हो सकेगा, म उसका वणन करूँगा।

जाज्वल्यमान विष्णुचक्र तुल्य सूर्य जिस प्रकार ओसकणो को परास्त करता ह, उमी प्रकार व दशरथ महाराज शत्रु राजाओ को पराजित कर समस्त प्राणी वग के अविपन्न जीवन बिताने म सहायक हुए ह। अपने हाथ के धनुष के अतिरिक्त अन्य कोई उनका साथी नही है (ऐसे पराक्रमी हं वे)। धर्म ही उनका कवच ह। उन्होने अपनी नीति से स्वय मनु को भी जीत लिया हे। वे दशरथ सतानहीन होने के कारण बहुत दु खी थे।

फिर, दशरथ ने उस ऋष्यश्रृ ग मुनीश्वर की सहायता से अपने दु ख से निस्तार पाना चाहा, जो पहले कभी धनुषाकार भाल, मधुरभाषी बिम्बाधर, काले और दीर्घ नयन, मूल्य पर दिये जानेवाले विशाल जघन, विद्युल्लता सदृश निरूपित कटि से शोभायमान वेश्याओ को स्तन रूपी श्रृ गवाले मृग समझकर उनपर मोहित हुए थ और अपने आश्रम को छोड उनके साथ ही (रोमपाद के यहाँ) आ गये थे।

दशरथ ने ऋष्यश्रृ ग के चरणो पर नत हो प्रार्थना की (ह मुनि।) मेरी तपोहीनता के कारण, कचुक बद्ध स्तनवाली मेरी पत्नियो के पवित्र गर्भ से पुष्पालकार के योग्य मस्तकवाले पुत्र उत्पन्न नही हुए है। अत, आप मुझे एसे सत्पुत्र प्रदान करे, जो मेरे बाद समुद्र से आवेष्टित इस धरणी का शासन कर सके।

ये वचन सुनकर ऋष्यश्रृ ग ने कहा — मे तुम्हे ऐसे पुत्र प्रदान करूँगा, जो इस धरणी का ही नही, परन्तु सभी लोको की रक्षा अनायास ही कर सकेंगे। (इसके लिए) दवताओ के हविर्भाग प्राप्त करने योग्य यज्ञ करना चाहिए, उसक लिए आवश्यक वस्तुएँ सग्रह करो।

१ गुरु-पत्नी का हरण करनेवाले चन्द्र को दिलीप ने परास्त किया था। स्कदपुराण तथा सनत्कुमार-सहिता से विदित होता है कि भगीरथ ने अपने यागाश्व का हरण करनेवाले षण्मुख के साथ युद्ध करते हुए शिवजी को भी पराजित किया था और कुवलयाश्व नामक राजा ने उत्त ग महर्षि के शत्रु 'दुंद' को मारा था।—अनु

दशरथ ने त्वरित ही पुत्र प्राप्ति के निमित्त भूत यज्ञ के लिए आवश्यक सब पदार्थ संगृहीत करा लिये। महान् तपस्वी (ऋष्यशृंग) ने पुत्रकामेष्टि यज्ञ सम्पन्न किया। उस यागाग्नि से भूतगण का नायक महाभूत प्रकाशमान सुन्दर थाल में अमृत तुल्य श्वेत खीर लेकर निकला।

गुणों में अपना उपमान न रखनेवाले दशरथ ने वेदों के तत्त्वज्ञ ऋष्यशृंग की आज्ञा से स्वर्णपात्र सहित उस अन्न को क्रमशः रमणीय ललाट युक्त अपनी तीनों पत्नियों को चार भागों में बाँटकर दिया।

महान् पापों के पाप के कारण तथा अनन्त वेदों में कथित धर्मों के धर्म (पुण्य) के कारण अरुण अधरवाली कौशल्या ने इस नीलसमुद्र (राम) को जन्म दिया, जिसके विशाल हस्त में 'कटक' (आभरण) भूषित है तथा जिसका सुन्दर रूप चित्र में अंकित करने में असम्भव है।

केकय नरेश की पुत्री (कैकयी) ने भरत नामक पुत्र को जन्म दिया, जो अनिवार्य नीतिधर्म रूपी अनुपम नदियों के द्वारा भरा गया गंभीर समुद्र है, अनिन्दनीय सद्गुण संपन्न है और सौन्दर्य में भी इस (रामचन्द्र) की समता करनेवाला है।

इन दोनों रानियों में कनिष्ठा (सुमित्रा) ने दो पुत्रों (लक्ष्मण और शत्रुघ्न) को जन्म दिया जो अपूर्व शक्ति संपन्न हैं तथा यमघाती असुरों को भी कँपा देनेवाले हैं। स्वर्णमय मेरु और उन्नत रजतमय हिमाचल, दोनों यदि धनुष धारण करके खड़े हों, तो उन दोनों कुमारों की समानता कर सकेंगे।

चतुर्वेदों के तुल्य वे चारों कुमार सभी विषयों के परिज्ञान में सरस्वती से भी बढ़कर हैं। धनुर्विद्या में ऐसे हैं कि स्वयं धनुर्वेद भी उनसे परास्त होकर, उनके वशीभूत शत्रु के समान उनकी सेवा में निरत रहता है। वे (चारों बालक) राका चन्द्र के उदय काल में आनन्द घोष के साथ उमड़नेवाले तरंगपूर्ण समुद्र के जैसे बढ़ते रहे हैं।

शत्रुओं का विनाश हो जाने से अब कोश में रखे हुए दीर्घ शूलवाले (हे जनक)! ये दोनों नाममात्र से उस दशरथ के कुमार हैं, जो (दशरथ) कर देनेवाले सभी नरेशों के द्वारा वन्दित तथा वीर वलयधारी चरणवाले हैं और जो अत्यन्त क्षमाशील हैं। वस्तुतः, इनका उपनयन संस्कार करके वेदों की शिक्षा देकर इन्हें पालनेवाले वसिष्ठ ही हैं।

मैंने सोचा कि मेरे यज्ञ में अधिक विघ्न उपस्थित करनेवाले अत्याचारी राक्षसों को इन दोनों कुमारों के द्वारा मैं मिटा दूँगा। ज्योंही मैं इन पुष्पकोमल चरणवाले सुकुमार कुमारों को लेकर अरण्य में गया, त्योंही असह्य शक्तिशालिनी ताडका नामक राक्षसी स्वयं सामने आ गई।

हे राजन्! तरंगायित समुद्र जैसे इस श्यामल पुरुष श्रेष्ठ की इन दीर्घ तथा पुष्ट नील भुजाओं का बल भी तो तुम देखो। इसका एक बाण, युद्ध रंग में लाल लाल अग्निवर्षा करनेवाले नयनोंवाली उस ताडका का हृदय चीरकर, पर्वत को भेदकर, वृक्षों को काटकर, धरती को चीरता हुआ चला गया।

गगन के रंगवाले तथा आग की लपटों के जैसे बालों से भरे हुए, जलते रंग से

लगनवाले (राक्षसों के) जो सिर कट कटकर पर्वताकार गिरे, उनकी कोई गणना ही नहीं रही। उस ताडका का एक पुत्र (सुबाहु) एक ही बाण से परलोक जा पहुँचा। दूसरा पुत्र (मारीच) कहाँ जा गिरा, उसका पता नहीं है। मैं अपना यज्ञ भी संपन्न करके अब यहाँ आ पहुँचा हूँ।

हे राजन्! यह जानो कि हम इनकी महिमा जानने में भी असमर्थ है। मैं अपनी तपस्या के फलस्वरूप इन्हें ऐसे अस्त्र प्राप्त करके दे सका हूँ, जो समुद्र तथा पर्वत सहित सारे संसार को जला सकते हैं। वे सभी अस्त्र इनकी आज्ञा के पालक दास बने हुए हैं।

इनके कमल सदृश, वीर वलय भूषित चरण की रज ही गौतम की पत्नी को (शाप मुक्त करके) पूर्वरूप प्रदान करनेवाली है। मुझे अपने प्राणों से भी बढ़कर इस श्यामल पर प्रेम है।

ऐसा है इस रामचन्द्र का दिव्य चरित तथा भुजबल—यों विश्वामित्र ने कहा।

(८–७६)

●

अध्याय १२

धनुर्भंग पटल

तब जनक ने विश्वामित्र के प्रति ये वचन कहे—आपको मैं क्या बताऊँ ? मैंने उस मायावी धनुष को प्रणबन्ध कर रखा है, जिससे मैं अब अपने इच्छानुसार कुछ नहीं कर सकता। मेरा मन (इस श्रीरामचन्द्र को देखकर, उसे सीता के योग्य वर समझकर और शिव धनुष की बात स्मरण करके) अत्यन्त अधीर हो रहा है। यदि यह कुमार धनुष पर डोरी चढ़ा सके, तो मैं दुःख सागर को पारकर जाऊँगा तथा मेरी पुत्री भी भाग्यवती होगी।

यों कहकर जनक ने अपने सम्मुख स्थित कुछ सेवकों को आदेश दिया कि पर्वत सदृश उस धनुष को यहाँ ले आओ। 'यथाज्ञा' कहकर चार सेवक दौड़कर उस आयुधागार में गये, जहाँ स्वर्ण वलयों से अलंकृत वह धनुष रखा था।

अतिबलशाली गज जैसे शरीरवाले, पहाड़ जैसे पुष्ट तथा लोमश कंधेवाले, साठ सहस्र वीर, बड़े बड़े बल्लों पर रखकर उस धनुष को उठा लाये।

वह धनुष लाया गया, तो विशाल धरती (जहाँ पर एक दीर्घकाल से वह धनुष रखा हुआ था) अपनी पीठ की पीड़ा दूर कर सकी। (उसे देखकर) सुदृढ खड़ा ऊँचा मेरु गिरि भी लज्जित हो गया। समुद्र जैसी जनता शोर गुल करती हुई उस धनुष को देखने के लिए उमड आई। ऐसा लगा कि उस विशाल धनुष को रखने योग्य खाली स्थान कहीं भी नहीं है।

कुछ लोग कहते थे—शंखचक्र विभूषित हस्तवाला, सिंह सदृश यह (विष्णु का अवतार रामचन्द्र) यदि इस शिव धनुष पर डोरी न चढ़ा सके, तो संसार में इसे छू सकने

वाला भी काइ व्यक्ति नहा मिलेगा। यदि आज ही यह कुमार इसे चढा द, ता सीताजी का शुभ विवाह सुसपन्न हा सकगा।

कुछ लाग कहत थे—इसे धनुष कहना वाखा है, यह साने का पहाड मरु ह। कुछ कहत थे—ब्रह्मा न इसे अपने हाथो से स्पश करक नही बनाया, किन्तु अपने महान तप क प्रभाव मे ही इसे निमित किया हे और कुछ कहत थे—न जान पूर्व काल म इस कौन चढाता था?

कुछ लोग कहत थ—दृढ मेरु को ही इस धनुप का आकार दिया गया ह, या पूवकाल म जिस मदरपर्वत से क्षीरसागर को मथा गया था, वही पवत इस धनुष क रूप म यहॉ पडा है, या प्रभावशाली, प्रकाशमान सपराज (आदिशेष) ही हे यह, या गगनस्थ दीर्घ इन्द्र धनुष ही अब किसी प्रकार यहॉ आ गिरा है।

कुछ कहत थे—महाराज ने इसे ले आने की आज्ञा ही क्यो दी? इसे प्रणबध बनानेवाल उनक जेसा बुद्धिहीन व्यक्ति कोई हे क्या? कुछ कहते—पूर्व पुण्य से ही यह काय पूण हा भी सकता ह। कुछ कहत—क्या सीता ने अपन (विवाह के) लिए दॉव पर रखे गये इस धनुप का कभी दखा भी है?

कुछ कहत—इस धनुप से छोडे गये बाण का लक्ष्य कौन हा सकता ह? कुछ कहत—इस महान् धनुष का अपनी कन्या क सामर्थ्य क अनुरूप ही बनाया ह। कुछ कहत—चक्रायुध धारण करनेवाला (महाविष्णु) क्या निश्चय ही इस धनुष को झुका सकता ह? कुछ कहत—यह पूर्वजन्म कृत पाप ही हे (जो प्रणबध होकर यहॉ पडा हे)।

वहॉ एकत्र नर नारी इस प्रकार क वचन कह रहे थे, तब सेवको ने वह धनुष जनक क सम्मुख रखा, जिससे धरित्री की पीठ नीचे को धॅस गई। उस धनुष को देखत ही वहॉ क राजाओ की भुजाएँ, यह सोचकर कि 'इसे कौन चढा सकता है?', कॉपने लगी।

जनक महाराज (कभी) कलभ जैसे उस वीरकुमार (राम) क सौन्दय को दखते, कभी दु ख देनेवाले उस बडे धनुष को देखते, फिर अपनी पुत्री (सीता) की ओर देखत। उनक मन की अधीरता को जानकर शतानन्द कहने लगे—

मेरु को धनुष बनानेवाले शिवजी, अपने पार्श्व म रहनेवाली उमा का अपमान करनेवाले दक्ष के यज्ञ मे, क्षमारहित क्रोध के साथ, इसी धनुष को लेकर गये थ।

(शिवजी क किये गये आघातो से उन दवताओ के) दॉत और हाथ टूटकर गिर पडे। वे देवता भागे और अज्ञात स्थानो मे जा छिपे। दक्ष की यागाग्नियॉ ध्वस्त हो गई, तब जाकर त्रिनेत्र तथा अष्टभुजावाले रुद्र का क्रोध शान्त हुआ।

उसक बाद शिवजी ने देवो की थरथराहट देखी। उन देवा की आयु अभी शष थी। अत, (शिवजी ने) उस दृढ धनुष को इस वृषभ समान वीर जनक क वश म उत्पन्न एक खड्गधारी नरेश को द दिया।

इस धनुष की कठारता के बारे म मुझ कहना ही क्या ह? दीर्घजटाधारी (शिव)

तुल्य हे मुनिवर (विश्वामित्र) । आपसे बढ़कर सर्वज्ञ दूसरा कौन है? अब रथ के सदृश जघनवाली जनक की पुत्री इस सीता का वृत्तान्त भी सुनिए।

एक बार हमने यज्ञ करने का उपक्रम करके लौह समान दीर्घ शृंगद्वय से भूषित दो वृषभों के अतिभारी कंधों पर स्फटिकमय जुआ रखा और उससे असंख्य रत्न खचित हल को बाँधा और उसमें हीरे की बनी फाल लगाकर दृढ भूमि को जोता।

जोतते समय फाल के सिर पर उदीयमान कांतिपूर्ण सूर्य की जैसी एक सुन्दरी निकल पड़ी, मानो भूमि स्वयं नारी की आकृति धारण कर निकल आई हो। वह इतनी सुन्दरी थी कि क्षीराब्धि से स्वच्छ अमृत के साथ उत्पन्न लक्ष्मी भी अपने को छोटी मानकर दूर हटकर खड़ी हो जाय तथा हाथ जोड़कर नमस्कार करे।

इस कन्या के गुणों के संबंध में क्या बताऊँ? सभी सद्गुण इस लतांगी के पास रहकर नव जीवन पाना चाहते हैं और चढ़ा ऊपरी करते हुए इसके पास आ पहुँचते हैं। रूप सौन्दर्य बड़ी तपस्या करके ऐसी कन्या को प्राप्त कर सका है। विशाल कर्णाभरणों से अलंकृत इस कन्या के आविर्भाव से अन्य सभी सुन्दरियाँ वैसे ही शोभाहीन हो गईं, जैसे सूर्य से प्रकाशमान नभ से गंगा के भूमि पर उतर आने से अन्य नदियाँ प्रभावहीन हो गई थीं।

हे सर्वज्ञ। (जो सीता का पाणिग्रहण करना चाहता है, उसे) धनुर्विद्या का चातुर्य अपने व्यापार में प्रकट करना होगा और (उसके लिए) भाग्य का भी बल होना आवश्यक है। ये दोनों (बल) किसी के पास एक साथ नहीं रहते, उनके पृथक्-पृथक् होने पर भी पृथ्वी के सभी राजाओं ने इस सीता को प्राप्त करना चाहा, जैसे समुद्र से निकली हुई लक्ष्मी को सभी देवताओं ने अपनाना चाहा था। ऐसे आश्चर्य का विषय संसार में और क्या होगा?

अपनी सूँड से मद जल बहानेवाले मत्तगज के जैसे राजा अपनी भारी सेनाओं समेत, कोलाहल मचाते हुए, समुद्र के समान आते और सीता का पाणिग्रहण करने की इच्छा प्रकट करते। उनके उत्तर में हम कहते—व्याघ्रचर्म को कटि में तथा गजचर्म को उत्तरीय के रूप में धारण करनेवाले (शिवजी) ने युद्ध में जिस धनुष का प्रयोग किया था, उसे चढ़ानेवाला ही इस सीता का वर हो सकता है।

वाणी रूपी धनुष से लोक की रक्षा करनेवाले (हे विश्वामित्र)। वे राजा इस कठोर (शिव) धनुष को चढ़ाने में असमर्थ हुए। परन्तु, वे मन्मथ के छोटे से ईख के धनुष (के बाणों) को भी सहने में असमर्थ थे, इसलिए वे कर्णाभरण विभूषित उस सीताजी को बहुत चाहने लगे, जिसके विवाह के लिए शिवधनुष पण बनाया गया था, अतः वे हमारे साथ युद्ध करने आये।

हमारे महाराज (जनक) की सेना इस प्रकार घटती गई, जैसे किसी दाता राजा की यश प्रद संपत्ति घटती है। किन्तु, गुंजायमान भ्रमरों से अलंकृत घुँघराली लटों से सुशोभित सीता के मोह से आये हुए उन राजाओं की सेनाएँ उनकी इच्छा के सदृश ही विफल हुईं।

उज्ज्वल किरीटधारी देवों ने जब देखा कि बलशाली सुन्दर भुजावाले थे (जनक) वृषभवाहन (शिव) के धनुष के कारण उत्पन्न युद्ध में शिथिल पड रहे हैं, तब उन्होंने कृपा करके उन्हें चतुरंग सेना प्रदान की। उस सेना को देखते ही वे शत्रु राजा डरकर इस प्रकार भागे, जैसे रात में उल्लू को देखकर कौए डरकर भाग जाते हैं।

तब से अबतक अन्य कोई राजा इस शिव धनुष के पास भी नहीं फटका। वे रथी नरेश जो डर के मारे भाग खडे हुए थे, कभी नहीं लौटे। हम यही सोचते रहे गये कि अब सीता का विवाह नहीं होनेवाला है। यदि यह कुमार (राम) धनुष चढा दे, तो बडा हित होगा और पुष्पमालालंकृत सीता का लावण्य व्यर्थ नहीं जायगा। शतानंद यों कहकर चुप हो रहे।

अपूर्व तपस्वी (विश्वामित्र) ने उस मुनि के वचनों पर विचार किया, फिर जटालंकृत अपना सिर हिलाया और युद्ध कला में निपुण वृषभतुल्य राम के मुख की ओर निहारा। चित्र की प्रतिमा जैसे सौन्दर्यवान् (रामचन्द्र) ने विश्वामित्र के मन का विचार ताडकर उस दीर्घ शिव धनु पर दृष्टिपात किया।

प्रवाहित घृत की आहुति पाकर जैसे प्रज्ज्वलित अग्नि ऊपर उठती है, वैसे ही रामचन्द्र अपना आसन छोड उठ खडे हुए और (धनुष की ओर) पग धरने लगे। तब देवगण ने 'धनुर्भंग हो गया!' कहकर घोष किया। शत्रुत्रय, (काम[1] क्रोध और मोह) को परास्त करनेवाले ऋषियों ने उन्हें आशीष दिये।

पवित्र तप संपन्न मुनि की आज्ञा पाकर श्रीराम ने अभी शिव धनुष को चढाया भी नहीं था कि अनंग (मन्मथ) ने मनोहर आभूषणों से भूषित तरुणियों के हृदय में तीर मार मारकर सहस्रों धनुषों को तोड दिया।

वहाँ की नारियाँ कई प्रकार की बातें करने लगीं। कोई कहती- यह सामने रखा हुआ धनुष भीतर से बहुत ही कठोर है। और कोई कहती -यदि लज्जाशील सीता के मनोहर लाल कर को इस कुमार (राम) का विशाल हाथ न छुए, तो (अर्थात्, इन दोनों का विवाह न हो तो) कांत ललाटवाली (सीता) का जीवन ही व्यर्थ हो जायगा।

कुछ नारियाँ अपने करों को जोडकर कहतीं यदि मत्तगज समान यह राजकुमार हमारी आँखों को आनंदाश्रु से भरते हुए इस धनुष को न चढा दे, तो हम कस्तूरीगंध युक्त केशोंवाली सीता के साथ जलानेवाली अग्नि में डूब जायेंगी।

कोई कहती—ये वदान्य महाराज (जनक) यदि सीता का विवाह करना चाहते, तो इस राजकुमार को देखते ही यह कहकर कि 'मेरी कन्या सीता से विवाह कर लो,' पहले ही अपनी कन्या उन्हें दे देते। उलटे, इन्होंने, गंगा को जटा में बाँधनेवाले (शिवजी) के धनुष को लाकर इस कुमार के सामने रख दिया है, यह कैसा भोलापन है!

[1] संस्कृत-ग्रन्थों में 'अरि-षड्वर्ग' प्रसिद्ध है। तमिल-ग्रन्थों में प्रायश काम क्रोध मोह मद लोभ मात्सर्य—इन छह दुर्गुणों को काम क्रोध और लोभ के अंतर्गत मानकर 'शत्रुत्रय' का प्रयोग होता है। —अनु

कोई कहती — इस तरह मुनि में लज्जा नहीं है। कोई कहती — इस जनक से बढ़कर कठोर अन्य कोई व्यक्ति नहीं है। यह श्रेष्ठ कुमार यदि इस धनुष को न झुकावे तो पीनस्तनी सीता भाग्यहीन हो जायगी।

मयूर सदृश नारियाँ इस प्रकार कह रही थीं। उधर साधुजन शुभवचन कह रहे थे। स्वर्ग में देवता आनन्दित हो रहे थे। तब वे (राम) नाग (मत्तगज) तथा नाग (पर्वत) को लजाते हुए आगे पग बढ़ाते हुए चले।

उन्होंने बड़े स्वर्ण पर्वत सदृश उस धनुष को इस प्रकार उठाया, मानो वे सुवर्ण-चूड़ियाँ पहनी हुई दुर्लभ रत्न समान (सीता) को पहनाने के लिए कोई दीर्घ पुष्पमाला उठा रहे हों।

देखने में बाधा पड़ेगी, इस भय से सभी दर्शक निर्निमेष नयनों से देख रहे थे, किन्तु वे लोग यह देख और समझ भी नहीं पाये कि कब उन्होंने धनुष के एक सिरे को पैर से दबाया और कब उसको झुकाकर दूसरे सिरे पर डोरी चढ़ा दी। उन्होंने केवल धनुष का उठाना देखा और उसके टूटने की ध्वनि सुनी।

उस ध्वनि को सुनते ही देवता डर गये कि ब्रह्मांड ही फट गया है। वे चिन्ता करने लगे कि अब हम किसकी शरण में जायँ। अब इस पृथ्वी की क्या दशा होगी। मैं क्या कहूँ? नीचे इस पृथ्वी को अपने सिरपर ढोनेवाला, इसका मूल स्वरूप आदिशेष भी यों भयभीत हुआ, मानो उसके सिर पर वज्र गिर पड़ा हो।

'जयशील, शत्रु भयंकर, शूलधारी जनक को आज पुण्यफल प्राप्त हुआ है — यह सोचकर देवों ने पुष्प वर्षा की। मेघों ने सोने की वर्षा की। झाग भरे सभी समुद्रों ने विविध रत्नों को बिखेरकर आनन्द घोष किया। मुनियों ने आशीष दिये।

मिथिला नगरी में श्वेतशंख तथा अमृतनादयुक्त विविध वाद्य बज उठे। पुष्प मालाएँ, आभरण, चंदन, सुगंध चूर्ण, सुगंध द्रव्य, समुद्रों से उत्पन्न उज्ज्वल मुक्ताएँ, स्वर्ण मणियाँ, उत्तम वस्त्र आदि वस्तुएँ वहाँ के लोग दान करने लगे। वह नगर ऐसा लगा, जैसे पर्वकाल में (पूर्णिमा या अमावास्या के दिन) समुद्र उमड़ पड़ा हो।

भालों के जैसे नुकीले नयन और रात्रि में शोभायमान चंद्रोपम वदनवाली रमणियाँ, वर्षा ऋतु में गगन के नीर भरे बादलों को देखकर नाचनेवाली मयूरों की जैसी नाच उठीं। उस समय सुनाद भरी मकरवीणा की संगीत सुधा बरसने लगी और मंदहास तथा कर्णाभरणों की चमक चारों ओर छा गई।

मानिनी नारियों ने, जिनके रक्तवर्ण और काले सुन्दर नयन मस्ती से भरे थे, अपना मान छोड़कर अपने अपने प्रियतम का आलिंगन कर लिया। विशाल समुद्र में जैसे सफेद बादल पानी पिये, वैसे ही दरिद्रों ने जनक महाराज की संपत्ति को भर लिया।

नर्तकों के मधुर गीत, रमणियों के अमृत गीत, तंत्री वाद्य बजानेवालों की मकर वीणा से उत्पन्न मधु सदृश दिव्य गीत तथा वंशी के विविध गीत—इन सबका पान करते हुए देवता अपने शरीर और प्राण के जड़ीभूत होने से यों खड़े रहे, मानो चित्र ही हों।

देवलोक की अप्सराएँ, प्रभु के धनुष तोड़ने का अद्भुत दृश्य देखने के लिए

भूतल पर उतर आई तथा अगो के व्यापार म, आकार म, नाच म, गान म—सभी प्रकार से, भूतल की नारिया के साथ एकाकार हो गई और पृथ्वी की ललनाओ का (अप्सरा समझकर) आलिगन करने लगी किन्तु इन ललनाआ को अपनी पलक गन्ति करत हुए देखकर विस्मय विमुग्ध हो गई।

(दर्शको मे से) कुछ कहते—देखो, यह दशरथ का पुत्र है। कुछ कहते, यह कमलनयन है (विष्णु का भी एक नाम कमलनयन या 'पुण्डरीकाक्ष' है)। कुछ कहते इसका शरीर ही कालमेघ है और (अतसी) पुष्प की तुलना करता है। कुछ कहते यह मनुष्य नही है, मीन भरे समुद्र का निवासी विष्णु ही है, किन्तु ससार भ्रम म पडा है (उनको पहचान नही रहा है)।

कुछ कहते—इस कुमार (के सौन्दर्य) को देखने के लिए उस कुमारी (सीता) को सहस्र नयन चाहिए और उस लतागी (सीता के सौन्दय) को देखन के लिए इस पुरुषश्रेष्ठ को भी वैसे ही सहस्र नयन चाहिए। फिर कहते—देखो, इसका भाई भी कितना सुन्दर है। इनको प्राप्त करके पृथ्वी अत्यत पुण्यवती हुई है। और, कुछ कहते—इस नगर म इन कुमारो को ले आनेवाले मुनिवर (विश्वामित्र) को हम सभी नमस्कार करे।

यहाँ राजदरबार म यह दृश्य था। उधर चन्द्र और रात्रि के चले जाने पर (राम के) पुनदर्शन की अभिलाषा से, प्राणो को कुछ रोककर बैठी हुई उस लघुभृकुटि, पीन उरोज, लाल रेखाओ से युक्त और काले भाले जैसे तीक्ष्ण नयन तथा स्वण ककण म सुशोभित सीता की क्या दशा हुई, अब हम इसका वणन करेगे।

वह सीता दोलायमान प्राणो के साथ (उष्णता से) शरीर को गलानेवाली पुष्प शय्या को छोडकर स्वर्णाभरणो से अलकृत चेरियो से घिरी हुइ, वहाँ से उठी और सुन्दर कमल सरोवर के तट पर एक स्फटिक प्रासाद म, चन्द्रकात से उत्पन्न शीतल जल म छिडकाई हुई कोमल शय्या पर, बडी कठिनाई से जा लेटी।

(विरह ताप से पीडित वह कहने लगी) शीतल सुरभित कमललताओ! ऐसा प्रतीत होता है कि एक बाला की विरह व्यथा को समझने की उदारता तुमम है, इसीलिए तुमने अपने पत्तो की छटा म (उस श्रीरामचन्द्र के शरीर का) अपूर्व रग दिखाकर मेरी मनाव्यथा को कुछ कम किया है, किन्तु मेरे पल्लव समान रग का हरण करनेवाले (उन रामचन्द्र) के नेत्रो की आतरिक काति को भी (अपने दलो मे) दिखाकर मेरे प्राणो को लौटाने से क्यो पीछे हटती हो?

(उन राम की भुजाआ को देखकर) लज्जित मरु सदृश उनका धनुष तथा उसकी डोरी पर सचरण करनेवाले उनके हस्त, स्तभ सदृश उनके स्कध, बाणो से भरा तूणीर, उज्ज्वल चन्द्रिका जैसा यज्ञोपवीत और जयमाला से अलकृत उनका वक्ष—ये सब फिर देखने को मिलेगे, तो मेरे प्राण भी देखे जा सकेगे। (अर्थात्, तभी मेरे प्राण बचेगे, अन्यथा अदृश्य हो जायेगे)।

नभोमडल मे प्रकाशमान चन्द्रमा और उसके साथ भ्रमरावृत पुष्पमालाधारी केशो

से अलङ्कृत नीरधनुर्धारी एक मेघ आया था, जो अपने दो नयनों से मेरे प्राणरूपी जल को उठाकर पी गया। वह मेघ मेरे हृदय में अब भी छाया हुआ है और सदा छाया रहेगा।

निष्ठुर मन्मथ ने ऐसे तीक्ष्ण बाण मेरे हृदय पर मारे हैं, जो तूल को जलानेवाली अग्नि के समान मेरे प्राण हरकर चले गये हैं और उसे पीडित कर रहे हैं। अब मैं अत्यंत व्याकुल हो रही हूँ, ऐसी दशा में पास आकर मुझ अबला को जो अभयदान न दे, जो यह न कहे कि 'डरो मत, डरो मत'—उसका पौरुष भी कोई पौरुष है?

हे कभी कृश न होनेवाले (मेरे) स्तन! उमडते उमडते रहकर तुमने क्या काम किया? उदय न होनेवाले (अर्थात्, सर्वदा एक जैसे चमकनेवाले) चन्द्र जैसा कांतिमान बदनवाले, (शिव के) कठोर धनुष को उठानेवाले उस महाप्रभु (राम) के वक्ष का गाढालिंगन यदि प्राप्त करना चाहते हो, तो उसके लिए उचित तपस्या करो।

यह चन्द्रमा कहाँ से निकल आया है, जो मेरे ऐसे स्तनों पर विष बरसा रहा है, जिनमें मेरे हृदय में अनंग के द्वारा छोडे गये शरों से उत्पन्न विरह पीडा उमड रही है। विष बरसाने पर भी यह रात्रि काल में उदित होनेवाला चन्द्र[1] नहीं है, क्योंकि इसके मध्य कलंक नहीं दीखता।

हे मेरे हृदय! अनंग ने निकट आकर, क्रुद्ध हो शर बरसाये, उनके विष से जलाये जाकर भी मेरे ये प्राण जले नहीं हैं, किन्तु ये (प्राण) मेरे शरीर से निकलकर उष्ण मदजल बरसानेवाले काले हाथी के जैसे दीखनेवाले उस युवक (राम) के चरणों[2] की शरण में पहुँच गये थे। वे प्राण फिर लौटकर कैसे आये?

मानो गगनगत मेघ, बिजली के साथ, इस धरती पर उतर पडा हो, ऐसा ही दीखनेवाला वह श्वेत यज्ञोपवीतधारी राजकुमार (रामचन्द्र) आया और चला गया। वह यद्यपि मेरे हृदय गत है, तथापि मैं उसे जान नहीं पाती कि वह कौन है? वह यद्यपि मेरे नयन गत है, तथापि मैं उसे देख नहीं पाती। यह क्यों?

उदार समुद्र में उत्पन्न, अन्यत्र दुर्लभ अमृत को पाकर भी उसे मनोहर स्वर्णकलश में न भरकर बहा देनेवाले मूर्ख के समान मैं रह गई और उस कुमार की महान् बलिष्ठ भुजाओं को देखते ही आलिंगन में न बाँधकर मैंने उसे हाथ से जाने दिया। अब बहुत कहने से क्या प्रयोजन?

सोने के लेप जैसे चिह्न भरे स्तनोंवाली (सीता), उपर्युक्त प्रकार से कहती हुई, अत्यन्त व्याकुल हो, सिसक सिसककर रोने और दुःख सागर में डूबने लगी। इतने में मुदित मन और अंजन अंजित नयनोंवाली एक सखी पर्वत जैसे धनुष के टूटे जाने का समाचार लेकर आई। उसका वर्णन हम अभी करेंगे।

विशाल सरोवर में उत्पन्न नील कुवलय समान नयनोंवाली माला नामक सखी, लचकती हुई बिजली की सी शीघ्रता से आई, उसके रत्नमय कंठहार और कर्णाभूषण इन्द्रधनुष का

१ रामचन्द्र का मुख ही सीता की दृष्टि में फिर रहा है जिसे वह चन्द्रमा समझती है।

२ 'विष्णुपद' के दो अर्थ होते हैं—(१) स्वर्ग तथा (२) राम के चरण। मृत्यु प्राप्त कर फिर कैसे शरीर में आये, यह संकेत है।

न्हें उपस्थित कर रहे थे, तथा उसके घने पुष्प भरित केश तथा वस्त्र नीचे खिसक पड़ते थे।

वह सखी आई, तो उसने सीताजी के चरणों को नमस्कार भी नहीं किया और शोर मचाने लगी। असीम आनन्द से भरी हुई वह नाचने गाने लगी। उसे देख सीता ने पूछा—हे सुन्दरि! तेरे मन में यह कैसा आनन्द है? ऐसी क्या बात हुई है, जो तू इतना आनन्दित है? तब वह सखी सीता के चरणों की वन्दना कर कहने लगी

गज, रथ, तुरग के समुद्र से युक्त विपुल विद्या संपन्न, मेघ सदृश (दान वर्षा करनेवाले) करों से युक्त, दशरथ नामक एक छत्रधारी चक्रवर्ती हैं। उनका पुत्र पुष्पबाणों द्वारा प्रेम उत्पन्न करनेवाले मन्मथ से भी अधिक सुन्दर है।

उस कुमार की भुजाएँ सालवृक्ष के जैसे बड़ी हुई हैं। उसे देखने से सन्देह उत्पन्न होता है कि कहीं अनन्त पर शयन करनेवाले विष्णु भगवान ही तो इस रूप में नहीं आये हैं। उसका नाम है राम। वह और उसका अनुज प्रशंसनीय मुनिवर विश्वामित्र के संग इस नगर में आये हैं।

वलय विभूषित भुजावाला वह महापुरुष शिवजी का धनुष देखने के लिए आया है—यह समाचार विश्वामित्र ने पाकर जनक को वह धनुष लाने का आदेश दिया। वह धनुष लाया गया, तो उस पुरुषश्रेष्ठ ने उस पर डोरी चढ़ा दी। तब देवलोक भी काँप उठा।

क्षण भर में उस पर से दबाकर अपने भुजबल से ऐसा झुका दिया, मानो उसे धनुष को चढ़ाने का उसे पहले से ही अभ्यास रहा हो। तब देवताओं ने उसकी प्रशंसा की, और पुष्प वर्षा की, वह धनुष टूटकर ऐसा गिरा कि राजदरबार उस शब्द से काँप उठा।

उस सखी ने जब यह कहा कि विश्वामित्र के साथ आया हुआ राजकुमार मेघवर्ण है और कमलनयन विष्णु की छटावाला है, तब सीता को यह सन्देह दूर हो गया कि यह वही राजकुमार है, जिसे पहले दिन उसने देखा था या कोई अन्य। सीताजी का नितंब (आनन्द से) ऐसा बढ़ गया कि मेखला टूट गई।

(सीता की यह दशा देखकर सखियाँ आपस में कहने लगीं) कोई कहती 'इसके कटि नहीं है?' तो दूसरी कहती कि 'नहीं, इसके कटि है।' सीता के सुकुमार स्तन उमंग से उभर उठे। यों आनन्दित होती हुई उसने मन में निश्चय कर लिया कि इस सखी के कहे लक्षणों से लगता है कि अवश्य वही राजकुमार है। पर, यदि धनुष तोड़नेवाला व्यक्ति कोई अन्य होगा, तो मैं अपने प्राण छोड़ दूँगी।

विरह वेदना से पीड़ित सीता की दशा ऐसी हुई। उधर जनक महाराज ब्रह्मा के द्वारा निर्मित धनुष के टूटने से उत्पन्न ध्वनि सुनकर अत्यंत आनन्दित हुए और विश्वामित्र से कहा—

हे भगवन्! क्या आप इस कुमार का विवाह अविलंब, आज ही कर देना चाहते हैं या सर्वत्र इस विवाह का ढिंढोरा पिटवाकर तथा मुखरित वीर वलयधारी और गरजनेवाली सेनाओं सहित दशरथ चक्रवर्ती को भी यहाँ बुलाने के पश्चात विवाह संपादित करना चाहते हैं? आप कृपया बतायें।

मल्लयुद्ध म निपुण उम जनक क या कहन पर महातपस्वी (विश्वामित्र) ने अपना मत प्रकट किया कि दशरथ का भी यहाँ आना अच्छा होगा। अति आनन्द नरित राजा ने यहाँ का सारा वृत्तात दशरथ से कहने का आदेश देकर, विवाहोत्सव के लिए निमत्रण पत्र सहित, दूतो को अयोध्या रवाना किया। (१—६६)

●

अध्याय १३

दशरथ-प्रस्थान पटल

जनक के द्वारा प्रेषित वे दूत अतिवेग से पवन क जैसे चलकर, वज्र ध्वनि करने वाले नगाडो से प्रतिध्वनित अयोध्यापुरी म आ पहुँचे और दशरथ चक्रवर्त्ती के उम प्रासाद क द्वार पर गये, जहाँ चक्रवर्त्ती के चरणो की वन्दना करने के लिए आये हुए राजा लोग अति भीड के कारण भीतर जाने का माग न पाकर वही (द्वार पर ही) एकत्र हो गये थ और (भीड के कारण) उनक किरीट एक दूसरे से रगड खा रहे थे।

(अत मे) दूतो को चक्रवर्त्ती की कृपा प्राप्त हुई और वे यथाविधि राजा के सम्मुख जाकर उनके अति उज्ज्वल चरण युगल का नमस्कार किया तथा उनकी स्तुति की। फिर बोले—हे महाराज। आपके पुत्र जबसे विश्वामित्र क साथ चले तबसे जो घटनाएँ घटित हुइ, उन्हे हम आपको सुनाते हं। यह कहकर (उन्होने) समस्त वृत्तात कह सुनाया।

सारा वृत्तात सुनाने क पश्चात् उन्होंने अपने साथ लाये हुए पत्र को दशरथ के हाथ म दिया और कहा कि हे अनतगुणसपन्न। यह उम जनक महाराज द्वारा प्रेषित पत्र है। दरबार मे स्थित एक पडित ने उस पत्र को आनद के साथ ले लिया। तब मुखरित वीर-वलय पहने हुए (दशरथ) चक्रवर्त्ती ने उम पत्र को पढने की आज्ञा दी।

जनक ने ताल पत्र पर उनक (दशरथ के) ज्येष्ठ पुत्र की धनुविद्या चातुरी का जो चित्र अकित करके भेजा था, उसके अपने श्रुति पट पर अकित होत ही दशरथ की वज्र सम भुजाएँ पर्वत के जैसे फूल उठी और (भुजा के) वलय अपना मुँह बाये अपने स्थानो से खिसक गये।

जयप्रद शूलधारी (दशरथ) चक्रवर्त्ती ने कहा— उम दिन यहाँ एक बडी ध्वनि प्रतिध्वनित हुई थी, वह क्या उसी धनुष क टूटने की थी, जिसका प्रयोग घनी दीर्घ जटा धारी, विशाल गण सहित (शिवजी न) दक्ष यज्ञ के समय सातो लोको को पराजित करते हुए किया था ?

पर्वत सदृश पुष्ट भुजावाले (दशरथ) ने उपर्युक्त वचन सभी दरबारियो से कहा फिर अनुरूप नादविशिष्ट वीर वलयधारी दूतो को स्वर्णमय आभरण, वस्त्र आदि निरतर और अधिकाधिक मात्रा म दिलाते रहे।

उन्होंने आज्ञा दी कि हाथियों पर बैठकर नगाड़े बजाये जायें और इस बात की घोषणा की जाय कि सूर्यवंशी मेरे पूर्वजों के पुण्य फल में उत्पन्न मन्मथ जैसे श्रीराम अब जहाँ हैं, उस मिथिला नगरी की ओर हमारी सेनाएँ तथा राजसमूह पहले प्रस्थान करें।

'वल्लुवन'[1] ने अति वेगवान् अश्व रूपी तरंग युक्त (सेना रूपी) समुद्र में घूम घूमकर उपर्युक्त घोषणा सुनाई, (ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार) पूर्वकाल में जब मधुस्रावी तुलसी पुष्पमाला से विभूषित शिरवाले विष्णु भगवान ने (बलि का) दान स्वीकार करते हुए समस्त लोकों को नापा था, और जाबवान् ने उसकी घोषणा घूम घूमकर प्रकाशित की थी।

नगाड़े का तुमुल शब्द कानों में पड़ने के पहले ही, मनोहर कंकण पहने हुई नारियाँ, सुन्दर पुरुष, भाले के (प्रयोग में) निपुण राजकुमार, विजयी नरेश, सभी आनंद से यों उमगित हो उठे, जैसे प्रभंजन से आहत समुद्र हो।

वृषभ समान गंभीर पदगतिवाले (दशरथ) की सेनावाहिनी, जिसकी विशालता से ऐसा जान पड़ता था कि धरती पर थोड़ा भी खाली स्थान नहीं है, इस प्रकार चली, जैसे कल्पान्त के समय प्रलय मारुत से विताड़ित होकर समुद्र सभी वस्तुओं को मिटाकर उमड़ता हुआ आगे बढ़ रहा हो।

(उस सेना के मध्य) डंडे के ऊपर फैले हुए ऊँचे श्वेतच्छत्र यत्र तत्र ऐसे लगते थे मानो असंख्य हंस दुग्ध समान श्वेत कांति बिखेरते हुए उड़ रहे हों। नभ में छाई हुई ऊँची पताकाओं का समूह ऐसा लगता था, मानो सारा आकाश (सर्प के समान) अपनी केंचुली उतारकर गिरा रहा हो।

हस्तिसेना के ऊपर उड़नेवाली श्वेत वस्त्रों की ध्वजाएँ उन मेघों की तरह लगती थीं, जो अपनी सूँड से मदजल बहानेवाले हाथियों की सेना को भ्रांति से समुद्र समझकर, अंतराल को ढकते हुए उमड़ आये हों और जल पीने के लिए नीचे उतर रहे हों।

(नर नारियों के) आभरणों से बालातप छिटक रहा था। वह बालातप मयूर पंखों से बने छत्रों की छाया को हटाता हुआ फैल रहा था। वे मयूर छत्र मेघ की शोभा को मिटाते हुए विकसित हो रहे थे। उन मेघों को परास्त करते हुए पुंजीभूत नगाड़े बज उठते थे।

वे किंकिणीधारी अश्व, जिनपर रमणियाँ सवार होकर जा रही थीं, हंसों को लेकर चलनेवाली तरंग युक्त नदी के प्रवाह जैसे लगते थे। स्वर्णाभरण भूषित, परस्पर संघट्ट मान स्तनोंवाली, घुँघुराली अलकों से युक्त रमणियाँ बिजली की जैसी थीं और उनके वाहन—छोटी छोटी हथिनियाँ मेघों की जैसी थीं।

एक दूसरे को धक्का देते हुए, बड़ी भीड़ लगाकर चलने के कारण रमणियों के सटे हुए कुचों पर के कुंकुम लेप तथा पुरुषों की सुंदर पर्वत जैसी भुजाओं पर के चंदन लेप, मार्ग

१ तमिल-देश में, प्राचीनकाल में 'वल्लुव' नामक जातिवाले राजघोषणा का ढिंढोरा पीटने का कार्य करते थे। —अनु०

म स्थान स्थान पर गिर रहे थे, जिसम उस सेना समुद्र का भाग कोमल पयक क सदृश शोभित हो रहा था।

चाशनी से भी अधिक मीठी बोलीवाली लाल अधरो म शोभित रमणियो के आँचल म छिपे हुए यम (अर्थात्, काल की तरह मरण पीडा उत्पन्न करनेवाले स्तन) मुक्ताओ से विभूषित होने से राका की चद्रिका फैलाते थे और प्रवाल रत्नहारो से विभूषित होने से प्रात कालिक बालातप फैलाते थे।

उस सेना के पुरुष सुरभित कुतलवाले थे, पर्वतो को लजानेवाले थ, सोने क आभूषणो से विभूषित थे तथा धनुष और खड्ग धारण किये थे। व अपनी लता जैसी कटिवाली प्रेयसियो के सग ऐसे चले, जैसे सुन्दर हथिनियो का अनुसरण करत हुए मत्तगज चलते हैं।

कुछ रमणियाँ पालकियो मे बैठकर जा रही थी। सुरभित, मनोहर तथा नव विकसित पुष्पो स भरे हुए मेघो का दृश्य उपस्थित करनेवाले केशो स विभूषित उन रमणियो के मुखमात्र (उन पालकियो मे स) दिखाई पडत थे, जिसस एसा लगता था मानो अनेक पूर्ण चन्द्र विमानो पर चढकर जा रहे हो।

प्रवहमाण मदजल की वर्षा थमती नही थी। उसस जो कीचड उत्पन्न हो जाता था, उसमे मुखपट्टधारी हाथी फँस जाते थे और पागल हो जाते थे वे (उस कीचड स) बाहर न निकल सकने के कारण घनी तरगोवाले समुद्र के समान शब्दायमान नथनोवाली अपनी सूडो को उठा उठाकर टटोलते थे, मानो दिग्गजो को खोज रह हो।

घोडो को पक्तियाँ किंकिणियो के कलरव तथा टापो के ताल के साथ फाँदती हुइ जा रही थी। देवो के समान ही उनके पैर धरती को छू नही रहे थे। उनकी चाल वार नारियो के मन के समान थी, जो (बाहर स अधिक प्रेम दिखाने पर भी) अतर स प्रेम रहित होती हैं। (भाव यह है कि जिस प्रकार वारनारियो का मन बाहर स कुछ और, भीतर से कुछ और होता है, उसी प्रकार घोडो के पैर पृथ्वी को छूते हुए भी न छूत से लगते थे।)

कुछ मानवती स्त्रियाँ (जो अपने पतियो स रूठी हुई थी) अपनी दृष्टि अपने पति पर नही डालती थी, वे नि श्वास भरती थी, उनकी भौहे तनी हुई थी, पल्लव सयुक्त पुष्प भी नही पहने थी। वे अपने पतियो के सग ऐसे चल रही थी, मानो उन (पतियो) के प्राण ही जा रहे हो।

झरने के समान मद धारा प्रवाहित करनेवाले गडस्थलयुक्त, अकुश का नाम सुनते ही कोपाग्नि उगलनेवाले निर्भीक हस्तिगण, पर्वतो को अपना प्रतिद्वन्द्वी समझकर, उनसे टकरा जाते थे। बड़े बडे वृक्षो को तोडकर नीचे गिरा देते थे और कभी उनको रगडते हुए निकल जात थे। वे ऐसे चलते थे, जैसे कोई नदी प्रवाह हो।

सभी दु ख मग्न प्राणियो के आलबन भूत, करुणार्द्र वे (दशरथ) अभी प्रस्थान के लिए उठे भी नही (क्योकि वे इसी प्रतीक्षा मे थे कि अयोध्या की सारी सेना पहले प्रस्थान कर जाये, तो उनके पीछे चले) कि उधर धरती म कोई खाली स्थान नही है, ऐसा भाव

उत्पन्न करती हुई, जो सेना अयोध्या से निकलकर मिथिला के मार्ग में चली, उसका अग्र भाग रत्नांकित प्राचीर से आवृत मिथिला नगर के पास जा पहुँचा (अर्थात्, वह सेना एक छोर अयोध्या से मिथिला तक के मार्ग में फैल गई)।

दर्शकों का मन मुग्ध करनेवाले जुते हुए रथ, भ्रमर कुल सदृश कुंतलवाली रमणियों के वदन समूह के कारण ऐसे लगते थे, मानो कमल पुष्पों से सुशोभित सरोवर ही चल रहे हों।

रथ में बैठी हुई एक सुन्दरी, अति प्रेम के कारण अपने रथ के साथ साथ डग भरते हुए आनेवाले युवक की ओर देखने लगी, तो उस सुन्दरी की आँखों में लगा हुआ (काला) अंजन, उस युवक के लिए मधुर अमृत बन गया।

बाल हरिण की जैसी दृष्टिवाली (अपनी प्रेयसी) से बिछुड़कर जानेवाले एक पुरुष ने पानी और कीचड़ से भरे 'मरुत' प्रदेश में हंसों तथा कोमल कमलों को देखा, तो (अपनी प्रेमिका की मन्दगति एवं पैरों का स्मरण करके) उसका मन अकेलेपन का अनुभव करके अत्यंत व्याकुल हो उठा।

उस सेना में शंख तथा भेरियाँ मेघ जैसी गरज रही थीं व उज्ज्वल श्वेतछत्रों तथा चामरों की बहुलता के कारण गंगानदी की समानता कर रही थीं। आह! इस सुन्दर पृथ्वी पर इतने कैसे राजचिह्न सर्वत्र दिखाई देते!

वहाँ की मिष्टभाषिणी तथा श्रेष्ठ देव रमणियों जैसी लावण्यवती स्त्रियाँ, प्राण छीन (हरने) वाले अतितीक्ष्णनेत्र नामक यम के योग्य शूलायुधों को युवकों के हृदयों पर फेंक रही थीं जिससे वह सेना ऐसी दीखती थी, मानो वह युद्ध क्षेत्र में ही हो।

(वीरों की) भुजाएँ परस्पर सटी हुई थीं, जैसे पत्थर के खंभे एक दूसरे के साथ खड़े हों। करवाल सटे हुए थे, जैसे गगन में बिजलियाँ सटी हुई हों। (उनके) पद सटे हुए थे, जैसे कमल सटे हुए हों। पदाति सेना सटी हुई थी, जैसे सिंहों की पंक्तियाँ सटी हुई हों।

(किसी रमणी की अँगिया में) कसे हुए स्तनों में गड़े हुए अपने नयनों को हटाने में असमर्थ, चमकता चेहरेवाला एक युवक अपने आगे के मार्ग पर दृष्टि नहीं रख पाता और अंधे की तरह बड़े बलिष्ठ हाथी से जाकर टकरा जाता है।

भौंरियावाले और फाँदकर दौड़नेवाले एक घोड़े के उछलने से उसपर आसीन कोई मयूरी जैसी छटावाली सुन्दरी अपना संतुलन खोकर नीचे गिरने लगी। इतने में एक उदारहृदय (युवक) ने लोहस्तंभ जैसी अपनी लंबी बाहों से उसे संभाल लिया और उस सुन्दरी को धरती पर उतारे बिना वैसे ही अपने अंक में भरकर जड़वत् खड़ा रह गया।

(अपने) युगल कमलों को दुखाती हुई चलनेवाली तथा (देखनेवालों के) मन को दुखानेवाली शर सदृश काले नयनों से युक्त रमणी को देखकर एक (युवक) कह उठा 'देखो, इस सुन्दरी के पीन और मनोहर उरोज रूपी मदजलस्रावी हाथी को बाँधने के लिए पर्याप्त विशाल स्थान (वक्ष) कहीं है क्या?'

अपने घुँघराले बालों पर बैठे हुए भ्रमरों को उडाकर, उन्हें गुञ्जरित करते हुए, मदजल बहानेवाले गज के समान एक युवक एक सुन्दरी के काले और नुकीले नयनों को देखता है और फिर अपने हाथ के भाले की ओर देखता है।[1]

तरंग समान काली और लम्बी घुँघराली अलकें, कमल समान छोटे पदों तथा करवाल समान काले नयनों से शोभित एक रमणी को देखकर कोई युवक पूछता है—परस्पर सटे हुए, आभरण भूषित स्तनों तथा कंकण भूषित दीर्घ बाहुओं से शोभायमान हे सुन्दरी, तुम अपनी कटि को कहाँ भूल आई?

एक तरुणी ऐसी है, जो अपने नयनों से ही —जो यम के जैसे ही (दर्शकों के) प्राण हरनेवाले थे—बातें करती है, लेकिन अपना मुँह खोलकर कोई बात नहीं कहती है। उससे एक युवक पूछता है- हे सुन्दरी, जब तुम किसी नदी की धारा में खडी (फँसी) रह जाओगी, तब तुम्हारे सुन्दर करों को पकडकर किनारे पर पहुँचानेवाला कौन होगा? (अर्थात् यदि तुम बात नहीं करोगी, तो तुम्हें बचाने की चेष्टा भी कौन करेगा?)

(उस सेना के) ऊँट, जो इतना भारी बोझ ढो रहे थे, जिसे उतारना भी कठिन था, स्वच्छ तथा मीठे पल्लवों को कभी नहीं खाते थे, किन्तु कडुवे (नीम आदि पेडों के) पत्ते ही खोजते हुए, मद्य पीने में निरत नरों के जैसे ही (लडखडाते हुए) चल रहे थे। उनके मुख उनके हृदय के जैसे ही सूखे थे।

लाल नेत्र और गाढे अंधकार जैसे शरीरवाले बबर (जाति के लोग) भारी बोझों को उठाये हुए ऐसे चल रहे थे, जैसे मत्तगज अपने कंधे पर अंकुश और अपने को बाँधने के लिए उपयुक्त बडे आलान भी उठाकर लिये जा रहे हों।

(एक) मत्तगज मस्त होकर अड गया और किसी हथिनी पर सूँड बढाने लगा। तब उस हथिनी पर बैठी हुई कुछ स्त्रियाँ भयभीत होकर अपनी आँखों को हथेलियों से मूँदने लगीं। किन्तु, उनकी विशाल आँखें उन हथेलियों में समा नहीं पाईं, तो वे बहुत खिन्न होकर रह गईं।

ऐसी हथिनियों के ऊपर, जिनकी पूँछ पृथ्वी को छूती है, बैठे हुए मेखला भूषित रमणियों के मध्य बौने भी जा रहे हैं, जैसे सद्योविकसित मनोहर पुष्प समूह के मध्य कछुओं पर बैठकर मेढक जा रहे हों।

एक अश्व, पुष्पलता सदृश एक सुन्दरी को अपनी पीठ पर लेकर अपने पैरों को झुका झुकाकर फाँद रहा है। बडे आलान से बँधा रहनेवाला एक हाथी उसके पीछे दौडता है, तो भी वह अश्व उसके काबू में नहीं आता। वह दृश्य ऐसा है, मानों वह अश्व यह सोचकर कि यह सुन्दरी इस धरती पर रहने योग्य नहीं है, किन्तु देवेंद्र के योग्य है, उसे उडाकर स्वर्ग की ओर ले जाना चाहता हो।

(कवि कहते हैं) मेरे पितृसमान श्रीराम ने शिव धनुष को तोडा, ज्योंही यह

1 यह संकेत है—वह युवक यह देखना चाहता है कि उसका भाला भी उस सुन्दरी के नयन जैसा पैना है या नहीं।

मधुर समाचार पुरुषों ने सुनाया, त्योंही अत्यंत आनंद में विभोर होकर वहाँ की नारियाँ (विवाह को देखने के लिए) ऐसे दौड़ीं कि अपने दीर्घ तथा मनोहर केशपाशों के खुल जाने पर भी उन्हें बाँधने की या मेखला की मणियों के टूटकर गिर जाने पर भी उन्हें उठाने की सुध नहीं रही।

मत्त हस्तियों तथा कामिनियों से शंकित रहनेवाले विप्रजन हाथों में छाता और कमंडल लिये हुए, (प्राणायाम के समय) नासिका पर लगे रहनेवाले अपने हाथ को (चलते समय भी) नीचे की ओर नहीं गिराकर उचक उचककर डग भरते हुए (अर्थात्, एड़ी को पृथ्वी पर न लगाकर सावधानी से अशुद्ध स्थानों से बचकर प्रयत्नपूर्वक डग रखते हुए) आगे आगे निकले जा रहे हैं।

सुरभित पुष्पवाली कुंतलों से सुशोभित कुछ नारियाँ अपने नयनों में (श्रीरामचन्द्र का) प्रतिबिंब देखकर समझती हैं कि स्वयं श्रीराम ही आ गये हैं और कहती हैं कि 'हमारा स्वागत करने के लिए तुम्हीं आ गये हो, आओ, हमारे रथ में बैठ जाओ', यों कहकर रथ की ओर अपना हाथ झुकाकर संकेत करती हैं।

शब्दायमान रथ, हाथी, घोड़े, छोटे बड़े नगाड़े—सर्वत्र भरे हुए हैं। उनके कोलाहल में एक का कहना दूसरा सुन नहीं पाता, अतः सब गूँगे के जैसे चल रहे हैं।

अत्यंत झीने, मकड़े के जाल जैसे वस्त्र पहने हुई, भ्रमर से गुंजरित पुष्पों से अलंकृत केशोंवाली रमणियों का समूह अपने पैरों की पायलों की झनझनाहट के कारण पक्षियों के कलरव से भरे तालाब की समानता करता है।

स्वच्छ तरंगों से शोभित समुद्र से अद्भुत लक्ष्मी की समता करनेवाली कुछ नारियाँ झीने वस्त्र से जब देखती हैं, तब उनकी आँखों को देखकर पुरुषों के नयन कोलाहल कर उठते हैं, मानों मत्तगजों के मद को देखकर मोद भरे भ्रमर कोलाहल भर रहे हों।[1]

(पुरुषों के) प्राणों को भेदकर चलनेवाली तीक्ष्ण नील नयनोंवाली नारियों के नूपुर 'उल्लै' (नामक) वाद्य के समान बज रहे हैं। उसके लिए सहायक वाद्य बनकर घोड़े हिनहिनाने लगते हैं, जैसे (आकाश में) उठनेवाले मेघ गर्जन कर रहे हों।

पृथ्वी देवी के हृदय को पुलकित करती हुई अपना मृदुपद रखनेवाली रमणियों के उज्ज्वल मुख को देखकर कुछ युवकों के नयन, यह समझकर आनंदित हो रहे हैं कि विकसित कमल पुष्पों में मोदमत्त भ्रमर विहरण कर रहे हैं, उन युवकों की भावना से मन्मथ भी आनंदित हो रहा है।

मन के लिए भी अगोचर (अतिसूक्ष्म) कटि, मनोहर श्रेष्ठ प्रवाल जैसे अधर तथा त्रिफल[2] रस जैसे मधुर वचनवाली तरुणियों के कसकर बाँधे हुए लाल नारियल जैसे कुचों से

१ पुरुषों के नयन एवं भ्रमरों में और मत्तगज एवं झीने वस्त्र पहने हुई नारियों में समानता दिखाई गई है।—अनु०

२ तमिल साहित्य में कटहल, आम और केले को त्रिफल कहते हैं। ये तीनों फल तमिल-देश में बहुत होते हैं।—अनु०

गिरा हुआ सुगंध लेप और (सेना के पैरों से उठी) धूल—दोनों मिलकर (आकाश में) भर गये।

बड़े बड़े चित्रमय रथों पर सवार हो उपर्युक्त प्रकार के असंख्य नर और नारियाँ, बड़ा शोर मचाते हुए अपने मार्ग में आगे बढ़ते जा रहे हैं।

लगाम लगे घोड़े, रथ तथा वीर, सर्वत्र दल बाँधकर तेजी के साथ चल रहे हैं, उससे अति शीघ्रता से ऊपर उठी हुई धूल सर्वत्र फैल गई है और बादलों के जलधारा बरसाने वाले सजल रन्ध्रों में भी जाकर भर गई है, तथा दिशाओं में स्थित गजों के मदजलप्रवाही रन्ध्रों में भी घुस गई है।

(उस सेना के वीरों ने) ढाल पकड़े हुए अपने बायें हाथ से (दाहिने हाथ में रहनेवाले) चमकते हुए करवाल को भी पकड़ रखा है, और रुचिर रत्नमय सोने के कड़ों से भूषित (अपने) दायें हाथ से, 'कटक' (नामक पदभूषण) से शोभित अपनी पत्नियों की चूड़ियों से अलंकृत कर पल्लव को पकड़कर स्वर्ण मुखपट्टों से विभूषित हाथियों के मदजल के कारण सिलौए (बने) रास्ते पर धीरे धीरे पैर रखते हुए जा रहे थे।

खेतों में, सरोवरों में तथा छोटे छोटे जलाशयों में बहुलता से खिले हुए कुमुद, उत्पल, रक्तकमल आदि (सुन्दरियों के) हाथ, चेहरे, मुख तथा नयन की छवि उपस्थित करते हैं, जिन्हें देखकर वे रमणियाँ अपने पतियों से प्रार्थना करती हैं कि ये पुष्प तोड़कर हमें ला दो।

पंक्तियों में बाँधे गये घोड़ों पर से कुछ सुन्दरियाँ पृथ्वी पर उतर गई। इतने में मत्तगज को निकट आते देखकर, डर गई। (उनके) सुगंधित केशभार शिथिल हो खिसक पड़े। श्रेष्ठ रत्नाभरण टूटकर गिर गये और मनोहर कटि वस्त्र भी ढीले पड़कर शरीर से खिसकने लगे, तो अपने पल्लव करों से अपने ढीले वस्त्रों को पकड़कर, मयूरों के समान लड़खड़ाती हुई, मार्ग से हट गई।

छत्र, हाथी, मयूर पंखों के बने पंखे और ध्वजाओं के समूह ने मिल जुलकर समस्त खाली स्थानों को आवृत कर लिया है और अंधकार उत्पन्न कर दिया है। हथियार, किरीट और आभूषण अपनी आभा से धूप फैला रहे हैं। अतः, उस सेना के मार्ग पर एक साथ ही रात्रि तथा दिन भी वर्तमान हो रहे हैं।

'पलाश पुष्प सदृश अधर, मुक्ता सदृश दाँत, तथा मंदहास से सुशोभित सुन्दरियों के रमणीय मुख (नामक) कमल पर के तीक्ष्ण खड्ग (नयन) भीड़ को चीरकर निकल जायेंगे, अतः तुमलोग मार्ग छोड़कर हट जाओ' इस प्रकार कहते हुए सूर्य समान उज्ज्वल शरीरवाले पुरुष मार्ग छोड़ देते हैं।

दुस्तर भीड़ के कारण मार्ग में, मुक्ताहार और रत्नहार टूटकर बिखरे हुए हैं। कलाप नामक सोलह लड़ियोंवाली मेखला से आवृत तथा सर्पफण सदृश जघनवाली रमणियाँ, (मार्ग पर बिखरे हुए मोतियों और रत्नों के पैरों में चुभने से) लड़खड़ाती हैं, तो उनके स्वर्णमय नूपुर भी रो उठते हैं, 'हमसे इस मार्ग पर चला नहीं जायगा'—यों कहकर वे मार्ग के मध्य में रुकी रह जाती हैं।

उत्तम वाद्य जब मेघ के जैसे घोर गर्जन कर उठते हैं, तब गाड़ियों में जुते हुए बड़े बड़े बैल भड़क उठते हैं, हंस पक्षियों के सदृश रमणियाँ इधर उधर भाग जाती हैं, बैल रस्सियों से बँधे हुए सामानों को इधर उधर बिखेरकर बंधन मुक्त हो जाते हैं, जैसे योगी संसार के बंधनों से मुक्त हो जाते हैं।

पर्वत जैसे हाथी कहीं कहीं जलाशयों को देखते ही उनमें उतर पड़ते थे, तब उनके महावत हवा के जैसे तेज चलनेवाले कमान के गोलों से उन्हें मारते थे, फिर भी वे हाथी उन चोटों की परवाह किये बिना (किसी रमणी के) कसे हुए स्तन समान कुंभों और दाँतों को बाहर किये हुए खड़े रह जाते थे, मानो क्षीरसागर में तालवृक्ष सदृश शुंडवाला ऐरावत खड़ा हो।

काली मिट्टी जैसे केशों, शूल तुल्य नेत्रों, अमृतवर्षी कुमुद तुल्य रक्ताधरों से विभूषित गायिकाओं के साथ, उत्कृष्ट वीणा वादन में चतुर 'बाण' (कहलानेवाले गायक), किन्नरों के समान, घोड़ों पर सवार होकर 'नैवल्ल' (नामक) राग का विशुद्ध आलाप करते हुए जा रहे थे, मानो श्रोताओं के कानों में मधु की वर्षा कर रहे हों।

महावत के अंकुश उठाते ही, निर्झर युक्त पर्वत समान हाथी बिगड़ उठता था और लोग तितर बितर हो जाते थे। मद भरे छोटी आँखोंवाले बाल हाथियों पर के भ्रमर, जिनके पंख फूले हुए थे, दूसरे हाथी पर जा बैठते थे और फिर किसी हथिनी के पीछे पीछे उड़कर उसपर बैठी हुई किसी रमणी की बिखरी अलकों से टकरा जाते थे।

चक्रवर्ती की प्रेयसियाँ रवाना हुईं, तो पूर्णचंद्र के दर्शन से उमड़ते हुए नील समुद्र के समान भेरियाँ बज उठीं। हाथी, रथ, नाट्यशील अश्व, रक्तरंजित शूल समान नयन युक्त नारियाँ और नर पंक्ति बाँधकर रमणीय ढंग से शीघ्रगति के साथ चलने लगे।

तालाबों में विकसित मनोहर कमल वन के मध्य शोभायमान किसी हंसिनी के समान केकयराज पुत्री, सहस्रों गणिकाओं के झुंड से घिरी हुई, अति सावधानी के साथ, रत्नों से अलंकृत शिविका में आसीन हो चली, तब मधु मधुर संगीत होने लगे, (उनके रूप को देखकर) देवलोक की सुन्दरियाँ भी लज्जित हो गईं।

अकारण ही अग्नि ज्वाला उगलनेवाली क्रोधी आँखोंवाले, वेत्रदंडधारी तथा (आपाद) लटकनेवाले अँगरखा पहने हुए कंचुकी, उन मधुरभाषिणी तथा अपूर्व मान्य विशिष्ट स्त्रियों के पद भाग की यथाक्रम रखवाली करते हुए जा रहे थे, जो किंकिणी भूषित घोड़ों पर या पैदल ही जा रही थीं।

रुचिर नूपुर पहने हुई, खच्चरों पर सवार, लाल रेखाओं से युक्त कमल सदृश विशाल नेत्रवाली दस सहस्र नारियों से घिरी हुई, युगल (लक्ष्मण और शत्रुघ्न) बच्चों को जन्म देनेवाली (सुमित्रा) देवी, नीलरत्न खचित शिविका में बैठकर ऐसी चली कि दर्शक समझने लगे कि जल भरे बादल पर चमकनेवाली विद्युल्लता ही जा रही है, उस समय वीणागान भी हो रहे थे।

अपने मनोहर करों में मयूर, हंस, छोटे शुक, सारिकाएँ, प्रतिमाएँ, सद्य आवरण से निकले हुए शंख समान चामर आदि वस्तुओं को लिये हुए असंख्य नारियाँ (सुमित्रा के)

पार्श्व म जा रही थी । उनको देखने स ऐसा लगता था कि सात समुद्रो से घिरी इस पृथ्वी पर अब अन्यत्र कही स्त्री ही नही रह गइ ह (अर्थात्, सब यहा आ एकत्र हो गइ ह ।)

महाभाग (रामचन्द्र) को जन्म देनेवाली (कोशल्या देवी) (एक रत्नमय) शिविका पर सवार होकर चली, तो ऐसा लगा, मानो उज्ज्वल श्वेत दत तथा सेमल के फूल जैसे अधरवाले (कोशल्या के) मुख को देखकर, धवल चन्द्रमा की भ्राति से असख्य नक्षत्र आ एकत्र हुए हो । निपुण गायक भ्रमर गुजार सदृश 'पाडि' (नामक) राग अलाप रहे थ और देवगण (कोशल्या को) नमस्कार कर रह थ ।

कुबडे, बौने, ठिगने तथा दासियाँ इनको ढोकर दूध जैसे सफेद घोडे हस पक्षियो के समान धरती पर चल रह थ । भ्रमर, मधुमक्खी आदि स भरे पुष्पो से अलकृत केशोवाली रमणियाँ उनके पार्श्वो म चल रही थी ।

कली जैसे स्तनो और अवर्णनीय लक्ष्मी स भी अधिक सौदर्य से विशिष्ट साठ सहस्र नारियाँ, प्रवाल, रत्न स्वर्ण, उज्ज्वल मरकत, मुक्ता तथा अन्य अनुपम अलकरणो से युक्त, चित्ररथ प्रतिमाओ के समान गाडियो म सवार हो (कोशल्या देवी को) घेरकर चली ।

पातिव्रत्य म श्रेष्ठ अरुन्धती के पति (वसिष्ठ) छत्र की छाया म मुक्ता खचित शिविका म बैठकर, हसवाहन ब्रह्मा के सदृश चले । कर्णो के द्वारा अमृत सदृश शास्त्रो को अघाकर पीये हुए तथा अपने हाथो स देवताओ को हवि देने का सामर्थ्य रखनेवाले दो सहस्र ब्राह्मण उन्हे घेरकर चल ।

युद्ध म समर्थ हाथी, घोडे, सुन्दर रथ, स्वर्णमय वीर वलयधारी पदाति, उन (वसिष्ठ) के आगे पीछे ऐसे जा रह थे, मानो महान् पर्वत को घेरकर समुद्र जा रहा हो । जयलक्ष्मी स सुशोभित वक्षवाले, देवसेना को भी बेधने म चतुर तीरन्दाज अतिरथी, दोनो वीर (भरत और शत्रुघ्न) वसिष्ठ के आगे पीछे इस प्रकार जा रह थ, जैसे विश्वामित्र के आगे और पीछे राम और लक्ष्मण जा रह हो ।

मुक्ता तथा मनोहर हीरे स खचित आभरण धारण किये हुए (दशरथ) चक्रवर्त्ती ने अपने नित्य कर्म पूरे किये । चक्रायुध धारण करनेवाले विष्णु के पद अपने शिर पर रखे । ब्राह्मणो को अनन्त रत्न, स्वर्ण, गायो की पक्तियाँ, भूमि आदि आदर के साथ दान कर एक अच्छे मुहूर्त्त म प्रस्थान किया ।

आठ सहस्र ब्राह्मण रत्न कलश हाथ म लिये हुए, अर्थगभीर वेद मत्रो का पाठ करते हुए, दुर्वा से मत्रपूत जल का प्रोक्षण करत हुए, आशीष दे रहे थे । मगल वचन कहने वाली, मधुर अरुण मुखवाली, भारी रत्न खचित मेखला धारण करनेवाली, वदीजन की परपरा म उत्पन्न, अनेक रमणियाँ प्रस्तुति गा रही थी ।

(उस समय) कुछ लोग कहते थे कि यह शख क्यो बज रहा है ? कुछ कहत थे कि कदाचित् राजा प्रस्थान कर चुके ह । या कहते हुए बडी भीड लगाकर राजा लोग आये । (उनम से) कुछ कहत कि चक्रवर्त्ती ने मेरा अवलोकन किया और कुछ कहत कि हाय ! मुझपर चक्रवर्त्ती का कटाक्ष नही पडा । कोइ कहता, हाय ! मेरा कुडल गिर पडा । कुछ

कहत, अब उस चक्रवत्ती क समीप पहुँचना दुष्कर हे। यो, चक्रवर्त्ती क चारो ओर राजा लोगो की भीड एकत्र हो गई।

स्वण कंकणधारिणी रमणियो को लकर स्वण किंकिणीधारी अश्व समूह (चक्रवर्त्ती के) चारो ओर ऐस जा रहा था, मानो कमल पुष्पो स भरा समुद्र हो। विजयी शूलधारी राजाओ क अरुणहस्त रूपी कमल मुकुलित हो (नमस्कार की मुद्रा म) खड थ। इनस घिरे हुए चक्रवर्त्ती, अपर सूय के सदृश रथ पर चढ़कर चले।

उस समय (दशरथ की सेना से) उठी हुई धूलि राशि न अतराल को भर दिया ओर गगन म जा लगी और फिर वहाँ से लौटकर सभी विशाल दिशाओ को यो आवृत कर लिया कि लोगो का एक दूसर को पहचानना भी कठिन हो गया। फिर, वह सगर पुत्रो स वैर सा करती हुई जाकर (उनक द्वारा खोद गये) तरगायित समुद्र को भी भरन लगी।

शखवाद्य, मधुर बॉसुरी, शृ ग वाद्य, ताल, काहल, मगल भेरी- इनस उत्पन्न ध्वनियो ने मघ गर्जन को भी दबा दिया। मोर पखो के झालर, छत्र आदि ने सूय की किरणो को वहाँ आने मे रोक दिया। चद्रमा वहाँ के श्वेतच्छत्रो को देखकर लज्जा से हट गया। यो, दशरथ देवताओ को भी चकित करनेवाले वैभव के साथ चले।

इन्द्र के समान दशरथ चक्रवर्त्ती जब जा रह थे, तब मत्रगान के शब्द दक्षिणावर्त्त शख[1] क शब्द, ब्राह्मणो के आशीवाद के शब्द, गर्जन करनेवाले नगाडो के शब्द, आलान स्तभ को तोड देनेवाले बलवान् हाथियो के शब्द, समय की माप रखनेवाले 'घटिक' (नामक लोगो) के वेला सूचक शब्द—सभी दिशाओ मे सवत्र गूज उठे।

जिस किसी भी दिशा मे दृष्टि जाती, वहाँ वीर वलयधारी नरेश अपने कमल जेसे हाथ जोडे चक्रवर्त्ती की दिशा म ही (इस विचार से) देखत हुए खडे रहते थे कि चक्रवर्त्ती का कटाक्ष उनपर पडे। एक दूसरे को धक्का देत हुए चलनेवाले अनेक हाथी, रथ, घोडे पदाति सैनिक—इनके कारण उठी हुई धूल गगन और धरती को भरती चली।

पदाति सैनिक, हाथी, रथ, अश्व इन चारो से खूब भरी हुई सेना यदि अपने स्थान से आगे वह भी जाना चाहे, तो उसके जाने के लिए मार्ग नही था, समुद्र जल रूपी वस्त्र से आवृत धरती भी (उस सेना के भार से) अपनी पीठ लचकाने लगी। अब कहो, इस चक्रवर्त्ती को (अपने धर्मपूर्ण शासन से) भूमि भार हरनेवाला कैसे कहा जाय?

व चक्रवर्त्ती इस प्रकार दो योजन दूर चलकर, स्वर्णमय (मेरु) पर्वत सदृश चद्र शैल की तराई म जाकर ठहरे। चतुरगिनी सेना भी वही ठहर गई। उस (सेना) म रहनेवाली रमणियो के केश मन्मथ के वाहन[2] बने हुए हाथी (अर्थात्, अधकार) क जैसे थ, तथा उनके दोनो स्तन, (क्रमश) मन्मथ के बाण बने हुए पुष्पो और मलयपर्वत पर क चदन के लेप से सुगन्धित हो उठे थे। (१—८२)

●

[1] शख प्राय वामावर्त्त होत हे, दक्षिणावर्त्त शख अधिक मगलप्रद माना जाता है।

[2] तमिल-साहित्य मे कही-कही अन्धकार को मन्मथ का वाहन कहा गया है।

अध्याय १४

चंद्रशैल पटल

(हाथियों पर बैठी सुन्दरियाँ अपने पतियों के सहारे नीचे उतर पड़ी) तब मुक्ताहार विभूषित, मेरु को भी अपने गुरुत्व से पराजित करनेवाले (अपने प्रियतम के) प्राणों का हरने के इच्छुक सारिका तुल्य मधुर बोलीवाली कुछ रमणियों ने, दृढ धनुर्धारी मन्मथ के आश्रयभूत अपने स्तनों को, अपने पतियों की भुजाओं के साथ (आलिंगन में) बाँध दिया, इधर ऊँचे और गगन चुम्बी वटवृक्ष को भी तोड़नेवाले, सरोवर को जाने के इच्छुक, दृढ धनुर्धारी मन्मथ समान वीरों को ले चलनेवाले कुछ हाथी[1] भी देवदारु तथा चन्दन के वृक्षों से बाँध दिये गये।

जो शत्रु सम्मुख होकर युद्ध करने से नहीं दबता, उसे कोई चतुर नरेश असावधानी रहित विवेक के साथ राजतन्त्र से उखाड़ देता है। उसी प्रकार (ऊँचे पेड़ से बँधे हुए) एक हाथी ने मेघ मंडल को अपनी शाखाओं से छूनेवाले सुन्दर वृक्ष के तने को, समूल उखाड़ दिया और चलने लगा।

कृष्ण (अपनी माता यशोदा द्वारा ऊखल से बाँध जाने पर) अपने पीछे ऊखल को भी लुढ़काते हुए, अति पुष्ट तनोंवाले युगल अर्जुनवृक्षों के मध्य से होकर निकल गये थे और दोनों वृक्षों को बीच से तोड़कर गिरा दिया था, उसी प्रकार एक हाथी अपनी (पिछली) टाँग से बँधे आलान स्तंभ को भी खींचता हुआ, वहाँ खड़े दो आम्रवृक्षों के मध्य से होकर निकल गया और एक साथ दोनों पेड़ों को गिराता हुआ चला गया।

(हाथी के मन में) वैर उत्पन्न कर देनेवाले कोप को दूर करने के लिए, मीठी बोली बोलकर निपुणता के साथ उसको वश में लानेवाला कोई महावत, किसी (राजा के) मंत्री जैसा था, और वह हाथी, विविध शास्त्रों के अनुकूल हित वचन धीरे धीरे कहने पर भी उसे न सुननेवाले किसी (उद्धत) राजा के जैसा था।

(कोई हाथी किसी जंगली हाथी की गंध पाकर क्रुद्ध हो उठता है और उसकी खोज में निकल पड़ता है।) अंकुश से आहत कोई मत्त गज, अपने शत्रु हाथी को न देखकर मेघ के जैसे गरजता हुआ, वनगज के मार्ग का अनुसरण करता हुआ वायुवेग से चल पड़ा (क्रोध के आवेश में वह अपने मार्ग में आये विविध प्राणियों को मारता हुआ चला), तो बाज, चील आदि पक्षी झुण्ड बाँधकर उसके पीछे पीछे उड़े। वह दृश्य ऐसा था, जैसे किसी नदी के मार्ग में दूसरी नदी की धारा बह चली हो।

बहुत से हाथियों की पंक्तियाँ जहाँ बँधी हुई थीं, उस स्थान में कहीं से (सप्तपर्णी वृक्षों की) मदजल की सी गंध आई, तो एक हाथी पागल हो उठा और अपने को दबाने वाले अंकुश को झटके से दूर हटाकर मदगंध की दिशा में दौड़ चला और पुष्पों से लदे (सप्तपर्णी) वृक्ष को उखाड़, अपने अगले दोनों पैरों से रौंदकर चूर चूर कर दिया।

[1] मूल में स्तन और हाथी दोनों के लिए एक ही विशेषण का प्रयोग किया गया है और श्लेष के आधार पर दो अलग-अलग अर्थ निकाले गये हैं।

असख्य गन, उनक मध्य सिंदूराकित सक्षीण ललाटवाली हथिनियाँ और हाथी क बच्चे झुण्ड बाँधकर खडे थ। वृक्षो से भरा हुआ वन अरण्य (हाथियो क) एक यूथ जैसा खडा था और वह चन्द्रशैल उस यूथ का पति जैसा खडा था।

विशद ज्ञानवाले उत्तम जन, नीच जनो की सगात करन पर, उन नीच जना क बुद्धि विकारजनक दुर्गुणो का दल त्त ह'—यह कथन ठीक ही ह, क्योकि (मान क चक्रवाले रथ) अपने स्वर्णमय चक्रा क माग म पडनवाल कालो पत्थरो को भी रगड रगडकर अपन (सुनहले) रग से युक्त कर दत थ।

जगली मयूर, (उस सेना की) सुन्दरियो के बिंब समान अरुण अधरो को देखकर यह समझत थ कि य वीरबहूटी का मुख म उठाये हुए ह। कदाचित् इसी भ्राति से रमणीय मेखलाधारिणी, हरिणनयनोवाली उन रमणियो क सुनहरा लावण्य को दखत हुए व घूम रह थ।

गातशील घोडो से उतरकर, हस गति स चलकर, घनी वृक्षो की छाया म जाकर ठहरनेवाली स्त्रियाँ, अपन शरीर पर क कलाप, (मालह लडियावाली) मखलाओ, कर्णाभरण तथा अन्य आभूषणो की चमक के कारण पुष्पित लताओ जैसी सुशोभित हो रही थी।

यात्रा करन से थकी हुई स्त्रियाँ स्फटिक प्रस्तरो पर लेटकर सो गइ, तो भ्रमरो क झुण्ड उनके कोमल चरणो तथा मुखो पर, उन्हे सघन दलवाला कमल समझकर मडरान लगे। (दूसरे) स्फटिक शिलाओ म उनक प्रतिबिंबो को दखकर सखियाँ इस भ्रम म पड गइ कि यही वास्तविक स्त्रियाँ तो नही ह।

(जिस प्रकार) विद्युत् स शोभित मेघ उस चन्द्रशैल स लग रहत ह, उसी प्रकार जब हथिनियाँ धरती से लगकर बैठ गई, तब लता समान नारियाँ उनपर स उतरी। शब्द करनवाले अपने नूपुरो के साथ वे अपन निवास गृहो (खेमो) म ऐस चली, मानो व लक्ष्मी हो जिसकी कटि की समानता डमरू भी नही कर सकता---अपना निवास कमल पुष्प छोडकर उन गृहो म जा रही हो।

पुष्टिवर्धक दाना खान स खूब पुष्ट, तुरुष्को क द्वारा कई नगरो स लाय गय, घोर शब्द करनेवाले अति सुन्दर और बलिष्ठ अश्व, भूमि देवी क हृदय को अलकृत करन वाले रत्नहार के समान, अश्व शालाओ म बाँध गये।

जहाँ तहाँ लबे परद लगाय गये, मानो जल की वीचियाँ खडी कर दी गइ हो। हाट सजाई गई, मानो समुद्रो को ही सँवारकर रख दिया गया हो। वृक्षो के मध्य हाथियो को बाँधा गया, मानो बादलो को ही लाकर खडा कर दिया गया था। घोडो को पक्तियो मे बाँधा गया, मानो पवनो को ही बाँध रखा गया हो।

नर्त्तनशील मयूर की जैसी गतिवाली और हरिण की आँखो क जैसी नयनवाली (रमणियाँ) तथा तीक्ष्ण शूलधारी योद्धा (अपना अपना स्थान न पहचान लन क कारण)

वीरबहूटी नाम का कीडा मयूर का भोजन होता ह।

भटक रहे थे (फिर) भरो के नाद और ध्वज तक सुनाई पडनेवाले शख के रव सुनकर तथा बजाओं को ... पूछकर कि दशरथ चक्रवर्ती का आवास कौन सा है, फिर वहाँ पहुँच गए।

(सेना के) पग से उठी हुई धूलि (रमणियों के) मनोहर और उज्ज्वल शरीर पर छा गई। युवक कुमार दूध के फाग के समान वस्त्रों से (अपनी प्रियतमाओं के शरीर पर से) धूलि पोंछने लगे, उससे वे तरुणियाँ ऐसी चमकीं, जैसे चित्रकार ने अपने घर के चित्रों को पोंछकर नया बना लिया हो।

हाथी पर सवार हो आनेवाले राजकुमार ऊँचे पर्वतों पर से (समतल) भूमि पर उतर आनेवाले सिंहों के जैसे ही नीचे उतरे तथा विशाल तालपत्र जैसे बने हुए चामरों सहित चलकर, अति सुन्दर ढग से बनाये गये नगर में प्रविष्ट हुए।

श्वेत वस्त्रों की बनी पताकाओं से युक्त उन आवासों में, मदहास और सुगंधि से भरी सुन्दरियाँ के वदन ऐसे लगते थे, जैसे मेघों से भरे आकाश में रहनेवाले चन्द्रमा के उज्ज्वल प्रतिबिंब चारों तरफ उठी हुई तरंगोंवाले समुद्र के धवल जल के भीतर से दिखाई दे रहे हों।

कोई मत्तगज धूल में लोट जाता और उठकर आकाश को छूता हुआ सा ऊँचा खडा हो जाता। फिर, अपने काले रंग को ढकनेवाली सफेद धूलि को शरीर के एक पार्श्व में से पोंछ देता, किंतु दूसरे पार्श्व में उस धूलि से लिप्त वह ऐसा चला आता, मानो शिवजी को अपने पार्श्व में लेकर विष्णु भगवान् ही आ रहे हों।

दुर्गुण व्यक्तियों के साथ (अविचार के कारण) मिलकर रहने पर भी चतुर सज्जन उनके स्वभाव को पहचानने पर जिस प्रकार उन्हें एक दम छोडकर अलग हो जाते हैं, उसी प्रकार वेगवान अश्व आते, सूक्ष्म धूलि पर लोट जाते और झट उठकर, उस धूलि को झाडकर, दूर हट जाते।

(भूमि, नारी और धन—इनकी कामना रूपी) तीन प्रकार के पाश को तोड कर, उत्तम गुणवान् योगी, अपने योग बल से, अपने स्वरूप को पहचानते हैं, इहलोक तथा परलोक के फल को पहचानते हैं तथा अपने लक्ष्य स्थान 'मोक्ष' के स्वरूप को भी पहचान कर उसकी ओर तेजी से बढते हुए सन्मार्ग में चलते हैं। उन योगियों के समान ही, घोडे भी, तीन गुणवाली रस्सियों के बंधन को तोडकर, अश्वपाल की दक्षता के कारण, अपने कार्य को पहचानते हुए अपने (लक्ष्य) स्थान को जानकर उसकी ओर दौड चलते थे, पर (अश्वारोही की) आज्ञा से डरकर वापस लौट आते थे।

जब कलकल करती हुई वीचियाँ इस प्रकार ऊँची उठती हैं कि उनसे छिटककर जल किनारे के झीलों में जा गिरता है, तब उनके साथ ऊपर फेंके गये पुष्ट मीन भी उछलकर चमक उठते हैं, उसी प्रकार जब आकाश में गिरते हुए कुहासे के जैसे (डेरों के) परदे हवा के झोंके खाकर उडते थे, तब परदों के भीतर गोटी खेलनेवाली स्त्रियों के काले नेत्र उन मीनों के समान ही चमक उठते थे।

स्वच्छ जलवाली नदियाँ, अपने प्रवाह के सूख जाने पर भी खोदने से थोडा थोडा

जलदान करती रहती है। वे उस दाता के समान है, जो (दान में सारी संपत्ति देकर निर्धन बनने के पश्चात् भी) याचकों को अपना बंधु समझकर, 'नाही' नहीं कहता है, किंतु अपने पास बची हुई संपत्ति में से ही कुछ दान देता ही रहता है।

वीर योद्धा, जिनके वक्ष पर रत्नखचित (स्वर्ण) हार ऐसे लगते थे, जैसे अग्नि के संग बिजली संचरण कर रही हो, जब अपने घने बांधे गये केशों को हिलाते हुए, मद्य सुवासित डेरों में प्रवेश करते थे, तब पर्वत की कंदराओं में प्रविष्ट दीप्तिवाले सिंहों के समान लगते थे।

शूल और वराह दंत के जैसे (तीक्ष्ण) दाँतोंवाले, रक्त कणों से भरे अपने माथे पर, अनुपम (अतिरक्त वर्ण) हिंगुलिक धारण किये हुए बड़े बड़े हाथी, (अपने शरीर पर बंधी) विविध घंटियों को ध्वनित करते हुए जब तरंग भरे प्रवाह को हिलोरने लगते थे, तब वे ऐसे लगते थे, जैसे मधु और कैटभ मनोहर नीलसमुद्र का आलोडन कर रहे हों।

काले काले मत्तगज, उन्हें ठीक ठीक मार्ग पर चलानेवाला (महावतों) के संकेतों को नहीं मानते थे और (अपने) दोनों ओर खड़े अपनी जातिवालों (हाथियों) के द्वारा बाहर निकलने के लिए प्रेरित किये जाने पर भी, वे परवाही के साथ, जलाशयों में ही पड़े रहते थे। वे (हाथी) वेश्याओं के मेखलाचित जघन तटों में हो मग्न उन (कामुक) जनों के जैसे थे, जो ठीक मार्ग पर चलनेवाले (गुरुजनों) के उपदेशों को नहीं मानते और समवयस्क साथियों के द्वारा (वेश्या गृहों में) बाहर निकलने को प्रेरित किये जाने पर भी उसकी परवाह नहीं करते।

श्रेष्ठ वस्त्रों से भूषित कटिवाली रमणियों के साथ, पुरुष, पाकशालाओं से जलती हुई अगरु की लकड़ियाँ ले आते थे और आग जलाकर धुआँ उठाते थे, जिससे वे सूर्य के आतप को भी मंद कर देते थे, इस कारण से उनके ठहरने का वह पुरातन स्थान, गर्जन न करने वाले मेघों से आवृत, विशाल समुद्र के जैसा ही था।

कंदरा युक्त पर्वतों में निवास करनेवाले विद्याधर (उस सेना के नर नारियों को) देखने के लिए आते और उनके सौंदर्य को देखकर यों आश्चर्य में पड़ जाते थे कि अपने साथी संगियों को भी भूल जाते थे। इस प्रकार, सुन्दर राजकुमारों और तरुणियों के जमघट से वह सेना ऐसी लगती थी, मानो अमरलोक ही भूल से धरती पर उतर आया हो।

तरुणियाँ अपने स्थान पर आने के पूर्व ही (मार्ग की थकावट के कारण) लौटे हुए पुरुषों से रूठ जाती थीं। वह मान उनके सौंदर्य को बढ़ा देता था। तब वे कभी तोतले से मधुर भाषण करने लगतीं, कभी अपने नूपुरों से मधुर नाद उत्पन्न करती हुई, धूप को भी लजानेवाली अपनी स्वर्णिम कांति को आगे आगे फैलाती हुई चलने लगतीं, मानो मयूरों का झुंड ही विहार कर रहा हो।

कुछ वीर पुरुष जब अपनी भुजाओं के जैसे ही उन्नत उस (चन्द्रशैल) पर्वत के परिसरों को निहारते हुए भयंकर सिंहों के समान घूमते थे, तब उनके उभय पदों के वीर वलय बज उठते थे, उनके पुष्पहारों पर के भ्रमर शब्द करते हुए उड़ जाते थे, उनके पार्श्व

म खड्ग चमक उठते थे और लाल रत्न जड़े हुए उनके अगले रह रहकर दीप्तिमान् हो उठते थे।

(धरती का चारों ओर से) घेरकर पड़े हुए समुद्र जैसे उज्ज्वल रत्न भरित स्वर्णिम (मेरु) पर्वत को पकड़ने के लिए आ पहुँचे हो, उसी प्रकार वह सेना उमड़कर आई और उस पर्वत प्रांत में ठहर गई। अब हम उस चन्द्रशैल के रूप का वर्णन करेंगे, जिसे राजागण, उनकी पत्नियाँ, राजकुमार और लता समान कुमारियाँ—सब मिलकर देखने लगे थे।

दीर्घ दंतवाले गज, अपनी तालवृक्ष सदृश सूँडों को बढ़ाकर, स्वर्गलोक में स्थित कांतिपूर्ण कल्पवृक्ष की ऊँची शाखाओं को, जिनपर अनेक भ्रमर संगीत गाते हुए नृत्य करते रहते थे, पत्तों सहित तोड़कर अपने प्राण समान हथिनियों को दे देते थे।

प्रवाल सम लाल मुँह, जिनसे राग विकसित होते थे, तथा शीतल कुवलय पुष्प समान नयनों से युक्त कुरिंजि प्रदेश (पार्वत्य प्रदेश) की सुन्दरियों को ऋतु परिवर्त्तन की सूचना देनेवाले भ्रमर 'वेंगै' (नामक) वृक्ष के पुष्पों में अघाकर गगन के नक्षत्रों पर यह सोचकर लपक पड़ते थे कि ये भी नवमधु देनेवाले 'सुरपुन्ना' के फूल हैं।

'नक्षत्र' नामक हथिनी सहित 'श्वेत चन्द्र' नामक हाथी अपनी दोनों कोटियों (धनुष की नोक) रूपी सुन्दर वक्र दंतों से मधु धाराएँ बहा देता था (अर्थात्, उस पर्वत के शहद के छत्तों में चन्द्र अपनी कोटियों को गड़ाकर उनसे मधु धाराओं को बहा देता था)। वे धाराएँ नालों के रूप में बह चलती थीं। खेती करनेवाले किसान उन धाराओं का मार्ग बदलकर उनमें आकाशगंगा के जल को बहा देते और उससे धान के अपने खेतों को सींचते थे।

उस पर्वत को लाँघ न सकने के कारण उसकी तलहटी में ही अटककर रह जानेवाले चन्द्रमा रूपी मुकुर में एक ओर से (धरती पर रहनेवाली) पर्वत की स्त्रियाँ अपने शृङ्गार को प्रतिबिंबित देखती थीं, तो दूसरी ओर से (स्वर्गलोक में रहनेवाली) अप्सराएँ अपना सौंदर्य देखती थीं।

वहाँ के पर्वतीय पुरुष, अपनी उन सुन्दरियों के ललाट के साथ चन्द्रमा की तुलना करके देखते थे जिन (रमणियों) के नेत्र उस शूलायुध के समान थे, जो हवा निकालनेवाली भाथियों की धधकती आग में तपाये बिना तथा धार पर विष और तेल चढ़ाये बिना भी प्राण हर लेनेवाले थे।

(वहाँ के झोपड़ों के) आँगन में भयंकर सिंह शावक सुन्दर हथिनियों के जाये हुए बच्चों के साथ खेलते रहते थे। वक्र बालचन्द्र भी उज्ज्वल ललाट युक्त पर्वत जाति की नारियों के बच्चों के साथ खेलता रहता था।

उस पर्वत के इन्द्रनील से भरे तटों पर तथा वहाँ के विद्याधरों के केश भूषित सुन्दर शिरों पर, क्रमशः अंजन पर्वततुल्य गजों को मारनेवाले कठोर सिंह के दृढ़ चरणों के (लाल) चिह्न तथा (विद्याधर) स्त्रियों के महावर लगे कमल चरणों के लगने से उत्पन्न आर्द्र चिह्न दिखाई दे रहे थे।

यहाँ की रमणियाँ इस प्रकार गाती थीं कि सुन्दर मीन जैसे उनके नयन कानों

को न छूकर स्थिर रह जाते थे। उनके दाँतों की चमक बाहर नहीं दिखाई देती थी। उनके नीचे केश बंधन से मुक्त होकर खिसक कर गिर पड़ते थे। उनसे भी... अपनी पुष्प कोमल हथेली और अपने स्वर को मधुर करके (वीणा के) तारों को मढ़ती हुई वे अमृत वर्षा सी करती थी। उनके उस संगीत को सुनकर किन्नर भी विस्मय विमुग्ध हो जाते थे।

मधु बहानेवाले पुष्प हारों से भूषित तथा कानों के साथ संबंध जोड़नेवाले करवाल तुल्य नयन से युक्त तरुणियाँ जब स्फटिक वेदिकाओं पर आसीन होती थीं, तब उन धवल शिलाओं से उत्पन्न जलधाराएँ उन तरुणियों के कुंकुम लेप में मिलकर ऐसी लगती थीं, मानो असंख्य रत्नों के बने चषकों में मदिरा भरा गया हो।

अपने पतियों के प्राणों को व्याकुल करती हुई अंजन युक्त अश्रु बहाती हुई, रूठ कर आँखें लाल करती हुई देवस्त्रियों ने अपने केशों में मंदार पुष्पमालाओं को निकालकर फेंक दिया था। वे अम्लान और मधु भरी मालाएँ उस पर्वत पर यत्र तत्र शोभायमान थीं।

आम्रपल्लव के रंगवाली पहाड़ी स्त्रियाँ मुकुलित क्रमुक पत्रों में पुष्पमालाएँ डालकर अपने केशों के साथ उनकी तुलना करके देखती थीं। आभरण भूषित देवांगनाएँ अपने अग्नि जैसे चमकते रत्न खचित 'कटक' (नामक आभूषणों) को उतारकर 'कोंदल' (नामक पौधे) के पुष्पों को पहना देती थीं और अपने करों के साथ उनकी तुलना करके देखती थीं।

तीर चढ़ाये हुए धनुष के जैसी स्पंदित भौंहों के साथ (वीणा) तंत्रों में एकस्वर होकर मधुर गान करनेवाली तथा मयूरों के साथ नाचनेवाली देवस्त्रियाँ (अपने प्रियतमों से) मान करती हुई अपने रत्नहारों को उतारकर फेंक देती थीं। (उस पर्वत पर के) वानर उन हारों को उठाकर पहन लेते थे और वानरियाँ उन्हें देख देखकर आनन्दित होती थीं।

ऊँचे बढ़े हुए चंदनवृक्षों से युक्त सानु प्रदेशों में स्थित गैरिक के लगने के कारण मनोहर दिखाई देनेवाली शोभा भरी हथिनियाँ महावर लगाये हुए सी दीखती थीं। (उस पर्वत पर के) उज्ज्वल पद्म रागों की लाल कांति (किरण) फैलने से वहाँ के आकाश पर सदा लाली छाई रहती थी।

पृथ्वी के अलंकरण के निमित्त किरण पूर्ण विशिष्ट मुक्ताओं को बिखेरती हुई, पार्वती के प्रियतम (शिवजी) के शिर पर जो गंगा उतरी थी, उसकी समानता करती हुई, अनन्त स्वर्ण को बहाती हुई, मोतियों के साथ आ गिरनेवाले निर्झरों की पंक्तियाँ (उस चंद्रशैल पर) ऐसी दृष्टिगत होती थीं, जैसे त्रिविक्रम के वक्ष पर उत्तरीय वस्त्र लहरा रहा हो।

'सुरपुन्नै' के पुष्पों के साथ लवंग पुष्पों को भी सम्मिलित करके पहननेवाले तथा मत्त भ्रमरों को उड़ाकर शुद्ध मधु का पान करनेवाले (वहाँ ठहरे हुए) उन लोगों ने अश्वमुखी देवताओं को देखा, जो किन्नर मिथुनों के संगीत सुनकर अपना प्रणय कलह त्याग देते थे।

उन लोगों ने देखा कि अत्यंत मुदित युवकों के सुन्दर वक्षों पर आघात करनेवाले स्तन युगल जैसे अनुपम 'कोंग' वृक्ष की कलियों के निकट ही, रमणियों की ही कटि के समान

के समान (पतली) शाखाएँ लचक रही है। उनमे भ्रमरियो और (उन लोगो क) केशो पर मडराने की प्रकृतिवाले चचरीक नव विवाह का सबध जोड रहे हैं।

(उस पर्वत पर के) जलाशय को स्फटिक मय स्थान समझकर, चूडामणि से सुशोभित, सुन्दर कमल तथा उज्ज्वल चद्र जैसे वदनवाली (रमणियाँ) शीघ्रता से वहाँ चली जाती हैं और अपने उत्तरीय तथा कटि वस्त्र को जल से भिगो लेती हैं। वह दृश्य देखकर वीर वलयधारी युवक ताली बाजकर हँस पडते थे।

(उन लोगो ने) अनेक पुष्प शय्याये दखी। (बिखरी हुई) पुष्पमालाएँ दखी। मनोहर बीरबहूटी जैसी पान की पीक पडी देखी। प्राणो से भी अधिक प्यारे पतियो के विरह मे मूच्छित विद्याधर स्त्रियो के लेटने से झुलसी हुई पल्लवो की सेजे भी देखी।

(उन्होने देखा कि) देवनारियाँ सुगन्ध भरे (पुष्पमय) झूलो पर झूल रही हे। उन दवस्त्रियो के नीलकमल जैसे नेत्र अत्यन्त चचल हो घूम रहे ह। उनके प्रवाल जैसे मुँह पर मद हास बिखर रह ह। उनके उभरे हुए पीन स्तनो पर अमूल्य रत्नहार डोल रहे हैं। मधुमत्त भ्रमर उनके केशो के मध्य शब्द करते हुए उड रहे है और उनके रत्न खचित कर्णाभरण डोल रहे हैं।

अपनी लज्जा को धन के लिए बेचनेवाली, स्वर्ण आभरण पहने हुई (वार) नारियाँ, जिस प्रकार किसी पुरुष की सारी सपत्ति अपहरण करने क पश्चात् उसे सारहीन समझकर तिरस्कृत कर दूर कर देती हैं, उसी प्रकार सुन्दरवदना नारियो के प्रवाल अधरो के द्वारा, विविध मद्यो का पान किये जाने के उपरान्त, लुढ़काये हुए मधु पात्रो को (उन लोगो ने) देखा।

रात्रि को दिन बनानेवाले प्रकाश से युक्त स्फटिक की शय्याओ पर, अति विशाल पुष्ट भुजाओवाले दवगण जब धनुष को परास्त करनेवाली भृकुटि युक्त अप्सराओ के साथ रति क्रीडा करते थे, तब उपेक्षा से दूर फेके गये कल्पक पुष्पहारो और अन्य आभरणो को (उन लोगो ने) यत्र तत्र पडे देखा।

उस सेना की रमणियाँ कभी हथेली क जैसे विकसित होनेवाले उत्पल की कली को देखकर उसे फनवाला सर्प समझ लेती और डर से अपनी शूल जैसी आँखो को बदकर लेती थी। (कभी) चिकने हीरे भरे पत्थरो म पुष्पो के प्रतिबिंबो को देखकर उन्हे वास्तविक पुष्प समझ लेती और अपने पतियो से उन पुष्पो (प्रतिबिंबो) को ला देने की प्रार्थना करती थी।

कभी वे स्त्रियाँ अशोकवृक्ष के मनोहर पल्लवो को अपने नखो से नोचकर छोटे छोटे टुकडे बना डालती और उन्हे अपने स्तन तटो पर चिपकाती। कभी वे मधु युक्त पुष्पो को चुनती, कभी कातिमय रत्न भरे उस पर्वत पर हसो के समान विशाल झरने मे गोत लगाती।

[यहाँ से आगे नौ पद्यो तक मूल मे यमक की अति सुन्दर छटा दिखाई गई है, अत अर्थ की अपेक्षा शब्द-गुफन पर कवि का अधिक ध्यान रहा है।]

का न छूकर स्थिर रह जाते थे। उनके दाँतों की चमक ... लगी थी। उनके नीचे केश बंधन से मुक्त होकर खिसक ... पड़ते थे। उन... मिलता था। अपनी पुष्प कोमल हथेली और अपने स्वर ... (वीणा के) तारों ... व अमृत वर्षा भी करती थीं। उनके उस संगीत को सुनकर ... भी विस्मय विमुग्ध हो जाते थे।

मधु बहानेवाले पुष्प हारों से भूषित तथा कानों के साथ ... कमल तुल्य नयन से युक्त तरुणियाँ जब स्फटिक वेदिकाओं पर आसीन होती थीं, तब ... शिलाओं से उत्पन्न जलधाराएँ उन तरुणियों के कुंकुम लेप से मिलकर ... लगती थीं, मानो असंख्य रत्नों के बने चषकों में मद्य भरा गया हो।

अपने पतियों के प्राणों को व्याकुल करती हुई, अंजन ... अश्रु बहाती हुई, रूठ कर आँखें लाल करती हुई देवस्त्रियों ने अपने केशों से मंदार पुष्पमालाओं को निकालकर फेंक दिया था। वे अम्लान और मधु भरी मालाएँ उस पर्वत पर यत्र तत्र शोभायमान थीं।

आम्रपल्लव के रंगवाली पहाड़ी स्त्रियाँ मुकुलित ... पत्रों में पुष्पमालाएँ डालकर अपने केशों के साथ उनकी तुलना करके देखती थीं। आभरण भूषित ... अपने अग्नि जैसे चमकते रत्न खचित 'कटक' (नामक आभूषणों) को उतारकर ... (नामक पौध) के पुष्पों को पहना देती थीं और अपने करों के साथ उनकी तुलना करके देखती थीं।

तीर चढ़ाये हुए धनुष के जैसी ... भौंहों के साथ (वीणा) तंत्री से ... होकर मधुर गान करनेवाली तथा मयूरों के साथ नाचनेवाली देवस्त्रियाँ (अपने प्रियतमों से) मान करती हुई अपने रत्नहारों को उतारकर फेंक देती थीं। (उस पर्वत पर के) वानर उन हारों को उठाकर पहन लेते थे और वानरियाँ उन्हें देखकर आनंदित होती थीं।

ऊँचे बढ़े हुए चंदनवृक्षों से युक्त सानु प्रदेशों में स्थित गैरिक के लगने के कारण मनोहर दिखाई देनेवाली लोभ भरी हथिनियाँ महावर लगाये हुए भी दीखती थीं। (उस पर्वत पर के) उज्ज्वल पद्म रागों की लाल कांति (किरण) फैलने से वहाँ के आकाश पर सदा लाली छाई रहती थी।

पृथ्वी के अलंकरण के निमित्त किरण पुंज विशिष्ट मुक्ताओं को ... , पार्वती के प्रियतम (शिवजी) के शिर पर जो गंगा उतरी थी, उसकी समानता करती ... अनन्त स्वर्ण को बहाती हुई, मोतियों के साथ आ गिरनेवाले निर्झरों की पंक्तियाँ (उस चंद्रशैल पर) ऐसी दृष्टिगत होती थीं, जैसे त्रिविक्रम के वक्ष पर उत्तरीय वस्त्र ... ।

'सुरपुन्ना' के पुष्पों के साथ लवंग पुष्पों को भी सम्मिलित करके ... तथा मत्त भ्रमरों को उड़ाकर शुद्ध मधु का पान करनेवाले (वहाँ ठहरे हुए) उन लोगों ने ... मुखी देवताओं को देखा, जो किन्नर मिथुनों के संगीत सुनकर अपना प्रणय कलह त्याग देते थे।

उन लोगों ने देखा कि अत्यंत मुदित युवकों के सुन्दर वक्षों पर आघात करनेवाले स्तन युगल जैसे अनुपम 'कोंगु' वृक्ष की कलियों के निकट ही, रमणियों की ही कटि के समान

उस पर्वत का मध्य भाग जो आम के कोमल पल्लव के समान चमकता था वह (वास्तव में) सोने का पत्र ही था। उसके (पर्वत के) दोनो पार्श्वों में हरिण हाथी, सर्प आदि वन्य तथा स्त्रियो के केशो जैसे बाँस पुन्नाग आदि के वृक्ष लगे थे।

अंधकार सदृश वराहो के शरीर पर (वहाँ रहनेवाली रमणियो के द्वारा उत्पादित) जो कुंकुम पंक लग जाता, उसे वे आम, चंदन आदि के पेडो पर रगडकर हटा देते थे। देवस्त्रियाँ जैसी मधुरभाषिणी उन रमणियो के कारण वह विशाल पर्वत प्रदेश स्वर्ग के ही सदृश था।

वहाँ (चारे की खोज में) बडे बडे सर्प संचरण करते थे, तो बडे बडे बाँस जड से उखडकर गिर पडते थे। वन्य मृगो के भागने से धूलि उडने लगती थी। वहाँ के झरने मुक्ताओ का साथ लेकर बडे शब्द करते हुए बह चलते थे।

प्रशस्त करवाल के जैसे कठोर सिंहो की समानता करनेवाले (पुरुषो) की सुन्दर भुजाओ पर, उज्ज्वल तथा लाल रेखायुक्त रमणियो के आभरणालंकृत स्तन लगने से तथा उन स्तनो पर के अगरु चंदन का लेप और मुक्ताहार लगने से (वे भुजाएँ) जिस प्रकार शोभित होती थी, उसी प्रकार उस पर्वत प्रदेश पर चन्दन, कुंकुम आदि के वृक्ष शोभायमान थे।

घने अरण्य से आवृत उस पर्वत पर रहनेवाला केले का वन वहाँ संचरण करती हुई देवनारियो की ऊरुओ के सदृश था वहाँ की (वन्य) स्त्रियाँ, किन्नरो की सी मधुरनाद युक्त वीणा का वादन करती थी।

मत्तगजो के मदजल का प्रवाह बडे वनस्पतियो को गिराता हुआ बह रहा था, जिसमे यत्र तत्र स्थिर पडे हुए वृक्ष दिखाई देते थे, दूसरी ओर पहाडी नदियो मे जल पीने के लिए पहाडी बकरे तथा अन्य मृग चलते हुए दिखाई पडते थे।

बाघो के निवासभूत पर्वत प्रदेशो मे बडे बडे 'पटह'[1] यह सूचना देते हुए बज रहे थे कि अब पर्वतवासी काले रंग की नारियो के द्वारा कंद मूल खोदकर निकालने का समय आ गया है।

बलिष्ठ गज जब उस पर्वत के जलाशय मे डुबकी लगाते थे, तब (तट पर के) शीतल वटवृक्ष और सरोवर की कमललताएँ विध्वस्त हो जाती थी, उग्र सिंह जहाँ टहलते रहते थे, ऐसे घने जंगलो से आवृत उस पर्वत पर देवबालाएँ आराम करती थी तो भ्रमर उनके केशो मे आनंद से बैठे रहते थे।

उस पर्वत के ऊपर मेघ पंक्तियाँ आकर ठहरती थी, निचले भाग मे पुष्प श्रेणियाँ भरी रहती थी। वह पर्वत ऐसा था, जैसे विष्णु अपने हृदय पर लक्ष्मी को धारण किये हुए विराजमान हो।

पुष्पो पर मँडराते हुए मधु का पान करनेवाले भ्रमरो के समान ही, तरुण और तरुणियाँ घुल मिलकर उस ऊँचे पर्वत के तट प्रदेशो मे क्रीडाएँ करते थे।

(वहाँ रहनेवाले नर नारी) उस पर्वत से उतरकर नीचे आने का विचार भी इस

१ पहाडी जाति के लोग कंद निकालने का मोसम आने पर चमडे के विविध बाजो को बजाने लगते थे।

उस पर्वत का मध्य भाग जो आम के कोमल पल्लव के समान चमकता था वह (वास्तव में) सोने का पत्र ही था। उसके (पर्वत के) दोनों पार्श्वों में हरिण, हाथी, सर्प आदि जन्तु तथा स्त्रियों के कंधों जैसे बाँस पुन्नाग आदि के वृक्ष होते थे।

अंधकार सदृश वराहों के शरीर पर (वहाँ रहनेवाली रमणियों के द्वारा उत्पादित) जो कुंकुम पंक लग जाता, उसे वे आम, चंदन आदि के पेड़ों पर रगड़कर हटा देते थे। देवस्त्रियों जैसी मधुरभाषिणी उन रमणियों के कारण वह विशाल पर्वत प्रदेश स्वर्ग के ही सदृश था।

वहाँ (चारे की खोज में) बड़े बड़े सर्प सञ्चरण करते थे, तो बड़े बड़े बाँस जड़ से उखड़कर गिर पड़ते थे। वन्य मृगों के भागने से धूलि उड़ने लगती थी। वहाँ के झरने मुक्ताओं को साथ लेकर बड़े शब्द करते हुए बह चलते थे।

प्रशस्त करवाल के जैसे कठोर सिंहों की समानता करनेवाले (पुरुषों) की सुन्दर भुजाओं पर, उज्ज्वल तथा लाल रेखायुक्त रमणियों के आभरणालंकृत स्तन लगने से तथा उन स्तनों पर के अगरु चंदन का लेप और मुक्ताहार लगने से (वे भुजाएँ) जिस प्रकार शोभित होती थीं उसी प्रकार उस पर्वत प्रदेश पर चंदन, कुंकुम आदि के वृक्ष शोभायमान थे।

घने अरण्य से आवृत उस पर्वत पर रहनेवाला केलों का वन वहाँ सञ्चरण करती हुई देवनारियों की ऊरुओं के सदृश था। वहाँ की (वन्य) स्त्रियाँ, किन्नरों की सी मधुरनाद युक्त वीणा का वादन करती थीं।

मत्तगजों के मदजल का प्रवाह बड़ वनस्पतियों को गिराता हुआ बह रहा था, जिसमें यत्र तत्र स्थिर पड़े हुए वृक्ष दिखाई देते थे, दूसरी ओर पहाड़ी नदियों में जल पीने के लिए पहाड़ी बकरे तथा अन्य मृग चलते हुए दिखाई पड़ते थे।

बाघों के निवासभूत पर्वत प्रदेशों में बड़े बड़े 'पटह'[1] यह सूचना देते हुए बज रहे थे कि अब पर्वतवासी काले रंग की नारियों के द्वारा कंद मूल खोदकर निकालने का समय आ गया है।

बलिष्ठ गज जब उस पर्वत के जलाशय में डुबकी लगाते थे, तब (तट पर के) शीतल वटवृक्ष और सरोवर की कमललताएँ विध्वस्त हो जाती थीं, उग्र सिंह जहाँ टहलते रहते थे, ऐसे घने जंगलों से आवृत उस पर्वत पर देवबालाएँ आराम करती थीं तो भ्रमर उनके केशों में आनंद से बैठे रहते थे।

उस पर्वत के ऊपर मेघपंक्तियाँ आकर ठहरती थीं निम्नतल भाग में पुष्प श्रेणियाँ भरी रहती थीं। वह पर्वत ऐसा था, जैसे विष्णु अपने हृदय पर लक्ष्मी को धारण किये हुए विराजमान हों।

पुष्पों पर मँडराते हुए मधु का पान करनेवाले भ्रमरों के समान हो, तरुण और तरुणियाँ घुल मिलकर उस ऊँचे पर्वत के तट प्रदेशों में क्रीडाएँ करते थे।

(वहाँ रहनेवाले नर नारी) उस पर्वत से उतरकर नीचे आने का विचार भी इस

---

[1] पहाड़ी जाति के लोग कंद निकालने का मौसम आने पर चमड़े के विविध बाजों को बजाने लगते थे।

लिए नहीं करते थे कि उस विचार मात्र मे उन्हे अत्यन्त पीडा होती थी। जिस प्रकार अपवर्ग लोक मे पहुँचे हुए मुक्तजन उस लोक के सुखानुभव के अतिरिक्त अन्य कोई विचार नही रखते, उसी प्रकार वे लोग उस पर्वत के ही वैभव मे लीन रहते थे।

मेघो का विश्राम स्थान बना हुआ वह पर्वत हाथी के सदृश था। गगन पर सचरण करता हुआ उष्ण किरणवाला सूर्य उस हाथी पर आक्रमण करनेवाले सिंह के सदृश था। नभ, जो सूर्यास्त के समय की लालिमा से भर गया था, सिंह के आघात से बहनेवाले रक्त के सदृश था।

बडी बडी शाखाओ से युक्त वर्णों के वृक्ष नभ लालिमा के प्रकाश मे ऐसे लगते थे मानो वे नये पल्लवो के भार से लद गये हो। अपने ऊपर सर्वत्र उस लालिमा के पडने से वह पर्वत रत्नो के पहाड जैसा लगता था।

नेत्रो को रमणीय दीखनेवाले दृश्यो तथा असख्य शिरो के कारण वह सुन्दर पर्वत मनोहर चन्दन रस मे लिप्त वक्षवाले श्यामल (विष्णु) भगवान के सदृश था।

प्राण एव शरीर के तुल्य परस्पर (प्रेम से भरे वे नर नारी) गजार भरते हुए मँडरानेवाले मधुपायी भ्रमर कुल के साथ, उस उन्नत पर्वत के प्रात मे आ ठहरे, जैसे वे हाथी और हथिनी, सिंह और सिंहिनी, या हरिण और हरिणी ही हो।

गगन मे सचरण करनेवाला, एकचक्रविशिष्ट रथवाला सूर्य रूपी सिंह, जो तीक्ष्ण ताप जनक दृष्टिवाला है, जिसके किरण रूपी नखर है, जिनमे भ्रमरो के फेंके हुए तीर भी (छिपकर) खो जाते है तथा जो क्रोध मे भ्रमरो का विनाश करनेवाला है—अब अस्ताचल मे प्रविष्ट हुआ। उसके अस्त होने पर घना अधकार, जो सिंह के डर से कही दूर छिपा हुआ था, हाथियो के झुण्ड के समान बाहर निकला और सर्वत्र फैल गया।

मदार पुष्प की सुगन्ध एव मधु भरी मालाओ से अलकृत चक्रवर्त्ती (दशरथ) की सेना वाहिनी रूपी गरजते हुए समुद्र मे सर्वत्र दीपमालाएँ जल उठी, मानो लाल कमल खिल उठे हो।

शीतलता युक्त रमणीय समुद्र की झाग भरी वीचियो मे से निकला हुआ उज्ज्वल चन्द्रमा, नक्षत्रो से घिरा हुआ गगन मे आकर चमकने लगा मानो रुचिर चन्द्रिका के सदृश (उज्ज्वल) बालुका पर, कातिमय मुक्ताओ के साथ धवल शख सचरण कर रहा हो।

मत्स्यो की दुर्गन्धि से पूर्ण समुद्र ने एक धवल चन्द्रमा को पा लिया था, जिसे देखकर, ईर्ष्यावश, उस सेना समुद्र ने भी देवनारी सदृश अपनी तरुणियो के मुख रूपी असख्य चन्द्रमाओ से अपने को प्रकाशित कर लिया।

जहाँ जहाँ नर्तकियाँ नर्तन कर रही थी, वहाँ वहाँ 'मार्जन' करने के कारण सुदर हुए मर्दल (वाद्यो) का नाद गायिकाओ का सगीत नाद, सगीत के आलाप के अनुकूल बजनेवाली तन्त्रियो का नाद, हाथो से ताल देने से उत्पन्न नाद, गाँठदार बाँसुरी का नाद—ये सभी नाद इस प्रकार उमड उठे कि स्वर्ग के निवासी भी आश्चर्य से चकित हो गये।

ठडक के लिए रत्नाभरणो को हटाकर अपनी सखियो से प्रकाशमान मुक्ताहारो को लेकर अपने वक्ष पर पहननेवाली तथा अगरु धूम से (पत्रभगो को) सुखानेवाली (वहाँ

की रमणियाँ) शीतल मधु भरी मल्लिका मालाओं को हटाकर सुगंध युक्त तथा घने फूलोंवाले करुमुहै (वृक्ष) के पुष्पहारों को पहनने लगीं।

(उस पर्वत में) नये नये (पकडकर) लाये गये हाथियों को बाँधनेवाले लोग जो गीत रचकर गाते थे उनका शब्द कहीं सुनाई पडता था, कहीं मद्य पीकर मत्त हुए पुरुष अपनी प्रेयसियों के साथ जो प्रलाप कर रहे थे, उसका शब्द था, कहीं वेश्याओं की मेखला का शब्द था और कहीं मदोन्मत्त गजों के बेसुध हो चिंघाडने का शब्द हो रहा था।

रसना के द्वारा अपेय, अमृत समान रतिशास्त्र के विषय का अनुभव करने, दुर्लभ अमृत जैसी रमणियों के हृदय में उत्पन्न मान को दूर करने, राग युक्त गीतों को श्रवण कर उनके भाव को नयनों के नृत्याभिनय में देखने आदि कार्यों में ही (उनलोगों की) वह रात्रि व्यतीत हुई। (१—७७)

●

अध्याय १५

पुष्प-चयन पटल

नक्षत्रों से पूर्ण रात्रि रूपी खड्ग दंतवाले हिरण्यकशिपु पर क्रोध करके, पुंजीभूत उष्ण किरण रूपी सहस्र करों को बाहर निकाले हुए, अपने उदयस्थान भूतपर्वत रूपी सोने के स्तम्भ से, उज्ज्वल सूर्य रूपी नरसिंह[1] निकले।

नित्य कर्मों को पूरा करने के उपरांत, (दशरथ) चक्रवर्ती ने जब प्रस्थान किया, तब सभी राजा लोगों ने खडे होकर नमस्कार किया। फिर, उनकी सेना वाहिनी चलकर उस शोण नदी के निकट पहुँची, जिसके तटों के ऊँचे टीलों पर लहलहाते वन थे, टीलों के नीचे तलैयों में 'कक्कुनीर' (नामक लताएँ) फैली हुई थीं और जिसके घाटों में कमललताएँ फैली हुई थीं।

उस (शोण नदी के) स्थान पर पहुँचकर सारी सेना विश्राम करने को ठहर गई, (उधर) सूर्य भी गगन मंडल के मध्य जा पहुँचा, राजा और राजकुमार अपनी अपनी स्त्रियों के साथ, स्वच्छ जलाशयों से शोभायमान शीतल तथा सुगंधित उद्यान में, भ्रमरों के विश्राम भूत कोमल पुष्पों का चयन तथा जलविहार करने के लिए गये।

(उस उद्यान में, उन सुन्दरियों को देखकर) मयूर वहाँ से कदाचित् यह सोचकर दूर हट गये कि (वे सुन्दरियाँ) भ्रू रूपी सुदृढ धनुष के द्वारा अरुण रेखाओं से युक्त काली आँखें रूपी बाण चलाकर कहीं उन्हें आहत न कर दें। वे तरुणियाँ जब मंजुल नूपुरों को बजाती हुई डग भरती थीं, तब हंस (पुष्पों के मध्य) छिप जाते और गानेवाले भ्रमर (उन पुष्पों से) गुंजन करते हुए बाहर उड जाते थे। ऐसा लगता था, मानो वे हंस (उन तरुणियों की पदगति से) लज्जित हो पलायन कर रहे हों।

---

१ इस पद्य में रात्रि को हिरण्यकशिपु और सूर्य को नरसिंह-रूप बतलाया गया है

की रमणियाँ) शीतल मधु भरी मल्लिका मालाओ को हटाकर सुगध युक्त तथा घने दलोवाले 'करुमुहै' (वृक्ष) के पुष्पहारो को पहनने लगी।

(उस पवत म) नये नये (पकडकर) लाये गये हाथियो को बाँधनेवाले लोग जो गीत रचकर गात थे, उनका शब्द कही सुनाई पडता था, कही मद्य पीकर मत्त हुए पुरुष अपनी प्रेयसियो के साथ जो प्रलाप कर रहे थे, उसका शब्द था, कही वेश्याओ की मेखला का शब्द था और कही मदोन्मत्त गजो के बेसुध हो चिघाडने का शब्द हो रहा था।

रसना के द्वारा अपेय, अमृत समान रतिशास्त्र के विषय का अनुभव करने, दुर्लभ अमृत जैसी रमणियो के हृदय म उत्पन्न मान को दूर करने, राग युक्त गीतो को श्रवण कर उनके भाव को नयनो के नृत्याभिनय मे देखने आदि कार्यों मे ही (उनलोगो की) वह रात्रि व्यतीत हुइ। (१–७७)

●

अध्याय १५

पुष्प-चयन पटल

नक्षत्रो से पूर्ण रात्रि रूपी खड्ग दतवाले हिरण्यकशिपु पर क्रोध करके, पुजीभूत उष्ण किरण रूपी सहस्र करो को बाहर निकाले हुए, अपने उदयस्थान भूतपवत रूपी सोने के स्तम्भ से, उज्ज्वल सूर्य रूपी नरसिह[1] निकले।

नित्य कर्मा को पूरा करने के उपरात, (दशरथ) चक्रवर्त्ती ने जब प्रस्थान किया, तब सभी राजा लोगो ने खडे हाकर नमस्कार किया। फिर, उनकी सेना वाहिनी चलकर उस शोण नदी के निकट पहुँची, जिसके तटो के ऊँचे टीलो पर लहलहाते वन थे, टीलो के नीचे तलैयो म 'ककुनीर' (नामक लताएँ) फैली हुई थी और जिसके घाटो म कमललताएँ फैली हुइ थी।

उस (शोण नदी के) स्थान पर पहुँचकर सारी सेना विश्राम करने को ठहर गई, (उधर) सूर्य भी गगन मडल के मध्य जा पहुँचा, राजा और राजकुमार अपनी अपनी स्त्रियो के साथ, स्वच्छ जलाशयो से शोभायमान शीतल तथा सुगधित उद्यान मे, भ्रमरो के विश्राम भूत कोमल पुष्पो का चयन तथा जलविहार करने के लिए गये।

(उस उद्यान म, उन सुन्दरियो को देखकर) मयूर वहाँ से कदाचित् यह सोचकर दूर हट गये कि (व सुन्दरियाँ) भ्रू रूपी सुदृढ धनुष के द्वारा अरुण रेखाओ से युक्त काली आँखे रूपी बाण चलाकर कही उन्हे आहत न कर द। वे तरुणिया जब मजुल नूपुरो को बजाती हुई डग भरती थी, तब हस (पुष्पो के मध्य) छिप जात और गानेवाले भ्रमर (उन पुष्पो से) गुजन करते हुए बाहर उड जाते थे। ऐसा लगता था, मानो वे हस (उन तरुणियो की पदगति से) लज्जित हो पलायन कर रहे हो।

---

१ इस पद्य मे रात्रि को हिरण्यकशिपु और सूर्य को नरसिंह-रूप बतलाया गया है

व रमणियाँ अपनी सखिया के साथ मिलकर, अपने अग लचकाकर नाचने लगी तो पीले सोने के बने 'शुरुल' (नामक कणाभरण) तथा भव्य 'कुलें' (नामक कर्णाभरण) एक साथ चमक उठे और (उनकी पुष्प मालाओ म) बैठे हुए भ्रमर उटकर गुजार भरने लगे।

उन (नाचनेवाली स्त्रियो) को देखकर सुगधित पुष्प मालाओ से शोभत वक्ष वाले पुरुष उन लता सदृश नारियो को पुष्पित लताओं स प्रथक् न्हा पहचान पाते थ और भ्रात होकर खडे रह जाते थे।

रत्नो से खचित पीले स्वण क आभरणा स अलकृत विशाल जघन, सगीतमय भाषण, शीतल पुष्प मधु से युक्त केश—इनके साथ जब वे रमणियाँ झुण्ड बाँधकर समीप आती, तो उनकी आहट सुनकर ही कोयले अपना मुँह बद कर लेती। वह उनक डर के कारण नही, किंतु लज्जा के कारण ही था। वाग्मी व्यक्तियों के सामने कोन मुँह खोल सकता ह ?

वे सुन्दरियाँ अपने उन नेत्रो से, जो विष म अधिक कठोर होने पर भी अमृत जैसे लगते थे, प्रेम के साथ देखकर और कमल सदृश अपने करो से पकडकर ऊँचे बढ हुए फूल के पौधो को जब झुकान लगी, तब वे पौधे उनके नूपुर भूषित चरणो पर सुकुमार पुष्पो को बरसाते हुए झट झुक गये। यदि जड वृक्षो की यह दशा हो, ता अब कोन ऐसा (चेतन) व्यक्ति होगा, जो लतातुल्य सूक्ष्मकटिवाली (स्त्रियो) क निकट झुके विना रह सक ?

कमल पुष्प पर आसीन (लक्ष्मी) दवी जैसी उन (सुन्दरियो) क मनोहर कमल सदृश करो से छुए जाने पर सुरभित पुष्पालकृत केशवाले पुरुषो की पर्वत समान भुजाएँ भी, जिनके बल स भयकर सिह भी डर जात हैं, झुककर रह जाती ह, ता क्या यह भी कहने योग्य कोई विशेष बात हे कि विकसित सुमनवाले पौधे (उन सुन्दरियो के स्पश से) झुक जाते हैं ?

मधुर नाद करनेवाले भ्रमरो ने देखा कि पुष्पलताएँ, नदियो या तालाबो म उत्पन्न न होनेवाले (उन रमणियो के) चन्द्रमुख रूपी कमल पुष्पो का कुवलय पुष्पो के साथ खिलाये हुए खडी ह, (अर्थात् वे स्त्रियाँ लतातुल्य ह, उनके वदन कमल और नेत्र कुवलय ह)। आश्चर्य म डूबे वे भ्रमर (उन मुख, कमलो पर) ऐस मँडराने लग कि उडाने पर भी नही उडते थे। जो नवीनता के प्रेमी हात ह, व नई वस्तु को दखने पर क्या उन्हे छोड देंगे ?

कुछ लताएँ झुक झुक जाती थी, तो कुछ पुष्पित वृक्ष हाथ की पहुँच से भी ऊच होकर ऐसे खडे रहते थे, जैसे रूठे हुए हो और झुकना नही चाहत हो। वह दृश्य ऐसा था, जैसे दृढ पवत सदृश पुष्ट भुजाओवाले उज्ज्वल शरीरवाले, विकसित पुष्पहार धारण करनेवाले पुरुषो के मध्य मयूर सदृश कुछ (नारियाँ) खडी हो।

पुष्पो के चुन लिये जाने पर शोभाहीन होकर म्लान दिखाई पडनेवाली (शाखाओ को) देखकर चित्र की प्रतिमा (जैसी वे रमणियाँ) सोचती थी कि ये (शाखाएँ) हमारे पतियो की दृष्टि मे सौदर्यहीन लगेगी, इसलिए व अपने रत्नहार, मुक्तामाला, मेखला, कर्णाभरण आदि उतारकर उनको पहना देती थी और उन शीतल तथा सुकुमार शाखाओं को प्यार भरी दृष्टि से देखती रहती थी।

घन पुष्पों में बैठकर मधु का पान करके संचरण करते रहनेवाले भ्रमर, अब सुगंधित पुष्प मालाओं तथा कालियों को भी उतार देनेवाली (स्त्रियों) के गीत (गाली) कर्णों में ही रमने लगे और अपने प्रेम के पात्र पुष्पों पर नहीं जाते। बड़े लोग उत्तम स्थान में ही सभी भोग्य विषयों का अनुभव करते हैं।

अपने शरीर सौंदर्य के कारण पुष्पासीन (लक्ष्मी) देवी का भी शृंगार बनने वाली (एक सुन्दरी) धवल स्फटिक शिला में, कर में पुष्प लिये दिखाई पड़नेवाले अपने ही प्रतिबिंब को देखकर समझ बैठी कि यह कोई अन्य स्त्री है, जो मेरे पति की प्राण समान प्रेयसी है। वह (अपने) दीर्घ नेत्रों से अश्रु बहाती हुई हाथ में पुष्प लिये वैसी ही खड़ी रह गई।[१]

मेघों से घिरे हुए चन्द्र के समान मुखवाली, अनुपम पुष्पलता तुल्य (एक नारी) ने देखा कि एक राजा अपनी भुजा पर का पुष्पहार उतारकर मयूर तुल्य किसी (नारी) को पहना रहा है, तब वह कंचुक के खुल जाने पर कटि को लचकानेवाले (भारी) स्तनों के अग्रभाग पर, शूल जैसे नेत्रों से अश्रुवर्षा करती हुई[२] वहीं खड़ी रही।

एक प्रेमी राजा मयूर की सी गति से आनेवाली अपनी प्रेयसी के मन की परीक्षा करने की इच्छा से उस सुन्दर उद्यान के एक माधवीलता कुञ्ज में जा छिपा। अपने पति के साथ निरंतर रहनेवाली वह सुन्दरी, जो इसके पहले कभी उससे विलग न हुई थी, व्याकुल होकर भटकने लगी मानो प्राणों की खोज में शरीर चक्कर लगा रहा हो।

एक नारी, जो घृतसिक्त शूल धारण करनेवाले (अपने) पति से मान करके, इस प्रकार हो गई थी कि उसकी काजल अंकित काली आँखों में बहुत लाली उत्पन्न हो गई थी, अपने हाथ की पहुँच से ऊँचे रहनेवाले पुष्पों को देखकर एक कोयल से हाथ जोड़ कर विनती करने लगी कि इन पुष्पों को मेरे लिए तोड़ दो। (मान के कारण पति से न कहकर कोयल से कहती है)।

ऊँचे नारियल के पेड़ पर लगे हुए फल को देखकर एक युवक ने कहा —'आह! ये (फल) तरुणियों के स्तनों[३] के समान हैं'। (यह सुनकर) एक मुग्धा, जो उसकी पत्नी थी, 'ये नारियल किस नारी के स्तनों के जैसे हैं?' यह सोचती हुई क्रुद्ध हुई, सिसकियाँ लेने लगी और स्वेद सिक्त होकर ठंडी आहें भरने लगी।

युद्ध का संदेश पाते ही फूल उठनेवाली पर्वत जैसी बलिष्ठ तथा सुन्दर भुजाओं से युक्त मन्मथ समान अपने पति को पुष्प तोड़ते हुए देखकर, जलद सदृश केशवाली और

१ इसमें यह अर्थ ध्वनित होता है कि उस स्त्री का पति स्फटिक-शिला में उस नारी का प्रतिबिंब देखकर उसी को अपनी प्रेयसी समझ लेता है और उससे प्रेम करने लगता है। सपर उसकी प्रेयसी उस प्रतिबिंब को अन्य नारी समझकर रुष्ट होती है।

२ यह विरहिणी नायिका है, अतः अपने पति के स्मरण में अश्रु बहाती है।

३ 'तरुणियों के स्तन'—बहुवचन के प्रयोग से इस मुग्धा नायिका को सन्देह हुआ कि उसका पति अन्य स्त्रियों से प्रेम करता है।

कोकिल जैसी वचनवाली उस स्त्री ने निकट आकर उसकी आरती उतारी तो उस (पुरुष) ने पूछा—'कौन है?'[1] इसपर वह (नारी) अग्नि के जैसे निःश्वास भरने लगी।

एक राजा मधु भरे नवविकसित पुष्पों को (अपने हाथ में) लिये हुए खड़ा था। तब अनेक नारियों ने एक मन अनुत्पन्न सुगंधित कल्पवृक्ष जैसे, अपने करों को एक साथ (उन पुष्पों को लेने के लिए) आगे बढ़ाया, तब वह राजा उनके मध्य, याचकों को कुछ न देनेवाले और 'नाहीं' भी न कहनेवाले कठोर लोभी के समान ही खड़ा रहा। (एक को देने पर अन्य सुन्दरियाँ रूठ जायेंगी, इस आशंका में पड़ा हुआ वह खड़ा रहा।)

कज्जलांकित नयनोंवाली एक (रमणी) ने अपने सामने ही अपने प्राण समान प्रभु को किसी दूसरी (स्त्री) का नाम लेते हुए पाया तो उसने चुभनेवाले शूल जैसी (तीक्ष्ण) दृष्टि से उसकी ओर देखा और वास्तविक लज्जा के भार से दबी हुई सिर झुकाये रोती हुई, कोमल पुष्पों को हाथ में लेकर सूँघा, तो उसके निःश्वास के स्पर्श से (वे पुष्प) झुलस गये।

विजयशील रथवाला एक नरेश, जिसके सौंदर्य को देखकर उसकी कुलीन पत्नियों के मनोज्ञ कमलोपम वदन पर के काजल लगे नयन झुक जाते थे, इधर उधर घूमता हुआ उस महामत्त गज के समान लगता था, जिसके मदजल पर आसक्त हो भ्रमर मँडरा रहे हों।

अनिन्दनीय रूप युक्त एक नृपति ने सन्ध्याकालीन उज्ज्वल अर्धचन्द्र के जैसे ललाटवाली (एक पत्नी) को तथा वर्णनीय पातिव्रत्य युक्त (दूसरी पत्नी) को (अपने लाये गये पुष्पों में से) आधा आधा भाग बाँटकर दिया, तो वे दोनों उन सुकुमार पुष्पों को नीचे फेंककर, आँखें लाल करती हुई ऐसे लौट चलीं, जैसे कलाप युक्त मयूर जा रहे हों।[2]

एक नारी उस उद्यान में, सर्वत्र मधु बहानेवाले सुगन्धित पुष्पों की खोज में इस प्रकार घूमती रही कि सहज गन्ध से युक्त अपने खुले हुए केशों की भी उसे सुध नहीं रही, अपने वस्त्रों का भी उसे ध्यान नहीं रहा, अपने मुक्ताहारों के टूट जाने से दूर दूर तक बिखरते हुए मोतियों की भी परवाह नहीं रही। (लोग उसे देखकर सोचने लगे) यह अपने प्राणों को खोज रही है या और कोई वस्तु ढूँढ रही है?

'याल्' (वीणा) जैसी स्वरवाली तथा लक्ष्मी देवी जैसी (एक नारी) अतुलनीय बलशाली (अपने पति) नरेश के (प्रेम की भिक्षा में) झुके खड़े रहने पर भी स्वयं झुकी नहीं (अर्थात्, द्रवित नहीं हुई), फिर उस राजा के निराश होकर चले जाने के पश्चात् वह द्रवितमन हुई। अब अत्यन्त व्याकुल हो गम्भीर चतुर विचार करती हुई पहले उस राजा के स्थान पर अपने तोते को भेजा और (उसकी खोज करने के बहाने से) उसके पीछे पीछे स्वयं चल पड़ी।

सुन्दर पुष्प माला से विभूषित वक्ष पर मन्मथ के पाँच बाण शत सहस्र होकर

---

१ यह ध्वनि है कि पुरुष के प्रश्न करने पर वह नारी यह आशंका कर उठी कि उसकी अन्य प्रेमिकाएँ भी हैं, इसीलिए वह मेरा कर-स्पर्श पहचान नहीं सका है।

२ यह अर्थ ध्वनित है कि दोनों पत्नियाँ अपने-अपने मन में अबतक यह सोचती हुई थीं कि नृपति उसी को अधिक चाहते हैं, किन्तु अब पुष्प बाँट देने से वह विचार गलत प्रमाणित हुआ, जिससे दोनों क्रुद्ध हो गईं और झमककर चली गईं।

गिरने लगे जिसमे एक नृपति का मन विचलित हो उठा। वह कर्त्तव्यविमूढ हो माधवी लता से पूछने लगा कि क्या तुम मन्दार पुष्प नही दे सकती हो ? (अर्थात्, उन्मत्त सा प्रलाप करने लगा)। इस प्रकार, वह चन्दनाकित स्तनो एव पुष्पालकृत केशोवाली (अपनी प्रेमिका) के लिए विकल हो खडा रहा।

एक सुन्दरी ने (अपने पति म) कोई अपराध जान बूझकर ढूँढ निकाला, जिसस वह अशमनीय कोप मे भर गई और मान करने लगी। जब उसके पति न उसके मान को देख लिया, तब वह प्रकट आनन्दित हो उठी। वह वहाँ स दूर चली गइ ओर सुगधित पुष्पो को ढूँढ ढूँढकर उनकी माला बनाकर पहन लिया, किन्तु मान की आशका से (अपनी पति के वापस न आने के कारण) आईने म अपना सौन्दर्य देखकर दु खी होने लगी।

एक विरहिणी कहने लगी—मै ऐसा अलकार नही कर सकी, जिसको देखने क लिए मरा वह पति आ जाता, जिसके हाथ म यमराज को भोजन देनेवाला शूल रहता है। अब म इस शरीर के साथ जीवित नही रहना चाहती। इस उत्तम साज शृगार का क्या प्रयोजन ह ? यह कहती हुइ वह अपन आभरण इस प्रकार उतारने लगी, जैसे उन्हे गायिका को दे देना चाहती हो (अर्थात्, वह मरना चाहती है और अपने अमूल्य आभरणो को अपने प्रेमपात्र गायिका को द दना चाहती हो)।

(किसी स्त्री का पालित तोता खो गया था) एक सुन्दरी समीपस्थ पुष्प शाखा म छिप हुए अपने तोते को पकडने के लिए द्रवणशील पीत स्वर्ण के चषक को (तोते क लिए कुछ भोजन उसम रखकर) हाथ म लिय इस प्रकार बल खाती हुई चलने लगी कि कचुक बन्धन म न समाते हुए, उभडनेवाले स्तनो का भार वहन करने की शक्ति न होन से उसकी सूक्ष्म कटि लचक लचक जाती हो।

एक सुन्दरी न राजहसिनी को देखा, उसकी पदगात को देखा और उस बन्धु क समान ही अपने समीप आत हुए देखा। उसने सोचा कि यह मित्रता करने के लिए ही आ रही है, यह मेरी सखी हो सकती है। (फिर उसका सम्बोधन करक) कहा—तुम्हे देखने वाले हसेगे, (क्योकि तुम वस्त्रहीन हो) यह उचित नही, तुम यह वस्त्र पहन लो,— यह कहकर वह उस हसिनी को वस्त्र देने लगी।

चाशनी जैसी मधुर वचनवाली, झीन वस्त्र धारण किये रहनवाली एक नारी (झीन पट से) अपने विशाल जघन तट को दखकर यह सोचन लगी कि यह नाचत हुए सर्प के फन जैसा है और फिर वही फिरनवाले मयूर को दखकर डर गई, (क्योकि मयूर सप पर झपटेगा)। वह झट पुष्प शाखाओ के मध्य जा छिपी और (लज्जा के कारण) पुष्पित शाखा सदृश अपन हाथो से नेत्र बन्द किये शिथिल खडी रही।

अपना उपमान न रखनवाली एक सुन्दरी अपनी सखी से यह कहकर कि 'ह स्वर्ण तुल्य मधु समान लक्ष्मी सदृश सुन्दरी, मुझे पहचानो' —उस उद्यान म चयन करने योग्य पुष्पभार से लदे एक कुज के मध्य छिपी रही, (सखी जब उस पहचान न सकी[१] तब) 'अब

[१] वह सुन्दरी पुष्पित लताओ से इतना सादृश्य रखती थी कि उस लताकुज मे छिपा रहने पर उस पहचान न सकी।

तो तुम मुझे देख लोगी'—कहती हुइ उसक सुन्दर नीलकुवलय जैसे नयनों को अपने हाथो से बन्द करके हँस पडी।

एक उत्तम (नृपति) धनुष की डोरी का अगुस्ताने पर लगाये हुए दूसरे बलिष्ठ कर म एक रमणीय कोमल कमल पुष्प लिये हुए केश रूपी अन्धकार स घिरे नारियो के मुख रूपी कमल वन के मध्य अरुण किरण युक्त सूय क समान घूम रहा था।

खेतो के पुष्ट, स्वच्छ रस स भरे इक्षु रूपी लाल धनुष को हाथ म रखनेवाले मन्मथ भी जिनसे लज्जित होता था, ऐसे सुन्दर पुरुष अपनी मुग्धा पत्नियो के मीठे तथा प्रीतिजनक दिव्य गानो का ऐसे ही विवेचन कर रहे थे, जैस वे शास्त्रो का विवचन कर रहे हो।

धनुष पर चढाने योग्य यष्टि (तीर) हाथ म लिये हुए मन्मथ रूपी ग्वाला जब उद्यानो के भ्रमरो के नाद की मधुर वेणु बजाकर सकेत देने लगा, तब जैसे सध्याकाल म गायो के झुण्ड के मध्य बडे बडे वृषभ चलत ह, उसी प्रकार नीलकमल जैसे काजल लगे नत्रोवाली नारियो के घरे म राजा लोग चलन लगे।

मन म (तपस्या के लिए) उत्साह से भरे हुए मुनियो के द्वारा यह वचन प्रसिद्ध हुआ है कि 'यदि हम बचना चाहिए, तो मन्मथ के हाथ के धनुष से'—किन्तु (सच्ची बात यह है कि) पुष्प लताओ से पुष्प चुननेवाली (एक नारी की) भौह का एक कोना मात्र (उन मुनियो के धैर्य को हिला देने के लिए) पर्याप्त ह। (अर्थात्, मन्मथ के धनुष स भी अधिक कठोर स्त्रियो के भौह कमान हे।)

पुष्प गध से सुवासित केश और रमणीय ललाटवाली एक (सुन्दरी) कदब वृक्ष पर (पुष्प चुनने के लिए) चढे हुए (अपने) पति के मन मे जा चढी (अर्थात्, उसके मन म जाकर बैठ गई)। (उत्तरोत्तर) विकसित होनेवाले ज्ञान से जो महान हुए हैं, वे भी क्या पीन स्तनोवाली नारियो पर विजय पा सकते हे? (अर्थात्, उन्हे नही भूल सकते।)

पुष्प शाखा पर चढा हुआ एक (पुरुष), देवताओ के लिए भी जिसका रूप चित्रित करना सभव नही था, ऐसी रूपवती (अपनी पत्नी) के सौन्दय म ही डूबा रहा तथा उसी पर अपने नयन गडाये रहा और पुष्पो के बदले कलियो और पल्लवो को तोड तोडकर उसे देने लगा।

अनुपम मुद्गर जैसी भुजाओवाला एक पुरुष, भ्रमरो से अलकृत केशोवाली (अपनी पत्नी) का वदन देखकर, उसके बिब समान मुँह के स्पदन के द्वारा ही यह सकेत पाकर कि उस (नारी) के मन मे कोप बसा है, अपने मन मे व्याकुल हो उठा।

इस प्रकार, वे नर नारी विशुद्ध तथा शीतल छाया देनेवाले उद्यान के पुष्पपुज का चयन करत करते ऊब गये और फिर धवल वीचियो से भरे निमल जल म क्रीडा करने की कामना रखते हुए (जलक्रीडा क लिए) उद्यत हुए। (१–२६)

●

अध्याय १६

जलक्रीडा पटल

वे उत्तम नर और अप्सरा सदृश नारियाँ उस पुष्पोद्यान से निकलकर, शोभायमान पुष्पों से युक्त जलाशयों की ओर ऐसे चले आये, जैसे वन्य गज हथिनियों के साथ चलते हैं। तब निर्मल स्वर्ग के निवासी देवता भी उन्हें देखकर लज्जित हो गये और भ्रमर गुंजार भरते हुए वहाँ से उड चले।

उनके जलक्रीडा करने का वह दृश्य ऐसा था, जैसे पुराने काल में गंगा से अलंकृत जटावाले (शिव) के सदृश महान् तपस्वी (दुर्वासा) के शाप से देवेन्द्र का ऐश्वर्य अप्सराओं के साथ, उमडते हुए क्षीरसमुद्र में जा डूबा हो।[१]

काले रंग से युक्त कुवलय पुष्प उन नारियों के नेत्र पुष्पों के समान खिले थे, (तो) उन अलंकृत रूपवती (नारियों) के नयन (उन) विकसित कुवलय के जैसे ही शोभित थे। रक्त कमल (उन) रमणियों के वदनों के जैसे ही खिले थे (तो) उन रमणियों के वदन (उन) रक्त कमल पुष्पों जैसे ही सुशोभित थे।

(वे रमणियाँ कैसी थीं ?) कुछ रमणियाँ नालयुक्त कमल पर आसीन (लक्ष्मी देवी) के सदृश (अपने पतियों के) वक्षों का गाढालिंगन करनेवाली थीं, तो कुछ (अपने पतियों के) कंधों का सहारा लिये हुए, विजयलक्ष्मी के सदृश दृष्टिगत होती थीं, कुछ जल को यों फैलाकर उछालती थीं कि वह ताड के पत्ते जैसा फैल जाता था, तो कुछ रमणियाँ पाठी मछलियों के उछलने पर भीत हो (अपने) पुरुषों का आलिंगन कर लेती थीं।

भ्रमरों को आकृष्ट करनेवाली सुगंधि से भरे सुगंध चूर्ण को तथा सुगंधित तेल से युक्त कस्तूरी को वे एक दूसरे पर छिडकती थीं। कुछ एक दूसरे पर पुष्प मालाएँ फेंकती थीं और कुछ निर्मल जल को बिम्ब समान मुँह में भरकर अपने प्रेमियों पर फेंकती थीं और कुछ पुंडरीक समान करों को जोडकर उसमें पानी भरकर दूसरों पर फेंकती थीं।

बिजली समान कटि तथा चिकने दाम जैसे केशोंवाली (कुछ नारियाँ) (जल में डुबकी लगाकर ऊपर उठने पर) अपने वदन को ढँकनेवाले पुष्पों भरे केशों को हटाती हुई हंसों को अपने साथ क्रीडा करने के लिए बुलाती थीं। कुछ रमणियाँ ऐसी थीं, जो स्वर्ण समान स्तनों पर (जल के) पुष्पों का स्पर्श होने से तडप उठती थीं।

प्रवाल, बिंबफल तथा कमल की समानता करनेवाले संगीत के अभ्यस्त रमणीय मुँह तथा नीलकमल जैसे मनोहर नयनों से युक्त कटिहीन रमणियाँ (जल के) भीतर रहनेवाले 'कयल' मीनों को देखकर अपने पतियों से पूछती थीं कि 'क्या जलाधारों के भी नयन होते हैं ?'

भ्रमरों के आनन्द के कारण, मधुपूर्ण पुष्पों से शोभित घने केशोंवाली, अप्सरा समान एक तरुणी, अपने रूप को तालाब (के जल) में प्रतिबिंबित देखकर यह सोचने लगी

१ देखिए मिथिला-दृश्य पटल।

कि यह सुन्दर ललाटवाली (कोई अन्य नारी है, जो) मेरे हँसने पर हँसती है, अत मेरी वह सखी है, फिर आनन्द से अपने निर्दोष रतना का हार उतारकर उस प्रतिबिंब को देने लगी।

भ्रमरो से घिरे पुष्प हारो से शोभित रमणियाँ (अपने) प्रियतमो की वज्र सदृश दृढ भुजाओ का आलिंगन करने की इच्छा से जलाशय के तट की ओर चलने लगी, तो वे गगनोन्नत पर्वतो पर रहनेवाले सुकुमार मयूरो के समान लगती थी। उनके कर्णाभरणो की कांति छिटक रही थी और श्रेष्ठ मुक्ताओ का हार (उनके ऊपर) प्रकाशमान था।

न जाने, उस जलक्रीडा के समय (पति के द्वारा) क्या अपराध हुआ, जिससे लाल रेखाओ से युक्त 'कयल' मीन जैसी आँखोवाली एक सुन्दरी अपनी आँखे (और भी) लाल करती हुई, क्रोध से जाकर कमलवन के भीतर छिप रही और उसका पति यह नही पहचान सकने के कारण कि कौन पंकज है और कौन उसकी पत्नी का मुख है, संदेह ग्रस्त हो खडा रहा।

जब जब वे सुन्दरियाँ जल मे डुबकी लगाकर ऊपर उठती थी तब तब (उनके) पल्लव समान हाथो के स्वर्ण कंकण और शंख वलय भ्रमर के साथ नाल उठते थे। उनके भारी नितंबो पर से अनेक लडियो की मेखलाएँ खिसक जाती और उनके छोटे पैरो से उलझ जाती थी, तब वे रमणियाँ यह सोचकर कि पैरो से साँप ही लिपट गये है, डर से थरथरा उठती।

वहाँ वर्त्तुल अंगदो से भूषित विशाल भुजाओ से शोभायमान, पुष्पमालाधारी एक नृपति जल मे मग्न हो क्रीडा करनेवाली नारियो के दल से घिरा हुआ इस प्रकार खडा था, जिस प्रकार मंदरपर्वत (क्षीर सागर के) मथन के समय समुद्र से, अमृत के साथ उत्पन्न देवनारियो से घिरा हुआ खडा हो।

तोडि' (नामक कंकणो) से शोभित कमल समान लाल लाल कर, स्वच्छ हास युक्त अरुण मुँह तथा लता समान कटि सहित सुन्दरियो के मध्य एक राजा इस प्रकार खडा था, जिस प्रकार सुगंधित कमल भरे किनारोवाले वन सरोवर मे हथिनियो से घिरा हुआ कोई मत्तगज खडा हो।

अरण्य के मयूरो के गर्व को भी मिटानेवाले सौंदर्य से युक्त तथा निरन्तर बरसने वाले मेघ की समानता करनेवाले दीर्घ केशो से विभूषित रमणियो के मध्य एक राजा इस प्रकार खडा था, जिस प्रकार आकाशगंगा के मध्य अनेक स्थानो मे चमकते हुए नक्षत्रो से घिरा हुआ उज्ज्वल किरणोवाला चन्द्रमा खडा हो।

इक्षु का धनुष रखनेवाला बलिष्ठ भुजाशाली (मन्मथ) का (सौंदर्य) गुण के अतिरिक्त बाण भी देनेवाले दीर्घ नयनो से विभूषित एक मुग्धा, सखियो के द्वारा अलंकृत होकर, नारियो के मध्य इस प्रकार शोभायमान थी, जिस प्रकार विविध जलज पुष्पो से प्रकाशित सरोवर मे शतदल पुष्प (कमल) शोभित हो।

'ये दृढ तथा कठोर शूल है नही, ये तो चमकते हुए करवाल है'— यो कहने योग्य वदन पर संचरमाण (विशाल) नयनो से शोभायमान एक रमणी मयूर जैसी सखियो

से घिरी हुई इस प्रकार खडी थी, जिस प्रकार पल्लवों तथा पुष्पों के साथ बढ़नेवाली लताओं से घिरी हुई, सागर में उत्पन्न कोमल पुष्पवाली कल्पलता हो ।

रथ से लिये हुए (अग जैसे) जघनवाली, नारिकेल वृक्ष में लिये हुए (फल जैसे) स्तनोवाली, अन्यत्र कही प्राप्त न होनेवाले सौन्दर्य से युक्त एक सुन्दरी जल में मग्न होकर इस प्रकार ऊपर उठी कि कचुक में बँधे हुए उसके स्तन बाहर दिखाई देने लगे। तब उसका वदन निर्मल जल में दृश्यमान चन्द्र के प्रतिबिंब के सदृश शोभित हुआ ।

पर्वतो को परास्त करनेवाली भारी भुजाएँ, वस्त्र के अन्दर न समानेवाले विशाल जघन, घटो के समान स्तन—ये सब परस्पर धक्का देते हुए सघर्ष से करने लगे, जिससे (उस सरोवर का) जल तटो को पारकर फैल गया ।

लाल अधर श्वेत हो गये, नेत्र लाल हो गये, शरीर का अगराग गलित हो गया, (कटि में बँधा) वस्त्र खिसक गया। कुकुमराग से लिप्त भारी स्तनोवाली रमणियाँ उस जलाशय में इस प्रकार मग्न होने लगी कि उस समय वह जलाशय भी प्रेम के साथ आलिंगित होनेवाले उनके पति के समान दीखता था ।

'विशुद्ध ज्ञानवान् व्यक्ति के साथ सहवास करनेवाले (साधारण) नर भी ज्ञान प्राप्त करते है', यह कथन ठीक ही है , उसी प्रकार (उस जलाशय के) मीन भी मधु, कस्तूरी, शालवृक्ष का धुआँ, अगरु लकडी का धुआँ—इनकी गध से सुवासित हो उठे थे। (उपर्युक्त कथन के लिए) इससे बढ़कर अब और क्या उदाहरण आवश्यक है ?

बडे राजाओ की देह से प्राप्त चन्दन लेप, क्रीडा में निरत रमणियों से प्राप्त कुंकुम राग—इनसे भर जाने से वह मनोहर जलाशय ऐसा दिखाई पडता था, जैसे कोई नील मेघ आकाश की लालिमा से रँग गया हो।

शरीर पर के अगरु, चन्दन आदि से बने अगराग के धुल जाने से चाशनी जैसी मीठी बोली तथा बिम्ब जैसे लाल अधर से शोभित वे सुन्दरियाँ सान पर चढ़ाये गये रत्न के समान चमक उठी।

झपटनेवाले सिंह के समान एक वीर की स्वच्छ स्वर्णाभरण भूषित भुजाओ पर आर्द्रचन्दन से लिखा गया चित्र जल का प्रवाह लगने से घुल गया। उसे देखकर एक तन्वी के लाल रेखाओ से अकित काले नेत्र लाल हो उठे ।

काम वेदना में जली हुई तथा नितब भार से युक्त एक रमणी के देह ताप से तप्त होकर, मकरद पूर्ण, नवविकसित तथा मधुस्रावी केशरवाले पुष्पो से युक्त वह तरगायमान शीतल जलाशय भी उष्ण हो उठा ।

अनुपम पुष्पो से अलकृत भुजाओंवाले एक नरेश ने (अजलि में) जल उठाकर एक रमणी के तैलाक्त केशो पर चढ़ाया, जैसे रक्तपकज पर आसीन लक्ष्मी को श्रेष्ठगज अपने हाथ (सूँड) से जल स्नान करा रहा हो।

तरुण हस कमल पुष्पों पर बैठे थे। वे ऐसे लगते थे, मानो यह सोचकर कि ये कमल हमारी चचल गति को परास्त करनेवाली (सुन्दरियो) के मृदुल पदो की समानता कर रहे है, क्रोध प्रकट करते हुए उन पुष्पो को (अपने पैरो से) रौंद रहे हो ।

चन्दन के धुल जाने पर नग्न क्षतों के चिह्नों सहित दृष्टिगत होनेवाले (उन रमणियों के) स्तन, सुन्दर धागों में लिपटे स्वर्णकलश जैसे थे। उन कलशों को देखकर कितने पुरुषों के चित्त जल उठे—मैं क्या कहूँ ?

चक्रधारी एक नरेश ने अपने दीर्घ घने दलवाले कमल जैसे हस्त से (कुछ संकेत) प्रकट किया, उसको देखकर 'वीलि' (नामक लाल) फल के समान अधरवाली एक तन्वी ने अपनी सखी के कटाक्ष के द्वारा ही उसका उत्तर दिलाया।

लहरों के आगे ढकेले जाने और उथल पुथल होने से निर्मल जल में रक्त पंकज डूब डूब जाते थे, मानो वे कमल चितकबरे हरिण की समानता करनेवाली उन (सुन्दरियों) के वदन की सदृशता न कर सकने के कारण ही लज्जित हो अपने को (जल में) छिपा रहे हों।

उपर्युक्त ढंग से जलक्रीडा करने के पश्चात् वीर वलयधारी पुरुष तथा स्त्रियाँ उस जलाशय से निकलकर, उसको शोभाहीन बनाते हुए किनारे पर आ गए और योग्य वस्त्रों तथा आभरणों को पहना।

जलक्रीडा के बाद (उनके बाहर) निकल आने से, वह जलाशय उस आकाश के सदृश दीखने लगा, जिसमें से तैरते हुए चन्द्र और नक्षत्र अदृश्य हो गये हों, या अबतक उसमें जो कमल पुष्प (सुन्दरियों के वदन आदि) विकसित थे, वे अब उससे दूर हट गये हों।

हरिण सदृश नयनोंवाली (रमणियों) ने पुरुषों सहित जो जलक्रीडा की थी, उसको देखता हुआ उष्णकिरण (सूर्य) मीनों से पूर्ण समुद्र में समा गया, मानो वह स्वयं भी वैसा ही जलविहार करना चाहता हो।

अपनी निर्बलता के कारण हारकर भी फिर अपने शत्रु पर चढ़ आनेवाले राजा के जैसे ही, सर्वत्र रमणियों के वदनों से पराजित हुआ चन्द्रमा फिर प्रकट हुआ। (१—)

●

अध्याय १७

मद्यपान पटल

सर्वत्र शीतल ज्योत्स्ना इस प्रकार फैल गई, मानो वह श्वेत रंग के मद्य की बाढ़ हो, या संगीत ही साकार होकर जगत् में फैल गया हो, या (प्राणियों के) हृदय की कामना बहिर्गत हो गई हो।

सम्मिलित रहनेवाले लोगों (स्त्री पुरुषों) के लिए सुखदायक मद्य बनकर वियोग का दुःख भोगनेवालों के लिए प्राण पीडक विष बनकर तथा प्रणय कलह में क्रुद्ध व्यक्तियों के लिए सहायक दूत बनकर, वह समृद्ध ज्योत्स्ना मन्मथ की प्रार्थना से सर्वत्र फैलने लगी।

(उस चाँदनी में) सब नदियाँ गंगा नदी के समान दृष्टिगत होती थीं, सब समुद्र

विख्यात क्षीरसमुद्र से लगते थे, सब पर्वत अनंत भगवान (शिव) के पर्वत (कैलास) के समान दीखते थे, उस चाँदनी के प्रसार के बारे में हम और क्या कहें ?

सभी निर्मल दिशाएँ तथा उनमें रहनेवाले सब चेतन अचेतन पदार्थ उस चंद्रिका की कांति में श्वेत हो गये थे, मानो समुद्र में फिरी यह चलती वज्र में से करवाल युक्त मकर केतन (मन्मथ) के (जन्मदिवस के सूचक) श्वेतवस्त्र को धारण किये हुए शोभित हो रही हो।

सब रमणियाँ, उज्ज्वल तारका के सदृश मुक्ताओं (के बने चँदोवे) की छाया में, सचरमाण मेघों के विश्रामस्थान बने हुए उद्यान रूपी चंद्रनिकेतन में, सरोवरों के समान चमकते हुए स्फटिकों में प्रकाशमान काननों में और शोभायमान पुष्प कुंजों में जा पहुँची।

पुष्पों से सुरभित कुंतलवाली (रमणियाँ) पुष्पों की शय्याओं के (रति) समर में आनन्द पाने का विचार करती हुई मनोहर स्वर्ण चषकों में ढाले गये अमृत सदृश मद्य का पान करने लगी।

नक्षत्रों से शोभित गगन पर विहार करनेवाली (अप्सराएँ) तथा विद्याधर सुंदरियाँ भी जिनकी सुन्दरता की समता नहीं कर सकती, वैसी (सुन्दर) शरीरवाली तथा हरिणों को परास्त करनेवाले नयनों से युक्त वे (रमणियाँ) अपने मुख में मद्य को इस प्रकार पीने लगी, मानो भ्रमरों से घिरे पुष्प में मधु ढाला जा रहा हो।

वह चषक, जो बिखरे हुए दूध के जैसे चन्द्र किरणों से अंकित था, (किसी रमणी के) कर की मनोहर अरुण कांति के पड़ने से लाल दिखाई पड़ने लगा है। उस अनुपम सुन्दरी के मुख में गिरा हुआ मद्य अमृत बनकर चमक उठा (अर्थात्, उसके श्वेत दाँतों की छाया से मद्य भी श्वेत हो उठा), तब उसकी अंजन लगी आँखें भी लाल हो गई।

पुष्पमाला, 'पुनुहु' (एक सुगन्धित द्रव्य), शीतल अगरु का धूम, इनसे सुवासित कुंतलवाली (रमणियाँ), जिस श्वेत मद्य का पान करती थी, वह (मद्य) अग्निकुण्ड में डाले गये होमघृत के समान अंतर में स्थित कामाग्नि को भड़काकर बाहर प्रकट कर देता था।

कांतिपूर्ण ललाटवाली एक (सुन्दरी) स्वर्ण के बने शीतल सुगंधित मद्य भरे चषक में अपने भव्य प्रतिबिंब को देखकर (यह समझकर कि कोई अन्य नारी मद्यपान कर रही है) कह उठी—'हे सखी, मेरे साथ तुम भी आनन्द से मद्यपान करो।' विष समान दीर्घ नयन तथा सुवा समान मधुरवाणी युक्त (तरुणियों) के अज्ञान सदृश अज्ञान भी क्या कहीं हो सकता है ?

(यह टूट न जाये) ऐसा डर उत्पन्न करनेवाली सूक्ष्मकटि युक्त अप्सरा समान कोई (सुन्दरी) अलकभार, विषाक्त शूल सदृश काले नयन, रक्त मुख इनसे सुशोभित हँसता हुआ अपना वदन मद्य में (प्रतिबिंबित) देखकर (यह समझकर कि यह कोई अन्य नारी है) कह उठी कि 'हे पगली, तू ने यह क्या काम किया ? यहाँ (सुराही में) अधिक मात्रा में मद्य के रहते हुए भी तू व्यर्थ ही जूठन का पान करती है' और अपने दंत रूपी कुंद कलियों को प्रकट करती हुई हँस पड़ी।

अनुपम रूपवती, अन्यादृश (विचित्र) कठोरता रखनेवाले तथा हत्यारे शूल की समानता करनेवाले नयनों से युक्त (एक रमणी) रत्नमय मधुपात्र में श्वेत ज्योत्स्ना पड़ने

र उस मधु से भरा हुआ समझकर उठाकर पीने लगी, तो आसपास के सब लोग उसका उपहास करते हुए हँस पड़े वह (पुजारी) अपने मन में बहुत लज्जित हुई।

किंशुक पुष्प समान सुगन्धवाली एक (तरुणी) जिसका मृदु वचन ऐसा था कि उसे सुनकर लोग कहते थे कि 'वीणा तथा वेणु की नाद माधुरी हरनेवाली इसकी ही बोली है' नालसहित नीलकुवलय[१] का भीतर रखनेवाले सुगंधित मद्य भरे पात्र में, अपने करवाल तुल्य नयनों का प्रतिबिम्ब देखा और भ्रमर की भ्रांति से उस (प्रतिबिम्ब) को उठाने लगी।

बढ़िया सोने का कर्णभूषण पहनी हुई, एक (तरुणी) ने मद्य में दिखाई देनेवाले सुन्दर चन्द्र प्रतिबिम्ब को अपने नयनों को सतृप्ति देती हुई देखा और उसे समझाकर मधुर वचन कहने लगी—'(हे चन्द्र !) तू आकाश के राहु नामक सर्प से डरकर यहाँ (इस मद्य पात्र में) आ छिपा है मैंने तुझे अभय प्रदान किया, तू डर मत।

नदी धारा की भाँति एक ही स्थान पर स्थिर खड़ी रह गई है, ऐसा अनुमान उत्पन्न करनेवाली नाभि से शोभित एक (तरुणी) ने रक्त मधु की वर्षा करनेवाले पुष्पों के चँदोवे को चीरकर नीचे झरनेवाली घनी ज्योत्स्ना को देखा और (मद्यपान से) ज्ञानभ्रष्ट हो जाने के कारण अथवा स्त्री सहज अबोधता के कारण उसे मद्य समझकर पात्र में भरने का प्रयत्न करने लगी।

बिजली के समान लचकती हुई कटिवाली एक (सुन्दरी) की उज्ज्वल अमृत तुल्य मधुर वाणी बीच में ही (पूर्ण हुए बिना ही) स्खलित हो जाती थी। वह (नारी) अपने जघन पर की मेखला को हटाकर उसके स्थान में पुष्पहारों को पहनने लगी और स्वर्ण हार को केशों में धारण करने लगी। (ये सब मद्यपान से मत्त व्यक्ति के कार्य हैं।)

एक (रमणी) ने मद्य भरे रत्नखचित चषक में हास्ययुक्त अपने वदन (के प्रतिबिम्ब) को देखकर यह सोचा कि गगन पर का चन्द्र मधु की कामना से (उस पात्र में) उतर आया है, वह उस (प्रतिबिम्ब) से कहने लगी—'हृदय को आनन्द देनेवाले अपने पति के साथ जब मैं मान करूँगी, तब तुम यदि मुझे जलाओगे नहीं किंतु शीतल ही बने रहोगे, तो मैं यह मद्य तुमको पीने के लिए दूँगी।

तिल पुष्प सदृश सुन्दर नासिकावाली, आभूषण पहनी हुई एक रमणी नशे के कारण यह भी न जान सकी कि हाथ के काँप उठने से मद्य आसन पर गिर गया है और यह सोचकर कि अभी पात्र में मद्य है उसे हाथ से उठाकर अपने पद्मराग तुल्य अधर से लगा लिया।

झुण्डों में मँडराते हुए भ्रमर आकाश में ऐसे फैले हुए थे, जैसे किसी बड़े लोभी की सम्पत्ति की कामना करते हुए याचक आ जुटे हों। एक सुन्दरी, मधुस्रावी कमल समान अपने अरुण मुँह को खोलकर मद्य पीने से डरती थी (इसलिए कि कहीं भ्रमर मुँह में न घुस जायें), अतः चषक में कमल के खोखले नाल को रखकर उसके द्वारा मद्य (चूसकर) पीने लगी।

एक (रमणी), जिसकी आँखें चर्मकोष से तत्क्षण निकाले गये खड्ग के समान चमक उठती थीं और जिनको देखकर जलपक्षियों से भरे कमल तडाग में रहनेवाले मीन

१ कहा जाता है कि मद्य में सुगंध उत्पन्न करने के लिए कुवलय कमल आदि पुष्पों को डाला जाता था।

भी व्याकुल हो भाग खडे होत थे, जा मधु से पूर्ण पुष्पो स अलकृत कोमल कुतलवाली और मयूर तुल्य थी, इसलिए मद्यपान नही करती थी कि उसके हृदय म निवास करनेवाला प्रेमी मद्यसेवी नही था।

एक नारी क्रोध का अभिनय दिखानेवाले व्यक्ति क समान ही यम समान नेत्रा का लाल किये, ललाट पर टेढी भौहो को चढाये, चमकते दाँतो को कटकटाती हुई मनोहर पल्लवो को परास्त करनेवाले अपने करतलो से ताली बजाती थी।

एक रमणी, काँपते हुए अतिरक्त अधर बिंब को श्वेत ज्योत्स्ना पर स्राव करनेवाले अपने दाँतो से दबाये हुए, बहुत पैने और खून म लथपथ शूल जैसी आँखो से घूर रही थी। उसकी देह से जो स्वेद बह चला, वह (शरीर स) बाहर उमडते हुए मद्य क समान ही दीखता था।

किसी नारी के बिंबफल सदृश उभडे अधर स प्रकट होनेवाली लाली आँखो म जा चढी। वह सोचती कुछ थी और कहती कुछ। उसके अनुपम कमल तुल्य वदन पर भ्रू रूपी धनुष झुक गये। ललाट रूपी चन्द्र भी ओस बरसाने लगा।

(किसी के) सेमल के फूल जैसे अधर की लाली छूट रही थी, दाँतो स मधुर रस (लार) बह रहा था, स्तन कुचक का बधन और नीवी बधन ढीले पड रहे थ, लहराते हुए केशपाश छूटकर लटक रहे थे। उसके वदन से हास उत्पन्न हो रहा था। पति समागम और मद्यपान—दोनो एक ही जैसे (लक्षणवाले) होते ह।

'मुखर नूपुरवाले मन्मथ से मे जो पीडित हूँ, इस उस (मेरे प्रियतम) का बताओ,' यो कहकर अपनी सखी को प्रियतम क पास भेजती हुइ रत्न खचित मेखलावाली एक (रमणी) ने फिर प्रश्न किया—'हे सखी, क्या तुम भी मेरे मन क जैसे ही (प्रियतम क पास) रह जाओगी या (शीघ्र समाचार लेकर) लौट आओगी ?'

हरिण को भी मुग्ध करनेवाले नयनोवाली एक (रमणी) ने, किसी एक बलशाली नरेश के निकट, अपने अनुकूल रहनेवाली सभी सखियो को, एक क पीछे एक को भेज दिया। फिर स्वय ही अकेली उस (प्रियतम) के पास चल पडी।

सुगन्धित पुष्प शय्या की परतो पर, सीमा रहित प्रेम समुद्र म डूबी हुई, मधु भाषिणी एक (रमणी) ने अपने पति के सब नाम बतानेवाले तोते को बहुत आनदित होकर अक मे भर लिया।

उज्ज्वल ललाटवाली एक (रमणी) सुगधित स्थान म रहती हुई, अपने सगी तोते को अक मे लिये कह रही थी कि मेरे प्राण सम (पति) को तू आज नही ला सका, फिर तू मेरी क्या सहायता कर सकता है ? मेरे लिए तू क्रौंच पक्षी के समान (दु ख को बढाने वाला) हो गया है, और वह क्रुद्ध होकर रो पडी।

प्रियतम ने उसकी सौत का नाम लेकर उसका सबोधन किया, तो स्वर्ण कंकण धारिणी मयूर सदृश एक (रमणी), अकुर सम दाँतो को प्रकट करती हुई हँस पडी और 'कयल' मीन जैसे उसके नयनों से अश्रुधारा बह चली।

एक पुरुष ने अपने पूर्व अपराध के कारण मान किये बैठी हुई अपनी प्रेयसी का

ान दूर करने की इच्छा से उस (रमणी) की, नितम्बों पर फैली हुई मेखला को पकडा, तब र्णवलय भूषित उस (स्त्री) के नयनो म न समाकर मोती (जैसे ऑसू) झर पडे और टूट र बिखरे हुए मेखला के रत्नो के पास धरती पर जा गिरे ।

पुष्प भार स विकसित कल्पवल्ली (एक रमणी) अपने मन म विविध प्रकार चार करती हुई बैठी रही कि प्रियतम से साक्षात् होते ही उससे मान करूँ या प्राणो को लानेवाली विरह पीडा का कथन करती हुई उससे मिलन का आनन्द उठाऊँ अथवा उसके णा का वीणा पर गान करूँ ।

एक (रमणी) जो अपनी सखियो पर अपने (पति के साथ हुए) मान को चना के द्वारा नही प्रकट कर सकी, (किन्तु उन्हे मान की बात जताकर प्रियतम के साथ वि करा लेना चाहती थी) मकरवीणा पर, विकसित कमल समान अपने कर को लाल नाती हुई फेरने लगी और अपने मन की बाते सगीत के द्वारा प्रकट करने लगी ।

पुष्पित शाखा समान एक सुन्दरी (अपने पति के न आने से) मिलनसूचक वाएँ खीचने लगी, किन्तु उन रेखाओ के अपने अनुकूल फल न दिखाने प नि श्वास भरने गी।[1] अनग के अमोघ बाण से आहत होकर वह इस प्रकार पीडित हुई कि देखनेवाला सके प्राण है या नही' -यह सन्देह प्रकट करने लगे ।

कटक को शोभा देनेवाली ॲगुलियो से युक्त एक (रमणी) ने विरह म उद्विग्न कर अपने सुन्दर (प्रियतम) के पास दूत भेजा। जब वह (प्रियतम) आ पहुँचा, तब उस न्दरी के नेत्र लाल हो गये और उसने कपाट बन्द करके मार्ग रोक दिया। न जाने स सुन्दरी के मन मे क्या विचार था ?

एक तरुणी जो पुष्प शय्या पर (मान किये हुए सोइ सी पडी थी) यह चाहने गी कि अब मान छोड दे, किंतु उसकी इच्छा को, उसका पति (जो उसके मान मे व्याकुल मौन पडा था) नही समझ सका। तब उस सुन्दरी ने एक झूठी ॲगडाई लेकर अपने थ पैर फैलाती हुई यह प्रश्न किया कि कितनी घटिकाएँ बीत गई है ?

एक (सुन्दरी) उतावली हो उठी और महावर लगे पॉव से (अपने पति पर) घात किया, तो उस (पति) के रोमाच हो आया, मानो (आनन्द के) नीर से सिक्त रीर रूपी उद्यान म रोपे गये प्रेम बीज अकुरित हुए हो।

शत्रु नरेशो को सतानेवाले करवाल का धनी एक वीर, रमणी (अपनी पत्नी) स्तनो को अपनी प्रकृति के विरुद्ध कृश[2] हुए देखकर मन म उमग से भर गया और आनन्द कारण आपे से बाहर हो गया। उसका मुख चमक उठा और उसकी भुजाएँ फूल उठी।

एक अतिसुन्दर पुरुष ने देखा कि उसकी प्रेयसी पुष्प शय्या पर पडी है जो मन्मथ

---

[1] विरहिणी नायिका आख बन्द करके बालू पर वर्तुल रेखा खीचती है यदि उस रेखा के दोनो सिरे मिल जाये, तो यह मानती कि प्रियतम का मिलन होगा , नहीं मिले, तो उसे अपशकुन मान लेती है।

[2] यह ध्वनित होता है कि उसके वियोग के कारण ही उसकी प्रेयसी के स्तन कृश हो गये थ। अपने प्रति गाढ प्रेम की यह सूचना पाकर वह वीर अति हर्षित हुआ। —अनु०

के बाणा से सर्वत्र आवृत सी ह और शय्या पर बिछाये गये पल्लव झुलस गय हैं।[1] यह देख कर उसका चित्त विभ्रात हो गया।

एक युवती के स्तन, जो पाते हुए चदन लेप का भी तपाकर सुखा देनेवाली उष्णता से भरे थे, ऐसे लगते थे, मानो करवाल का व्यवसाय (युद्ध) करनवाले किसी कुमार को लक्ष्य करके, 'तुम देश की रक्षा करो' कहकर बडो ने उसके अभिषेकार्थ (स्वर्ण के) जल कलश रख दिये हो।

एक सुन्दरी ने, जो अपने प्राण समान नायक के पास स्वय अभिसार करना चाहती थी, मुखरित मजीर, विस्तृत मेखला तथा हीरे के बने हुए श्रेष्ठ आभरणो को उतार दिया और अपराधी चन्द्र की ओर झुलसानेवाली दृष्टि से देखा।[2]

उद्यान की कोयल जैसी एक सुन्दरी ने कोल्हू म पडे हुए मृदु गन्ने क समान (काम व्याधि से पीडित) एक पुरुष को पुष्प के हार से बाँध दिया था, उस पुरुष की वज्र सदृश भुजाएँ उस बधन को तोड नही सकी। इस पुष्पहार की भी शक्ति कैसी थी?

घने कुतलोवाली एक (सुन्दरी) ने अपनी विरह पीडा को जताने के लिए (चित्र म स्थित) मन्मथ को देखकर फिर एक (सखी) नारी की ओर देखा। उस (सखी) न भी उस सुन्दरी का मनोभाव समझकर, मधुस्रावी पुष्पहार धारण करनवाले (पुरुष) के घर की ओर देखा।[3]

एक शूलधारी (तथा शत्रुओ के प्रति) क्रोधी राजा के पास, स्वर्ण का कर्णभूषण पहने हुई मयूर सदृश एक नारी त्वरित गति से जाने लगी। उसे (इस प्रकार आने के लिए) निमत्रण देनवाला दूत कौन था? मन को द्रवित करनेवाला मद्य था? रात्रि काल था? अथवा मन्मथ ही था? विदित नही है।

पूर्ण प्रेम के सामन परास्त हो मान करनवाली अर्धचन्द्र सदृश ललाटवाली एक (सुन्दरी) ज्योही मेघ सदृश अपने नयनो से अश्रु बहान लगी, त्योही प्रियतम न आकर पूछा कि तुम्हे क्या हुआ है? तुरत ही वह हँस उठी और मान को छोड बैठी।

झुठलानवाली कटि युक्त (अति सूक्ष्म कटिवाली) एक सुन्दरी न मन से अपन प्रियतम को न हटाती हुई भी आलिगन बद्ध हाथो का हटा दिया। यह विचित्र कार्य पुरुष को हृदय म लगे शर के समान दु खदायक था।

एक कोमलागी अपने प्रेमपात्र सखी का हाथ अपने हाथ म लिये हुए यह कहना चाहती थी कि तुम (मेरे प्रियतम के पास) दूत बनकर (सन्देश दो) जाओ, किन्तु लज्जा की अधिकता के कारण दीर्घ समय तक मौन रहकर सिसकियाँ भरती खडी रही।

१ उसके विरह मे तपती हुई नायिका के शीतोपचार के लिए बिछाये गय पल्लवो का यह दशा थी। इससे नायिका का प्रेमाधिक्य व्यजित है।

२ यह ध्वनित है कि औरो से छिपकर अभिसार करने की इच्छा से शब्द करनेवाले आभरणो को दूर कर दिया और प्रकाश करनवाले चन्द्रमा को भी कातिहीन कर देना चाहा, जिससे सर्वत्र अधकार हो जाय।

३ नायिका का यह सकेत है कि वह मन्मथ के बाणों से पीडित है और सखी उसको बचावे। सखी का सकेत है कि वह उसके प्रियतम को ले आयेगी।

उत्तरोत्तर उमडते हुए प्रेमवाली एक (सुन्दरी) अपने प्राण समान प्रियतम के व्यापारों के बारे में, सुरभित पुष्पहार धारण करनेवाली एक अन्य स्त्री से कहना चाहती थी किन्तु लज्जा के कारण वैसा न करके कुछ असंबद्ध वचन कहकर रह गई।

प्रेमी और प्रेयसी परस्पर इस प्रकार गाढ आलिंगन में बंध गये। (यह दृश्य) ऐसा लगता था कि इनके मन एक ही प्रकृति के हैं, प्राण भी एक ही हैं परस्पर का प्रेम भी एक समान है, अब इनके शरीर भी एक होकर रह गये।

बाँस के जैसे कंधोंवाली एक (रमणी) का मन, उसके प्रभु के सामने आकर उपस्थित होते ही आगे बढ़कर उसके पास पहुँच गया, किन्तु वह अपने चन्द्र वदन को झुकाये खडी रही। उसका वैसा मुँह झुका होना, उस पुरुष के लिए नया था अतः उसके मन में कुछ आशंका उत्पन्न हुई।[1]

वंकिम ललाटवाली एक (तरुणी) मान करने का आनन्द उठाना चाहती थी, (किन्तु पहले अपने पति से रूठकर उसके चले जाने के पश्चात्) वियोग से व्याकुल हो उठी। (प्रियतम को लाने जाकर भी) उस प्रियतम को लिये बिना ही अकेली लौटी हुई सखी, मधुर मंदानिल तथा रजनी वेला के जैसे ही उसकी माता की समानता करने लगी। (अर्थात् वह सखी, नायिका को मंदानिल, रात्रि तथा माता के समान धिक्कारने लगी।)

(अपने प्रियतम पर) दृढ प्रेमवाली एक (बाला) ने अपने पति के निकट भेजी गई दूती के साथ ही अपनी प्रज्ञा को भी भेज दिया और टकटकी लगाये देखती खडी रही और (दूसरों की) कही बात को भी समझ नहीं सकी। वह इस प्रकार थी, मानो संध्या के समय किसी देवता का उसपर आवेश हो गया हो।

(एक रमणी) अपने प्रियतम को भूल नहीं पाती थी। उसके आगमन की प्रतीक्षा करती हुई, पुष्पित शाखा सदृश उस बाला के मन की यह दशा हुई, मानो जन्म के साथ साथ मृत्यु भी आ गई हो। (अर्थात्, उसके मन में आनन्द और दुःख दोनों के भाव आते जाते रहते थे।) एक क्षण के लिए वह अपने घर से बाहर निकल आती और दूसरे ही क्षण घर के भीतर चली जाती, जैसे बादल के बीच में बिजली चमक चमककर छिप जाती हो।

(एक तरुणी) वर्णन के लिए दुष्कर स्तनों पर मन्मथ के शरों के लगने से उत्पन्न तीक्ष्ण व्रणों पर वलय भूषित हस्त रखकर दबाती, रोती, हँसती और अपने दुःख बताती हुई किसी नारी के पास जाकर उससे दूती बनने की प्रार्थना करने लगती।

एक नारी, यह सोचकर कि जो लोग हृदय में उत्पन्न हुई पीडा (विरह दुःख) की तथा उसके अभावों को पहले से जानते हैं और उन्हें शब्दों से बताना आवश्यक नहीं है, शरीर से स्वेद बहाने लगी, मन में उद्विग्न हो उठी, म्लान हुई और (शय्या पर) लुढ़क गई फिर अपनी सखी की ओर निहारने लगी।

स्तनवती तरुणियों की अपेक्षा तीनगुणा अधिक आनन्दित हो, मन्मथ उन स्थानों

१ इसका तात्पर्य यह है—नायिका के मन में मान उत्पन्न हुआ है इस विचार से नायक आशंकित हुआ है।

म विचरन करन लगा। कदाचित् उसन भी, चार क जैसे उन नर नारियो क मो म घुसकर उनके पिये हुए मद्य का पान किया होगा।

मधु गंध से भरे विस्फान्त पुष्प हारो से अलंकृत शिखावाले जूडो ने रति कला चतुर तरुणियो क वस्त्रो को उतारकर फेंक दिया। फिर, भरे हुए प्रशान्त नीवी की मेखला को भी अनादर के साथ दूर उठाकर फेंक दिया। जब अप्रकटनीय रहस्य कृत्य होते है, तब पटहवाद्य[1] के जैसे वाचाल लोगो का साथ रखना उचित नही।

स्वर्ण की मनोहर मेखला तथा वस्त्र इन दोनो बाहरी वस्तुओ को (किसी स्त्री ने) हटा दिया, इसमे आश्चर्य की क्या बात है? क्योकि सुन्दर ललाटवाली उस (तरुणी) ने अपने अन्तरंग में स्थित लज्जा को भी दूर कर दिया था। अनिर्वचनीय वैराग्य से युक्त दृढचित्त (सन्यासी) के समान ही अपने (अहं) को दूर करने की प्रवृत्ति काम से भी होती है न?

अनुपम मन्मथ समान एक पुरुष तथा पुष्प पर आसीन लक्ष्मी के उपमान बनने योग्य एक तरुणी—दोनो अनंग समर में किसी से कोई हारनेवाले नहीं थे। जब उन दोनो के प्राण एक है और भाव (प्रज्ञा) भी एक है, तब कौन किससे जीते?

(प्राण) हरण करनेवाले, युद्ध में प्रयुक्त होनेवाले खड्ग समान नयनोवाली एक प्रगल्भा ने, कान्तिरत्न के समान अपने सुन्दर पति को, घने पुष्पहारों से भूषित वक्ष को, अपने कर कमलो से छूते हुए देखा और क्रुद्ध होकर कह उठी— मेरे प्रिय! मन में स्थित प्राण समान अपनी (एक दूसरी) प्रियतमा पर पदाघात होने की आशंका से कपट करते हुए अपनी छाती को ढक रहे हो।

दूध के स्वाद और प्रवाल के रंग से युक्त अधर, उभरे हुए उरोज, परस्पर समवृत्त कर्ण, शूल सदृश नेत्र—इनसे शोभायमान एक मृदुगी ने, समुद्र के जल प्रेम से भरे चित्त तथा मेरु सदृश दीर्घ बाहुवाले एक युवक को ऐसा प्रेम सुख दिया, मानो वह कोई अप्सरा ही हो।

किसी पर्वतोद्यान के मयूर की समानता करनेवाली एक (रमणी) अपने प्रियतम के (पहले कभी कहे हुए) झूठे वचनो का स्मरण कर मान करने लगी, किन्तु उसके इस मान के साथ प्रेम का जो युद्ध हुआ, उसमे प्रेम ही विजयी हुआ।

एक प्रमदा ने, जिसके नेत्र हत्या के ही स्वरूप थे और जिनकी दृष्टि नितंब प्रदेश के घेरे को भी भेदकर निकल पडती था, अपने प्रियतम का गाढ आलिंगन करके उसकी पीठ की ओर यह सोचती हुई देखा कि कदाचित् उसके स्तन, पर्वत को परास्त करनेवाले पति के दृढ वक्ष को भी चीरकर बाहर न निकल आये हो।

युवतियो के नव आनन्द को युवकजन अनुभव करने लगे, कुसुम रूप झड पडे, कुंतल बंध खिसक पडे, शंख वलय बज उठे, मेखलाएँ (या नीवी बंधन) ढीले पड गये, नूपुर बहुत अधिक कोलाहल मचाने लगे।

१ पटहवाद्य = एक प्रकार का ढोल।

प्रेम ने दुःखदायक मान को इस प्रकार हटा दिया, जिस प्रकार किरण युक्त सूर्य ओस को हटा देता है। तब आभरण भूषित मयूर की छटावाली एक (तरुणी) ने उतावलेपन के साथ निद्रा का बहाना करती हुई स्वप्न के व्याज से अपने पति का आलिंगन कर लिया।

वर्त्तुल, कान्तिपूर्ण मुखवाली एक मयूर (समान स्त्री) तथा उसके पुरुष—दोनों ने, परस्पर समीप आने पर एक दूसरे को आलिंगन पाश में बाँध लिया। फिर एकीभूत शरीरों को अलग न जानने के कारण उन्होंने एक दूसरे को छोड़ा नहीं। उधर रजनी वेला जो बीत गई, उसे भी पहचाना नहीं।

अपूर्व उमंग से भरे मत्तगज सदृश पुरुषों तथा काले कुंतलावाली रमणियों के उस समर में वह रात उसी प्रकार कट गई, जिस प्रकार परस्पर संघट्टमान पीन स्तन युग का भार न सहन कर कटि कट जाति है (क्षीण हो जाती है)।

पुण्य कर्म पूरा न करनेवाले व्यक्तियों की मध्यकाल में प्राप्त संपत्ति के समान ही चन्द्र अस्त हुआ। विशाल वीचियों से पूर्ण नील समुद्र में सूर्य उसी प्रकार प्रज्ज्वलित हो उदित हुआ, जिस प्रकार परम पुरुष (नारायण) के वक्ष पर प्रकाशमान (कौस्तुभ) रत्न हो।

(१–६७)

अध्याय १८

अग्रयान (अगवानी) पटल

महाराज दशरथ—जो अनुचित मार्गों का कभी अवलम्बन न करनेवाले, अपूर्व वेदों से प्रतिपादित नीति का कभी त्याग न करनेवाले, सच्चरित्र उत्कृष्ट ज्ञानी, उत्तम शासक, श्वेत छत्र से युक्त तथा राजाओं के अधिराज थे—अपनी उस (सेना) वाहिनी के साथ गंगा नदी के किनारे जा पहुँचे, जिसमें मुखपट्ट सहित हाथी के समान पर्वतों से निकलनेवाली, तथा वर्षाकालीन प्रवाह की जैसी बहनेवाली मद जल की नदियाँ जाकर गिरती रहती हैं।

जब बाण आदि आयुधों सहित उस सेना वाहिनी ने अधिक मात्रा में जल का पान किया, तब उस गंगा नदी का—जिसकी रेत इतनी स्वच्छ थी कि फटी हुई जीभवाले नागों का लोक (पाताल) भी दृष्टिगत होता था—जल बहुत कम हो गया। उस समय लवण समुद्र भी उस (गंगा के) स्वच्छ जल की प्यास से व्याकुल हो उठा। (अर्थात्, सेना के पीने पर गंगा इतनी कृश हो गई कि समुद्र तक उसकी धारा न पहुँच सकी। इसलिए समुद्र उसकी प्यास से व्याकुल हो गया।)

विस्तृत पृथ्वी के शासक (दशरथ) उस स्थान से चलकर विशाल खेतों से घिरी हुई और अत्यन्त जल की समृद्धि से युक्त मिथिला नामक नगरी के निकट जा पहुँचे। उस समय खूब फाँदनेवाले घोड़ों की सेना तथा शीतल करुणा से युक्त, स्तम्भ समान अतिदृढ भुजावाले (राजा) ने जो किया, उसका वर्णन आगे करेंगे।

'(दशरथ) महाराज आ पहुँचे ह'—यह समाचार पाकर मन म उमडती उमग के माथ, आलान स्तम्भा को तोड देनेवाले मत्तगज, रथ, लगाम लगे घोडे—इनके समुद्र से घिरे हुए (जनक) महाराज, देवेन्द्र के वैभववाले दशरथ की अगवानी करने क लिए उठ आये, जैसे चन्द्रमा सूय के निकट आ रहा हो ।

गगाजल से सिक्त (कोशल) देश क अधिप (दशरथ) की सनाएँ (मिथिला नगरी क पास) इस प्रकार आ पहुँची, जिम प्रकार अन्य सब समुद्र, अपने अपने शखो के घाष करत हुए (क्षीर सागर के पास) आ पहुँचे हो। उस समय, उत्तम कन्या (सीता) को (अपनी पुत्री क रूप म) पाये हुए (जनक) महाराज की समृद्ध नगरी (की प्रजा) इम प्रकार स्वागत के लिए आई, मानो पकज पर आसीन लक्ष्मी को जन्म देनेवाला क्षीर समुद्र (अन्य समुद्रो का स्वागत करने के लिए) आया हो।

मकर मीनो से भरे हुए मात सख्यावाले विशाल महासमुद्र (सातो समुद्र) यदि अनन्त महागजो, रथो, घाडा तथा पदातियो का रूप लकर ससार भर म उमडते हुए फैले, तो वे (आम के) पत्त जैसे शूल का धारण करनेवाल (दशरथ) की सेना का उपमान हा सकते ह।

झालरो से अलकृत श्वत छत्रो तथा मयूर पखा क घन गुच्छा स आकाश ढक गया, उससे सूर्य का प्रकाश छिप गया और अधरा छा गया। वह सना कमल पुष्पो क अरुण वण तथा श्वेत वर्ण से युक्त सरावर क ही समान दीखती थी।

कमलवासिनी लक्ष्मी, प्रख्यात तथा तद्राहीन शासक (दशरथ) की ध्वजा म स्थित हे या उनके अनुपम श्वत छत्र म, उनक परम्परा म स्थित हे या समुद्र के जैस विस्तृत उम सेना के मध्य म, उनके वक्ष पर स्थित ह या उनके ऊँचे किरीट म—वह कहाँ स्थित है, हम यह पहचान नही पा रहे है।

(उस सेना म होनेवाला) सप्तस्वरा का नाद, कचुकाबद्ध उभर स्तनोवाली नारियो क कशो म स्थित भ्रमरो क नाद क सदृश था। रथा का शब्द, श्वत तरगा से भर समुद्रो के गर्जन के समान था। भयकर हाथियो का गजन, वर्षाकालिक मेघा के गजन क समान था।

(उम सेना क चलन स उठी हुई) धूल इस प्रकार फैली कि चारो ओर फैले हुए समुद्र को पाटकर टीले बनाती हुई, ऊपर क सात लाका म भी भर गई। इसम आश्चय की क्या बात ह ? लोको को नापते ममय चक्रधारी क चरण स अ तरिक्ष म जो छेद हो गया था, उसी छेद क द्वारा धूल ऊपर क मात लोको म ही क्या, ब्रह्माड क पर भी तो पहुँच गई।

(उम सना क) दीघ छत्रा क सटे रहन स आकाश ढक गया ओर उनकी छाया स अधरा फैल गया, किन्तु उसे दूर करना भी सुलभ ही था। (क्योंकि) उन पृथ्वी वासियो क सुन्दर रत्नखचित स्वर्णाभरण बिजली की कान्ति बिखेरत थ, इन्द्र धनुष की कान्ति बिखेरते थे, सूर्यातप की कान्ति बिखेरते थे और चान्द्रका की कान्ति भी बिखेरत थे।

निष्कलक राजाधिराज (दशरथ) क आगमन पर उनका स्वागत करने क लिए बलशाली तथा चतुर धनुर्धर जनक महाराज आग बढे। उनके माग म जो धूल उडी,

वह लोगो से बिखेरे जानेवाले सुगन्ध चूर्ण, (आभरणो स गिरी हुइ) स्वण रज तथा पुष्पो के मकरद की ही धूल थी।

(राजा जनक के) माग म स्थान स्थान पर जो कीचड फैला था, वह वास्तव म सुगधित मधु (जो नर नारियो के धारण किय पुष्पो से वहा था), कस्तूरी (जो रमणियो क केशो से गिरी थी), सुवासित केसर पुष्प तथा अगरु काष्ठ को मिलाकर बनाया गया लप, कस्तूरी तथा अन्य सुगन्ध द्रव्यो स सयुक्त चन्दन आदि क मिलने से ही उत्पन्न हुआ था।

(राजा जनक के) उस मार्ग मे जो छाया पड रही थी, वह जयसूचक ध्वजाओ तथा ऊँचे वितानो से सयुक्त श्वेत छत्रो की ही छाया थी, जिसपर सुवासित मनोहर कुतलवती नारियो के रत्नखचित स्वर्णाभरणो की उज्ज्वल कान्ति भी छिटककर अपूव रमणीयता उत्पन्न कर रही थी।

सामने से आती हुई अनुपम बलशाली (दशरथ) की बडी सेना के साथ, अधिकाधिक बढत हुए आनन्द से युक्त (जनक) की सेना जा मिली। उस समय एसा बडा (आनन्द) घोष उठा, जैसा अनन्त गजन से भरे तरगित समुद्र म नदी के गिरने से उत्पन्न होता है।

आलान स्तम्भो को भी तोड देनेवाले हाथियो की सेनायुक्त जनक, उमग से प्रेरित होकर अवर्णनीय सदगुणशाली तथा प्रजा के लिए पिता समान उस चक्रवर्त्ती (दशरथ) के सम्मुख अपने उदार मन की समता करनवाले बडे रथ म आ पहुँचे।

(दशरथ) के निकट पहुँचते ही, जनक महराज अपने बडे रथ स उतर पडे ओर अपने विशाल तथा सुन्दर सेना को पीछे ही छोडकर, आगे बढे। (दशरथ ने) उन्हे रथ पर चढने का सकेत किया। उस सकेत को पाकर वे सत्वर उनके रथ पर आरूढ हो गये, तब उस चक्रवर्त्ती ने मन मे प्रमोद तथा मुख पर प्रफुल्लता के साथ (जनक का) आलिगन कर लिया।

व्याघ्र से स्वागत पाये हुए सिह क सदृश, सर्वोत्तम महाराज दशरथ ने (जनक का) आलिगन करके, उनक विशाल बन्धु वर्ग और उनके अन्य परिवार क लोगो का कुशल निष्कलक चित्त से यथाक्रम पूछा। फिर (जनक से) यह कहकर कि आप आगे बढे, उनके साथ ही (मिथिला म) आ पहुँचे।

इस प्रकार, उन दोनो ने बडे मनोहर ढग से (मिथिला नगर म) प्रवश किया, तब उस विशाल मिथिला नगर से उनके सम्मुख (स्वागताथ) स्वय अपने ही उपमान बने हुए, (रामचन्द्र) आये, जिन्होने अपनी भुजाओ को फुलाकर अग्नि तुल्य (रुद्र) के स्वर्ण धनुष को तोड डाला था।

देवो, मर्त्यो तथा नागो से वदित होत हुए, घनी बलिष्ठ अश्व सेना और अन्य योद्धाओ से घिरे हुए, पुरुषोत्तम (रामचन्द्र), अपने भाई को साथ लिये, उस असख्य सेनावाले (जनक) की नगरी से, हरे रत्नखचित स्वर्ण रथ पर आरूढ होकर सम्मुख आ पहुँचे।

जब दोनो योद्धा (राम और लक्ष्मण) अपने उत्तम पिता के सम्मुख आये, तब उनक साथ, श्रेष्ठ सेनानी जनक की आज्ञा स जो सेना आई थी, उसम कितने हाथी,

कितने रथ, कितने अश्व और कितनी हथिनियाँ थीं, इनकी गणना कौन कर सकता था? वास्तव में उनकी गणना करनेवाले तथा उस गणना के उपरान्त अंक जाननेवाले कौन हैं?

नीलोत्पल, कुवलय तथा सुगन्धित अतसी पुष्प की सदृशता रखनेवाले, चित्र की प्रतिमा को भी लजानेवाले अनुपम रूप विशिष्ट तथा स्त्रियों के द्वारा वंदित चरणवाले वे कुमार (राम) चक्रवर्ती के निकट या आ पहुँचे, जैसे शरीर से पूर्व निकला हुआ प्राण फिर उसमें आ मिले।

सेनाओं के द्वारा अपनी चरण वन्दना के उपरान्त, (श्रीराम ने) त्वरित गति से जाकर चक्रवर्ती (दशरथ) के मनोहर, स्वर्ण वलय भूषित चरणों की वन्दना की। उनके (वन्दना करके) उठते ही, चक्रवर्ती ने उन्हें आलिंगन में बाँध लिया। उस समय मनु की सी गरिमा भरे (चक्रवर्ती) की छाती के बीच, पर्वत सदृश त्रिलक्षण (शिव) धनुष को तोड़नेवाले दो बड़े पर्वत (अर्थात् राम की भुजाएँ) छिप गये।

दुर्निवार (शंबर आदि असुरों के द्वारा उत्पन्न) विपदाओं को भी दूर करने के कारण गगन तथा अष्ट दिशाओं में व्याप्त यशवाले राजाओं में श्रेष्ठ उस चक्रवर्ती ने फिर कनक वर्णवाले कनिष्ठ कुमार (लक्ष्मण) के अपनी चरण वंदना करते ही उन्हें उठाकर पुष्पमालाओं से अलंकृत अपनी छाती से लगा लिया।

घनी तथा दीर्घ जटावाले (शिव) के हाथ के धनुष को जिनकी विजयप्रद दीर्घ भुजाओं ने तोड़ा था, वे उत्तम कुमार (राम) फिर अपनी जननी तथा अन्य माताओं को उसी प्रकार (अर्थात्, जिस प्रकार दशरथ को किया था) प्रणाम कर खड़े हुए। उस समय उन माताओं के हृदय में जो उमंगें उमड़ पड़ीं, उनका वर्णन कौन कर सकता है?

ध्यान युक्त अपनी चरण वन्दना करके खड़े हुए उस भरत को, जिसके उज्ज्वल नेत्रों से (आनन्द) अश्रु की धारा इस प्रकार बह रही थी, मानो उसके हृदय में स्थित (राम के प्रति) सतत ध्यानयुक्त अपार प्रेम ही उमड़ रहा हो, (श्रीराम ने) प्राणों में प्राण मिलाते हुए स्वर्णाभरणों से भूषित अपने वक्ष से लगा लिया, जिस प्रकार पहले दशरथ चक्रवर्ती ने उन्हें आलिंगन में बाँध लिया था।

श्यामल (राम) का अनुसरण करते हुए चलनेवाले (लक्ष्मण) तथा अपूर्व प्रेम से उत्कृष्ट (भरत) के अनुज (शत्रुघ्न) अपने सुन्दर सुवासित केशवाले शिर से दोनों के वीर वलय भूषित चरणों का (अर्थात्, क्रमशः भरत और राम के चरणों का) स्पर्श किया।

उत्तम राजनीति तथा शासन में करुण दृष्टि— ये दोनों ही जिनकी सम्पत्ति हैं, उस महाराज दशरथ के सदृश ही उत्तम शील गुणसंपन्न वे चारों कुमार, वेद प्रतिपादित धर्मों का अनुसरण करते हुए चार वेदों के जैसे ही थे।

उन चक्रवर्ती ने जिनका वज्रदंड सबका साक्षी कहलाने योग्य था (अर्थात्, पक्षपातहीन शासन करते थे) तथा जिनको सभी लोग अपनी अपनी जननी ही मानते थे, (अर्थात्, प्रजा पर मातृतुल्य करुणा करनेवाले थे) अपने कुमार (राम) को आदेश दिया कि इस सारे (छत्र, चामर आदि) वैभव को साथ लेकर तुम आगे बढ़ो।

हाथी जैसे वीर सैनिकों का (उन चारों कुमारों के प्रति) जो प्रेम था, उसका

हम ठीक ठीक आँक नही सकत। उस समय उन योद्धाओं का जो स्वच्छ आनन्द था, वह कम था या उससे बढकर और कोई आनन्द हो भी सकता है यह भी हम नही जानत। (हम इतना ही जानत हैं कि) पुष्पालंकृत केशवाल उन चारों कुमारों के अपने निकट आते ही, उस सेना की दशा उनके पिता (दशरथ) की जैसी ही हो गई।

राम के दोनो पार्श्वों म उनके प्यारे भाई, सेवा म निरतर निरत होकर, कभी कम न होनेवाले आनन्द के साथ, विजयशील अश्वों पर आरूढ हो आ रहे थे। उनके चलते समय शखध्वनि के साथ बडे बडे नगाडे भी बज रहे थे, इस प्रकार (श्रीरामचन्द्र) अति उन्नत रथ पर आरूढ हो चले।

(रामचन्द्र) प्राचीरों से आवृत मिथिला नगर की विशाल वीथियो म जा पहुँचे, जहाँ महावर लगे मृदु पदवाली प्रतिमा समान सुन्दरियों का समूह चारों ओर मेघावृत ऊँची अट्टालिकाओं पर निरतर पक्तियों म एकत्र था तथा अपने विष भरे नयनों से (राम पर) पुष्प वर्षा कर रहा था।

वे सुन्दर प्रासाद, जहाँ (नारियों के) करों के ककण बज रहे थे, केशपाश शिथिल हो खिसक रहे थे, रक्तकमल से कोमल पदों के 'पाटक' नामक आभरण भरत (भरत नाट्य शास्त्र म प्रतिपादित ताल) को निरूपित कर रहे थे। कही नृत्यशालाएँ तो नही थी, जिनम ऐसी सुन्दरियाँ नृत्य करती हो, जिनके स्तन मदोष्ण कुभावाले गजों के (ऊपर उठे हुए) दाँतों को परास्त करनेवाले थे।

उस आदिदेव (अर्थात, विष्णु के अवतारभूत राम) के निकट आने पर मन्मथ के बाणों से प्रेरित होकर, वहाँ आई हुई मनोहर कुतलोंवाली नारियों—बालाओं से वृद्धाओं तक—की क्या दशा हुई, उसका वर्णन करगे। (१–२४)

●

अध्याय १९

वीथी-विहार पटल

पुष्प (मधु) से आर्द्र केशोंवाली अनेक स्त्रियाँ सर्वत्र त्वरित गति से आ एकत्र हुई। उस समय उनके पुष्पों म स्थित भ्रमर गुजार कर रहे थे, नूपुर आदि पादाभरण शब्द कर रहे थे, उनका आना वैसा ही था, जैसे हरिणियाँ आ रही हों, मयूर गण सचरण कर रहे हो, नक्षत्र गण चमक रहे हों या बिजलियाँ एकत्र हो गई हो।

दुर्लभ आभरणों से अलकृत नारियाँ, बधन से छूटकर गिरनेवाले अपने केशों की ओर ध्यान नही देती थी, मेखलाओं का टूट टूटकर गिरना भी नही देखती थी, खिसकनेवाले पुष्प समान अपने झीने वस्त्रों को भी नही सँभालती थी, उनकी कटि लड खडाती थी, इस प्रकार एक दूसरे से 'हटो, हटो' कहती हुई मधुपान करनेवाले भ्रमरों के समान वे स्त्रियाँ घिर आई।

नयनो से प्रेम नामक पदार्थ को ही (अथात्, साकार प्रम का ही) (राम क रूप म) हम दख रही ह। इस स्त्री जन्म क फल को आज ही प्राप्त कर रही ह, यह सोचती हुई व नारियाँ इस प्रकार आई, जिस प्रकार हरिणो क झुड, सारी पृथ्वी का पानी सूख जाने तथा आकाश से वर्षा के भी न होन पर, किसी स्थान पर पीने योग्य जल दखकर प्रेम स आ जुटे हो।

निम्न स्थल की आर बह जानवाली जलधारा क समान नील उत्पलय तुल्य तथा समुद्र से भी विशाल नेत्रवाली वे स्त्रियाँ वहाँ आइ। उस समय उनक मजुल नूपुर शब्द कर रहे थे, मृदुल पुष्पहार हिल रहे थे, उनकी सूक्ष्म कटि दुख रही थी। व इस प्रकार दौडी, मानो वे अपने मन को, जा राम क पास चला गया था, पकडन क लिए उसक पीछे पीछे दौडी आ रही हो।

'रक्तवण का इसन निगल लिया है'-- (दशका म) ऐसा भाव उत्पन्न करनवाले तथा अहल्या को आनन्द देनवाले पद द्वग और सुवासित कशोवाली सीता को प्राप्त करने क लिए शिवधनुष का तोडनवाली फूली हुई भुजाएँ—उन्हे देखन क लिए उस राज वीथी म जो नारियाँ एकत्र हुई, वे ऐसी लगती थी कि मधुमक्खियाँ शार मचाती हुई अमृत पर घिर आई हो।

वे (रामचन्द्र) प्रकट रूप म तो वीथी म जा रह थ, पर वस्तुत व एस घाड जुत हुए रथ म जा रहे थे, जो निनिमेष खडी रहनवाली उन नारियो के नत्रो म फाँद जात थे। अब उन्होने सब लोगों को यह भली भाँति जता दिया कि महान लोग उन्ह 'कण्णन्'[१] क्यो कहत हैं।

वे नारियाँ यह साचकर (प्रेम की) वदना से भी पीडित होती थी कि हाय! इस (राम) का रथ अब मन से भी अधिक वेग से दौडता चला जा रहा है। (कवि कहता है कि) पृथ्वी स भी परे जाकर स्वर्ग को पार करनवाले (अर्थात्, त्रिविक्रिमावतार म त्रिभुवन को नापनेवाले उस राम) को जिस सुन्दरी न अपन दृष्टि पथ मे ही बिठा लिया ह, वही धन्य है।

एक सुन्दरी सिहरन, सकोच, शरीर का वस्त्र, शख वलय आदि को तथा अपना मन, प्रज्ञा, तज, लज्जा, मुग्धता, सयम आदि अच्छे गुणो को—अपन प्राणो क अतिरिक्त अन्य सभी महिलोचित गुणो का त्याग कर खडी रही।

(किसी नारी क) कर्णाभरण पर सचरण करनवाले मीन सदृश नयनो स वषा के सदृश अश्रु धारा बह रही थी। वह ऐस जुडे हुए स्तनो स सुशोभित थी, जिनके मध्य से एक धागा भी नही जा सकता था और जो मन्मथ क इक्षुधनुष क बाणो स विक्षत थे।

१ कण्णन्' यह तमिल शब्द सस्कृत श द 'कृष्ण' का ही रूपान्तर ह। किन्तु, इस तमिल शब्द के, तमिल भाषा की प्रकृति के अनुकूल अन्य भी कई प्रकार के अर्थ हो सकत ह। इस श द का अर्थ तमिल म नत्र होता हैं। इसलिए, कण्णन् का एक अर्थ है 'कृपादृष्टिवाला' दूसरा अर्थ ह 'सब की आखों का तारा'।
इस प्रसग में 'कण्णन्' शब्द के एक तीसर अर्थ की ओर सकेत ह, वह है— नेत्र-मार्ग स (हृदय मे) पहुँचनेवाला'। इस प्रसग मे इस नय अर्थ में यह श द व्यवहृत हुआ ह।

(नारी) शिथिल हो इस प्रकार कुम्हलाई हुई कॉपती खडी रही, जिस प्रकार उसकी ली समान कटि कॉप रही थी।

रूई जैसी मृदु उँगलियोंवाली उन (रमणियों) के भाले जैसे दीर्घ नयनो ने न प्रभु (राम) के शरीर की कालिमा को प्राप्त किया था, या मेघ समान शरीरवाले (राम) का वर्ण उन नारियों के अंजनाञ्चित नयनों के द्वारा देखे जाने के कारण ही उस र (काला) हो गया था ? हमको कुछ निश्चित रूप से विदित नही हुआ।

आम के पल्लव समान (अरुण) शरीरवाली तथा उज्ज्वल ललाटवाली एक सुन्दरी मथ को सर्वत्र पुष्प बाणों की वर्षा करते हुए देखकर कह उठी—यह कौन है, जो चक्रवर्ती शरथ) की आज्ञा का तथा इस वीर (राम) के धनुश्चातुर्य का भी निरादर करता हुआ, रण भूषित अबलाओं पर बाणों का प्रहार कर रहा है ?

लक्ष्मी की समता करनेवाली एक नारी, जिसके आभरण खिसककर गिर गये थे, जो अपने शरीर को भी सँभाल नही पा रही थी, एक वस्त्र को ही पकडे हुए इस प्रकार ाम के प्रेम में मग्न हो) खडी थी, मानो अपूर्व सौंदर्य को भली भाँति पहचाननेवाले किसी कार ने, शब्दों से अतीत तथा सभी प्रकार के ऐन्द्रिय अनुभवों से श्रेष्ठ कामानुभव को स्त्री के रूप में चित्रित कर दिया हो।

प्राणहर शूल सदृश तथा यम की समता करनेवाले नेत्रोंवाली मयूर तुल्य एक (सुन्दरी) प्रकार खडी थी कि उसकी धनुष जैसी भौंहों और ललाट से स्वेद बह रहा था, सारे र में पीलापन छा गया था, मन शिथिल हो गया था, वह राम के अतिरिक्त अन्य ी को नही देख पाती थी, इसलिए बोल उठी—'क्या मेरे प्रभु अकेले ही जा रहे हैं ?'

अंजन जैसे काले कुंतलोंवाली, अरुण अधरवाली तथा उज्ज्वल ललाटवाली एक ी ने (राम के प्रति प्रेमाधिक्य से) मन में द्रवित होती हुई, अपनी सखी से कहा— सखी ! वह वंचक (राम) मेरे मन के भीतर आ पहुँचा है और मेरे नेत्र नामक उसके मन के द्वार को दृढता से बंद कर दिया है, जिससे अब वह बाहर निकलकर नही जा ा है, अब मैं पर्यंक पर जाऊँगी।'

गढी हुई प्रतिमा के समान एक सुन्दरी, मोहिनी सदृश अपने शरीर में चुभने मन्मथ बाणों का भी ध्यान नही करती थी, उसने यह भी नही जाना कि उसके रण और वस्त्र कैसे खिसक खिसककर पृथक् पृथक् हो गिर रहे हैं। वह उस अमल) के रूप को (प्रेम के साथ) देखनेवाली (नारियों का) अपनी आँखों से चिनगारियाँ ती हुई (ईर्ष्या और क्रोध के साथ) देख रही थी।

एक सुन्दरी जिसके नयन (सहज) आमोद से भरे थे, खूब बढे हुए थे, दीर्घ होकर लो को नापते थे, (दूसरों के मन को) चुराने की कला को अपने में छिपाये हुए थे, बार बाहर निकलकर उड जाना चाहते से थे। वे अरुणाई को भीतर रखे हुए श्वेत एवं वर्णवाले थे तथा भाले के जैसे थे, शीतल मन के साथ (श्रीराम को) देखने के लिए ओर (देखने पर प्रेम की वेदना से पीडित होकर) उष्ण मन के साथ घर में लौट गई।

एक तरुणी जो (राम के) अपार सौंदर्य को देखने की अभिलाषा से प्रेरित हो

रही थी, पर (वहाँ एकत्र स्त्रियों के) काले केशपाश, कंचुकाबद्ध भारी स्तन, मेखलावृत नितम्ब, आदि के घने रूप में छाये रहने से राम के रूप को नहीं देख पाती थी, तब वह अतिविशाल नगरवती (उन रमणियों की सदृश) कटाक्षों से राम को देखने लगी।

उन (मिथिला की) वीथियों में, क्रुद्ध हुए रक्तपुष्पबाण अनंग के द्वारा फेंके गये पुष्प बाण (नारियों के) मन को पार करके बाहर निकल पड़े थे। उन (नारियों) के (विरह ज्वाला से) झुलसकर गिरे हुए आभरण, स्तनों पर रचे हुए कुंकुम लेप, खिसककर गिरी हुई मेखलाएँ, मुक्ताहार, शंख वलय, तथा केशों से भ्रष्ट हुए पुष्प- इनसे रिक्त स्थान वहाँ कहीं भी नहीं था।

(उन नारियों में से) जो (राम की) भुजाएँ देखने लगीं, वे उन भुजाओं को ही देखती रह गईं, जो वीर कंकण भूषित कमल सदृश उनके चरणों को देखने लगीं, वे उन चरणों को ही देखती रह गईं, (जो उनके) विशाल हाथों को देखने लगीं, वे वैसी ही (उन हाथों को देखती हुई) खड़ी रह गईं। उन शूल तुल्य नेत्रोंवालियों में कौन ऐसी थी जिसने (राम के) रूप को पूर्ण रूप से देखा हो? (अर्थात् भगवान के अवतारभूत राम को पूर्ण रूप से किसी ने नहीं देखा है।) वे नारियाँ, विभिन्न धर्मों के उन अनुयायियों के समान थीं, जो अपने अपने सिद्धांतों के अनुसार भगवान के किसी एक अंश का ही ध्यान करते रहते हैं।

सूक्ष्म कटि तथा दीर्घ कुंतलोंवाली एक सुन्दरी को जीवन दान देते हुए उसका उद्धार करते हुए, उसके मन में (श्रीराम) अन्तर्भूत हो रहे। समस्त भुवनों को अपने उदर में अन्तर्भूत करनेवाले (हमारे) प्रभु से बढ़कर, कहो, अब और कौन बड़ा हो सकता है?

हिलनेवाले दीर्घ केश भार तथा उत्तम आभरणों से सुशोभित एक तरुणी, अपनी पायल तथा नूपुरों को ध्वनित करती हुई, अति सुन्दर पुष्पित शाखा के समान पग रखती हुई आई और (राम को देखते ही प्रेम पीडित) हो रोती हुई सखियों के हाथों पर (आरूढ होकर) चली गई। (अर्थात्, प्रेम व्याधि से पीडित उस नायिका को उसकी सखियाँ अपने हाथों पर उठाकर रोती हुई चली गई।)

उस स्थान में 'कुड्मल' जैसे स्तनोंवाली, आभरणालंकृत एक युवती ने (राम को सम्बोधन करके) कहा—तुम्हारा हृदय लोहे के समान कठोर है, फिर भी तुमने एक मुग्धा (को प्राप्त करने) के लिए मेरु सदृश धनुष को तोड़ा है। हे पुण्यस्वरूप! (मन्मथ) के इक्षु धनुष को तोड़कर मुझे भी अपनाओ न!

काजल से अंजित नयनोंवाली तथा उज्ज्वल ललाटवती एक तरुणी ने कहा - फलीभूत तपस्यावान् यह (राम) अपने रथ का त्याग कर मेरे नेत्रों के अत्यन्त निकट आ खड़ा है, यह कोई इन्द्र जाल है या स्वप्न?

एक नारी ने, जिसके पास अपने मन के अतिरिक्त और कोई दूत नहीं था और जिसके प्राण द्रवित हो उठे थे, कहा—'कमलपुष्प के समान लाल रेखाओं से अंकित

नेत्रावाली उस सीता ने न जाने कैसी तपस्या की थी (जिससे इस सुन्दर पुरुष को प्राप्त किया है)।'

त्रुटि रहित प्रतिमा समान एक सुन्दरी (राम के प्रति प्रेमाधिक्य के कारण) तड़पकर रो उठी, उष्ण निःश्वास भरने लगी, शिथिल हो व्याकुलता के साथ, अपनी प्राण सखी के प्रति हाथ जोड़कर कहने लगी—इस कुमार का क्या मन्मथ के द्वारा चित्र में अंकित कराया जा सकता है ?

अरुण अधरवाली तथा उज्ज्वल ललाटवती एक नारी ने (अपने पास खड़े व्यक्तियों को देखकर) कहा—क्या, किसी मानव मात्र में इस प्रकार के लक्षण हो सकते हैं ? (नहीं, अतः) यह विष्णु ही है, मैं तुम लोगों को यह समझा रही हूँ, इस कथन की सचाई को तुम लोग भविष्य में प्रत्यक्ष देखोगे।

उज्ज्वल ललाटवाली एक सुन्दरी ने जिसके स्वर्ण नूपुर और हाथ के कंकण खिसक रहे थे, जिसका मन द्रवित हो रहा था, बहुत म्लान होकर कहा—'यह अनघ इस नगर में आया है, वह जनक महाराज की तपस्या का ही फल है।'

अश्रुपूर्ण आँखों और स्वर्ण भूषित कटिवाली एक रमणी ने, जो इतनी व्याकुल हो उठी थी कि उसका समस्त सौन्दर्य उसके शरीर को छोड़कर चला गया था, कहा—'क्या यह सम्भव हो सकता है कि मुनियों तथा श्रेष्ठ राजाओं से घिरा हुआ यह कुमार (राम) अकेले ही, स्वप्न में, मेरे निकट आ जाये ?'

वन में निवास करनेवाले वर्षाकाल के मयूर की समता करनेवाली एक स्वर्णलता ने अपने मन के (राम के प्रति उत्पन्न) प्रेम को छिपाना चाहा, किन्तु मन्मथ ने उस बात को जान लिया। गुप्त बातों का मन जिस प्रकार छिपा लेता है, क्या उसी प्रकार मुख भी छिपा सकता है ? (अर्थात्, मन में छिपे हुए भाव को मुख की कान्ति प्रकट कर देती है।)

दो दीर्घ नयनोंवाली एक इन्दुमुखी (विरह बाधा से उद्विग्न हो) पुष्प पर्यंक पर जा लेटी। वह वज्रनाद सुनकर डरे हुए साँप के जैसे विभ्रांत होकर निःश्वास भरने लगी, और उसके परस्पर घर्षमाण स्तन द्वय पर स्वेद छा गया।

लाल अलसी पुष्प के सदृश, अमृत पूर्ण अधरवाली वे सुन्दरियाँ (राम के प्रेम के कारण) पृथक् पृथक् उद्विग्न होती हुई विकल प्राण हो गईं, दुखती हुई सूक्ष्म कटिवाली सीता के समान, आनन्द के कारण (राम का) जिन्होंने नहीं पाया है, वे कैसे जीयेंगी ?

(एक नारी कहने लगी) रक्त भरे शरीर, व्याकुल प्राण तथा अत्यन्त वेदना के साथ पीड़ित होनेवाली इन नारियों में से किसी को इस परिशुद्ध पुरुष ने अपने आरक्त नेत्रों से प्रेम के साथ देखा तक नहीं। कदाचित् यह प्रेमहीन (कठोर) चित्तवाला है।

उस नगर में नारियाँ असंख्य थीं। इधर राम के सौन्दर्य की भी कोई सीमा नहीं थी, अतः सुन्दर धनुधारी मन्मथ भी क्या कर सकता था ? उसके हाथ के सब बाण चुक गये, तो उसने अपने खड्ग पर हाथ रखा (अर्थात्, खड्ग का प्रयोग करने लगा)।

हम यह तो जानते हैं कि कस्तूरी से सुवासित दीर्घ कुंतलोंवाली उस नगर

की नारियो पर मन्मथ ने कैसे अस्त्र प्रयुक्त किये , पर यह नही जानते कि वसन्तकालीन मन्मथ ने स्वर्गवासिनियो के साथ कैसा युद्ध किया। उसके बाण तो स्वर्ग की निवासिनी अप्सराओ के हृदयो म भी जा लगे होगे ।

(किसी नारी ने कहा) अपने पर मोहित होनेवाली किसी नारी से कुछ भी न चाहता हुआ, यह (राम) चला जा रहा है , क्या यह उचित है ? करुणा क्या होती है, यह जानता भी नही। क्या यह परिणत चित्तवाला (सयम म सफलता प्राप्त किया हुआ) कोई तत्त्वज्ञ है (जो किसी नारी की ओर दृष्टि नहीं उठाता है) ? (नही, नही) यह तो बड़ा हत्यारा है (जो इतनी नारियो को प्राण पीडा दे रहा है) ।

चन्दन रस से लिप्त, उष्ण स्तनो तथा डमरू समान मृदु कटि से शोभित एक उत्तम युवती अपने व्यापार तथा शरीर की सुधि खोकर शिथिलता से चूर होकर गिर पडी, जिसे देखकर लोग सन्देह करने लगे कि वह बचेगी या नही ।

चाशनी जैसी मीठी बोलीवाली एक नारी उस वीर (राम) के रथ के पीछे पीछे दौडने लगी, जिसने पैरो म वैसे ही छाले पड गये जैसे क्रमुक वृक्ष पर लगाये गये झूले को झुलानेवाली किसी नारी के पैरो म पडे हो। (वह कुछ दूर जाकर) फिर लौट पडी, इसमे उसने क्या प्राप्त कर लिया ?

अपार प्रेम से मत्त होकर उन नारियो म से एक ने दूसरी से पूछा—क्या तुमने उस राम के मार्ग म मेरे मन को भी जाते हुए देखा था ?' जब कामना अत्यन्त तीव्र हो जाती है, तब लज्जा भी शेष नही रहती ।

वहाँ पर लक्ष्मी सदृश एक रमणी ने कहा—'इस (राम) के पूर्वजो ने अपने शरणागत याचको की रक्षा के लिए अपने प्यारे प्राणो का भी दान किया था। न जाने, उस वंश म उत्पन्न इस (राम) म ऐसी कठोरता कहाँ से आ गई है कि यह हमारे प्यारे प्राणो को हमे नही छोडता ?'

(काम पीडा से उत्पन्न) भय से विकल होती हुई, एक सुन्दर ललाटवाली कहने लगी—(इसने) आयुधागार मे स्थित शिव धनुष को जो तोडा, वह अगरु से सुवासित कुतलोवाली, पवित्र वाणी युक्त मयूर सदृश सीता के प्रति प्रेम के कारण नही था , किन्तु अपना धनु कौशल दिखाने के लिए ही था ।'

ढील केशोवाली एक रमणी ने, जिसके हार, वस्त्र तथा अन्य आभरण खिसक जा रहे थे, तथा जिसके प्यारे प्राण भी शिथिल हो रहे थे, कहा—मन्मथ के समान बलशाली इस विश्व म दूसरा कौन है, जो इस भयकर धनुर्धारी राम के सामने ही मेरे प्राण हर रहा है ?

इस प्रकार, सभी दिशाओ म नारियाँ घिर आई थी। उधर श्रीराम उस सभा मण्डप म अन्य राजकुमारो के साथ जा पहुँचे, जहाँ निष्कलुषचित्त वसिष्ठ तथा वेदपारग कौशिक विराजमान थे ।

लक्ष्मीनायक (राम) ने उन दोनो (महर्षियो) के चरणो का इस प्रकार साष्टाग प्रणाम किया कि उनके रत्नहार इस प्रकार हिलने लगे, जैसे बादलो मे बिजलियाँ चमक रही हो और वर्षाकालिक मेघ धरती पर आ लगा हो ।

धर्म की रक्षा के लिए अयोध्या म अवतीर्ण उस पुरुष ने प्रणाम करने पर उन (महर्षियों) न आसन ग्रहण करने की आज्ञा दी। उनकी आज्ञा पाकर व पुष्पाकार चित्रों से उत्कीर्ण एक आसन पर आसीन हुए और छाया क समान अपना अनुगमन करने वाले तीनो भाइयो के मध्य प्रकाशमान होने लगे।

उसके पश्चात्, मानो चन्द्रमा सब नक्षत्रो के साथ गगन को प्रकाशित करता हुआ आया हो, यो दशरथ चक्रवर्त्ती अपने बन्धु मित्रसहित, उस रत्नमय मण्डप म आये।

(चक्रवर्त्ती न) आकर महातपस्वियो (वसिष्ठ और कौशिक) क चरणो की वन्दना की और अपने बरसाये जानेवाले मधुपूर्ण पुष्पो स भी अधिक (मात्रा) म, ब्राह्मणो के आशीर्वाद पाकर, आसन पर इस प्रकार विराजे कि देवेन्द्र भी उन्हे देखकर लज्जित हो गया।

गग, कोगु, कलिग, कुलिग, सिहल, चेर, दक्षिण राज्य (पाड्य) अग, चीन, कुलिन्द, अवती, वग, मालव, चोल महाराष्ट्र—इन देशो क राजा

वैभवयुक्त मगध, मत्स्य, म्लेच्छदेश लाट, विदर्भ, महाचीन तेगनदेश (टकण या दक्षिण ?), मगदेश (म्लेच्छ देशो म से एक), सोमक मानक, तुरुष्क, कुरुदेश—इन देशो क नरेश,

आयुधहस्त माधव राजा, सप्तधा विभाजित कोकण, चेदी, तलग (आन्ध्र), कर्नाटक इत्यादि नभ स आवृत पृथ्वी भर क उज्ज्वल तथा दीर्घकिरीटधारी राजा लोग उस मण्डप म आ पहुँचे।

मधुर इक्षु से भी अधिक मीठे वचनवाली रमणियाँ, (दशरथ क) पार्श्वो म चामर डुला रही थी। वह दृश्य ऐसा था, मानो उनकी कीर्ति रूपी वृक्ष के, जो ऊपर के (स्वर्ग आदि) लोको म भी व्याप्त था, कोमल पल्लव हिल रहे हो।

मँडरानेवाले भ्रमर तथा मधुमक्खियो को आकृष्ट करनेवाली सुगन्ध से युक्त मधु पूर्ण पुष्पो से अलकृत केशवाली स्त्रियाँ बाँसुरी की ध्वनि क साथ स्वर मिलाकर जय गान कर रही थी। वे गान उनकी वाणी सदृश वीणा को भी मात कर रहे थे।

कठोर तथा भयकर नेत्रवाले हाथियो की सेना से युक्त (चक्रवर्त्ती) का अनुपम श्वेतच्छत्र, ऐसा शोभित हो रहा था, मानो चन्द्रमा अपनी वशजा सीता के शुभ विवाह उत्सव को देखने क लिए आ पहुँचा हो और करुणा स पूर्ण हो, फूला हुआ, ऊँचाई पर खडा हो।

(चक्रवर्त्ती की) सेनाएँ अपार समुद्र क समान व्याप्त होकर सर्वत्र ऐसी फैली पडी थी कि किसी के उठकर जाने या हिलने डुलने के लिए भी रिक्त स्थान नही था। विजयप्रद मत्तगज सेना स युक्त उस (जनक) नरेश का सारा देश उस जनसमुदाय के कारण एक नगर जैसा दीखने लगा।

कात ललाटवाली सीता क पिता न असीम आदर तथा प्रेम क साथ आनन्दित हो अपनी समस्त सपत्ति को लुटाकर उनका आतिथ्य सत्कार किया। उनका वह आतिथ्य रामचन्द्र और अन्य साधारण जनता, सभी के प्रति समान ही रहा। इससे बढ़कर उनके आतिथ्य की महत्ता के सम्बन्ध मे और क्या कहा जाय ? (१-५४)

●

अध्याय २०

प्रसाधन पटल

चक्रवर्ती (दशरथ) अपनी सजीव प्रतिमा समान सुन्दर देवियों सहित आनन्द भरित हो, इस प्रकार आसीन थे, मानो अपनी देवियों के साथ देवेन्द्र ही विराजमान हों। उस समय वसिष्ठ ने श्वेतच्छत्र तथा नीतिपूर्ण शासन दंडयुक्त जनक को मधुर दृष्टि से देखकर कहा—'आम के टिकोरे जैसे नयनोंवाली (सीता) को ले आइए।'

(वसिष्ठ के) यह कहते ही, (जनक ने) मुनि को प्रणाम किया और मुदित होकर आभूषणों से भूषित कुछ दासियों को आदेश दिया कि वे नारियों की रानी (सीता) को ले आयें। मधु समान वचनवाली वे स्त्रियाँ, अपार प्रेम से प्रेरित हो, त्वरित गति से गईं और सीता की सखियों को वह समाचार दिया।

(सीता की सखियों ने) यह नहीं सोचा कि आभामय आभरण, सुन्दरी (सीता) के रूप को छिपा देनेवाले ही हैं, जैसे नेत्रों के ऊपर और नीचे उसको छिपानेवाली ये पलकें सौन्दर्य के लिए रखी गई हैं। उन सखियों ने सौन्दर्य का शृंगार किया, मानो अमृत को मधुर बना रही हों। आह! शब्दायमान वीचि भरे समुद्र से घिरी इस पृथ्वी के लोग भी कैसी अज्ञता में भरे हैं।

शोभा को बढ़ानेवाले (सीता के) कुंतल ऐसे थे, मानो विष्णु (के अवतारभूत राम) का नीलवर्ण, जो उन (सीता) के हृदय में भरा था, वही उमड़कर ऊपर उठ आया हो और चारों ओर अपनी छवि को फैला रहा हो। मेघ मध्य विराजमान चन्द्र कला के समान उस कुंतल भार के मध्य कोमल फूलों का गजरा रखा।

जैसे विधि के वश हो गगन के नक्षत्र चन्द्र कला को घेरे रहते हैं, वैसे ही चमकते हुए माँग फूल को (सीता के) ललाट पर बाँधा, चन्द्र को जन्म देनेवाली 'मेघ' नामक माता ने (अपने बछड़े को चाटने के लिए) अपनी टेढ़ी जीभ को बाहर निकाला हो वैसे ही घने अंधकार समान अलकों पर वत्तुल आभरण (जो माथे पर केशों के किनारे किनारे पहना जाता है) पहनाया।

गंगा प्रवाह को जटा में धारण करनेवाले (शिव) के भयंकर धनुष को जिसने तोड़ा, वह वीर क्या वही युवक है, जो मेरे स्त्रीत्व रूपी अनुपम श्रेष्ठ गुण को चुराकर ले गया है और मुझे विकल छोड़ गया अथवा वह वीर दूसरा कोई है?—यों सोचती हुई (सीता का) मन जिस प्रकार झूल रहा था, उसी प्रकार झूलनेवाले कान के 'कुलै' नामक आभरण भी उन (सखियों) ने पहनाये।

सीताजी हरिण नयनोंवाली सभी नारियों के मंगलमय कण्ठों के आभरण सदृश थीं, तो उन (सीता) के कंठ का हार कौन हो सकता है? उस कंठ में, जो ऐसा था मानो विष्णु के द्वारा धारण किया गया शंख ही उस रूप में आ स्थित हुआ हो, (उन सखियों ने) अनेक दोष रहित आभरण पहनाये।

(सीता के) आभरणों की शोभा को भी बढ़ानेवाले स्तनों पर (पहनाये गये)

हार के बारे में क्या कहें ? क्या यह कहें कि गगन के नक्षत्रों में से योग्य नक्षत्रों को चुनकर (उनका) हार बनाकर पहनाया गया है ? या कहें कि अति उज्ज्वल किरणवाले चन्द्र को काटकर हार बनाकर पहनाया गया है ? या यह कहें कि (सीता की) लज्जायुक्त हँसी की चन्द्रिका जैसी कांति ही इस प्रकार छिटकी पड़ी है ? मैं क्या कहूँ ?

जिन (सीता) के रक्त चरणों ने, सौन्दर्य की स्पर्धा में परास्त होकर शरण में आये हुए रक्त कमलों को अरुणाई की भिक्षा दी थी उनके अमृत समान शरीर की कांति पड़ने से मनोहर आभरण युक्त स्तनों पर के श्वेत मोती भी लाल दिखाई पड़ते थे। जो अच्छे लोगों की संगति में रहते हैं वे भी अच्छे हो जाते हैं न ?[१]

उन (सीता) की कटि अतिपुष्ट तथा अधिकाधिक उभरते रहनेवाले ईंगूर (वात) के बने हुए कलश समान स्तनों का भार पड़ जाने से लचक उठती थी यदि (अपने प्रकाश से) चौंधियाकर दर्शकों की आँखों को बंद करानेवाली लाल कांति से युक्त पद्मराग पंजा तथा मोतियों से खचित कोई बाँस हो, तो वह उन (सीता) की आभरण भूषित भुजाओं की समता कर सकता है।

विकंपित पुष्पों से भूषित कुंतलोंवाली जानकी के पल्लव कोमल कर नामक कमलों ने ऐसी तपस्या की है कि वे रामचन्द्र के अरुण हस्तों के द्वारा यथाविधि गृहीत होने वाले हैं। ये कर सभी के प्रेम के पात्र हैं, रात्रि के समय भी मुकुलित नहीं होनेवाले हैं, यही सोचकर उनकी सखियों ने बालातप सदृश कांतिवाले पद्म परागों से खचित 'कटक' (नामक आभरण) उनके हाथों में पहनाया, मानों उन्होंने उनके करों की रक्षा के लिए उनमें रक्षा बंधन बाँधा हो ।

(पाटों में) विभाजित केशोंवाली (जानकी) के स्तन नामक दो औंधाये (गये) स्वर्णकलशों पर, जिनमें एक एक इन्द्रनील रत्न भी जड़ा था उन सखियों ने कस्तूरी लेप से पुष्पलता और अनंग धनुष को चित्रित किया और विविध धर्म मतों के द्वारा विचार्यमाण भगवान् के समान ही 'अस्ति' या 'नास्ति' की विचिकित्सा के कारण भूत उनकी कटि के लिए विपदा उत्पन्न कर दी ।

छवि को छिटकानेवाले अत्यन्त सूक्ष्म कौशेय (रेशमी) वस्त्र की परतों में न आनेवाली (अतिसूक्ष्म) कटि पर मेखला तथा उसके नीचे, (मोतियों की लड़ी से बने) 'तारकावज' (नामक आभरण) पहनाया। उन आभरणों के विविध रत्नों से जो कान्ति फूट पड़ती थी, वह उन (सीता) के शरीर की कांति से विलक्षण रहकर चारों ओर घूम जाती थी, जिससे वे सखियाँ भी अपनी आँखों की ज्योति खोकर स्तब्ध रह जाती थी।

नाचनेवाले फणी के तुल्य जघन तटवाली (सीता) के उन कमल सदृश चरणों में, जो अतिकोमल, शिरीष पुष्प से भी अधिक कोमल थे और महावर के बिना भी लाल

१ मूल में अंतिम वाक्य में, 'शेय्यर' शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसके श्लेष से दो अर्थ होते हैं—(१) लाल रंगवाले और (२) अच्छे। दोनों अर्थों को लेने से अंतिम वाक्य का चमत्कार बढ़ता है। —अनु०

दीखते थे उन सखियों ने नूपुर पहनाये। वे नूपुर बार बार बोल उठते थे। वे यह कह रहे थे कि ये (चरण) बहुत कोमल हैं, बहुत कोमल हैं।

जैसे बीच में विष रखकर उसके चारों ओर अमृत रखा हो, वैसे (सीताजी के) वे नयन, सीधे तथा लम्बे होकर कान तक फैल गये थे और उसके परे स्थान न मिलने से लौट पड़े थे। उनमें कुछ लाल लाल रेखाएँ भी दिखाई देती थीं, उनमें छल या छिपाव न होने से वे मेघ के जैसे शीतल थे। उनमें जो रेखाएँ थीं, वे अंजन की ही रेखाएँ थीं या उस कुमार (राम) के शरीर का ही वर्ण था, कुछ निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता।

(उन सखियों ने) मर्त्य लोक की स्त्रियों, नाग कन्याओं तथा स्वर्ग की सुन्दरियों के लिए तिलक जैसी (उन सीता) के ललाट पर तिलक अंकित किया। दो पुष्ट नीलोत्पलों के साथ विकसित कोई रक्तकमल हो और उसमें शुक्लपक्ष तृतीया का वर्धमान चन्द्र आ उपस्थित हुआ हो, और उस चन्द्र के मध्य एक नक्षत्र उदित हुआ हो, यदि ऐसा कोई दृश्य उत्पन्न हो जाय, तो उससे सीताजी के तिलकांकित वदन की तुलना हो सकती है।

भ्रमर, मधुमक्खी आदि को आकृष्ट करनेवाले खिले हुए पुष्प, केशों में खोंसने योग्य मृदुल पुष्प, जूड़े में धारण करने योग्य गजरे, कपोलों पर धारण करने योग्य वृन्तहीन अति मृदुल पुष्प—यथास्थान पहनाया तथा कल्पवृक्ष के पल्लव जैसे चमकते हुए 'पुन्ना' (पुष्प) के स्वर्ण धूलि तुल्य पराग को सीता के केशों पर लगाया।

(इस प्रकार, अलंकार करने के उपरांत, दृष्टि दोष परिहार करने के लिए उन सखियों ने) घृत दीप की आरती उतारी, जल सहित पुष्पों को (उनके सम्मुख) बिखेरा, इष्ट देवों से प्रार्थनाएँ कीं, वेद पारंग विप्रों को स्वर्ण का दान किया। छोटी पीली सरसों को माथे पर लगाया। सावधानी के साथ बनाये गये (चूना और हल्दी को मिलाकर) रक्तवर्ण नीर की आरती उतारी। उन देवी की, जिन्हें अपने हाथों में ही रखकर मयूर के समान ही उन सखियों ने अबतक पाला था, परिक्रमा की, इस प्रकार उन सखियों ने उनका, 'दृष्टि परिहार' किया।

जो सीता शुकों को मीठे बोल सिखाया करती थीं, उनकी उस सुषमा को वे सखियाँ कमल पुष्प से मधु का पान करनेवाले भ्रमरों के समान देखती रहीं। उन (सखियों) की वाणी गद्गद हो उठी। वे अपने सहज स्वभाव को भूल गईं। चाहे पुरुष हों या स्त्रियाँ, सबका मन एक (जैसा) ही होता है न?

मेघ तुल्य केशवाली वे सखियाँ, आभरणालंकृत वक्षवाली उन सीता को देखकर आनन्दमत्त हो खड़ी रहीं, जैसे पूर्णिमा के चन्द्र को देख रही हों। हरिणनयना स्त्रियों में भी कोई कोई अवयव ही सुन्दर होता है (अर्थात्, किसी के सभी अवयवों का सुन्दर होना सम्भव नहीं है), जब सभी प्रकार का सौन्दर्य एक ही स्थान में एकत्र हो जाय, तो उसे देखकर कौन मुग्ध नहीं होगा?

अपने सुन्दर कर में शंख (शंख वलय) धारण करने से, कमल (योगियों का हृदय कमल तथा कमल पुष्प) को आवास बनाकर रहने से, सर्वत्र व्यापक होकर, प्रत्येक के

हृदय में पृथक् पृथक् अंकित होकर रहने से अरुंधती के सदृश साध्वी सीता भी पुरुषोत्तम (श्रीराम) के समान ही थी। अब हम और क्या कहें ?

देवेन्द्र के शासन में रहनेवाली रंभा आदि अप्सराएँ जा रही हों, इस प्रकार असंख्य सखियाँ सीताजी को चारों ओर से घेरकर चलीं। उस समय विशाल मेखलाएँ, पादजाल (नामक पाद आभरण), सर्प के आकार के नूपुर और कर वलय बज उठे।

बौने, ठिंगने, कुबड़े, दासियाँ सभी बड़ी भीड़ लगाकर आये और सीता के चरणों की वन्दना करके खड़े रहे। अक्षीण दीप के समान वह देवी रत्न वितान की छाया में चलने लगी, मानों बाल चन्द्र नक्षत्रों के साथ जा रहा हो।

अपने आभरणों में लगे रत्नों की कांति को आगे आगे फेंकती हुई सीता इस प्रकार चली, मानो उन्हें जन्म देनेवाली भूदेवी ने यह सोचकर कि इनके चरण अति कोमल हैं उनके मार्ग में पल्लव और पुष्प बिखेर रखे हों।

उनके दोनों पार्श्वों में डुलनेवाले कांतिपूर्ण चामर इस प्रकार थे, मानो सीताजी के समान ही चलने की इच्छा से आये हुए हंस उनके कमनीय मृदु चरणों की गति से परास्त हो गये हों और बार बार नीचे गिर गिरकर उठ रहे हों। सीता यों चली, मानो अपने कलाप की कांति को सर्वत्र बिखेरता हुआ कोई मयूर चल रहा हो।

सीता भूलोक आदि सब लोकों की युवतियों के लिए आँख के तारे के समान प्रिय थी, ऐसी कन्या (अविवाहित सीता) के रूप को देखने के लिए मानो पुरुषोत्तम (राम) के कुलपुरुष सूर्य नभ से उतर आया हो—इस प्रकार का था वह रत्नमय वितान जिसकी छाया में सीता चल रही थी।

पुंजीभूत घनी स्वर्ण कान्ति से युक्त कलाप, (सोलह लड़ियोंवाली) मेखला, तथा अन्य रत्नखचित आभरणों से किरणें छिटक रही थीं देह की कांति अत्यन्त उज्ज्वल हो रही थी, कटि लचक रही थी इस प्रकार अपने प्रकाशमान छोटे पदों को उठाकर रखती हुई सीता आगे बढ़ी।

उन देवी की शरीर कांति, उनके स्वर्ण आभरणों की कांति, उनके पुष्पों की सुगन्ध तथा चन्दन की शीतलता, चारों ओर बिजली की चमक जैसी ही फैल रही थी, जिन्हें देखकर अप्सराएँ और अमर भी लज्जित हो रहे थे। इस प्रकार सीता उस रत्नमय मण्डप में जा पहुँची, जहाँ राजसभा एकत्र थी।

भारी स्तनों से युक्त उनके उस पवित्र रूप को, जो जन्मदाता के अभाव के कारण (स्वयंभूत) वेदों के समान ही था, देखकर बाँस जैसी भुजावाली रमणियाँ तथा पुरुष, सब लोग चित्र के समान निर्निमेष, जीवन के लक्षणों से रहित (निर्जीव) से खड़े रहे।

समुद्र वर्णवाले (राम), जो अबतक इसी संदेह में पड़े थे कि जनक की कन्या वही रमणी है, जिसे उन्होंने पहले (राजप्रासाद पर) देखा था, या वह कोई दूसरी स्त्री है अब अमृत मय उन (सीता), को देखकर इस प्रकार आनन्द से भर गये जिस प्रकार देवेन्द्र क्षीर सागर के मथन के समय, इतना अधिक परिश्रम करके कि जिससे उसके प्राण भी शरीर

का छोड जाने के लिए सन्नद्ध हो गये थे, हठात् ही अमृत को उत्पन्न होते हुए देखकर आनन्द से भर गया हो।

अत्यंत मधुर अमृत को (साँचे में) ढालकर, पूर्वकृत सुकृतों के फल के समान निर्मित अरुण अधर तथा कोकिल स्वर से युक्त यह कन्या, जो कन्या प्रासाद से राजमंडप में उतर आई है, मेरे अंतर में ही नहीं, बाहर भी स्थित है क्या? इस प्रकार राम ने मन ही मन सोचा। (सीता राम के हृदय में तो पहले से स्थित थी ही अब वह बाहर भी है क्या इसका संदेह राम को हुआ।)

वसिष्ठ यह सोचकर अत्यंत मुदित हुए कि हमारे कृत तप के फलस्वरूप राम के रूप में आया हुआ व्यक्ति, शंख चक्रधारी पुंडरीकाक्ष जगदीश्वर (विष्णु) ही है, और यह कन्या भी अरुण कमल पर आसीन (लक्ष्मी) देवी ही है।

समस्त धरती पर समान रूप से चलनेवाले शासन चक्र के विशिष्ट चक्रवर्त्ती (दशरथ), घने कुंतलवाली सीता को देखकर सोचने लगे—यद्यपि सत्यलोकों में मेरा शासन चलता है, फिर भी मैं वैभव और समृद्धि की देवी (लक्ष्मी) को आज ही अपने वश में कर सका हूँ।

'नैवल' नामक वाद्य सदृश स्वरवाली (सीता) के समीप में आते ही भूमि के विजयी शासक दशरथ तथा तपस्वियों के कर (प्रणाम की मुद्रा में) उनके शिरों पर मुकुलित हो उठे, क्योंकि सब के मन तथा इन्द्रियों ने उन (सीता) को देवी के रूप में पहचाना। यह शरीर मन के अधीन ही रहता है न?

(अपने आवास भूत) कमल पुष्प का त्याग कर, (जनक) राजा के स्वर्ण प्रासाद में अवतरित हुई उस देवी ने पहले महान् तपस्वियों को नमस्कार किया, फिर सब राजाओं में श्रेष्ठ (दशरथ) के चरणकमलों की वन्दना की और आँखों से आनन्दाश्रु बहानेवाले अपने पिता के समीपस्थ आसन पर विराजमान हुई।

'विष को अंतर में रखनेवाले आम के टिकोरे के सदृश नयनवाली यह कन्या यदि कमलासना (लक्ष्मी) ही है, तो हरे पर्वत के समान बलवान् राम, मेरु सदृश एक धनुष क्या, सात पहाड़ों को भी तोड़ सकते हैं।' इस प्रकार रथ की कील (अर्थात्, सब उत्तम कार्यों के प्रधान कारक) जैसे ब्राह्मणोत्तम (वसिष्ठ अथवा विश्वामित्र) ने सोचा।

(सीता ने) यह सुना तो था कि (राम ने) शिव धनुष को चढ़ाकर उसे तोड़ डाला है, किन्तु उनके रूप के संबंध में उनके मन में संशय अभी शेष था— (अर्थात्, यह वही राजकुमार है, जिसे स्वयं उन्होंने राजप्रासाद से देखा था या कोई और है, यह संदेह था)– उस पुराने संशय को दूर करने के हेतु सीता ने उस प्रभु (राम) को अपने अंतर में ही नहीं, अब अपने कंकणों को सँवारने के व्याज से आँख की कनखियों से भी देख लिया।

(सीता की) काली तथा दीर्घ कनखियों से जो दृष्टि नदी श्रीराम रूपी भरे हुए समुद्र में निमग्न हुई, उसमें उनके चंचल प्राण (जो यह वही राजकुमार है, या अन्य कोई है—इस संदेह से विकल हो रहे थे) अब स्थिरीभूत हो गये। राम के रूप को देखकर आभरण भूषित तथा स्त्री रत्न वह सीता निःश्वास भरने लगी और इस प्रकार आनन्द से फूल गई,

माना कोई व्यक्ति अलभ्य अमृत का पाकर एकदम सबको स्वय ही पी जाय और आनन्द मे फूल उठ।

घन कतलावाली सीता न यह जानकर कि धनुष का तोडनेवाला कुमार उनक हृदय म स्थित वह 'चोर' ही ह, चिन्ता मुक्त हो गई वह उनकी समता करन लगी, जिन्होन जन्म कारण अविद्या का दर करनवाली विद्या को (तत्त्वज्ञान का) प्राप्तकर परमात्म स्वरूप का जान लिया हा और उस ज्ञान क परिणामस्वरूप ब्रह्मानन्द रूपी फल को प्राप्त कर लिया हो।

(शत्रुओ क) विनाश प चार हाथियो की सना से युक्त उस सभा म आसीन चक्रवर्त्ती (दशरथ) ने ज्ञान सागर — पारगत मुनि कौशिक को देखकर प्रश्न किया— ह उत्तम! पुष्पलता समान सूक्ष्म कटिवाली इस कन्या (सीता) के विवाह का अपार शुभप्रद दिन कौन सा ह? कृपया बतावे।

'वालै' नामक बडे मीन तथा 'कयल नामक छाट मीनो क उछलने स जहाँ भैसा क क्रमश शिर तथा पीठ चिर जाती ह, जहाँ क, वराल नामक बलिष्ठ मीन (समीप के नारियल, पुगी आदि पेडो के) विशाल पत्तो का फैलाते हुए उनपर उछल पडत ह एसे खेतो स समृद्ध (कोशल) देश क राजन, विवाह क लिए शुभ दिन कल ही है।—यो श्रेष्ठतपस्वी (विश्वामित्र) ने उत्तर दिया।

यह वचन सुनने के पश्चात्, दशरथ, तपस्वियो की आज्ञा लेकर वहाँ स चलने लगे। तब अन्य राजे हाथ जोडकर खडे हो गये। उनका विलक्षण, रत्न खचित, घुमावदार विजय शख बज उठा उनके स्वर्ण किरीट की काति बालातप के समान छिटक उठी, यो चलकर वे अपने आवास म जा पहुँचे।

वह हसिनी (सीता) बडी कठिनाइयो स वहाँ स चली, तो रामचन्द्र भी वहाँ से चलकर स्वर्ण प्रासाद रूपी पवत के भीतर जा पहुँच, रत्नाभरण भूषित राजे भी चल गये, महातपस्वी मुनिगण भी चले गये, उधर उज्ज्वल कातिमान सूय भी मरु पवत क तट म अदृश्य हो गया। (१—८३)

●

अध्याय २१

शुभ विवाह पटल

प्रख्यातकीर्त्ति जनक महाराज क आतिथ्य क कारण, मदस्रावी गज सेना से युक्त नरपतियो से ऊँचे कधावाले कनिष्ठ कुमारो तक सभी ऐसा समझ रह थ, मानो व सदह ही स्वर्ग लोक की नगरी (अमरावती) म आ पहुँचे हो।

दुलभ स्वच्छ जल की प्यास से पीडित कोई पिपासु समीप म हो एक विशाल

का छोड जाने के लिए सन्नद्ध हो गये थे, हठात् ही अमृत को उत्पन्न होते हुए देखकर आनन्द से भर गया हो।

अत्यत मधुर अमृत को (साँचे म) ढालकर, प्राकृत मुक्ता के फल के समान निर्मित, अरुण अधर तथा कोकिल स्वर म युक्त यह कन्या, जो कन्या प्रासाद म राजमडप म उतर आई है मेरे अतर म ही नही, बाहर भी स्थित है क्या? इस प्रकार राम ने मन ही मन सोचा। (सीता राम के हृदय म तो पहले से स्थित थी ही अब वह बाहर भी है क्या, इसका सदेह राम को हुआ।)

वसिष्ठ यह सोचकर अत्यत मुदित हुए कि हमारे कृत तप के फलस्वरूप राम के रूप म आया हुआ व्यक्ति, शख चक्रधारी पडरीकाक्ष जगदीश्वर (विष्णु) ही है, और यह कन्या भी अरुण कमल पर आसीन (लक्ष्मी) देवी ही है।

समस्त धरती पर समान रूप म चलनेवाले शासन चक्र से विशिष्ट चक्रवर्ती (दशरथ), घने कुतलावाली सीता को देखकर सोचने लगे—यद्यपि सत्यलोको म मेरा शासन चलता है, फिर भी म वैभव और समृद्धि की देवी (लक्ष्मी) को आज ही अपने वश म कर सका हूँ।

'नैवल' नामक वाद्य सदृश स्वरवाली (सीता) के समीप म आते ही भूमि के विजयी शासक दशरथ तथा तपस्वियो के कर (प्रणाम की मुद्रा म) उनके शिरो पर मुकुलित हो उठे, क्योकि सब के मन तथा इन्द्रिया ने उन (सीता) को देवी के रूप म पहचाना। यह शरीर मन के अधीन ही रहता है न?

(अपने आवास भूत) कमल पुष्प का त्याग कर, (जनक) राजा के स्वर्ण प्रासाद म अवतरित हुई उस देवी ने पहले महान् तपस्वियो को नमस्कार किया, फिर सब राजाओ म श्रेष्ठ (दशरथ) के चरणकमलो की वन्दना की और आँखो से आनन्दाश्रु बहाने वाले अपने पिता के समीपस्थ आसन पर विराजमान हुई।

'विष को अतर म रखनेवाले आम के टिकोरे के सदृश नयनवाली यह कन्या यदि कमलासना (लक्ष्मी) ही है, तो हरे पर्वत के समान बलवान् राम, मेरु सदृश एक धनुष क्या, सात पहाडो को भी तोड सकते है।' इस प्रकार रथ की कील (अर्थात् सब धर्म कार्यो के प्रधान कारक) जैसे ब्राह्मणोत्तम (वसिष्ठ अथवा विश्वामित्र) ने सोचा।

(सीता ने) यह सुना तो था कि (राम ने) शिव धनुष को चढाकर उसे तोड डाला है, किन्तु उनके रूप के सबध म उनके मन म सशय अभी शेष था – (अर्थात्, यह वही राजकुमार है, जिसे स्वय उन्होने राजप्रासाद से देखा था या कोई और है, यह सदेह था)—उस पुराने सशय को दूर करने के हेतु सीता ने उस प्रभु (राम) को अपने अतर म ही नही, अब अपने ककणो को सवारने के व्याज से आँख की कनखियो से भी देख लिया।

(सीता की) काली तथा दीर्घ कनखियो से जो दृष्टि नदी श्रीराम रूपी भरे हुए समुद्र म निमग्न हुई, उससे उनके चचल प्राण (जो यह वही राजकुमार है, या अन्य कोई है-इस सदेह से विकल हो रहे थे) अब स्थिरीभूत हो गये। राम के रूप को देखकर आभरण भूषित तथा स्त्री रत्न वह सीता नि श्वास भरने लगी और इस प्रकार आनन्द से फूल गई,

मानो कोई व्यक्ति अलभ्य अमृत को पाकर एकदम सबको स्वयं ही पी जाये और आनन्द में फूल उठे।

घने कुतलोंवाली सीता ने यह जानकर कि धनुष को तोडनेवाला कुमार उनके हृदय में स्थित वह 'चोर' ही है, चिन्ता मुक्त हो गई वह उनकी ममता करने लगी, जिन्होंने जन्म कारण अविद्या को दूर करनेवाली विद्या को (तत्त्वज्ञान को) प्राप्तकर परमात्म स्वरूप को जान लिया हो और उस ज्ञान के परिणामस्वरूप ब्रह्मानन्द रूपी फल को प्राप्त कर लिया हो।

(शत्रुओं के) विनाश में चतुर हाथियों की सेना से युक्त उस सभा में आसीन चक्रवर्त्ती (दशरथ) ने ज्ञान सागर के पारगत मुनि कौशिक को देखकर प्रश्न किया—हे उत्तम! पुष्पलता समान सूक्ष्म कटिवाली इस कन्या (सीता) के विवाह का अपार शुभप्रद दिन कौन सा है? कृपया बतावें।

'वालै' नामक बडे मीन तथा 'कयल' नामक छोटे मीनों के उछलने से जहाँ भैंसों के क्रमश शिर तथा पीठ चिर जाती है, जहाँ के 'वराल' नामक बलिष्ठ मीन (समीप के नारियल, पुगी आदि पेडों के) विशाल पत्रों को फैलाते हुए उनपर उछल पडते हैं, ऐसे खेतों से समृद्ध (कोशल) देश के राजन्, विवाह के लिए शुभ दिन कल ही है।—यों श्रेष्ठतपस्वी (विश्वामित्र) ने उत्तर दिया।

यह वचन सुनने के पश्चात्, दशरथ, तपस्वियों की आज्ञा लेकर वहाँ से चलने लगे। तब अन्य राजे हाथ जोडकर खडे हो गये। उनका विलक्षण, रत्न खचित, घुमावदार विजय शंख बज उठा उनके स्वर्ण किरीट की कांति बालातप के समान छिटक उठी, यों चलकर वे अपने आवास में जा पहुँचे।

वह हंसिनी (सीता) बडी कठिनाइयों से वहाँ से चली, तो रामचन्द्र भी वहाँ से चलकर स्वर्ण प्रासाद रूपी पर्वत के भीतर जा पहुंचे, रत्नाभरण भूषित राजे भी चल गये, महातपस्वी मुनिगण भी चले गये, उधर उज्ज्वल कांतिमान सूर्य भी मेरु पर्वत के तट में अदृश्य हो गया। (१–८२)

●

अध्याय २१

शुभ विवाह पटल

प्रख्यातकीर्त्ति जनक महाराज के आतिथ्य के कारण, मदस्रावी गज सेना से युक्त नरपतियों से ऊँचे कंधोंवाले कनिष्ठ कुमारों तक सभी ऐसा समझ रहे थे, मानो वे सदेह ही स्वर्ग लोक की नगरी (अमरावती) में आ पहुँचे हों।

दुर्लभ स्वच्छ जल की प्यास में पीडित कोई पिपासु समीप में ही एक विशाल

सरोवर को पा लिया हो, किन्तु उसमें उतरकर जल पीने का मार्ग न पाकर अत्यन्त व्याकुल हो उठा हो—स्वर्ण कंकणधारिणी, कोकिलवाणी (सीता) की भी वही दशा हो गई।

(सीता रात्रि को सम्बोधन कर कहती है—) हे निष्ठुर रजनी ! क्या ऐसे भी लोग होते हैं, जो निर्बल व्यक्तियों के प्राण हरने की वीरता (डींग मारना) करते रहते हैं ? (अर्थात् तू ऐसी ही व्यक्ति है) सूर्य का उदय होते ही मेरे प्रभु आ जायँगे, अतः तू शीघ्र ही बीत जा, जिससे प्रभात होने में विलम्ब न हो।

हे मेरे मन ! नीलमेघ सदृश (उन राम के) चरणों के संग ही तू चला गया और उनके आने के समय ही तू उनके साथ आनेवाला है। दीर्घ समय से मेरे संग रहनेवाले मेरे मन ! एक दिन के विलम्ब को भी न सहकर इस प्रकार छोड़ जानेवाले (व्यक्ति) भी क्या संसार में होते हैं ?

तालवृक्ष पर रहनेवाले हे (चकवा) पक्षी ! यह रात्रि, जो गर्जन करते हुए महासमुद्रों के सदृश अपार (जान पड़ती) है, मुझ, प्रयत्नशीला (अर्थात्, राम की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करती हुई) के पाप के कारण यदि (रात्रि) व्यतीत न हो और प्रभात न होने पाये, तो क्या तू किंचित् भी न्यायान्याय का विचार न करके, एकाकी उड़ता हुआ (मेरी हत्या से उत्पन्न) अपयश का भार ढोता फिरेगा ?

तीक्ष्ण शूल और अग्नि की कठोरता तथा उष्णता को प्रकट करनेवाले आतप के सदृश ही छायी हुई हे चाँदनी ! तू ही कह, क्या इस संसार में ऐसे भी लोग होते हैं, जो निरपराध अबलाओं के प्राण हरते रहते हैं।

सुरभि और शीतलता के आगार उष्णता को फैलानेवाले सद् और प्रकाश पुंजभूत चन्द्रिका नामक दंत समूह से युक्त होकर, मलय पर्वत की ऊँची तथा बड़ी कंदरा में निवास करनेवाले हे दक्षिण अनिल नामक व्याघ्र ! क्या तू आहार की खोज में मेरे निकट आया है ?

वीथी में सचरण करनेवाला, कालमेघ सदृश एक वीर है, जो दिन रात मुझे छोड़ता नहीं है, यह कैसा न्याय है ? उच्च कुल के राजकुमारों में क्या ऐसे भी होते हैं, जो कन्याओं के निकट आ पहुँचते हैं ?

वह कठोर पुरुष (राम) विश्राम न करने योग्य कार्य करता रहता है, करुणाहीन है और मुझे अपने संग नहीं लेता है, उस छलिया की भुजाओं से प्रेम करना भी क्या उचित है ? (अन्धकार रूपी) इस कालिमा पूर्ण समुद्र की सीमा भी नहीं दीख पड़ती है, रात्रि का समय न जाने कितने युगों का होता है।

संगीत नाद थमते नहीं हैं (आनन्द मनानेवाले लोग संगीत गा रहे हैं जिससे विरहिणी सीता की वेदना बढ़ रही है, उनकी ओर संकेत है), दिन भी नहीं आता है, मेरी चिन्ता दूर नहीं होती है यह रात्रि व्यतीत नहीं होती है, मन की यथार्थ मिटती नहीं है, आँखें लगती नहीं हैं, क्या इस प्रकार दुःखित होना भी मेरे भाग्य में है ?

हे समुद्र ! अपने शंख (रूपी कंकणों को) गिराता हुआ तू उठ उठकर गिरता है। तू अत्यन्त शिथिल हो जाने पर भी कभी नहीं सोता है। अतः, क्या तू भी कोई कन्या (अविवाहिता) है, जो मन्मथ के प्राणहारी बाणों से व्याकुल है ?

इस प्रकार विलाप करती हुई, पयक पर लेटने म भी असमर्थ हो व्याकुलता के साथ सीता दु ख भोग रही थी और उनके (लज्जा आदि) सहज गुणो क कारण उनकी विकलता अधिक होती जा रही थी। ऐसी रात्रि के समय, उधर अनघ (रामचन्द्र) अपने प्रासाद म, भरे हुए अन्धकार म क्या सोच रह थे और क्या बोल रह थे —यह अब कहगे ।

पहले (कन्या प्रासाद पर) देखा, तब अनिवार्य प्रेम की प्रेरणा से, नेत्रा (की लेखनी) को लेकर मन पर उसे अकित कर लिया, फिर (आज) सम्मुख ही मैने उसे देखा, तो भी उस असमान सुन्दरी कन्या (के सोदर्य) का पार नही पा रहा हूँ। जो बिजली को देख रह हो, वे अन्य व्यापारो पर कैसे दृष्टि रख सकते हैं ?

ह लक्ष्मी तुल्य सीता के मुख मण्डल (चन्द्र)। सोचने पर ज्ञात होता ह कि शोक ओर फल के उत्पादक काम रूपी बीज के बढ़ने के लिए सहायक खाद तू ही है (अर्थात्, चन्द्रमा काम को बढाता हे, जिससे विरहावस्था म शोक का और सयोगावस्था म फल का रस मिलता है।) ह चन्द्र। तूने यह क्या किया ? मुझ, एक व्यक्ति के साथ क्या तू मित्रता नही कर सकता था ?

यह सर्वत्र व्याप्त अन्धकार ऐसा बढ़ गया ह, मानो मेर प्राणो का बाहर निकालने के लिए उस रमणी (सीता) के नयन ही इस प्रकार बढ गये हो। यह कभी क्षीण होनेवाला नही दीखता। यह अधिकाधिक इस प्रकार बढ़ रहा हे, जिस प्रकार युद्ध म अपने प्रभु क मारे जान पर भय के कारण युद्ध रग से भाग खडे होनेवाले सैनिक का अपयश बढ़ता जाता ह ।

वन्य हरिण के से नयनवाली उस सुन्दरी के सग गये हुए मेरे मन ! तूने मेरी चिन्ता कभी नही की। कदाचित् तेरा मार्ग अधिक लम्बा हे (इसीसे अबतक नही लौटा ह) या उन्होने (सीता ने) तेरी बात नही पूछी हे, जिससे तू अभी तक वही अटका हुआ हे, या तू भी मुझे भूल गया ह।

कठोर विष आँखो से आग उगलनेवाले, करवाल जैसे तीक्ष्ण सप क दाँतो को अपना आवास बनाकर रहता हे—यह कथन अतीत काल म सत्य था किन्तु अब तो मेरे नयनो तथा मेरे मन मे सदा अवस्थित (सीता की) कोमल दृष्टि म ही वह (विष) बसा हुआ ह।

पर्वत प्रदेश, पुष्पो से भरे हुए सरोवरो के परिसर, विशाल उद्यान इत्यादि अनेक स्थान (खेलने योग्य) हे, फिर भी अलभ्य अमृत से भी अधिक मीठे बोलवाली, और चमकते कुतलोवाली (सीता) के लिए क्रीडा का स्थान क्या मेरा हृदय ही हे ?

देवो के प्रभु (विष्णु के अवतार राम) इस प्रकार क मनोभावो से समय व्यतीत कर रह थे, उधर (जनक ने) हाथियो पर से यह ढिंढोरा पिटवाया कि भ्रमरो को मत्त करनेवाले कुतलोवाली (सीता) का विवाह कल होनेवाला ह, अत पुष्पो, रत्नो तथा वस्त्रो से मिथिला नगरी सजाई जाय।

ढिंढोरे के साथ ऐसी घोषणा होते ही, वृद्ध युवक, सुवासित केशोवाली स्त्रियाँ, सब एकत्र हुए। (नगर को सजाने के लिए) सब उतावल होने लगे तथा अपने बधु मित्रो के साथ आनन्द सलाप करत हुए उस दुर्लंघ्य रात्रि रूपी समुद्र को पार कर लिया।

अजनवण (राम) तथा कमल पर आसीन (सीता) दवी, कल पारपूण मगल युक्त निवाह क द्वारा परस्पर मिलगे—यह घोषणा होत ही दिनकर अपन अरुण करा स अधकार को चीरत हुए एग उदित हुआ, माना अपन वशज क विवाह क दर्शनाथ ही आ गया हा।

कुछ लाग वदनवार बाधन लग। कुछ लाग खभा पर रग बिरग पट लपट कर सजान लग। कुछ पूण कुभा पर वस्त्र लपेटने लगे, मघस्पर्शी अट्टालिकाओ पर उज्ज्वल रत्न खाचत कवच डालने लग। वेदो के तत्त्वज्ञ ब्राह्मणो का भाजन दन क लिए काइ अमृतसमापत भाजन बनान लगे।

हसिनी की गतिवाली नारियाँ तथा वृषभ की गतिवाल पुरुष उस नित्य नवीन नगरी म कले और पुगीवृक्षा को स्थान स्थान पर गाडने लग। काइ अति उत्तम मोतिया म स चुन चुनकर भारी मुक्ताओ का पहनने लगे। काइ स्वर्णाभरण और कोई रत्नाभरण पहनने लग।

काई सुगधित चन्दन तथा अगरु क अजन का वीथिया म छिडकन लग। काइ पुष्पा का (वीथिया मे) बिखेरन लगे। कोइ इन्द्रधनुप को लजानवाल विविध कात पूण रत्नो मे खचित प्रासादो पर अमूल्य मुक्ताओ की झालर लटकाने लगे।

(कुछ लोगो न) किरण पुजो का विखेरनेवाल भारी रत्नदीपा का और शीतल अकुरा से पूण 'पालिका' नामक (मिट्टी के) पात्रो[1] का उन स्फटिक वदिकाओ पर सजाया, जो (वदिकाएँ) किनारो पर क सुनहल वण और अपनी श्वतता क कारण एक साथ धूप और चाँदनी का फैला रही थी।

(कुछ लोगा न) मदर पवत सदृश ऊच सोधा क आँगना म, इन्द्रलोक म जिस प्रकार नक्षत्रो की काति फैली रहती ह, उसी प्रकार अनन्त काति फैलानवाल भारी मातिया की लडियो का लटकाकर 'मुतु पेडल' (चदोव)[2] लगाये, जिसम धूप रुक गई।

कही कुछ दासियो न हीरको से खचित मरकत की वेदी पर स्वच्छ प्रकाशवाल दीप सजाय। चन्द्र का छूनेवाले उन्नत प्रासादो पर सूय समान कातिवाली तथा सुनहल डडावाली पताकाएँ लगाई और काई अगरु लकडी को जलाकर सुगध फैलाने लगी।

काई सुगध पुष्पा का गाडियो पर लादकर ला रह थ। कुछ लाग उपवना स पत्ता और फलो को लादकर ला रह थ, कुछ लाग 'कुरवै'[3] नामक नृत्य करत हुए अपन कुडलो की काति का चारा ओर बिखेर रह थे, कुछ लोग अन्न पिडा का खाकर तृप्त हुए मत्तगजा क माथा पर मुखपट्ट बाँध रह थ।

(कुछ नारियाँ) चन्दन का लेप (अपन शरीर पर) लगा रही थी, काइ श्रेष्ठ वस्त्र पहन रही थी, काइ पुष्पो का अपने केशा म सजा रही थी, निमल मुकुर क सामन खडी

---

[1] विवाह आदि के अवसर पर मिट्टी के पात्रो मे नव धान्य के अकुर उगाय जात है और शुभकार्य हो जाने क पश्चात् नदियाँ म बहा दिय जात ह।

[2] दक्षिण म विवाह के समय 'मुतु पदल' लगात ह।

[3] 'कुरवै' नृत्य म बहुत स नर नारी एक दूसर का हाथ पकड वृत्ताकार म नाचत ह।

होकर कुछ स्त्रियाँ अपने चन्द्र समान मुखों पर तिलक लगा रही थीं, कोई अपने जूड़े में गजरे सजा रही थीं, कुछ सेमल की रूई जैसे अपने कोमल अधरों पर रक्तवर्ण लगा रही थीं।

मयूर सदृश कुछ नारियाँ, जब शृंगार कर लेती या अपने पतियों से मान करती हुई अपने आभरण उतार फेंकतीं, तब जो मोती, रत्न, शंख (वलय), प्रवाल सदृश लाल और कोमल सुगंध लेप, छूटे हुए पुष्प आदि गिर पड़ते थे, कुछ स्वामिनियाँ उन सब वस्तुओं को इकट्ठा करके महलों के बाहर फेंक देती थीं।

(कहीं) आगंतुक राजा लोग जमा थे, तो कहीं विप्र लोग इकट्ठे थे, कहीं मधुस्वरवाली वीणा का संगीत आस्वाद करनेवाले (जमा थे), तो कहीं संचरण करनेवाले 'पाण' (जाति के गायक) एकत्र थे, कहीं झुण्ड बाँधकर चलनेवाली दासियाँ थीं, तो कहीं घटिका यंत्र में विवाह लग्न के समय की गणना करनेवाले गणक लोग थे।

कहीं गणिकाएँ इकट्ठी थीं, कहीं पर कुछ लोग विविध कलाएँ (इन्द्रजाल आदि) दिखा रहे थे। कुछ लोग राजप्रासाद के द्वार पर एकत्र हो रहे थे, जहाँ विविध देश के राजाओं के आभरणों से गिरे हुए भारी मोती तथा दीप्त किरीटों के रगड़ खाने से गिरे हुए रत्न और स्वर्ण चूर्ण के अंबार पड़े हुए थे।

कुछ ऐसे पुरुष घूम रहे थे, जिनकी ढालों पर धूप और पैने शूलों से चाँदनी छिटक रही थी। वे युद्ध के लिए जानेवाले ऊँचे दाँतोंवाले मत्तगज के जैसे थे। कुछ सुन्दरियाँ आनन्द नृत्य कर रही थीं और अपने हास्य से पुरुषों के प्राण हर रही थीं।

उज्ज्वल रत्नों की चमक के कारण सर्वत्र ऐसा प्रकाश फैला था कि नयन गोचर पदार्थ भी दृष्टि में नहीं आते थे। देवता और पुष्पालंकृत केशवाली देवांगनाएँ यह पहचान नहीं पाती थीं कि स्वर्गपुरी वहाँ (स्वर्ग में) है अथवा यह (मिथिला) ही स्वर्गपुरी है और व्याकुल हो भटक रही थीं।

कुछ लोग रथों पर आते थे, कुछ शिविकाओं में आते थे, कुछ अन्य प्रकार के वाहनों पर आते थे, कुछ रत्नमय मुखपट्टों से अलंकृत मेघ जैसे हाथियों पर आते थे, कुछ हथिनियों पर आते थे, कुछ पैदल आते थे और कुछ गाड़ियों पर आते थे।

कुछ मुक्ताभरणों से भूषित थे, कुछ पुराने पहने हुए रत्नाभरणों को निकालकर नवीन श्रेष्ठ स्वर्णमय विविध आभरण पहने हुए थे, कुछ (नारियाँ) पुष्पमालाओं को घुँघराले केशों में पहने हुए थीं, कुछ विचित्र अलंकारयुक्त रेशमी वस्त्र धारण किये हुए थीं।

(कुछ सुन्दरियाँ) विष समान नयनोंवाली थीं, कुछ अमृतसमान बोलीवाली थीं, कुछ रक्त अधरवाली थीं, कुछ उज्ज्वल मंद हासवाली थीं, कुछ विशाल स्तन भार से युक्त थीं, कुछ सूक्ष्म कटिवाली थीं, कुछ हंसगामिनी थीं, और कुछ हथिनियों के सदृश चलनेवाली थीं।

उस मिथिला नगर की समृद्धि को एक ही स्थान पर, एक ही समय में एकत्र देखना असंभव है। उसके बारे में सोचना भी दुष्कर है। ओह! वह विवाह दिन इतना वैभवपूर्ण था, जितना प्रकाशमान स्वर्गलोक में देवेन्द्र के मुकुट धारण (राज्याभिषेक) का उत्सव दिन था।

जिसकी सीमा को पहचानना कठिन है, जिस पर स्वर्णपत्र छुपे हैं, जो पर्वत के जैसे ऊँचा उठा है, जिसमें विविध रत्न खचित हैं, वैसे मनोहर कंकणधारिणी सीता के विवाह योग्य सामग्री से परिपूर्ण उस मण्डप में राजाओं के अधिराज (दशरथ) आ पहुँचे।

श्वेतच्छत्र चाँदनी छिटका रहा था, आभरण समूह, आशा को चाँधियाते वाले सूर्य के जैसे प्रकाश को छिटका रहा था। भ्रमर समुदाय संगीत गा रहे थे। विजय प्रद अश्वों की टाप से उठी हुई धूल गगन को ढक रही थी। इस प्रकार (दशरथ) आ पहुँचे।

मंगल भेरियाँ मेघ के समान गर्जन कर उठीं। शंख वाद्य भी बज उठे। तुरहियाँ युद्ध में जिस प्रकार घोष करती हैं वैसे ही बज उठीं। ब्राह्मणों के द्वारा उच्चरित चतुर्वेद, रात्रि के समय समुद्र के घोष के समान ही शब्दित हो रहे थे।

रथ, हाथी और घोड़े, झुण्ड के झुण्ड, पृथक् पृथक् पंक्तियों में चल रहे थे। विशाल सेना युक्त दशरथ की सेवा में निरन्तर लगे रहनेवाले राजा भी इन्द्र के समीपस्थ देवताओं के समान शोभित हो रहे थे।

चक्रवर्ती इस प्रकार विवाह मण्डप में आ पहुँचे और स्वच्छ स्वर्ण के रत्नखचित आसन पर विराजमान हुए। मुनि और राजा यथाक्रम आसीन हुए, जनक भी अपने बन्धुवर्ग सहित आसन पर आ विराजे।

राजा, मुनि, स्वर्गवासी हंस समान मृदुगतिवाली लक्ष्मी सदृश रमणियाँ सब एकत्र थे, वह विलक्षण विवाह मण्डप उस मेरु पर्वत के तुल्य था, जिसके चारों ओर प्रकाश पिण्ड घूमते रहते हैं।

'मय' के द्वारा प्राचीन काल में निर्मित उस मण्डप में मेघ थे (दाता लोग थे), बिजलियाँ थीं (सुन्दर स्त्रियाँ थीं), अनुपम नक्षत्र थे (राजा थे), अन्य तारिकाओं के संघ (राजाओं के परिवार) भी थे, दो प्रधान ज्योति मंडप, अर्थात् सूर्य चन्द्र भी थे (दशरथ और जनक थे), अतः वह मण्डप मानो सृष्टि के आदि में अज (ब्रह्मा) के द्वारा निर्मित अंडगोल ही था।

आदरणीय तपस्यावाले मुनिवर, सभी राजा, देवता तथा अन्य जन उस मण्डप में एकत्र हुए थे, अतः वह पृथ्वी स्वर्ग प्रभृति समस्त अंडगोल को निगले हुए विष्णु के नीलरत्न तुल्य उदर के सदृश था।

भूलोक आदि सब लोकों के जन (विवाह देखने की इच्छा से) प्रेरित होकर उस मंडप में इकट्ठे हुए। अब और क्या कहना है। अब हम सप्त पृथक् अंडगोल को छोड़कर (अयोध्या में) अवतीर्ण हुए राघव के कार्यों का वर्णन करेंगे।

रामचन्द्र यथाविधि, उन सप्त समुद्रों के जल में, जिनमें शंख समूह संचरण करते हैं तथा शाश्वत वेदों में प्रशंसित गंगा प्रभृति नदियों के जल में स्नान किया।

फिर ब्रह्मा से तृण पर्यंत, समस्त प्राणिवर्ग को, उनके अनादि गाढ़ (अज्ञान के) अंधकार को मिटाकर दीर्घ अपुनरावृत्ति के मार्ग में (अपवर्ग में) पहुँचानेवाले अपने (अर्थात् विष्णु के) चिह्न भूत ऊर्ध्व पुण्ड्र[1] को धारण किया।

[1] इस पद्य में ऊर्ध्व पुण्ड्र का माहात्म्य कहा गया है।

मीन क जेस नत्रवाली कन्याओं का, वदज्ञ ब्राह्मणा का वद विहित रीति स दान किया। निष्कलंक तपस्यावाले अपन पूर्वज, जिनकी उपासना (कुलदव क रूप म) करत रह ह, उन आदि ज्योतिस्वरूप (रंगनाथ)[1] के चरणों को प्रणाम किया।

(राक्षसों क द्वारा) नष्ट की जानवाली तपस्या तथा धर्म क उद्धार क लिए निरन्तर वर्तमान रहनेवाली (भगवान् की) करुणा ही इस आकार म आई हो इस प्रकार भासित होनवाले, चित्रित करन क लिए भी दुष्कर (अर्थात , उतन सुन्दर राम) ने अपन शरीर पर चन्दन रस का लेप किया। वह दृश्य ऐसा था, मानो काले मेघ पर ज्योत्स्ना छा गई हो।

उमडनेवाले अपार सागर ने मंगलप्रद तथा सब कलाओं स पूर्ण चन्द्रमा को अपन मध्य विकसित पाया हो, इस प्रकार का दृश्य उपस्थित करत हुए राम ने 'किडै' (नामक लाल जटामासी), लाल स्वर्ण के हार और पुष्पमालाओं को एठकर अपने केशा म धारण किया।

(राम के दोनो कानो म) दो कुण्डल इस प्रकार शोभित हुए, मानो रात्रि और दिन म (सीता की) विरह पीडा को देखकर सूर्य और चन्द्रमा दूत बनकर (राम के पास) आय हो ओर सीता क मनोभावो को राम के कानो म कह रह हो।

नील विष को कंठ म धारण करनेवाले, परशु आयुधधारी (शिव) न अपनी दीर्घ जटा पर चन्द्र की एक कला धारण की थी, अब (मानो उनकी शोभा को मंद करने के लिए ही राम ने) सब ज्योतिर्मय देवताओ (सूर्य, अग्नि, नक्षत्र आदि) को अपने सिर पर धारण कर लिया हो, इस प्रकार (राम ने) 'वीरपट्ट' (नामक आभरण) तथा, 'तिलक' (नामक आभरण) धारण किये।

(विष्णु क) चक्रायुध क निकटस्थ शंख की समता करनेवाले, अति सुन्दर (राम के वदन के निकटस्थ) कंठ म लता सदृश उज्ज्वल मुक्ताहार शोभायमान था , वह ऐसा लगता था, मानो घने कोमल कुन्तलोंवाली (सीता) के मन्दहास (राम क) मन म भर गय हो और अब शरीर क बाहर भी उमड रह हो।

(राम ने) अंगद धारण किये, जिसम पर्वतियों म जटे हीरे नदियो क समान चमकत थ और लाल माणिक्य अग्नि क जैसे लगत थे, अत (उनको) सुन्दर भुजाओ पर के अंगद प्राचीन काल म (क्षीरसागर के मथन क समय) मन्दर को लपेटे रहनेवाले वासुकि सर्प के समान दिखाई दते थ।

मुक्ताओ की बडी बडी मनोहर लडियाँ (राम की) रक्षा करनवाली दीर्घ बाहुओं म बाँधी गई, व अतिविलक्षण आभरण मानो इस बात के चिह्न हो कि तीनो भुवनो के अनादि प्रभु यही ह।

उनके, देखने योग्य (अति सुन्दर) करो म कटक' आभूषण चमक उठे, मानो

---

[1] वाल्मीकि रामायण स विदित ह कि रंगनाथ ही इक्ष्वाकु वंश के राजाओं के कुलदव थ श्रीरंगम (जिला तिरुचिरापल्ली) क स्थल-पुराण म भी यही बात मालूम होती ह।—अनु

कल्पक वृक्ष, अपने याचकों को दान देने के लिए, भव्य रत्न और स्वर्ण वलयों को अपनी पुष्ट शाखाओं में लिये खड़ा हो।

मधुपूर्ण कमलपुष्प की देवी (लक्ष्मी) जिस वक्ष पर निरंतर क्रीडा करती है, उसके मध्य सुन्दर हार ऐसे चमक रहे थे जैसे बिजली से शोभायमान मेघों के मध्य इन्द्र धनुष चमक रहा हो।

उनका उत्तरीय उन ज्ञानियों के निर्मल ज्ञान के समान उज्ज्वल था, जो किसी वस्तु को अपनाने या त्यागनेवाली स्वाधीन इच्छा रखते हैं, मानो राम की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई असीम करुणा ही उनके मुक्ताहार की कांति के सदृश ही, उस उत्तरीय के रूप में पड़ी हो।

जिनके समीप में जाना भी दुष्कर है, ऐसे प्रकाश से पूर्ण तीन ज्योतियों (अर्थात् सूर्य, चन्द्र और अग्नि) के जैसा चमकता हुआ उनका यज्ञोपवीत, मानो संसार के सब लोगों को यह बताने के लिए ही तीन सूत्रों को एक रूप में बाँधकर बनाया गया हो कि त्रिमूर्तियों का स्वरूप स्वयं यह राम ही है।

(राम की कटि में 'उदर बंधन' नामक आभरण बाँधा गया।) चारों दिशाओं में अत्यधिक स्वर्णिम आभा को फेंकता हुआ, मध्य में एक बड़े रत्न से जाज्वल्यमान 'उदर बंधन' ऐसा लगता था, मानो एक दूसरे अंडगोल के स्रष्टा ब्रह्मा को उत्पन्न करनेवाला एक बड़ा स्वर्ण कमल विष्णु की नाभि से विकसित हुआ हो।

उन्होंने श्वेतवर्ण का कौशेय धारण किया, मानो उज्ज्वल रत्नों के आगार, महिमापूर्ण नील समुद्र को, (तरंग रूपी) दीर्घकरों से युक्त, शीतल श्वेतवर्ण के क्षीर सागर ने आलिंगन बद्ध कर लिया हो।

समुद्र के जल में उत्पन्न मुक्ताएँ और उज्ज्वल नील रत्न, जिसमें करवाल में चमक रहे थे वह (करवाल) उनके कमनीय स्वर्णपट्ट में बाँधा गया, जैसे ऊँचे स्वर्ण पर्वत (मेरु) की परिक्रमा करनेवाला सूर्य एक ही स्थान पर स्थिर खड़ा रह गया हो।

उनकी कटि के पट्ट में श्रेणियों में जो मुक्ताएँ जड़ी थीं, उनकी धवल कांति का पुंज, उत्तरोत्तर विकसित होता हुआ, चारों ओर बिखर रहा था। कटि से एक रत्न माला लटकाई गई, जो कमनीय खड्ग रूपी सूर्य के बालातप के सदृश चमक रही थी।

(उनकी जंघाओं पर 'किंपुरी' नामक आभरण पहनाया गया, जिसका आकार खुले मुखवाले मकर के समान था।)

किंपुरी नामक आभरण में जो मकर के आकार का था, उसके नेत्रों के स्थान में खचित रत्नों की कांति फैल रही थी तथा दाँतों (के स्थान में खचित मुक्ताओं) की कांति चाँदनी के समान छिटक रही थी। नक्काशीदार उस आभरण ने चमकती बिजली के समान सभी दिशाओं को प्रकाश से भर दिया।

अब देखेंगे कि (ये चरण) विशाल होकर कैसे लोकों को नापते हैं—यों सोचकर मानो पृथक् पृथक् रूप में उनको रोकने के लिए ही, अति सूक्ष्म शिल्प युक्त नूपुर और वीर वलय उनके शीतल, पुष्ट, रक्तकमल सदृश चरणों को घेरकर पड़े रहे।

माणिक्य-सोपान से प्रकाशित पलंग-पर्यंक पर आनन्दपूर्वक आरूढ़ हो (राम) अवतरित हुए हैं, वे इस प्रकार श्रृंगार के निमित्त विलक्षण अलंकार से सुशोभित हो गये।

(त्रिमूर्ति रूपी) तीन परम तत्त्वों में जो प्रधान है, जो सृष्टि का आदि कारण है, जो संसार के बंधन को त्यागनेवालों के द्वारा प्राप्यमान ब्रह्मानन्द स्वरूप है, तथा जो सब-पिता है, उस क्षीर सागर से उत्पन्न अमृत तुल्य (विष्णु के अंशभूत) श्रीराम ने जो अलंकार किया था, उसका वर्णन करना क्या संभव है?

अनेक सहस्र गाय, पीत स्वर्ण, असीम भूमि, नव रत्न आदि का सत्पुरुषों को दान दिया, प्रशंसनीय चतुर्वेद ही जिनके धन हैं, वैसे (ब्राह्मणों) के द्वारा अभिनन्दित होते हुए (राम) रथ पर आरूढ हुए।

स्वर्ण की धुरीवाला, रजतमय योग्य चक्रों से अलंकृत, हीरकों से खचित पीठिका युक्त तथा चारों ओर से जड़ित नवरत्नों की कांति से जाज्वल्यमान वह रथ, सूर्य के एक चक्र रथ की तुलना करता था।

शास्त्रोक्त (उत्तम) लक्षणवाले, ध्यान के द्वारा जानने योग्य, शक्ति से पूर्ण, प्रभूत सौंदर्यवाले, धर्म आदि चार पुरुषार्थों के जैसे चार अश्व, संसार की प्रकृति को जाननेवाले (राम) के रथ में जोते गये।

इस प्रकार के रथ पर, अरुण के समान ही, आनन्दाश्रु से पूर्ण नेत्रवाले भरत, वेत्र धारण करके (सारथि बनकर) आसीन हुए। वक्र धनुष धारी लक्ष्मण तथा उनके अनुज शत्रुघ्न सुन्दर सोने की मूठवाले चामर डुलाने लगे।

अन्यों के लिए दुर्लभ, अति रमणीय आकारवाले (राम) के अत्यधिक सौंदर्य के कारण वैसा हुआ, या शांत मन से (राम के सौंदर्य का) चिंतन करते रहने के कारण वैसी दशा हुई—हम कुछ निश्चित रूप से नहीं जानते। चाहे जो भी कारण हो, (इस दृश्य को देखकर) इस पृथ्वी के लोग अनिमेष (अर्थात्, पलक न मारनेवाले देवता) हो गये।

(मिथिला के लोगों ने) पुष्प बरसाये, सुगंध चूर्ण बिखेरा, कांतिवाले रत्न, स्वर्ण, वस्त्र आदि (दान में) दिये। उस मंगल पूर्ण नगर के लोगों के ऐसे कार्यों का क्या कारण है नहीं जानते। कदाचित् उन्होंने (राम के) सौंदर्य (रूपी मद्य) को छककर पी लिया हो। (जिससे उन्मत्त होकर इस प्रकार के कार्य कर रहे हों।)

राम को देखनेवाली सब नारियाँ स्तब्ध हो खड़ी रहीं और उनके सब आभरण खिसककर गिर गये, वह दृश्य ऐसा था, मानो सारी संपत्ति का दान करने के पश्चात् वे अपने पहने हुए आभरण भी लुटा रही हों।

समस्त संसार के सब आयुधधारी राजा लोग, हाथियों के झुंड के जैसे, (राम को) घेरकर आ रहे थे और निष्ठुर शरधारी धनुर्धारी (राम) विजयी चक्रवर्ती (दशरथ) से अधिष्ठित मण्डप के निकट रथ में जा पहुँचे, जैसे अरुण किरण सूर्य ऊँचे महामेरु पर जा पहुँचा हो।

ताजे फूलों के हार से शोभित वह वर (राम) उस मण्डप के निकट रथ से उतरे, उनके दोनों पार्श्वों में भरत तथा लक्ष्मण उनकी दोनों बाहुओं को आदर के साथ

सहारा देते हुए जा रहे थे, मण्डप में पहुँचते ही उन्होंने (राम ने) महान् तपस्वी मुनिवरों को प्रणाम किया, फिर नीति व्रतधारी अपने पिता के चरणों को नमस्कार करके (उनके) पार्श्व के आसन पर आसीन हो गये। तब—

मानो कोई अरुण स्वर्ण की लता, एक धनुष और दो मछलियों से शोभायमान चन्द्र को उठाये हुए, कलियों के साथ, रथ पर पूर्वदिशा में उदित हो रही हो, ऐसा दृश्य उपस्थित करती हुई जानकी उस मण्डप के मध्य आ पहुँची, जैसे (लक्ष्मी) पहले तरंगायित क्षीर सागर से उत्पन्न होकर, फिर भूमि पर अवतरित हो गई हो और अब किसी पर्वत के मध्य आविर्भूत हो।

विभूतियों से समृद्ध सब देवता लोग (उस मण्डप में) आसीन कुमार (राम) को देखकर कहने लगे—भरे हुए बड़े सागर को मथन करने से उत्पन्न, सुवासित कुंतलोंवाली (लक्ष्मी) ने जिस दिन (विष्णु का विवाह के चिह्नभूत) माला पहनाई थी, उस दिन से भी यह दिन अधिक मनोहर है।

जब गर्जन करनेवाले समुद्र से घिरी हुई धरती की नारियों, देवांगनाओं तथा नाग कन्याओं से भी (सीता) का लावण्य अत्यधिक है, तो उनके विवाह के समय (उनके) बढ़े हुए सौंदर्य का, अल्प बुद्धिवाला मैं किस मुँह से वर्णन कर सकता हूँ?

(विवाह की वह) शोभा देखने के लिए अंतरिक्ष में इन्द्र, शची के साथ आ पहुँचा। चन्द्रशेखर (अपनी) उमा के साथ आ पहुँचे कमलासन भी वाणी देवी के साथ आ पहुँचे।

यज्ञोपवीत से शोभित वक्षवाले अपार समुद्र के सदृश वेदज्ञों के संघ से घिरे हुए वसिष्ठ, परिपाटी के अनुसार उस समारोह पूर्ण विवाह को संपन्न कराने के लिए उपयुक्त उपकरण (आदि) लेकर आनन्द के साथ आ पहुँचे।

(उन्होंने) तडुल[१] फैलाकर उसपर दर्भों को बिछाया। वेदोक्त विधान से (अग्नि स्थापना के लिए उचित) स्थानों को निर्मित किया। कोमल पुष्पों को उन स्थानों के चारों ओर बिखेरा। होमाग्नि प्रज्वलित की और अनादि वेदमंत्रों का यथाविधि उच्चारण किया।

विवाह की वेदी पर आकर, विजयी वीर, महानुभाव (राम) और प्रेमभरी (उनकी) सगिनी, हंस तुल्य गतिवाली (सीता) विवाहोचित आसन पर आसीन हो गये। एक साथ आसीन वे दोनों क्रमशः ब्रह्मानन्द और (उसके उपायभूत) योग की समता करते थे।

चक्रवर्ती के कुमार के सम्मुख (स्थित होकर) जनक ने कहा—'परतत्त्व (विष्णु) तथा लक्ष्मी देवी के सदृश तुम मेरी रूपवती पुत्री के संग चिरजीवी रहो। और, यह कहकर स्वच्छ शीतल जल धारा को (राम के) रक्तकमल सदृश विशाल हाथ में दिया। (अर्थात्, जनक ने अपनी कन्या को राम के प्रति प्रदान किया।)

१ कुछ विद्वानों ने मूल में, तडुल, के स्थान पर, 'तडिला' पाठ को माना है, जो संस्कृत, स्थण्डिल, का रूपान्तर माना गया है, जिसका अर्थ होता है 'मिट्टी का आस्तरण'। यह अर्थ भी उपयुक्त मालूम होता है।—अनु०

ब्राह्मणो के आशीर्वाद घोष, आभरणो के सदृश सौदर्य को बढानेवाली नारी मणियो के अभिनन्दन गानो के घोष, पुष्पालकृत शिखावाले राजाओ तथा वन्दनीय देवो के आशीर्वाद घोष—इनके समान ही उत्तम शख वाद्य भी निनादित उठे ।

देवो के बरसाये कल्पक पुष्प, राजाओ के बरसाये सोने के पुष्प, अन्य लोगो के बरसाये उज्ज्वल मोती और स्वय विकसित पुष्प—इनसे यह पृथ्वी नक्षत्रो से प्रकाशमान आकाश की तरह शोभित हो उठी ।

वीर (रामचन्द्र) ने, उस समय, सभी पवित्र मत्रो का उच्चारण करके, प्रज्वलित अग्नि मे घृत की आहुतियाँ दी और सुन्दरी (जानकी) के पल्लव कोमल पाणि को अपने विशाल शुभ हस्त से ग्रहण किया ।

उचित होम करनेवाले, विशाल भुजाओ से शोभायमान (राम) के सग जब (सीता) प्रज्वलित अग्नि की परिक्रमा (भॉवरी) करने लगी, तब सहज मुग्धता से युक्त वह सुन्दरी ऐसी लगी, जैसे परिवर्त्तनशील जन्म चक्र मे कही देह, आत्मा का अनुसरण करती जा रही हो । (आत्मा शरीर की खोज मे जाती है, किन्तु शरीर आत्मा का अनुगमन नही करता । यहाँ पर इस 'अभूतोपमा' मे कवि की एक विलक्षण, किन्तु अतिसुन्दर उदभावना है ।)

सुन्दर तीन धागो के ककण से युक्त उन दोनो ने होमाग्नि की प्रदक्षिणा करके नमस्कार किया । अन्य कर्त्तव्य कर्म सम्पन्न किये । कातिपूर्ण सिल पर पद रखा ।[१] फिर, सम्मुख स्थित, अचचल पातिव्रत्यवाली अरुधती (नक्षत्र) को देखा ।

(राम ने) अन्य कर्त्तव्य पूरा करके, आनन्द भरे, महातपस्वियो के चरणो मे सिर लगाया । फिर, चक्रवर्ती (दशरथ) के चरणो की वदना की और स्वर्ण ककणधारिणी सीता का कर अपने हाथ मे लेकर अपने मनोहर भवन मे जा पहुँचे ।

भेरियाँ गर्जन कर उठी, शख बज उठे, चतुर्वेदो के घोष हो उठे, देवता आनन्द घोष कर उठे, विविध शास्त्र तथा अभिनन्दन गीत प्रतिध्वनित हुए भ्रमर समुदाय भी गुजार कर उठे और समुद्र भी गर्जन कर उठे ।

(राम ने) केकय पुत्री के प्रकाशमान चरणो का, अपनी जननी के प्रति प्रेम से भी अधिक प्रेम के साथ नमस्कार किया । अपनी माता के चरणयुग को सिर पर धारण किया और फिर निष्कलुष मन से सुमित्रा के चरणो को प्रणाम किया ।

हसिनी (सीता) ने भी उन तीनो देवियो के मनोहर स्वर्ण सदृश चरण कमलो को अपने सिर का भूषण बनाया । उन देवियो ने उमग भर मन से कहा—यह (हमारे) कुमार का भव्य आभरण बनी रहेगी और अविचल पातिव्रत्यवती अरुधती भी इसे (आदर्श के रूप मे) देखेंगी ।

फिर उन देवियो ने शख वलयो से भूषित, कोकिल स्वरवाली जानकी को अक

१ दक्षिण में विवाह के समय अग्नि-प्रदक्षिणा करने के पश्चात् वधू सिल पर अपना दाहिना पैर रखती है और वर उसके अगूठे का स्पर्श कर एक मंत्र का उच्चारण करता है ।—अनु

से भरकर कहा—रमणीय नयनवाले (राम) की पत्नी बनने योग्य इनके अतिरिक्त कोई दूसरी नारी कहाँ है ? सीता को देख देखकर उनकी आँखें आनन्द से भर गई और उनके मन उमंग से भर गये।

उन्होंने अपनी पुत्रवधू को आशीर्वाद दिया और कहा कि स्त्री समुदाय के भूषण जैसी तुमको अनेक स्वर्ग, असंख्य अपूर्व आभरण, (दासियों के रूप में) असंख्य सुन्दरियाँ, विशाल भूप्रदेश और अमूल्य रेशमी वस्त्र आदि स्त्री समुदाय के भूषण प्राप्त हों। यह कहकर उन्होंने कई आभरण आदि उन्हें दिये।

पवन से तरंगायित समुद्र जैसे नील वर्णवाले करुणासमुद्र (राम), शास्त्र समुद्र स्वरूप मुनियों का आदेश पाकर, आनन्द समुद्र बने हुए मनवाली (सीता) के साथ अपने पुरातन पर्यंक क्षीर समुद्र जैसे पर्यंक पर जा पहुँचे।

[इस पद्य में 'समावेशन' नामक विधान की ओर संकेत है, जिसमें दंपती ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए एक साथ रहकर चार रात्रि व्यतीत करते हैं।]

मीन मास (फाल्गुन) के उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र युक्त दिन में मन्मथ नामवाले शिव सदृश (राम) का विवाह सम्पन्न हुआ, और उसके योग्य मंगलप्रद समारोह को वसिष्ठ मुनि ने समृद्ध किया।

अकलंक जयशाली (जनक) ने (दशरथ आदि) बन्धु जनों से परामर्श करके निश्चय किया कि अपनी दूसरी पुत्री (ऊर्मिला) तथा अपने अनुज की दो पुत्रियाँ (माण्डवी और श्रुतकीर्त्ति) इन तीनों लक्ष्मी सदृश कन्याओं का विवाह राम के तीनों भाइयों के साथ कर दिया जाय।

पुष्पमालाधारी जनक और घृतसिक्त शूलधारी कुशध्वज नामक उनके अनुज, दोनों की तीन पुत्रियों के साथ, जो सभी योग्य गुणों से शोभित थीं, काजल लगी आँखोंवाली थीं, और सुन्दरियों के सदृश रमणीय थीं और प्राप्तवय थीं, तीनों (लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न) ने विवाह कर लिया।

उन सब (भाइयों) का विवाह सम्पन्न होने के पश्चात् चक्रवर्त्ती (दशरथ) अनेक वर्षों से अर्जित अपने यशमात्र को छोड़कर, उसके अतिरिक्त अन्य सब प्रकार की सम्पत्ति का दान कर दिया और जिसने जो भी और जितना भी माँगा, उसको वह सब दे दिया।

(इस प्रकार) दान करके चक्रवर्त्ती दशरथ विलक्षण तथा असीम आनन्द को प्राप्त हुए, फिर वेद शास्त्रों के मर्मज्ञ तथा महातपस्वी मुनियों के साथ, उस (मिथिला) नगर में विश्राम करते रहे। इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए। उसके पश्चात क्या घटित हुआ, वह (आगे) कहेंगे। (१–१०४)

अध्याय २१
परशुराम पटल

जनक पुत्री के सग श्रीराम नानाविध भोगो का उचित प्रकार मे अनुभव कर रहे थे। उस समय महातपस्वी कौशिक, वेद विहित रीति से आशीर्वाद देकर, उत्तर दिशा म अत्युन्नत हिमालय की ओर चले।

एक दिन वलशाली चक्रवर्त्ता (दशरथ) ने आदेश दिया कि हमारी सेना अव हमारे साथ सुन्दर (अयोध्या) नगर के लिए प्रस्थान करे। हाथियो के जैसे नरेशो से वन्दित होते हुए, वे एक अनुपम रथ पर आरूढ हुए।

सर्व प्रकार के बलो से युक्त दशरथ (अयोध्या के) माग पर आ पहुँचे, उस समय, उनके पुत्र तथा पुत्रवधुएँ उनके चरण की वदना करके उनके सग हो लिये। राजकुमार तथा अन्य लोग उनके पार्श्वों मे चलने लगे। मिथिला नगर की प्राचीन जनता भी उनके वियोग से ऐसा दु ख अनुभव करने लगी, जैसा प्राणो के वियोग से शरीर को होता है।

दीर्घ किरीटधारी (दशरथ) यथाविधि आगे आगे जा रहे थे और उस मनोहर महानगर मिथिला के निवासियो के मन उनके पीछे पीछे चल रहे थे। उनके मध्य म, अपने ही सदृश (अपने) भाइयो के द्वारा अनुगत होते हुए, वीर (राम) मेघस्थ बिजली सदृश कटिवाली (सीता) के साथ सुन्दर ढग से चलने लगे।

वे जब इस प्रकार जा रहे थे, तब मयूर उनके दक्षिण की ओर आये (जो शुभ शकुन था) और कौए आदि पक्षी बाईं ओर जाकर उनके मार्ग म बाधा उपस्थित करने लगे (जो अपशकुन था)। यह देखकर गजतुल्य (दशरथ) यह सोचकर कि 'मार्ग म कुछ बाधा उपस्थित होनेवाली है', अपन आकाशस्पर्शी रथ के साथ आगे न बढ़कर मार्ग के मध्य मे ही रुक गये।

इस प्रकार रुककर उन्होंने एक शकुन शास्त्रज्ञ को बुलाकर पूछा कि ये (शकुन) अच्छे हैं या कुछ विपदा आनेवाली है? तुम निष्पक्ष होकर सच सच बताओ। तब पर्वत तुल्य भुजावाले उन चक्रवर्त्ती के सम्मुख पक्षियो के सकेत को पहचाननेवाले उस व्यक्ति ने कहा—अब कुछ बाधा उपस्थित होनेवाली है, किन्तु फिर वह दूर हो जायगी।

शकुनज्ञ यह कह ही रहा था इतने म (परशुराम), जिनकी जटाओं से आकाश के अन्धकार को दूर करनेवाली काति चारो ओर बिखर रही थी, जिनके हाथ म फरसा था, जो चलनेवाले स्वर्ण पर्वत के सदृश थे, जो अग्नि उगलते थे, जो अग्नि के समान भयकर नेत्रवाले थे और जो वज्र सदृश कठोर वचन युक्त थे, वहाँ आ पहुँचे।

(उनको देखकर) उद्वेलित समुद्र म फँसी हुई नौका के जैसे लोग डगमगा उठे, महान् दिग्गज, जो स्तभ के जैसे धरती को धारे खडे थे, डिग उठे, समुद्र बौखलाकर उमड गये और स्थानातरित होने लगे, स्वर्ग के निवासी भयभीत हो अपना अपना स्थान छोड भागने लगे, रक्तस्वर्ण का एक धनुष झुकाकर, उसकी डोरी को चढाकर टकारित करते हुए तथा उसपर तीक्ष्ण बाण चुन चुनकर रखते हुए (परशुराम) आये।

निकटस्थ लोग सोचने लगे—खुले हुए व्रण से प्रवाहित रक्त के जैसे (लाल) नेत्रो से अग्नि ज्वाला प्रसारित करनेवाले (इन परशुराम) का यह कोप किसलिए उत्पन्न हुआ ? क्या स्वर्ग को धरती पर गिराने के लिए ? भूलोक को आकाश मे उठाने के लिए ? या असख्य प्राणियो को यम के मुख मे डालने के लिए ? (किसलिए ये कोप कर रहे हैं ?)

युद्ध के मध्य तीव्र हो उठनेवाले परशु के अग्र भाग से अग्नि शिखा प्रज्वलित हो उठी। जिससे रथारूढ होकर (मेरु) पर्वत की परिक्रमा करनेवाला सूर्य भी दिग्भ्रांत हो भटकने लगा। (उनके शरीर से) ऐसा प्रज्वलित तेज निकल पड़ा, मानो समुद्र मे रहने वाली वडवाग्नि ही आकाश तक उठकर प्रज्वलित होती हुई धरती पर चली आ रही हो।

उनकी बलिष्ठ भुजाएँ दिगन्तो मे जा फैली। चारो ओर बिखरी हुई उनकी जटामय शिखा नभ को छू रही थी। श्वेत चन्द्र भी उनके अतिनिकट दिखाई देता था। वे समुद्र, जल, अग्नि, वायु, भूमि, आकाश सबके विनाशकारी, कल्पात के समय मे ताडव करनेवाले उमापति (रुद्र) की समता कर रहे थे।

(ऐसे वे परशुराम आ पहुँचे) जिनके पास अति तीक्ष्ण धारवाला ऐसा फरसा था, जिसका प्रयोग करके उन्होने सैकत वेला युक्त समुद्र से घिरे हुए समस्त भूलोक पर छा जानेवाली बलशाली सेना से विशिष्ट तथा पराक्रमी नरेशो से तिलकायमान (कार्त्तवीर्यार्जुन) रूपी सजीव महावृक्ष की एक सहस्र उन्नत भुजा रूपी वज्रमय शाखाओ को काट दिया था।

क्षत्रिय कुल पर एक कलक (जमदग्नि की हत्या के कारण) लग गया था, जिससे परशुराम ने भूलोक के राजसमूह का समूल नाश करते हुए अपने परशु से इक्कीस पीढियों तक उनके प्राण हरे थे, भूमि के पापो का उन्मूलन किया था और उमडते समुद्र जैसे तरगायित उनके रक्त प्रवाह मे डूबकर अकेले ही गोता लगाया था।

क्षमास्वरूप महान् तपस्या तथा जलानेवाली अग्नि स्वरूप महान् कोप—ये जिसमे अत्यधिक मात्रा मे थे, अस्त्र प्रयोग की स्पर्धा मे जिनके सम्मुख शिथिल पडकर कार्त्तिकेय बीच मे ही (स्पर्धा छोडकर) चले गये थे और जिन्होने क्रोध के साथ विलक्षण तीक्ष्ण बाणो का प्रयोग करके उच्च शिखरवाले (क्रौंच) पर्वत मे ऐसा छेद कर दिया था, जो ऊँचे उडनेवाले पक्षियो के लिए (आने जाने का) एक सुन्दर मार्ग बन गया था।[1]

जो अनायास ही पर्वतो को (भूमि मे) धँसा सकते थे, समुद्रो को बहा देने मे समर्थ थे और जिन्होने मेघस्पर्शी पर्वत को भेद दिया था, वे परशुधारी वहाँ आ

१ यह कथा प्रसिद्ध है कि सुब्रह्मण्य और परशुराम ने शिवजी से अस्त्र विद्या प्राप्त की। अस्त्र-विद्या की परीक्षा के समय सुब्रह्मण्य बाणों से क्रौंच पर्वत को भेद नही सके, किन्तु परशुराम ने अपने बाणो का प्रयोग कर उसमें छेद कर दिया। उसके पश्चात् सुब्रह्मण्य ने अपना भाला फेंककर उस पर्वत को तोड़ दिया। उस पर्वत के शिखर के गिरने से दक्षिण दिशा में सरोवर ध्वस्त हो गये। तब वहा के हस परशुराम-कृत छेद के मार्ग से क्रौंच पर्वत के उत्तर में पहुच गये और हिमालय के मानस में निवास करने लगे।—अनु०

पहुँचे। प्रभु (रामचन्द्र) के जन्म के कारण भूत दशरथ चक्रवर्त्ती ने उन्हे देखा और उस कठोर व्यक्ति के आगमन से आशंकित होकर भारी वेदना से ग्रस्त हो गये ।

उमग से चलनेवाली सेना भयग्रस्त हो इधर उधर भागने लगी , उज्ज्वल भृकुटियो को परस्पर सम्मिलित कर (भाहे सिकोडकर), ऑखो से चिनगारियाँ उगलते हुए, वज्र के सदृश, अत्यन्त क्रोध के साथ, व (परशुराम) रथ पर आनेवाले सिह के समान कुमार के सम्मुख आये , मनोहर नयनवाले नृप कुमार (राम) भी यह सोचने लगे कि यह महात्मा कौन हैं ? इतने मे —

चक्रवर्त्ती (दशरथ) बीच मे आ पहुँचे और अति सुन्दर सत्कार करके अपने सुवासित सिर को धरती पर लगाकर उनके चरणो को प्रणाम किया , किन्तु (उनकी परवाह न करके) वे अपने कोप का पार न पाकर कल्पात की अग्नि ज्वाला फैलाते हुए वीर (राम) के सम्मुख आकर बोले—

जो धनुष टूट गया, उसकी शक्ति को मै जानता हूँ । अब तुम्हारी स्वर्ण भूषित भुजा के बल की परीक्षा करने की मेरी इच्छा है। युद्ध करके पुष्ट हुई मेरी भुजाओ मे कुछ खुजलाहट भी हो रही है यहाँ मेरे आगमन का कारण यही है , दूसरा कुछ नही ।

जब वे (राम से) ये वचन कह रहे थे, तब चक्रवर्त्ती ने घबराकर उनसे निवेदन किया—आपने सारी भूमि को जीतकर एक मुनि (काश्यप) को दान कर दिया था। आप जैसे कृपालु के लिए शिव, विष्णु और ब्रह्मा भी कोई वस्तु नही हैं, (तो) ये क्षुद्र मनुष्य किस बित्ते के हैं ? अब यह (मेरा पुत्र) और मेरे प्राण आपकी शरणागत हैं।

(दशरथ ने आगे कहा—) आग उगलनेवाले परशु को धारण करनेवाले ! महान् पापो को इच्छा पूवक करनेवाले ही तो मरण के पात्र होकर (आपके द्वारा) मृत्यु प्राप्त करते हैं ? क्या इस (राम) ने अहकार के मद मे बुद्धि भ्रष्ट होकर कोई अपराध किया है ? युद्ध करने योग्य बलवानों के निकट न जाकर निर्बल व्यक्तियो के पास जाने से बलवानो के बल की क्या शोभा हो सकती है ?

हे अपार तपस्या सपन्न ! आपने सप्तद्वीपमय पृथ्वी पर एकाधिकार प्राप्त करने के पश्चात् उसे (पृथ्वी को) 'लो, तुम इसे अपनाओ', कहकर (काश्यप को) दे दिया था। अब फिर ऐसा काम न कीजिए। विशाल शीतल समुद्र से आवृत भूमि पर स्थित नरपतियो पर कृपा कीजिए और अपना कोप शात कीजिए। क्या आपका यह कोप उचित है ?—यो विविध प्रकार की बातें कही।

(दशरथ ने आगे कहा—) उस पराक्रम से भी क्या होता है, जो निष्पक्ष न हो, केवल बढा हुआ हो और सब लोग जिसकी निन्दा करते हो। क्या उस पराक्रम से कोई धर्म कर्म पूण हो सकता है ? बल या पराक्रम वही तो (सार्थक) होता है, जो धर्म मार्ग पर स्थित हो और श्रेष्ठ यश से सयुक्त हो। हे पराक्रमी ! (आप जो अब करने को उद्यत हो रहे हैं) क्या यह पराक्रम कहलाने योग्य है ?'

'मेरा पुत्र (आप से) वैर करनेवाला नही है। हे उपलस्तभ सदृश भुजावाले ! यदि यह (पुत्र) प्राणहीन हो जाये, तो मै अपने बधु-जन तथा प्रजा के साथ प्राण त्याग

करूँगा और स्वर्ग प्राप्त करूँगा। हे महात्मन्! मैं आपके चरण-दास हूँ। मेरे कुल सहित मुझे न मिटा दें। आप से मेरी यही विनती है।

यों प्रार्थना करनेवाले अपने पैरों पर पड़े हुए (चक्रवर्ती) को (परशुराम ने) कुछ वस्तु ही नहीं समझा किन्तु प्रज्वलित दृष्टि से देखकर वे स्वर्ण रंग के वस्त्रधारी (राम) के सम्मुख आ पहुँचे, उनकी यह निष्ठुरता देखकर तथा अपना कोई उपाय फलीभूत होते न देखकर (दशरथ) विकल प्राण हुए और बिजली को देखे हुए साँप के समान मूच्छित हो गये।

मानधन मुकुटधारी (चक्रवर्ती) की मूच्छा की कुछ परवाह न करनेवाले तथा स्वयं उनको (परशुराम को) भी वैसी ही दशा में पहुँचानेवाला जो कर्म परिपाक उन्हें घेर रहा था, उसे दूर करने का उपाय न जाननेवाले उन्होंने (परशुराम ने) कहा—'डमरूधारी उमापति का वह पुराना धनुष शक्तिहीन हो गया था। उसका पुराना वृत्तान्त तुम सुनो--

भूलोकवासियों के लिए अप्राप्य शिल्प निपुणता से युक्त विश्वकर्मा ने पुरातन काल में एक चक्रवाले रथ पर आरूढ़ (सूर्य) की भ्रांति उत्पन्न करनेवाले, अति प्रकाशमान, तोड़ने में दुष्कर तथा संचरणशील मेघों से आवृत उत्तर मेरु के बल से युक्त, दो अनुपम धनुष निर्मित किये।

उनमें से एक को उमापति ने ग्रहण किया, दूसरे धनुष को, विराट् रूप धारण कर सारे विश्व को नापनेवाले त्रिविक्रम (विष्णु) ने अपने सुन्दर कर में धारण किया। यह विषय जानकर देवताओं ने ब्रह्मा से पूछा कि उन दोनों धनुषों में अधिक बलवान् कौन है?

सुरभित कमल पर आसीन (ब्रह्मा) ने सोचा कि देवता लोग (दोनों धनुषों की परीक्षा लेने का) जो विचार कर रहे हैं, वह उचित ही है और एक सफल उपाय के द्वारा उन शक्तिशाली धनुषों के व्याज से परब्रह्म के रूप में एक बनकर रहनेवाले उन दोनों देवों के मध्य घोर युद्ध उत्पन्न कर दिया।

दोनों (शिव और विष्णु) दोनों धनुषों पर डोरी चढ़ाकर युद्ध करने लगे, तो सातों लोक भय विकंपित हो गये। दिशाएँ डगमगाने लगीं। दोनों कोपाग्नि उगलने लगे। तब त्रिपुर का दाह करनेवाले (शिव) का धनुष कुछ टूट गया, इस पर वे (शिव) अधिक क्रोध से भर गये।

(शिव) फिर युद्ध के लिए उद्यत हुए, तो देवों ने उन्हें युद्ध से हटा दिया। ललाटनेत्र (शिव) ने अपना धनुष देवाधिदेव (इन्द्र) के हाथ में दे दिया, उधर विजयशील नीलवर्णदेव (विष्णु) भी अपना धनुष महान् तपस्वी ऋचीक मुनि को देकर चले गये।

ऋचीक ने वह धनुष मेरे पिता को दिया और अपने पिता से मैंने यह धनुष प्राप्त किया। हे वत्स! यदि तुम इस मेरे धनुष को चढ़ा दोगे, तो तुम्हारी समता करनेवाला नृप अन्य कोई नहीं होगा। मैं तुम्हारे साथ युद्ध करने को जो विचार कर रहा हूँ, वह भी छोड़ दूँगा और सुनो—

सड़े हुए धनुष को तोड़नेवाला जो बल है, उस पर फूल उठना अच्छा नहीं है। हे मनुवंशज! और भी सुनो। (मेरा) तुम क्षत्रियों के साथ पुराना वैर है, प्राचीन काल में

एक दानव-समान राजा ने मेरे निर्दोष पिता का क्रोध हीन (तपस्वी) जानकर भी मारा था, तो मैने क्रुद्ध होकर—

इक्कीस बार, धरती के किरीटधारी राजाओ का उग्र परशु की धार स समूल उखाड फेंका। उनके शरीर से प्रवाहित रक्त धारा म यथाविधि, अपने पिता के प्रति करणीय तर्पण कृत्य पूरा किया। (उसके उपरान्त) अपने कोप का दवा दिया।

समस्त पृथ्वी का मुनिवर (काश्यप) को दान कर दिया, अपने बडे बडे वैरियो को दबा दिया। बड तप म निरत होकर (महेन्द्र) नामक पर्वत पर निवास करता रहा। तुम्हारे शिवधनुष को तोडने की ध्वनि वहॉ पर सुनाई दी, तो कोप उत्पन्न हुआ और यहॉ आया हूँ। यदि तुम बलवान् हो, तो तुम्हारे साथ युद्ध करूँगा। पहले इस धनुष को चढाओ—

(परशुराम के) इस प्रकार कहते ही, राम ने मुस्कराकर, प्रकाशमान वदन स कहा—नारायण ने अपने बल से जिस धनुष का अभ्यास किया था, वह मुझे दीजिए। परशुराम ने वह धनुष दिया। वीर (राम) ने उसे लिया और अपने भुजबल से उसे झुकाया, जिसे देख भारी घनी जटावाले (परशुराम) भी भयभीत हो गये। फिर (राम ने) कहा—

यद्यपि तुमने भूलोक के राजकुल का विनाश किया है, तो भी वेदज्ञ ऋषिवर के पुत्र हो, और तपस्वी का वेष धारण किया है, अत तुम (मेरे लिए) अवध्य हो, किन्तु मेरा बाण भी व्यर्थ न होनेवाला है, अत इसका लक्ष्य क्या हो—शीघ्र बताओ।

(राम के वचन सुनकर परशुराम ने कहा—) हे नीतिज्ञ। कोप न करो, तुम सबके (सारे विश्व के) आदि (कारण) हो, मैने तुम्हे पहचान लिया, हे तुलसीमालाधारी चक्रधारिन्। श्वेत चन्द्र कलाधारी (शिव) का धनुष टुकडे टुकडे क्या हुआ, वह तो तुम्हारे पकडने के भी योग्य नही था।

स्वर्णमय वीर कंकण तथा रमणीयता से युक्त चरणवाले! तुम चक्रधारी (विष्णु) ही हो, यह सत्य है। अत, अब (तुम्हारे रहते हुए) ससार पर क्या विपदा आ सकती है? मैने जो धनुष तुमको दिया है, वह भी तुम्हारे बल के लिए पर्याप्त नही है।

तुम्हारे द्वारा चढाया हुआ यह बाण व्यर्थ न हो, इसलिए वह मेरे किये गये सब तप को मिटा दे। परशुराम के यह कहते ही, (श्रीराम का) हाथ किंचित् ढीला पड गया। वह बाण भी जाकर उनकी सारी तपस्या को सँजोकर लौट आया।

तब, स्वच्छ नीलरत्न वर्णवाले! मनोहर तुलसीमाला धारण करनेवाले! सब के प्राणभूत पुण्यस्वरूप! तुम्हारे सकल्पित सब कार्य अनायास ही पूर्ण हो जायेंगे। अब मुझे आज्ञा दो।—यह कहकर परशुराम प्रणाम करके चले गये।

पुन प्राप्त प्रज्ञावाले, विपदा से विमुक्त हो उल्लसित होनेवाले, मत्तगज की सेनावाले (दशरथ) जो दुर्लंघ्य विपत् सागर को पार कर चुके थे, अब आनन्द नामक वेलाहीन समुद्र म डूब गये।

लेश मात्र प्रेम से भी रहित उन (परशुराम) के हाथ के धनुष को लेकर (उसके बदले) उन्हे अनुपम अपयश देनेवाले उन महानुभाव (राम) को (दशरथ ने) अक मे भर लिया, सिर सँघा तथा अपने सुन्दर नेत्रो के आनन्दाश्रु रूपी कलश धार से अभिषिक्त किया।

दशरथ ने सोचा—इस छोटी अवस्था मे ही इसने जो अपूर्व कार्य किया हे और पराक्रम दिखाया है, वह तीनो लोको के निवासियो के लिए भी असाध्य है। निश्चय ही यह कुमार कर्म करनेवालो को ऐहिक और पारलौकिक फल प्रदान करनेवाला 'परमतत्त्व' है।

तब राम ने पुष्पवर्षा करते हुए आगत देवताओ म सुन्दर शूलधारी वरुण को देखकर, यह कहकर कि—इस महिमा मय कठोर धनुष को सुरक्षित रखो, उस विष्णु के धनुष को उसे साप दिया और आनन्द घोष करनेवाली अपनी सेना को साथ लेकर प्रसिद्ध तथा जल समृद्ध अयोध्या नगरी को जा पहुँचे।

सब लोग अयोध्या पहुँचकर आनन्द से रहने लगे। तब एक दिन, पराक्रमशाली तथा मार्जना से युक्त भेरी वाद्यो से प्रतिध्वनित सेनावाले चक्रवर्त्ती ने, (भरत से) अति सुन्दर तथा मगलप्रद वचन कहे —

तात! तुम्हारे मातामह, प्रसिद्ध शासक केकयाधिप तुम्हे देखना चाहते ह, अत आभरणो से प्रकाशमान वक्षवाले! सरोवरो मे स्थित शख (कीटो) से प्रतिध्वनित केकय देश को तुम जाओ।

(दशरथ के) आदेश देते ही भरत ने उन्हे नमस्कार किया, फिर राम क चरण कमला को अपने सिर पर धारण किया और राम के अनन्यप्राण भरत उन्हे छोडकर इस प्रकार चले, जैसे प्राणो को छोडकर शरीर चला जा रहा हो।

अयालयुक्त अश्वो तथा रथो से विशिष्ट एव शखो से प्रतिध्वनित सेनायुक्त 'युधाजित्' नामक राजा उनके साथ चले। भरत अपने अनुज (शत्रुघ्न) को साथ लेकर, सात दिनो मे शीतल जल से समृद्ध केकय देश मे जा पहुँचे।

भरत चले गये। चक्रवर्त्ती (दशरथ) त्रुटिहीन शासन करत रह। देवो की तपस्या अभी शेष थी, जिससे आगे जो घटनाएँ घटित हुई, अब उनका वर्णन करेगे।

(१—५०)

●

कंब रामायण

अयोध्याकाण्ड

मंगलाचरण

कुब्जा (मथरा) तथा क्षात्र धमवाली विमाता (कैकेयी) के क्रूरतापूर्ण कार्य के कारण राज्य त्याग कर, अरण्य एव समुद्र को पारकर, रावण आदि के वध के द्वारा स्वर्ग वासियो तथा पृथ्वीवासियो की विपदा को दूर करनेवाले चरणो से शोभायमान हे प्रभो! (हे राम!) ज्ञानी लोग कहते है कि तुम उन सब पदार्थो मे, जो (पदार्थ) मूल प्रकृति से विवर्तित होकर अनत रूप मे फैले हुए पच महाभूतो के कार्य रूप है, अतर और बाहर मे इस प्रकार परिव्याप्त होकर रहते हो, जिस प्रकार शरीर और प्राण रहते है तथा प्राण और बुद्धि रहते है।

●

अध्याय १

मंत्रणा पटल

दशरथ के कर्णमूल मे एक केश, अपने काले रग को छोडकर श्वेत रग के साथ दिखाई पडा। वह ऐसा लगा, मानो उन (दशरथ) के कान मे यह बात कहने के लिए आया हो कि हे राजन्! अब तुम्हारी अवस्था इस योग्य हो गई है कि तुम अपना राज्य अपने पुत्र (राम) को देकर तपस्या मे निरत हो जाओ।

मानो रावण के पाप ही (दशरथ के) पके केश रूप मे आये हो—यो भूमिपाल (दशरथ) ने अपना मुख आईने मे देखते समय अपने पके हुए केश को देखा।

अलकारो से भूषित, अधिक क्रोध से भरे, एव हौदोवाले बडे बडे हाथियो से युक्त चक्रवर्त्ती (दशरथ), मेघो के समान नगाडो के गरजते तथा अपने चारो ओर अति सुन्दर चामरो के डुलते हुए मत्रणा गृह मे आ पहुँचे।

वहाँ पहुँचकर चक्रवर्त्ती ने अपने साथ आय (सामन्तो) नरेशा, अनुपम बधुजनो तथा परिवार के अन्य लोगो को मृदुल वचनो से वहाँ से भेज दिया और एकात म इस प्रकार बैठे रहे, जिस प्रकार चक्रपाणि (विष्णु) तटस्थ रहकर ससार की रक्षा करने के निमित्त एकात मे योग निद्रा धारण करते ह।

उन चक्रवर्त्ती ने, जो चद्रोपम तथा गगनोन्नत श्वेत छत्र क साथ ससार की रक्षा करते थे, देवो के गुरु बृहस्पति क समान रहनेवाले अपने मत्रियो का बुला भजा।

उस समय वे वसिष्ठ मुनि मत्रणागृह म जा पहुँचे, जा सुन्दर वीर ककण धारण करनेवाले चक्रवर्त्ती को पौरोहित्य रूपी रक्षा देने तथा मार्ग दशन कराने के कारण अत्यधिक आदरणीय थे, देवो तथा मुनियो के लिए देवतुल्य थे, एव त्रिमूत्तियो क साथ चौथे देव के सदृश थे।

फिर वे मत्री लोग आ पहुँचे, जो कुलक्रम से (इक्ष्वाकु वश के राजाओ के) मत्री का कार्य करते आये थे, प्रभूत कला सपन्न थे, बहुश्रुत थे, पुरुषाथ सपन्न थे, अपने हित की हानि होने की सभावना होने पर भी जो तटस्थता को नही त्यागनेवाले थे, क्रोध आदि दुगुणो को जिन्होने मूल सहित मिटा दिया था तथा अपूव धर्मो का आचरण करते थे।

जो वर्त्तमान व्यापारो से भावी परिणामो का अनुमान लगाने म समर्थ थे, जो बुद्धिबल से युक्त थे, भाग्य का परिणाम होने पर भी भावी को बदलने का उपाय करने म चतुर थे, जो उत्तम कुल के योग्य सदाचार से युक्त थे, जिन्होने अनेक अपूव शास्त्रो का अध्ययन किया था, जो अभिमान मे चमरी मृग क समान थे।[1]

वे ऐसे शीलवान् थे कि उचित काल, स्थान, साधन आदि को शास्त्रानुकूल रीति से परखकर, दैव की अनुकूलता को भी देखकर, धर्म की उन्नति करनेवाले थे। यश देनेवाले कार्यों को जानकर उनके द्वारा राजा के पुरुषार्थों को बढानेवाले थ।

चक्रवर्त्ती के क्रुद्ध होने पर भी वे मत्री अपने प्राणो की रक्षा की चिन्ता नही करते थे, किन्तु राजा के क्रोध को सहकर भी अपने सिद्धान्त पर दृढ रहते थे और नीति का ही कथन करते थे। सन्मार्ग से कभी न डिगनेवाले थे। त्रिकाल के व्यापारो को जाननेवाले थे। (स्वय विचार करके किये गये निर्णय को) एक ही बार प्रतिपादित करनेवाले थे।

चक्रवर्त्ती के लाभ और हानि का विवचन करके अन्त म वैद्य के समान (उनके हित को ही) सोचनेवाले थे। अकस्मात् कोई विपदा उत्पन्न होने पर पूर्व जन्म के सुकृत के समान आकर सहायता करनेवाले थे।

सपत्ति से युक्त ऐसे मत्री यद्यपि साठ सहस्र थ, तथापि चक्रवर्त्ती का हित करने के विषय म सबकी बुद्धि एक ही थी। वे अपूव मत्रणा शक्ति से सपन्न थे। ऐसे वे मत्री वीचियो से भरे समुद्र के समान वहाँ आ पहुँचे।

वे मत्री यथाक्रम आये। उन्होने पहले महान् ज्ञानी वसिष्ठ को प्रणाम किया,

१ अभिमान में चमरी-मृग के समान थे—अर्थात्, जिस प्रकार अपने केश खोकर चमरी-मृग जीवित नहीं रहता, उसी प्रकार ये मत्री अभिमान को खोकर जीवित रहनेवाले नही थे।—अनु०

फिर अपने राजा को प्रणाम किया और यथोचित स्थान पर आसीन हुए। वे उचित शब्द तथा अर्थ के ज्ञान से युक्त चक्रवर्त्ती की कृपा दृष्टि के पात्र बने।

इस प्रकार, जब वे आसीन हो गये, तब चक्रवर्त्ती ने उनके मुखो की ओर क्रम से देखकर कहा, मेरी एक चिरकालिक इच्छा है, मेरी बुद्धि के अनुकूल रहनेवाले आप लोग ध्यान से सुने—

मै सूर्यकुल के उत्तम राजाओ की परपरा मे स्थिर रहकर, आप लोगो की सहायता से साठ सहस्र वर्ष से शासन करता रहा हूँ।

मैने कन्याओ के लिए योग्य पातिव्रत्य रखनेवाली धरती का धर्मपूर्ण शासन किया है और अबतक ससार के प्राणियो का हित करता रहा हूँ। अब मै अपने जीवन को सफल करना चाहता हूँ।

मै तपस्या के योग्य वार्द्धक्य को प्राप्त कर चुका हूँ। अबतक मै, फनवाले आदि शेष, दिग्गज, प्रसिद्ध कुलशैल—इन सब के भार को कम करके इस पृथ्वी का भार वहन करता रहा। किन्तु, अब इस भार को वहन करने की किंचित् भी शक्ति मुझमे नही रही।

मेरे कुल मे उत्पन्न मेरे पूर्वज, अपने पुत्रो को राज्य का भार देकर स्वय अरण्य मे चले जाते थे और क्रूर इद्रिय समुदाय को सयम मे लाकर मोक्ष प्राप्त करते थे। ऐसे राजा (हमारे कुल मे) असख्य उत्पन्न हुए है।

समुद्र से आवृत धरती मे, स्वर्ग मे, पाताल मे, सर्वत्र मैने शत्रुओ को परास्त किया। अब क्या मै काम आदि अतश्शत्रुओ के वशीभूत रहकर भय के साथ जीवन व्यतीत करूँगा?

मैने अलक्तक रस (महावर) लगे हुए कोमल चरणवाली कैकेयी के सारथ्य करते हुए रथ पर आरूढ होकर, कठोर क्रोधवाले दस राक्षसो के रथ को विध्वस्त किया और उन राक्षसो को परास्त किया। ऐसे मेरे लिए, पचेन्द्रिय रूपी रथो को, जिन पर मन रूपी भूत आरूढ रहता है, परास्त करना क्या कठिन कार्य है?

कोई (क्षत्रिय) जबतक वह शत्रुओ की सेना के साथ युद्ध करते हुए न मरे या उत्तम ज्ञान को प्राप्त न करे अथवा सपत्ति की नश्वरता को देखकर ससार की आसक्ति को न छोड दे, तबतक उसे मुक्ति नही प्राप्त होती।

इस ससार के लोगो के लिए इस सत्य को भूलने से बढकर हानिकारक विषय और कुछ नही है कि हमारी मृत्यु अवश्य होनेवाली है। यदि विरक्ति रूपी नौका हमारी सहायता न करे, तो इस जीवन रूपी समुद्र को हम कैसे पार कर सकते है?

यदि महिमा से पूर्ण वैराग्य तथा उस (वैराग्य) से उत्पन्न होनेवाला सत्यज्ञान—ये दोनो पख हमारे पास हो, तो हम इस जीवन रूपी कारागार से मुक्ति पा सकते है।

मेरा मन, सुख की परपरा के जैसे (अर्थात्, सुख की भ्राति उत्पन्न करते हुए) आनेवाले इन्द्रिय रूपी शत्रुओ को मिटाकर मोक्ष नामक अनुपम साम्राज्य को पाना चाहता है। अब इस ससार के राज्य को वह (मेरा मन) नही चाहता।

आपलोगो को (मत्रियो के रूप मे) पाने के कारण मै सारे ससार की

यथाविधि रक्षा करने का और पुण्य कार्य किये। यो, इस ससार के जीवन मे मेरी सहायता करनेवाले आपलोगो को, मेरे परलोक जीवन के लिए भी कुछ सहायता करनी है।

जब हम अपने पूर्वकृत पापो को अपार करुणापूर्ण तपस्या से दूर कर सकते है, तब कौन ऐसा मनुष्य होगा, जो अनुपम अमृत को छोडकर उसके विरोधी कठोर विषय का पान करेगा?

आलान मे बधे हुए मत्तगज की पीठ पर के मयूरपखो तथा श्वेत छत्र की सुखद छाया शाश्वत नही होती। अनेक दिनो से आस्वादित होकर जो जूठा हो गया है, उसके आस्वादन मे अब क्या आनन्द आ सकता है?

पुत्र न होने से मै अनेक दिनो तक दुखी रहा। मेरे उस दुख को दूर करने के लिए राम उत्पन्न हुआ। अब मै उसको प्रसन्न रखकर स्वय इस ससार की बाधा से मुक्त होने का उपाय करूँगा।

'राम के पिता ने युद्ध क्षेत्र मे मृत्यु नही प्राप्त की। अधिक वृद्ध होने पर भी वह आसक्ति हीन नही हुआ'—ऐसा अपयश उत्पन्न हो तो मेरा जीवन ही व्यर्थ हो जायगा।

रामचन्द्र जैसा पुत्र मुझे हुआ है और सीता जैसी लक्ष्मी के साथ उसका विवाह होते हुए मैने देखा है। अब मै उस (राम) का विवाह क्षमा नामक गुणवाली भूदेवी के साथ होते हुए देखना चाहता हूँ।

भूमि नामक गौरवपूर्ण रमणी का तथा अरुण कमल पर आसीन लक्ष्मी का, अपने मनोनुकूल पति पाने का जो सौभाग्य होता है, उसके फलीभूत होने मे विलम्ब करना उचित नही है।

अत, मै राम को राज्य देकर, अज्ञान जन्य इस जन्म को दूर करने के उपाय भूत महान् तपस्या करने के लिए, मै अरण्य को जाऊँगा। इसके बारे मे आपलोगो का विचार क्या है?—यो दशरथ ने कहा।

पुष्ट कधोवाले दशरथ के यो कहने पर मत्रियो के मन मे आनन्द उमड उठा, किन्तु साथ ही, उस समय चक्रवर्त्ती के वियोग को सोचकर, उनकी वही दशा हुई, जो दो बछडो के प्रति अपने प्रेम से व्याकुल होनेवाली गाय की होती है।

दुखी होने पर भी मत्रियो ने सोचा कि चक्रवर्त्ती के लिए उस प्रकार करने के अतिरिक्त अन्य कोई हितकर कार्य नही है, तथा विशाल ससार मे रहनेवाले प्राणियो को राम के समान प्रिय अन्य कोई नही है, इस प्रकार सोचकर एव भावी प्रबल होने के कारण वे (मत्री) उस विचार से सहमत हुए।

वेदो के अधिष्ठाता चतुर्मुख के पुत्र (वसिष्ठ मुनि) ने, मत्रियो के विचारो को, अपने पुत्र पर अधिक अनुरक्त चक्रवर्त्ती के मन को तथा ससार के प्राणियो के हित को तटस्थता के साथ विचार कर ये वचन कहे—

हे चक्रवर्त्ती! इसके पूर्व, तुम्हारे वश मे उत्पन्न प्रसिद्ध चक्रवर्त्तियो मे किसने श्रीराम जैसा पुत्र पाया था? तुम शास्त्रो के ज्ञाता हो, तुम्हारे लिए ऐसा कार्य उचित ही है, हे विवेकशील! तुमने धर्म के अनुकूल ही सोचा है।

हे महाभाग ! तुमने पुण्यकारक अनेक यज्ञ किये हैं। अब तुम्हें अपूर्व तपस्या करना ही उचित है। तुम्हारा पुत्र वीर कंकणधारी (राम) पृथ्वी का इस प्रकार शासन करेगा कि सुन्दर (समुद्र रूपी) मेखला भूषित भूमि तुम्हारे वियोग से नेत्रहीन न होगी।

'धर्म ही (राम के रूप में) अवतीर्ण हुआ है', इसके अतिरिक्त हम और क्या कह सकते हैं ? वह विजयी (राम) सारे पदार्थों की सृष्टि कर, उनकी रक्षा कर, फिर उनका विनाश करनेवाले त्रिदेवों के व्यापारों को भी सुधारेगा।

हे बुद्धि बल से युक्त ! सौन्दर्य में सम्पन्न श्रीदेवी और भूदेवी, दोनों जिसको अपना प्राण समान पति मानती हैं, वह केवल उनको तथा तुमको ही प्रिय नहीं है, अपितु वह संसार के सब प्राणियों को प्रिय है।

हे वीर ! उस (राम) के नाम का उच्चारण करने से ही प्रतिदिन के क्लेश दूर हो जाते हैं। इस कारण से, ब्राह्मण आदि तुम्हारे पुत्र को, उनके सुकृत के फलस्वरूप उत्पन्न मानते हैं। (राम के प्रति) अन्य लोगों के प्रेम के बारे में और क्या कहना है ?

महान् कीर्त्ति से युक्त जानकी, भूदेवी से भी उत्तम है। लक्ष्मी सरस्वती तथा पार्वती से भी उत्तम है। रामचन्द्र उस (सीता) के नयनों से भी उत्तम हैं। साधारण लोग तथा पंडित, पिये जानेवाले जल और अपने प्राणों से भी बढ़कर उस (राम) को चाहते हैं।

हे चक्रवर्ती ! मानवों, देवों तथा अन्य (नागों) के एवं सबप्राणियों के दुःखों को दूर करके उनकी रक्षा करनेवाला, राम से बढ़कर और कोई नहीं है। अतः, विचार करने पर विदित होता है कि तुम्हारे लिए यही उचित है कि राम को राज्य देकर तपस्या करने के लिए जाओ।

वसिष्ठ के ये वचन सुनकर, दशरथ को जो आनन्द हुआ, वह रामचन्द्र के जन्म पर, शिव धनुष के टूटने पर और परशुराम के पराास्त होने पर जो आनन्द हुआ था उनसे भी बढ़कर था।

दशरथ ने ऐसे आनन्द के साथ नयनों में अश्रु भरकर महिमामय गुरु वसिष्ठ के चरणों को नमस्कार किया और कहा—हे भगवन् ! आपने अच्छा कहा। आपकी कृपा से ही मैं अबतक भूमि का भार वहन कर सका। यह कार्य राम के लिए कुछ कठिन नहीं होगा।

हे पितृतुल्य ! आपके परामर्श से मेरे कुल के राजा लोग अनन्त यश के भागी बने और अनेक यज्ञ करके दोनों प्रकार के कर्मों से मुक्त हुए मुझे भी आपकी वही कृपा प्राप्त हुई है। —यों कहकर दशरथ आनन्दित हुए।

निष्कलंक तपस्या से संपन्न मुनिवर मौन हो रहे। तब सुमंत ने सब विषयों का विचार करनेवाले मंत्रियों के मुख से प्रकाशित उनके हृदय के भाव को जानकर, अपने कर जोड़कर राजा से यों निवेदन किया—

'राम राज्य प्राप्त करेंगे', इस समाचार से आनन्दित होनेवाले हृदयों को, तपस्या करने के लिए आपके जाने का समाचार जला रहा है। अपने कुल के पूर्वजों का धर्म त्यागना भी ठीक नहीं है। अतः, धर्म से बढ़कर निष्ठुर विषय अन्य कुछ नहीं है।

आलान म बाँध जानेवाले मत्तगजो की सेना से युक्त राजाओं, नगर के लोगों, मन्त्रियो तथा मुनिया के हृदय रूपी नगाडो को ध्वनित करते हुए (अर्थात्, आनन्दित करते हुए) आप, नीलरत्न सदृश देह कातिवाले अपने (राम) को राजा बनावे , फिर परलोक के अनुकूल व्यापार सपन्न करे ।

सुमत्र के इस प्रकार कहने पर चक्रवर्ती ने कहा—तुमने ठीक कहा , पहले राम को मुकुट पहनाकर फिर अन्य कर्त्तव्य करना है। तुम शीघ्र जाकर लक्ष्मी सदृश (सीता) के पति को ले आओ।

दशरथ के मन सदृश वह सुमत्र, पुष्पमाला भूषित चक्रवर्ती को प्रणाम करके, पर्वत समान सौधो से युक्त राजवीथी मे, त्वरित गति से, स्वर्णमय रथ को यों चलाता हुआ गया, मानो उसने सब लोकों को प्राप्त कर लिया हो और राम के प्रासाद म प्रविष्ट हुआ।

उस प्रासाद मे रामचन्द्र, नारियो म अमृत समान सीता के साथ सुखासीन थे और उनके एक ओर, उनसे पृथक् न होनेवाले लक्ष्मण भी धनुष धारण करके खडे थे। उस मधुर दृश्य को देखकर सुमत्र के नयन तथा मन भ्रमरो के समान सतृप्त हो गये।

रामचन्द्र को देखकर सुमत्र ने हाथ जोडकर निवेदन किया कि हे प्रभु ! इस ससार के स्वामी (दशरथ) ने आदेश दिया है कि एक मुख्य कार्य के लिए म आपको ले आऊँ। यह सुनते ही कमलनयन प्रभु (राम) झट उठे और सजल मेघ के समान चलकर ध्वजा से भूषित उस रथ पर आरूढ हो गये।

नगाडे मेघ पक्ति के समान बज उठे , सुन्दरिया की कलाइयो से फिसल पडने वाली शख की चूडियाँ बज उठी , देवगण, यह विचारकर कि हमारा अभीष्ट पूर्ण होने वाला है, आनन्द ध्वनि कर उठे , राम के शिर पर आवेष्टित पुष्पमालाओ पर के भ्रमर गुजार कर उठे।

सर्वत्र वाद्य घोष भर गया, सगीत नाद भर गया, मन्मथ के बाण भर गये, प्रत्यचा के घोष भर गये। (वहाँ की रमणियों के) मनोभाव रूपी बाढ, सयम के बाँध को तोडकर उमड उठी और वे रमणियाँ हरिणियो के समान सर्वत्र फैल गईं ।

दीर्घस्तभो से युक्त द्वारो मे कमल पुष्प—(अर्थात् , रमणियो के मुख), कुडलो एव खुले हुए केश पाशो के साथ, प्रासादो के ऊपर प्रफुल्लित हो रहे थे , तथा गवाक्षो म भ्रमरो, करवालों, रक्त सिक्त भालो तथा मीनो के साथ दिखाई पड रहे थे।

पूर्णचन्द्र सदृश वदनवाले, कालमेघ सदृश, देवाधिदेव (राम) के पर्वत समान (दृढ) वक्ष पर स्थित पुष्पमालाओ मे, बिंब सदृश अधरवाली सुन्दरियो के, सयम, लज्जा आदि गुणों से अनुस्यूत, मीन (तुल्य नयन) मधुरगान करनेवाले भ्रमरो के साथ उलझे पडे रहे।

(जब रामचन्द्र वीथी म जा रहे थे, तब) मेघो के साथ चन्द्र नीचे की ओर झुक आया, जिनसे पुष्प बरस पडे , उत्पल समान नयनो की कोरो से मुक्ताकण बरस पडे, झुलसे पुष्पो से युक्त पुष्ट स्तन (फूलकर) हारो के मध्य समा गये , विकसित कमल पुष्पो

से सयुत चमकते हुए वस्त्र गगन से सरक पड़े—(अर्थात्, राम के सौंदय को देखकर नारियाँ मुग्ध हुई, जिससे उसके शरीर म अनेक काम विकार उत्पन्न हो गये। मघ से 'केश', चन्द्र-मे 'वदन', मुक्ताकण से 'अश्रु', कमल स 'कर' और गगन मे 'कटि' का अर्थ लगाना चाहिए।)

चर्ममय कोशो को हटाकर चमकनेवाले करवालो के जैसे चन्द्र शोभायमान हो रह थे, (अर्थात् पलको को खालकर नेत्र चमक रहे थे, जिनसे नारियो के वदन शोभायमान हो रहे थे)। उन चन्द्रो को ढोनेवाली और भार मे लचकनेवाली लताओ मे दो दो नारि ग्ल लगे थे (अर्थात्, स्तन थे), जिन पर ओस की बूँदे फैल रही थी (अर्थात्, स्वेद कण फैल रहे थे), और जिन पर सोने के पत्र यत्र यत्र अकित थे (अर्थात्, सोने के रग की चित्रियाँ पडी थी)।

उधर ऐसी घटनाएँ हो रही थी, इधर पुरुष लोग, अपनी माँ का स्मरण कर आनन्दित होनेवाले गाय के बछडो के समान (प्रसन्न) खडे थे, यो रामचन्द्र, अपने पवित्र शीलवाले अपने भाई के साथ, सुमत्र के द्वारा चलाये जानेवाले रथ पर सवार होकर, प्रसन्न मन से बैठे हुए चक्रवर्त्ती के निकट जा पहुँचे।

रामचन्द्र ने महातपस्वी (वसिष्ठ) का नमस्कार किया, फिर चक्रवर्त्ती के कमल सदृश चरणो को प्रणाम किया। तब चक्रवर्त्ती ने उमडते प्रेम के साथ आँखो से आनन्दाश्रु बहाते हुए सीता के वल्लभ (राम) को राज्यलक्ष्मी क निवास भूत अपने वक्ष से लगा लिया।

दशरथ ने मगल के आवासभूत अपने पुत्र का आलिंगन क्या किया, वास्तव मे उन्होने समुद्र से आवृत पृथ्वी के भार को वहन करने की (रामचन्द्र की) शक्ति को आँकना चाहा और अपने वक्ष से उन (राम) क, लक्ष्मी तथा पुष्पमालाओ से विभूषित वक्ष को नापकर देखा।

फिर, दशरथ ने राम को अपने पार्श्व म बिठा लिया और आनन्द और उमडत प्रेम के साथ उन्हे देखकर कहा - परशुराम क महान् यश को छोटा करनेवाले उन्नत कधो से युक्त (हे राम)! तुमको पुत्र के रूप म पाने से मुझे जो सबसे उत्तम फल प्राप्त होना है, उसके सपन्न होने का एक उपाय ह। वह तुमस ही पूर्ण हो सकता ह।

हे तात! मे बहुत थक गया हूँ अवारणीय वार्द्धक्य भी मेरे शरीर म उत्पन्न हो गया है। तुम्हे मेरी ऐसी सहायता करनी चाहिए, जिससे मे चिंताजनक भू भार नामक कठोर कारागार से मुक्त होकर अनुपम नि श्रेयस् (मुक्ति) क मार्ग पर जाऊँ और उज्जीवन[1] प्राप्त कर सकूँ।

महापुरुषो का कथन है कि सत्पुत्र प्राप्त करना, अपार दु ख से मुक्त होने तथा उभय लोको मे आनन्द अनुभव करने का साधन ह। तुम तो धर्म स्वरूप ही हो। तुम्हे पुत्र के रूप म पाकर भी मै चिन्तित रहूँ, यह उचित नही। अत, मेरे प्रति तुम्हारा एक कर्त्तव्य है, उसे सुनो।

[1] विशिष्टाद्वैत के अनुसार 'उज्जीवन' मुक्त आत्मा की स्थिति को कहते है।

हे पुत्र ! हमारे कुल के राजा लोग बुढ़ापा आने पर राज्य भार अपने पुत्रो को सौंप देते थे और पचेंद्रियो के कारण उत्पन्न तीन शत्रुओ (अर्थात्, काम, क्रोध और मोह) को समूल मिटाकर आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाते थे।

मैंने पूर्वजन्म के पुण्यो एव इस जन्म के यज्ञ आदि सत्कार्यों के फल से तुमको प्राप्त किया है। यदि अब भी मैं इस शासन की चिंता मे निमग्न रहूँ, तो तुम्हे प्राप्त करने का फल पूर्ण कैसे होगा ?

यह राज्य भार मेरे लिए अत्यत दु खदायक हो गया है और मैं उस वृषभ के समान पीडित हो रहा हूँ, जो एक ओर लँगडा रहा हो और दूसरी ओर बडा भार ढो रहा हो। मै चाहता हूँ कि ऐसे भार से मुक्त होकर मोक्ष साम्राज्य का अनुभव करूँ। हे तात ! मेरी इस इच्छा को पूर्ण करो।

पूर्वकाल मे (हमारे कुल के) एक पुरुष ने, अपने प्रपितामहो को सद्गति प्राप्त करने के उपाय से रहित देखकर, हमारे कुलनायक (अर्थात्, भगवान् नारायण) के चरण कमल से उत्पन्न होनेवाली गगा नदी को लाकर अपने प्रपितामहो को अपुनरावृत्ति[1] से युक्त (मोक्ष) लोक मे पहुँचा दिया था।

अवार्य दु ख से मुक्ति पानेवाले इस पृथ्वी के राजा लोग नही है, देवलोग नही है, उन देवो के राजा स्वर्णमय वीर वलय धारी इन्द्र भी नही हैं, महान् तपस्वी भी नही है, किंतु वे ही लोग (दु ख से मुक्त होनेवाले) है, जिन्होने आज्ञा का उल्लघन न करनेवाले पुत्र को प्राप्त किया है।

यही धर्म है। अत, तुम यह विचार न करना कि राजा ने अपार दु ख के कारणभूत राज्य भार को कपट से मुझ पर डाल दिया। गरिमामय किरीट को धारण करके राजधर्म का पालन करो, मै तुम से यही चाहता हूँ।

पिता के इस प्रकार कहने पर पुडरीकाक्ष (राम) राज्य पर आसक्त नही हुए। 'भूमि का भार वहन करना अपना कर्त्तव्य है'—यह भी वे जानते थे। फिर भी, आसक्ति और विरक्ति दोनो से रहित होकर उन्होंने केवल यही विचार किया कि चक्रवर्त्ती सोच विचारकर जो आज्ञा देते हैं, उसे पूर्ण करना ही हमारा कर्त्तव्य है और वे अपने कर्त्तव्य पर दृढ रहे।

विजयसूचक श्वेतच्छत्र से शोभित चक्रवर्त्ती ने राम के हृदगत विचार को जान लिया और यह कहते हुए कि (हे राम) 'मुझे यह वर दो', राम को अपने प्राणो के साथ लगाकर उनका आलिंगन कर लिया। फिर, वे वेद सदृश मत्रियो से घिरे हुए मेरु जैसे उन्नत अपने प्रासाद मे जा पहुँचे।

सुन्दर कधोंवाले कुमार भी, उत्तम ब्राह्मणो, राजाओ और नगर के प्रिय नर नारियो से अनुसृत होते हुए, जाकर सुमत्र के रथ पर आसीन हुए और अपने विशाल सौध मे पहुँच गये।

फिर चक्रवर्त्ती ने, स्वर्णमय पत्रो पर गरुड का चिह्न अकित करके, सब राजाओ

१ अपुनरावृत्ति—जहा से लौटकर जीव फिर जन्म नही लेता है।

को यह पत्री भेजी कि (राम के राज्याभिषेक के लिए) सब लोग आवे और वसिष्ठ से कहा—हे भगवन् ! मनोहर वर्णयुक्त किरीट को राम के शिर पर रखने के लिए (अर्थात्, राज्यतिलक उत्सव के लिए) आवश्यक प्रबंध करने की कृपा करे।

महान् तपस्वी वसिष्ठ राजा का कथन सुनकर प्रसन्न हुए और शीघ्र एक रथ पर सवार होकर ब्राह्मण समुदाय के साथ चले। दशरथ ने (उत्सव के लिए आगत) राजाओं को देखकर कहा—हे राजाओ ! सुनो, हमारे कुल धर्म के अनुसार राम को राज्य की संपत्ति सौंप देना मेरे लिए बहुत आनन्द का विषय है।

चक्रवर्ती के वचन रूपी अमृत का पान करके सभी राजा आनन्द सागर में डूबने उतराने लगे और एक दशा में नहीं रह पाये। उनके मन का आनन्द उनके रोम रोम से प्रकट होने लगा। वे ऐसे हो गये, मानो सशरीर स्वर्ग में पहुँच गये हों।

उन सबका चिंतन एक जैसा था। उन्हें ऐसा आनन्द हुआ, मानो राज्य उन्हीं को मिला हो। आनन्दित चित्त के साथ वे पंक्तियों में आकर मुक्तामय श्वेतच्छत्र को धारण करनेवाले चक्रवर्ती के चरणों पर नत हुए और हार्दिक प्रेम के साथ निवेदन किया कि हे प्रभो ! आपका विचार बहुत उत्तम है।

यह उचित ही है कि जिस वीर ने इक्कीस बार क्षत्रियों के वंश का नाश किया था, उसके पराक्रम को भी मिटानेवाले महावीर इस पृथ्वी का शासन भार वहन करें।

सब राजा लोगों ने इसके अनुकूल ही वचन कहे। उन वचनों को सुनकर चक्रवर्ती का मन आनन्द से भर गया। फिर, चक्रवर्ती ने अपनी प्रसन्नता को मन में ही दबाकर उन (राजाओं) के मनोभाव को दृढ रूप से जानने के लिए यह प्रश्न किया।

हे नरेशो ! मैंने अपने पुत्र के प्रति प्रेम के कारण मुग्ध होकर यह वचन कहा, किंतु तुमने जो कहा है, वह क्या मेरे मन को प्रसन्न रखने के लिए ही कहा है या यथार्थ विचार से कहा है ? तुम लोगों ने किस कारण से राम को राज्य देना उचित समझा ?

जब चक्रवर्ती ने ऐसा प्रश्न किया, तब सभासदों ने राजा से कहा—हे राजन् ! आपके सद्गुण पुत्र के प्रति विविध देशों के लोग जो अपार प्रेम रखते हैं, उसके बारे में सुनिए।

हे मनुवंश के प्रभो ! दानशीलता, धर्मशीलता, सच्चरित्रता, उत्तम ज्ञान, महात्माओं की संगति करने की सदिच्छा आदि सब सद्गुण आपके पुत्र में स्थिर रूप से निवास करते हैं, मानो वे यह कह रहे हैं कि उसे (अर्थात् आपके पुत्र को) अक्षय राज्य संपत्ति प्राप्त होगी।

जब गाँव का जलाशय भर रहा हो, गाँव के मध्य स्थित फल वृक्ष फलित हो रहे हों, मेघ वर्षा कर रहे हों, खेतों में नदी का जल बह रहा हो तो इनको रोकने की इच्छा कौन करेगा ?

तालवृक्ष के समान दीर्घ सूँडोंवाले हाथियों की सेना से युक्त (हे राजन्) ! आपके प्रति बहुत प्रेम रखनेवाली प्रजा से रामचंद्र जितना प्रेम रखते हैं, उतना ही प्रेम, वह प्रजा भी राम के प्रति रखती है—इस प्रकार सभासदों ने कहा।

सभासदों के यह कहने पर चक्रवर्ती के मन में आनन्द उमड पडा और राम के

प्रति उनका प्रेम अत्यन्त बढ़ गया। उन (चक्रवर्त्ती) के मन से सब चिंताएं दूर हो गई और वे तृप्ति से भर गये उनके नयनों से (आनन्द के) अश्रु बहने लगे। फिर, सभासदों को देखकर चक्रवर्त्ती ने कहा—

निष्पक्षता, धर्मनिष्ठा, सच्चारित्र्य, दुष्कार्यों के प्रति घृणा इत्यादि सद्गुणों से भूषित हे सभासद नरेशो! यह (राम) मेरा ही पुत्र नहीं, अपने आचारण से यह तुम सबके पुत्र के समान है। इसे अपनाकर तुम सब इसका हित करते रहो।

फिर, सभा को विसर्जित करके चक्रवर्त्ती (राम के राजतिलक के लिए) एक शुभ मुहूर्त्त निश्चित करने के विचार से ज्यौतिष शास्त्र के पंडितों को साथ लेकर एक पर्वत सदृश उन्नत मंडप में जा पहुँचे।

उस समय (राम के राज्य तिलक के) समाचार को सुनकर चार दासियाँ, बड़ी उमंग से (कौशल्या के आवास की ओर) दौड़ पड़ीं, तो उनके स्तनों के बंधन खुल गये, केश पाश बिखर गये, वस्त्र खिसक गये, किन्तु उनकी सूक्ष्म कटियाँ किसी प्रकार नहीं टूटीं।

वे चारों सुन्दरियाँ नाच उठीं। अपनी पूर्व दशा को भूलकर गाने लगीं। जिस किसी को देखती थीं, उसको हाथ जोड़कर नमस्कार करतीं। इसका ध्यान उन्हें नहीं रहा कि वे क्या कह रही हैं। यों वे (कौशल्या के) प्रासाद के निकट जा पहुँचीं।

घनश्याम की जननी कौशल्या ने, अपने पास आई हुई उन दासियों को प्रेम से देखा और पूछा—हे बिंबफल समान ओठोंवाली रमणियाँ! तुमको देखने से विदित होता है कि तुम कोई शुभ समाचार लाई हो। शीघ्र कहो, वह क्या है।

तब दासियों ने निवेदन किया कि चक्रवर्त्ती तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र को, यह कहकर कि 'नरेशों द्वारा तुम्हारे वीर वलय भूषित चरणों के वन्दित होते हुए तुम चिरकाल तक पृथ्वी का शासन करो'—अपने प्राचीन मुकुट को उन्हें पहनानेवाले हैं।

इस समाचार के सुनते ही कौशल्या के मन में 'राम को राज्य संपत्ति मिलने वाली है।' इस विचार से जो आनन्द का सागर उमड़ा था, उसे, 'चक्रवर्त्ती राज्य त्याग कर (अरण्य में) जानेवाले हैं।' इस विचार रूपी बड़वाग्नि ने सुखा दिया।

फिर भी, कौशल्या ने उन स्त्रियों को अपूर्व रत्नहार और धन दिये और अपने प्रेम के पात्र भूत सुमित्रा को साथ लेकर चक्रधारी (भगवान् रंगनाथ) के मंदिर में जा पहुँचीं।

मंदिर में पहुँचकर, लक्ष्मी और भूदेवी सहित उस भगवान् के, जो सब देवों के प्राण हैं, ज्ञान हैं तथा (सब के) आदि कारण हैं, चरण कमलों को प्रणाम किया।

सब लोकों को अपने उदर में अन्तर्भूत करनेवाले नारायण को अपने गर्भ में रखनेवाली उस तपस्यामयी (कौशल्या) ने भगवान से प्रार्थना की कि तुमने मुझे जो पुत्र दिया है, उसपर अनुग्रह करना भी तुम्हारा ही कर्त्तव्य है।

यों प्रार्थना करके चारों वेदों में प्रतिपादित विधान से उस नारायण की विशेष पूजा करके, उन्होंने (कौशल्या ने) उत्तम तपस्या से सम्पन्न लोगों को वत्स युक्त धेनुएँ दान कीं।

उन्होंने ब्राह्मणों को स्वर्ण, उत्तम रत्न, चंदन रस, भूमि, कन्याएँ इत्यादि सब प्रकार की वस्तुएँ दान कीं। उन्हें अन्न और उत्तम वस्त्र भी दान किये।

इस प्रकार दान करके, भगवान् रंगनाथ के मधु प्रसूत कमल जैसे चरणों को नमस्कार करके, (भगवान् की) प्रार्थना करके तथा मंदिर की परिक्रमा करके कौशल्या अपने दोषहीन संपत्ति से भरे प्रासाद में आई और व्रत आदि अनुष्ठान करने लगी ।

(१—६८)

●

अध्याय २

मथरा-षड्यंत्र पटल

उधर सुगन्धित पुष्पमालाधारी चक्रवर्ती ने गणितज्ञों (मुहूर्त्त का विचार करनेवाले) को देखकर, उनकी स्तुति करके फिर कहा, तीक्ष्ण परशुधारी (परशुराम) को परास्त करनेवाले राम को मुकुट पहनाने के लिए सुयोग्य शुभ दिन बतलाइए ।

ज्यौतिष के सब विद्वानों ने उत्तर दिया, आपके पुत्र के लिए योग्य दिन कल ही है। यह आनन्ददायक वचन सुनकर वीर वलय से भूषित, मत्तगज सदृश चक्रवर्ती ने आज्ञा दी कि निष्कलंक तपस्यावान् तथा अमृत समान उत्तम वसिष्ठ को ले आओ। मुनिवर आ पहुँचे।

दशरथ ने उन मुनिवरों से कर जोडकर निवेदन किया, शुभ मुहूर्त्त कल ही है, अतः कोदण्डधारी राम से आज ही आवश्यक व्रत करावें तथा उसे हितकारी उपदेश भी दें।

मुनिवर भी अपनी उमंग के साथ होड करते हुए आगे बढ़ चले और मनु कुल के प्रभु (राम) के प्रासाद में जा पहुँचे । मुनिवर का आगमन सुनकर पुष्पमाला भूषित (राम) उनके सम्मुख आये और उनको अपने भवन के भीतर ले गये ।

अशिथिल तपोव्रत से सम्पन्न मुनिवर ने शास्त्रों के ज्ञाता उस उदार पुरुष (राम) से कहा—हे युद्धचतुर ! तुम पर अपार प्रेम रखनेवाले चक्रवर्ती तुम को कल ही राज्य देना चाहते हैं।

यह कहकर वे फिर राम की ओर देखकर बोले—मुझे कुछ हितकारी वचन तुमसे कहने हैं। उन वचनों को सावधान होकर सुनो और उन पर दृढ रहो, फिर घनी मालाओं से भूषित राम से कहने लगे ।

वेदज्ञ लोग, श्यामवर्ण विष्णु, ललाटनेत्र (शिव), कमलभव (ब्रह्मा), उत्पन्न पंचभूतों तथा सत्य से भी श्रेष्ठ होते हैं, अतः तुम सच्चे हृदय से उनका आदर करना ।

हे वत्स ! देवताओं में ऐसे लोगों की गिनती नहीं है, जो वेदज्ञों के क्रोध से पतन को प्राप्त हुए और जिन्होंने उनकी कृपा से शीघ्र उद्धार प्राप्त किया ।

हे वत्स ! वेदज्ञ ऐसे होते हैं, अतः कठोर पापों से रहित इन ब्राह्मणों के चरणों को अपने मुकुट पर धारण किये हुए उनकी स्तुति करो और उनके बताये धर्म के मार्ग पर स्थिर रहो ।

विधि भी उन ब्राह्मणों की आज्ञा के अनुसार जनन और विघटन को सन्नद्ध रहती है। अत, इहलोक और परलोक म देव समान वेदज्ञ विप्रो की प्रस्तुति करने के जैसा उत्तम काय और कोई नही है।

वर्त्तुलाकार चक्रायुध, उज्ज्वल परशु तथा भ्रांति रहित बाणो का शस्त्र क रूप म धारण करनवाले त्रिमूत्ति भी यदि सदधम को, मन की स्वच्छता को तथा दया को छोड दे, तो इससे उनका कुछ हित नही हो सकता।

स्वभाव से ही न्याय पर दृढ रहनेवाले (ह कुमार)। जूआ आदि प्रसिद्ध दुर्व्यसन तुझम नही ह, फिर भी यह जान लो कि व दुर्व्यसन सब दोषो की प्राप्ति क हेतु बनते ह।

यदि हमारे मन म किसी क प्रति विरोध भाव नही रह, तो युद्ध भी शान्त हो जायेंगे (अर्थात्, युद्ध नही होगे), इस प्रकार (युद्ध नही करने स) यश की भी हानि नही होती, सेना की क्षति भी नही होती। जब इस प्रकार हित होना सभव हो, तब शत्रु के समूल नाश की कामना करने की आवश्यकता ही नही रह जायगी।

विषयो म प्रवृत्त होनेवाली पचेद्रिया को शान्त करके, सपत्ति को बढाकर, निष्पक्षता तथा मन की दृढता के साथ किया जानेवाला शासन ही सच्चा शासन है। हे वत्स। वैसा शासन, तलवार का धार पर खडे रहकर की जानेवाली तपस्या के सदृश होता है।

भले ही कोई शासक उमापति (शिव) की, गरुडवाहन (विष्णु) की और अनिमेष आठ आँखोवाले (ब्रह्मा) की भुजाओ की शक्ति से युक्त हो, तथापि उसके लिए भी मत्रियो के परामश क अनुसार काय करना ही हितकारक होता है।

अस्थि चममय शरीरवाले मनुष्यो तथा वैसे शरीर से रहित अन्य लोगो (अर्थात् देवो) को भी, अपन बलवान् शत्रु पचद्रियो का दमन करने से क्या फल मिल सकता ह? तीनो अनादि लोको म प्रेम से बढकर अन्य कोई फलदायक गुण नही है।

राज्य के प्राण है प्रजा, उन प्राणो की रक्षा करनेवाला शरीर ह राजा। यदि वह राजा धम क अनुकूल रहकर सच्ची करुणा पर निश्चित रूप से दृढ खडा रह, तो उसक लिए अन्य यज्ञ करने की आवश्यकता ही क्या ह?

यदि राजा मधुरभाषी हो, दाता हो, विवेकवान् हो, कर्मनिरत हो, पवित्र हो, ऋजु हो, विजयी हो, न्यायपरायण हो सन्माग से पृथक न होनेवाला हो, तो उस (राजा) का कभी नाश नही होगा।

जो राजा, सदाचार क विरोधी कार्यो स दूर रहकर, सोने को तोलनेवाली तुला क समान निष्पक्ष भाव से रहता ह, उसक लिए अच्छे स्वभाववाले मत्रियो के द्वारा परीक्षा करक कार्यविशेष क लिए, निर्धारित समय क अतिरिक्त अन्य कोई नेत्र नही ह।

(कभी) परिवत्तित न होनेवाली नियति भी, आलोचना से पर सत्कायवाले मुनियो की वाणी क अनुसार चलती है, यह जानकर उन (मुनियो) पर दृढ श्रद्धा रखनी चाहिए। उससे उन (मुनियो का) प्रेम (श्रद्धा रखनेवालो की रक्षा क लिए) शस्त्र का काम देगा।

पृथ्वी पर धूमकेतु के जैसे उत्पन्न, मेखलाधारिणी, रमणियों की कामव्याधि नहीं हो, तो (किसी को) कोई बड़ी विपत्ति उत्पन्न नहीं होगी। नरक की यातना भी उत्पन्न नहीं होगी।

तत्त्वज्ञ मुनिवर (वसिष्ठ), सब लोकों को अपने उदर में समानेवाले (विष्णु के अवतार राम) को इस प्रकार के नीतिबोधक मधुर वचन कहकर, उनके ज्ञान को बढ़ाकर उन (राम) के साथ सहस्र शिरवाले[1] भगवान् (विष्णु) के मंदिर में गये।

वसिष्ठ (राम को साथ लेकर) सर्पशय्या पर शयन करनेवाले भगवान् (रंगनाथ) के सम्मुख जा पहुँचे। उनकी पूजा की और चतुर्वेदों के मंत्रों से अभिमंत्रित पुण्य-जल से राम को स्नान कराया। फिर, राजाओं के लिए उचित, विद्वानों के द्वारा प्रतिपादित, सब आचार संपन्न किये और श्वेत दर्भ के आसन पर (राम को) आसीन कराया।

जब रामचन्द्र इस प्रकार आसीन हुए, तब यज्ञोपवीत से अलंकृत वक्षवाले (वसिष्ठ) ने शीघ्र जाकर प्रतापी राजा को (राम के व्रत आदि संपन्न करने का) समाचार दिया। चक्रवर्ती ने नगर को अलंकृत करने की आज्ञा दी।

'वल्लुवर' (ढिंढोरा पीटकर राजाज्ञा की घोषणा देनेवाली एक जाति) लोगों ने नगर की वीथियों में घूमते हुए ढिंढोरा पीट पीटकर घोषणा की कि रामचन्द्र कल ही राजमुकुट धारण करनेवाले हैं। अतः इस सुन्दर नगर को अलंकृत कीजिए। इस घोषणा से देवता भी आनन्दित हो उठे।

'काव्यों में प्रतिपादित यशवाले राम, कल ही रत्नमय राजकिरीट धारण करनेवाले हैं'—यह सूचना लोगों के कानों को आनन्द देनेवाली थी। इतना ही नहीं, यह (वचन) सब लोगों के लिए देवों के आहारभूत हविर्भाग तथा अमृत के समान तृप्तिकारक था।

नगर के लोग कोलाहल कर उठे। आनन्द में नाचने गाने लगे। उनके शरीर स्वेद से भर गये। वे फूल उठे। उनकी देह पुलक से भर गई। वे चक्रवर्ती की स्तुति करने लगे। जो भी यह शुभ समाचार देता था, उसे वे अपार द्रव्य देते थे।

प्रेम से भरे उस नगर के लोगों ने उस सुन्दर नगर का इस प्रकार अलंकरण किया, जैसे पुंजीभूत किरणोंवाले सूर्य को ही सँवार रहे हों या शेषनाग पर सोनेवाले विष्णु के विशाल वक्ष पर स्थित कौस्तुभ मणि को सान पर रखकर उसे चमका रहे हों।

श्वेत, काले, रक्तवर्ण तथा अन्य रंगवाली ध्वजाओं की पंक्तियाँ ऐसी लगती थीं, मानो मधुस्रावी पुष्प मालाओं से युक्त राम के वैभव को देखने के लिए सब प्रकार के विहग उस सुन्दर नगर में आ पहुँचे हों।

उस नगर में युवतियों की जाँघों के जैसे कदली वृक्ष लगाये गये। उन (युवतियों) की ग्रीवाओं के जैसे क्रमुक वृक्ष लगाये गये। उनके दाँतों की जैसी मुक्ता पंक्तियाँ सजाई गईं तथा उनके स्तनों के जैसे कनक-कलश श्रेणियों में रखे गये।

1 वेदों में प्रतिपादित 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्' वाक्य के अनुसार ही यहाँ विष्णु को सहस्र शिरोंवाला कहा गया है।

विधि भी उन ब्राह्मणो की आज्ञा के अनुसार जनन और विगठन को सन्नद्ध रहती है। अत, इहलोक और परलोक मे देव समान वेदज्ञ विप्रो की प्रस्तुति करने के जैसा उत्तम कार्य और कोई नही है।

वर्तुलाकार चक्रायुध, उज्ज्वल परशु तथा भ्रांति रहित बाणो को शस्त्र के रूप मे धारण करनेवाले त्रिमूर्त्ति भी यदि सद्धर्म को, मन की स्वच्छता को तथा दया को छोड दे, तो इससे उनका कुछ हित नही हो सकता।

स्वभाव से ही न्याय पर दृढ रहनेवाले (हे कुमार)! जूआ आदि प्रसिद्ध दुर्व्यसन तुझमे नही हैं, फिर भी यह जान लो कि वे दुर्व्यसन सब दोषो की प्राप्ति के हेतु बनते है।

यदि हमारे मन मे किसी के प्रति विरोध भाव नही रहे, तो युद्ध भी शान्त हो जायेंगे (अर्थात्, युद्ध नही होंगे), इस प्रकार (युद्ध नही करने से) यश की भी हानि नही होती, सेना की क्षति भी नही होती। जब इस प्रकार हित होना सभव हो, तब शत्रु के समूल नाश की कामना करने की आवश्यकता ही नही रह जायगी।

विषयो मे प्रवृत्त होनेवाली पचेंद्रियो को शान्त करके, सपत्ति को बढाकर, निष्पक्षता तथा मन की दृढता के साथ किया जानेवाला शासन ही सच्चा शासन है। हे वत्स! वैसा शासन, तलवार की धार पर खडे रहकर की जानेवाली तपस्या के सदृश होता है।

भले ही कोई शासक उमापति (शिव) की, गरुडवाहन (विष्णु) की और अनिमेष आठ आँखोवाले (ब्रह्मा) की भुजाओ की शक्ति से युक्त हो, तथापि उसके लिए भी मत्रियो के परामर्श के अनुसार कार्य करना ही हितकारक होता है।

अस्थि-चर्ममय शरीरवाले मनुष्यो तथा वैसे शरीर से रहित अन्य लोगो (अर्थात् देवो) को भी, अपने बलवान् शत्रु पचेंद्रियो का दमन करने से क्या फल मिल सकता है? तीनो अनादि लोको मे प्रेम से बढकर अन्य कोई फलदायक गुण नही है।

राज्य के प्राण हैं प्रजा, उन प्राणो की रक्षा करनेवाला शरीर है राजा। यदि वह राजा धर्म के अनुकूल रहकर सच्ची करुणा पर निश्चित रूप से दृढ खडा रहे, तो उसके लिए अन्य यज्ञ करने की आवश्यकता ही क्या है?

यदि राजा मधुरभाषी हो, दाता हो, विवेकवान् हो, कर्मनिरत हो, पवित्र हो, ऋजु हो, विजयी हो, न्यायपरायण हो सन्मार्ग से पृथक् न होनेवाला हो, तो उस (राजा) का कभी नाश नही होगा।

जो राजा, सदाचार के विरोधी कार्यो से दूर रहकर, सोने को तोलनेवाली तुला के समान निष्पक्ष भाव से रहता है, उसके लिए अच्छे स्वभाववाले मत्रियो के द्वारा परीक्षा करके, कार्यविशेष के लिए, निर्धारित समय के अतिरिक्त अन्य कोई नक्षत्र नही हैं।

(कभी) परिवर्तित न होनेवाली नियति भी, आलोचना से परे सत्कार्यवाले मुनियो की वाणी के अनुसार चलती है, यह जानकर उन (मुनियो) पर दृढ श्रद्धा रखनी चाहिए। उससे उन (मुनियो का) प्रेम (श्रद्धा रखनेवालो की रक्षा के लिए) शस्त्र का काम देगा।

पृथ्वी पर धूमकेतु के जैसे उत्पन्न, मेखलाधारिणी, रमणियों की कामव्याधि नहीं हो, तो (किसी को) कोई बड़ी विपत्ति उत्पन्न नहीं होगी। नरक की यातना भी उत्पन्न नहीं होगी।

तत्त्वज्ञ मुनिवर (वसिष्ठ), सब लोकों को अपने उदर में समानेवाले (विष्णु के अवतार राम) को इस प्रकार के नीतिबोधक मधुर वचन कहकर, उनके ज्ञान को बढ़ाकर, उन (राम) के साथ सहस्र शिरवाले[१] भगवान् (विष्णु) के मंदिर में गये।

वसिष्ठ (राम को साथ लेकर) सर्पशय्या पर शयन करनेवाले भगवान् (रंगनाथ) के सम्मुख जा पहुँचे। उनकी पूजा की और चतुर्वेदों के मंत्रों से अभिमंत्रित पुण्य जल से राम को स्नान कराया। फिर, राजाओं के लिए उचित, विद्वानों के द्वारा प्रतिपादित, सब आचार संपन्न किये और श्वेत दर्भों के आसन पर (राम को) आसीन कराया।

जब रामचन्द्र इस प्रकार आसीन हुए, तब यज्ञोपवीत से अलंकृत वक्षवाले (वसिष्ठ) ने शीघ्र जाकर प्रतापी राजा को (राम के व्रत आदि संपन्न करने का) समाचार दिया। चक्रवर्ती ने नगर को अलंकृत करने की आज्ञा दी।

'वल्लुवर' (ढिंढोरा पीटकर राजाज्ञा की घोषणा देनेवाली एक जाति) लोगों ने नगर की वीथियों में घूमते हुए ढिंढोरा पीट पीटकर घोषणा की कि रामचन्द्र कल ही राजमुकुट धारण करनेवाले हैं। अतः, इस सुन्दर नगर को अलंकृत कीजिए। इस घोषणा से देवता भी आनन्दित हो उठे।

'काव्यों में प्रतिपादित यशवाले राम, कल ही रत्नमय राजकिरीट धारण करनेवाले हैं'—यह सूचना लोगों के कानों को आनन्द देनेवाली थी। इतना ही नहीं, यह (वचन) सब लोगों के लिए देवों के आहारभूत हविर्भाग तथा अमृत के समान तृप्तिकारक था।

नगर के लोग कोलाहल कर उठे। आनन्द में नाचने गाने लगे। उनके शरीर स्वेद से भर गये। वे फूल उठे। उनकी देह पुलक से भर गई। वे चक्रवर्ती की स्तुति करने लगे। जो भी यह शुभ समाचार देता था, उसे वे अपार द्रव्य देते थे।

प्रेम से भरे उस नगर के लोगों ने उस सुन्दर नगर को इस प्रकार अलंकरण किया, जैसे पुंजीभूत किरणोंवाले सूर्य को ही सँवार रहे हों या शेषनाग पर सोनेवाले विष्णु के विशाल वक्ष पर स्थित कौस्तुभ मणि को सान पर रखकर उसे चमका रहे हों।

श्वेत, काले, रक्तवर्ण तथा अन्य रंगवाली ध्वजाओं की पंक्तियाँ ऐसी लगती थीं, मानो मधुस्रावी पुष्प मालाओं से युक्त राम के वैभव को देखने के लिए सब प्रकार के विहंग उस सुन्दर नगर में आ पहुँचे हों।

उस नगर में युवतियों की जाँघों के जैसे कदली वृक्ष लगाये गये। उन (युवतियों) की ग्रीवाओं के जैसे क्रमुक वृक्ष लगाये गये। उनके दाँतों की जैसी मुक्ता पंक्तियाँ सजाई गईं तथा उनके स्तनों के जैसे कनक-कलश श्रेणियों में रखे गये।

१ वेदों में प्रतिपादित 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्' वाक्य के अनुसार ही यहाँ विष्णु को सहस्र शिरोंवाला कहा गया है।

गोपुरों के द्वारों में चंद्र को छूनेवाले अत्यन्त तथा नूतन तोरण बाँध गये। उनसे ऐसी कांति बिखर रही थी, जैसे प्रभातकालीन बाल सूर्य पहले से भी अधिक कांति से युक्त हो गया हो।

उत्तम माणिक्यमय स्तंभ श्वेत वस्त्रों से आवृत होकर ऐसे लगते थे, जैसे पार्वती देवी को अर्द्धाङ्ग में रखे हुए विभूति रमाये हुए शिव भगवान् हों। प्रवालमय स्तंभ (श्वेत वस्त्रों से आवृत होकर) हिमावृत सूर्य के समान लगते थे।

उस नगर की वीथियाँ, मुक्ताओं से चंद्रिका के फैलने से, घनी रत्न पंक्तियों से सूर्यातप के फैलने से, नील रत्नों के किरण पुंजों से, अंधकार के फैलने से, ज्योतिष शास्त्रज्ञों के द्वारा प्रकटित दिन के समान लगती थी। (भाव यह है कि मानो ज्योतिषियों ने दिन के विविध रूपों को एक साथ उन वीथियों में प्रकट किया था।)

नाचनेवाले घोड़ों से युक्त रथ समुदाय, पृथ्वी को देखने के लिए स्वर्ग से उतरे हुए देव विमानों के जैसे लगते थे। मुख पट्टों से भूषित विशाल मत्तगज सूर्य के साथ संचरण करनेवाले उदयाचल (पर्वत) से लगते थे।

वैभव पूर्ण उस नगर की स्फटिक शिलामय ऊँची दीवारों में जटित पद्मराग रत्न श्रेणियाँ अपने प्रकाश से अंधकार को मिटा रही थी। अतः, चक्रवाक के जोड़े कभी वियुक्त न होकर शान्तचित्त रहते थे।

मौधों से भरी वीथियों में पुष्पों की वर्षा, जल की वर्षा, नवीन सुगंध चूर्णों की वर्षा, उज्ज्वल मुक्ताओं की वर्षा, आभरणों के रगड़ खाने से उत्पन्न स्वर्ण धूलि की वर्षा—ये सब वर्षाएँ मेघ की वर्षा के समान हो रही थी।

मेघ जैसे मदस्रावी गज, कवच से आवृत तथा वीर वलयधारी योद्धाओं के समान जा रहे थे। किंकिणी भूषित करिणियाँ, लटकती मेखलाओंवाली नितंबवती रमणियों के समान जा रही थी।

उत्तरोत्तर बढ़नेवाला ऐश्वर्य, सौन्दर्य तथा सुख की उस नगरी में कुछ कमी नहीं थी। राम के राज्याभिषेक को देखने के लिए उस नगर में आये हुए देवलोग, इस भाँति से कि अभी हम स्वर्ग में ही हैं, अयोध्या में नहीं पहुँचे हैं, सोच में पड़ जाते थे।

देवलोक के समान शोभायमान उस नगर का शृङ्गार होने का वह कोलाहल सुनकर क्रूरकर्मा रावण के पापों के समान स्थित तथा अन्य दुर्लभ कठोरता से युक्त मनवाली मंथरा वहाँ प्रकट हुई।

उस मंथरा का मन तड़प उठा। उसमें क्रोध उमड़ पड़ा। उसमें पीड़ा उत्पन्न हुई। उसकी आँखों से अग्नि बरसने लगी। वह अव्यवस्थित रूप से कुछ बड़बड़ाती हुई, त्रिभुवन को कुछ दुःख देने के लिए आगे बढ़ी।

पूर्वकाल में राम ने मिट्टी के ढेलों को अपने हाथ के धनुष पर रखकर उस (मंथरा) के कूबड़ पर मारा था, इस घटना को उसने स्मरण किया। क्रोध से वह अपने ओंठ चबाने लगी और बिंब समान अधरवाली कैकेयी के प्रासाद में गई।

चारों समुद्रों के रत्नों से युक्त होकर कमलों से पूर्ण एक अनुपम क्षीर सागर की

लहर पर कोइ प्रवाल लता फैली हो—इसी प्रकार कैकेयी, अपनी आँखो क कोरो से करुणा की वर्षा करती हुई एक उज्ज्वल पयक पर शयन कर रही थी। उसके निकट मथरा शीघ्र जा पहुँची।

उसने उत्पात की सूचना देनेवाले किसी दुष्ट ग्रह के समान वहाँ पहुँचकर कैकेयी के उन स्वण आभरण भूषित छोटे पैरो को अपने हाथो से छुआ, जो पैर दलो से विकसित होनेवाले कमल पुष्पो की तपस्या क फल से उन (कमलो) के योग्य उपमान बनकर उत्पन्न हुए थे।

मथरा ने (जब उसक पैर) छुए, तब कैकयी जग पडी, फिर भी दिव्य पातिव्रत्य स युक्त उस देवी के दीर्घ नेत्रो से निद्रा पूण रूप से हटी नही। तब मथरा घोर निंदा जनक पाप की प्रेरणा पाकर ये गढी हुई बाते कहने लगी—

दु खदायक करवाल सदृश और विषपूण (राहुनामक) सप के अपने निकट आने तक जिस प्रकार शीतल तथा रजत वर्ण चन्द्रमा अपनी उज्ज्वल किरणे फेंकता रहता है, उसी प्रकार तुम भी, जबतक तुम्हे बहुत बडी विपत्ति प्राप्त न हो, तबतक उस (विपदा) की चिन्ता नही करती हुई सुख से सोती रहती हो।

क्रूर विष सदृश मथरा के वचन सुनकर भाले जैसे नयनवाली कैकयी ने कहा—शत्रुओ को परास्त करनेवाले धनुषो को धारण करनेवाले मेरे पुत्र सुखी ह। व अपने काया मे कभी धर्म से विमुख नही होते। फिर मुझे कौन सी विपदा हो सकती है?

यशस्वी पुत्र को प्राप्त करने से कोई भी (व्यक्ति) दु खमुक्त होकर सुखी हो जाता है। पचभूतो के मिश्रण से उत्पन्न पृथ्वी पर, वेद स्वरूप होकर जो राम अवतीण हुआ है, उसे (पुत्र के रूप म) प्राप्त करने से अब मुझे कोई विपदा प्राप्त नही होगी।

अत्यधिक प्रेम के समुद्र मे डूबी हुई कैकेयी ने ज्योही ये वचन कहे, त्योही पाप समान उस वक्र मथरा ने कहा—तुम्हारा हित नष्ट हो गया। तुम्हारा वैभव भी मिट गया। कौशल्या अपनी बुद्धि के बल से (ऐश्वय युक्त जीवन) जीती है।

उसके यह कहने पर, उत्तम आभरणधारिणी कैकेयी ने कहा—राजाधिराज मेरे पति ह, अवणनीय यशवाला भरत मेरा पुत्र है, इससे बढकर इस पृथ्वी पर वह (कौशल्या) देवी और क्या पा सकेगी?

तब मथरा ने कहा—वीरो के द्वारा उपहसित होते हुए और पौरुष को कुठित करत हुए जिस (राम) ने ताडका नामक स्त्री को मारने के लिए अपना धनुष झुकाया था, वह कल राज मुकुट धारण करनेवाला है, यही उसका (अर्थात्, कौशल्या का) आनन्द मय जीवन है।

मथरा का यह प्रतिवचन सुनत ही, कैकयी का मन, जो गरिमामय कौशल्या क मन क समान ही था, विरोध भाव से नही, किन्तु आनन्द से भर गया। इसका कारण कदाचित् यही ह कि राम के पिता उसके मन म निवास करते थे।

उस निष्कलक (कैकेयी) देवी का प्रेम रूपी समुद्र उमड उठा। उसका अक्षीण चन्द्र जैसा मुख और भी प्रकाशमान हुआ। उसका आनन्द वेला को पारकर बढ गया।

गापुरो के द्वारो म चद्र को छूनेवाले अत्यन्त तथा नूतन तोरण बाँध गय। उनसे ऐसी काति बिखर रही थी, जैसे प्रभातकालीन बाल सूर्य पहले से भी अधिक काति से युक्त हो गया हो।

उत्तम माणिक्यमय स्तभ श्वत वस्त्रो से आवृत होकर एसे लगते थे, जैस पार्वती देवी को अर्द्धाङ्ग म रखे हुए विभूति रमाये हुए शिव भगवान् हो। प्रवालमय स्तभ (श्वत वस्त्रो से आवृत हाकर) हिमावृत सूर्य के समान लगते थे।

उस नगर की वीथियाँ, मुक्ताओ से चद्रिका के फैलने से, घनी रत्न पक्तियो से सूर्यातप क फैलने से, नील रत्नो क किरण पुजो से, अधकार के फैलने से, ज्यौतिष शास्त्रज्ञो के द्वारा प्रकटित दिन क समान लगती थी। (भाव यह है कि मानो ज्योतिषियो ने दिन क विविध रूपा को एक साथ उन वीथियो म प्रकट किया था।)

नाचनवाले घोडो से युक्त रथ समुदाय, पृथ्वी को देखने के लिए स्वग से उतरे हुए दव विमानो क जैसे लगते थे। मुख पट्टो से भूषित विशाल मत्तगज सूर्य क साथ सचरण करनवाले उदयाचल (पवत) से लगते थे।

वैभव पूर्ण उस नगर की स्फटिक शिलामय ऊची दीवारो म जटित पद्मराग रत्न श्रणियाँ अपन प्रकाश से अधकार का मिटा रही थी। अत, चक्रवाक के जोडे कभी वियुक्त न हाकर शान्तचित्त रहते थे।

सौधो से भरी वीथियो म पुष्पो की वषा, जल की वर्षा, नवीन सुगध चूर्णो की वषा, उज्ज्वल मुक्ताओ की वर्षा, आभरणा क रगड खाने से उत्पन्न स्वण धूलि की वर्षा—ये सब वर्षाए मेघ की वर्षा क समान हो रही थी।

मेघ जैसे मदस्रावी गज, कवच से आवृत तथा वीर वलयधारी योद्धाओ क समान जा रह थ। किंकिणी भूषित करिणियाँ, लटकती मेखलाओवाली नितबवती रमणियो के समान जा रही थी।

उत्तरोत्तर बढनवाला ऐश्वय, सौन्दय तथा सुख की उस नगरी म कुछ कमी नही थी। राम के राज्याभिषेक को देखन के लिए उस नगर म आये हुए देवलोग, इस भाँति से कि अभी हम स्वग म ही ह, अयोध्या म नही पहुँचे ह, सोच म पड जात थे।

देवलोक क समान शोभायमान उस नगर का शृङ्गार हाने का वह कालाहल सुन कर क्रूरकर्मा रावण के पापो क समान स्थित तथा अन्य दुर्लभ कठोरता स युक्त मनवाली मथरा वहाँ प्रकट हुई।

उस मथरा का मन तडप उठा। उसम क्रोध उमड पडा। उसम पीडा उत्पन्न हुई। उसकी आँखो से अग्नि बरसने लगी। वह अव्यवस्थित रूप से कुछ बडबडाती हुई, त्रिभुवन को कुछ दु ख देने के लिए आगे बढी।

पूर्वकाल म राम ने मिट्टी क ढेलो को अपने हाथ क धनुष पर रखकर उस (मथरा) के कूबड पर मारा था, इस घटना को उसने स्मरण किया। क्रोध से वह अपने ओठ चबाने लगी और निब समान अधरवाली कैकेयी क प्रासाद म गई।

चारो समुद्रा के रत्नो से युक्त होकर कमलो से पूण एक अनुपम क्षीर सागर की

लहर पर कोई प्रवाल लता फैली हो—इसी प्रकार कैकेयी, अपनी ऑखो क कारो से करुणा की वर्षा करती हुई एक उज्ज्वल पयक पर शयन कर रही थी। उसके निकट मथरा शीघ्र जा पहुँची।

उसने उत्पात की सूचना देनेवाले किसी दुष्ट ग्रह के समान वहाँ पहुँचकर कैकेयी के उन स्वण आभरण भूषित छोटे पैरो को अपने हाथो से छुआ, जो पैर नलो से विकसित होनेवाले कमल पुष्पो की तपस्या क फल से उन (कमलो) के योग्य उपमान बनकर उत्पन्न हुए थे।

मथरा ने (जब उसके पैर) छुए, तब कैकेयी जग पडी, फिर भी दिव्य पातिव्रत्य से युक्त उस देवी के दीर्घ नेत्रो से निद्रा पूर्ण रूप से हटी नही, तब मथरा घोर निंदा जनक पाप की प्रेरणा पाकर ये गढी हुई बाते कहने लगी—

दु खदायक करवाल सदृश और विषपूर्ण (राहुनामक) सप के अपने निकट आने तक जिस प्रकार शीतल तथा रजत वर्ण चन्द्रमा अपनी उज्ज्वल किरणे फेकता रहता ह, उसी प्रकार तुम भी, जबतक तुम्हे बहुत बडी विपदा प्राप्त न हो, तबतक उस (विपदा) की चिन्ता नही करती हुई सुख से सोती रहती हो।

क्रूर विष सदृश मथरा के वचन सुनकर भाले जैसे नयनवाली कैकयी ने कहा—शत्रुओ को परास्त करनेवाले धनुषो को धारण करनेवाले मेरे पुत्र सुखी ह। व अपने काया मे कभी धर्म से विमुख नही होते। फिर मुझे कौन सी विपदा हो सकती है?

यशस्वी पुत्र को प्राप्त करने से कोई भी (व्यक्ति) दु खमुक्त होकर सुखी हो जाता है। पचभूतो के मिश्रण से उत्पन्न पृथ्वी पर, वद स्वरूप होकर जो राम अवतीण हुआ है, उसे (पुत्र के रूप म) प्राप्त करने से अब मुझे कोई विपदा प्राप्त नही होगी।

अत्यधिक प्रेम के समुद्र मे डूबी हुई कैकेयी ने ज्योही ये वचन कहे, त्योही पाप समान उस वक्र मथरा ने कहा—तुम्हारा हित नष्ट हो गया। तुम्हारा वैभव भी मिट गया। कौशल्या अपनी बुद्धि के बल से (ऐश्वर्य युक्त जीवन) जीती है।

उसके यह कहने पर, उत्तम आभरणधारिणी कैकेयी ने कहा—राजाधिराज मेरे पति हैं, अवणनीय यशवाला भरत मेरा पुत्र ह, इससे बढकर इस पृथ्वी पर वह (कौशल्या) देवी और क्या पा सकेगी?

तब मथरा ने कहा—वीरो के द्वारा उपहसित होते हुए और पौरुष को कुठित करत हुए जिस (राम) ने ताडका नामक स्त्री को मारने के लिए अपना धनुष झुकाया था, वह कल राज मुकुट धारण करनेवाला है, यही उसका (अर्थात्, कौशल्या का) आनन्द मय जीवन है।

मथरा का यह प्रतिवचन सुनत ही, कैकयी का मन, जो गरिमामय कौशल्या के मन क समान ही था, विरोध भाव से नही, किन्तु आनन्द से भर गया। इसका कारण कदाचित् यही है कि राम के पिता उसके मन म निवास करते थे।

उस निष्कलक (कैकेयी) देवी का प्रेम रूपी समुद्र उमड उठा। उसका अक्षीण चन्द्र जैसा मुख और भी प्रकाशमान हुआ। उसका आनन्द वेला को पारकर बढ गया।

उमने तीन ज्योतियो (सूय, चन्द्र और अग्नि) क जैसे (अति उज्ज्वल) रत्नहार उसे भेट किया।

वह निष्ठुर और क्रूर (मथरा) चिल्लाई। धमकी देन लगी। उसने अपनी छोटी आँखो से आग उगलते हुए उसकी ओर देखा। कैकेयी की निंदा की। उष्ण नि श्वास भरा। राई। अपने रूप का विकृत किया और (कैकेयी क द्वारा दिये गये) उस स्वणमय रत्नहार मे धरती को गड्ढा बना दिया (अर्थात्, उस हार को धरती पर फेक दिया।)

पीडा उत्पन्न करनेवाली उस कूबरी ने क्रोध से घूरकर कहा—तुम मदबुद्धि हो। भद भाव न हाने मे तुम अपने पुत्र समेत बडा दु ख पाओगी। किन्तु, मे दीर्घकाल तक तम्हारी सौत (कौशल्या) की सेवा करना सहन नही कर सकूगी।

अरुण अधरवाली सीता और नीलवर्ण राम सिहासन पर आसीन रह और तुम्हारा पुत्र धरती पर खडा रह—जब ऐसी दशा उत्पन्न हुइ है, तब इससे तुम कैसे आनन्दित होती हो? तुमने अपने मन मे कैसी दृढता पाई ह?

कौशल्या अपना हित भूली नही। अत, उसका पुत्र राज्य सपत्ति पाकर उन्नति प्राप्त करेगा, भरत ऐश्वर्य से वचित होगा, वह (भरत) न मरा, न जीवित ही रहा, वह किस प्रकार से अपना दु ख दूर कर सकेगा? तुम्हारा पुत्र बनकर जन्म लेने से उसका जीवन व्यर्थ हो गया।

यदि इस सारी पृथ्वी का शासन यह वरद (राम) ही अपने भाई (लक्ष्मण) के साथ अनन्त काल तक करता रहे, तो भरत और उसके भाई शत्रुघ्न को देश से दूर रहकर (अरण्य म) व्रतयुक्त तपस्या करने के लिए भेज देना ही उचित होगा।

मत्तगजो की सेना से युक्त, भूदेवी क प्यारे, सुन्दर तथा बजाये जानेवाले नगाडो से युक्त रहकर धरती का राज्य करनेवाले राजाओ की श्रेणी म भरत उत्पन्न नही हुआ है।

स्वर्णवीर ककणधारी चक्रवर्त्ती ने उस दिन क्यो अभागे भरत को शालवृक्षो से आवृत ऊँचे पवतो से युक्त दूरस्थ (कैकय) देश मे सत्वर भेज दिया, इसका कारण मुझे अब ज्ञात हो रहा है।

मथरा आगे ओर भी कुछ वचना पूण उक्तियाँ कहती हुई भरत क प्रति बोली—तुम्हारे प्रति भेदभाव रखकर (राम को) राज्य देनेवाले तुम्हारे पिता निष्ठुर हैं। (यह समाचार सुनकर हष करनेवाली) तुम्हारी माता भी निष्ठुर हे। ह मरे तात। भरत, अब तुम क्या करनेवाले हो?

फिर उसने कैकयी के प्रति कहा—तुम राजकुल म उत्पन्न हुई। राजवश म ही बढी और राजकुल की वधू बनी। यो राजमहिषी बनी हुई तुम बडी विपदा रूपी समुद्र म गिरनेवाली हो, मेरी बात भी तुम नही सुनती हो। क्या तुम्हे कुछ ज्ञान भी है?

विद्या, योवन, अपार पराक्रम, धनुविद्या की चातुरी, सौदर्य, वीरता इत्यादि अनेक गुण भरत मे स्थित हं, किन्तु आज वे सब घास भरी धरती पर गिरी मधु की बूँद जैसे हो गय हैं।

मथरा ने मुँह कडवा करक जो बाते कही, उनसे कैकेयी का क्रोध एसे बढ गया,

जसे जलती आग म घी पडा हो। उमकी रेखाओ स युक्त ऑखे अधिक लाल हा गइ। मथरा को देखकर उसने कहा —

आतपयुक्त सूर्य प्रभृति महान् पुरुष, प्राण जाने पर भी न्याय माग को नही छोडते। ह क्षुद्र स्वभाववाली ! मेरे कैकयवश तथा (वैवस्वत) मनु के वश को कलकित करनेवाली कैमी क्षुद्र वात तूने कही ?

तू मेरा हित करनेवाली नही ह। मरे सुत भरत का भी हित करनेवाली नहो ह। धम का विचार करन पर (ज्ञात होता है कि) तू अपना भी हित करनेवाली नही है। ह विवेकहीन ! पूर्वजन्म के पाप सस्कार के कारण तू ने (अपने) मन को अच्छी लगने वाली वाते कही ह।

जन्म और मृत्यु के कारण जो वस्तु प्राप्त होती है या खोती ह, वह एकमात्र यश ही ह। अत , शरीर चाहे गिर जाय, न्याय अपने विरुद्ध हो जाय, सन्मार्ग का रूप अपने प्रतिकूल हो जाय, तपस्या का रूप विरुद्ध हो जाय तथा निष्कलक पराक्रम भी विरुद्ध हो जाय, तो भी अपने कुल धर्म को छोडना उचित नही हैं ।

तू मेरे मामने रो हट जा। क्षुद्र वचन कहनेवाली तेरी जीभ को मने काट नही लिया, पर तरे इस अपराध को सह लिया, मेरे अतिरिक्त और कोई इस बात को सुन ले, तो तू अन्याय तथा अधम करने के अपराध का पात्र बन जायगी। अत , ह बुद्धिहीन ! चुप रह ।

जिस प्रकार विष का उपचार करने पर भी वह विष न मिटकर पीडा ही उत्पन्न करे, उसी प्रकार मथरा (कैकेयी के) वह वचन सुनकर भी भयभीत होकर हटी नही। किन्तु, यह कहती हुई कि हे मेरे अवलब, मै तुझे हितकारी वचन कहे विना नही हटूँगी, उसके चरणो पर गिरकर फिर कहने लगी—

तुमने कहा—ज्येष्ठ के रहते हुए कनिष्ठ को राज्याधिकार नही होता। इस न्याय क अनुसार चक्रवर्त्ती के रहते हुए समुद्रवर्ण (राम) का राज्य पर कोई अधिकार नही हे। जब चक्रवर्त्ती राम को राजमुकुट देने के लिए सन्नद्ध हुए हैं, तब वह सम्पत्ति भरत के लिए क्यो अप्राप्य हो सकती हे ?

वैराग्यपूर्ण, करुणायुक्त तथा अपूर्व तपस्या स सम्पन्न मुनि भी क्यो न हो, दुर्लभ सम्पत्ति प्राप्त करने पर उनका विचार भी बदल जाता हे। अत , भले ही अबतक तुम्हारा कुछ अहित (कौशल्या ओर राम ने) नही किया हो, तथापि (सम्पत्ति पाने पर) वे अपने मन मे निरन्तर तुम्हारे अहित का ही चितन करते रहेगे।

दूसरो की उन्नति पर ईर्ष्या करनेवाली कौशल्या का पुत्र जब राज करेगा, तब सारी पृथ्वी उसका स्वत्व बन जायगी। तब तुम्हारे पुत्र का तथा तुम्हारा इस पृथ्वी म उस (कोशल्या) के दिये गये पदाथा के अतिरिक्त और कुछ अधिकार नही रहेगा ।

याचक लोग निर्धनता ओर दु ख से प्रेरित होकर तुम्हारे निकट आकर द्रव्य मॉगेगे, तब क्या तुम (उन याचको को देने के लिए) स्वय उस कौशल्या के पास जाकर हाथ फैलाओगी ? या (कुछ देने का सामर्थ्य न होने से) लज्जित होकर रहोगी ? अथवा

(कुछ न दे सकने की) पीडा से भर जाओगी ? नही तो, क्या उन याचकों से 'मेरे पास नही है' कह दोगी ? तुम कैसा जीवन व्यतीत करोगी ?

तुम क्या करने की बात सोचकर हर्ष से मुग्ध हुई थी ? भविष्य म कभी तुम्हारे पिता, माता, कोई बन्धु या तुम्हारे कुल का कोई व्यक्ति अभाव ग्रस्त होकर अपने अभाव को दूर करने के विचार से तुम्हारे पास आवेगा, तो क्या वह तुम्हारी सौत क ऐश्वर्य का देखकर चुप रह जायगा ? विचार करके देखो ।

तुम पर प्रेम रखनेवाले तुम्हारे गरिमामय पति क डर से ही उस मिथावरा सीता का पिता तथा राम का ससुर, तुम्हारे पिता (केकय राजा) पर आक्रमण किये विना रहता है। अब तुम्हारे पिता का जीवन समाप्त हो जायगा। हे अबोध ! तुम्हारे समान निदनीय जन्मवाला और कौन है ?

और सुनो, यदि तुम्हारे पिता के कठोर शत्रु जब तुम्हारे पिता से युद्ध करने के लिए आयेंगे, तब यदि कोशल देश की सेना उनकी सहायता न करेगी, तो उन्ह (तुम्हारे पिता को) विजय नामक वस्तु किस प्रकार मिलेगी ? यह बताओ। अहो, तुमने अपने बधुजनो का भी विनाश करनेवाले दु ख समुद्र म डूबने का निश्चय कर लिया है ?

अपने उत्तम पुत्र को राज्य पाने से राककर तुमने उसे मिटा दिया। उज्ज्वल समुद्र रूपी वस्त्र से भूषित पृथ्वी को चक्रवर्ती ने अपने एक पुत्र को दिया, जो उसके प्रिय भाइ का स्वत्व होगा। अन्य कौन उसपर अधिकार रख सकेगा ?—इस प्रकार मन्थरा ने कहा ।

क्रूर मथरा के इन वचनो को सुनकर देवो की माया क कारण उन (देवो) के द्वारा प्राप्त वर के प्रभाव के कारण तथा मुनियो के तप प्रभाव के कारण कैकेयी का सरल तथा निष्कलक मन भी बदल गया ।

राक्षसो के द्वारा कृत पापो तथा दवो के किये पुण्यो से प्रेरित होकर कैकयी न अपनी करुणा को त्याग दिया स्वच्छ वचनवाली तथा हरिणी तुल्य कैकेयी की वह निष्ठुरता ही तो आज भी इस ससार के लोगो के, राम के अपार यशोमृत का पान करने का कारण बनी है ?

इस प्रकार (प्रभावित) होकर कैकेयी ने, पापकर्मों से पूण कूबरी को प्रेम से देखकर कहा—तुम मुझपर प्रेम रखनेवाली और मेरे पुत्र का हित करनेवाली हो। मेरा पुत्र अलकृत राज किरीट को किस प्रकार प्राप्त करे, अब यह बताओ ।

आम के टिकोरे के जैसे सुन्दर नयनोवाली (कैकेयी) की बात सुनकर मथरा बोली—मेरी सखी चतुर है, मेरी साथिन चतुर है। फिर (कैकेयी के) चरणा को नमस्कार करके कहा—अब तुम्हारी अवनति नही होगी। यदि तुम मेरी बात मानकर उसके अनुसार काम करोगी, तो मै सप्त लोको के राज्य पर भी तुम्हारे अनुपम पुत्र का स्वत्व बना दूँगी।

उस मथरा ने जिसका मन भी (उसके शरीर क जैसे ही) टेढा था, कहा—हे उज्ज्वल रत्न समान देवी। मै भली भाँति विचार कर तुम्हे एक बात बताती हूँ। पूर्वकाल

म जब घनी विजयमाला से भूषित शबरासुर मारा गया था, उम युद्ध म विजयी चक्रवर्त्ती ने तुम्हे दो वर दिये थे , उनको तुम उनसे अब माँग लो ।

उन दो वरो मे से, एक से राज्य को तुम अपना बना लो और दूसरे स, चौदह वष के लिए राम को देश छोडकर अरण्य म भेजने का उपाय करो। इमसे सारी समृद्ध पृथ्वी तुम्हारे पुत्र के अनुकूल हो जायगी ।

इस प्रकार कहनेवाली मथरा का कैकेयी ने हष स गाढालिगन किया और नवरत्नो का एक हार तथा अपार द्रव्य उसे दिया। फिर कहा—मेरे अनुपम पुत्र को गरजते समुद्र से आवृत पृथ्वी का राज तुमने दिया। पृथ्वी क पति भरत की माता तुम्ही हो।

तुमने अच्छा उपाय बताया। भरत को गरिमामय मुकुट पहनाना और राम को घने अरण्य म भेजना, ये दोनो कार्य यदि आज पूर्ण नही होगे, तो चक्रवर्त्ती के सामने ही मे अपने प्राण त्याग दूँगी। अब तुम जाओ।—इम प्रकार कैकेयी ने मथरा से कहा ।

कूबरी के जाने के पश्चात् कैकेयी उत्तम पुष्पो के पर्यंक से उतर गई। अपने वर्षाकालिक मेघ के जैसे केशपाश म गूँथी पुष्पमाला के (उन पुष्पो के) मधु पर आसक्त भ्रमर कुल को व्याकुल करते हुए, इस प्रकार निकाल फेंका, मानो आकाश के बादलो म छिपे चन्द्रमा को ही पकडकर फेक रही हो ।

उसने अपनी प्रकाशमय मेखला को दूर फक दिया, जैस अपने बढनेवाले यशरूपी लता को ही उखाड रही हो। मजीर, ककण आदि को भी दूर फेक दिया। यो उसन अपने ललाट पर केशपाश के समीप मे स्थित अपूर्व तिलक को पोछ डाला, जैसे चन्द्रमा के कलक को पोछ रही हो ।

फिर, उत्तम रत्न जटित आभरणो को एक एक करके उठाकर फेंक दिया। कस्तूरी-गध से युक्त अपने कशपाश को ऐसे खोल दिया कि व लटककर धरती को छूने लगे, अजनयुक्त नीलोत्पल जैसे नयनो के अजन को पिघलाते हुए वह अश्रु बहाने लगी एव पुष्पहीन लता के समान धरती पर लोट गई ।

केकय की पुत्री इस प्रकार (धरती पर) पडी रही, जैसे पीडा की अधिकता से कोई हरिणी पडी हो। नाचनेवाला कलापी थककर पडा हो, अथवा 'कमलवासिनी (लक्ष्मी) सीता, अयाध्या छोडकर जानेवाली हे', यह विचार करक उस लक्ष्मी की बडी बहन ज्येष्ठा देवी[1] आकर वहाँ पडी हा । (१–८८)

●

१ जिस प्रकार लक्ष्मी को मगल देनेवाला देवी मानते है, उसी प्रकार ज्येष्ठा को अमगल का देवी मानते हे ज्येष्ठा लक्ष्मी की बड़ी बहन माना गई है। –अनु०

अध्याय ३

कैकेयी-(दुष्कार्य) पटल

रात्रि का अर्धभाग व्यतीत हो गया। तब दीर्घ भुजाओंवाले सिंह सदृश चक्रवर्ती (दशरथ), उनकी जय जयकार करनेवाले राजाओं से घिरे हुए चले और वीणा नाद को परास्त करनेवाली मधुर बोली से युक्त कैकेयी के प्रासाद में पहुँचे।

राजा लोग (दशरथ को) प्रणाम करके सौध द्वार पर रुक गये। दासियाँ दौड कर आईं और उन (दशरथ) का स्वागत करके उन्हें भीतर ले गईं। यों चलकर चक्रवर्ती पर्यंक से अलग पडी हुई, बरछे जैसे विशाल नयनों तथा मृदुल कचोंवाली सुन्दरी (कैकेयी) के निकट गये।

चक्रवर्ती ने वहाँ जाकर (कैकेयी की दशा) देखी यह सोचते हुए कि न जाने इसे कौन सा दुःख प्राप्त हुआ है, व्याकुलचित्त हुए। फिर, जैसे हाथी, हरिणी को उठा रहा हो, वैसे ही अपनी विशाल भुजाओं में उसको आलिंगन बद्ध करके उठाने लगे।

सुगंधित पुष्पमालाधारी चक्रवर्ती के प्राण तुल्य उस (कैकेयी) ने उसका आलिंगन करनेवाले (चक्रवर्ती के) विशाल हाथों को झटककर हटा दिया और विद्युत् के समान तडपकर धरती पर गिर पडी। फिर, कुछ कहे बिना दीर्घ श्वास भरती हुई पडी रही।

पुष्पमाला भूषित चक्रवर्ती ने पृथ्वी पर गिरकर निःश्वास भरती हुई उसको देखा और भयभीत हुए। फिर, उससे कहा—क्या हुआ है? इन सप्त लोकों के रहनेवालों में से जिसने तुम्हारा अपमान किया हो, वह अपने प्राण खो बैठेगा। सारा वृत्तांत मुझे कह सुनाओ। फिर देखो कि मैं क्या करता हूँ। सब बात मुझे बताओ।

भ्रमरों से गुंजरित पुष्पमालाधारी चक्रवर्ती के वचन सुनकर कैकेयी ने सजल मेघ जैसे अपने विशाल नयनों से अपने स्तनों पर अश्रु गिराती हुई कहा—क्या आपको मुझ पर दया है? यदि है तो आपने पूर्व में जो वर मुझे दिये थे, उन्हें अब पूर्ण कीजिए।

मधुवर्षी (पुष्पों से अलंकृत) केशोंवाली कैकेयी का मनोभाव नहीं जानते हुए चक्रवर्ती ने अति उज्ज्वल बिजली के समान हँसकर कहा—तुम्हारा मनोरथ पूरा करूँगा। किंचित् भी कमी नहीं करूँगा। तुम्हारे पुत्र उदार राम की शपथ खाकर कहता हूँ।

यह वचन कहते ही हंसिनी तुल्य कैकेयी ने कहा—यदि आपका मेरी बडी पीडा दूर करने का विचार है, तो हे राजन्! देवता आपकी शपथ के साक्षी हों। आपने उस दिन जो दो वर मुझे दिये थे, उन्हें अब पूरा कीजिए।

उस निष्ठुर हृदयवाली की वंचना को नहीं जानते हुए चक्रवर्ती ने कहा—लो, अपना वर लो। तुम्हें इतना व्याकुल तथा दुःखी होने की आवश्यकता नहीं है। अभी तुम्हारे वर देकर मैं अपना भार दूर कर लूँगा। कहो (तुम्हारी क्या इच्छा है)।

सब कठोर वस्तुओं से भी अधिक कठोर उस क्रूर (कैकेयी) ने कहा—आपके दिये दो वरों में से एक से मेरे पुत्र को इस समस्त राज्य का अधिपति बनाइए और दूसरे से रामचन्द्र को (चौदह वर्षों के लिए) अरण्यवास के लिए भेजिए—यह कहकर वह (दृढ) पडी रही।

सर्पिणी के समान क्रूर उस कैकेयी की जिह्वा से उत्पन्न अत्यन्त पीडाजनक विष ने ज्यों ही चक्रवर्त्ती को छुआ, त्यों ही वे कॉप उठे। उनकी सारी देह जलकर शिथिल हो गई। सर्प दष्ट होकर निश्शक्त हुए मत्तगज के समान वे पृथ्वी पर गिर पडे।

पृथ्वी पर लोटते हुए चक्रवर्त्ती की उस गभीर पीडा का वर्णन करने का सामर्थ्य किसमे है? उनकी पीडा के अधिकाधिक बढ जाने से उनका मन बहुत ही शोक उद्विग्न हुआ। उन्होंने लुहार की भट्ठी की भाथी के जैसे उष्ण नि श्वास भरे।

उनकी जिह्वा सूख गई। प्राण निकलने लगे। मन शिथिल हो गया। नयनो से रक्त बह चला। मन की चिन्ता बढ गई। उनके शरीर की पाँचो इन्द्रियाँ अपना व्यापार भूलकर अत्यन्त चचल हो गई।

प्राण पीडा से विह्वल चक्रवर्त्ती उठकर पृथ्वी पर खडे होते, रो पडते, गिरते, श्वास हीन हो चित्र के जैसे निष्क्रिय पडे रहते, पाप कर्मवाली कैकेयी के सम्मुख जाकर उसे पकडकर धरती पर पटक देने का विचार करते।

दृढ बरछा दारुण क्षत मे घुसेडा जाय, तो उससे उत्पन्न पीडा से जिस प्रकार कोई मत्तगज तडप उठता है, वैसी ही दशा को प्राप्त हुए चक्रवर्त्ती (कैकेयी को मारने का विचार करते, फिर) यह सोचकर कि स्त्री है, (उसे मारने पर) अपयश होगा, इस विचार से लज्जित होते। वे मन की वेदना से आहे भरकर तडप उठते। फिर, इस प्रकार शिथिल हो पडे रहते, जैसे उनकी आँखे छिन गई हो।

आलान स्तभ मे बँधे हुए मत्तगज के समान चक्रवर्त्ती को शोक पीडित होकर रोते, कलपते देखकर देवता भी भय से कॉप उठे। वह समय ऐसा लगता था, जैसे प्रलय काल आ गया हो। किन्तु, बाण समान नयनोवाली कैकेयी का मन यथापूर्व (कठोर ही बना) रहा।

'पति की व्यथा को देखकर भी वह (कैकेयी) कातर नही हुई। उसका मन पिघला नही, वह लज्जित भी नही हुई।'—ऐसा कहने मे (कहनेवाले को ही) लज्जा होती है। महान् लोग प्राचीन काल से ही यह सोचकर कि छल कपट ही नारी का वेष लिये रहते हैं, नारियो को कभी अपना अवलब नही मानते।

इस दशा मे खडी हुई कैकेयी की ओर देखकर तैलसिक्त तीक्ष्ण धारवाला बरछा धारण करनेवाले चक्रवर्त्ती ने कहा—क्या तुम भ्रम मे पडी हो? या किसी वचक ने तुम्हे दुर्बुद्धि सिखाई है? तुम्हे मेरी सौगध है, क्या हुआ? कहो।

यह सुनकर कैकेयी ने कहा—रासवाले घोडे पर सवार होनेवाले (हे चक्रवर्त्ती)। मै भ्रम मे नही हूँ, किसी कपटी ने मुझे कुछ सिखलाया भी नही है। यदि आप पूर्व मे दिये हुए अपने वरो का अब देगे, तो लूँगी। यदि नही देगे, तो मै अपने प्राण त्याग दूँगी, जिससे आपको स्थायी अपयश उत्पन्न होगा।

अपने पुत्र (राम) के अतिरिक्त जिनके अन्य कोई प्राण नही है, वैसे चक्रवर्त्ती कैकेयी के यह कठोर वचन कहने के पूर्व ही इस प्रकार व्याकुल हुए, जैसे जले हुए घाव मे बरछा घुसेड दिया गया हो। स्तब्ध खडे रहे। फिर, मूर्च्छित हो गिर पडे।

विशाल स्वर्ग, पाताल तथा धरती को जीतनेवाले करवालधारी चक्रवर्त्ती, कभी, (अहो, क्रूर नारी !) कहकर आह भरते, 'हाय ! धर्म कितना कठोर है !,' कहते, 'मेरे शरीर का अंत हो जाय' कहकर उठते, फिर लडखडाकर पृथ्वी पर गिर पडते।

वीरों के पराक्रम को कुंठित करनेवाले भाले को धारण करनेवाले चक्रवर्त्ती उमडते हुए क्रोध से कहते—'मैं अपने तीक्ष्ण करवाल से नारियों को निहत करके संसार को स्त्री रहित कर दूँगा और मैं भी पतित होकर नीच जनों में गिना जाऊँगा।'

वे चक्रवर्त्ती, जिनका सत्य आचरण संसार भर में प्रसिद्ध था, हाथ पर हाथ मारते, ओठ चबाते, मन में यह सोचकर दुःखी होते कि सत्य वचन भी हानिकारक है। जैसे घी मे आग की गरमी लगी हो, वैसे ही उनका मन पिघल उठता।

सत्यवादी चक्रवर्त्ती ने सोचा—यदि सत्य की रक्षा न करूँ और इस (कैकेयी) को दंडित करूँ तो वह बुरा होगा। यदि इसके माँगे वर दूँ, तो भी बुरा होगा। फिर, यह विचार करके उठे कि अपने हठ पर दृढ रहनेवाली इससे याचना करना ही अच्छा है।

आलान स्तंभ को भी तोड देनेवाले मद से भरे गज जैसे राजा लोग अहमहमिका से आकर जिन (दशरथ) के चरणों को प्रणाम करते थे, वे (दशरथ), यह सोचकर कि जिस प्रकार अपराधों को दूर करने के लिए वेत्र दंड को धारण करना उचित होता है, उसी प्रकार भावी हित को सोचकर क्षमा धारण करना भी उचित है—उस (कैकेयी) के चरणों पर गिर पडे।

फिर, उन्होंने कैकेयी से कहा—तुम्हारा बेटा (भरत) यह राज्य (देने पर भी) नहीं लेगा। यदि वह स्वीकार भी करे, तो भी संसार के लोग वह कार्य पसन्द नहीं करेंगे। अतः, तुम्हें संसार में शाश्वत रहनेवाला यश नहीं प्राप्त होगा। अपयश पाने से तुमको क्या लाभ होगा?

(भरत का राजा होना और राम का अरण्य वास करना) देवता लोग भी स्वीकार नहीं करेंगे। संसार के लोग भी (राम को छोडकर) जीवित रहना नहीं चाहेंगे। तब पातालवासियों के बारे मे क्या कहा जाय? तुम किनको रखकर यह राज्य करोगी? राम मेरे कहने से ही (राज्य लेने को) सहमत हुआ है। वह स्वयं ही तुम्हारे पुत्र को पृथ्वी दे देगा—इस प्रकार चक्रवर्त्ती ने कहा।

हे नारी! उदार केकयराज की पुत्री! यदि तुम मेरी आँखें माँगो, तो देने को प्रस्तुत हूँ। मेरे प्राणों को चाहो, तो ये प्राण अभी तुम्हारे अधीन ही हैं। अगर तुम चाहती हो, तो पृथ्वी (का राज्य भी) ले लो। किंतु दूसरे वर की बात (अर्थात्, राम का वन गमन) भूल जाओ।

मैंने वचन दे दिया कि वर दिये हैं। मैं स्वयं उस वचन को नहीं बदलूँगा। तुम मुझे पीडा देनेवाली बात मत कहो। अग्नि के जैसी जलनेवाली आँखों से युक्त भूत भी, अगर कोई उससे कुछ याचना करे, तो माता के समान (दयावान्) होकर दे देता है। यदि तुम मुझे यह दे दो (अर्थात्, राम के वन गमन की इच्छा न करो) तो क्या कुछ अनुचित होगा?

विजयी चक्रवर्ती ने इस प्रकार क वचन कहकर (कैकेयी मे) याचना की। फिर भी अपना उपमान न रखनेवाली अति कठोर कैकेयी का मन नही बदला। उसने कहा—ह चक्रवर्ती! आपने पहले ये वर मुझे द दिये। अब उन्हे पूरा न करके क्रोध करे तो मै क्या करूँ? अब ससार म सत्यवादी कौन रह जायगा?

व सत्यवादी चक्रवर्ती, जिन्होने कभी असत्य वचन सुना भी नही, (कैकेयी की) वह बात सुनकर अत्यत शिथिलमन हुए। किंतु, बडी सहन शक्ति के साथ यह सोचते हुए कि यह स्त्री विष और अग्नि का रूप है, लज्जित होकर मूर्च्छित से पडे रहे। पुन याचना के स्वर म कहने लगे—

तुम्हारा पुत्र (भरत) राज करेगा। तुम सुख से शासन करती रहो। सारी पृथ्वी तुम्हारे अधिकार मे होगी। मैने दे दिया। मै अपने वचन वापस नही लूँगा। किंतु, मेरे पुत्र, मेरे नेत्र, मेरे प्राण, सब प्राणियो के लिए पुत्र के समान (हितकारी) मेरे राम को इस देश को छोडकर (अरण्य मे) जाने न दो। मेरी इस याचना को तुम स्वीकार करो।

मै यह देखकर कि सत्य ही मेरी जड खोद रहा है, अत्यत दु खी हो रहा हूँ। मेरी जीभ सूख रही है। ऐसी दशा म यदि कमलपाणि राम मेरे सम्मुख से हट जायगा, तो मेरे प्राण नही बचेगे। अत , हे नारि! मेरे प्राण तुम्हारी शरण मे हैं।

इस प्रकार विनती करनवाले चक्रवर्ती के मधुर वचनो को नही माननेवाली कैकेयी का क्रोध कुछ भी कम नही हुआ। उसका हृदय काठ के जैसा था। उसे लज्जा नही हुई। उसने अपने अपयश की परवाह नही की, और कहा—ह अनेक बाणो को रखनेवाले! आपका यह कथन कि आपके पूर्व दिये वर को मै स्वीकार न करके छोड दूँ, अधर्म ही तो है? आप ही कहिए।

उस क्रूर नारी ने जब यो कहा, तब वे उत्तम कुल के क्षत्रिय (दशरथ), यह कहकर कि यदि मेरा ज्येष्ठ पुत्र किरीट धारण न करके कठोर ककडो से भरे अरण्य म जायगा, तो उसके वियोग म निश्चय ही मेरे प्राण भी मुझ से वियुक्त हो जायेंगे—वज्राहत पर्वत के समान धरती पर गिर पडे।

चक्रवर्ती पृथ्वी पर गिरे। गिरकर दारुण दु ख के समुद्र म डूबे। डूबकर (उन्होन) उस समुद्र का कोई किनारा नही पाया। कोई किनारा न पाकर, क्रूर वचनवाली, अपनी वाणी से हृदय को तोडनेवाली कैकेयी के क्षुद्र स्वभाव को देखकर अत्यत शोक से (पृथ्वी पर) लोट गये।

'कातिमय ककण धारिणी नारियो ने अपने प्राण पतियो के मरने के पूव ही अपने प्राण त्याग दिये'—ऐसे यश की भागिनी बनन का अबतक प्रयत्न करती रही। किंतु, उनम से किसी ने अपन पति की हत्या नही की थी। ह क्रूर स्वभाववाली! क्या तुम अब अपने पति की हत्या करना चाहती हो?

तुमने अपराध होने की चिन्ता नही की। सत्कुल जात स्त्रियो के धर्म का विचार नही किया। (मेरे प्रति दया रखकर) मुँह से आह तक नही निकालती। तुम्हारे हृदय में करुणा नही है। अपने वचन बाण से तुमने मेरे प्राण पी लिये। अब तुम पाप की चिन्ता किये विना ससार के निवासियो के प्राण हरण करनेवाली हो।

व ही स्त्रियाँ उत्तम होती ह, जिनम लज्जा, सरलता, सकाच आदि महत्त्व को बढानवाले गुण रहते हैं। किंतु, यश क कारणभूत इन गुणो का न रखनवाली नारियो की गिनती स्त्री जाति म नही होती। वे पुरुष जाति म ही गिनी जाती हैं। रूप के कारण ही उनकी गणना स्त्रियो म होती है।

मैंने पृथ्वी पर राज्य करनवाले, बल तथा विवेक म उत्तम बडे राजाओ को जीता, देवलोक के निवासियो को भी पराजित किया। किन्तु, ऐसा होकर भी म अपने घर म रहने वाली एक स्त्री से परास्त हो गया। इससे मेरी कैसी हानि हुइ, क्या मरी ऐसी दशा होनी चाहिए।

व चक्रवर्त्ती, जिनक कधे ऐस थे, जैसे एक स्वणमय पर्वत दूसरे (स्वर्णमय) पर्वत से आ मिला हो, इस प्रकार अनेक विधि से विचार करत, विविध वचन कहकर आह भरते, दु ख क समुद्र म डूबते, एक से असमान दूसरी पीडा को पाते (परस्पर असमान अनक विध पीडाएँ पाते), मूर्च्छित होकर यो गिरते कि यह सशय उत्पन्न होता कि इनक प्राण हैं या निकल गये। वे यो भग्नहृदय हो रह।

पहियोवाले स्वर्णमय रथयुक्त चक्रवर्त्ती इस प्रकार शिथिल हो पडे रहे। धरती पर यो लोटते रहे कि उनके सुन्दर कधो पर धूल लग गई। ऐसे समय म करुणाहीन उस कैकेयी ने कहा—ह सुन्दर विजयमालाधारी राजन्! यदि म अपने वर यथाविध नही प्राप्त करूँगी, तो अपने प्राण त्याग दूँगी।

जलकर भी तृप्त न होने तथा चारो आर फैलकर प्राणो को जलानेवाली अग्नि क समान स्थित उस कैकेयी ने कहा—ह दृढ धनुषधारी! पूर्वकाल म एक राजा[1] ने सत्य की रक्षा के लिए अपना ही मास काटकर दिया था। उसक वश म उत्पन्न होकर आप यदि वर देकर भी उनको पूण करने के लिए दु खी हो, तो इससे बढकर और क्या होगा?

तब बलवान् चक्रवर्त्ती ने यह सोचकर कि कही यह पापिन अपने प्राण त्याग न कर दे, कहा—मैंने वर दे दिये, दे दिये। मेरा बेटा अरण्य म शासन करेगा और म मरकर स्वग मे राज्य करूँगा। तुम चिरकाल तक अपने पुत्र के सहित अपयश रूपी समुद्र का पार न पाकर उसीमे डूबती रहोगी, डूबती रहोगी।

अपना यह वचन पूरा करने के पूव ही, व काटनेवाले तीक्ष्ण करवाल जैसी पीडा के अपने मन में प्रविष्ट हो जाने से अत्यन्त व्याकुल हुए। सँभल न सके ओर निष्क्रिय पडे रहे। कैकेयी अपनी इच्छा पूण होने से सतुष्ट होती हुइ निद्रालीन हो गई।

रात्रि रूपी स्त्री यह देखकर कि चद्रकला क सदृश मनोहर मदहासवाली यह सुन्दरी (कैकेयी) चिरकाल से अपने पति के साथ एकप्राण सी रही, अब अपने पति को अत्यन्त दारुण दु ख मे डूबते हुए देखकर भी किंचिन्मात्र दु खी न होकर सो रही है, वह (रात्रि रूपी स्त्री) मानो पुरुषो के सम्मुख खडी रहने को स्वय लज्जित होती हुई, वहाँ से हट चली।

१ इसमें उल्लिखित राजा 'शिबि' है, जिसने बाज से एक कबूतर को बचाकर उस कबूतर के बदले अपने शरीर का मास काटकर बाज को दिया था।

रात्रि के अन्तिम याम में कुक्कुट बोलने लगे। वे ऐसे लगते थे कि भ्रमरों से गुंजरित पुष्पमालाओं को धारण करनेवाले चक्रवर्ती ने कैकेयी के कारण दुःखी होकर जो वचन कहे थे, उनको सुनकर मानो वे (कुक्कुट) अत्यन्त व्याकुल हो रहे हों और अपने पंख रूपी हाथों से छाती पीटते हुए रुदन कर रहे हों।

जलाशयों तथा वृक्षों पर अपने मृदुल पंखों को फड़फड़ाकर कूदनेवाले और आकाश में उड़नेवाले पक्षी, सूक्ष्म कटिवाली सुन्दरियों के नूपुरों के समान ध्वनि करने लगे, मानो वे केकय राजा की पुत्री होकर उत्पन्न उस विष (समान कैकेयी) को कोस रहे हों, जिसने क्षुद्रता के साथ दारुण उत्पात उत्पन्न किया था।

हाथी, जो अबतक (हथसारों में) मधुर निद्रा ले रहे थे, अब मानो यह सोचकर कि प्रसिद्ध नामवाले प्रभु सुन्दर मेखलाधारी अपनी पत्नी सहित अरण्य को जायेंगे, अपने मन में कॉप उठे और यह कहते हुए कि हम भी इस पृथ्वी को छोड़ देंगे, झट उठकर चल दिये।

विकसित कमल जैसे अरुण नेत्रोंवाले राम के गज शुंड जैसे हाथ में मंगल सूत्र बाँधने के पूर्व जो शामियाना शीतल किरणोंवाले मोतियों से अलंकृत करके तथा सारी पृथ्वी को आवृत करके डाला गया था, वह अब खोला जा रहा हो—यों आकाश में चमकनेवाले नक्षत्र अदृश्य होने लगे।

नगाड़े यह सूचना देते हुए बज उठे कि भयंकर कोदंडधारी राम को प्रणाम करने का शुभ समय आ पहुँचा और रात्रिकाल, जब मन्मथ अपने इक्षु धनुष का पराक्रम दिखाता था, व्यतीत हो गया, (नगाड़ों की) वह ध्वनि पर्वतों के शिखरों पर के मेघ गर्जन के समान थी। उस ध्वनि को सुनकर (अयोध्या की) नारियाँ मयूरों के झुण्डों के समान विकसित वदनों के साथ निद्रा छोड़कर उठने लगीं।

विविध पुष्प समुदाय खिल गये। उनकी सुगन्धि को लेकर मंद मारुत बह चला। कुछ युवतियाँ उस (मंदानिल) के स्पर्श से व्याकुल हुईं और उनके वस्त्र तथा मेखलाभरण ढीले हो खिसक गये। कुछ स्त्रियाँ, जो स्वप्नों में अपने अपने प्रियतमों का गाढ़ा आलिंगन करके दुःखमुक्त हो उठी थीं, उन ऐन्द्रजालिक स्वप्नों में बाधा पड़ने से स्तब्ध रह गईं।

कुमुदपुष्प इस प्रकार मुकुलित हो गये, जैसे उत्तम गुणवाली स्त्रियों ने, चिरकाल तक रहनेवाले अपयश को उत्पन्न करके अपनी अपूर्व कीर्त्ति को मिटानेवाली कठोरहृदया कैकेयी के पापकर्म को देखकर और उसमें स्त्री जाति के गौरव के मिटने से दुःखी होकर, अपना मुँह बंद कर लिया हो।

जो स्त्रियाँ अत्यन्त अनुराग से भरी थीं, प्रज्ज्वलित अग्नि से भी अधिक तीव्र कामना से पूर्ण थीं तथा मन्मथ के तीक्ष्ण शरों, नभ की चन्द्रिका एवं दीर्घ मंदमारुत के उनके शरीर को काटने से जो अत्यन्त व्याकुल थीं, उन विरहिणी युवतियों के कानों को मधुर राग पूर्ण गान ऐसे लगे, जैसे फनवाले सर्प (उन कानों में) प्रविष्ट हो रहे हों।

मेघ के समान (दानशील) भुजावाले पुरुष, अपनी शय्याओं से यह विचार करते हुए उठे कि चक्रधारी (राम) के राजतिलक के शुभ दिन के पूर्व की यह रात्रि एक युग से

भी बडी लगती है तथा आज का समय ऐसा है, जब कमलनिवासिनी (लक्ष्मी), सब लोकों के निवासी एवं हमलोगों के पुण्यवान् नयन तथा हृदय जीवन का लाभ प्राप्त करेंगे।

जो रमणियाँ, तैल सिक्त उज्ज्वल तथा तीक्ष्ण बरछे जैसे अपने नयनों को बंद करके मन में राम के राजतिलक का ही ध्यान लिये, झूठी निद्रा ले रही थी, वे (स्त्रियाँ) आश्चर्य जनक शरीर कांति से युक्त राम की सुन्दरता को देखने की अधिकाधिक बढ़नेवाली इच्छा से, पुष्पों की सेज को ऐसे छोड़कर उठ गईं कि (उन पुष्पों का रस लेनेवाले) भ्रमर गुंजार भरते हुए उड चले।

मनोहर पुष्प मालाधारिणी जो सुन्दरियाँ मन की दृढता के साथ (अपने पतियो से) मान किये बैठी थी, वे अब प्रभात वाद्यो को बजते हुए सुनकर घबरा उठी और अपने दुःख व्याकुल पतियो को प्राण दान सी करती हुई स्वर्णाभरणो के दबते हुए, लता तुल्य कटि के भय विकंपित होते हुए तथा दलयुक्त पुष्पमाला के अंकित होते हुए समागम का सुख न प्राप्त कर सकी।

सर्वत्र मयूर पंख चमक उठे। भ्रमर शब्दायमान हो उठे। पुष्प मालाएँ चमक उठी। भेरियाँ शब्दायमान हो उठी। स्थान स्थान पर स्थित मुक्ता पंक्तियाँ चमकती हुई शब्दायमान हो उठी। आभरण शब्दायमान हो उठे। पक्षी शब्दायमान हो उठे। वीणा वाद्य शब्दायमान हो उठे। मन से भी अधिक वेग से दौडनेवाले अश्व, मेघो के समान शब्दायमान हो उठे।[1]

दीपक उसी प्रकार मन्द पड गये, जिस प्रकार चतुर्दश भुवनो को अपने प्राणो सहित दान देनेवाले, वीरो के वीर, अपने ज्येष्ठ पुत्र पर अधिक प्रेम रखने के कारण अत्यन्त विह्वल तथा पंचेंद्रियो के निष्क्रिय हो जाने से कंपित हो पडे हुए चक्रवर्त्ती (दशरथ) की दिव्य देह की कांति मंद पड गई थी।

अनेक वेणुवाद्य शब्द कर उठे। स्वस्ति वाचन सुनाई पडने लगे। संगीत ध्वनि गगन भर में व्याप्त हो गई। अनेक प्रकार के वाद्य बज उठे। (सुन्दरियो के) नूपुरो के साथ शंख भी शब्द कर उठे तथा शृंगीवाद्य साम गान कर उठे।

सूर्य, धूप के समान बढे हुए अन्धकार रूपी शत्रु को भगाता हुआ और प्रासादो के भीतर के दीपो की कांति को मन्द करता हुआ उदय पर्वत पर उदित हुआ। वह लाल होकर दिखाई पड रहा था, मानो पापिन कैकेयी के वैर से अपने कुल के श्रेष्ठ पुत्र चक्रवर्त्ती के प्राणो को व्याकुल होते देखकर वह (सूर्य) अत्यन्त क्रुद्ध हो गया हो।

पंकज समूह इस प्रकार सत्वर प्रफुल्ल हो उठे, जैसे वे उन रमणियो के वदन हो, जो (रमणियाँ) उन रामचन्द्र के मुकुट धारण की शोभा को देखने की इच्छा से भरी थी, जो (रामचन्द्र) त्रिमूर्त्ति बननेवाले त्रिदेवो के भी आदि कारण थे। स्वयं सारी सृष्टि बनकर रहते थे तथा इन्द्रादि देवो के प्रभु शिव के धनुष को तोडनेवाले महावीर थे।

ऐसे समय, उस विशाल अयोध्या की प्रजा, इस विचार से कि आज चक्रवर्त्ती के कुमार सिंहासनारूढ होंगे, बडे हर्ष के साथ ऐसे कोलाहल कर उठी, जैसे सातो समुद्र एक

१ मूल में चमकना और शब्दायमान होना इन दोनो अर्थों को देनेवाली एक ही क्रिया 'ओलित्तन' का बार-बार प्रयोग हुआ है, जिससे शब्दगत सुन्दरता बढ गई है। —अनु०

साथ गरज उठे हो। उस दृश्य का वर्णन करने का विचार तक करना मुझ जैसे लोगों के लिए असम्भव है, फिर भी किंचिन्मात्र हम उसका वर्णन करेंगे।

कुंजर जैसे वीर युवकों के मन को मुग्ध करनेवाली युवतियाँ (अपने शरीर में) महावर लगाती, दूध जैसे उज्ज्वल शंख वलयों को चुन चुनकर पहनती, करवाल तथा बाण समान तीक्ष्ण नयनों में काजल लगाती, जैसे उनमें विष ही रख रही हो तथा नव पुष्पों को धारण करती।

वहाँ के युवक, जो अत्यन्त आनन्द से अश्रु बहानेवाले कमल सदृश नयनोंवाले थे, दोष हीन वदनवाले थे, जिनकी पुष्ट भुजाओं पर मीन समान तथा मद्य पान से उत्पन्न व्रण जैसे लाल रंग से भरे नयनोंवाली सुन्दरियों के स्तनों पर के चंदन लेप का चिह्न अभी नहीं मिटा था, रामचन्द्र के मुकुट धारण की बात सोचकर उन (राम) के भाइयों के जैसे ही (अत्यन्त आनंदित) हो उठे।

उस नगर में रहनेवाले सद्‌गुणों के आगार सब पुरुष दशरथ के जैसे थे। ब्राह्मण सब वसिष्ठ के जैसे थे। सच्चरित्र स्त्रियाँ कौशल्या की जैसी थी तथा अन्य युवतियाँ सीता के समान थी और वह (सीता) देवी लक्ष्मी के समान थी।

सीता के पति के मुकुट धारणोत्सव को देखने की उमड़ती हुई इच्छा से प्रेरित होकर राजाओं का समूह अमृत का पान करने के लिए आये हुए देवों के जैसे आकर वहाँ एकत्र हुआ, जिससे शब्दायमान समुद्र से आवृत पृथ्वी का सारा प्रदेश खाली हो गया।

उस सुन्दर नगर में सर्वत्र, शर्करा के से माधुर्य एवं प्रवाल के जैसे रक्त अधरोंवाली, पीन स्तनोंवाली तथा विशाल जघन तटवाली सुन्दरियों के झुण्ड थे और उनके साथ पुरुषों के झुण्ड भी थे। सब एक दूसरे को ढकेलते हुए कह रहे थे कि चलो चलो, किन्तु आगे जाने के लिए स्थान न होने से वे अपने अपने स्थानों पर ही स्थिर खड़े रहने के अतिरिक्त न तो आगे बढ़ सकते थे, न उस विचार को (अर्थात्, आगे बढ़ने के विचार को) छोड़ ही सकते थे।

उस जन समुदाय को देखकर कुछ कहते थे कि राजा लोग ही अधिक हैं, कुछ कहते थे कि सैनिक वीर ही अधिक हैं, कुछ कहते थे कि पुरुष अधिक हैं, कुछ कहते थे कि स्त्रियाँ अधिक हैं, कुछ कहते थे कि आगत प्रजा ही अधिक है कुछ कहते थे कि अभी आनेवाली प्रजा अधिक है, जो जैसा समझता था, वह वही कहता था। किन्तु, कोई भी सम्पूर्ण रूप से (उस भीड को) नहीं देख पाता था।

नीलोत्पल का लावण्य और भाले की क्रूरता, दोनों को एक साथ मिलाकर तथा उस पर मृदुल अंजन नामक विष को लगाकर जैसे धवल चन्द्रमा पर रखा गया हो वैसे विशाल नयनों से युक्त सुन्दर तथा लचकती हुई सूक्ष्म कटिवाली युवतियाँ नाचनेवाले मयूरों के झुण्ड के समान एकत्र हो आई।

सुगन्धित तुलसी माला से भूषित (राम) के भू देवी के साथ शुभ विवाह को (अर्थात् राज-तिलक को) देखने के लिए जो नहीं आये, वे थे लंका के निवासी राक्षस, सप्त द्वीपों के कुल पर्वत तथा अष्ट दिशाओं में स्थित मदस्रावी गज।

विशाल राज्यों के शासक इन्द्र की समता करनेवाले नरेश ऐसे मुक्तामय धवल छत्रों को लिये हुए जैसे करोड़ों चन्द्र आकाश में भर गये हों तथा ऐसे श्वेत चामरों को लिये हुए जैसे अन्तरिक्ष में अनेक हंस उड़ रहे हों, अभिषेक के मण्डप में आ पहुँचे।

तपस्या के द्वारा पुण्य फलों को प्राप्त करनेवाले उत्तम वेदज्ञ ब्राह्मण ऐसे आनन्द के साथ कि अपने पुत्र के विवाह को ही देखनेवाले हों, राज्य लक्ष्मी के साथ रामचन्द्र का विवाह देखने के लिए आ पहुँचे।

देवता गगन तल को भरने लगे, समुद्र रूपी वस्त्र से युक्त भूमि पर रहनेवाले लोग सब दिशाओं को भरने लगे, मंगल सूचक शंखों की ध्वनि तथा विशाल भेरियों की ध्वनि श्रोताओं के कानों में भरने लगी, अपरिमेय स्वर्ण के साथ (दान करते हुए) बहाई हुई जल की धारा, वीचियों से पूर्ण सातों समुद्रों को भरने लगी।

दीप की कांति को मन्द करनेवाली देह की कांति से युक्त राजाओं के विद्युत् जैसे चमकनेवाले असंख्य किरीटों की रह रहकर चमकनेवाली जगमगाहट, गगनगामी सूर्य को भी आवृत कर फैल गई, समुद्र से उत्पन्न मुक्ता जैसे दाँतोंवाली मन्दहास युक्त युवतियों के आभरणों की कांति, स्वर्ण को भी आवृत करके देवताओं की आँखों को भी चौंधियाने लगी।

उस समय, प्रभु (राम) के राज्याभिषेक के लिए आवश्यक समस्त सामग्री को लेकर वेदज्ञ ब्राह्मण चारों वेदों का वाचन करते हुए आये। उस पुरातन नगर के द्वार पर एकत्र हुई भीड़ उनके लिए मार्ग छोड़कर हट गई, इस प्रकार (ब्राह्मणों को अपने साथ लेकर) महान् तपस्वी वसिष्ठ आ पहुँचे।

वसिष्ठ मुनि ने गंगा से कन्याकुमारी पर्यंत सब तीर्थों के पवित्र जल तथा चारों दिशाओं के जल को मँगवाया। होम के लिए आवश्यक वस्तुओं का प्रबन्ध किया और वीर सिंहासन भी प्रस्तुत करके रखा तथा सब आचार सम्पन्न किये।

ज्यौतिषज्ञों ने कहा कि मुहूर्त्त निकट आ गया है। कर्म बन्धन को तोड़नेवाले तप का आचरण करनेवाले महर्षि (वसिष्ठ) ने सुमंत्र को आदेश दिया कि शीघ्र जाकर रत्न किरीट धारी चक्रवर्त्ती को ले आओ। वह आज्ञा शिरोधार्य करके सुमंत्र बड़े प्रेम के साथ गया।

गगनचुंबित राज प्रासाद में चक्रवर्त्ती को न पाकर सुमंत्र ने वहाँ के परिजनों से पूछा। उन लोगों से यह जानकर कि चक्रवर्त्ती कैकेयी के साथ हैं, वहाँ पहुँचकर सुमंत्र ने दासियों के द्वारा अपने आगमन का समाचार भीतर भेजा। तब स्त्रियों में यमतुल्य कैकेयी ने सुमंत्र को यह आज्ञा दी कि वह जाकर राम को यहाँ ले आये।

कैकेयी का आदेश पाकर सुमंत्र बड़ी उमंग के साथ स्वर्णमय गोपुरों से युक्त वीथियों को शीघ्र पार कर गया और अपने मन में अपना ही ध्यान करते रहनेवाले (अर्थात्, नारायण के अवतारभूत तथा भगवान् के ध्यान में निरत रहनेवाले) पर्वत तुल्य कंधोंवाले राम को नमस्कार करके मुँह पर हाथ रखकर[1] यों निवेदन किया।

[1] बड़े लोगों के साथ बात करते समय मुँह के सामने हाथ रखकर बोलना विनम्रता का चिह्न होता है।—अनु०

राजा, ऋषि तथा भूतल के लोग तुम्हारे पिता के समान ही बड़े प्रेम के साथ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। तुम्हारी छोटी माता (कैकयी) ने आदेश दिया है कि मैं तुमको वहाँ ले आऊँ। अतः, स्वर्णमय उन्नत मुकुट को धारण करने के लिए शीघ्र चलो।

प्रभु (राम) वह वचन सुनकर, सहस्र शिरोंवाले (नारायण) को नमस्कार करके समुद्र जैसे राज समुदाय से घिरे हुए, पुष्पालंकृत रथ पर सवार होकर चले। उस समय देवता लोग दिव्य संगीत का गान करते हुए आनन्द से उन्हें आशीर्वाद दे रहे थे एवं सुन्दरियाँ बड़े कोलाहल के साथ उन्हें देख रही थी।

'वीर (राम), मनोहर रत्न मुकुट धारण करने के लिए जा रहे हैं,' इस उमंग से प्रेरित होकर वे सुन्दरियाँ एक से एक आगे बढ़कर मार्ग के दोनों पार्श्वों में बड़ा कोलाहल करती हुई आ खड़ी हुईं। वे इस प्रकार हो गईं, मानो उन सबका एक ही प्राण हो और वह प्राण बाहर होकर एक अनुपम रथ पर आरूढ़ होकर जा रहा हो।

वे उदार (रामचन्द्र) कठोर वचनवाली (कैकेयी) की आज्ञा से उज्ज्वल किरीट को छोड़कर, पवित्र पृथ्वी रूपी पत्नी से वियुक्त होकर, अरण्य के लिए प्रयाण करने के पूर्व ही, संगीत की मधुर कंठध्वनि करनेवाली उन रमणियों की भुजा रूपी बाँसों तथा नेत्र रूपी बरछों के घने अरण्य में प्रविष्ट हो गये।

वे स्त्रियाँ, सुगन्ध चूर्ण, पुष्प, चन्दन, स्वर्ण आदि बिखेरने के लिए वहाँ आकर अपनी सुन्दर मेखलाओं को कँगनों को तथा लज्जा को बिखेर रही थी। वे मन्मथ के बाणों से आहत होकर, क्षतों से पूर्ण अपने परस्पर सटे हुए मृदु स्तनों को, काम पीड़ा के कारण नयनों से बरसनेवाले अच्छे अश्रुजल से धो रही थी।

'यह सुन्दर नयनोंवाला (राम) क्या पृथ्वी की रक्षा करने के योग्य है? हम, अबलाओं के प्रति किंचित् भी प्रेम से यह हीन है', यों सोचकर वे व्याकुलता से काँप उठती और यह कहती कि अरुण नयनों तथा श्यामल देह से युक्त यह राम सब स्थानों में दिखाई दे रहा है, किन्तु न जाने कितने राम हैं।

स्त्रियाँ इस प्रकार (प्रेममग्न) होकर, झुण्ड बाँधकर कोलाहल करती हुई आईं। मुनियों तथा उस प्राचीन नगर के वृद्धों एवं बालकों ने राम के रूप को देखा, किन्तु (उनके प्रति) अपने प्रेम की सीमा को नहीं देखा। अब हम उनके मन के भावों एवं उनके वचनों का वर्णन करेंगे।

उन लोगों में से कोई कहता, यह संसार तर गया। कोई कहता, युगांत काल को यहीं से तुम देख लो (अर्थात्, वे राम को यह आशीर्वाद देते हैं कि युगांत काल तक तुम जीवित रहो), कोई कहता, हमारी आयु भी तुम ले लो, कोई कहता, पंचेंद्रियों पर दमन करके हमने जो कठोर तपस्या की है, उसका फल तुम्हारा ही हो और कोई कहते, हे हारते तुलसी की माला धारण करनेवाले! तुमको समस्त पुण्यफल प्राप्त हो।

कोई कहते, इस (राम) के अत्यन्त करुणा से पूर्ण उज्ज्वल नयनों की समता करते हैं कमल और इसकी देह छवि को प्राप्त किया है मेघों ने। न जाने, उन्होंने कैसा पुण्य किया है। और, कुछ कहते, चक्रवर्ती दशरथ ने अपूर्व तपस्या करके इस महानुभाव को

पुत्र के रूप म प्राप्त करके इस ससार को दिया है, उनका हम क्या प्रत्युपकार कर सकते है ?

कोई कहते, इस महानुभाव की कृपा, गजेद्र की पुकार को सुनकर मकर के प्राणो का अन्त करनेवाले चक्रधारी नारायण की कृपा जैसी है। कोई प्रभु क निकट आकर, उनके दर्शन कर, कुछ कारण क विना ही अपने मनोहर नेत्रो से अश्रु बहान लगते।

काई कहते—प्रभु की गभीरता और बुद्धि महान् श्याम घन क समान है, उनका जैसा शील और किसम हो सकता है ? चिरकाल तक गणना करने योग्य सबसे बडी सख्याओ के भी परे जो रहता है, उस अनादि तथा अनत, अविनाशी मूर्त्ति (नारायण) का यह अवतार है। यह देवो म अतर्भत नही है।

कोई कहते—समुद्र खोदनेवालो की (अर्थात् सगर पुत्रो की), धरती पर गगा नदी का लानेवालो की (अर्थात् भगीरथ की), देवो की सहायता करने क लिए असुरो के साथ युद्ध करके उन्हे परास्त करनेवालो की (अर्थात् इक्ष्वाकु, ककुत्स्थ आदि दशरथ पयत अनक सूर्यवशी राजाओ की) जो अति प्रवृद्ध कीत्ति स्थिर ह, वह इस प्रभु (राम) की विजयमाला भूषित भुजाआ की कीत्ति के कारण ही अमर बनी ह।

ह वीर राम ! लो, यह चदन है, ये उत्तम रत्न हार ह। यहाँ तिलक एव सर्व आभरणो से भूषित मत्तगजो की श्रणियाँ है। ये अश्व पक्तियाँ ह। ये पीत स्वण की निधियाँ है, निधन लोगो को इनका दान दो—यो कहकर कोई उन वस्तुओ की पक्तियाँ लगात थे।

विद्युत् समान रथ पर सवार होकर जब रामचन्द्र आ रह थे, ऐस द्रवितचित्त हो खडे थ, जैसे कोई गाय अपने बछडे को अकेले छलाँग मारकर आत हुए देखकर प्रेम स द्रवितमन होती है।

कुछ सदगुण सम्पन्न यह कहत कि श्वेतच्छत्र की छाया किये, बडी सना रख, विविध शस्त्र धारण किये जो राजा भूमि का शासन करत ह, उनका अन्न (राम जैसे व्यक्ति के उत्पन्न होने के पश्चात्) पुत्रो को जनना व्यथ ह, और चित्र लिखित मूत्ति जैसे स्तब्ध खडे रहते।

विद्युत् से शोभायमान श्याम घन जैसे वक्ष पर यज्ञोपवीत स शाभायमान राम, क्या रथ पर शीघ्रता से मार्ग पार करता हुआ जायगा ? (राम क) रथ की गति को मद करन के लिए अनेक स्वर्णराशियो और विविध रत्नो से मार्ग को भर दीजिए—यो कहते हुए कुछ लोग मार्ग पर (स्वण, रत्न आदि) बिखेर रह थ।

कुछ लोग कहते—यह अपनी माता की गोद म नही पला, किन्तु पूवजन्म क पुण्य से इसका पालन करनेवाली है कैकयी, अतएव वह (कैकयी) समस्त पृथ्वी का शासन इसे देकर आनदित हा रही है। ऐसा करनवाली उस (कैकयी) का आनन्द किस प्रकार का है ! हम क्या कहे ?

कुछ कहते—अब पाप और दुख समूल मिट जायगे। कुछ कहत—भूमडल पर अब एक व्यक्ति का स्वत्व नही रहा, वह सब लोगो का हो गया। कुछ कहत—यह देवताओ के शत्रु राक्षसो को मिटा देगा और कुछ कहत—इसकी आज्ञा का पालन करने वाले राजाओ का भाग्य कितना महान् है।

जब नगरनिवासी इस दशा में थे, तब विजयी प्रभु (राम) अनुपम रथ पर आरूढ होकर, दीर्घ ध्वजाओं से शोभित प्रासादों की पंक्तियों से युक्त वीथियों को पार कर गये और महान् यश से भूषित चक्रवर्त्ती के प्रासाद में जा पहुँचे।

पुष्प भूषित कंतलोंवाली सुन्दरियों के द्वारा चामर डुलाये जाते हुए, नूतन हर्ष से उल्लसित मन से, राम वहाँ आये, किन्तु वहाँ अपने अगाध स्नेह को प्रकट करते हुए, उन्नत किरीट धारण किये हुए, सुन्दर कमल पीठ पर आनन्द के साथ आसीन हुए दशरथ को नहीं देखा।

वे राम, जो वेदों तथा अन्य शास्त्रों के जाननेवालों के मन में प्रकाशित (भगवान् के) रूप के साथ एकरूप थे, उस स्वर्णमय सभा मंडप में नहीं गये, जहाँ ऋषियों और नरेशों के संघ बड़े आनन्द के साथ यथार्थ प्रशस्तियों का गान कर रहे थे, किन्तु अपनी छोटी माता (कैकेयी) के आवास में गये।

राम को यों जाते हुए देखकर राजाओं तथा ऋषियों ने सोचा—राम ने उचित ही सोचा है। वह पहले अपने पिता के चरणों को नमस्कार करके, फिर सब दिशाओं में उज्ज्वल भासमान किरणोंवाले सूर्य से प्राप्त अत्युत्तम मुकुट को यथाविधि धारण करनेवाला है। यह बिलकुल ठीक ही है।

जब ऐसा हो रहा था, तब रामचन्द्र मन में किंचित् शिथिल होकर फिर स्वस्थ हुए और पवित्र दशरथ के रहने के स्थान को ढूँढते हुए आ पहुँचे। यह देखकर, अनुपम क्रूरता से युक्त कैकेयी, यह सोचती हुई कि मेरा पति अपने मुँह से (वरदान की बात) नहीं कहेगा, अतः मैं स्वयं इससे कहूँगी—उसको (कैकेयी को) अपनी माता मानकर उसके निकट आये हुए राम के सम्मुख यम के समान वह प्रकट हुई।

गोधूलि वेला में अपनी माँ को देखनेवाले वत्स के सदृश राम ने अपने सम्मुख आई हुई माता को, धरती पर सिर रख नमस्कार किया। सिंदूर तथा प्रवाल समान सुगंधयुक्त अपने मुँह को एक अरुण कर से आवृत करके और दूसरे कर से अपने वस्त्रों को सँभाले हुए बड़ी विनम्रता के साथ खड़े रहे।

इस प्रकार खड़े हुए राम को देखकर, लोह हृदय से युक्त होकर, 'प्राणियों का संहार करनेवाला यम'—केवल इस नाम से रहित होकर, कठोर कृत्य करनेवाली उस (कैकेयी) ने कहा—हे तात। तुम्हारे पिता तुमसे एक बात कहना चाहते हैं। यदि उनके अभिप्राय को कहना मुझे उचित हो, तो मैं उसे कहूँगी।

आज्ञा देनेवाले मेरे पिता हैं। कहनेवाली आप स्वयं हैं। यह संभव हो तो—(अर्थात्, यदि आप स्वयं उस बात को मुझसे कहें तो) मेरा उद्धार हुआ। मेरे सदृश जन्म लेनेवाला और कौन है? मेरे भाग्य से ऐसा अच्छा फल मुझे मिला है, इससे बढ़कर और क्या अच्छा फल हो सकता है? आप मेरे माता और पिता दोनों हैं। आपका वचन मेरे लिए शिरोधार्य है। (अतः) आप आज्ञा दें।

तब कैकेयी ने राम से कहा—चक्रवर्त्ती ने यह आज्ञा दी है कि समुद्र से आवृत पृथ्वी का शासन भरत करें और तुम जटाधारी होकर तपस्वी के वेष में घने अरण्य में जाकर

रहा। वहाँ पवित्र नदियो म स्नान करत हुए चोदह वर्ष व्यतीत करो ओर उसक पश्चात् लौट आओ।

किमी क लिए अवणनीय गुणोवाल रामचन्द्र क सुन्दर मुख मडल की उस समय जो शाभा थी, उमका कथन करना हम जेसे लोगो के लिए सुलभ नही हे। उस मुख शोभा ने, जो मदा कमल की सुषमा की जैसी रहती थी, कैकेयी क यह वचन सुनकर सद्योविकसित अरुण कमल का भी परास्त कर दिया (अर्थात् , कमल की शोभा से भी अधिक राम के वदन की शोभा बढ गई।)

रामचन्द्र पहले विशुद्ध ज्ञानवाले चक्रवर्ती की आज्ञा का उल्लघन होने स डरकर ही इम अधकारमय ससार क राज्य क दु ख को स्वीकार करने क लिए सन्नद्ध हुए थे। अब व उस भार से मुक्त होकर एसे लग, जैसे कोई वृषभ, जो चक्रवाले शकट म स्वामी क द्वारा जोता गया हो, पर किसी करुणामय व्यक्ति क द्वारा बधन से छुडा दिया गया हो।

यदि वह चक्रवर्ती की आज्ञा न भी हो, फिर भी क्या आपकी आज्ञा मेरे लिए पालनीय नही ह? मरे भाई ने ऐश्वय पाया, तो मने भी तो उसे पा लिया। अत , इससे बढकर मेरा हित और क्या हो सकता हे? इस आज्ञा को मने शिराधार्य किया। मैं अभी बिजली की जैसी धूप से युक्त अरण्य म जाऊँगा। आपसे विदा भी ले रहा हूँ।

(१–११०)

●

अध्याय ४

नगर-निष्क्रमण पटल

पवत स भी ऊचे कधोवाले राम ने ऐसे वचन कहकर कैकेयी के चरणो को पुन नमस्कार किया। पिता दशरथ जिस स्थान म रहत थ, उस दिशा की ओर मुख करके नमस्कार किया ओर स्वण कमल पर आसीन लक्ष्मी तथा भू देवी के रोते हुए, वे कौशल्या के आवास म पहुँचे।

कौशल्या दवी जब यह सोचती हुई बैठी थी कि मेघो क आवासभूत पवत जैसा मरा राम, किरीट धारण करके आयेगा, तब राम डुलनेवाले चामर ओर श्वतच्छत्र के विना ही, विधि क अपन आगे आगे जात हुए ओर धर्मदेव क अपने पीछे पीछे आते हुए, अकेले ही, कौशल्या के सम्मुख जा पहुचे।

'इसने किरीट नही पहना ह, इसक केश तीर्थो क पवित्र जल से भीगे नही हे, इसका कारण क्या हो सकता हे?'—इस प्रकार आशकित हानेवाली उस (कोशल्या) क चरणो को स्वर्णमय वीर वलयधारी राम ने प्रणाम किया। उस देवी ने चिंतित मन के साथ उन्हे आशीर्वाद देकर पूछा—सोचा हुआ काय क्या हुआ? क्या राजतिलक म कोई विघ्न उत्पन्न हुआ?

कोशल्या क यह पूछने पर राम ने अपने अरुण कर जोडकर कहा—आप के प्रेम का पात्र, उत्तम गुणवाला मेरा भाई भरत ही उन्नत किरीट को धारण करनेवाला है।

तब उस (कौशल्या) देवी ने, जो राम आदि चारो पुत्रो पर निष्कलक प्रेम रखती थी और भेदभाव से रहित थी, कहा—(ज्येष्ठ को रहत हुए, कनिष्ठ को राज्य का अधिकार नही है, इस) परिपाटी के अनुसार यह (भरत का राजतिलक) नही हो सकता। बस इतना ही , नही तो वह (भरत) सब से अधिक गुणवान् है, उसम कोई कमी नही है।

कोशल्या ने राम से पुन कहा—ह पुत्र! चक्रवर्त्ती की आज्ञा का निषेध करना तुम्हारा धर्म नही ह। इस आज्ञा को अपने लिए हितकर समझकर तुम अपने भाई भरत को राज्य दे दो और उसके साथ एक होकर चिरकाल तक जिया।

माता का कथन सुनकर पवित्र, हर्ष भरे हृदयवाले तथा दाषहीन गुणवाले राम ने कहा—चक्रवर्त्ती ने मुझे सन्मार्ग पर चलने के लिए एक आज्ञा दी है।

कौशल्या ने पूछा—वह आज्ञा क्या है? तब राम न कहा—चक्रवर्त्ती ने आज्ञा दी हे कि म चौदह वर्ष पर्यंत महान् अरण्य म ऋषियो के साथ निवास करके फिर लोट आऊँ।

वह वचन रूपी अग्नि कर्णाभरण स भूषित (कौशल्या क) कानो म प्रविष्ट होवे, इसक पूर्व ही वह दु खी हुई, कृशगात्र हुई, भ्रातचित्त हुई, रोई, मूर्च्छित हुई और गिर गई।

उसने (राम से) कहा—ह पुत्र! चक्रवर्त्ती ने तुम्हारे प्रति पहले जो कहा था कि तुम इस विशाल धरती का अवलब बनकर इसकी रक्षा करो, वह क्या धोखा था या वह विष ही था? मेरे पाँचो प्राण भयभीत हो रह हे।

कौशल्या (अत्यन्त पीडा क कारण) कभी एक हाथ से दूसरे को मलती, कभी अपने प्यारे पुत्र के अधिष्ठान वन हुए, वटपत्र की समता करनेवाले अपने उदर को, ककणधारी पल्लव सदृश करो से दबाती, कभी अग्नि स जैसे धुआँ उठता हो, वैसा नि श्वास भरती। पुन उस नि श्वास को निगल जाती। इस प्रकार वह दु खी हो रही थी।

'चक्रवर्त्ती की दया भी भली ह!'—कहकर हँसती। सामने खडे पुत्र को देखकर यह कहकर कि तुम्हारा वन गमन कब होगा?—उठती। कौशल्या यो दु खी हुई जैसे उसके शरीर से प्राण ही निकल रह हो।

वह यह कहकर कि ह पुत्र! तुम्हार प्रति अपने मन म अत्यधिक प्रेम रखनेवाले चक्रवर्त्ती के प्रति तुमने क्या अपराध किया? वह यो रोती, जैसे पूर्वजन्म के पाप के कारण दरिद्रता अनुभव करनेवाला कोई व्यक्ति सम्पत्ति पाकर भी उसे खो बैठा हो और रो रहा हो।

वह कहती—क्या धम मेरा महायक नही हैं? कभी कहती, ह देवताओ! मैंने कौन सा पाप किया कि इस प्रकार मुझे विकल प्राण होना पड रहा है? वह, बछडे से अलग की गई गाय क समान व्याकुल हुई। इसके अतिरिक्त और क्या कहा जाय?

इस प्रकार व्याकुल होनेवाली माता को राम ने अपने हाथो से उठाया और यह कहकर सात्वना देने लगे कि ह अपूर्व पातिव्रत्यवाली माता! सत्य की गरिमा से युक्त हमारे चक्रवर्त्ती को क्या आप असत्य युक्त करेगी? कहिए तो।

शिला सदृश दृढता से युक्त पातिव्रत्यवाली कौशल्या को सात्वना देने के लिए राम ने उसके मन म बैठनेवाले, सुन्दर, सारगभित आर कहने योग्य ये वचन कहे —

मुझे ऐसा भाग्य प्राप्त हुआ है कि मेरा उत्तम भाई राज्य पा रहा हे। मेरे पिता ऐसे सत्यवादी ह कि भूलकर भी असत्य नही कहते। मे अरण्य मे निवास करके फिर वापस आऊँगा। जन्म पाने से, इससे बढ़कर और क्या भाग्य प्राप्त हो सकता है?

आकाश, धरती, समुद्र तथा अन्य भूत भले ही मिट जावे, तो भी चक्रवर्त्ती की आज्ञा मेरे लिए अनुल्लघनीय है। आप दु खी न हो।

राम के वचन सुनकर कौशल्या न कहा—हे तात! तो मे भी यह नही कह सकती कि चक्रवर्त्ती की आज्ञा के अनुसार तुम (अरण्य म) मत जाओ। तुमको छोडकर मेरे प्राण रह नही सकते। अत, तुम अपने साथ मुझे भी वन म ले चलो।

तब राम ने कहा—हे माता! मुझसे वियुक्त हो चक्रवर्त्ती दु ख सागर म डूबे हैं। ऐसी दशा म उन्हे सात्वना दिये विना मेरे साथ वन मे जान का आपका निश्चय करना उचित नही है। कदाचित् आपन धर्म का ठीक ठीक विचार नही किया।

दृढ धनुर्धारी भाइ भरत को राज्य सापकर जब चक्रवर्त्ती राज्य की सम्पत्ति से पृथक् हो तपस्या मे निरत होगे, तब उनके साथ रहकर आप भी अपूर्व व्रतो का आचरण करेगी।

आप क्यो इस प्रकार व्याकुल हा रही ह? देवता भी महान् तपस्या क आचरण से ही तो उन्नत हुए ह। (मेरे वनवास के) ये जितन वर्ष हे, वे दवो के चोदह दिन[1] ही तो हैं।

पहले कौशिक मुनि की कृपा से मैंने जो विद्याएँ प्राप्त की और उन्हे प्राप्त करने के पश्चात् जो कार्य करके मै भाग्यवान् हुआ, वे व्यर्थ नही हुए। अब भी ऐसे मुनियो की आज्ञा का पालन करना मेरे लिए उत्तम ही है।

मे महान् तपस्वियो की सेवा करके, अलघ्य ज्ञान प्राप्त करके, दोषहीन अनुपम विद्याएँ सीखकर एव देवो का प्रेम भी पाकर इस नगर मे लोट आऊँगा, आप देखेगी।

मगरमच्छो से पूर्ण समुद्र से आवृत पृथ्वी को खोदनेवाले, भ्रमरो से गुजरित पुष्पमालाएँ धारण करनेवाले सगर पुत्रो ने अपन पिता की आज्ञा का पालन करके अपने प्राणो को त्याग दिया और उस कार्य से प्रभूत कीत्ति के पात्र बने।

हरिण को धारण करनेवाले शिवजी के हाथ के परशु क जैसे शस्त्र को रखनवाले परशुराम ने अपने पिता जमदग्नि की आज्ञा का उल्लघन न करके अपनी माता का सिर काट दिया था। अत, मेरे लिए पिता की आज्ञा उपेक्षणीय है—यह सोचना भी उचित नही है।

राम न इस प्रकार के अनेक वचन कहे। उनको सुनकर सत्यरूपी उज्ज्वल आभरण से युक्त कौशल्या सोचने लगी कि राम कोशल देश को अवश्य छोडकर जानेवाला है।

फिर, कौशल्या यह विचार कर कि भरत पृथ्वी का राज्य करे, किन्तु मै चक्रवर्त्ती से

---

१ इस पृथ्वी में सूर्य का जो उत्तरायण और दक्षिणायन हे वे देवो के लिए दिन और रात है। अत, मनुष्यो का एक वर्ष देवों का एक दिवस माना गया हे।

ऐसी प्रार्थना करूँगी, जिससे राम को देश छोड वन म जाकर तपस्वी का जीवन व्यतीत करना न पडे, (दशरथ के पास) जाने लगी ।

यों जानेवाली कोशल्या को नमस्कार करके और यह विचार करके कि चक्रवर्त्ती का तथा माता को सात्वना देने की सामर्थ्य रखनेवाली सुमित्रा देवी ही है, राम उसके मेघ स्पर्शी प्रासाद म जा पहुँचे ।

उधर कौशल्या पैदल चलकर कैकेयी के आवास म पहुँची , वहाँ अपन पति को पृथ्वी पर गिरे हुए दखकर मूच्छित होकर ऐसे गिरी, जैस प्राण निकलने पर देह गिर जाती है ।

फिर, प्रज्ञा पाकर कौशल्या कभी कहती —वियोग के अयोग्य व्यक्तियो से क्यो ऐसा वियोग होता है ? कभी कहती—हे गरिमामय । यह क्या तुम्हारे लिए योग्य है ? कभी कहती—क्या यह न्याय है ? कभी कहती—हम दासो की दशा को आपने क्यो नही सोचा ? कभी कहती— आप निर्धनो के लिए उनक अभीष्ट धन बननेवाले है । कभी कहती— मुझ दीन एकाकिनी के आप ही अवलब ह। कभी कहती —क्या यह कार्य आपके विवेक क योग्य हे ? कभी 'ह राजन् । हे राजन्' । रटती ।

कभी कहती— ह चक्रवर्त्ती । अधकार को मिटानवाले सूर्य के समान अनुपम रूप म अपने आज्ञा चक्र को प्रवर्त्तित करके, निर्विघ्न रूप से दडनीति प्रवत्तित करक, अब क्या इस ससार का, समस्त वस्तुओ के साथ विनाश करनेवाला प्रलय उत्पन्न करन क लिए आप यह कार्य कर रहे हे ?

कभी कहती— हे वीचि भरे समुद्र से आवृत पृथ्वी के निवासियो के तप समान । वद प्रतिपादित तत्त्वो के सार सदृश । हे करुणालय । द्रवित मन हाकर मे रो रही हूँ, कितु आप मेरी कुछ नही सुनत ह । क्या यह उचित हे ? हे सप्त लोको के प्रभु ।

कभी कहती— हे पुत्र । तुम्हार पिता किसी अचितनीय दारुण पीडा से या मून्छित हो पडे हे कि विद्युत् समान उनकी देह प्राण हीन सी हो पडी है। व कुछ बोलत नही ह । अहो । इसका कारण क्या हो सकता है ? आओ, चक्रवर्त्ती की यह दशा देखो ।

इस प्रकार रोनेवाली कौशल्या की कठध्वनि (सभा मडप मे जाकर) प्रतिध्वनित होने के पूर्व ही उज्ज्वल करवालधारी राजा तथा ऋषिगण परस्पर— 'यह उचित नही है ।' कहते हुए वसिष्ठ को देखकर कह उठे कि आप जाकर इसका कारण ज्ञात करे । तब वसिष्ठ मुनि चक्रवर्त्ती क निकट आये । आकर उन्होने तीक्ष्ण करवालधारी चक्रवर्त्ती की वह दशा देखी । उनक मन म आशका हुई कि न जाने इसका परिणाम क्या होगा ?

वसिष्ठ विचार करने लगे— (चक्रवर्त्ती) मृत नही ह। विना मरे जीवित भी नही ह। प्रज्ञाहीन हो पडे ह । यह कैकेयी अव्याकुल खडी हे। यह कौशल्या वेदना से घुल रही है । ससार म उत्पन्न मनुष्यो का स्वभाव विविध हे । अन्य (सामान्य) व्यक्ति उसे समझ नही सकते ।

फिर, मुनिवर न यह सोचकर कि दु ख से उद्विग्नमना कौशल्या, दु ख का कारण नही बतलायगी । तब अपने सम्मुख अजलि बाँधकर खडी हुई कैकेयी से पूछा— हे माता ।

चक्रवर्ती मूर्च्छित हैं। इसका कारण क्या है, कहो। तब कैकयी ने अपने कारण निष्पन्न वृत्तांत को स्वयं कह सुनाया।

उसके सारा वृत्तांत कह सुनाने के पूर्व ही वसिष्ठ ने चमकते करवाल को धारण करनेवाले चक्रवर्त्ती को अपने सुन्दर कमल सदृश करों से धूलि भरी पृथ्वी से उठाया और यह कहते हुए कि—'हे शास्त्रज्ञ! चिंतित मत होओ, कैकयी स्वयं तुम्हारे पुत्र राम को राज्य दे देगी। तुम यह क्या कर रहे हो? इस अपना दुःख दूर करो', बार बार प्रार्थना करते हुए खड़े रहे।

फिर, मुनिवर वसिष्ठ ने (दशरथ पर) शीतल जल छिड़का, पंखा डुलाकर हवा की और धीरे धीरे उन्हें प्रज्ञा में लाकर मधुर वचन कहे। तब उन (मुनि) ने, शीतल समुद्र से उत्पन्न विष समान कैकयी के हलाहल समान वचन के कुछ शांत होने पर, अपने प्यारे पुत्र का नाम स्मरण करनेवाले चक्रवर्त्ती को होश में आते देखा।

चक्रवर्त्ती के प्राण लौटते देखकर वसिष्ठ ने कहा—हे नायक! अब तुम अपनी गंभीर वेदना को दूर करो। अब पुरुषोत्तम (राम) ही राज्य करेंगे। उसमें कोई विघ्न नहीं होगा। गरिमाहीन वचनवाली कैकेयी स्वयं उनको राज्य देगी। यदि घनश्याम राम राज्याभिषिक्त न होकर वन में जायेंगे, तो क्या हम यहीं रहेंगे?—(अर्थात्, हम भी देश छोड़कर चले जायेंगे), तुम दुःखी मत होओ।

यों विचार कर कहनेवाले मुनि के वचन सुनकर दशरथ बोले—इस दशा में रहनेवाले मेरे प्राणों के निकलने के पूर्व ही आप राम को सुन्दर रत्नमुकुट पहनावें और वन जाने से उसे रोक दें तथा मेरे वचन को भी असत्य होने से बचावें। हे प्रभु! आप यह कार्य करें।

तब मुनिवर ने गर्हित कार्य करनेवाली कैकयी को देखकर कहा—हे लक्ष्मी सदृश देवी! अब तुम अपने पुत्र (राम) को राज्य, अन्य लोगों को उनके प्यारे प्राण तथा (वैवस्वत) मनु के वंश में उत्पन्न अपने पति को प्राण देकर निष्कलंक कीर्त्ति प्राप्त करो।

बड़ी महिमावाले कर्मों का समूल नाश करके शक्तिशाली बने हुए वसिष्ठ के इस प्रकार कहने के पूर्व ही कैकेयी सिसक सिसककर रोती हुई बोल उठी—यदि चक्रवर्त्ती अपने वचन से विचलित हो जायेंगे, तो मैं इस विशाल धरती में अपने प्राणों के साथ नहीं रहूँगी। अपनी बात सच्ची करने के लिए अभी मर जाऊँगी।

तब मुनिवर ने कहा—तुम यह नहीं मानती कि तुम्हारा पति मर जायगा, तुम्हारा अपयश दिन दिन बढ़ता रहेगा, और इससे पाप उत्पन्न होगा। तुम अपना हठ छोड़ती नहीं। तुम कुछ नहीं समझती हो। इससे अधिक मैं और क्या कह सकता हूँ? यह कहकर पुनः कैकेयी को वे समझाने लगे।

किंचित् भी करुणा से हीन, दुर्गति में गिरानेवाले चक्रवर्त्ती के प्राणों का भी विचार न करनेवाली, घृत में घुमनेवाला अग्निकण है या विष, ऐसा भ्रम उत्पन्न करनेवाले वचन को कहनेवाली, हे नारी! तुम मानव स्त्री हो या अग्नि या मायाविनी पिशाचिनी हो? हे निष्ठुरे! अब दशरथ का तुमसे और इस मिट्टी में (अर्थात्, पृथ्वी में) क्या संबंध है? तुम्हें प्राप्त होनेवाला अपयश बहुत बलवान है।

चक्रवर्त्ती अपने मुँह से रामचन्द्र को वन जाने को कहे, इसके पूर्व ही तुमने (राम को वन जाने को) कह दिया। वह वन के दुस्तर मार्ग में गये विना नहीं रहेगा। तुम वह कठोर अग्नि हो, जो कीर्त्ति तथा अपने पति के प्राणों को जला रही हो। तुम्हारे सदृश कठोर और कौन होगा? इससे बढ़कर क्रूर कार्य और क्या हो सकता है?

निष्कलंक मुनि के ये वचन सुनकर व्याकुल होनेवाले चक्रवर्त्ती ने जिह्वा में विष रखनेवाली उस स्त्री को देखकर कहा—हे पापिन! क्या 'कठोर वन में जाओ', कहकर मेरे प्राण (सदृश राम) को तुमने भेज दिया? क्या वह चला भी गया?

हे पापिन! तुम्हारे मनोभाव को अब मैंने स्पष्ट जान लिया। तुम्हारे बिबाधर के विष को अनेक दिनों तक मैंने पिया है। अतः, तुमने मेरे प्राणों को समूल खा लिया। मैंने अग्नि समझ तुमको पत्नी के रूप में नहीं अपनाया। किंतु अपने जीवन का अंत करने के लिए एक यम को ही खोजकर अपनाया था।

मेरे नयन समान राम को तुमने छल से वन में भेज दिया। उससे मुझे तुम निहत कर रही हो। तुम अपयश से लज्जित नहीं होती हो। अब अनेक वचन कहने से क्या लाभ? हे अधम अरे! तुम्हारे कंठ का मंगल सूत्र[1] ही तुम्हारे पुत्र भरत का रक्षा बंधन होगा।

इस प्रकार अनेक वचन कहने पर भी कैकेयी का मन पिघला न देखकर चक्रवर्त्ती मुनि से बोले—हे मुनिवर! मैं अभी कह देता हूँ, यह (कैकेयी) मेरी पत्नी नहीं है। इसे मैंने त्याग दिया। राजा बननेवाले उस भरत को भी मैं अपना पुत्र नहीं मानता। वह पुत्रोचित कार्य (अर्थात्, पिता का मृत्यु संस्कार) करने की योग्यता नहीं रखता।

अत्यन्त वेदना में पीड़ित चक्रवर्त्ती ने उत्तम कौशल्या को देखकर पूछा—क्या राम (वन जाने के पूर्व) जैसे मुझसे नहीं मिला, वैसे तुमसे भी मिले विना ही चला गया? तब कौशल्या, राम के विरह में चक्रवर्त्ती की उस पीड़ा को देखकर अपने पूर्व विचार को (अर्थात्, दशरथ से यह प्रार्थना करनी है कि राम को वन में न भेजें) छोड़कर स्वयं व्याकुल हो उठी।

तब कौशल्या को भी यह ज्ञात हो गया कि यह सब सपत्नी का कार्य है, चक्रवर्त्ती पहले वर देकर फिर पश्चात्ताप से मूर्च्छित हुए। यद्यपि वह (कौशल्या) अपने पति को सांत्वना देने के लिए यह कहती रही कि हे राम! तुम वन में न जाओ, किंतु यह सोचकर मन में चिंतित हुई कि यदि दशरथ के वचन सत्य न हों, तो संसार में उन्हें अपयश उत्पन्न होगा।

अपने पति के दुःख से दुःखी होनेवाली कौशल्या ने (चक्रवर्त्ती से) कहा—हे बलवान्! दृढ सत्य को अपनाकर, उस पर स्थिर रहकर, फिर यदि आप अपने अभिन्न

१ अंतिम वाक्य का यह भाव है कि 'मंगल-सूत्र' सुहाग का चिह्न है। कैकेयी का सुहाग अब अधिक काल तक नहीं रहेगा। उसके मिटने से भरत की रक्षा भी समाप्त होगी। अर्थात्, दशरथ के मर जाने पर भरत अनाथ हो जायगा और उसे दुःखी होना पड़ेगा।—अनु०

प्रेमवाल पुत्र पर प्रेम स व्याकुल हो और आपका अनिदनीय गौरव निदास्पद हो जाय, तो ससार के लोग उम सत्य को स्वीकार नही करेगे।'

उत्तम कोशल्या रूपी हसिनी ने सोचा कि मेरा पुत्र वन को गय विना नहा रहगा। वह बार वार यह आशका करती हुई कि पुत्र विरह म चक्रवर्त्ती जीवित नही रहेगे, अत्यन्त शोक मग्न हुई। वह फिर सोचती कि यदि पुत्र पिता की प्राण रक्षा के लिए देश म ही रहेगा, तो उससे पति का यश मिट जायगा। यह विचार कर चितित होती। अत वह अपने पुत्र से भी यह नही कह सकी कि तुम वन मे मत जाओ। अहो! अहो! कोशल्या कैसे शोक से सतप्त हुई थी!

पुष्पमालालकृत दशरथ ने उम (कौशल्या) के वचनो से जान लिया कि उत्तम कीत्तिवाला राम नगर मे नही रहगा। अवश्य वन म जायगा। उससे वे शोकोद्विग्न हुए और बोले—हे मुझ पापी क अवलब! आओ। हे पुत्र! मेरे सम्मुख आओ।

पुन दशरथ अपने पुत्र के प्रति कहने लगे—हे पुत्र! मेरे नयनो से मेरे प्राण भी द्रवित होकर बह रह ह। मेरी मृत्यु अब निश्चित है। चतुर्वेदो के ज्ञाता ब्राह्मण अग्नि के सम्मुख तुम्हारा अभिषेक करने के लिए जो तीर्थ जल लाये है, उनको मेरे मुँह म डाल कर (अर्थात् मेरी मृत्यु के इस समय म मेरे मुँह म गगाजल डालकर) फिर तुम विशाल वन म जाकर रहो।

हे पुत्र! बडी सेना के बल से सपन्न राजाओ को इक्कीस बार अपने फरसे स मारनेवाले, शक्ति म अपना उपमान स्वय ही बने हुए (परशुराम) को भी तुमने धनुष से परास्त कर दिया था। किन्तु मे (पापी) ने, 'कुलक्रम से प्राप्त मुकुट को धारण करो,' ऐसा कहकर तुरन्त ही तुमको जटामय ऊँचा मुकुट दिया।

ह श्याम! हे स्वच्छ मन! हे अरुण नयनो तथा करो से शोभायमान! ह क्षमा गुण से पूण! त्रिपुर दाह के समय शिव के उपयोग मे आनेवाले धनुष का तोडनेवाले! मे एकाकी हो गया हूँ। इम बुढापे की अवस्था म तुम मुझे छाड चले। अब मै जीवित रहना नही चाहता।

स्वर्ण से भी अधिक उज्ज्वल स्वण! यश के भी यश! बिजली से भी अधिक कातिपूण धनुष को धारण करनेवाले! सत्य के सत्य! मे इतना क्षुद्र नही हूँ कि अपनी आँखो के सामने ही तुमको वन जाने दूँ। तुम्हारे वन जाने के पूर्व ही मै स्वर्गलोक को चला जाऊँगा।

मेरा मन प्रेम से पिघलनेवाला है। मेरा शरीर प्रेम के कारण प्राण छोडनेवाला हे। मै तुम्हारे समान (कठोरहृदय) नही हूँ। मैने अपनी जिन आँखो से तुमको जानकी का पाणि ग्रहण करके अयोध्या म प्रवेश करते हुए देखा था, उनसे अब तुमको नगर छोडकर जाते हुए नही देख सकता।

१ भाव यह है—जिस सत्य को आपने स्वीकार किया ह उसके परिणामों को दृढता के साथ सहने मे ही गौरव है। उसके परिणामभूत दु ख को देखकर व्याकुल होने मे अगौरव ही है। —अनु०

तुम्हारे विरह का नगर के लोग भले ही सह ले, देवतालोग भले ही दुःखी न हो, तो भी हे स्वर्णमय रथवाले ! हे मेरे यशस्कारक ! हे मेरे प्राण ! तुमको जन्म देनेवाला, मै तुम्हारे महत्त्व को जानता हूँ। अब अपनी दशा के बारे मे मै क्या कहूँ ? मै नही जिऊँगा। मै नही जिऊँगा।

मृदु सिकता से पूर्ण गभीर समुद्र से घिरी हुई विशाल पृथ्वी को, इस राज्य को, अक्षय सपत्ति को ओर अन्य सब वस्तुओं को छलनामयी कैकेयी को ही देकर यश पानेवाला मेरा उदार मन अब मेरे प्राण मिटा देगा, मेरे प्राण मिटा देगा।

शब्दायमान समुद्र से आवृत इस पृथ्वी के निवासियो मे, देवताओ मे तथा पाताल के निवासियो मे तुम्हारे सदृश सद्‌गुणो से भूषित कौन है ? हे स्वर्णतुल्य ! जब परशुराम यह कहता हुआ आया था कि मेरे सामने खडे रह सकनेवाला वीर कौन है ? तब दृढ चित्त के साथ तुमने उसका सामना करके उसे परास्त किया था। ऐसे तुमको छोडकर मै कैसे रह सकता हूँ ?

तुम वन को जानेवाले हो, यह सुनकर भी मै जीवित रहा। फिर भी, यदि अब मै उत्तम स्वर्गलोक को नही जाऊँ, तो कठोरहृदय कहला सकता हूँ ? हे पुत्र ! यदि तुम वन मे निवास करोगे ओर मै इस कैकेयी को देखता हुआ इस नगर मे रहूँगा, तो मेरा स्वभाव नीच ही तो कहा जायगा।

लक्ष्मी तथा भू देवी बडी तपस्या करके ही तुम्हारे बलवान् वक्ष का आलिगन कर सकी। तुम से वियुक्त होकर वे नही रहेगी, नही रहेगी। मै पापी, तुम से वियुक्त होकर मर जाऊँगा। हे वत्स ! तुम्हारे विरह मे भी यदि मै जीवित रहा, तो क्या मै भी कैकेयी के समान नही हो जाऊँगा ?

तुमको उत्तम आभरणो, किरीट, स्वर्ण आसन, श्वेतच्छत्र तथा विशाल वक्ष पर आसीन जयलक्ष्मी के साथ शोभायमान होते हुए देखना चाहता था, किन्तु इसके विपरीत वल्कल, कृष्णाजिन आदि से युक्त रहते हुए तुमको कैसे देख सकता हूँ ? ऐसी अवस्था मे प्राण छोड देना ही मेरे लिए अच्छा है।

इस प्रकार विविध वचन कहते हुए चक्रवर्ती यो व्याकुल हुए, जैसे उनके जीवन का अत आ पहुँचा हो। तब मृदुल कृष्णाजिनधारी मुनिवर (वसिष्ठ) ने उनसे कहा—हे राजन्। चिंतित मत होओ। मै उस राम को आज वन जाने से रोक लूँगा।

मुनिवर के वचन सुनकर मनुष्य रूप मे स्थित (वैवस्वत) मनु सदृश चक्रवर्ती, ऐसे लगते थे, जैसे तरत प्राण छोडनेवाले हो, यह विचार कर कि यदि ये परिशुद्ध स्वभाववाले मुनिवर कहेगे तो राम वन गमन न करेगा, किंचित् स्वस्थ हुए और एकाकी हो अत्यन्त विकल होनेवाले अपने प्राणो को रोके रहे।

चक्रवर्ती को व्याकुलप्राण तथा प्रज्ञाहीन देखकर तथा यह सोचकर कि उनकी मृत्यु हो गई है, कोशल्या अत्यन्त व्याकुल हुई और कहा—हे पुत्र ! इस नगर के साथ हमको भी तुमने छोड दिया। फिर कहा—हे प्रभो ! क्या गृहस्थ जीवन में आप इसी

प्रकार मेरा साथ देनेवाले हे ? – (अर्थात्, आप गृहस्थ जीवन म मेरा सहारा देनेवाले है, अब वैसा न करके मुझे छोडकर चले जा रहे है– यह क्या धर्म है ?)

कौशल्या ने फिर कहा– हे सत्यस्वरूप ! हे ससार के राजाओ के राजाधिराज ! यदि आप अपने प्राणो को इस प्रकार पीडित करेंगे, तो सारा ससार इससे दु खी होगा। मुनिवर के साथ कदाचित् हमारा पुत्र लौट आयगा। इसलिए, हे राजन् ! आप चिंतित न हो।

इस प्रकार के विविध वचन कहकर कौशल्या, चक्रवर्त्ती के शरीर पर, पैरो पर और मुँह पर अपने अरुण करो को फेरती हुई राजा को सात्वना देने लगी। तब चक्रवर्त्ती धीरे धीरे प्रज्ञावान् होकर बोले –क्या दृढ धनुर्धारी मेरा पुत्र लौट आयगा ? लौट आयगा ?

चक्रवर्त्ती बोले– क्रूर तथा छलनामयी कैकेयी ने कुबडी की बातो को सुनकर मेरे पूर्व दिये वरो के द्वारा मेरे प्राण लेने का निश्चय कर लिया। अपने महिमा पूर्ण सुत तथा स्वय (अपने लिए) पृथ्वी का राज्य पाने के अतिरिक्त हाय ! मेरे ज्येष्ठ पुत्र को वन म जाने को कहा –वन म जाने का कहा !

फिर चक्रवर्त्ती ने कौशल्या से कहा– हे कौशल्ये ! स्वर्ण अगद धारी राम वन गमन से नही रुकेगा, मेरे प्यारे प्राण भी गये विना नही रहेंगे। इसका एक और कारण भी है सुनो, पूर्व म एक मुनि ने मुझे एक शाप दिया था। यो कहकर पूर्व घटित सारा वृत्तात सुनाने लगे।

चक्रवर्त्ती ने कहा– पूर्वकाल मे एक दिन मै आखेट की उमग मे बडे वन मे गया था और हाथियो और सिहो का ढूँढ रहा था। फिर, एक सुन्दर नदी तट पर जा पहुँचा, जहाँ हाथी सचरण करते थे। वहाँ हाथ म धनुष बाण लिये हुए छिपकर खडा रहा।

उसी वन म एक अधा तपस्वी, अपनी अधी पत्नी सहित रहता था। उनका प्रिय पुत्र ही उन मुनि दपति का एकमात्र सहारा था। वह मुनि पुत्र नदी म जल भरने के लिए आया। यह न जानकर, बल्कि कोई आगत आखेट समझकर मैने शर सधान किया। तब वह मुनिकुमार आहत होकर धरती पर लोट गया और विलाप करने लगा।

मैने उस मुनिकुमार द्वारा नदी म जल भरने के शब्द को सुन, यह समझकर शर छोडा था कि कोई हाथी जल पी रहा है। मैने आँखो से देखकर शर सधान नही किया। किंतु, हाथी की ध्वनि के बदले नर की ध्वनि सुनकर आशकित होकर मै उस स्थान पर जा पहुँचा।

वहाँ मैने उस कुमार को शर से विद्ध होकर छटपटाते हुए देखा। उसके हाथ से कमडलु लुढक गया था। तब मेरे शरीर, मन तथा धनुष शिथिल हो गये। उस मुनि बालक पर गिरकर मैने दु ख के साथ पूछा—हे वत्स ! हाय ! तू कौन है ? कह। किंचित् भी असत्य से परिचय न रखनेवाले उस (अबोध) बालक ने कहा—

मत्स्यावतार लेनेवाले (वेदो को चुरानेवाले राक्षस को मारकर वेदो की रक्षा करनेवाले) भगवान् के नाभिकमल से उत्पन्न चतुर्मुख ने वेदोक्त प्रकार से जिन अनेक प्राणियो की सृष्टि की, उनमे मनुष्यो के चातुर्वर्णा म से प्रथम वर्ण मे मेरा जन्म हुआ।

चतुर्मुख की वश परपरा मे उत्पन्न काश्यप का पुत्र था विद्युत् समान यज्ञोपवीत

स शोभित वक्षवाला वृतश, उसका पुत्र था चतवन्त शलभारान (चलभाजन ?), उसी का मे पुत्र हूँ। मेरा नाम सुरचन ह।

न्स समय, अपने नेत्रहीन माता पिता के लिए जल लने यहाँ आया था यहाँ न विपदा उत्पन्न हुई। न पवत समान न यागाला। तमने (मनुष्य) न जानकर हाथी न भ्रम से बाण प्रयुक्त किया। यह नियति का कार्य हे। अत, तुम दु खी मत हाओ।

तीव्र पिपासा मे मेरे माता पिता दु खी हो रह ह। हे अनुपम! तुम जल ल जाकर मेरे माता पिता को दा गोर मरी मृत्यु का समाचार देकर उनसे कहो कि स्वगलाक को जात हुए तुम्हारे पुत्र न तुमका प्रणाम किया हे। यह कहकर वह मुनि कुमार स्वगलाक म देवो के स्वागत का पात्र बनकर चला गया।

अपने पुत्र की प्रतीक्षा म ही बैठे हुए उन वृद्ध तपस्वी दपतियो के निकट म जब उनके पुत्र को ओर जल को लेकर पहुँचा। तब व बाले—हे वत्स! तू इतना विलब करके लौटा हे। हम यह सोचकर दु खी हो रह थ कि तुझ पर कोई विपदा तो नही आइ। हे चदन गध से युक्त भुजावाले! आआ, हम तरा आलिगन करेगे।

तब मने कहा—ह स्वामिन! म अयोध्या का रहनेवाला एक राजा हूँ। म शिकार की खोज म अधेरे म बैठा हुआ था। उसी समय आपका सत्यभाषी पुत्र कमडलु म जल भरने लगा। तब आँखो से देखे बिना, केवल शब्द को सुनकर मैन बाण चलाया।

शर के लगन पर (आपके पुत्र ने) जब शब्द किया, तब यह जानकर कि यह हाथी नही, किन्तु कोई मनुष्य हे, दोडकर वहाँ गया और उससे पूछा कि तुम कौन हो? सब वृत्तात कहकर वह शान्त हा गया और दवो के द्वारा स्वागत पाकर स्वगलोक म जा पहुँचा।

मन बाण स (आपक पुत्र का) मारा, इससे आप मुझपर क्रोध न कर। उस निरपराध के जल भरन स उत्पन्न शब्द का सुनकर मने उस दिशा म शर छाडा, किंतु आँखो से उस नही देखा। मर इस अपराध का क्षमा कर। यह कहकर मन उनके चरणो को अपन सिर पर रख लिया।

(पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर) व मुनि दपति गिर पड, मूर्च्छित हुए, लाटने लगे। फिर कहने लग—आज सचमुच हमार नयन फूट गये। व शाक समुद्र म डूब गये। ह तात! ह तात! कहकर चिल्ला उठ। कह उठ कि तुमने हमारे हृदय के टुकडे टुकडे कर दिये। फिर बोल—(ह पुत्र) तुम स्वगलोक म चले गय। अब हम यहाँ रह नही सकत। हम भी आ गये, आ गय।

इस प्रकार शोक मग्न मुनि दपति क चरणो को प्रणाम करके मने कहा—आज स म ही आपका पुत्र हूँ। आपकी आज्ञा का पालन करता हुआ, म आपकी सवा म निरत रहूँगा। आप किंचित् भी शिथिलमन न हा। शाक को दूर कर द। मरा कथन सुनकर उन्हाने कहा—ह दृढ धनुधारिन्! सुनो, फिर व या बोले—

आँख का तारा जैसे पुत्र को खोकर भी प्राणा पर लालसा रखकर यदि हम भाजन करन बैठे रहेगे, तो ससार क लोग हमारी निन्दा करगे। हम भी स्वग म जायगे।

- अलंकृत अश्ववाले ! तुम भी हमारे जैसे ही अपने पुत्र के विरह में (संसार का जीवन समाप्त करके) स्वर्ग में जाओगे ।

हे निरंतर अमंद प्रकाश से शोभित श्वेतच्छत्रवाले ! तुमने प्रार्थना की है कि मैं आपकी शरण में हूँ । आप मेरी रक्षा करें । अतः, हम तुमको भयंकर शाप नहीं दे रहे हैं। आज अपने प्यारे पुत्र से, जो आज्ञा दिये बिना ही, इंगित मात्र से सब कुछ जानकर हमारी इच्छा पूरी करता था, वियुक्त होकर जिस प्रकार हम स्वर्ग जा रहे हैं, उसी प्रकार तुम भी विशाल स्वर्गलोक में जाओगे। यह कहकर वे स्वर्गलोक को सिधार गये।

मैं अपने मन में किंचित् भी व्याकुल न हुआ, किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात्, उनके इस वचन से कि मेरे मधुर वचनवाला पुत्र होनेवाला है, आनन्दित होता हुआ नगर को लौटा। उस मुनि के कथन के अनुसार अब राम का वन गमन और मेरा प्राण त्याग दोनों अवश्य संघटित होनेवाले हैं। इसमें किंचित् भी परिवर्त्तन नहीं होगा, चक्रवर्त्ती ने यों कहा।

चक्रवर्त्ती इस अत्यन्त दुःखदायक कथा को कहकर व्याकुल हो पड़े रहे। तब कौशल्या शोकोद्विग्न होकर मूच्छित हो गई। मुनिवर (वसिष्ठ) विधि के परिणाम से उत्पन्न होनेवाली दुःख परंपरा को देखकर व्याकुल हुए और शीघ्र चलकर—

प्रभूत कीर्त्तिमान्, पुण्यवान् तथा पर्वत सदृश उन्नत मत्तगजों से युक्त चक्रवर्त्ती के मनोहर प्रासाद के सम्मुख, उत्तम सभा में जा पहुँचे, जहाँ नगाड़े बज रहे थे और राजा लोग राम के अभिषेक के लिए एकत्र थे।

शस्त्रधारी राजाओं ने आये हुए मुनिवर को देखकर पूछा—हे पिता ! क्या कोई विघ्न उपस्थित हुआ है ? अपार पीड़ा से रोने की यह ध्वनि कैसी सुनाई पड़ रही है ? यह हमें बताकर हमारे मन को शान्त करें।

मुनि ने उन राजाओं से कहा—कैकयी ने चक्रवर्त्ती से दो वर प्राप्त किये थे। अप्रतिहत दंडनीतिवाले राजा ने भी वे वर उसे दिये थे। कैकेयी ने उन वरों में से एक से राम को वन गमन की आज्ञा देने के लिए (राजा को) सहमत किया है, यही घटित हुआ है।

चक्रवर्त्ती की आज्ञा से कैकयी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र (भरत) आदिशेष पर स्थित पृथ्वी की रक्षा करेगा। ऊँचे कंधोंवाला, सीता का पति, राम वन में जाकर रहेगा।

अभिन्नसत्यस्वभाववाले मुनिवर के वचन अपने कानों में पड़ने के पूर्व ही, अघट प्रेम से युक्त राजा लोग, मुनिगण, अन्य लोग एवं कंचुक बद्ध स्तनोंवाली स्त्रियाँ, सब दशरथ के समान ही (मूच्छित हो) गिर पड़े।

सबके शरीर, जैसे घाव पर आग रख दी गई हो, ऐसे ही पीडित होकर जलने लगे। वे निःश्वास भरते हुए और गद्गद वचन कहते हुए धरती पर गिरकर लोटने लगे। उनकी आँखों से बहनेवाला जल समुद्र के समान था। उस समय सब दिशाओं से जो बड़ी रोदन ध्वनि निकली, वह स्वर्ग तक गूँज उठी।

प्रभंजन के चलने से कंपित होनेवाली पुष्पलता के समान स्त्रियाँ अत्यंत दुःख से

धरती पर गिर पडी, तो उनके आभरण और मंगल सूत्र बिखर पडे। उनके केशपाश खुल गये और उनकी यम सदृश आँखें लाल हो गई।

राजा लोग कहते—हाय! हाय! चक्रवर्त्ती करुणाहीन हो गये। हम धर्म की रक्षा नही करके उसे छोड देंगे और वे आँधी से गिराये गये बट वृक्ष के समान पृथ्वी पर गिरकर रोने लगे।

'उदार (राम) वन को जानेवाले है'– इस वचन मात्र से शुक और सारिकाएँ भी रो पडी। ऊँचे प्रासादो मे निवास करनेवाले मार्जार भी रो पडे। रूप को पहचानने मे असमर्थ शिशु भी रो पडे। तो, अब बडे लोगो के बारे मे क्या कहा जाय?

रक्त कुवलय तथा बिम्बफल की समता करनेवाले मुँह मे, कुंद पुष्पो के जैसे दाँतो को प्रकट करती हुई तथा परस्पर सटे हुए (पीन) स्तनो पर जैसे मुक्ता माला टूटकर गिरी हो ऐसे ही अश्रुधारा बहाती हुई, जिह्वा पर ठीक ठीक उच्चरित नही होनेवाली बोली से युक्त स्त्रियाँ रोई।

चक्रवर्त्ती के समान ही गाये रोई। उन गायो के बछडे रोये। सभी विकसित पुष्प रोये। जलचर पक्षी रोये। मधु बहानेवाले उपवन रोये। गज रोये और रथो मे जुते हुए बलवान् अश्व भी रोये।

यह न सोचकर कि राम से वियुक्त होकर ज्ञानी लोग भी जीवित नही रहेगे, जिस कैकेयी ने अपने पति से राम को 'वनवास दो' यह वचन कहा था वह (कैकेयी) तथा क्रूर कुबरी—इन दोनो के अतिरिक्त और कौन ऐसे कठोर हृदयवाले थे, जो इस समय रोये नही हो? सब लोग (दुःख की अधिकता से) जल के समान पिघल गये।

जो प्रज्ञाहीन (बेहोश) हो गये, उन लोगो की गिनती ही नही रही। रथो के आवागमन से जो वीथियाँ धूलि से भर गई थी, उनमे अश्रुधाराएँ बह चली। हाँ, एक कमी रह गई, वह यह कि उनके मन जो अरूप थे, छिन्न होकर नही बिखर पाये।

अयोध्या के निवासियो मे कोई कहते—यह भू देवी के पाप का फल है। कोई कहते—कमल पर आसीन लक्ष्मी देवी का पाप उससे भी बडा है। कोई कहते—विधि ने सब हृदयों को विक्षत कर दिया और कोई कहते—ससार के लोगो के नेत्रो ने जो पाप किया है, वह समुद्र से भी बडा है।

कोई कहते—भरत राज्य नही करेगा। कोई कहते—प्रभु (राम) अब (नगर को) नही लोटेंगे। कोई कहते—यह राज्याभिषेक भी क्या आया, यह हमारे लिए काल बन गया। और कोई कहते—हम अभी तक जीवित है, हमसे अधिक निष्ठुर और कोन हो सकते है?

कोई कहते—चक्रवर्त्ती ने कैकेयी पर अधिक प्रेम के कारण विवेकहीन होकर वर दिये और कोई कहते—सीता और राम के साथ हम भी घोर वन मे जायेंगे, अथवा अग्नि मे प्रवेश कर मरेंगे।

कोई धरती पर हाथ फेरते हुए, अपने अश्रुजल को लीप रहे थे। कोई 'कौशल्या देवी अब जीवित नही रहेगी,' कहते हुए निरन्तर निःश्वास भर रहे थे। कोई, 'हे कनिष्ठ कुमार (लक्ष्मण)! क्या तुम यह सह सकोगे?'—कहते थे। इस प्रकार उस विशाल नगर के लोग अग्नि मे गिरे घृत के समान हो रहे थे।

कुछ लाग कहते—कैकेयी ने अपने पुत्र के लिए राज्य तो माँगा, किन्तु राम को देश से निष्कासित क्यो कर रही है ? इसका कारण इतना ही है कि इसने ऐसा पाप कार्य करने का निश्चय कर लिया है। और कोइ यह कहकर व्याकुल होते कि यह कैकयी रक्त अधरवाली गणिका तुल्य है, क्योकि इसके हृदय म पति के प्रति गाढानुरक्ति नही है।

कुछ लोग कहते थे—क्या चक्रवर्त्ती ने घोर तपस्या करके अपने प्राणो को छोडने का निश्चय किया है ? नही तो, क्या इस ससार के रहनवाले सब लोगो को मारकर इसे समूल विनष्ट करन का यह उपाय है ? अहो! कैकेयी को दशरथ का यह वर देना भी भला है! भला है!

रामचन्द्र, जिन्होने प्राप्त राज्य को उस (कैकेयी) को दे दिया है, स्वय ज्येष्ठ होकर जन्म पाने के कारण त्रिलोक के राज्य के अधिकारी है। हम सब उनसे पृथक न होकर वन म जाकर उनके साथ निवास करेगे। वैसा करने से झाड तथा वृक्षो से भरा हुआ कानन भी कुछ दिनो म नगर बन जायगा।

दशरथ का यह काय भी कैसा विचित्र है ? अपने उपमा रहित ज्येष्ठ पुत्र को पहले राज्य देकर फिर न्याय भ्रष्ट होकर उनके अनुज का वह राज्य दे रहे है। क्या यह सत्य के विरुद्ध नही है ?

नगर के लोग कहते—विजयमाला भूषित धनुष को धारण करनेवाले राम को जो पृथ्वी प्राप्त हुई है, उसे दूसरा कोई कैसे अपना सकता है ? सीता देवी इस नगर को छोडकर जायगी, तो क्या राज्यलक्ष्मी भी (उसी प्रकार वन म न जाकर) छलनामयी कैकेयी के पुत्र को अपनायगी ?

विना बत्ती का बनाये और विना तेल डाले ही जलनवाले और पवन के झोके से भी विकृत न होनेवाले दीप के सदृश (शरीर कांतिवाली) स्त्रियाँ, क्या अब काँपती हुई, अरुण कमल समान विशाल नयनवाले प्रभु की कृपा दृष्टि प्राप्त किये बिना, जीवित रह सकेगी ? हाय! यह कैसा दुर्भाग्य है।

जब इधर ऐसा हो रहा था, तब कनिष्ठ कुमार (लक्ष्मण) ने यह सुना कि स्वभावत तीक्ष्ण रहनवाले भाले की समता करनवाली आँखो से युक्त विमाता ने क्रूरता सहित, अपने वर से पृथ्वी (के राज्य) को माँग लिया है और ज्येष्ठ भ्राता का वन दे दिया है। यह सुनते ही वह, किसी के द्वारा प्रज्वलित न होनवाली प्रलय काल की अग्नि के समान, क्रोध से उमड उठा।

(लक्ष्मण के) नयनो की कोरो से आग बरस पडी। भोहो के राम ललाट पर चढ गये। उनकी उग्रता से गगन का सूर्य भी अस्त व्यस्त होने लगा। उनकी देह से स्वेद वह चला। उनके अन्तर की प्राणवायु बाहर प्रकट हुइ। यो अति ऊँचे आकारवाले लक्ष्मण अपने आदिरूप (अर्थात् आदिशेष [1]) की ही समता करने लगे।

यह कैकयी सिंह शावक के लिए रखे हुए स्वाद भरे मास को, विकृत नयनो से

१ लक्ष्मण आदिशेष के अवतार है।

युक्त क्षुद्र स्थान का देना चाहती है। अहो! इस नारी की बुद्धि भी अच्छी है। इस प्रकार कहकर गंगा के अधिपति[1] (लक्ष्मण) हाथ पर हाथ मारकर हँस पडे।

लक्ष्मण ने चारों ओर रत्नों से जटित करवाल को अपने पार्श्व में बाँध लिया, धनुष को उठा लिया। शीतल मेरु पर्वत पर स्थित बाँबी के समान तूणीर को पीठ पर बाँध लिया और रक्त स्वर्ण से निर्मित कवच से अपने उन्नत कंधों तथा वक्ष को आवृत कर लिया।

उनके पैरों के वीर कंकण ऐसी ध्वनि कर रहे थे कि उनसे समुद्र भी लज्जित होते थे। धरती को छूनेवाली (उनके धनुष की) डोरी की बड़ी ध्वनि युगान्त काल में सप्त समुद्रों के जल को पीकर गरजनेवाले मेघ की ध्वनि से भी तिगुनी अधिक थी।

स्वयं (अर्थात् लक्ष्मण) और उनके ज्येष्ठ भ्राता (राम) इन दोनों को छोड़कर, अन्य सब त्रिलोकवासी प्राणी 'ऐसा सोचकर कि विशाल आकाश, धरती, इत्यादि पाँचों अपार भूत ऊपर से नीचे की ओर गिर रहे हैं,' भय से काँपने लगे। ऐसा उस लक्ष्मण का वीर वेष था।

लक्ष्मण गरजकर बोले—युद्ध में आये सब वीरों को मिटाकर मैं भूमि का भार कम करूँगा। उनकी देहों से धरती को पाट दूँगा। मेरे प्रभु (राम) को आज ही मैं विजयप्रद मुकुट पहनाऊँगा। जो मुझे रोकनेवाले हों, आवें, रोकें।

देव, मर्त्य, विद्याधर, नाग तथा अन्य सब स्थानों के निवासी पड़े रहें। भूमि की सृष्टि, रक्षा तथा प्रलय करनेवाले स्वयं त्रिदेव भी क्यों न मेरा सामना करने आवें, तो भी मैं नारी की इच्छा (अर्थात्, कैकेयी की इच्छा) पूर्ण नहीं होने दूँगा।

चक्रवर्ती कुमार लक्ष्मण आकाश के मध्य स्थित सूर्य के समान उग्रता दिखा रहे थे। उस नगर में वे इस प्रकार घूम रहे थे, जैसे सुन्दर शिखरों से युक्त मंदर पर्वत पूर्वकाल में क्षीरसमुद्र के मध्य घूमा था।

उस समय राम, विराधकारी क्रूरता से पूर्ण कैकेयी के द्वारा उत्पादित उत्पात से व्याकुल होकर, सांत्वना देने पर भी शान्ति न पानेवाली सुमित्रा के पास थे। उन्होंने अपने सहचर बलवान् अनुज (लक्ष्मण) के धनुष रूपी मेघ से उत्पन्न, ब्रह्मांड को भेदनेवाले टंकार रूपी गर्जन को सुना।

तुरंत वे, अन्यत्रदुर्लभ शोभा से युक्त आभरणों की कांति को चारों ओर बिखेरते हुए, वक्ष पर उज्ज्वल मुक्तामाला से शोभित होते हुए, किसी से शांत न होनेवाली

१ लक्ष्मण को गंगा का अधिपति कहा गया है। इसकी विविध प्रकार से व्याख्या की गई है
(क) कोशल देश की सीमा में गंगा बहती है, अतः कोशल के राजा गंगापति माने जाते हैं।
(ख) सरयू नदी का एक नाम है 'रामगंगा'। कोशल देश में उस नदी के बहने से वहाँ के राजा गंगापति हुए।
(ग) सब नदियों के लिए गंगा शब्द का व्यवहार साधारण है, अतः यहाँ गंगा का अर्थ सरयू है और उस देश का राजा लक्ष्मण गंगापति है।
(घ) गंगा को स्वर्ग से धरती पर लानेवाले थे भगीरथ, उनके वंश में उत्पन्न होनेवाले लोग गंगापति कहे गये हैं। —अनु०

प्रलयकालीन अग्नि को भी शांत करनेवाले कालमेघ के समान, अनुपम और मृदुल वचन रूपी वर्षा की बूँद बरसाते हुए आये।

उज्ज्वल स्वर्ण समान देह तथा मेघ समान विशाल हाथों से शोभायमान लक्ष्मण को विद्युत् समान क्रोधाग्नि प्रकट करते हुए देखकर रामचन्द्र ने कहा—हे मेरे वत्स! कभी क्रोध न करनेवाले तुम अब युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गये हो। यों धनुष उठाने का क्या कारण है?

तब लक्ष्मण ने उत्तर दिया सत्य को मिटाकर, तुम्हारे असाधारण राज्य को तुम से छीननेवाली घोर काल मनवाली उस (कैकेयी) की आँखों के सामने ही तुमको राज मुकुट पहना दूँगा। इसमें विघ्न डालने के लिए स्वयं देवता भी क्यों न आवे, उनको मैं तूल को जलानेवाली अग्नि के समान जला दूँगा।

जबतक यह दृढ धनुष मेरे हाथ में रहेगा, तबतक वे देवता भी कुछ विघ्न उत्पन्न करने का साहस नहीं कर सकते। यदि वे विघ्न उत्पन्न भी करें, तो भी मैं अपने शर का लक्ष्य बनाकर उन्हें जला दूँगा और चतुर्दश भुवन की रक्षा का भार अभी आप को सौंप दूँगा। आप उसे स्वीकार करें—यों लक्ष्मण ने कहा।

अपने अनुज की बातें सुनकर राम ने कहा—तुम्हारी बुद्धि सदा शास्त्र विहित न्याय के अनुकूल मार्ग में चलती है। किन्तु, आज नीति के विरुद्ध, अविनश्वर धर्म को भी मिटाता हुआ, यह क्रोध तुम्हारे मन में कैसे उत्पन्न हुआ?

ज्येष्ठ भ्राता के यह कहने पर, लक्ष्मण अपने दाँतों को प्रकट करते हुए हँस पड़े और कहा—आपके पिता ने कहा कि यह विशाल पृथ्वी तुम्हारी है, तो इस पृथ्वी को स्वीकार करके, पुनः उसे खोकर आप वन को जा रहे हैं। ऐसे समय में मुझे क्रोध उत्पन्न न होकर और किस समय उत्पन्न होगा?

मेरी आँखों के सामने ही आपको राज्य देकर, फिर 'नहीं' कह देनेवाले तथा क्रूर नेत्रवाले चक्रवर्ती के समान ही प्रेमहीन माता (कैकेयी) तुम को अरण्य भेज रही है, ऐसे समय में क्या मैं दुःखदायक इंद्रियों से युक्त इस देह को धारण करके अपने प्राणों की रक्षा करता रहूँगा?

यही मेरे क्रोध का कारण है। इस प्रकार, लक्ष्मण के अपना कथन समाप्त करने के पूर्व ही, अपने बछड़े पर प्रेम रखनेवाली गाय के समान, विविध योनियों में उत्पन्न प्राणियों की रक्षा करनेवाले, अपने करों में आज्ञाचक्र तथा दृढ कोदंड धारण करनेवाले, मनु नामक उन्नत स्कंधोंवाले वीर के वंश में उत्पन्न श्रीराम ये वचन कहने लगे।

विद्युत् को अपनी कांति से परास्त करनेवाले तथा सूर्य किरण एवं अग्नि से निर्मित माला को धारण करनेवाले (हे लक्ष्मण)! मुकुटधारी चक्रवर्ती ने जब राज्य का भार मुझे देने की बात कही, तब यह विचार किये बिना ही कि यह राज्य पीछे अनेक कष्ट उत्पन्न करेगा, मैं इसे स्वीकार करने को राजी हो गया। यह मेरा ही अपराध है। इसमें चक्रवर्ती का क्या दोष है?

स्वच्छ जल के सूख जाने में नदी का कोई दोष नहीं होता। इसी प्रकार (मुझे

वन जाने की आज्ञा देने में मुझ पर अधिक प्रेम रखनेवाले) चक्रवर्ती का कोई दोष नहीं है। जन्म देकर अब मुझे वन में जाने की आज्ञा देने में, अबतक हम पर वात्सल्य रखनेवाली माता (कैकेयी) का भी दोष नहीं है। इसमें (कैकेयी) के पुत्र भरत का भी दोष नहीं है। हे वत्स! यह विधि का ही दोष है। इसके लिए तुम क्या क्रोध करते हो?—यों श्रीराम ने कहा।

तब लक्ष्मण ने लुहार की विशाल भट्ठी की अग्नि के समान, निःश्वास भरकर उत्तर दिया—ताप से भरे अपने इस हृदय को मैं कैसे शान्त करूँ? मेरा यह धनुष उत्पात उत्पन्न करनेवाली (कैकेयी) के मन में सन्मति उत्पन्न करेगा और त्रिदेवों के वश में भी न रहनेवाली बहुत ही बलवान् नियति के लिए भी नियति बनेगा। आप देखेंगे।

लक्ष्मण के यों कहने पर राम ने उससे कहा—हे तात! वेदों के तत्त्व को जाननेवाले तुम, अपने मुँह में जो कुछ बात आती है, उसे कह रहे हो। तुमने जो कहा, वह धर्म का अनुसरण करनेवाले लोगों में नहीं देखा जाता। (तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कार्य करनेवाले) जब तुम्हारे माता पिता ही हैं, तब उनपर क्रोध कैसे कर सकते हो?

चन्द्रकला को शिर पर धारण करनेवाले रुद्र के समान रोष से भरे हुए लक्ष्मण ने कहा—दूसरों को अपना स्वत्व दान करने की सीख पाये हुए हे उदार! मेरे उत्तम पिता आप हैं। स्वामी आप हैं। जननी आप हैं। मेरे अन्य कोई नहीं है। आज आप मेरे धनुष के प्रभाव को देखें। और, उसने आगे का कार्य करने के लिए अपना हाथ उठाया।

तब वरद (राम) उससे कहने लगे—माता (कैकयी) ही, जिसने वर प्राप्त किया है, वास्तव में इस राज्य को पाने का अधिकार रखती है। उसके और मेरे पिता की आज्ञा से भरत इस राज्य का अधिकार प्राप्त करेगा। अब मैं जो ऐश्वर्य प्राप्त करनेवाला हूँ, वह है तपस्या। वह इस राज्य से भी अधिक सुखदायक है। उससे बढ़कर वस्तु और क्या हो सकती है?

राम आगे बोले—हे भाई! तुम्हारा यह कोप कैसे शांत होगा? क्या तुम संसार की माया से पृथक् रहकर पवित्र सन्मार्ग पर जीवन व्यतीत करनेवाले भाई (भरत) को युद्ध में मारकर या महापुरुषों के द्वारा प्रशंसित अनुपम कार्य करनेवाले पिता (दशरथ) को पीड़ा देकर, अथवा जननी को परास्त करके?—कहो, कैसे शांत होगा?

मन को प्रभावित करनेवाले वचन कहने में समर्थ (राम) के वचनों के उत्तर में लक्ष्मण ने कहा—शत्रुओं के द्वारा भी प्रशंसा पानेवाला मैं, बढ़े हुए दो पर्वतों के समान दो भुजाओं का भार व्यर्थ ही वहन कर रहा हूँ। तूणीर एवं दृढ धनुष को भी ढोने के लिए मैं उत्पन्न हुआ हूँ। अब (मेरे) क्रोध करने से क्या लाभ?

तब दक्षिण की भाषा (रूपी समुद्र) के पारगत तथा संस्कृत भाषा के शास्त्र तथा विज्ञान की सीमा तक पहुँचे हुए राम ने लक्ष्मण से कहा—अबतक जिन पिता ने मुझे मधुर वचन कहकर तथा पाल पोसकर बडा किया, उनके वचन का उल्लंघन करके तुम यदि कुछ करोगे, तो उससे तुम्हारी क्या हानि होगी?[१]

१ अन्तिम वाक्य में लक्ष्मण की आलोचना अंतर्निहित है।—अनु०

कभी पीछे न हटनेवाले प्रभु (राम) की आज्ञा से लक्ष्मण ने अपना क्रोध शांत किया और प्रभु के सम्मुख खड़े होकर चार वेदों के समान ही अपने विवेक से कुछ वचन कहना छोड़ दिया। अपनी वेला का अतिक्रमण न करनेवाले समुद्र के समान लक्ष्मण अपने में उपशांत हो गया।

(भाव यह है—वेद भी जिस भगवान् के सम्मुख मौन हो जाते हैं, उसी प्रकार लक्ष्मण भी उसके सम्मुख हारकर निरुत्तर खड़े रहे।)

तब प्रभु ने लक्ष्मण का ऐसे आलिंगन किया, जैसे वे (राम) स्वयं जिसका आदि और अन्त नहीं पहचान सकते, वे उन्हीं (राम) के स्वरूप (अर्थात् विष्णु), स्वर्णवर्ण मृगचर्म को पहननेवाले शिवजी का आलिंगन कर रहे हों। फिर, मधुर वचनों से युक्त सुमित्रा देवी के प्रासाद में (लक्ष्मण के साथ) जा पहुँचे।

सुमित्रा ने, अपने दो नेत्रों जैसे उन दोनों (राम और लक्ष्मण) को देखा, जो दंडकारण्य में जाने का निश्चय करके आये थे तो उसका हृदय विदीर्ण हो गया। वह शोक समुद्र का पार न देखती हुई धरती पर गिर पड़ी और विलाप करने लगी।

तब रामचंद्र दुःखी सुमित्रा के, उसके काटनेवाले दुःख रूपी करवाल से उसको बचाने के लिए, उसके चरणों को नमस्कार करके मन को सांत्वना देनेवाले वचन बोले—युद्ध में निपुण शस्त्रधारी चक्रवर्त्ती को मैं असत्यवादी नहीं बनाऊँगा। काले मेघों से युक्त विशाल वन को थोड़ा देखकर मैं यहाँ लौट आऊँगा।

मैं वन में जाऊँ, समुद्र में जाऊँ कोलाहल से भरे देवलोक में जाऊँ, मेरे लिए कोई भी स्थान महिमामय अयोध्या के समान ही होगा। मुझे दुःख देनेवाला कौन है? अतः आप व्याकुलप्राण और कृशगात्र होकर मूर्च्छित न हों।

जब वे (राम लक्ष्मण) सुमित्रा के दुःख को ऐसे शांत कर रहे थे, जैसे वे अग्नि को बुझा रहे हों, तब रोग की पीड़ा को न सहनेवाले जीव के जैसे लचीली कटिवाली कुछ स्त्रियाँ अमिट अपयशवाली कैकयी के द्वारा दिये गये वल्कल लेकर उनके निकट आईं।

(कैकेयी की दासियाँ) कालमेघ सदृश राम को ज्यों ज्यों देखती थीं, त्यों त्यों उनकी आँखों से भी अधिक उनका मन पिघलकर पानी हो रहा था। उन्होंने राम से कहा—विपदा में पड़े हुए अन्य लोगों को पीड़ित देखकर भी अपने निश्चय से न डिगनेवाली कठोरहृदया (कैकेयी) के भेजने से हम ये वल्कल (आपके लिए) लाई हैं।

तब अनुज (लक्ष्मण) ने उज्ज्वल मुक्तातुल्य दाँतोंवाली उन दासियों को देखकर कहा—नवीन तथा वैभवमय राज्य को जिन कैकेयी ने (राम से) छीन लिया है, उनके दिये हुए सब प्रसाधनों को पहनने के लिए उत्पन्न ये मेरे भाई खड़े हैं। हाथ में युद्ध के योग्य धनुष को रखे हुए मैं भी निष्क्रिय होकर यह सब देखने के लिए उत्पन्न हुआ हूँ। उन प्रसाधनों को दिखाओ।

फिर, राम ने उन दासियों के दिये वल्कलों को आदर के साथ लेकर पवित्र सुमित्रा देवी के स्वर्ण आभरणों से भूषित चरणों को यह कहकर प्रणाम किया कि हे हमारी स्वामिनी, यदि आप हमें यह आज्ञा दें कि पीड़ाजनक कष्टों से मुक्त होकर तुम (वनवास

क लिए) अविलम्ब जाओ, तो आपकी वही (आज्ञा) हमारी सहायता करनेवाली होगी।

तब सुमित्रा ने लक्ष्मण के प्रति ये वचन कहे—वन तुम्हारे जाने के लिए अयोग्य नही है। यह वन ही तुम्हारे लिए अयोध्यानगर होगा। तुम पर गाढ अनुराग रखनेवाले ये राम ही तुम्हारे लिए दशरथ है। पुष्पालंकृत केशोवाली सीता ही तुम्हारे लिए वे माताएँ है, जिन्होंने राम के राज्य त्याग कर वन जाने पर भी अपने प्राण नही त्यागे। इस प्रकार का विचार रखकर तुम राम के संग वन मे जाओ। अब तुम्हारा यहाँ रहना अपराध होगा।

पुन सुमित्रा ने उससे कहा—हे पुत्र! इन (राम) के पीछे पीछे जाओ। उनका भाई होकर नही, किन्तु उनका दास होकर जाओ। उनकी सेवा करना। यदि ये राम नगर को लौट आयेंगे, तो तुम भी लौटकर आना, यदि नही आयेंगे तो तुम उनसे पूर्व अपने प्राण त्याग देना। यह कहकर वह देवी (सुमित्रा) आँखो से अश्रु बहाती हुई खडी रही।

फिर, दोनो ने सुमित्रा को नमस्कार किया। सुमित्रा, अपने दो बछडो से वियुक्त होकर पीडित होनेवाली गाय के समान व्याकुल हो रो पडी। उपमाहीन कुमार भी अपनी सुन्दर कटि के रेशमी वस्त्रों को हटाकर वल्कल पहनकर बाहर निकले।

भ्रमरो से गुंजरित पुष्पमाला धारण करनेवाले राम ने लक्ष्मण को अपने जैसे ही वल्कल पहने हुए देखकर कहा—हे स्वर्ग को अलंकृत करनेवाली कीर्ति से शोभित! मेरी इस बात को सुनो और उसका निरादर मत करो।

हमारी सब माताएँ तथा चक्रवर्त्ती पूर्व दशा मे नही है। वे दारुण दु ख मे निमग्न है। मुझसे वियुक्त है। अत, तुम मेरे लिए यहाँ रहकर उनकी विपदा दूर करो।

पौरुषवान् राम के यह बात कहने पर भक्तिपूर्ण लक्ष्मण ऐसे भयभीत हुए कि उनके स्तंभ समान पुष्ट कंधे काँप उठे। उनके जो प्राण (राम के संग वन जाने की उमंग मे) लौट आये थे, वे बीच मे ही व्याकुल हो उठे। यो रोते हुए लक्ष्मण ने (राम से) कहा—आपके प्रति कौन सा अपराध मैने किया है?

हे ज्या युक्त कोदंड धारण करनेवाले! विचार करके देखने पर विदित होगा कि जहाँ जल है, वही मीन है और नील उत्पल होते हैं। यह पृथ्वी है, इसीलिए तो सब प्राणिजात है। उसी प्रकार आपके न रहने पर मै तथा आपकी देवी कैसे रह सकते है? आप ही बतावे?

स्वर्णकंकणधारिणी एक (पत्नी) के कहने से, रक्षा करनेवाले चक्रवर्त्ती, भूमि देवी के कातर होकर व्याकुल होते हुए, आपको यह आदेश देकर कि वन को जाओ, स्वयं जीवित है। क्या उन चक्रवर्त्ती का मुझे पुत्र मानकर ही आप यह वचन कह रहे है?

हे मेरे स्वामिन्! अपके वन गमन के कारण मेरे मन मे जो क्रोध उत्पन्न हुआ, उसे मैने शान्त कर लिया। अब मुझसे आप जो कह रहे है, उससे अधिक पीडाजनक मेरे लिए और क्या हो सकता है?

तैल से सिक्त शत्रु नारियो की आँखो के काजल को पोछनेवाले तथा शत्रुहीन

हाने से कोश म रखे हुए भाले स युक्त ह प्रभो। आप पूर्वजो स प्राप्त अपना समस्त स्वत्व खोकर जा रह ह, तो क्या हम भी छोड जाना चाहत ह ?

लक्ष्मण क यह कहने पर रामचन्द्र कुछ नही कह सके और पवत सदृश कधोवाल लक्ष्मण का वदन देखते रह। लक्ष्मण क मन की पीडा का जानकर अपने सुगधित विशाल कमल जैसे नयनो से अश्रुधार बहात हुए खडे रह।

उसी समय प्रेम भरे तथा पवित्र तप स सपन्न मुनिवर (वसिष्ठ) राजसभा स वहाँ आये। दोना मनोहर राजकुमारो ने उनके प्रति सिर झुकाया। (उन्हे देखकर) मुनिवर दु खनामक महासमुद्र मे डूब गये।

सत्यज्ञान से सपन्न मुनिवर ने उन (राम लक्ष्मण) क वदन को तथा उनक मन का भी देखा। उनकी कटि म बध वल्कल की शोभा का दखा। फिर क्या कहना हे। उस समय उत्पन्न मनावेदना के कारण मुनिवर अपने को भी भूल गये।

जो दिन (रामचन्द्र क) राजतिलक के उत्सव के लिए निश्चित हुआ था, उस सुखदायक दिन म राम ने, दु खदायक विधि क प्रभाव से, वल्कल धारण किया। स्वय चतुमुख ही नियति को वदलने का प्रयत्न क्यो न करे, तो भी नियति का विधान आकर घेर ही लेता हे। ऐसी नियति का कौन मिटा सकता हे ?

यह उत्पात, केवल कठोर कैकेयी के कारण ही उत्पन्न नहा हुआ है। यह पुण्य स्वरूप (राम) ऐसा दु ख पाने क योग्य भी नही ह, ता किस कारण से यह सब सघटित हुआ ? यह किसका षड्यन्त्र ह ? यह सब भविष्य म प्रकट होगा। इस प्रकार वसिष्ठ ने सोचा।

कोदण्ड तथा विशाल कमल सदृश नयना से शाभित वीर (राम) क समीप आकर वसिष्ठ ने कहा—ह वत्स ! तुम यहाँ से जाकर उन्नत पर्वतो स युक्त वन को देखोगे। किन्तु, अति विशाल सेना से युक्त चक्रवर्त्ती को जीवित नही पाओगे।

तब आदिशेष क पयक से हटकर पृथ्वी पर अवतीण (श्रीराम) ने वसिष्ठ से कहा—चक्रवर्त्ती की आज्ञा का शिर पर धारण कर उसका पालन करना मेरा कर्त्तव्य है। उनके शोक को दूर करना आपका कर्त्तव्य हे। यही न्याय ह।

तब वसिष्ठ ने कहा—चक्रवर्त्ती ने यह आज्ञा नही दी है कि तुम कटकपूर्ण अरण्य म जाओ। हाँ, शत्रुओं के शर के समान वचन कहनेवाली क्रूर कैकेयी की ओर से पैनाये गये भाले को धारण करनेवाले चक्रवर्त्ती ने उसको वर दिये हैं।

उज्ज्वल धर्म की रक्षा के लिए उत्पन्न राम न कहा—मेरे पिता ने मेरी माता को वर दिये। मेरी माता ने मुझे (वन जाने की) आज्ञा दी। मने वह आज्ञा शिरोधार्य की। सबक साक्षी बने हुए आप क्या हमको रोकने का विचार कर रह ह ?

तब वसिष्ठ अवाक् होकर, धरती पर अश्रु बहाते हुए खडे रह। पवताकार कधा वाले राम, मुनिवर को प्रणाम करके चक्रवर्त्ती के स्वर्णमय प्राचीरो से युक्त प्रासाद के द्वार पर जा पहुँचे।

वल्कल से शोभायमान, लक्ष्मण से अनुसृत, प्रभूत आनन्द से भरित ओर कमल से

भी अधिक सुन्दर वदन से युक्त राम के निश्चय को जानकर उस नगर के लोगों को जो दु ख हुआ, अब हम उसका वर्णन किसी प्रकार से करेंगे ।

ब्राह्मणों, अपूर्व तपस्या से युक्त मुनियों, राजाओं तथा उस देश के निवासियों के हृदय की दशा के बारे में हम क्या कहें ? (इस घटना से) देवता लोग भी इतने दु खी हुए कि उन्होंने भविष्य में उत्पन्न होनेवाले सुख का भी त्याग किया ।

देव रमणियों की समता करनेवाली नारियाँ (वल्कलधारी) राम को देखकर अपने करों से अपनी सुन्दर आँखों पर इस प्रकार प्रहार करने लगी, जैसे कमलपुष्प पर मँडरानेवाले मत्त भ्रमरों को घन पल्लवों से उड़ा रही हों ।

कुछ लोग (राम के प्रति) अक्षीण अनुराग के कारण राम के पिता के पूर्व ही स्वर्ग में जा पहुँचे। क्या इसका कारण उनका द्विविध कर्म बन्धन को तोड देना था ? या उनके व्याकुल प्राणों का लोटकर नही आना था ?

कुछ गिर पडे। कुछ सिसक सिसककर रो उठे। कुछ अपनी आँखों से बहनेवाले अश्रुओं से ढक गये । कुछ इस प्रकार कातर हो उठे, मानो उनके केशों में आग लग गई हो।

कुछ लोग, जो इस प्रकार दु खी थे, जैसे प्रभूत संपत्ति को खो बैठे हो और जो इक्षुरस समान (मधुर) वचनवाले थे, आँखों से आँसू न बहाते हुए लौह सदृश हृदयों के साथ स्तब्ध हो खडे रहे। कदाचित् अपार दु ख में उनकी बुद्धि भ्रांत हो गई थी।

कुछ लोगों के शरीर से निकले हुए प्राण एक दशा में स्थिर नही रहे और ऐसे हो गये कि अभी चले, अभी चले। कुछ के प्राण बाहर निकलकर पुन शरीर में लौट आये। कुछ लोगों की आँखों से, अश्रुओं के सूख जाने से, रक्त ऐसे बहने लगा, जैसे घाव से बहता है ।

दो सूँडोंवाले हाथी जैसे (भुजाओंवाले) अनेक वीरों ने अपने बडे करवाल से अपने शिर को काट डाला और एक हाथ में (अपना शिर) रखकर उसे उछालने लगे और कुछ वीरों ने अपने कमल नेत्रों को कटार से भोंककर निकाल दिया ।

उनके (स्त्रियों के) आभरण बिखर पडे। आभरणों के रत्न बिखर पडे। पुष्पहार जैसी मेखलाएँ बिखर गई। रमणियों के उज्ज्वल मंदहास अदृश्य हो गये। उनके सुन्दर वदन (जो पहले कभी चन्द्रमा से परास्त नही होते थे, अब) चन्द्रमा से परास्त हो गये।

चक्रवर्त्ती की पवित्र पातिव्रत्यवाली साठ सहस्र पत्नियाँ अश्रु बहाती हुई राम के पीछे पीछे चली और अपने मुँह खोलकर वीची भरे समुद्र के समान शब्द करती हुई रो पडी।

वे स्त्रियाँ, जिनके राम के अतिरिक्त अन्य कोई पुत्र नही था, इस प्रकार (भूमि पर) गिरकर रोती थी, जैसे मयूर, कोकिल और हंस पंखों से हीन होकर धरती पर आ गिरे हों ।

उन स्त्रियों की अमृत से भी अधिक मधुर वाणी, अविराम रूप में नि श्वास भरते हुए रोते रहने के कारण, वंशी तथा तन्त्री से युक्त मधुर नादवाले याक् वाद्य से हार गई।

अहो ! क्या (राम के) जाने योग्य स्थान अरण्य है ! कहकर वे स्त्रियाँ विलाप कर रही थी। उनके वदनों से विशाल चहार दिवारी से युक्त प्रासाद एक

ऐसे सरोवर के समान लगता था, जिसमे रक्त कुवलय दिन मे ही विकसित हो रहे हो।

उनके नेत्रो से उत्पन्न अश्रु की नदियाँ, उनके वक्ष पर के प्रभूत कुकुम लेप और चदनरस रूपी कीचड से मिलकर मुक्ताहार को बहाती हुई, घने स्तन रूपी पर्वतो को पार कर गई और मेखला युक्त कटि तट रूपी समुद्र मे जा पहुँची।

उद्याना से पूर्ण कोशल देश के प्रभु (दशरथ) की पत्नियो का, उनके कमल सदृश उज्ज्वल मुखो को आज सूर्य ने भी देखा। स्वर्ग मे रहनेवाला देवेंद्र ही क्यो न हो, जब विपदा उत्पन्न होती है, तब उसे क्या नही भोगना पडता है?—(अर्थात्, असूर्यम्पश्या कही जानेवाली स्त्रियाँ भी राम के वन गमन का समाचार सुनकर बाहर निकल आई।)

माताएँ, बधुजन, आश्रित जन, दूर की रहनेवाली, समीप की रहनेवाली, सब प्रकार की स्त्रियाँ प्रज्वलित अग्नि मे गिरी सी तडप उठी और घरो के आँगनो मे और बाहर भर गई।

सब लोग चिल्ला उठे। (अयोध्या की जनता) सब दिशाओ मे उमडे हुए समुद्र के समान बडी ध्वनि करती हुई राम को घेरकर चल पडी। पर्वत समान कधोवाले राम, उनका क्या कहना चाहिए—यह नही जानते हुए और उनको लौटाने का कोई उपाय भी नही देखते हुए अपने प्रासाद की ओर बढ चले।

जो राम उन्नत किरीट को धारण करने के लिए, उत्तम रत्नो से जटित रथ पर सवार होकर गये थे, वही अब वल्कल पहनकर पुन उसी सुन्दर तथा विशाल वीथी मे (पैदल) चल रहे थे।

उनको देखकर कुछ लोग कह रहे थे—अजन वर्ण इस प्रभु पर जो विपदा आ पडी है, उसे देखकर भी जो प्राण शरीर को छोडकर नही जा रहे है, उन प्राणो तथा उन हृदयो से बढकर कठोर वस्तु का हम अनुमान तक नही कर सकते। सचमुच मनुष्य का स्वार्थ विष से भी अधिक क्रूर होता है।

कुछ लोग कह रहे थे—हम इस प्रतीक्षा मे वीथी मे खडे थे कि रामचन्द्र राज-तिलक धारण करके इस मार्ग से लौटेगे, किन्तु अब हम उन्हे धूप से भरी धरती पर यो चलते हुए देख रहे है। इस देश मे, जहाँ एक स्त्री इस प्रकार का क्रूर कार्य करती है, नेत्रवान् होकर जन्म लेना ही पाप है।

कुछ लोग कह रहे थे—क्या यह उचित है कि सारे ससार को अपना बनाने की शक्ति रखनेवाला, ज्येष्ठ पुत्र होकर उत्पन्न होनेवाला, यह राम, व्याघ्रो के निवासभूत अरण्य मे निवास करने के लिए जाय और यो उसे जाते हुए देखकर भी हम चुप रहे? अहो! हमारा प्रेम भी अद्भुत सुन्दर है!

कुछ लोग कह रहे थे—क्षत्रिय कुल को मिटानेवाले परशुराम के बल को भग करनेवाले इस घनश्याम राम ने शक्तिहीन तथा विवेक भ्रष्ट हुए चक्रवर्त्ती को देखकर यह नही कहा कि आप हित को छोडकर धर्म का नाश क्यो करना चाहते है? अत, यह राम भी इस पृथ्वी के शासन से हटानेवाली उस कैकेयी के ही समान है।

कुछ लोग कह रहे थे—अपनी सुन्दर कटि मे वल्कल पहने, बडे दुख से अभिभूत

होकर राम के पीछे पीछे चलनेवाला दो पुत्रों की जननी (सुमित्रा) का यह पुत्र (लक्ष्मण) ही इस नगर भर में राम का अनन्य बन्धु है।

कुछ लोग यह कहते हुए कि पत्थर से भी अधिक कठोर अपने हृदयों को हम फरसे से काट देंगे—लौट जाते थे और मार्ग मध्य अपने अश्रुओं के कारण उत्पन्न कीचड में फिसलकर गिर पड़ते थे।

कुछ लोग अपने शरीर पर से रत्नाभरणों को उतारकर फेंक देते थे। विद्युत् समान कांति से युक्त अपने शरीर पर से रंग विरंगे वस्त्रों को फाडकर फेंक देते थे और छोटे फटे वस्त्र पहन लेते थे।

कुछ लोग कह रहे थे—संसार में कुछ लोग ऐसे होते है, जो अनेक पुत्रों के होने पर भी, यदि उनका कोई एक पुत्र किसी अवयव से हीन होकर उत्पन्न होता है, तो अपने प्राण छोड देते है। किन्तु इन चक्रवर्त्ती का, जो अपने ज्येष्ठ पुत्र को अरण्य में भेजकर अपने वचन की रक्षा कर रहे है, उनका मन लोह से भी अधिक कठोर है।

कुछ लोग कह रहे थे—यह रामचन्द्र मेघ के अतिरिक्त अन्य किसी उपमान से हीन श्रेष्ठ करुणा की मूर्त्ति है, इसके अतिरिक्त इसमें दूसरी कोई कमी नहीं है। यदि नगर की सारी प्रजा इसके साथ ही अरण्य में जा बसे, तब भी क्या कैकेयी अपने प्रिय पुत्र के साथ इस पृथ्वी का शासन करती रहेगी?

कुछ कुछ झुकी हुई सूक्ष्म कटि को दुखानेवाले स्तन भार से युक्त स्त्रियाँ रोदन की ध्वनि के साथ, अपने 'कान्दल' पुष्प सदृश अपने अरुण करों को सिर पर रखे हुए, लताओं के समान एक ओर खडी रहीं।

चन्द्र को छूनेवाले शिखरों से युक्त प्रासादों की ऊपरी मंजिलों में खडी हुई स्त्रियों की आँखों से निरंतर बहनेवाले आँसू उनके स्तनों को भिगो रहे थे। वे स्त्रियाँ पर्वत शिखरों पर स्थित मयूरों के समान दुःखी हो रही थीं।

मेघ सदृश अगरु धूम से भरे सौधों के विशाल वातायनों से (राम को) देखनेवाली गद्गद स्वरवाली स्त्रियों की अंजन लगी आँखों से अश्रुजल निर्झर के समान बह रहा था। वे स्त्रियाँ पिंजरस्थ शुक के समान रो रही थीं।

सौधों की ऊपरी मंजिलों से देखनेवाले लोगों की आँखों से बडी बडी अश्रुधाराएँ निकलकर सौधों के बाहर बह रही थीं। अतः, ऐसा लगता था, मानो वे सौध भी चक्रवर्त्ती कुमार (राम) के प्रति दुःखी होकर रो रहे हैं।

स्त्रियाँ अपने शिशुओं को भूल गईं। पुत्र अपनी माता को भूल गये। इस प्रकार, उस नगर के लोग व्याकुल होकर बडी पीडा से प्रज्ञा रहित से होकर बडे शब्द के साथ रो रहे थे।

'कामर' (नामक) राग के समान मृदु स्वरवाली सब सुन्दरियाँ वीथी में एक हो गईं, जिससे धवल प्रासाद, सुन्दर दृश्य तथा सुगंधित केशोंवाली लक्ष्मी से विहीन कमल के समान लगते थे।

शर विद्ध हरिणियाँ विकल हो रही हों—इस प्रकार का दृश्य उपस्थित करती

हुई उत्तम कणाभरणो स युक्त सुदरियाँ घन पटल के समान केशपाशो को धरती पर फैलाये अपने आभरण बिखेरते हुए झुण्डो म जा रही थी।

पवत समान सौधो की पताकाएँ सकुचित हो गई। उत्तम भरिया के शब्द थम गये। विविध वाद्यो के नाद दब गये। प्रासादो के प्राचीरो स बाहर की वीथियो की धूल धरती म चारो ओर बहनेवाली अश्रुधारा से दब गई।

रसोईघर धूम हीन हो गये। ऊँचे सौध अगरु धूम स विहीन हो गये। शुको के पात्र दूध मे विहीन हो गये और उत्तम रत्न जटित पालने और उनमे सोनेवाले शिशु, स्त्रियो के आगमन से विहीन हो गये—(अर्थात्, पालनो म स्थित बच्चो के रोने पर भी माताए नही आती थी।)

सबके मुख प्राण हीन जैसे काति रहित हो गये। मेघ समूह वर्षा रहित हो गये। घोडे, स्वच्छ जल मे युक्त अश्व शालाओ को छोडकर चले गये। मत्तगज, पुष्पो के मधु को पीनेवाले भ्रमरो के जैसे, अपने आनन्द को छोडकर चले गये।

छत्र छाया नही कर रहे थे। दीर्घ नयनोवाली रमणियो के केश पुष्पो से शोभित नही हो रहे थे। पुरुषो के पाद युगल वीर वलयो से युक्त नही थे। क्रोधी मन्मथ के बाण भी उष्णता विहीन हो गये। हस अपनी हसिनी को छोडकर चल पडे।

वीथियाँ, अश्वो की किंकिणियो की ध्वनि भरियो के चर्म आवरण की ध्वनि और मेघ समान शब्द करनेवाले रथो की ध्वनि से रहित होकर स्वच्छ वीचियो स युक्त जल की ध्वनि से विहीन समुद्र के समान लगने लगी।

राजवीथियो म रोदन की ध्वनिया को छोडकर वाद्यो की ध्वनियाँ नही होती थी। वीणा तन्त्रियो के क्रमबद्ध स्वरो की ध्वनि नही होती थी। अनिमेष नयनोवाले देवो के उत्सवो मे उत्पन्न होनेवाली ध्वनि भी नही हो रही थी।

स्पष्ट शब्दवाले नूपुरो से प्रतिध्वनित सौध, अब शब्द रहित थे। मेखलाओ के सबध म भी यही बात थी। जलचर पक्षी नही बोल रहे थे। उद्यान म भी ऐसी ही बात थी। पुष्पो म भ्रमर शब्द नही कर रहे थे। हाथी भी ऐसे ही हो गये।

खेत, जल को भूल गये—(अर्थात्, किसान खेतो को सीचने की बात भूल गये।) लाल अधरवाली सुन्दरियो के कर, नवजात शिशुओ को भूल गये। प्रज्वलित होमाग्नियाँ, घृत को भूल गईं—(अथात्, ब्राह्मण उनमे घृत का होम करना भूल गये।) आत्मज्ञानी आत्मतत्त्व को भूल गये। वेद, शब्द को भूल गये—(अर्थात्, वेदो का वाचन बन्द हो गया)।

झुण्डो म नृत्य करनेवाले अब रो पडे। अमृत समान मधुर सप्त स्वरो मे गान करनेवाले अब रो पडे। अपने प्रियतमो के साथ प्रणय कलह म कुपित तथा पुष्पमालाओ से रहित सुन्दरियाँ अब रो पडी। अपने प्रियतमो से मिलकर (आनदित) रहनेवाली सुन्दरियाँ भी अब रो पडी।

हाथी जलाशयो के पास जाकर अपनी सूँड, जल पीने के लिए नही बढते थे। घोडे मुँह म घास नही लेते थे। पक्षी अपने बच्चो के लिए आहार नही लाते थे। गाये अपने बछडो को दूध नही पिलाती थी और उनके वत्स व्याकुलता से द्रवित हो रहे थे।

पुरुषो के वक्ष पर युवतियो के स्तन रूपी नारिकेल अर्चित नहा हो रहे थे— (अथात्, वे आलिगन नही कर रहे थे) । पुष्प समुदाय, चदन लेप करनेवाले पुरुषो के केशो को तथा उनकी युवतियो के केशो को अलकृत नही कर रहे थे ।

नट गज, मुखपट्ट और उत्तम आभरणो से घृणा करते थ। सौध समुदाय, शिखरो म पहनने योग्य सुन्दर अलकारो से घृणा करत थे। वजाएँ, आकर्षक सौदर्य से रहित हो गई थी। स्वर्णमय मनोहर प्राचीर, मृदुगतिवाले कबूतरो तथा कबूतरियो की सुन्दरता से रहित हो गये।

सुख दु ख को समान रूप से रखनेवाले योगी भी अधिक पीडा से दु खी हुए। फिर, उन साधारण ससारी व्यक्तियो के बारे म क्या कहा जाय, जो दु ख के समय, अपने पाप का फल मानकर व्याकुल होत ह और सुख प्राप्त होने पर पुण्य का फल मानकर आनदित होत हैं।

वह अयोध्यानगर, (प्राणियो के) शरीरो से नि श्वास के साथ बाहर न निकलनेवाले प्राणो के व्याकुल होने से, मनोहर शोभा के मिट जाने से, अत्यधिक पीडा कारक दु ख के बढ़न से तथा न मिटनेवाली पचेद्रियो के अस्त व्यस्त होने म, उन (दशरथ) के समान ही लगत थे, जो (राम के विरह म) अपने प्राण छोड रहे थे ।

इस प्रकार, जब उस नगर के लोग अत्यन्त कातर होकर पीडित हो रहे थे, कही झुण्ड बाँधकर खडे थे और कही बुद्धिभ्रष्ट हो रोत हुए पीछे पीछे चल रहे थे, तब राम, जो सचरणमान विविध प्राणियो की एक आत्मा के समान थे, उज्ज्वल आभरण भूषित स्तनवती जानकी के आवास मे जा पहुँचे ।

ज्यो ही सीता ने वल्कलधारी राम को एव उनके पार्श्वो म माताओ, मुनियो, ब्राह्मणो और राजाओ को रोते हुए तथा धूलि भरे शरीरो के साथ आते हुए देखा, त्यो ही वह चित्र प्रतिमा जैसी सुन्दरी, स्तब्ध होकर उठ खडी हो गई।

इस प्रकार उठकर खडी होनेवाली उन सीता का आलिगन करके उनकी सासो न उन्हे अजन अचित नयनो के नूतन नीर म नहलाया। तब जानकी, जो उस परिस्थिति का कारण नही जानती थी, व्याकुल चित्त के साथ अपनी विशाल आँखो से राम को देखकर अश्रु धारा बहाती हुई—

और विद्युत् के समान काँपती हुई बोली—हे स्वर्णवीर वलयधारी। इस दु ख का कारण क्या है ? क्या कीर्तिमान् चक्रवर्त्ती का कुछ विपदा हुई ह ? क्या हुआ ? बताइए।

राम ने सीता से कहा—मेरा उपमा रहित भाई (भरत) राज्य करेगा। अपने आश्रयभूत गुरुजनो की आज्ञा स, म मेघो मे भरित घन वन म जाऊँगा और उस वन को देखकर फिर लौट आऊँगा। तुम दु खी मत होओ।

'पति राज्य के अधिकार से वचित हो गये और वन गमन करनेवाले हैं'—इस विचार से सीता दु खी नही हुई। किन्तु 'तुम दु खी मत होओ, मै जा रहा हूँ'—राम का यह कठोर वचन ही (सीता को) अत्यन्त पीडित कर रहा था ।

जब विष्णु भगवान् 'धर्म मिट जायगा, उसकी रक्षा करनी है ।'—इस विचार से क्षीरसागर म अपने पर्यंक को छोडकर अयोध्या म अवतीर्ण हुए थे, तब लक्ष्मी देवी भी

(मीता के रूप म) अवतीण होकर उनसे वियुक्त रहने लगी थी , ऐसी वह (मीता) क्या इम वचन को सह सकती कि राम उसका छोडकर चले जायेगे ?

राम की उक्ति को मोच माचकर सीता ऐसी व्याकुल खडी रही, जैसे उसके प्राण ही निकल रहे हो। फिर, यह बोली कि माता पिता की आज्ञा का पालन करने का निश्चय अत्यन्त उचित ही हे, किन्तु मुझे किम कारण से (अयोध्या म ही) रहने को कह रहे ह ?

तव राम ने कहा—शीतल अलक्तक रस से अलकृत तुम्हारे मृदुल चरण इस योग्य नही ह कि राक्षस जैसे लगनेवाले पवतो म, पिघली हुई लाख जैसे उष्ण पत्थरो पर तुम चलो।

यह सुनकर सीता ने उत्तर दिया—आप मेरे प्रति कृपाहीन और प्रेमहीन होकर मुझे छोटकर जाने की वात कह रहे हे, (आप के विरह मे उत्पन्न होनेवाले) इस ताप क सामने प्रलयकालीन सूय का ताप भी कुछ नही होगा। वह विशाल अरण्य क्या आपके विरह मे भी अधिक तापजनक ह ?

प्रभु ने मीता के वचनो को सुना और साथ ही उन (सीता) के मन को भी पहचाना , वे यह भी नही चाहते थे कि मीता अपने नेत्रो से अश्र समुद्र को प्रवाहित करती रह। इमलिए, वे मोचत खट रहे कि अब मेरा कर्त्तव्य क्या हे।

उम समय, सीता अपने विशाल प्रासाद के भीतर गई। अपने योग्य वल्कल वसन धारण करके विचार मग्न प्रभु के निकट आकर उनके तालवृक्ष जैमे दीर्घ कर को पकटकर खडी हो गई।

मीता का वह काय देखकर सब लोग धरती पर गिर पटे। फिर भी मर नही गये। उन आयु क दिन अभी शेष थे, तब व कैमे मर जात ? जिनकी आयु ममाप्त नही होती, व युगान्त के समय म भी जीवित ही रहत ह।

मीता को देखकर, माताएँ, बहिने, माथिने, सखियाँ—सब जैमे अग्नि की ज्वाला म गिर पडी। तब कमलनयन गामचद्र सीता के प्रति कहने लगे—

कुद और मुक्ता को परास्त करनेवाले उज्ज्वल दाँतो से युक्त, ह दवि। वन गमन से होनेवाले कष्टो को तुम नही जानती हो। मेरे माथ चलने को सन्नद्ध हो गई हो, अत तुम मेरे लिए अपार दु ख उत्पन्न कर रही हो।

क्षत्रिय वश के श्रेष्ठ राम के यह कहने पर कोकिल का परास्त करनेवाली मधुर वाणी से युक्त सीता, कोप क साथ बोली—आपको मेरे कारण ही सकट उत्पन्न होता है , कदाचित् मुझे छोडकर जाने मे आपको सुख ही सुख है।

तव उदार गुणवाले राम कुछ उत्तर नही द मके और सीता का साथ लेकर उस वीथी म, जहाँ नर नारी, अश्रु प्रवाह के कारण खेत के जैसे कीचड से भरी धरती पर पडे थे, चलकर वडी कठिनाई से आगे बढे।

राम आगे आगे जा रहे थ, उनक साथ सीता वल्कल पहने पीछे पीछे जा रही थी और उनके पीछे दृढ धनुर्धारी लक्ष्मण जा रह थे। उस दृश्य को दखकर, उस नगर क लोगो को जो दु ख हुआ, उसका वणन करना सभव नही हे।

उस समय कोई भी अमगल उत्पन्न करने के कारण रोये नही। सब व्याकुल चित्त

के साथ यह सोचकर कि राम के पहले ही हम वन में पहुँच जायेंगे, कोलाहल ध्वनि करते हुए, आगे बढ़ चले।

विजयमाला से भूषित भाल को धारण करनेवाले रामचंद्र अपने पिता के सौध द्वार पर पहुँचे। वहाँ अपनी माताओं के प्रति कर जोडकर विनती की कि आप लोग यहीं रहकर चक्रवर्त्ती को सान्त्वना दें। यह सुनकर माताएँ मूर्च्छित होकर गिर गईं।

संज्ञा लौटने पर उन्होंने गदगद कंठ से पुत्र (राम) को आशीष दिये। पुत्र वधू की प्रशंसा की। कनिष्ठ कुमार (लक्ष्मण) की प्रस्तुति की और देवताओं से प्रार्थना की कि हे कुल देवताओ! इनकी रक्षा करना।

उन माताओं के बडी कठिनाई से हटने पर, राम ने मुनिवर वसिष्ठ को प्रणाम किया। फिर, स्वयं अपने प्राण समान भाई और सीता के साथ एक रथ पर आरूढ होकर चल पडे। (१–२४०)

●

अध्याय ५

तैल-निमज्जन पटल

विशाल सेना से युक्त चक्रवर्त्ती से कभी वियुक्त न होनेवाली उनकी पत्नियाँ (राम के साथ न जाकर) रुक गईं। उस दिव्य नगर में स्थित चित्र भी प्राणहीन होने के कारण (जाने से) रह गये। इनको छोडकर, पिता की आज्ञा से (वन) जानेवाले राम के साथ न जानेवाला वहाँ कोई नहीं रहा।

वह स्वर्णमय रथ, उसके चारों ओर उष्ण अश्रु जल के प्रवाहित होने से, धीरे धीरे चल रहा था और उस दिव्य मत्स्य (विष्णु के मत्स्यावतार) के समान लगता था, जिसने सप्त लोकों को एक करनेवाले महान् समुद्र के जल में सचरण करके संसार के प्राणियों का उद्धार किया था।

सूर्य मानों राम को वन जाते हुए नहीं देखना चाहता हो, (इसलिए) वह पर्वत के मध्य जा छिपने के लिए त्वरित गति से बढ चला। तब गायें और भैंसें अपने गोष्ठों में आकर प्रविष्ट हुईं। धूप मिट गई और नक्षत्र चमकने लगे।

कमलभव ब्रह्मा के द्वारा चन्द्र के खंडों को लेकर निर्मित उज्ज्वल ललाटवाली सुन्दरियों के वदन के समान कमल पुष्पों के समूह, अश्रुजल रूपी मद्य के प्रवाहित होने से शोभाहीन होकर मुँह झुकाये खडे रहे।

संध्याकाल में सूर्य के अस्तगत होने से आकाश प्रदेश, मंथरा के वचन रूपी विष से विकृत हुए कैकेयी के मन के समान ही, अपनी अरुणिमा को (प्रकाश को) छोडकर अन्धकार से भर गया।

सर्वत्र नक्षत्रों से प्रकाशमान नील वर्ण आकाश, इन्द्र की देह के समान लगता था, (देह) मुनिवर (गौतम) के द्वारा दुःख के साथ दिये गये शाप के प्रभाव से अनेक अनिमेष नयनों से युक्त हो गई थी।

राम उस अयोध्यानगर को छोडकर शीघ्र गति से दो योजन दूर पारकर गये और सुगन्ध भरे एक उद्यान में पहुँचे। वहाँ उतरकर अपने मित्र समान अनेक मुनियों के साथ विश्राम करने लगे, तब—

राम का विरह न सहकर उनके साथ आई हुई जनता एक योजन पर्यंत प्रदेश को घेरकर पक्षियों से भरे उस उपवन के बाहर इस प्रकार फैली पडी रही कि तिल रखने के लिए भी वहाँ स्थान नहीं रहा।

वे लोग मुँह में रखकर न कुछ खा रहे थे, न सो रहे थे, पर मन में कुढकर सिसक सिसककर रो रहे थे। उत्तम रत्न जहाँ बिखरे पडे थे, ऐसे नदी तट पर सैकत राशियों और हरियाली पर वे (विकल होकर) लोट रहे थे।

जलाशय में विकसित कमल पुष्प के मध्य जैसे सुगंध भरे सद्योविकसित नील उत्पल खिले हों, वैसे नेत्रों से तथा कस्तूरी गंध से युक्त केशों से शोभायमान सुन्दरियाँ, धूम से आवृत दूध के फेन जैसे वस्त्रों को ही शय्या बनाकर सो गई।

कमल कोरक समान स्तनों, तीक्ष्ण शर समान नेत्रों तथा इक्षु रस समान मधुर वाणी से युक्त कन्याएँ, दिन भर की बडी थकावट के कारण, नारिकेल फल के जैसे स्तनों से युक्त अपनी धाइयों की गोद में ही पडी पडी सो गईं।

(कभी) मांस से रहित न होनेवाले (अर्थात, सदा शत्रुओं के मांस से युक्त) 'कुंत' नामक शस्त्र धारण करनेवाले वीर युवक, सिकता राशियों से भरे प्रदेश में, आम के टिकोरे के समान नेत्रोंवाली अपनी यौवनवती पत्नियों के साथ, हथसार में बँधे हुए छोटी आँखोंवाले मत्तगज के समान सोये पडे थे।

कुछ युवतियाँ जो सद्गुणों तथा (पातिव्रत्य के) तप से संपन्न थीं और अपने पति के मुखों के दर्शन तथा उनकी करुणा से तृप्त रहती थीं, अब अत्यधिक दुःख के कारण, जैसे नृत्यशील मयूर निष्प्राण हो पडे हों, उसी प्रकार सो रही थीं और उनके शिशु उनके स्तन चूचुकों पर अपने करों को फेरते हुए दुग्ध पान कर रहे थे।

कुछ स्त्रियाँ माधवीलता के कुंजों में, नक्षत्र भरे आकाश के समान उज्ज्वल, नील रत्नमय सैकत वेदी पर, मयूरों के विशाल झुण्ड के समान सोई पडी थीं। कुछ स्त्रियाँ क्रमुक वन के मध्य स्थित जलाशय के निकटस्थ सैकत प्रदेश पर हंसिनियों की श्रेणी के समान पडी थीं।

कुछ स्त्रियाँ चंपक पुष्पों से सुगन्धित उद्यानों में इस प्रकार शिथिल पडी थीं, जैसे तरुण लताएँ छिन्न होकर मुरझाई पडी हों और कुछ स्त्रियाँ कंचुकों में बँधे स्तनों के साथ सिकता राशियों पर फैली हुई प्रवाल लताओं के समान प्रज्ञाहीन हो सो रही थीं।

कुछ स्त्रियाँ इस प्रकार सो रही थीं कि उनके पीन स्तनों पर धूल लग गई थी, जैसे कुंकुम पुष्पों से भरे पर्वत पर ओस छाई हुई हो। कुछ स्त्रियाँ अपने हाथ का सिरहाना

जनाकर या सो रही थी कि उनके वदन कांतिहीन होकर, कुम्हलाकर, मुकुलित हुए कमल के समान लगते थे।

कुछ, पथ गमन के श्रम से चूर होकर, फैले हुए पत्थरों पर पड़ी सो रही थी। कुछ नीचे पड़े पत्तों की राशि पर बेसुध पड़ी सो रही थी। कुछ, अपने वस्त्र का एकभाग मात्र पहनकर शेष भाग को बिछाकर उस पर सो रही थी। कुछ पल्लवों को बिछाकर उनपर शिथिल हो पड़ी थी।

जब सब लोग इस प्रकार पड़े सो रहे थे, तब (वैवस्वत) मनु के वंश में उत्पन्न राम ने सुमन्त्र को अपने निकट बुलाया और उससे कहा—तुम दोषहीन हो और सब गुणों के आगार हो। तुम्हें एक काम करना है। सुनो—

मुझपर गाढ़ प्रेम रखनेवालों को लौटाकर भेजना कठिन है। इनको यहाँ से भेजे विना मेरा यहाँ से चला जाना भी उचित नहीं है। अतः, हे पितृ तुल्य! तुम अभी इस रथ को लौटाकर ले चलो। रथ के चिह्न को देखकर सब लोग यह समझेंगे कि मैं अयोध्या को लौट गया हूँ। इससे सारी जनता नगर को वापस चली जायगी। तुमसे यही मेरी प्रार्थना है।

सद्गुणों से पूर्ण राम के यों कहने पर रथ चलाने में चतुर सुमन्त्र ने कहा—इस स्थान में तुम्हें छोड़कर और अपने प्यारे प्राणों को रखकर मुझे उस अयोध्यानगर में वहाँ की दुःखपूर्ण दशा को देखने के लिए जाना है। मैं उस क्रूर माता और कठोर नृपति से भी अधिक कठोर हूँ।

लोह के समान हृदयवाला मैं, वहाँ जाकर क्या कहूँगा? क्या यह कहूँगा कि राम को, उनकी पत्नी तथा भाई के साथ पुष्पों से भरे उद्यान में जाने के लिए छोड़ आया हूँ? या यह कहूँगा कि राम को साथ लेकर अयोध्या को लौट आया हूँ?

क्या यह कहूँगा कि पुराना मित्र तथा दोषहीन आचरणवाला मैं, माला के योग्य कोमल पुष्पों पर भी चलने में अशक्त (अर्थात्, अति सुकुमार), कंचुक से बँधे स्तनोंवाली सीता के साथ दोनों बलवान् कुमारों को कठोर धरती पर चलने के लिए उतारकर, स्वयं रथ पर लौटकर चला आया हूँ?

क्या कठोर इन्द्रियों तथा शिला जैसे मनवाला वंचक मैं, टूटे हृदय तथा शिथिल गात्र से पीड़ित होनेवाले चक्रवर्ती के निकट दक्षिण दिशा के अधिपति यम के दूत के समान जाऊँ? क्या मैं तुमसे यह निवेदन कर सकता हूँ कि तुम अपनी सद्बुद्धि से कोई योग्य वचन मुझे बताओ (जिसे मैं अयोध्या में चक्रवर्ती को सुना सकूँ)।

हे प्रभु! 'चारों दिशाओं के निवासी तथा नगर की प्रजा राम को समझा बुझा कर अयोध्या लौटा ले आयेंगे'—यों कहकर चिंतित चक्रवर्ती को स्वस्थ किया गया था। अब क्या मैं कठोर यम सदृश वचन से उनके प्राणों का हरण करूँगा?

क्या मैं उनको यह सुनाऊँगा कि अग्नि में यज्ञ करके, बड़ी कठिनाई से प्राप्त किये गये आपके सिंह सदृश पुत्र, अरण्य में चले गये हैं? ठीक विचार करने पर जान पड़ता है कि चक्रवर्ती को इस कठोर वचन को सुनानेवाले मेरे जैसे व्यक्ति से तो वह कैकय राजपुत्री ही अच्छी है।

इम प्रकार ग्रातम प्राथना करने पर भी सुमत्र का वज्र का घोष ही (अथात् , म नही लोटूँगा) सुनाइ पडा, जिससे अत्यत व्याकुल होकर तडपनवाले मर्प क ममान व्याकुल होकर सुमत्र राम के चरणो का पकडकर वरती पर लोट गया आर विविव वचन कहकर रोने लगा।

तव उन राम ने जो निग्रह करने योग्य इन्द्रियो तथा मन क लिए अगोचर, पर परिशुद्ध बुद्धि के लिए गोचर है, अपने विशाल हाथो से उठाकर उम सुमत्र को गले लगा लिया और उसक अश्रुओ को पोछकर पृथक् ले जाकर उससे कहा—

इस ससार मे हमारा जन्म हुआ ह। उस (जन्म) के साथ घटित होनेवाली सब बातो को, उचित बुद्धि से, सोचकर समझने की शक्ति तुम रखते हो। यह सोचकर कि विपदा उत्पन्न हुई ह, क्या तुम असाधारण रूप से उत्पन्न होनेवाले अपयश को एव धम के तत्त्व को भूल जाओगे ?

श्रेष्ठ धर्म सब कार्यो से आगे रहकर यश को स्थिर बनाता ह और मृत्यु के पश्चात् भी शाश्वत फल प्रदान करता ह। ऐसे धम का आचरण करत समय, क्या यदि सुख हो, तो हम उसका आचरण करेंगे, पर यदि कष्ट हो, तो क्या उस (धर्म) को छोड देना उचित होगा ?

शत्रुओ के उज्ज्वल शस्त्रो को वीरता के साथ अपन वक्ष पर सहन करना शूरता नही है। मृत्यु का भी सामना होने पर, अथवा सारी सपत्ति को खोने की आवश्यकता पडने पर भी, धम का परित्याग न करना ही शूरता है।

(शत्रुओ के) शरीर को भेदकर उसमे स्थित प्राणो के अपहारक भाले को धारण करनेवाले हे राम। यदि मै वन गमन से होनेवाले कष्टों का विचार करके नगर को लौट जाऊँगा, तो क्या वैवस्वत मनु का यह कुल, जिसकी कीत्ति स्वर्ग तक फैली हुई है, धर्मच्युत नही कहलायगा ?

'आचरण के लिए दुस्साध्य सत्य का अनुसरण करनेवाले चक्रवर्त्ती (दशरथ) ने अपने प्यारे पुत्र को वन मे भेज दिया—ऐसी'— प्रख्याति उन चक्रवर्त्ती के लिए एक तपस्या ही होगी और उनकी आज्ञा को शिरोधाय करके वन जाना मेरे लिए भी तपस्या ही है। अत , हे मेरे पितृ तुल्य। तुम इससे दु खी मत होओ।

(नगर म लौटकर) तम पहले मुनिवर (वसिष्ठ) को नमस्कार करना और मेर प्रणाम एव मरे वचनो को उन्हे सुनाना। उन मुनिवर से यह निवेदन करना कि व स्वय चक्रवर्त्ती के पास जाकर मेरा मनाभाव उनसे प्रकट कर।

मुनिवर के द्वारा ही मरे भाइ (भरत) को यह सन्देशा देना कि वह नीति माग पर दृढ रहकर वदज्ञ ब्राह्मणो तथा स्वर्गलोकवासियो के लिए हितकारी कार्य कर तथा अपने आचरण मे, मरे वियोग से उत्पन्न सब लोगो के दु ख का दूर करे। फिर, रामचन्द्र ने सुमत्र से कहा—

तुम (वसिष्ठ मुनिवर से) यह कहना कि इस समय मेरे मन को यह बात किंचित् भी पीडा नही दे रही है कि मेरी छोटी माता क कारण एक बडा दु ख मुझे उत्पन्न हुआ है।

अत , मेरे प्रति उनकी जैसी कृपा है, वैसी ही कृपा उस (कैकयी अथवा भरत) पर भी रखे ।

तुम यहाँ से लौटकर महान् तपस्वी (वसिष्ठ) के साथ राजप्रासाद में जाओ और मेरे पिता के अपार दु ख को शांत करने का उपाय करो । उन चक्रवर्त्ती की कृपा मेरे उस भाई (भरत) पर भी बनी रहे ऐसा उपाय करो—यही मेरी प्रार्थना है ।

मुखपट्ट से भूषित, मदस्रावी हाथियों की सेना से युक्त चक्रवर्त्ती को वसिष्ठ के द्वारा मेरा यह सन्देश पहुँचा देना कि चौदह वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् मैं नगर को लौट आऊँगा और उनके चरणों का प्रणाम करूँगा। वे दु खी न हों ।

मेरी तीनों माताओं को क्रम के अनुसार मेरा प्रणाम पहुँचाना । फिर, चक्रवर्त्ती के दु ख को शांत करते हुए उनके निकट रहना—इस प्रकार राम ने जो वेदों के लिए भी अज्ञेय है और अब वन में जाकर रहते हैं सुमन्त्र से कहा ।

अनुपम महान् रथ को चलाने में समर्थ सुमन्त्र ने, यह विचार कर कि दासता से विमुख होना एक सेवक का कर्त्तव्य नहीं है राम के चरणों पर नत हुआ । फिर यह सोचकर कि पूर्व कर्मों के कारण हमें दु ख भोगना पड़ता है, भाले जैसे नेत्रवाली जानकी को नमस्कार करके उनकी ओर देखा ।

तब सीता ने (सुमन्त्र से) कहा—चक्रवर्त्ती को तथा सासों को मेरा नमस्कार कहना । फिर, मेरी प्यारी बहनों से कहना कि सोने के रंगवाली मेरी सारिका को और तोते को सावधानी से पालें ।

सीता के वचन सुनकर, सारथि (वनवास से) अधीर न होनेवाली उन (सीता) के दु ख का विचार करके व्यथित हुआ, और यह कहता हुआ कि 'विपदा उत्पन्न होने पर उसे दूर करने में कौन समर्थ होता है और प्राण छोड़ना भी सुगम नहीं है'—पहले भीतर ही भीतर व्याकुल हुआ फिर ऐसा रो पड़ा कि महावीर राम के समझाने पर भी वह शान्त नहीं हुआ ।

सदा स्थिर रहनेवाले प्रेम से युक्त सुमन्त्र, अपने दु ख से किंचित् शान्त सा होकर राम को पुन पुन नमस्कार करके उनसे विदा हुआ । फिर लक्ष्मण से उसने पूछा कि आपका क्या सन्देश है ।

तब लक्ष्मण ने उत्तर दिया—जिन सत्यसंध ने, पहले मेरे भाई को राज्य देने का वचन देकर पुन सारी संपत्ति को सुगन्धित केशोंवाली एक नारी को दे दिया, उनको चक्रवर्त्ती मानकर क्या अब भी कोई संदेश देना उचित होगा ?

फिर भी, उन असत्यहीन चक्रवर्त्ती से, जो अपने ज्येष्ठ पुत्र के वन में जाकर कंद मूल खाते रहते समय, स्वयं राजोचित भोजन करते रहते हैं, यह कहना कि उनके शरीर में स्थित प्राण इस संसार को छोड़कर अभी तक स्वर्ग नहीं गये, अतएव मैं उनकी दृढ़ता की प्रशंसा करता हूँ ।

उज्ज्वल करवालधारी राजा भरत से कहना—मैं, राजा होने के अधिकारी मेरे प्रभु (राम) का भाई (होने योग्य) नहीं हूँ (क्योंकि मैं अपने पिता से लड़कर उन्हें राज्य नहीं दिलवा सका) । राज्य का शासन करनेवाले उस भरत का भी भाई नहीं हूँ

तथा उस शत्रुघ्न को भी अपना अनुज नही मानता हूँ। मै केवल एकाकी ही जन्मा हूँ। मेरा बल किंचित् भी कम नही है।

इस समय आर्य (राम) ने अपने भाई को देखकर कहा—हे तात! ऐसे अशोभनीय वचन कहना उचित नही। तब सारथि अपने मन मे व्यथित होकर धरती पर गिरकर उनको प्रणाम करके रथ की ओर बढा।

सुमन्त्र ने रथ रूपी यन्त्र को ठीक किया। उसमे घोडे जोते। सबकी दृष्टि मे साफ दिखाई देनेवाले मार्ग से अपने रथ को लौटाकर ले चला। उसने निपुणता से रथ को ऐसे चलाया कि कोई भी व्यक्ति निद्रा से नही जग सका।

उस अर्धरात्रि मे, प्रभु (राम) भी देवी का पातिव्रत्य, अपनी उदारता, कलक हीन कृपा, विवेक, सत्य, कार्य मे निपुण अपने धनुष तथा अनुज (लक्ष्मण), इन सबको साथ लेकर चल पडे।

तब दिव्य प्रकाश से युक्त चद्रमा ऐसे उदित हुआ, मानो मायावी जीवन व्यतीत करनेवाले राक्षसो का साथी बनकर उनके क्रूर कार्यो मे सहायता देनेवाले तथा राम लक्ष्मण के (वन गमन मे) विघ्न सा बने हुए, अंजन सदृश अंधकार को भगाने के लिए आकाश ने अपने हाथ मे दीपक ले लिया हो।

वह अनुपम शीतल चद्रमा इस प्रकार प्रकाशित हुआ, जैसे उस धर्मदेवता का प्रसन्न मुख हो, जो उसके प्राणो का विनाश करनेवाले पाप को मिटाने मे समर्थ, वज्र सदृश धनुष से युक्त राम लक्ष्मण को वन गमन के लिए सहमत करनेवाले सुकृत का विचार करके बडी प्रसन्नता से उन (राम लक्ष्मण) के दर्शनार्थ वहाँ आया हो।

ऊँचे बढे हुए बाँसो से युक्त उस वन मे पैदल चलनेवाले राम की दुःख दशा को देखकर, दुःखी होकर ही मानो रक्त कमल मुकुलित हुए थे। कुवलय पुष्प भी सर्प के सिर का रूप धारण कर पीडित हो झुके थे। अब दूसरे पुष्पो के बारे मे कहने की आवश्यकता ही क्या है?

चद्रमा अपनी चद्रिका फैला रहा था, मानो इस विचार से कि धनुष जैसी भौहोवाली (सीता) के मृदुल चरणो को चलने मे क्लेश न हो। उसने कानन मे सफेद रूई बिछा दी हो। उस प्रकाश मे अंजनपर्वत सदृश सुन्दर पुरुष (राम) तथा वह कनिष्ठ भ्राता—जो ऐसा था, मानो प्रभु (राम) को उत्तम स्वर्ण के आवरण से आवृत कर रखा हो—धीरे धीरे पग बढाते हुए चले।

क्षीण कटि से पीन स्तनो का भार वहन करनेवाली, लक्ष्मी कहलानेवाली तथा घन केश भार से युक्त सीता, जल के बुद्बुदो से भी अधिक मृदुल अपने छोटे चरणो को रखती हुई रामचन्द्र के पीछे पीछे चली। क्या कलक रहित प्रेम से भी बढकर दृढ कोई वस्तु हो सकती है?

सूर्य के उदयाचल पर आने के पूर्व, लक्ष्मी के पति (राम) दक्षिण दिशा मे दो योजन दूर चले गये। अब उस सुमन्त्र के संबंध मे कहेगे, जो निर्झर जैसे बहते नयन, आहत मन तथा अकलापन साथ लिये तीव्रगामी अश्व जुते रथ पर चला था।

पाँच घडी के अन्दर वह (सुमन्त्र) प्राचीरों से सुरक्षित अयोध्यानगर में आ पहुँचा और जाकर कुलगुरु (वसिष्ठ) के चरणों पर नत हुआ। वे मुनिवर भी सब वृत्तांत सुनकर व्यथित चित्त हुए और भविष्य को जानकर बोले—हाय! चक्रवर्त्ती के प्राण अब गये।

मुनिवर यह कहते हुए कि उदारगुण दशरथ स्थायी रहनेवाले अपवाद के डर से (राम को) रोक नहीं सके। धर्म की रक्षा करनेवाले राम ने मेरे कथन को भी माना नहीं। नियति को कौन जीत सकता है? इस प्रकार रोते हुए वे सुमन्त्र के साथ राज प्रासाद में गये।

मन्त्रिगण यह सोचकर कि राम रथ पर लौट आये है—चन्द्र के चारों ओर परिवेष के समान दशरथ को घेरकर आये। किन्तु वहाँ राम को न देखकर और अजस्र अश्रुधारा बहानेवाले सुमन्त्र की दशा को देखकर अपने आनन्द को भूल गये।

'रथ आ गया'—यों वहाँ के सब लोग बोल उठे। उसे सुनकर और यह सोचकर कि राम आ गये, दशरथ मूर्च्छा से उठे। कमल समान अपने नेत्र खोलकर देखा। फिर अपने सम्मुख महान् तपस्वी (वसिष्ठ) को देखकर उनसे पूछा—क्या महावीर (राम) लौट आया?

मुनिवर, 'नहीं आये' कह सकने में असमर्थ हो अत्यंत विकल होकर चुपचाप रहे। सद्गुणों से पूर्ण मुनिवर का मुख सूचित कर रहा था कि राम नहीं लौटे। तब दशरथ फिर मूर्च्छित हो गये। मुनिवर दुःखी होकर यह कहते हुए कि मैं चक्रवर्त्ती की पीडा को नहीं देख सकता, वहाँ से दूर हट गये।

तब चक्रवर्त्ती ने अपने सारथि को देखकर पूछा—मेरा वत्स (राम) दूर है या समीप में है? उत्तर में सुमन्त्र ने ज्योंही यह कहा कि वे उनके अनुज तथा मिथिला में उत्पन्न लक्ष्मी सदृश देवी तीनों सीधे बढे हुए बाँसों से भरे वन में गये, त्योंही दशरथ के प्राण भी शरीर को छोडकर निकल गये।

उस समय, उस स्थान पर, इन्द्र आदि सब देवता आकर एकत्र हुए और यह सोचकर आनन्दित हुए कि हमारे पिता (विष्णु) के पिता हमारे निकट आनेवाले हैं। उन्होंने चन्द्र समान एक अनुपम विमान में उन (दशरथ) को बिठाकर, नारायण के नाभि कमल में उत्पन्न ब्रह्मा के लोक से भी ऊपर स्थित उस (वैकुंठ) लोक में पहुँचाया, जहाँ से पुनरावृत्ति नहीं होती।

उत्तम कुलजात मयूर सदृश कौशल्या, दशरथ की दशा को देखकर आशंकित हुई और उनकी देह का स्पर्श करके देखा। तब यह जानकर कि इनके प्राण निकल गये, देह स्पंदन हीन हो गई है, अत्यन्त व्याकुल होकर धरती पर गिर पडी और यों तडप उठी, जैसे कोई अस्थिहीन कीडा, कडी धूप में पडकर तडप उठा हो।

वह कौशल्या, जिन्होंने ब्रह्मा प्रभृति सारी सृष्टि के कारणभूत विष्णु को पुत्र के रूप में प्राप्त करने का बडा सुकृत किया था अब पति के वियोग से इस प्रकार विकल होकर विलाप करने लगी, जैसे चन्द्रमा ने अमृत को खो दिया हो, जैसे कोई नाग अपने माणिक्य को खोकर मूर्च्छित हुआ हो और जैसे क्रौंची अपने साथी को खोकर रो पडी हो।

जिनको कुछ कमी नहीं थी, ऐसे दशरथ हम पर कृपाहीन होकर अब हम छोड़कर चले गये। मृत्यु के कारणभूत किसी व्याधि के बिना ही मर गये। यों कहकर वे (कोशल्या) इस प्रकार तड़पकर गिरीं, जैसे आकाश से वर्षा के न गिरने से किसी सूखनेवाले जलाशय में रहनेवाली मछली तड़पती हो।

जो पुत्रवान् होते हैं, उनको एक ही सुख नहीं, अनेक सुख मिलते हैं। वे अपने पितरों को नरक से मुक्त करते हैं। इस लोक में अपने माता पिता के जीवन की रक्षा करते हैं। जो पुत्र पाकर जीवन व्यतीत करते हैं, उनको कोई विपदा उत्पन्न नहीं होती किन्तु मेरा पुत्र (राम) तो यहाँ आकर यह नहीं कह रहा है कि तुम डरो नहीं, (इसके विपरीत) वह अपने पिता की मृत्यु का कारण बन रहा है। यों कहती हुई कौशल्या कातर होकर बिलखने लगी।

हाय! दशरथ को, किसी व्याधि से या युद्ध में भाले, करवाल आदि शस्त्र से मृत्यु नहीं मिली। किन्तु अपने जाये पुत्र से ही मृत्यु प्राप्त हुई (अर्थात्, अपना प्यारा पुत्र ही मृत्यु का कारण बना)। अहा, केंकड़ा, मोती की सीप, फल देनेवाले केले का पेड़ और बाँस के जैसे दशरथ भी (अपने जाये पुत्र के कारण ही) मृत्युग्रस्त हो गये। यों कहकर वह मूर्च्छित हो गिरी।

मेघ के मध्य कौंधनेवाली बिजली के समान दशरथ के वक्ष पर गिरकर बिलखनेवाली कोशल्या कहने लगी, मनोहर दीर्घ केशों से युक्त कैकेयी! बुद्धि की चातुरी से तुमने राज्य प्राप्त किया। अपरिवर्त्तनीय वचन तुमने प्राप्त किये। तुमने एक साथ अपने सारे मनोरथ पूर्ण कर लिये, अहो![1]

अनुपम गजराज से वियुक्त होकर, गहरे प्रेम के कारण विकल होनेवाली हथिनी के समान कौशल्या कहने लगी—हे राजन्! तुमने पूर्वकाल में एक अपूर्व रथ में बैठकर शंबरासुर के युद्ध में उसे निहत किया था। तुम्हारी कृपा से देवता लोग सुखी हुए थे। आज तुम स्वयं उन (देवों) के अतिथि बन गये।

वह कौशल्या, जिन्होंने राम को जन्म दिया था, जिससे देवता लोग भी श्रुति (अर्थात्, वेद) के सारभूत परमपुरुष के दर्शन कर सके, कहने लगी—हे राजन्! तुम क्या अपने पूर्व अनुष्ठित यज्ञों के फल भोगने के लिए गये हो? या सत्य का व्रत लेने से उत्पन्न निःश्रेयस् का अनुभव करने के लिए गये हो? या श्रेष्ठ मनु द्वारा प्रतिपादित धर्म मार्ग पर चलने से प्राप्त परमसुख का अनुभव करने के लिए गये हो?

जब चक्रवर्त्ती की पत्नियों में पट्टमहिषी कौशल्या इस प्रकार के वचन कह कहकर विलाप कर रही थी, उसी समय, उनकी सहेली जैसी सुमित्रा भी विकलता से रोती हुई बेसुध पड़ी रही। सारे अन्तःपुर में ऐसी दशा थी, जैसे युगान्त आ गया हो। आम के टिकोरे जैसे नयनोंवाली (दशरथ की) अन्य देवियाँ भी आकर एकत्र हो गईं और बड़ा कातर शब्द करके रो पड़ीं।

1. अन्तिम पंक्तियों में यह भाव ध्वनित हुआ है कि अपने पति को मारने की तुम्हारी इच्छा भी पूरी हो गई।

उन्होंने अपने प्राणों के साथी को मृत पड़े हुए देखा, तो वे भय के कारण विष पान किये हुए व्यक्ति के जैसे कंपित हो उठीं। उन्होंने अपने मन में ठान लिया कि निष्कलंक गुणवाले दशरथ का अनुसरण करके देवलोक में जाना ही उत्तम है। इसलिए, भय और व्याकुलता के उत्तरोत्तर बढ़ते रहने पर भी वे मूर्च्छित हो नहीं गिरीं (अर्थात्, दशरथ का सहगमन करने का दृढ़ निश्चय करके धीरता के साथ खड़ी रहीं) अहा! क्या प्रेम से भी बढ़कर कठोर वस्तु कुछ है?

कलंकहीन चन्द्र जैसे मुखवाली वे देवियाँ ऐसी खड़ी थीं कि समुद्र से आवृत धरती में, देव लोक में, उससे परे स्थित अन्य लोकों में भी पातिव्रत्य से युक्त स्त्रियों में इन देवियों से बढ़कर कोई नहीं थीं। अरण्य की किसी नदी की धारा से पर्वत के घिर जाने पर, उसके शिखर के अंचल पर एकत्र होनेवाले मयूरों के समूह के समान उन देवियों का समूह स्थिर खड़ा था।

अपने पुत्र से वियुक्त होकर तथा अत्यन्त पीडाजनक कटुवे वचनों से अपने प्राण त्यागकर भी अन्त तक सत्य पर दृढ़ रहनेवाले चक्रवर्त्ती की देह को वे स्त्रियाँ पकड़े हुए रो रही थीं। वे ऐसी थीं मानो मोहजनक माया रूपी मकरों से भरे जीवन रूपी समुद्र के पार (एक व्यक्ति को) पहुँचाकर लौटी हुई नौका में स्वयं भी जाने का प्रयत्न कर रही हों।

इस प्रकार जब साठ सहस्र देवियाँ रो रही थीं तथा निष्कलंक गुणवाली कौशल्या तथा सुमित्रा विकल हो मूर्च्छित पड़ी थीं, तब रत्नमय रथ का सारथ्य करनेवाले सुमंत्र ने जाकर मुनिवर (वसिष्ठ) को दशरथ की दशा का समाचार दिया। वे वंदनीय मुनि तुरन्त आये और विधि के विधान के बारे में सोचते हुए दुःख मग्न हो रहे।

मुनिवर यह सोचकर कि हमारे चक्रवर्त्ती वर देकर पुत्र से वियुक्त होने के दुःख से अब मुक्त हो गये, चिन्तित हुए। तरंगों से क्षुब्ध सागर में किसी नौका के टूट जाने और उस नौका के नायक के मर जाने पर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रहनेवाले पतवार चलानेवाले व्यक्ति के समान वे (किंकर्त्तव्यविमूढ़) हो रहे।

संस्कारादि क्रियाएँ सम्पन्न करने के लिए यहाँ कोई पुत्र नहीं है। जो घटित होना है, वह अवश्य घटित होगा ही। अब क्या किया जाय? यों विचार करके फिर यह निश्चय किया कि भ्रांति में पड़ी क्रूर कैकेयी के पुत्र (भरत) के आने पर सब अंतिम क्रियाएँ पूर्ण करेंगे और स्त्रियों के समुद्र मध्य पड़े दशरथ के शरीर को तेल के समुद्र में निमज्जित करके रखा।

राजा की पत्नियों को देखकर वसिष्ठ ने कहा—जिस दिन इन (चक्रवर्त्ती) के अंतिम संस्कार किये जायँगे, उस दिन इनकी देह का आलिंगन करके रक्तवर्ण अग्नि ज्वाला में अपने प्राण छोड़ना। यों उनको वहाँ से हटाकर दोनों पट्टमहिषियों (कौशल्या और सुमित्रा) को कलंकहीन प्रासाद में भेजा। फिर, संदेशवाहकों को यह कहकर कि 'शीतल पुष्पमालाओं से भूषित भरत को जाकर ले आओ', और यह लिखकर कि 'यह चक्रवर्त्ती की आज्ञा है'—भेज दिया।

व दूत केकय महाराज के सुन्दर नगर की ओर चल पड़े। अपूर्वज्ञान तथा तपस्या से संपन्न वसिष्ठ ने सेनापतियों में एक चतुर व्यक्ति को देखकर कहा कि तुम आवश्यक राज्य कार्य पूर्ण करो। फिर, अपने कुल धर्म के अनुष्ठान के योग्य स्थान में जा पहुँचे। अब हम उस प्रजा की दशा के संबंध में कहेंगे, जो राम के साथ (अरण्य में) जाकर निद्रामग्न हुई थी।

सहस्र उज्ज्वल किरणों से युक्त सूर्य, मानो यह कहता हुआ कि 'उत्तम गुणवान् पुत्र दशरथ स्वर्ग में पहुँच गया उनके (चारों) पुत्र नगर से बाहर कहीं रहते हैं, उन पुत्रों (भरत और शत्रुघ्न) के आने तक मैं ही इस नगर की रक्षा करूँगा'—प्रकाशमय रथ पर आरूढ़ होकर उज्ज्वल कर रूपी करवाल लिये हुए प्रकट हुआ। तब मत्स्यों से पूर्ण समुद्र ने नगाड़े बजाये। देवताओं ने स्तुति पाठ किया संसार के लोगों ने वन्दना की।

राम के पीछे पीछे आये हुए लोग, जो इस प्रकार दुःखी थे कि उतना दुःखी अन्य कोई नहीं हुआ था, बेसुध होकर निद्रा में डूबे थे और यह सोचकर कि उदारगुण (राम) वहाँ रहते हैं, उसी स्थान में ठहरे हुए थे, सब इस समय जग पड़े। फिर, करुणा से पूर्ण विशाल कमल सदृश नयनोंवाले घनश्याम राम को कहीं न देखकर विकल हुए और यह कहकर कि कभी न मंद होनेवाले हमारे नेत्रों ने आज मंद होकर हमें धोखा दिया, दुःखी होकर धरती पर लोट गये।

वे लोग राम का अन्वेषण करने के लिए आठों दिशाओं में दौड़ते, किन्तु मार्ग मध्य गिर पड़ते। यह कहते कि अहो! हमारे प्रभु हमें दुःख के समुद्र में निमज्जित करके चले गये। उन्होंने कितना क्रूर कार्य किया है। वह घना दंडकारण्य इसी धरती पर है, अपनी बुद्धि से हम उसे ढूँढ़कर पहचानेंगे। हम यों चुप पड़े नहीं रह सकते। हम उस वन की ओर गये हुए रथ के चक्रों के चिह्नों को पकड़कर आगे चलेंगे।

रथ के चक्रों के चिह्न को खोजते हुए जानेवाले लोगों ने रथ के चिह्नों को अयोध्यानगर की ओर लौटते हुए देखा। उससे उनके प्राण स्वस्थ हुए। वे सोचने लगे कि डरने की आवश्यकता नहीं। प्रभु अयोध्या पहुँच गये हैं। इस पर आनंदित होकर वे यों घोष कर उठे, जैसे वज्रयुक्त आकाश और समुद्र एकत्र होकर शब्द कर उठे हों।

उन नगरवासियों ने विचार किया—वसन्त के साथी मन्मथ के रूप गर्व को मिटानेवाले राम अयोध्या को लौट गये हैं। उनकी दशा इस प्रकार हुई, जैसे फुफकार करनेवाले सर्प के भयंकर वक्र दंत के दंश से (उनके शरीर में) बहे हुए विष को दूर करने का अपूर्व औषध, 'अमृत' उन्हें मिल गया हो और उससे उनके प्राण स्वस्थ हो गये हों।

ज्यों ज्यों वे मार्ग में बढ़ते जाते थे, त्यों त्यों उस रथ के चक्रों का ही चिह्न देखते थे। नगर से इतर अन्य किसी दिशा में उन चिह्नों को न देखकर वे उत्तरोत्तर बढ़नेवाले आनंद से भरकर अपने अयोध्यानगर में उसी प्रकार पुनः आ पहुँचे, जिस प्रकार समुद्र प्रलय काल में अपनी सीमा को पारकर संसार भर में बह चलता है और पुनः अपनी सीमा के अन्दर आ पहुँचता है।

नगर में पहुँचने पर उन लोगों ने सुना कि चक्रवर्ती स्वर्ग सिधार गये। यह समाचार भी सुना कि दशरथ के स्वर्गवास करने का कारण राम का वन गमन ही है। तब

उनके हृदय टुकडे टुकडे हो गये और वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े। उनके महान् शोक का वर्णन करना हमारी शक्ति के परे है। प्रत्येक व्यक्ति के प्राणों के निर्गमन के लिए एक समय निश्चित होता है। अतः, वैसा गभीर दुःख होने पर भी उनके प्राण शरीर को छोड़कर कैसे निकल सकते थे?

वे चक्रवर्ती की कुछ सेवा नहीं कर सके। वन को गये हुए राम के साथ रहकर उनकी कुछ सेवा नहीं कर सके। दुस्सह दुःख रूपी कारागार में बंदी होकर वे तड़प रहे थे, तब अपूर्व तपस्या से संपन्न वसिष्ठ मुनिवर ने उनको, यह कहकर कि मैं भी तो अपवाद से डरकर इन प्राणों को रखे हुए हूँ और इस शोक का अनुभव कर रहा हूँ, और कई प्रकार से समझाकर उन्हें शांत किया।

मुनिवर की आज्ञा से जलमध्य स्थित वडवाग्नि से डरकर वेला को न लाँघनेवाले समुद्र के समान, नगर के लोग दुःख सागर में निमग्न हो रहे। अब हम, उदारगुण पिता की आज्ञा, 'देवों के सुकृत' से, अर्धरात्रि में वन मार्ग पर चलनेवाले दृढ धनुर्धारी राम के कार्यों का वर्णन करेंगे। (१—८७)

●

अध्याय ६

गंगा पटल

'इनके शरीर का रंग अंजन सा है, या मरकत समान है, अथवा तरंगों से पूर्ण समुद्र जैसा है, या वर्षाकालिक मेघ समान है?' ऐसा सन्देह उत्पन्न करनेवाले अनुपम तथा अनश्वर सौंदर्य से युक्त रामचन्द्र, 'नहीं है' ऐसा कहने योग्य कटि से युक्त अपनी पत्नी तथा अपने अनुज के साथ इस प्रकार चले कि सूर्य की कांति उनके शरीर से फूटनेवाली किरणों में अदृश्य होने लगी।

भ्रमरकुल समान और अनुपम काली मिट्टी के समान घने केशोंवाली, क्षीरसागर में उत्पन्न अमृत जैसी मृदु मधुर बोलीवाली, पूर्ण तपस्या के समान व्यापारों से युक्त, आकाश (शून्य) जैसी कटिवाली सीता के साथ, वृषभ जैसी गतिवाले रामचन्द्र ने मस्त हंसों तथा हंसिनियों के विहार को देखा।

(मन्मथ के) पंच बाणों तथा राम के तीक्ष्ण बाण को भी परास्त करनेवाले तथा विष को जीतनेवाले नयनों से युक्त सीता ने देखा कि रामचन्द्र के चरण, रेखावाले मत्त भ्रमरों की गुंजार में भरे कमलपुष्पों का उपहास कर रहे हैं।

अत्यन्त सुगंध और मकरंद से भरे अलकों से युक्त चन्द्रखंड सदृश ललाटवाली (सीता) के साथ प्रवाल समान अधरवाले रामचन्द्र इस प्रकार चले, जैसे उज्ज्वल आभरणों से भूषित कोई मेघ, बिजली के साथ आ रहा हो या कोई मत्तगज, करिणी के साथ आ रहा हो।

छेदवाले वंशी की ध्वनि के समान, तन्त्रियों से युक्त वीणा के नाद के समान, पीले मधु के समान और इक्षु रस के खंड के समान माधुर्य से युक्त तोते की सी बोलीवाली सीता के नयनों के जैसे लगनेवाले और खेतों को निराने वाले किसानों के द्वारा खेतों से उखाड़कर फेंके गये कुवलय पुष्पों के पुंज को राम ने देखा।

इसके द्वारा ढोये जानेवाले ये कुड्मलों से युक्त दो स्वर्ण कलश हैं, अथवा मद भरे गज के दंत युगल हैं,' ऐसा संदेह उत्पन्न करनेवाले स्तन युगल से युक्त, मेघ समान केशोंवाली सीता, पर्वताकार कंधोंवाले राम के संग बड़े आनन्द से, दुःख का लेशमात्र भी अनुभव नहीं करती हुई और मार्ग में, ईख पेरनेवाले कोल्हुओं (इक्षु यंत्र) आदि को देखती हुई चली।

विविध शंखों से उत्पन्न मणियों से भरे, फैली हुई कमल लताओं से शोभायमान जलाशयों से भरे एवं हंसों के विश्राम स्थान बने हुए शीतल उद्यानों को, दोनों पार्श्वों में शंखकीटों से युक्त सैकत श्रेणियों को, विविध पुष्पों को बिखेरनेवाले वृक्षों से भरे वनों को तथा स्वर्ण को बहा लानेवाली नदियों को देखकर वे मन में आनन्दित होते हुए चले।

वहाँ के जलाशयों में, जहाँ बड़ी बड़ी भैंसें धान की बालियों को चबाते हुए ऐसी खड़ी रहती थीं कि (उन बालियों का) रस उनके मुँह से बहकर उनकी टाँगों पर से होकर नीचे की ओर बहता रहता था, जहाँ (जलाशयों में) 'शेल' और 'कयल' (नामक) मछलियाँ इस प्रकार ऊपर उछल पड़ती थीं कि मधु पूर्ण कमल पुष्पों में रहने वाले भ्रमर (भयभीत होकर) झट ऊपर उड़ जाते थे, जहाँ युवतियाँ लाल टाँगोंवाले मत्त राजहंसों के समान स्नान करती थीं, ऐसे सुन्दर दृश्यों से युक्त उस कौशल देश को पार करके वे तीनों आगे चले।

सूर्य के समान उज्ज्वल आभरणों से युक्त वे तीनों खेतों और वृक्षों से पूर्ण 'मरुदम प्रदेश' (उपजाऊ भूमि) पारकर, विशाल वीचियों से युक्त उस गंगा नदी पर जा पहुँचे जहाँ वेदों को जाननेवाले पाप रहित मुनि रहते थे।

गंगा नामक उस दिव्य नदी पर रहनेवाले सब तपोधन मुनि आनन्द से यह कहते हुए कि 'हमारी शरण तथा लक्ष्य भूत परमतत्त्व अब हमारे सम्मुख प्रकट हुआ है', सुन्दर नयनोंवाले रामचन्द्र के दर्शन के लिए जा पहुँचे।

वे मुनि चिन्तन करके कहने के लिए असाध्य माधुर्य से परिपूर्ण तथा स्वर रूप वेदों के द्वारा प्रतिपादित अमृत स्वरूपी (राम) को अपने चर्म चक्षुओं से देखकर इस प्रकार प्रसन्नचित्त हुए, जिस प्रकार उन (मुनियों) से भिन्न लोग (अर्थात्, सांसारिक व्यक्ति) स्त्रियों के पास इन्द्रिय सुख पाकर प्रसन्नचित्त होते हैं।

बाँस के दण्डों को धारण करनेवाले उन मुनियों ने उज्ज्वल कमल समान नेत्रोंवाले राम को, अपने नयन पुटों से, समुद्र में उत्पन्न दिव्य माधुर्य से युक्त अमृत जैसे पिया। आगे जाकर उनका स्वागत करके एवं मधुर गानों से उनकी स्तुति करके आनन्दित हुए।

घर से भागे हुए अपने पुत्र को ढूँढ ढूँढकर भी कहीं न पाकर दिन भर दुःखी रहनेवाले माता पिता अपने सम्मुख उस पुत्र के आ जाने पर जिस प्रकार आनन्दित

हात हैं, उमी प्रकार व मुनि (राम क दर्शन म) आनन्दित हुए और उन आनन्द क साथ अपनी तपस्या के योग्य आश्रमो म ले गय।

राम आदि के पथ श्रम का मिटाने क लिए उन मुनियो न अश्रु क नवीन जल म उन्हे स्नान कराया, अपन मधुर वचन रूपी घनी पुष्प मालाएँ पहनाई तथा उत्तर प्रेम रूपी भोजन कराया।

व मुनि अरण्य क स्वच्छ शाक, कद और फल ढूढकर ले आय और राम आदि स प्राथना की, ह उत्तम! ममीपस्थ गगा म स्नान करके, अग्निहोत्र[1] करके इन फलो का आहार करो।

राम ने स्त्री कुल क लिए दीपक ममान (सीता) देवी को अपन अरुण कर स पकडे हुए, देवो के द्वारा प्रशमित होत हुए, उम गगा नदी म स्नान किया, जो (गगा) पूर्वकाल म ब्रह्मदेव के द्वारा अपने कर म उत्पन्न जल से उन (राम) के (अथात् विष्णु क एक अवतार त्रिविक्रम क) चरण के धोने म बह चली थी।

कभी विनष्ट न हानवाली (गगा) नदी न, कर जाडकर (राम म) कहा—ममार के लोग मुझम स्नान करके अपने पाप दूर करत ह, आज म, मुझे उत्पन्न करने वाले तुम से (स्पश पाकर) मव पापो मे मुक्त हो गई।

कठोर नयनोवाले हाथी की मूँड जसी भुजावाले, जटा म बहनेवाले श्वेत गगाजल से युक्त, पातिव्रत्य से पूण दवी (मीता) के दखत हुए स्नान करनवाले वे (राम), विषधर मप को हाथ मे (आभरण बनाकर) धारण करनेवाले, पातिव्रत्य से पूर्ण दवी (पावती) के देखने हुए नृत्य करनेवाले, श्वत गगाधारा मे युक्त जटावाले तथा चन्द्रकला का शिर पर धारण करनवाले शिव के समान लगन थे।

हिलनेवाले जल से भरी गगा नदी की तरगो के मध्य व (राम) ऐसे लगत थ जैमे रजत ममान श्वेत वणवाले (विष्णु) क्षीर मागर म, लता जैमी कटिवाली कमलवामिनी (लक्ष्मी) के मग, शयन से उठकर खडे हुए हो।

अलक्तक (महावर) रस स अलकृत मृदु चरणोवाली, चित्र ममान सुन्दरी मीता न स्नान (के लिए जल म प्रवश) किया, ता उनकी कटि की सुन्दरता से परास्त हाकर 'वजि' नामक लता लज्जा स जल म अपना मुह छिपाने लगी। (उनकी) मन्द गति स हारकर राजहम दूर हट गये। उनक चरण जम लगनवाले कमल जल म अदृश्य हा गये। मीन वहाँ म हट गय।

महादेव क जटाजूट म रहकर भी जा गगा नदी 'आक', 'पुन्नाग आदि विविध पुष्पो की गध म युक्त नही हुइ थी, वह सुन्दर कशोवाली मीता देवी के कुतल म स्थित कस्तूरी गध तथा मद्योविकमित पुष्पो की गध स भर गई।

लहरो पर फेन के उठ उठकर हिलत रहन से, श्वत केशोवाली स्त्री के समान लगनेवाली गगा, (पातिव्रत्य धर्म म) प्रमिद्ध सीता को एकाकी देखकर स्वय धाई क समान अपने करो (अथात्, लहरो) का बढाकर उसे स्नान कराने लगी।

---

[1] औपासन होम करना गृहस्थ का नित्य कार्य कहा गया है।

सीता के दीर्घ केशपाश रूपी मेघ समुदाय खुलकर जल में इस प्रकार विस्पंदित हो रहे थे जैसे गंगानदी के मध्य काले रंगवाली यमुना नदी की धारा हो और उसमें अनेक भँवर दिखाई दे रहे हो।

भँवरों से युक्त, अनेक लहरों से भरी, शब्दायमान गंगा नदी की उस श्वेतधारा में, जहाँ उन (सीता) की आँखों के जैसे मीन उछल रहे थे, स्नान करके सीता देवी जब जल से बाहर निकली, तब वे क्षीर सागर में तत्काल (मथन काल में) प्रकट हुई लक्ष्मी सी लगती थी।

पूर्वकाल में गंगा नदी, विष्णु के अरुण कमल समान चरण का स्पर्श करने से, सब लोगों के पापों को दूर करने की शक्ति से युक्त होकर प्रकट हुई थी। अब प्रभु के सारे शरीर का स्पर्श करने से क्या यह संसार कभी नरक में जायगा? (भाव यह है, गंगा नदी में, राम के स्नान करने से ऐसी पवित्रता उत्पन्न हो गई कि अब संसार का कोई भी प्राणी नरक में नहीं जायगा।)

राम, उस पवित्र जल में स्नान करके मुनियों के आवास में पहुँचे। फिर, ज्ञानियों के ध्यान के विषयभूत परब्रह्म को नमस्कार करके प्रज्ज्वलित अग्नि में होम किया। फिर, उन मुनियों के प्रेम के योग्य अतिथि बनकर भोजन स्वीकार किया।

जिस विष्णु भगवान् ने बहुत कष्ट उठाकर अमृत उत्पन्न किया था और स्वयं उसे न पीकर देवों को दे दिया था, उसके अवतार राम ने, अब मुनियों के द्वारा दिये गये शाक कंद का भोजन स्वीकार किया। अहो! जिनका मन अत्यन्त शुद्ध है उनके कार्य कभी त्रुटिपूर्ण नहीं होते।

उस समय सहस्र नौकाओं का अधिपति, दीर्घकाल से पवित्र गंगा में नौका चलाते रहनेवाला, शत्रुध्वंसक धनुष का धारण करनेवाला, पर्वत के जैसे पुष्ट कंधोंवाला, गुह नामक निषाद,—

पटह वाद्य से युक्त, श्वानों को पालनेवाला, अपने बड़े बड़े पैरों में चमड़े के जूते पहननेवाला, घनीभूत अंधकार जैसे साकार हो गया हो—ऐसे रूपवाला, अपनी सेना के साथ इस प्रकार आया, जैसे जल भरा मेघ ही समूल उठकर चला आया हो।

उसकी सेना के लोग छोटे डंडे से दुंदुभी को बजा रहे थे। 'पब' नामक पटह वाद्य बजा रहे थे। वह पल्लव समान लाल रंगवाले शरों को धारण करनेवाला था। अनेक नौकाओं का स्वामी था। मदस्रावी गंडभागों से युक्त गज यूथ के समान परिवार से घिरा था।

कटि से जाँघों तक जाँघिया पहने हुआ था। गंगा की गहराई को जानने की महिमा से युक्त था। उसकी कटि से लाल रंग का चर्म लटक रहा था। वह कटि में लपेटी हुई व्याघ्र की पूँछ से शोभायमान था।

दाँतों की माला जैसी लगनेवाली छोटे छोटे उपलों की माला पहने था। उसके पैर ऐसे थे, जैसे पत्थरों के बने हों। उसके केश ऐसे थे, जैसे अंधकार को बाँधकर रखा गया हो। उसकी ऊपर की ओर कुंचित भौंहों पर धान से भरी बाली रखी हुई थी।

उसके हाथों पर, ताड़ के पेड़ों से लटकनेवाले मोटे रेशों के जैसे बड़े, घने और

सुन्दर केश बढ़े थे। उसका वक्ष विशाल शिला के समान था। उसका रंग तेल लगाये गये अंधकार के समान था।

उसकी कटि में, रक्त के चिह्नों से युक्त कटार थी। उसकी दृष्टि ऐसी भयंकर थी कि विषैला सर्प भी उसके आगे काँप जाय। वह उन्मत्त के जैसे असंबद्ध वचन बोलता था। उसकी कटि इन्द्र के वज्र के समान अत्यन्त दृढ़ थी।

शरीर को पुष्ट करनेवाले मांस और मछली खाने से उसके मुँह में दुर्गन्ध आ रही थी। उस (मुँह) पर हँसी नहीं थी। बिना क्रोध के भी उसके देखने पर (उसकी आँखों से) चिनगारियाँ निकलती थीं। उसकी कण्ठ ध्वनि यम को भी डरानेवाली थी।

तरंगों से भरे गंगा नदी के तट पर स्थित शृंगवेर नामक गाँव में उसका निवास था। ऐसा वह (गुह), आश्रम में ठहरे हुए उदार पुरुष (राम) के दर्शन करने के लिए मधु, मछली आदि उपहार लेकर आया।

अपने परिवार के लोगों को दूर पर खड़ा करके, खूब तपाये गये बाण से युक्त अपने धनुष को भी दूर रखकर, कटि में बँधे कटार को भी उतारकर निष्कलंक तथा प्रेमपूर्ण चित्त के साथ, वह राम के आवास भूत उस आश्रम के द्वार पर पहुँचा।

वह निषादों का राजा प्रेम से द्रवित हो वहाँ खड़ा रहा। फिर पुकारकर कहा—हे स्वामी! मैं, श्वान के समान क्षुद्र, आप का दास आप की सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।

गुह के यों कहने पर लक्ष्मण उसके निकट आये और उससे पूछा—तुम कौन हो? किस कार्य से आये हो? तब गुह ने प्रेम के साथ उन्हें नमस्कार करके कहा—हे देव! मैं श्वान समान दास नाव चलानेवाला हूँ। आप के चरणों का दर्शन करने के लिए आया हूँ।

तब लक्ष्मण गुह से वहीं ठहरने को कहकर अपने ज्येष्ठ भाई के पास पहुँचे और निवेदन किया—हे विजयशील! पवित्र चित्तवाला, माता से भी अधिक प्रेम से युक्त, वीची भरे गंगा में नाव चलानेवाला निषाद पति गुह, अपने बड़े परिवार के साथ आपके दर्शनार्थ आया है।

उदार (राम) ने आदेश दिया—उसे मेरे पास ले आओ। सद्गुणवाले लक्ष्मण ने जाकर गुह को वह आदेश सुनाया, तो गुह प्रेमाधिक्य से तुरन्त भीतर प्रविष्ट हुआ और सुन्दर नेत्रोंवाले राम के दर्शन कर नेत्र लाभ पाया, फिर काले केशों से युक्त अपने शिर पर कर जोड़कर, शरीर झुकाकर, नमस्कार करके, कर से अपना मुँह बंद किये खड़ा रहा।

राम ने गुह से कहा—बैठो। किन्तु गुह बैठा नहीं। असीम प्रेम से युक्त होकर उसने कहा—हे देव! आपके भोजन के लिए अत्युत्तम मधु और मछली लाया हूँ। आपका चित्त कैसा है? यह सुनकर वीर (राम) वृद्ध तपस्वियों की ओर देखकर मुस्कुराये[1] और फिर बोले—

[1] कवि ने मांसाहार की काफी निन्दा की है। रामचन्द्र भी, इस रचना में, मांसाहारी नहीं हैं। यही कारण है कि गुह के लाये भोजन को उसके प्रेम को और उसके भोलेपन को देखकर राम मुस्कराये।

ये वस्तुएँ मन में स्थित प्रेम के आधिक्य को प्रकट करनेवाली हैं और बड़े आदर के साथ लाई गई हैं। अतः दुर्लभ अमृत से भी ये अधिक उत्तम हैं। प्रेम से लाये जाने के कारण ये पवित्र हैं, अतः मुझ जैसों के लिए ये योग्य ही हैं। अब जैसे मैंने इन वस्तुओं को स्वीकार कर लिया है (तुम इनको स्वयं स्वीकार कर लौटाकर ले जा सकते हो)।

सिंह सदृश वीर राम ने पुनः कहा—आज यहाँ रहकर हम कल गंगा पार करेंगे। अतः तुम अपने परिवार के लोगों के साथ अपने नगर में जाकर सुख से वास करो और प्रभात के समय नौका लेकर गंगा तट पर आ जाओ।

मेघ के जैसे काले रंगवाले राम के यह कहने पर प्रेम भरे गुह ने निवेदन किया—हमारे संसार के स्वामी! आपको इस वेष में देखकर भी अभी तक मैं, चोर ने, अपनी इन आँखों को नोचकर फेंक नहीं दिया। अब आप को छोड़कर मैं अपने आवास में नहीं लौट सकता। हे प्रभु! अपनी शक्ति भर मैं आपकी सेवा करता रहूँगा।

विजयमाला से भूषित कोदंड धारी पुरुषोत्तम ने गुह की बात सुनकर अपने भाई और देवी सीता की ओर दृष्टि फेरी और कहा—यह अपार भक्तियुक्त है। और फिर करुणा पूर्ण मन से कहा—सबसे उत्तम स्नेह गुण से संपन्न हे मित्र! तुम यहाँ रहो।

तब गुह ने राम के चरणों को प्रणाम किया और उमड़नेवाले आनन्द के साथ, पटह वाद्यों से युक्त समुद्र के समान अपनी सेना को बुलाकर रामचन्द्र के आवास के चारों ओर रहकर उसकी रक्षा करने की आज्ञा दी और वह स्वयं हाथ में धनुष लेकर और उसपर शर को भी चढ़ाकर, कटार को अपनी कटि के वस्त्र में खोंसकर, गरजते मेघ के समान (ध्वनि के साथ) राम के चरणों की स्तुति करता हुआ खड़ा रहा।

गुह ने लक्ष्मण से प्रश्न किया—हे मनुकुल में उत्पन्न! सुन्दर अयोध्या नगर को छोड़कर यहाँ आने का कारण बताओ। तब राम के वनवास से दुःखी लक्ष्मण ने सब वृत्तांत कह सुनाया। (राम की) भक्ति से पूर्ण गुह ने अत्यंत दुःखी होकर कहा—विशाल पृथ्वी ने, तपस्या से संपन्न होकर भी, (तप के) फल को प्राप्त नहीं किया। यह कैसा अनर्थ है? और अपनी आँखों से अश्रु बहाता हुआ खड़ा रहा।

जिन्होंने अंधकार के जैसे सर्वत्र फैले हुए शत्रुओं को पराजित करके भगाया, सब दिशाओं में अपना अधिकार स्थापित किया, अत्युन्नत स्थान में रहकर अनुपम आज्ञा चक्र चलाया, श्रेष्ठ कीर्त्ति को स्थापित किया, अपने शासन काल में इस विशाल संसार के सब[1] लोगों के मन में रहकर सब पर कृपा की, और अब जो मृत हो गये हैं, उस युद्धवीर दशरथ के समान ही अरुण किरणवाला सूर्य भी अस्त हो गया।

संध्याकालीन नित्य कृत्यों को यथाविधि समाप्त करके वीर (रामचन्द्र) और क्षीर समुद्र में उत्पन्न अमृत समान (सीता) देवी ने धरती पर बिछाई गई 'नाणल' घास की बनी चटाई पर विश्राम किया, कनिष्ठ (लक्ष्मण) दृढ़ धनुष हाथ में लिये, प्रभात होने तक अपलक खड़े रहकर पहरा देते रहे।

१ इस पद में प्रयुक्त 'सब' विशेषण दशरथ और सूर्य—दोनों के लिए समान है।

जिन (लक्ष्मण) की देह कांति सूर्य की किरणों में आवृत मेरु की स्वर्णमय आभा को मात करनेवाली थी, जो जगमगाते हीरकों के आभरण पहनने योग्य थे, और जो सिंह के सदृश (बलवान्) थे, ऐसे लक्ष्मण ने, निद्रा नामक सुन्दरी के उनके सम्मुख प्रकट होने पर उससे कहा—जब हम सुन्दर प्राचीरों से घिरी अयोध्या में लौटकर जायेंगे तब तुम मेरे पास आना। (तबतक तुम मेरे पास मत आना)।

वीरता के आगार, करवाल धारी लक्ष्मण की आज्ञा का उल्लंघन न कर सकने के कारण निद्रा देवी लक्ष्मण के चरणों को प्रणाम करके और यह कहकर कि जब तुम प्राचीरों से घिरी स्वर्ग लोक जैसी अयोध्या में आओगे, तब मैं तुम्हारे चरणों के आश्रय में आऊँगी वहाँ से चली गई।

निद्रादेवी के यों प्रणाम करके चले जाने के पश्चात् लक्ष्मण, अपने प्रभु को निरंतर उत्तम कमल के आसन पर रहनेवाली लक्ष्मी (के अवतार सीता) के साथ उस प्रकार (भूमि पर) शयन करते हुए देखकर, उनकी दुःखद दशा पर अत्यन्त शोकाकुल हुए। उनका मन टूट सा गया। उनकी आँखों से अश्रुओं के निर्झर बह चले। वे दुःख से भरी प्रतिमा सदृश एक शिला पर निष्पन्द हो खड़े रहे।

पिछले दिन जन्म रहित सूर्य मानो यह सूचित करते हुए अस्त हुआ था कि 'असंख्य जन्म लेते रहनेवाले ये जीव, पवित्र दिखाई पड़नेवाले स्वर्ग आदि (विनश्वर) लोकों को भूल जायँ और (मोक्ष के एक मार्ग को) सोचकर जान लें और उस पर चलें, क्योंकि उनके मर जाने का यही ढंग है।' वही सूर्य मानो यह सूचित करते हुए अब उदित हुआ कि ये जीव ऐसे ही जन्म लेते हैं।

कीचड़ में उत्पन्न होनेवाले अति सुन्दर कमल पुष्प, रथारूढ होकर प्रकट हुए उष्ण किरणधन सूर्य के मंडल के दर्शन से प्रफुल्ल हुए। विलक्षण अंजन वर्ण सूर्य जैसे प्रभु (राम) को देखकर सुन्दर 'वंजि' लता जैसी सीता का मनोहर मुख कमल प्रफुल्ल हुआ।

राम, प्रभातकालीन नित्य कृत्य समाप्त करके शत्रुओं के लिए भयंकर अपने कन्धे पर धनुष को रखे हुए, वेदज्ञ मुनियों से अनुसृत होते हुए (आश्रम से) चल पड़े और प्रथम दर्शन में ही भक्ति से दास्य स्वीकार करनेवाले गुह को देखकर कहा—हे तात! हमको पार उतारने के लिए एक अच्छी नौका शीघ्र लाओ।

आज्ञा के यह वचन सुनकर गुह के नेत्रों से अश्रु बह चले, उसके प्राण व्याकुल हो गये, राम के चरणों से वियुक्त होने की इच्छा न होने से वह, सीता देवी के साथ शोभित होनेवाले नील कुवलय, अतसी पुष्प, समुद्र और सजल मेघ—इनकी समता करनेवाले राम के चरणों को नमस्कार करके यों कहने लगा—

हम कभी असत्य मार्ग पर चलनेवाले नहीं हैं। हमारा निवासस्थान वन ही है। हम अक्षुण्ण बल से युक्त हैं। आपकी आज्ञाओं का हम यथाविधि पालन करते रहेंगे। इसलिए सुन्दर पुष्पमालाधारी हे प्रभु! हम, दासों को आप अपने बन्धुजन समझें और हमारे ग्राम में चलकर चिरकाल तक सुख से रहें।

हमारे यहाँ मधु प्रभूत मात्रा में होता है, धान बहुत होता है, देवों के भी आहार

के योग्य मास है। हम श्वान के जैसे आपके सेवक हैं। हमारे प्राण आपकी सेवा में निरत हैं। आपके विहार के लिए वन है। स्नान के लिए गंगा भी है। अत, जबतक मैं यहाँ रहूँगा, तबतक आप भी आनन्द से हमारे संग रहें हमारे यहाँ पधारें।

पहनने के लिए रेशमी जैसे चर्म वस्त्र हैं, विविध रस के भोज्य पदार्थ हैं। शृङ्खलाओं में लटकाये गये निद्रा करने के योग्य पर्यंक के जैसे तख्त हैं। निवास के योग्य छोटे छोटे कुटीर हैं। शीघ्रगामी (हमारे) चरण हैं और (विघ्न डालनेवालों को मारने वाले) धनुर्धारी हमारे कर हैं। आप यदि शब्दधर्मा आकाश में स्थित किसी वस्तु को भी चाहेंगे, तो हम शीघ्र उसे ला देंगे।

आपकी आज्ञा का पालन करनेवाले पाँच सौ निषाद हैं। वे देवों से भी अधिक शक्तिशाली हैं। यदि आप एक दिन भी हमारे झोंपड़े में ठहरेंगे, तो उससे हम तर जायँगे। उससे उत्तम कोई दूसरा जीवन हमारे लिए नहीं होगा—यों गुह ने निवेदन किया।

तब गुह की प्रार्थना सुनकर महिमामय प्रभु ने अपने मन को कृपा से भरकर, उज्ज्वल मंदहास करके कहा—हे वीर! हम गंगा में स्नान करके, वन में रहनेवाले महात्माओं की सेवा में रहकर कुछ ही दिनों में पुन तुम्हारे आवास में आनन्द के साथ आ पहुँचेंगे।

इंगित को जाननेवाला गुह, शीघ्र जाकर एक दीर्घ नौका ले आया। कमल समान नयनोंवाले राम ने निकट स्थित वेदज्ञ ब्राह्मणों को देखकर कहा—मुझे आज्ञा दें। फिर, अर्धचन्द्र सदृश ललाटवाली (सीता) एवं अपने अनुज के साथ उस नौका पर आरूढ हुए।

शरीर के प्राण जैसे (राम) ने आज्ञा दी—नदी में नौका को शीघ्रता से चलाओ। दीर्घ वीचियों से पूर्ण नदी में वह दीर्घ नौका बाल हंस की गति से शीघ्र चलने लगी। तब तट पर स्थित वेदज्ञ मुनि अग्नि में पड़े मोम के जैसे पिघल उठे।

दुग्ध सदृश मीठी बोलीवाली सीता और सूर्य समान रामचन्द्र, 'शैल' (नामक) मछलियों से पूर्ण गंगा के अति पवित्र जल को उछाल उछालकर खेल रहे थे। दीर्घ डाँडों से खेई जानेवाली वह नौका अनेक टाँगोंवाले एक बड़े केकड़े के समान शीघ्रता से चली जा रही थी।

चंदन (वृक्षों) से युक्त सैकत श्रेणी रूपी विशाल स्तनोंवाली गंगा नदी ने, उज्ज्वल रत्न समुदाय से युक्त और सुगंधित कमलपुष्पों की अरुण आभा से शोभायमान, स्वच्छ तरंग रूपी अपने हाथों में, अकेले ही उस नौका को उठाकर मंद मंद (गति से) दूसरे तट पर पहुँचा दिया।

उस किनारे पर पहुँचकर प्रभु ने अपने मित्र (गुह) से पूछा—चित्रकूट को जाने का मार्ग कौन सा है, बताओ। तब भक्ति से अपने प्राण भी देने के लिए सन्नद्ध उस गुह ने (राम के) चरणों पर नत होकर कहा हे उत्तम! श्वान तुल्य इस दास का एक निवेदन है।

श्वान तुल्य मैं, यदि आपके संग चलने का भाग्य प्राप्त करूँ, तो वन में आपके चलने के लिए मार्ग बनाऊँगा। अति उत्तम फल और मधु ढूँढकर ला दूँगा। आपके

निवास के योग्य स्थान बनाऊँगा। एक क्षण भी आप को छोड़कर पृथक् नहीं रहूँगा।

(आपके आश्रम के) चारों ओर क्रूर व्याघ्रों को ढूँढ़ ढूँढ़कर मिटा दूँगा और अति पवित्र प्राणियों के आवासभूत वन को ढूँढ़कर वहाँ आप को पहुँचा दूँगा। आपकी ईप्सित वस्तुएँ ढूँढ़कर ला दूँगा। मैं आपकी किसी भी आज्ञा को पूर्ण करने की शक्ति रखता हूँ। मैं रात्रि काल में भी मार्ग में चल सकता हूँ।

मैं 'कवले' आदि कंदों को पर्वतों पर से खोदकर ला दूँगा। प्राणों के आधारभूत स्वच्छ जल, चाहे कितनी भी दूर हो, वहाँ जाकर ला दूँगा। धनुष आदि अनेक शस्त्र मेरे पास हैं। मैं किसी से डरता नहीं हूँ। हे मल्लयुद्ध में चतुर कंधोंवाले! आपके कमल तुल्य चरणों से मैं कभी अलग नहीं होऊँगा।

हे अनुपम सुन्दर वक्षवाले! यदि आप स्वीकार करेंगे, तो मैं अपनी सेना के साथ आपके साथ रहूँगा और कभी आप से पृथक् नहीं होऊँगा। यदि मेरे लिए असाध्य कोई शत्रु होगा, तो पहले मैं उसके साथ युद्ध करके अपने प्राण त्याग दूँगा और (अपने ऊपर) अपवाद नहीं आने दूँगा, आप आज्ञा दें कि मैं भी आपके साथ चलूँ।

गुह के वचन सुनकर निर्मल रूप प्रभु ने उत्तर दिया—तुम मेरे प्राण तुल्य हो। मेरा अनुज तुम्हारा अनुज है। सुन्दर ललाटवाली यह (सीता) तुम्हारी भाभी है। शीतल समुद्र से घिरी सारी धरती तुम्हारी संपत्ति है, मैं तुम्हारी सेवा के अधिकार (स्वत्व) में बँधा हुआ हूँ।

जब दुःख हो, तभी सुख होता है। अतः, यह सोचकर कि 'मैं (गुह), तुमको (राम को) कभी भविष्य में देखूँगा, किन्तु इस बीच दारुण वियोग दुःख को भोगना पड़ेगा' दुःखी मत होओ। (तुमसे मिलने के) पहले हम चार भाई थे। अब, अंतहीन प्रेम से युक्त हम पाँच भाई हो गये हैं।

हे उज्ज्वल तीक्ष्ण भाले को धारण करनेवाले! जबतक मैं वन में निवास करूँगा, तबतक तुम्हारा भाई यह लक्ष्मण मेरे कष्टों का भार वहन करने के लिए मेरे साथ रहेगा। मुझे दुःख देनेवाले शत्रु कहाँ हैं? तुम जाओ और मेरे जैसे ही (अपने आश्रित जनों की) रक्षा में निरत रहो। जब मैं उत्तर की ओर लौटकर आऊँगा, तब तुम्हारे आवास में आकर ठहरूँगा। अपने दिये वचन से मैं कभी विमुख नहीं होऊँगा।

तुम्हारा भाई भरत, अयोध्या की प्रजा की रक्षा करने के योग्य गुणों से सम्पन्न है। यहाँ के बंधुओं की रक्षा करनेवाला (तुम्हारे सिवा) कौन है? इसलिए तुम जाओ, तुम्हारे बन्धु मेरे बन्धु हैं, वे लोग दुःखी होंगे। मेरी आज्ञा से यहाँ के मेरे बन्धुओं की रक्षा करते हुए तुम यहाँ रहो। इस प्रकार राम ने कहा।

तब गुह, राम की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकने तथा (राम से) वियोग के दुःख को भी दूर नहीं कर पाने के कारण व्याधि ग्रस्त सा दिखाई पड़ा और विदा हुआ। प्रभु, अपने अनुज एवं आभरण भूषित देवी के साथ घने वृक्षों से भरे वन में दूर तक जानेवाले मार्ग पर चल पड़े। (१—७७)

●

अध्याय ७

वन-प्रवेश पटल

जिन वारनारियो की सगति को क्षुद्र जन प्राप्त करना चाहते है, उनके मन के जैसे ही, 'यह आर्द्र है या नही' ऐसा निश्चय करने के लिए असाध्य वसन्त ऋतु, रामचन्द्र के वन मे आते ही, आकाश मे सर्वत्र जल भरे मेघो को दिखाने लगी ।

सूर्य अपनी किरण, चन्द्रिका के जैसे (शीतल) बनाकर फैला रहा था। वहाँ के घन वृक्ष छाया दे रहे थे। आकाश के बादल आमकण जैसी बूँदो की वर्षा कर रहे थे। मद अनिल पुष्पो की गध लेकर मृदु गति से बह रहा था। ऐसे समय मे वे तीनो, मोरो के नृत्य को देखते हुए वन मार्ग मे प्रसन्नता के साथ चले ।

तब रामचन्द्र सीता को वन के विविध दृश्य दिखाने लगे। हे सुगाधत पुष्पमाला धारण करनेवाली ! कलापी तुल्य ! योवनपूर्ण हरिण के समान दृष्टि से शोभायमान ! (देखो) मधुर निद्रा करनेवाले इन्द्रगोप सर्वत्र फैले हुए है और कनैल के स्वर्णवर्ण पुष्पो की राशियाँ पडी हैं। इन सबका दृश्य ऐसा ही है, जैसे अनेक रत्नजटित स्वर्णहार पडे हो ।

भ्रमरो के गान और मेघ रूपी मर्दल वाद्य के साथ अपने पख फैलाकर मनोहर नृत्य दिखानेवाले, लजीले से ये मयूर, जैसे तुम्हारे सोदर्य को अनेक नेत्रो से देखकर आनन्दित हो रहे हैं ।

सुन्दर आम्र पल्लव के समान शरीर काति से युक्त, हे सुन्दरी ! मनोहर आभा से युक्त रक्तवर्ण मुख और हरित देह काति से शोभायमान शुक, लावण्यपूर्ण 'कादल' पुष्प पर बैठे हुए ऐसे लगते है, जैसे तुम्हारे हाथ पर बैठे हो, ऐसे शुको को देखो ।

तैल लगे दीर्घ बरछे के जैसे तथा हथेली के विस्तार से भी बडे नयनो मे शोभायमान, हे देवी ! अनेक मयूर और योवन से युक्त हरिण, तुम्हारी देह की सुषमा को देखकर और अपने ही कुल का व्यक्ति समझकर तुम्हारे निकट आते है, देखो ।

सुन्दर 'कुरा' पुष्पो एव उनके आस पास फैले हुए 'पिडवु' वृक्ष के पुष्पो की राशियो मे सोकर उठनेवाले एक मयूर की देह गध को पाकर उसकी मयूरी यह सोचकर कि उसने अन्य किसी मयूरी की सगति की है, उससे रूठ गई है, यह दृश्य भी देखो ।

हे अरुधती के समान (पतिव्रते)! अमृत से भी अधिक मनोहर ! अशोक पुष्पो पर 'शेरुन्दि' के स्वर्ण के रगवाले पुष्प पडे है और उनपर भ्रमर कुल मस्त हो रहते है। यह दृश्य ऐसा लगता है, जैसे सोने के टुकडो पर कोयले डालकर (नाली से) हवा फूँकी जा रही हो और उससे अग्नि की ज्वाला ऊपर उठ रही हो, यह दृश्य भी देखो ।

हे उभरे हुए स्तनोवाली ! चित्र के लिए असाध्य सादर्यवाली ! देखो, एक मयूर 'कादल' पुष्प की कली का ध्यान से देखकर उसे कोई सर्प समझ लेता है और उसे अपनी चोच से उठा लेता है, यह दृश्य देखकर मधु पूर्ण कुदपुष्प हँस पडते हैं ।

पर्वत पर निवास करनेवाला व्याघ्र शावक, घने अधकार जैसे हाथी के बच्चे और गाय के बछडे, अपना सहज वैर छोडकर एक साथ खेल रहे है, यह दृश्य देखो ।

हे अगरु के धूम से सुवासित केशोंवाली! जलाशयों के तट पर अलंकार के योग्य आभरण जैसे पुष्पों से लदे हुए पौधे (हवा के झोंके से) श्वेत रेशमी वस्त्र जैसे जल में निमग्न होते हुए ऐसा दृश्य उपस्थित करते हैं जैसे मृदु स्तनोंवाली युवतियाँ ही स्नान कर रही हों।

हे धनुष समान सुन्दर भृकुटिवाली! भ्रमर बालक, बढ़े हुए पुष्पों में छेद करके उनके भीतर जाने का प्रयत्न न करते हुए 'कागु' वृक्ष के चारों ओर स्थित पुष्पों पर चटकर सो रहे हों वे ऐसे लगते हैं जैसे स्वर्ण के फलकों पर जड़े नील रत्न हों; यह दृश्य भी देखो।

अपने मुँह में अधिक मधु को भर लेने के कारण आँख खोलकर नहीं देख सकने से, शीघ्र जाने का मार्ग नहीं देख पाते हुए, अंधे के जैसे हिलते डुलते हुए जानेवाले नटे भ्रमर आगे आगे जानेवाली भ्रमरियों को ही अपना नेत्र बनाकर जा रहे हैं।

हे हंस तुल्य मृदु गतिवाली! स्वर्णमय पुष्पों से लदी 'वेंगै' वृक्ष की अनेक शाखाएँ, कन्याओं के शृंगार करने की रीति का अभ्यास सी करती हुई, तुम्हारे अलक से शोभायमान ललाट के ऊपर अपने नव मृदुल पुष्पों को लगा रही हैं, मानो वे (अपने पुष्पों को) बरसा रही हों।

हे अप्सराओं से भी अधिक सुन्दरी! सुगंधित मंद मारुत के बहने से पुष्प पत्रों का मकरंद पत्थरों से भरे कानन में इस प्रकार बिखरा पड़ा है, जिस प्रकार तुम्हारे मुक्ताहार से शोभित स्तन तटों पर दाग[1] फैले रहते हैं।

इन घने वृक्षों ने, मानो यह सोचकर कि तुम्हारे मृदुल चरण पत्थरों पर चलने के अभ्यस्त नहीं हैं, मार्ग भर में पुष्पों को बिखेर रखा है, देखो। हे कोकिल समान मधुर भाषिणी! अपनी शाखाओं में सुगंधित पुष्पों से भरी हुई लताएँ तुम्हारी डमरू सदृश कटि की समता नहीं कर सकती।

हे करवाल सदृश नयनोंवाली! तुम्हारे कमल सदृश चरणों तथा तुम्हारे चरण तुल्य पल्लवों पर मँडरानेवाले इन भ्रमरों को देखो। सर्वत्र अंधकार फैलानेवाले तुम्हारे सुगंधित केशों के समान इन मेघों को देखो। तुम्हारे कंधों के समान इन कोमल बाँसों को देखो।

हरिणों, मयूरों तथा कोकिलों के संचरण से युक्त वह वन, विविध पुष्पों से भरी शाखाओं से पूर्ण है। यत्र तत्र पक्षिगण हैं। विविध लताएँ सुन्दर ढंग से फैली हैं। अग्नि के वर्ण (के पल्लवों) से युक्त है। अतः, यह वन विविध चित्रकारी से युक्त यवनिका के समान दिखाई पड़ता है।

स्वर्ण आभरणों से भूषित पुष्ट कंधोंवाले राम, यौवन से परिपूर्ण सीता से ये वचन कहते हुए, मधुर विहार से करते हुए वन मार्ग पर चले जा रहे थे। तब सूर्य पश्चिम दिशा में जा पहुँचा। तब दूर से चित्रकूट पर्वत को देखकर राम कह उठे, दोनों कर्मों को जीतने वाले मुनियों का निवासभूत पर्वत यही है।

[1] यौवनवती नारियों के स्तनों पर कुछ दाग-से फैले रहते हैं, जिनको तमिल में 'तेमल' कहते हैं। तमिल के प्राचीन साहित्य में यत्र तत्र इसका वर्णन हुआ है।—अनु०

उस समय, प्रेम की उमग स युक्त भरद्वाज मुनि यह समझकर कि चिरकाल स की गइ अपनी तपस्या आज फलीभूत हो रही है, जन्म व्याधि के लिए औषध समान राम का स्वागत करन क लिए सम्मुख आये।

व (भरद्वाज मुनि) छत्रधारी थ। दीर्घ दडधारी थे। कमडलु स युक्त थ। अधिक जटा स शोभायमान थ। मनोहर वल्कल वस्त्र पहने थे। माग पर इस प्रकार चलत थ कि उनक कारण अन्य प्राणियो को कुछ कष्ट न हो। उनकी जिह्वा पर चारो वद नर्त्तन करत थे।

प्रतिदिन रक्तवर्ण अग्नि को प्रज्ज्वलित करनेवाले थ। चतुर्मुख क द्वारा सृष्ट सब प्राणियो को अपने प्राणो क समान सुरक्षित करनेवाली शीतल करुणा से परिपूर्ण थे। व ऐसी महिमा से सपन्न थ कि विष्णु क नाभि कमल से उत्पन्न न होन पर भी सप्त लोको की सृष्टि कर सकत थे।

उस महर्षि के आने पर अनघ (रामचन्द्र) न पुष्पो का अर्घ्य दकर तीन बार उनको प्रणाम किया। उन उत्तम महर्षि न राम को गले से लगाकर कहा—हाय! तुमको यह (मुनि का) वेष धारण करना पडा और मन म पीडित होकर नेत्रो से आँसू बहान लगे।

फिर मुनिवर न राम से पूछा—शत्रुओं के विनाशक ह वीर! इस अवस्था मे ही तुम सारे ससार का शासन करने की क्षमता रखते हो। ऐसे काय को छोडकर हम जैस मुनियो क आवासभूत वन म अपन लिए अनुपयुक्त वेष धारण करक, अनुज सहित आये हो। इसका क्या कारण ह ?

फिर, राम के द्वारा सारा वृत्तान्त कह जान पर उन उत्तम तपस्वी न अत्यन्त दु खी होकर कहा—अहा! इस अवस्था म ऐसा घटित हुआ यह विधि का दुष्कृत्य है। इस विशाल धरती का दुर्भाग्य हे (कि तुम राजा नही बने)।

मेरे मित्र (दशरथ) ने पहले यह कहकर कि अरुण मुखवाली तथा मधुरभाषिणी सीता क साथ तुम जल पूर्ण समुद्र से आवृत इस धरती का शासन करो, पुन किस प्रकार तुम्हारे जैस अपने अनुपम पुत्र को अरण्य मे जाने को आज्ञा दी और यो आज्ञा देकर व कैसे जीवित रह सके ?

'सुख और दु ख दोनो परिवर्त्तनशील होत रहते ह'—यह नियति ह। इनके कारण हमारे पूर्वजन्मकृत पुण्य पाप होते ह। अत, अब मेरे दु खी होने से कुछ लाभ नही है।—यो विचार कर व (भरद्वाज महर्षि) शात हुए और पुन राम का आलिंगन कर उन्हे अपने आवास म ले चले।

उन पवित्र मुनिवर ने अपने आश्रम म जाकर उनका यथोचित सत्कार किया। उत्तम फल और कद भोजन क लिए दिये और मधुर वचन कह। यो अपने प्राण सदृश पुत्र जैसे उन (राम, लक्ष्मण और सीता) के प्रति प्रेम दिखाया, जिससे व तीनो बहुत आनदित हुए।

वे तीनो उस आश्रम म सुख से रह। तब भरद्वाज महर्षि न यह सोचकर कि इन रामचन्द्र के सग रहने से मै तर जाऊँगा, सब प्रकार से सत्कार करके फिर प्रभु के मुख

की ओर देखकर कहा—हे उत्तम पुष्प माला से भूषित वक्षवाले ! मुझे एक बात कहनी है—

यह स्थान जल, पुष्प, कंद और फल से समृद्ध है। यहाँ रहने से पूर्वकृत पाप भी कट जाते हैं और पुण्य बढ़ता है। अत, हम लोगों के साथ तुमलोग भी यहीं रहो। श्रेष्ठ तपस्या करनेवालों के लिए इस स्थान से बढ़कर अन्य कोई उत्तम स्थान नहीं है।

यहाँ गंगा नदी के साथ काली (यमुना) नदी और सरस्वती का संगम है। अतएव, मैं इस स्थान को छोड़कर और कहीं नहीं जाता हूँ। कमल तुल्य नयनोंवाले (हे राम)! यह ब्रह्मा के लिए भी दुर्लभ तीर्थस्थान है। हम जैसे लोगों के लिए यह सुलभतया प्राप्त होनेवाला नहीं है। इस स्थान पर तुम रहो।

महान् तपस्या से संपन्न भरद्वाज ने प्रेम से इस प्रकार कहा। तब राम ने उत्तर दिया—हे उदारचित्त ! यह स्थान जल संपन्न कोशल देश से बहुत दूर नहीं है। यदि मैं इस स्थान में रहूँगा, तो कोशल देश के लोग यहाँ आयेंगे।

तब भरद्वाज महर्षि ने कहा—हे तात ! तुम्हारा कथन सत्य ही है। यहाँ से एक खात (खात=दस मील) दूर चलने पर देवताओं के लिए भी वन्द्य चित्रकूट पर्वत है। वह स्वर्ग से भी अधिक सुखदायक है। वहाँ जाकर तुम सुख से निवास करो।

राम आदि तीनों व्यक्ति प्रेमपूर्वक इस प्रकार कहनेवाले भरद्वाज के चरणों को नमस्कार करके, 'कौन्रै' (वृक्षविशेष) के बाज तथा बाँसुरी बजानेवाले ग्वालों के निवास भूत मुल्ल' प्रदेश (अरण्य प्रदेश) को पार करके चले और जब अरुण किरण (सूर्य) उदयाचल से चलकर आकाश के मध्य में पहुँचा, तब उस यमुना नदी के निकट जा पहुँचे, जहाँ हरिण शावक जल पिया करते थे।

धूलि से धूसर शरीरवाले वे तीनों उस (यमुना) नदी को देखकर प्रसन्नचित्त हुए और उसको नमस्कार करके उसमें स्नान करने का कर्त्तव्य पूरा किया। फिर, मधुर स्वादवाले कंद और फल का आहार किया और उस नदी का जल पिया। तब राम ने कहा—इस नदी के पार हम कैसे जायें ? तब लक्ष्मण ने—

झुकनेवाले बाँसों को काटकर मण' (नामक एक) लता से उनको बाँधकर एक नाव बनाई। उस पर पर्वत समान पुष्ट कंधोंवाले राम अपनी देवी सहित आसीन हुए। लक्ष्मण दोनों हाथों से उस नाव को ढकेलते हुई तैरकर उस बड़ी नदी के पार पहुँचे।

जहाँ गन्ने के कोल्हुओं से इक्षु रस का प्रवाह बहकर खेतों को सींचता रहता है, उक अयोध्या के प्रभु राम के अनुज ने अपनी मंदरपर्वत-समान, पुष्प भूषित दोनों भुजाओं से, बारी बारी से यमुना जल को ढकेलना आरंभ किया। तब जल आगे बढ़कर उदयाचल के निकटस्थ पूर्वी समुद्र को भी पार कर चला और पीछे की ओर बटा हुआ जल पश्चिमी समुद्र में जा पहुँचा।

सुन्दर वल्कल धारण किये हुए वे तीनों उस यमुना धारा को पार कर दूसरे तट पर पहुँचे और कुछ दूर चलकर एक ऐसे उजड़े हुए मरु प्रदेश के निकट पहुँचे, जहाँ वृक्षों की शाखा, कंद और मूल, झुलस गये थे। जहाँ की धरती अग्नि के समान जल रही थी और जो उसका स्मरण करनेवाले के मन को भी झुलसा देती थी।

प्रभु ने सोचा—जानकी में इस मरुप्रदेश को पार करने का सामर्थ्य नहीं है। तुरत ही सूर्य, चन्द्र के समान शीतल किरणें फैलने लगा। उष्णता से झुलसे हुए वृक्ष पल्लवों से भर गये। दारुण अग्नि से पूर्ण प्रदेश में कमल वन छा गये।

भूने हुए बीज जैसे उपल खंड, बिखेरे गये पुष्पों के समान मृदु और शीतल हो गये। छिन्न तथा जली हुई लताएँ कोमल पल्लव निकालने लगीं। वहाँ के फुफकार करनेवाले विषधर सर्प, उनके विष दंतों में अमृत प्रकट हो जाने से, अत्यन्त आनन्दित हो उठे।

मेघ उमड़ घुमड़कर गरज उठे और शीतल जल बिन्दु बरसाने लगे। तीक्ष्ण शर लिये हुए व्याध लोग भी प्राणियों पर मुनियों के समान ही दया दिखाने लगे। बाघिनें भूख से हीन हो गईं और सम्मुख आनेवाले प्राणियों का आलिंगन करने लगीं। हरिण शावक उनके थनों से दूध पीने लगे।

शिलाओं के बिलों में रहनेवाले दारुण विषधर सर्प अब पीड़ा मुक्त होकर ऐसे शान्त हो रहे, जैसे वे तरंगायित शीतल जल में पड़े हों, वहाँ के वनों के बाँस जो पहले जल उठते थे, अब मुक्ता समान दाँतोंवाली नवयुवतियों के कंधों के जैसे ही सुन्दर दिखाई देने लगे।

हरित कंबल के समान हरियाली बिछ गई। स्थान स्थान पर मयूर पंख फैलाकर युवतियों के समान नृत्य भंगियाँ दिखाने लगे। उनके पार्श्वों में भ्रमर गवैयों के समान नृत्य के अनुकूल संगीत गाने लगे।

अकाल में भी पेड़ों में फल लग गये। बिना मूलवाले पौधों में भी कंद उत्पन्न हो गये। सर्वत्र पुष्पलताएँ आभरण भूषित युवतियों के समान दिखाई देने लगीं। उत्तम शील से बढ़कर अन्य कौन सी तपस्या आचरणीय है? (अर्थात्, शील ही सबसे बड़ी तपस्या है।)

व्याधों के निवास ऋषियों के आश्रम जैसे हो गये। माणिक्य कांतिवाले इन्द्र गोप (कीट) स्थान स्थान पर फैल गये। कोकिल घने वृक्षों में बैठी विरह पीड़ित कोकिल बालाओं को गा गाकर शांत करने लगे। करीर के वृक्ष भी हरे भरे होकर कोमल पल्लवों से भर गये।

वह वन पहले इस प्रकार झुलसा हुआ था, जिस प्रकार एक निश्चित अवधि देकर युद्ध करने के लिए जानेवाले वीरों को गाढ़ आलिंगन करके भेज देने के पश्चात् उनकी विरहिणी पत्नियों का मन झुलस जाता है। अब वह इस प्रकार लहलहा उठा, जिस प्रकार उन योद्धाओं के लौट आने पर उन युवतियों का मन लहलहा उठता है।

उस मरु प्रदेश को उन तीनों ने धीरे धीरे पार किया। फिर वे उस चित्रकूट पर्वत पर जा पहुँचे, जहाँ मत्तगज, आकाश में प्रकाशमान चन्द्र के बादलों के मध्य छिप जाने पर, मेघ को देखकर हथिनी समझ लेते हैं और ताड़ (वृक्ष) जैसी अपनी विशाल सूँड को पसारकर उस (मेघ) को छूने की चेष्टा करते हैं। (१–४७)

●

अध्याय ८

चित्रकूट पटल

हमारे लिए पूज्य देवताओं तथा हम जैसे मनुष्यों के लिए जो एक समान ही अविज्ञेय है, वैसे अनघ, सुन्दर नयनोंवाले तथा सहस्र नामवाले अमल विष्णु (के अवतार राम) यौवन से परिपूर्ण कलापी तुल्य जानकी को चन्दन वृक्षों से भरे, स्वर्ण से पूर्ण उस (चित्रकूट) पर्वत की प्राकृतिक शोभा दिखाने लगे।

करवाल तथा बरछा—दोनों एक साथ रखे गये हों ऐसे लगनेवाले नयनों से युक्त (हे सीता)! इस पर्वत के पाद प्रदेश में एला की लताएँ तथा तमाल फैले हैं। इस पर्वत की सानुओं पर सोनेवाले दीर्घ तथा जल से भरे मेघों एवं हाथियों में कोई भेद ज्ञात नहीं होता।

हे रक्त लगे करवाल जैसे लाल रेखाओं से युक्त नयनोंवाली! इस उन्नत पर्वत पर उछल कूद करनेवाला पहाड़ी बकरा, (विष्णु के प्रतिपादक) वेदों[१] के समान शोभायमान मरकत रत्नों के कांति पुंज से आवृत होकर सूर्यदेव के हरितवर्ण अश्व के समान दिखाई पड़ता है।

रत्नहार से भूषित स्तनोंवाली हे कलापी! मत्तगजों को निगलनेवाले विशाल उदरवाले अजगरों की केंचुलियाँ बाँसों के झुरमुटों में लगी हुई हिल रही हैं। वे (केंचुलियाँ) उद्यानों से घिरी अयोध्या के सौधों पर फहरानेवाली श्वेतपट युक्त ध्वजाओं सी लगती हैं।

लवण समुद्र से उत्पन्न न होकर क्षीर समुद्र में से उत्पन्न अमृत समान हे सुन्दरी! (पर्वतों के) प्रवालमय सानुओं में यत्र तत्र कबरीमृगों के बाल हिलते हुए ऐसे दिखाई पड़ते हैं, जैसे निर्झर बह रहे हों। उनको देखो।

क्रोध से भरे सिंह से आहत होकर मत्तगज के गिरने पर उसके रक्त के साथ उसके सिर से जो गजमुक्ता बिखर पड़ती हैं, वे प्रणय कलह में मानिनी स्त्रियों के द्वारा फेंके गये रक्त चंदन लगे मोती जैसे लगते हैं।

इस पर्वत के शिखर पर जब चंद्रमा दिखाई पड़ता है, तब इस पर्वत के पद्मराग रत्नों की कांति जटाजूट का दृश्य उपस्थित करती है। इसके उज्ज्वल निर्झर गंगा की समता करते हैं। इस प्रकार, यह पर्वत वृषभ पर आरूढ होनेवाले भगवान् (शिव) के समान लगता है।

हाथियों को निगलनेवाले अजगर (उन हाथियों के मद जल प्रवाह को न सहकर) उनको अपने उज्ज्वल माणिक्यों के साथ ही छोड़कर चले जाते हैं। तब शिलाओं पर 'वेंगे' (नामक वृक्ष के सुनहले) पुष्पों के साथ पड़े हुए वे माणिक्य उन हाथियों के मुखपट्ट का दृश्य उपस्थित करते हैं।

---

१ विष्णु का रंग श्यामल है अतः उनका वर्णन करनेवाले वेदों का रंग भी श्यामल माना गया है।

एक सूक्ष्मयुगल रत्नजटित कलशों को ढो रहा हो।'—यों सूक्ष्म कटि तथा पुष्ट स्तनों से युक्त हे पुष्पलते! इस पर्वत पर के चंदन वृक्ष मानो आकाश मार्ग को ही रोक रहे हैं और चंद्रमा, जैसे इन वृक्षों के बीच में से होकर जा रहा है, यह सुन्दर दृश्य देखो।

चंद्रकला जैसे (आकारवाले) दाँतों से शोभायमान हे देवी! हाथी, वृक्ष की शाखाओं पर लगे मधु के छत्ते पर की मक्खियों को उड़ाकर उसमें स्थित सुगंधित अरुण वर्ण मधु को उठाकर अत्यधिक प्रेम के साथ पूर्ण गर्भ से युक्त अपनी हथिनी के मुँह में डाल देता है, यह दृश्य देखो।

सृष्टि की रक्षा करनेवाले भगवान् (विष्णु) यद्यपि माया में छिपे रहते हैं, तथापि इंद्रियों का दमन करनेवाले योगियों के लिए अदृश्य नहीं रहते। उसी प्रकार, इस पर्वत पर रहनेवाले दिव्य हयग्रीव (घोड़े के जैसे मुखवाले) मानव छिप जाने पर भी यहाँ की स्फटिक शिलाओं में (प्रतिबिंबित होकर) प्रकट दीख पड़ते हैं, यह देखो।

नर्त्तनशील कलापी से भी सुन्दर और कोकिल के जैसे स्वरवाली हे सीते! यहाँ के उन किन्नरमिथुनों को देखो, जो इस प्रकार गा रहे हैं कि अपने प्रियतमों से मान करती हुई पर्वतवासी स्त्रियाँ (उन गानों को सुनकर) द्रवितचित्त होकर स्वयं अपने प्रियतमों को खोजने लगती हैं।

किसी धनुर्वीर के धनुष के समान शोभायमान ललाटवाली! हे कुलदीपिके! अरण्य निवासी, लंबी जड़वाले 'कवलै' (नामक) कंद को खोदकर ले जाते हैं। उनके खोदने से जो गड्ढे पड़ जाते हैं, उनको लंबे बाँसों के टकराने से झरनेवाले मधु के छत्ते (अपने मधु से) भर देते हैं।

नारीत्व रूपी शरीर के लिए प्राणतुल्य हे सुन्दरी! देखो, जलाशय में उसके साथ आनन्द से डुबकी लगानेवाली वानरी जब वानर पर पानी उछालती है, तब वह (वानर) पर्वत के दूसरे पार्श्व में जाकर वहाँ के एक मेघ को पकड़कर हिलाने लगता है—(जिससे वर्षा की बूँदें बिखर पड़ती हैं।

बत्ती के बिना ही अमृत में जलनेवाले उत्तम दीपक सदृश हे देवी! उन माणिक्य मय शिलाओं को देखो, जो अपनी कांति से अंधकार को चीर डालती है और अपने स्थान से कभी न हटते हुए मंडलाकार सूर्य के समान लगती हैं।

अरुंधती (जैसी पतिव्रता) को भी सच्चे शील का आदर्श दिखानेवाली लक्ष्मी तुल्य, हे सुन्दरी! जब कालवर्ण भ्रमरों के झुण्ड 'वेंगै' वृक्ष की शाखा पर बैठते हैं तब वे शाखाएँ झुक जाती हैं। फिर, उन (भ्रमरों) के उड़ जाने पर वे ऊपर उठ जाती हैं, वे शाखाएँ ऐसी लगती हैं, जैसे अपने स्वर्णमय पुष्पों को बिखेरकर (हमारे) चरणों पर नमस्कार कर रही हों।

उज्ज्वल ललाट तथा शोभायमान आभरणों से युक्त हे देवी! हे पल्लवित शाखा समान सुन्दरी! सूर्य को छूनेवाले इस पर्वत पर 'तिनै' (एक अनाज) की खेती की रखवाली करनेवाली तीक्ष्ण बरछे जैसे नयनोंवाली स्त्रियाँ, फसलों पर आनेवाले पक्षियों पर

घुँघुचियाँ फेंकती है। वे घुँघुचियाँ आकाश में उड़ते हुए ऐसी लगती हैं, जैसे (आकाश में) नक्षत्र ही गिर रहे हों।

दृढ धनुष को धारण करनेवाले वीरों के फरसे से कटकर गिरी हुई अगरु की लकड़ियों को जलाने से उठनेवाला धूम समूह, ब्राह्मणों के होम कुंड के धूम के साथ मिलकर ऐसा फैल रहा है, जैसा कोई विशाल कालवर्ण पर्वत शिखर हो।

नव पुष्प, अगरु धूम, आदि से सुगंधित होकर निरंतर वर्षा करनेवाले मेघ सदृश काले तथा दीर्घ केशों के भार से कंपित होनेवाली सूक्ष्म कटि से युक्त हे मयूर तुल्य सुन्दरी! गगन में नक्षत्रों को चमकते हुए देखकर सूखी हुई पर्वत नदियाँ भी अपने रत्न समुदाय को चमका रही हैं।

अपने प्रियतमों से रूठकर चलनेवाली विद्याधर सुन्दरियों से मनोहर अलक्तक से अंचित छोटे छोटे पदों के चिह्न, मेघों को छूनेवाली माणिक्यमय शिलाओं में अदृश्य हो जाते हैं और मरकतमय शिलाओं पर रक्त वर्ण दिखाई पड़ते हैं, देखो।

रक्त स्वर्णमय गभीर नाभि से शोभायमान हे मेरी सहधर्मिणी! निर्झरों में स्नान करने के लिए आनेवाली देवस्त्रियों के द्वारा अपने काली मिट्टी जैसे केशों से उतारकर फेंके गये कल्पवृक्ष के पुष्प, प्रभूत रत्न राशियों सहित झरनेवाले निर्झरों के साथ गिर रहे हैं, देखो।

देखो, मुखरित वीर कंकण और धनुष से युक्त किसी व्याघ्र के द्वारा, खेती की रक्षा के लिए (बजाने के उद्देश्य से) रखे हुए पटह (नामक चमड़े के बाजे) को एक वानर खड़ा होकर बजा रहा है, देखो। एक व्याघ्र स्त्री चन्द्र को पकड़कर प्रेम से उसके कलंक को पोंछ देने की चेष्टा कर रही है।

देखो, घने माधवीलता कुंजों में पल्लव की शय्याएँ पड़ी हैं, जिनपर देवस्त्रियाँ विश्राम करती थीं और अब उनके चिरकालिक वियोग की सूचना देती हुई सी झुलसकर काली पड़ी हुई हैं।

स्मरण मात्र से अत्यधिक आनन्द प्रदान करनेवाली अमृत समान आभरण से विभूषित सुन्दरी! देखो, मधु से भरे 'वेंगै' वृक्षों में तथा 'कोंगै' वृक्षों में स्थान स्थान पर लगे हुए हिलनेवाले झूलों पर बैठकर पहाड़ी स्त्रियाँ जब पर्वतीय रागों का आलाप करती हैं, तो उनसे आकृष्ट होकर अशुण (नामक) हरिण[1] उनके समीप आ जाते हैं।

महुए के पुष्प तथा इन्द्रगोप के समान अधर से युक्त हे सुन्दरी! इस पर्वत पर के निर्झरों से उठनेवाले तुषार बिन्दुओं के समुदाय, अप्सराओं के नृत्य के समय बिखरे हुए चन्दन आदि सुगन्धित लेप, कस्तूरी कुंकुम आदि का लेप एवं कल्पपुष्पों के मकरंद से संयुक्त हैं।

जैसे कोई लता, इंगुलिक के पत्रलेखों से चित्रित उत्तम स्वर्णमय कलशों से शोभायमान हो, यों शोभित होनेवाली हे सुन्दरी! मध्याह्न काल में असंख्य किरणोंवाला

[1] यह प्रसिद्ध है कि 'अशुण' मृग संगीत सुनकर मुग्ध हो खड़ा रहता है और संगीत समाप्त होने पर व्याकुल होकर झट अपने प्राण छोड़ देता है।

सूय जब इस स्वणमय उन्नत पवत पर पहुँचता हे तब यह पवत एसा लगता ह, जैस यह स्वण मुकुट धारण कर रहा हा ।

नारियो के तिलक समान ह सुन्दरी ! ऑसा से बिखर हुए मुक्ता माणिक्यमय शिलाआ पर इस प्रकार पडे ह, जिस प्रकार लालिमा स युक्त आकाश पर तारे चमक रह हो।

सूक्ष्म रध्रो से युक्त बॉसुरी की ध्वनि और शीतल तथा मधुर स्वरवाली वीणा की ध्वनि से भी अधिक मधुर वचनो से युक्त, ह शुक समान सुन्दरी ! सर्वत्र लाल पुष्पो से भरे हुए पलाश वृक्षो का वन ऐसा लगता ह, जैसे (सारा वन) अग्नि की ज्वाला म जल रहा हो।

'कादल' पुष्प को कंकण पहनाया गया हो, यो अति सुन्दर करो से शोभायमान ह सुन्दरी ! बडे हाथियो के बच्चे अपूर्व तपस्या से सम्पन्न ऋषियो के लिए अपनी सूँडो म दूर दूर क निर्झरा से पानी भरकर लात ह और उन ऋषियो के कमडलुओ म भर देते हैं।

आम की फॉक जैसे सुन्दर नयनोवाली कलापी तुल्य ह सुन्दरी। लम्बी तथा झुकी हुई पूछवाले तथा द्रवित चित्तवाल वानर, वार्द्धक्य से पीडित तथा मन्द दृष्टिवाले व्याकुल मुनियो का जाने का माग दिखाकर उनकी सवा करत ह। अहो !

सॉप के फन एव रथ का उपहास करनेवाले विशाल जघन से युक्त, ह सुन्दरी ! दखा, बडे पखोवाले मयूर यज्ञोपवीत से शोभायमान वक्षवाले ब्राह्मणो के होम कुडो की अग्नि को अपने दीघ पखो स प्रज्वलित कर रह हैं ।

दीर्घ केशो से शाभायमान सुन्दर मयूर तुल्य स्त्री कुल का भूषण, हे देवी ! आम्र वृक्षो पर फलो का खानेवाले वानर, लोकहित म निरत वदज्ञ ब्राह्मणो के वक्ष पर धारण किये जानेवाले यज्ञोपवीत के लिए रेशम क कीडो के घोसलो एव कपास के पौधो से आवश्यक रेशे ला देते ह।

नारिया की सृष्टि के लिए आदश बनी हुई, ह लक्ष्मी तुल्य सुन्दरी ! वानर, आम्र, पनस और कदली वृक्षो से बडे बडे पके हुए अति मधुर फल चुन चुनकर (मुनियो को) ला दते ह ओर जगली सूअर कदो को उखाडकर ला देते ह।

तुम्हारे कर म रखने योग्य, लाल मुखवाले तोत, पवत क 'तिनै' धान्य, ज्वार, सम आदि की वीजो एव झुकनेवाले बॉस मे उत्पन्न होनेवाले चावल को, अमत्सर्राहत ऋषियो के आश्रमो मे जाकर दे आत ह।

बडे बडे अजगर, जो चिघाडनेवाले और दॉतो स युक्त बडे हाथियो का भी निगलने की शक्ति रखते ह, ज्ञानियो के समान इद्रिय दमन करके यहॉ रहते ह और जटा धारी मुनियो के मार्ग म सीढियॉ बनकर पडे रहत हं।

देखो, सूर्य क किरणो को ढकनेवाले अनेक स्वणमय विमान[1] यहॉ आते जात रहत ह, मानो वे (विमान) जल के सोतो से युक्त पर्वत पर अपूव तपस्या करनेवाले तथा (भगवान् क ध्यान म) अपने दोनो नयनो से यो आनन्दाश्रु बहानेवाले, जैसे जल का घडा ही उडेल रह हो, ऋषिया को मोक्ष लोक मे ले जाने क लिए ही यहॉ आते हो।

१ ये विमान चित्रकूट पर्वत पर सचरण करनेवाले देवो के है, जो ऐसे लगते है, मानो मुनियो को मोक्ष-लोक म ले जान के लिए आय हुए हो।

अग्नि म तप्त तेल स अर्चित अति तीक्ष्ण करके जैसे अजनार्चित एव यम का भी व्याकुल करनेवाले नयनो स शोभायमान, ह सुन्दरी ! देखो, (बच्चे देने की) पीडा स युक्त हथिनियो को हाथी अपनी सूँडो का सहारा द रह हैं।

विष स्वभाववाले नयनो स युक्त ह देवी ! तुम्हारी कटि का देखकर उसे बिजली समझकर फनवाले सप डर जात ह और तडपकर बिल म घुस जात ह। मदपूर्ण घटवाले हाथी, मेघ गर्जन को सुनकर सिंह गर्जन समझकर डर जात ह और अस्त व्यस्त हो भागने लगत ह।

गृहस्थी म रहकर ही सब व्रतो का पालन करनेवाले चक्रवर्त्ती क पुत्र (राम) ने आभरणो से भूषित (सीता) देवी को इस प्रकार क अनेक दृश्य, उनका वणन करक दिखाये। फिर, उनका स्वागत करने के लिए सम्मुख आये हुए मुनियो को नमस्कार करक उन पाप रहित मुनियो क अतिथि बने।

महिमामय सुन्दर तुलसी मालाधारी भगवान् (विष्णु) न वर स युक्त अधकार सदृश राक्षस कुल क विनाश की कामना करके कालनेमि[1] नामक राक्षस पर ही अपना चक्र चलाया ह, इस प्रकार (का दृश्य उपस्थित करत हुए) सूय अस्ताचल पर जा पहुँचा।

जब विष्णु का चक्र असुर (कालनेमि) के शरीर म जाकर लगा था, तब उसके शरीर से निकले हुए अत्यधिक रक्त प्रवाह क समान ही आकश म सवत्र लाली फैल गई और उस राक्षस क मुँह से गिरे हुए वक्र दत क समान ही चद्रकला प्रकाशमान हो गइ।

सूय क अस्त होने पर, कमलपुष्प, स्त्रियो को वदन की शोभा प्रदान करके मुकुलित हो गय। आकाश रूपी जलाशय म सवत्र श्वेतवर्ण कुसुम रूपी नक्षत्र चमक उठे।

उस समय वानर और वानरियाँ वृक्षो की ओर बढ, हाथी और हथिनियाँ जलाशयो की ओर बढ, सुन्दर पक्षी घोसलो की ओर बढ और तत्त्वज्ञान से सपन्न प्रभु (राम) सध्याकालीन कार्यो की ओर बढे (अर्थात् , सायकालीन कृत्यो को करने गये)।

घने दलोवाले सुगधित पुष्पो म से कुछ बद हुए। निदाष तथा सुगध स भरे पुष्पो म से कुछ विकसित हुए, प्रभु के साथ, अनुज (लक्ष्मण) तथा अमृत समान (सीता) देवी क कर एव नेत्र भी कमलपुष्पो क समान ही बद हुए (अर्थात्, व तीनो हाथ जोडकर और नयन बद करके भगवान् का ध्यान करने लग)।

सध्याकाल व्यतीत होने पर (रात्रि क आगमन पर) उत्तम स्वभाववाले लक्ष्मण ने, अनघ राम तथा उनकी सूक्ष्म कटिवाली देवी क निवास के लिए विचार करके वहाँ किस प्रकार से एक पणशाला बनाइ, हम उसका वणन करग।

लक्ष्मण न छोट छोट बाँस क टुकडो का लेकर खडा किया और फिर वक्रता से हीन सीध तथा लब बाँसो का उनपर आडे रखा, फिर उनपर शहतीरो की तरह बाँसो का रखकर ठाट बनाई और उनपर पत्ते बिछाये।

[1] कालनमि हिरण्यकशिपु का एक पुत्र था। उसके एक सौ सिर और एक सौ हाथ थ। विष्णु के द्वारा अपन पिता के मारे जाने पर वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और देवो को परास्त करके अपना पराक्रम दिखाने लगा। तब विष्णु भगवान् ने चक्र प्रयोग करके उसके शिर और हाथों को काट डाला।

ऊपर पर शालवृक्ष के पत्ते बिछाये और उन्हे मूँज से बाँध दिया। नीचे खडे किये बाँसो के टुकडो के बीच मे मिट्टी भरकर दीवार खडी की और उनपर जल छिडककर (दीवारो को) समतल बनाया।

पर्णशाला के भीतर शास्त्रोक्त रीति से राम और सीता के (सोने के) लिए अलग अलग आसन बनाये, लाल कुंकुम की मिट्टी से उन्हे लीपा और दीवारो मे भीतर की ओर नदी मे उत्पन्न रत्न और मोती चिपकाये।

(पर्णकुटीर के भीतर) मयूर पखो का एक वितान लगाया। अपनी छुरी से काट काटकर लटकनेवाले तोरन बनाकर लगाये और नदी तट के बाँसो को काटकर उस पर्णशाला के चारो ओर एक प्राचीर (बाड) भी बनाया।

वह प्रभु, जो चतुर्मुख के हृदय मे एव हम जैसे अज्ञ लोगो के हृदयो मे एक समान ही रहता है, स्वर्णमय देह कांति से युक्त लक्ष्मी समान सीता देवी के साथ अपने अनुज के द्वारा इस प्रकार निर्मित पर्णकुटीर मे प्रविष्ट हुए।

ज्ञानियो का अविद्या रहित हृदय है, महिमामय वेद है, या पवित्र क्षीर सागर है, या वैकुंठधाम ही है—या कहने योग्य उस पर्णकुटीर मे अगाध प्रेम से प्राप्त होनेवाले प्रभु (राम), प्रेम पूर्ण मन मे आनंदित होकर निवास करने लगे।

सीता देवी के, पुष्प से भी कोमल, चरण काँटो और ककडो से भरे अरण्य मे चले, मेरे दोषहीन भाई के करो ने यह पर्णशाला बना दी। अहो। जिन्हे कोई सहायक नही होता, उन्हे भी कौन सी वस्तु अप्राप्य होती है ? (भाव यह है— निस्सहाय व्यक्ति के लिए उसके समीपस्थ पदार्थ ही सब आवश्यकताएँ पूर्ण करते है।)

यह विचार करके फिर राम ने अपने अनुज से कहा—हे पर्वतो के समान पुष्ट कधोवाले। तुमने ऐसी सुन्दर पर्णशाला बनाना कब सीखा ? उस समय उनके कमल समान विशाल नयनो से अश्रु बिंदु बरस पडे।

अपार सपत्ति को प्रदान करनेवाले (दशरथ) की आज्ञा से वन मे आकर उत्तम धर्म का पालन करते हुए मैने सूर्य के समान उज्ज्वल सत्य रूपी यश को प्राप्त किया, ऐसा कहने मे क्या तथ्य है ? मैं तो अनेक दिनो से तुमको कष्ट ही देता आ रहा हूँ। इस प्रकार, राम ने बडी मनोवेदना के साथ कहा।

प्रभु के यह कहने पर लक्ष्मण ने चिंतित होकर उनकी ओर देखा और कहा—हे मेरे पितृ तुल्य। (हमारे) कष्टो का अकुर तो पहले ही (अर्थात्, जब कैकेयी को दशरथ ने वर दिये) फूट निकला था। (भाव यह है, हमारे इन कष्टो का कारण आप नही है। इनका कारण कैकयी का वर ही है, अत आप चिंतित न हो।)

फिर, रामचन्द्र ने मन मे सोचा—जो हो, अब मुझे और कुछ नही करना है। अब (लक्ष्मण के कष्टो को देखकर) मै धर्म के मार्ग को छोडकर नही जा सकता। फिर, अपने ज्येष्ठ भ्राता की सेवा मे आनन्द पानेवाले लक्ष्मण की इस मानसिक ताप को (कि मेरे बडे भाई वनवास का कष्ट भोग रहे है) जानकर राम सोचने लगे—इस (लक्ष्मण) के मानसिक कष्ट को दूर करना असभव है।

फिर अग्रज (राम) ने अपने छोटे भाई को देखकर कहा– संसार में प्राप्त होनेवाली संपत्ति सीमाबद्ध होती है। किन्तु, भविष्य में अपार आनन्द उत्पन्न करनेवाले हमारे इस वनवास रूपी सुख के बारे में विचार कर देखो। इसमें क्या कमी है ?

दृढ धनुर्धारी रामचन्द्र अपने अनुज को सांत्वना देकर, देवों की स्तुति प्राप्त करते हुए, अपने व्रत का पालन करते रहे। उधर महान् तपस्वी (वसिष्ठ) की आज्ञा से (केकय देश को) गये दूतों का क्या हुआ– अब हम उसका वर्णन करेंगे। (१–५८)

●

अध्याय ९

चिता-शयन पटल

असत्य रहित अनुपम दूत, जो अयोध्या से चले थे रात दिन वेग से चलकर (केकय देश में) भरत के भवन में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर द्वार रक्षकों से कहा– द्वाररक्षको। राजा भरत को हमारे आगमन का समाचार दो।

आपके पिता का समाचार लेकर दूत आये हैं। —यह वचन सुनकर भरत अत्यन्त आनंदित हुआ और प्रेमाधिक्य से उन दूतों को अपने निकट लाने की आज्ञा दी। जब वे दूत निकट जाकर नमस्कार करके खड़े हुए, तब भरत ने कहा– मुकुटधारी चक्रवर्ती, किंचित् भी कष्ट के बिना सुखी हैं न ?

दूतों ने कहा– चक्रवर्ती शक्तिशाली हैं।' यह सुनकर आनन्दित हो फिर भरत ने प्रश्न किया– मेरे प्रभु (राम) के साथ आभरण भूषित अनुज (लक्ष्मण) अक्षुण्ण वैभव से युक्त हैं न ? दूतों ने 'हाँ' कहा। तब भरत ने राम को उद्दिष्ट करके अपने शिर पर हाथ जोड़े।

फिर, यथाक्रम सब बंधुओं के समाचार सुनकर भरत आनन्दित हुए। तब दूतों ने भरत से यह कहकर कि चित्रित करने के लिए असाध्य रूप में संपन्न हे भरत! चक्रवर्ती का यह श्रीमुख (अर्थात्, चिट्ठी) है, पत्र दिया।

उनके यह कहने पर भरत ने उस पत्र के प्रति नमस्कार किया और उठकर अपने स्वर्ण आभरण से भूषित दीर्घ कर में उसे लिया और द्रवित चित्त होकर सद्यःविकसित पुष्पों से भूषित अपने शिर पर उसे रख लिया।

यों शिर पर रखने के पश्चात् भरत ने, ऊपर से चन्दन से लिप्त मिट्टी लगाकर बंद किये गये उस पत्र के चोंगे को खोलकर देखा। उसका समाचार पढ़कर उन दूतों को कोटि से भी अधिक धन दिया।

तब भरत इस उमंग में कि वे अपने ज्येष्ठ भ्राता के दर्शन करनेवाले हैं, उज्ज्वल कांति फैलानेवाली हँसी से युक्त हुए, पुलकित हुए और उस पत्र पर सद्य तोड़कर लाये गये पुष्प डाले।

तुरत भरत ने अपनी सेना का सन्नद्ध होन की आज्ञा दी और यह भी न विचार कर कि वह मुहूर्त्त यात्रा के लिए अच्छा है या नही, कैकयराज को प्रणाम करके, उनकी आज्ञा लेकर, अपने भाई (शत्रुघ्न) के साथ घोडे जुते हुए रथ पर आसीन होकर चल पडे।

उस समय हाथी (भरत का) घरकर चल पडे। रथ कोलाहल करते हुए साथ चल पडे। बडे महिमापूर्ण राजा लोग घेरकर चल पडे। करवालधारी पदाति सेना चल पडी। शख बज उठे। नगाडे, मत्स्यो के निवास समुद्र के समान गरज उठे।

ध्वजाएँ एकत्र होकर निकली। निशान निकले। आम के टिकोरे जैसे नयनो वाली युवतियो के आरूढ होने योग्य हथिनियाँ चली। मेघो के गरजते समय कौंधनेवाली बिजली के समान सर्वत्र आभरण चमक उठे।

अनेक रथो पर रखे गये विविध वाद्य बडी ध्वनि करने लगे। नारियो की पुष्प मालाओ के भ्रमर झकार भरने लगे। शर के समान वेगगामी अश्व मार्ग पर चलने लगे।

अपनी नासिका से साँस छोडते हुए बाँसुरी की सी ध्वनि करनवाले, मुख पर आभरणो से भूषित, गगन पर भी उड जानेवाले, निश्चित समय म कितनी भी दूर चले जानेवाले, झुकी हुई गरदनवाले अश्व चल पडे।

धनुर्विद्या म निपुण, करवाल युद्ध म चतुर खड्ग युद्ध म कुशल, मल्ल युद्ध म प्रवीण, बरछे, भाले आदि शस्त्रो के अभ्यासी योद्धा तथा पुराने हाथीवान भी घेरकर चले।

परस्पर टकरानेवाले भैंसे, बकरे, रक्त का चिह्न देखकर लडने को झपटनेवाले कुक्कुट, बाज, 'करुपूल्' (नामक लडनवाला पक्षी विशेष), 'कौदारी' (नामक लडनेवाले पक्षी विशेष) आदि का पालनवाले जो कभी उत्तम मार्ग पर न चलनवाले थे, ऐसे मनुष्य भी घरकर चले।

भरत कही त्वरित गति से आगे न निकल जायँ, इस आशका से आतुर होकर विद्या, ज्ञान आदि से भरे हुए व्यक्ति आगे आगे चलने लगे। इस प्रकार चलते हुए वे ऐसे लगते थे, जैसे शापवश इस धरती पर जन्म लिये हुए देवता सदज्ञान पाकर पुन स्वर्ग को जा रहे हो।

बदी मागधो के मधुर गीत गगन को भरने लगे। जैसे प्राण शरीर म व्याप्त रहता है, उसी प्रकार मर्दल ध्वनि सब गीतो म व्याप्त हो गई।

बजनेवाले नगाडो की ध्वनि से भी बढकर वेदज्ञ ब्राह्मणो के अशीवादो की ध्वनि थी। वृषभ समान मल्ल वीरो के गर्जन से भी बढकर बदी मागधो के स्तुति पाठ की ध्वनि थी।

भरत सात दिन चलकर नदियो, काननो और विशाल पर्वतो को पारकर उस कोशल देश म जा पहुँचे, जहाँ गन्ने के कोल्हुओ से निकला हुआ रस नालो म, बाँध तोडता हुआ, बह चलता है और अकुरो से भरे खेतो को भर देता है।

खेत हलो से शून्य थे। युवको की भुजाएँ पुष्पमालाओ से शून्य थी। शीतल धान के खेत पानी से शून्य थे। कमल मे वास करनेवाली सपत्ति की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी उस देश को छोडकर चली गई थी।

मधुर फलों से रस विशाल जलाशयों में भर रहे थे और चारों ओर सड़कर नष्ट हो रहे थे। मनोहर पुष्पों के समूह तोड़े न जाकर पौधों पर ही विकसित होकर, फिर कुम्हलाकर झर रहे थे।

फसल को काटने का उचित समय को जाननेवाले किसानों के अभाव से शालि धान के पौधे, आम्र रस की धारा के बहने के कारण, सिर झुकाये टूटकर खड़े थे और धान धरती पर झरकर अंकुरित हो रहे थे।

तिलपुष्प जैसी नासिकावाली तथा उन खेतों में जहाँ पक्षी आनन्द से संचरण करते थे, काम करनेवाली अन्त्यज नारियाँ काम छोड़कर दुःखी पड़ी थी, मानो वे अपने प्रियतमों से मान करके निराने का काम छोड़ बैठी हो।

शुक मौन हो बैठे थे। सुन्दर केशोवाली स्त्रियाँ अपनी सखियों का दोहन करती हुई उन (सखियों) के प्रियतमों के निकट नहीं जा रही थीं। नगाड़े नहीं बज रहे थे। स्वर्ण से अलंकृत वीथियों में विवाह आदि के जुलूस नहीं निकल रहे थे।

संगीत शास्त्रों में कथित विधान के अनुसार बनाई गई मधुर नादवाली बाँसुरी अब नहीं बज रही थी। नृत्यशालाओं तथा जलाशयों में नृत्य तथा जल क्रीडा नहीं हो रही थी। (लोगों के) शिर पुष्पालंकार से विहीन थे। विद्युत् निवारक यन्त्रों से युक्त प्रासाद धान कूटनेवाली स्त्रियों के गीतों से विहीन थे।

(लोगों के) प्रकाशमान मुख हास हीन थे। सौध सुगन्धित अगरु धूम से विहीन थे। दीप पुष्ट ज्वाला से विहीन हो मंद पड़े थे। नारियों के केश मधुपूर्ण पुष्पों से विहीन थे।

भली भाँति बढ़े हुए तथा लहलहाते हुए सस्य के पौधे, विशाल नालों के निकट रहने पर भी किसी के द्वारा उन नालों में पानी को मोड़कर न बहाने के कारण उसी प्रकार शुष्क खड़े थे, जिस प्रकार निष्ठुर लोभी के द्वार पर, दान पाने की इच्छा से आया हुआ व्यक्ति हो।

वर्णन करने को भी असाध्य, अपार संपत्ति से समृद्ध वह कोशल देश, पुष्पहीन हो, पुष्प पर आसीन लक्ष्मी से विहीन हो एवं सारी शोभा से रहित होकर प्राण विहीन देह के समान लगता था।

इस प्रकार के कोशल देश को देखकर भरत बहुत दुःखी हुए, किन्तु वहाँ घटित किसी वृत्तान्त को न जानने से यह सोचते हुए कि शायद हम अब कोई शोक समाचार सुनने जा रहे हैं, वे रह रहकर आहें भर रहे थे।

सत्य नामक उत्तम आभरण से भूषित चक्रवर्ती के पुत्र भरत ने कुछ दूर आगे जाकर वेगवान् अश्वों से खींचे जानेवाले रथ से भी आगे जानेवाले अपने मन में (भावी के सम्बन्ध में) विचार करते हुए, अयोध्या के विशाल द्वार को देखा।

भरत ने उस नगर में उन दीर्घ ध्वजाओं को नहीं देखा, जो (ऐसी लगती थीं) मानो वे सहस्रकिरण (सूर्य) के पीछे पीछे चलकर उनसे यह कहती थीं कि तुम सारे ब्रह्माण्ड में घूमते घूमते थक गये हो, (यहाँ किंचित् समय ठहरकर) विश्राम कर लो, तब जाओ, और उन (सूर्य) की गति को रोक लेती थीं।

(भरत ने उस नगर में) उन नगाडों का शब्द नहीं सुना, जो (नगाडे) मानो विशाल जनता को यह सूचना देते बजते रहते थे कि राजा का यथेष्ट यश देते हुए यहाँ की समस्त सम्पत्ति को ले जाओ।

भ्रमरों से पिये जानेवाले मधु से युक्त पुष्पमाला को धारण किये हुए भरत ने मंगल गीत गानेवालों को तथा स्तुति पाठ करनेवालों को प्रचुर मात्रा में उत्तम हाथी हथिनी, अन्य सम्पत्ति आदि पुरस्कार के रूप में ले जाते हुए नहीं देखा।

लोक रक्षक चक्रवर्त्ती के पुत्र (भरत) ने भूसुरों (अर्थात् ब्राह्मणों) को दान के रूप में गाय, गज, सुन्दर सम्पत्ति आदि को जाते हुए नहीं देखा।

मँडरानेवाले भ्रमरों एवं वीणा आदि से सप्त स्वर युक्त संगीत न गाये जाने के कारण वे (अर्थात्, भ्रमर और वीणा आदि वाद्य) आम के टिकोरे जैसे नयनोंवाली (मूक) नारियों के केशों की समता कर रहे थे।

उस नगर की वीथियों में रथ, घोड़े, हाथी, शिविका, शकट आदि नहीं दिखाई देते थे। अतः, वे (वीथियाँ) जल के सूखने पर सिकतामय दिखनेवाली नदियों के समान शोभा विहीन लगती थीं।

सज्जनों के द्वारा प्रशंसित सद्गुणों से पूर्ण भरत ने नगर के भीतरी प्रदेश को अपनी पूर्व दशा से विहीन देखकर अपने भाई (शत्रुघ्न) से कहा—हे अनुज! चक्रवर्त्ती के निवासभूत इस राजधानी की ऐसी दशा क्यों हुई?

शत्रुओं को वीर स्वर्ग पहुँचानेवाले तथा सजल मेघ जैसे कंधोंवाले हे भाई! यह नगर मीन समान नयनोंवाली लक्ष्मी से विहीन विशाल क्षीर सागर के जैसा लग रहा है, देखो।

तब उत्तम रत्न खचित आभरणों से भूषित सिंह समान अनुज (शत्रुघ्न) ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—ऐसा लगता है कि इस नगर में कोई अति दारुण शोकप्रद घटना हुई है, जो साधारण नहीं है। लक्ष्मी भी युगान्त तक अविनाशी रहनेवाले इस नगर को छोड़कर चली गई है।

इतने में, कुछ अधिक सोचने के पूर्व ही चक्रवर्त्ती कुमार विशाल तोरण से भूषित अत्युन्नत राजप्रासाद के द्वार पर आ पहुँचे और तुरन्त अपने पिता के विश्राम स्थान में गये।

पर्वतों को लज्जित करनेवाले ऊँचे कंधों से शोभायमान भरत ने जाकर देखा, किन्तु कहीं भी अपने पराक्रमशाली पिता को नहीं देखा। तब उनके मन में आशंका उत्पन्न हुई कि अब पिता के न दिखने का कारण कुछ साधारण नहीं है।

उस समय, अपने पिता को ढूँढनेवाले और अपने पवित्र करों से उनके चरणों को छूने की इच्छा रखनेवाले भरत से, बाँस जैसे कंधोंवाली एक दासी ने कहा—माता आपका स्मरण कर रही हैं। आप इधर आइए।

भरत ने आकर अपनी माता (कैकयी) के चरणों को नमस्कार किया। माता ने मन भर उनका आलिंगन किया और पूछा—मेरे पिता, मेरे भाई आदि सब कुशल हैं न? अपार गुणाकर भरत ने कहा—हाँ वे सब कुशल हैं।

तब भरत ने कहा—मैं उमड़नेवाले प्रेम से पूर्ण चक्रवर्त्ती के कमल समान चरणों

का नमस्कार करन क लिए आया हूँ। पिता क दशन करने क लिए मरा मन आतुर हो रहा है, पौरुष म पूर्ण तथा दीप्त मुकुटधारी चक्रवर्ती कहाँ ह, बताओ। यह कहकर भरत हाथ जोडकर खडा रहा।

भरत क य पूछने पर अयाकुल चित्तवाली कैकेयी न कहा—दानवो का विनाश करनेवाली सेना से युक्त तथा भ्रमरो स अर्चित पुष्पमाला धारण करनवाले चक्रवर्ती देवताओ के नमस्कार का पात्र बनते हुए स्वर्ग को सिधार गय हैं, तुम चिन्ता न करो।

आहत करनेवाले वह वचन ज्योही भरत क कानो म पडे, त्योही घुघराले केशो म शोभायमान वह नि सज्ञ होकर गिर पडे। विलम्ब तक ऐसे मूर्च्छित पडे रह, जैसे कोई बडा वृक्ष वज्र स आहत होकर गिरा हो।

फिर, किंचित् प्रज्ञा प्राप्त कर भरत ने मन्द पडी हुई अपनी मुखकांति के साथ एव प्रफुल्ल कमल जैसे नेत्रो म अश्रु भरकर माता को देखकर कहा—कानो म जैसे किसी ने अग्नि ज्वाला रख दी हो—ऐसे कठोर वचन कहने का विचार तक करनेवाला तुम्हारे अतिरिक्त और कौन हो सकता ह?

सुब्रह्मण्य (शिव के पुत्र कार्त्तिकेय) स भी अधिक सुन्दर वह कुमार (भरत) बडी वेदना के साथ उठे। पुन धरती पर गिर पडे। उष्ण नि श्वास भरे। रोये। फिर ये वचन कहने लगे—

हे पिता! तुमने धर्म को विस्मृत कर दिया। दया को मिटा दिया। अत्युत्तम करुणा रूपी सपत्ति को मिटाकर इस ससार को छोड चले। हाय! तुमने न्याय को भी भुला दिया। इससे बढकर दोष और क्या हो सकता है?

तुमने क्रोध रूपी दुर्गुण को मिटा दिया था। काम रूपी अग्नि को बुझा दिया था तथा लोभ आदि के समूह को भी विध्वस्त किया था। सब लोगो क मन क अनुकूल चलने वाले, हे उदारगुण! अब दूसरो को भूलकर केवल अपने मन के अनुसार कार्य करना (अर्थात्, हम सबकी इच्छा के विरुद्ध इस ससार को छोड जाना) क्या उचित ह?

हे प्रभु! इस कुल के महान् पूर्व पुरुष, सूर्य आदि के वीर चारित्र्य को तुमने पुन नवीन कर दिखाया था। ललाट नेत्र (शिव) क दृढ धनुष को तोडनेवाले अपने पुत्र (राम) को छोडकर तुम कैसे चले गये?

हे तात! न्याय मार्ग से आज्ञा चक्र प्रवर्त्तित करनेवाले राजन्! इस ससार म किसी भी वंश क हो, सब लोग तुम्हारे सम्मुख याचक ही थे। इसलिए (यहा अपने समान मित्रो को न पाकर) क्या उत्तम मित्रो को पाने की इच्छा से तुम स्वर्ग गये हो?

मल्ल युद्ध म चतुर विशाल कधोवाले! चिरकाल स छाया देते रहनेवाले तुम्हारे श्वेतच्छत्र की विशाल छाया म विकास प्राप्त करनेवाले सब प्राणियो को व्याकुल ही छोडकर क्या तुमने स्वय (स्वर्ग म) कल्प वृक्ष की छाया म सुखपूर्वक निवासकरने की इच्छा की ह?

हे तात! क्या शबर के समान असुर अब भी आकाश म रहते ह? क्या देवता लोग असुरो से हारकर अपने स्वर्ग को भी खोकर रक्षा की प्रार्थना करते हुए तुम्हारी शरण म आये थे?

तुम वेदो मे प्रतिपादित अश्वमेध यज्ञ करते थे और वाद्यो के शब्द से युक्त सेना के साथ जाकर अन्य राजाओ के द्वारा समर्पित राजस्व को ब्राह्मणो को दक्षिणा के रूप मे दान कर देते थे। इस प्रकार, गार्हपत्य अग्नि को प्रज्ज्वलित करते रहते थे। यह सब कार्य छोडकर क्या तुम स्वर्ग मे निष्क्रिय बैठ सकते हो?

सात हाथ ऊँचे तथा मद बहानेवाले हाथियो के स्वामी! क्या यह सोचकर कि श्यामल (राम) (शासन चक्र धारण किये विना) खाली हाथ रहता है, उन (राम) को शासन का भार देने के लिए तुम इस संसार को छोडकर चले गये?

तुमको तप मे आसक्ति नही थी। अतएव, पहले की हुई बडी तपस्या के फलस्वरूप प्राप्त रामचन्द्र का, राज्य मिलने पर होनेवाले अभिषेक के उत्सव की शोभा भी, अपने विशाल नयनो से देखने का भाग्य तुम्हे नही मिला।

पिता की मृत्यु से उत्पन्न दुःख का सहन न करते हुए भरत ने इस प्रकार के वचन कहे और वे इस प्रकार पिघल उठे कि उनके नेत्रो से नदी प्रवाह के समान अश्रुधारा बह चली। फिर, वह यम सदृश धनुर्धारी भरत स्वय ही अपने आपको सात्वना देकर किंचित् स्वस्थ हो बोले—

मेरे पिता, मेरी माता, मेरे भगवान्, मेरा भाई, सब कुछ वे अपार सद्गुणाकर राम ही है। अतः, जबतक उनके वीर वलय भूषित चरणो को नमस्कार न करूँगा, तबतक मेरे मन की पीडा दूर नही होगी।

वह वचन सुनते ही घोर वज्र तुल्य वचनवाली कैकेयी पुनः बोल उठी—हे शत्रु नाशक धनुधारी! वह (राम) अपनी देवी तथा भाई सहित वनवास को गया है।

(राम) वनवास के लिए गया है!—कैकेयी के कहे इस वाक्य को सोचकर भरत ऐसे हुए, जैसे उन्होने आग निगली हो। वे आशकित होकर बोले—अहो! मेरे पापकर्म कितने भयकर है? न जाने, मुझे अभी और क्या क्या समाचार सुनने हैं।

पीडा से मौन रहनेवाले उस पुरुष श्रेष्ठ (भरत) ने पूछा—वीरवलय धारी उन राम का अरण्य मे जाना क्या किसी बुरे कार्य के परिणामस्वरूप हुआ? या यह दैवी कोप का परिणाम है? अथवा अति बलवान् नियति का विधान है? किस कारण से यह हुआ?

यदि राम स्वय कोई बुरा कार्य भी करे, तो वह (कार्य) इस संसार के सब प्राणियो के लिए माता के कार्य (जैसे अपने बच्चे के हाथ पैर दबाकर उसके मुह मे औषध आदि डालने के) जैसे ही हितकारी होगा। राम का वन गमन क्या पिता के स्वर्ग सिधारने के पश्चात् हुआ या उससे पूर्व हुआ? कृपया बताओ।

तब कैकेयी ने उत्तर दिया—राम का वन गमन गुरुजनो के प्रति कोई अपराध करने के कारण नही हुआ। गर्व के कारण भी उसे वन नही जाना पडा। दैवी प्रकोप से भी यह नही हुआ। सूर्य समान रविवश मे उत्पन्न चक्रवर्त्ती (दशरथ) के जीवित रहते समय ही वह वन को चला गया।

तब भरत ने प्रश्न किया—राम का अपना किया हुआ कोई अपराध नही, शत्रुओ की दी हुई पराजय नही, दैवी प्रकोप भी नही है। तो भी पिता के जीवित रहते हुए

उनका अरण्य जाना पड़ा—इसका क्या कारण है ? उन चक्रवर्त्ती के प्राण छोड़ने का क्या कारण हुआ ?

तब कैकयी ने कहा—चक्रवर्त्ती ने मुझे दो वर दिये थे। उनके दिये वरों में से एक से मैंने राम को वन भेजा, दूसरे से तुम्हारे लिए राज्य प्राप्त किया। चक्रवर्त्ती इसको नहीं सह सके, अतः उन्होंने अपने प्राण छोड़ दिये।

भरत के कर जो अवतक उनके सिर पर जुड़े हुए थे, कैकेयी के यह वचन समाप्त होने के पूर्व ही, उनके कानों पर आ लगे (अर्थात्, उन्होंने अपने कान बन्द कर लिये)। उनकी भौंहें टेढ़ी होकर काँपने लगीं। उनके निःश्वासों से चिनगारियाँ निकलने लगीं तथा उनकी आँखों से रक्त बिंदु चू पड़े।

उनके कपाल फड़क उठे। रोमकूपों के चारों ओर अग्निकण छा गये। धूम भी (उनके शरीर से) निकलकर चारों ओर छा गया। ओठ दब गये। मेघ समान उदार गुण से युक्त उनके दीर्घ हाथ वज्र को भी भीत करते हुए परस्पर आघात कर उठे।

भरत अपने पैरों को बारी बारी से धरती पर पटकते थे, उससे मेरु पर्वत सहित यह धरती इस प्रकार दोलायमान हो उठी, जैसे हाथी को लादकर चलनेवाली लंबे मस्तूल से युक्त कोई नौका, आँधी के चलने पर समुद्र के मध्य ऊब डूब हो उठती है।

(भरत का क्रोध देखकर) देवता डर गये। असुर बड़े भय से मरने लगे। दिग्गजों ने अपने मदस्रावी रन्ध्रों को बंद कर लिया। सूर्य अस्त हो गया। कठोर क्रोध वाले यम ने भी अपनी आँखें बंद कर लीं।

घोर क्रोध से भरे सिंह सदृश भरत ने क्रूर कार्य करनेवाली उस कैकयी को अपनी माता नहीं समझा। फिर, उसको इसलिए नहीं मारा कि उससे रामचंद्र क्रोध करेंगे। यों चुप रहकर फिर उसे देखकर वज्रघोष से ये वचन कहे—

तुम्हारी क्रूरता के कारण मेरे पिता मर गये। मेरे भाई तपोव्रत धारण कर वन में चले गये। मैं, जो (इस प्रकार के वर माँगनेवाले तुम्हारे) मुँह को चीरे बिना (तुम्हारे वर माँगने की) वह सुनता हुआ खड़ा हूँ, बड़ी इच्छा से राज्य का शासन करनेवाला हूँ!

(मेरे पिता और मेरे भ्राता को दूर करनेवाली) तुम अभी यहीं हो। (तुम्हारे वचन सुनता हुआ) मैं भी यहीं हूँ। क्षण मात्र में ही तुम्हें मारकर नहीं गिरा देता। मैं इसी विचार से डरता हूँ कि जगत् की माता के समान वे मेरे भाई क्रोध करेंगे। अन्यथा, तुम्हारा माता का पद (तुम्हारी हत्या करने से) मुझे कभी रोक नहीं सकता था।

एक चक्रवर्त्ती ऐसा है, जो कठोर वचन सुनकर प्राण छोड़ देता है। एक वीर भी ऐसा है, जो अपना राज्य त्यागकर चला जाता है और एक भरत भी ऐसा है, जो अपनी माता के द्वारा प्राप्त राज्य का शासन करनेवाला है। ऐसा हो, तो धर्म का मार्ग ही प्रतिकूल है और वह हमारे लिए चाहने योग्य नहीं है।

यदि भविष्य में ऐसा अपवाद उत्पन्न हो कि—'भरत ने वचनाशील माता के क्रूर षड्यन्त्र के कारण आदिकाल से आये हुए अपने कुल महत्त्व को मिटा दिया और उस (कुल)

का अनुपम अपवाद का पात्र बना दिया—तो इससे बढ़कर प्रतिकूल कार्य और क्या हो सकता है ?

तुमने पातिव्रत्य नामक धर्म की सीमा को मिटा दिया। तुमको अपने गृह में आश्रय देनेवाले, तीक्ष्ण भाला धारण करनेवाले चक्रवर्ती का तुमने समूल विनाश कर दिया और इस प्रकार के वर माँगे। तुम लोगों को काटनेवाली नागिन हो। अब और तुम किसको काटना चाहती हो ?

तुमने अपने पति के प्राण पी डाले। तुम कोई व्याधि नहीं हो, किन्तु कोई पिशाचिनी हो। (भाव है, अगर व्याधि होती, तो वह शरीर में उत्पन्न होकर शरीर के मिटने के साथ मिट जाती है। पिशाचिनी शरीर के मिटाने के बाद भी जीवित रहती है। अतः, कैकेयी पिशाचिनी तुल्य है)। क्या तुम अब भी जीवित रहने योग्य हो ? तुम्हारी मृत्यु हो जाय। तुमने (पहले) मुझे अपना स्तन पिलाकर बड़ा किया। (अब) अमिट अपयश दिया। मेरी माँ बनी हुई तुम न जाने मुझे और क्या देनेवाली हो।

कभी असत्य न बोलनेवाले चक्रवर्ती को तुमने वचन से मार डाला। अमिट अपवाद पाकर भी तुमने राज्य प्राप्त करके सुखी जीवन व्यतीत करने का प्रयत्न किया है। तुमने राम को अरण्य भेजकर गाय और उसके बछड़ों को पृथक् कर दिया (अर्थात्, राम को नगर के लोगों से पृथक् किया)। ऐसा करते हुए तुम्हारा मन किंचित् भी दुःखी नहीं हुआ।

चक्रवर्ती, अपने दिये हुए वरों को न टालकर स्वयं मर गये। उनके पुत्र राम अपने पिता की आज्ञा को ही धर्म मानकर वन चले गये। किंतु उन (राम) का भाई होकर मैंने माता के षड्यन्त्र से संसार का राज्य प्राप्त किया, ऐसा अपयश पाना क्या ठीक है ?

जिनको राज्य करने का अधिकार है, वे राम—यह न सोचकर कि उनके चले जाने से पिता प्राण त्याग देंगे और यह मानकर कि अपयश का पात्र करनेवाली कैकेयी का यह प्रतिकूल विचार मेरे ही (अर्थात्, भरत के ही) कारण उत्पन्न हुआ है तथा मैं (सचमुच) राज्य करनेवाला हूँ—स्वयं वन को चले गये। यदि वे (राम) ऐसा नहीं मानते, तो वे कदापि वन जाने का विचार नहीं करते।

प्रसिद्ध पुरातन कुल में उत्पन्न चक्रवर्ती का विचार जैसा भी रहा हो, किन्तु वे (राम) यदि यह सोचें कि मेरी सेवा में निरत रहनेवाला भरत (मेरे प्रति) क्रूर विचार रखता है, तो इसके लिए मेरी माता का राज्य माँगना ही पर्याप्त कारण है।

मेरे ज्येष्ठ भ्राता, वन में अपनी अंजलि रूपी पात्र में शाक आदि भोजन करें और मैं क्रूर बनकर, अपना जीवन रखे हुए, उत्तम (स्वर्ण के) पात्र में श्रेष्ठ धान के धवल अन्न को अमृत समान घृत से सिक्त करके भोजन करता रहूँ ? अहो! संसार के लोग इसपर क्या क्या नहीं सोचेंगे ?

धनुर्भूषित कंधवाले राम वन को चले गये—यह समाचार सुनकर सद्गुण चक्रवर्ती ने अपने प्राण छोड़ दिये। किंतु विष समान इस नारी को मारे बिना तथा स्वयं मरे बिना जीवित रहनेवाला मैं ऐसे रो रहा हूँ जैसे रामचन्द्र पर मुझे बहुत प्रेम हो। अहो, मैं कितने घोर अपयश का पात्र बन गया हूँ ?

मरा राज्य करना लोग स्वीकार नही करगे। म भी जेस जीवन की इच्छा करक अपयश को स्वीकार नही करूँगा। इससे उत्पन्न होनेवाला अपयश किमी भी उपाय से नहा मिटगा। अधम से युक्त इम नगर म लक्ष्मी निवास नही करेगी। अहा! तुमने (यह सब उत्पात करने क लिए) किमके साथ मन्त्रणा की? तुम्हे परामर्श देनेवाले कोन ह? धर्म का समूल नाश करके तुम्हे क्या मिला?

तुम्हारे क्रूर वचन के द्वारा मेने अपने पिता का मारा (अथात्, पिता की मृत्यु का निमित्तकारण म बना)। ज्येष्ठ भ्राता का अरण्य म भेज दिया। अब ससार का राज्य करने के लिए आ उपस्थित हुआ हूँ। तुम पर क्या दोष डाले? तुम्हारा क्या अपयश होगा? पर क्या किमी दिन मेरा अपयश भी मिट सकेगा?

अब लोग देख कि मे क्या करने जा रहा हूँ। जबतक लाग (मेर स्वभाव का) नही देखेंगे, तबतक मेरी निन्दा करेंगे। किन्तु ह माता! तुमने व्यर्थ अपवाद प्राप्त किया (जो किमी भी रूप म नही मिटनेवाला ह)। मेरा यह विचार ह कि विष, विना उसे खाय किमी को नही मारता, इमलिए अबतक म जीवित हूँ। अन्यथा म प्राण नही रखता (भाव यह है कि जिस प्रकार विष खाने पर ही मारता ह, उसी प्रकार जब म राज्य स्वीकार करूँ, तभी मेरा अपवाद होगा, अन्यथा नही)।

मे तुम्हारे पाप पूर्ण नरक तुल्य उदर म रहा—इससे जा पाप मुझे लगा ह, उस मिटाना ह। इमलिए, सत्धर्म के दवता को साक्षी बनाकर, त्रिलोक के निवासियो के देखत हुए, म घोर तपस्या करूँगा।

ज्ञानी लोगो के वचन को ही मे सुनता हूँ। यदि तुम अपने न मिटनेवाले प्राणों का त्याग दोगी, तो तुम्हारे कार्य बुद्धिपूर्वक किये गये ही माने जायेंगे। उससे तुम पुन शुद्ध बन जाओगी। ससार म जन्म लेने का लाभ तुम्हे मिलेगा। इमके अतिरिक्त तुम्हारे निस्तार का अन्य कोइ उपाय नही है।

राम के अनुज (भरत) ने फिर यह कहकर कि मे अब अकथनीय क्रूरता स युक्त इस पापिन के निकट नही रहूँगा, अपनी अपूर्व मनोपीडा को मिटाने के लिए पवित्र स्वभाववाली कौशल्या क उत्तम चरणो को नमस्कार करूँगा, उठकर चले गये।

पौरुष स युक्त भरत कौशल्या के निकट जा पहुँचे। वहाँ जाकर धडाम स ऐसे गिरे, जैसे धरती फट गई हो और अपने उज्ज्वल करो से कौशल्या के कमल जैसे चरणो को पकडकर रोने लगे।

उस समय भरत य वचन कहकर अश्रु बहाने लगे, जिसे देखकर स्वर्ग के निवासी भी रो उठे—मेरे पिता किस लोक म गये ह? मेरे ज्येष्ठ भाई कहाँ गये हैं? क्या यह सारा उत्पात देखने के लिए अकेला मे ही आया हूँ? हाय! मेरे हृदय की इस वदना को आप ही मिटाये।

भरत इस प्रकार लोट गये कि उनके कधे धूलि से भर गये। वे बोले—में अपने प्रभु (राम) क चरणो के दर्शन नही पा सका। क्या उन राम को जो इस पृथ्वी के स्वामी हैं, इस देश को छोडकर जाना चाहिए था? क्या आपने उनका वन जाने से रोका नही? (आपने) यह भूल की।

(राम के प्रति ऐसा) क्रूर कृत्य करनेवाले सब लोग अभीतक मिटे नहीं हैं। इस सम्बन्ध में हम क्या कहें ? क्रूरा (कैकेयी) के गर्भ में उत्पन्न मैं प्राण त्याग करूँगा और अपने मन की पीडा को दूर करूँगा। भरत ने पीडित होकर यों कहा।

मरकतमय पर्वत के जैसे बढे हुए कंधोंवाले भरत ने फिर कहा—रथ पर आरूढ होकर ससार के अधकार को दूर करनेवाले उस सूर्य से लेकर उज्ज्वल प्रकाश युक्त इस पुरातन राजवश में भरत नामक एक अपयशकारी कलक भी उत्पन्न हुआ।

जानु तक लबमान दीर्घ भुजाओंवाले धर्म स्वरूपी भरत ने पुन आगे कहा—करवालधारी दशरथ स्वर्ग सिधारे। उनके अनुपम ज्येष्ठ कुमार वन को सिधारे। ऐसे अवलबों से रहित होकर यह कोशल देश घोर दु ख से पीडित होनेवाला है।

कुलीनता, क्षमा, पातिव्रत्य, इन गुणों से पूर्ण कौशल्या ने रोनेवाले पुरुषवर भरत को देखा और यह जानकर कि भरत में राज्य पाने की इच्छा नहीं है, उसका मन कलक रहित है, इसलिए उनका (भरत पर सदेह के कारण उत्पन्न) क्रोध दूर हो गया। फिर वे अधीर होकर बोली—

उन कौशल्या ने यह जाना कि भरत का निष्कलक मन अपराध जन्य पीडा से मुक्त है। अत , उन (भरत) से बोली कि हे तात ! कदाचित् तुमको कैकेयी का छल विदित नहीं था।

कौशल्या के चरणों पर गिरे हुए भरत, उनके वह वचन सुनते ही, पकडे गये सिंह के समान घबराकर उठे और रोते हुए ऐसी शपथें खाने लगे कि नित्य प्रवर्त्तमान धर्म देवता भी उनकी बात सुनकर कॉप उठा।

धर्म का विनाश करनेवाला, किंचित् भी दया से रहित, दूसरों के द्वार पर (उसकी नारी का अपहरण करने के लिए) खडा रहनेवाला, दूसरों पर क्रोध करनेवाला क्रूरता के साथ ससार के प्राणियों को मारकर जीवित रहनेवाला, विरागी महातपस्वियों के प्रति क्रूर कार्य करनेवाला,

'कुरा' आदि पुष्पों से भूषित केशोंवाली युवती को करवाल से मारनेवाला, राजा का साथी बनकर युद्ध क्षेत्र में जाकर फिर भय से शत्रुओं को पीठ दिखाकर भागनेवाला, भिक्षा में स्वल्प धन माँगकर हाथ में रखनेवाले से उस धन को छीननेवाला,

पुष्ट तथा शीतल तुलसी की माला से भूषित भगवान् (विष्णु) के बारे में 'वह भगवान् परम तत्त्व नहीं है'—ऐसा वचन कहनेवाला, धर्म मार्ग से न हटनेवाले ब्राह्मणों के प्रति अपराध करनेवाला तथा अपौरुषेय एव त्रुटिहीन वेदों के सबध में यह कहनेवाला कि 'कई व्यक्तियों की कल्पना प्रसूत रचना ही वेद है',

अपनी माता के भूखी रहते हुए, स्वय अपने पापिष्ठ उदर कुहर को अन्न से भरनेवाला, अपने स्वामी को युद्ध भूमि में छोडकर भागनेवाला, ये सब लोग जिस नरक की आग में गिरते हैं, (यदि कैकेयी के षड्यन्त्र में मेरा भाग रहा हो, तो) मैं भी उसी नरक में गिरूँ।

अपने प्राणों के भय के कारण शरण में आये हुए की रक्षा न करनेवाला सदा धर्म को विस्मृत करके आचरण करनेवाला, जो नरक पाते हैं, उसी में मैं भी गिरूँ।

न्यायालय म झूठी साक्षी दनेवाला, युद्ध स डरकर भागनेवाले व्यक्ति क हाथ की वस्तुओं को स्वय छिपकर छीन लेनेवाला, विपदा म पडकर पीडित हुए व्यक्ति का और अधिक पीडा दनेवाला—ये लोग जिम नरक का पात हे, उसी म मे भी गिरूँ।

ब्राह्मणा के निवास को आग स जलानेवाला, बालकों की हत्या करनेवाला न्यायालय म (न्यायाधीश क पद स) दोषपूर्ण न्याय करनेवाला, दवताओं की निन्दा करनेवाला—ये लोग जो नरक पाते ह, उसी म मे भी पडूँ।

बछडे को दूध पीने न देकर, उसको भूखा ही रखकर गाय का सब दूध दुहकर स्वय पीनेवाला भीड म दूसरो की वस्तुओं को चुरानेवाला, दूसरो क किये हुए उपकार को भूलकर उनकी निंदा करनेवाला, न्यायहीन जिह्वा से युक्त व्यक्ति—ये जो नरक पाते ह, (अगर कैकेयी के षड्यन्त्र म मेरा भाग रहा हो, तो) मुझे भी वही नरक मिले।

यात्रा मे अपन साथ आनेवाली मधुरभाषिणी नारी के दूसरो के द्वारा सताये जाने पर स्वय अपने प्राणो की रक्षा करने के लिए उसे छोडकर भाग जानेवाला, अपने पास रहनेवाले भूखे व्यक्तियो की भूख मिटाये विना स्वय भोजन करनेवाला—ये सब जिस दुर्गति को प्राप्त होत ह, वही दुर्गति मेरी भी हो।

(यदि मेरे कहने से मेरी माँ ने राम का वन भेजा हो, तो) शस्त्रो स सुसज्जित होकर युद्ध करने के लिए युद्धक्षेत्र म जाकर अपने प्राणो के मोह म पडकर शत्रुओ क सम्मुख युद्ध न करके शिर झुका दनेवाला तथा धर्म की सीमा लाँघकर (प्रजा से) धन सग्रह करने वाला राजा—जा नरक पाते हे, वही नरक मुझे भी मिले।

(यदि कैकेयी के षड्यन्त्र म मेरा भी हाथ रहा हो, तो) उत्तम राज्य को पाकर मनमाना आचरण करत हुए नीच कार्य करनेवाले राजा के समान ही मै भी परपरा से प्राप्त धर्म का त्याग कर अपयशकारक अधर्म मार्ग म चलनेवाला हो जाऊँ।

जो राजा, अपनी रक्षा मे रहनेवाली प्रजा के व्याकुल होकर अस्त व्यस्त होत हुए, 'वञ्जि' पुष्पो की विजयसूचक माला पहने हुए, शत्रु क सम्मुख 'वाह' पुष्पो की माला[1] पहनकर खडा हो, उसकी जो दुर्गति होती है, वही दुर्गति मेरी हो।

(यदि कैकयी के षड्यन्त्र म मेरा भाग रहा हो, तो) कन्या का मान भग करने का प्रयत्न करनेवाला, गुरु पत्नी की ओर कामुक दृष्टि डालनेवाला, मद्यपान करनेवाला क्षुद्र चौर्य कर्म स स्वर्ण प्राप्त करनेवाला (अर्थात्, सोना चुरानेवाला)—ये लोग जैसी दुर्गति पात ह, म भी वैसी ही दुर्गति पाऊँ।

उत्तम भोजन पदार्थ को कुत्ते जैसे (अर्थात्, दूसरो से छिपाकर अकेले ही) खानेवाला, 'यह पुरुष नही, स्त्री भी नही हे, यह शक्तिहीन नपुसक ह'—ऐसे अपयश का भाजन बनकर निर्लज्ज हो क्षुद्र कार्य करता हुआ जीवन व्यतीत करनेवाला, महात्माओं का कथन भूलकर सदा पापकर्म म रत रहनेवाला तथा सर्वदा दूसरो की निन्दा करत रहनेवाला—ये सब जो नरक पाते हैं, वही मुझे भी मिले।

[1] वञ्जि पुष्पो का माला विजय सूचक और 'वाह' पुष्पो का माला पराजय-सूचक माना गई है।—अनु०

(यदि कैकयी के षड्यन्त्र म मेरा हाथ हो, तो) दोषहीन प्राचीन वंशों को कलंकित कहकर उनकी निंदा करनेवाला, अकाल के समय म दरिद्र लोगों के कमाये अन्न को बिखेर देनेवाला, सुगंधित भोजन पदार्थों को, समीपस्थ व्यक्तियों को दिये बिना, उनके मुँह म लार टपकाते हुए, स्वयं खानेवाला—जो गति पाते ह, वही गति मुझे भी मिले।

जो व्यक्ति, धनुष म और करवाल से प्रकट किये जानेवाले पराक्रम को व्यर्थ करके, इस नश्वर शरीर को कुछ समय तक सुरक्षित रखने की लालसा से विरोधियों के घर म उनके द्वारा क्रोध के साथ दिये जानेवाले अन्न को अपने हाथ पसारकर माँगता हुआ रहता है, उसकी जो दुर्गति होती ह, वही मेरी भी हो।

कोई व्यक्ति याचक से उसकी माँगी हुई वस्तु 'मेरे पास है'—कहकर भी उसे न दे और यह भी न कहे कि 'मेरे पास वह वस्तु नही है'—ऐसे मूर्ख व्यक्ति को जो नरक मिलता ह, वही नरक मुझे भी मिले।

(यदि राम को वन भेजने म मेरा हाथ रहा हो, तो) जो व्यक्ति शत्रु भयंकर करवाल को अपने दीर्घ हाथ म लेकर युद्धक्षेत्र म जाय और फिर व्याधियों के आवास, दुर्गंध से युक्त इस क्षुद्र देह को बचाने की इच्छा से, मोती समान दाँतोंवाली युवती के देखते हुए, शत्रुओं के सम्मुख सिर झुका दे—उस व्यक्ति की जो दुर्गति होती ह, वही मेरी भी हो।

विशाल गन्ने के खेतों तथा लाल धान के खेतों से युक्त जल समृद्ध देश को, शत्रु के द्वारा हरण किये जाते देखकर भी जो व्यक्ति अपने प्राणों को बचाने के लिए बेडी म बँधे अपने चरणों के साथ शत्रु के सम्मुख खडा रहे, उसकी जो दुर्गति होती है, मेरी भी वही दुर्गति हो।

क्रूर कैकेयी के किये कार्य को यदि म जानता ही हूँ, तो मे भी उन लोगों की दुर्गति को प्राप्त करूँ, जो धर्म से न हटनेवाले अपने पूर्वजों को दुःख देते हुए पाप कर्म करते रहते ह।

इस प्रकार अपने मन की निष्कलंकता को प्रकट करनेवाले भरत को देखकर कौशल्या यों आनंदित हुई, जैसे राज्य त्यागकर वन को गये हुए राम को ही लौट आये हुए देख रही हो। उन्होंने आँसू बहानेवाले भरत को अपने गले से लगा लिया।

कपटहीन उत्तम स्वभाववाले भरत के कार्य को, तथा उनकी माता (कैकयी) के पाप स्वभाव को, पहचानकर दुःख की अधिकता से कौशल्या यों रोईं कि उनके पीन स्तनों से दूध टपकने लगा और उनका मुख सूज गया।

कौशल्या बोली—हे राजाधिराज (भरत)! तुम्हारे कुल के मनु आदि अति पुरातन पूर्व पुरुषों म भी तुम्हारी समता करनेवाले कौन थे? यों कहकर उन्होंने आशीर्वाद दिया। भरत बार बार उनके वचन (अर्थात्, उनका भरत को राजाधिराज कहना) को स्मरण करके द्रवितचित्त होकर रो पडे।

भरत के अनुज (शत्रुघ्न) ने भी, भरत के सद्गुणों को सोचकर प्रेम से पिघलनेवाली माता (कौशल्या) के चरणों पर नत हुआ और यथाविधि नमस्कार करके व्याकुल मन से खडा रहा। इसी समय वसिष्ठ मुनिवर वहाँ जा पहुँचे।

तब भरत उन महातपस्वी क चरणा पर गिरकर बोला—मेरे पिता कहॉ ह ? बताइए। तब वसिष्ठ दु ख की अधिकता के कारण कुछ उत्तर न दे सके और व्याकुल हो ऑखो से अश्रु बहात हुए भरत को गले से लगा लिया।

वसिष्ठ ने कहा—ह दोष रहित कुमार। उदारगुणवाले तुम्हारे पिता क प्राण छाडे, आज सात दिन हो गये। तुम पुत्रो क द्वारा किय जानेवाले कार्य (अतिम क्रिया) करो। तब कौशल्या ने उनको (उस स्थान पर, जहॉ दशरथ की देह रखी थी) जाने की आज्ञा दी।

पिता की देह को देखन की अनुमति देनवाली माता (कौशल्या) के चरणो का नमस्कार करके भरत, सुन्दर दीर्घ जटाओवाले पवित्र वसिष्ठ मुनि के साथ चले और अपने प्राण देकर धर्म की रक्षा करनेवाले चक्रवर्त्ती दशरथ के अति प्रशसित साकार धर्म जैसे शरीर को देखा।

भरत दहाड मारकर रो पडे और धरती पर गिर पडे और महिमामय आज्ञाचक्र का प्रवर्त्तित करनेवाले (दशरथ) क तैल पात्र म रखे हुए सोने के रग के शरीर को अश्रुओ से धो दिया।

चारा वदो क ज्ञाता ब्राह्मणो ने आदर क साथ दशरथ के शरीर को उस स्थान से अपने हाथ से उठाया और स्वर्ण से निमित एक विमान म रखा। तब राजा के योग्य नगाडे बजने लगे।

नगर क लाग, वेला म बॅध समुद्र के समान रुदन से उत्पन्न ध्वनि करत हुए व्याकुलप्राण हो रह। राजाओ का समूह चारो ओर हाथ जोडकर खडा रहा। ऐसे समय म, गले म रस्सी से युक्त एक हाथी पर उस देह को रखकर लोग ले चले।

सुन्दर तथा विशाल रथ को चलानेवाले सुमत्र के साथ, मत्रणा करने म निपुण मत्री तथा अनुपम सेनापति, मित्रवग तथा अन्य लोग व्याकुल हो चारो ओर से रो रह थ।

शख, पटल, शृङ्गी आदि वाद्य सब दिशाआ म उसी प्रकार बज उठे, जिस प्रकार मघो क आश्रय बननेवाले ऊँच प्रासादो से युक्त उस नगर की स्त्रियॉ, अपन उमडते नेत्रो पर हाथ स मारती हुई रो रही थी।

घोडे, हाथी, उज्ज्वल रथ, राजा, चारो वदो क ज्ञाता ब्राह्मण, उस देह का लेकर, दशरथ की रानियो के साथ, स्वच्छ वीचियो से पूर्ण जल से समृद्ध सरयू नदी पर जा पहुँचे।

शास्त्रज्ञ पुरोहितो ने यथाविधि सब कर्म कराके चिता सजाइ। उस पर दशरथ की दह को रखा। फिर भरत से कहा—हे वीर। शास्त्रोक्त विधान के अनुसार तुम अपने पिता का अतिम सस्कार पूण करो।

यो कहने पर भरत पिता का अतिम सस्कार करने क लिए प्रस्तुत हुए। उस समय उनका देखकर वसिष्ठ ने कहा—तुम्हारी माता के दुगुण के कारण चक्रवर्त्ती (दशरथ) अत्यत पीडित होकर, तुमको भी त्याग कर (अर्थात्, तुम्हारे पुत्रत्व सबध को तोडकर) चल बसे।

हे उत्तम कुमार! मानो यह दिखाने के लिए ही कि तुम्हारे जन्म से परंपरा से आगत धर्म परिवर्तित हो गया है, तुमको त्यागकर वे मृत हुए। यह वचन सुनकर भरत मृत से हो गये। ऐसा लगा कि वहाँ जो खड़े थे, असली भरत नहीं थे, कोई और थे।

महान् तपस्वी यों कहकर निःश्वास भरते खड़े रहे। तब, पर्वताकार कंधोंवाले भरत, 'अच्छा है, अच्छा है!'—कहकर मुस्करा उठे।

जैसे काला सर्प घोर वज्र घोष से भीत होकर काँप उठा हो, उसी प्रकार भरत काँपकर धरती पर गिर पड़े। उनका मन बड़ी व्याकुलता से तड़प उठा। उनके हृदय का दुःख रोकने पर भी न रुकता था। वे आँसू बहाते हुए कहने लगे—

मृतक संस्कार करने का अधिकार मुझे नहीं था। ऐसा मैं क्या राज्य का शासन करने की योग्यता रखता हूँ? सूर्यकुल में उत्पन्न मेरे पिता से पूर्व उत्पन्न राजाओं में मुझ से बढ़कर कीर्त्तिमान् कौन हुए?

हे कमलभव (ब्रह्मा) के पुत्र (वसिष्ठ)! मेरे पूर्वज दोषरहित, धर्म के अप्रतिकूल मार्ग पर चलकर स्वर्ग में गये। पर मैं तो अपने बालकपन में ही व्यर्थ जीवन धारण करनेवाला हो गया हूँ। हाय!

मैं घने पत्तों से युक्त प्रसिद्ध केतकी पुष्पों के मध्य स्थित रहकर निस्सार तथा गंधहीन वस्तु के समान हो गया हूँ। मुझे जन्म देनेवाली मेरी जननी ने मेरा जो उपकार किया है, वह (उपकार) भी कैसा है!

चारों वेदों में प्रतिपादित विधान के अनुसार सब कार्य कराने में समर्थ वसिष्ठ उपर्युक्त प्रकार से कहकर दुःखी हो खड़े रहनेवाले, पुष्पमाला भूषित भरत के अनुज (शत्रुघ्न) के द्वारा उस समय यथाविधि प्रेत संस्कार कराया।[1]

उत्तम पुष्पलता सदृश राजपत्नियाँ अपने हार, आभरण तथा लचकनेवाली कटि के चमकते हुए, इस प्रकार चिता की अग्नि में प्रविष्ट हुई, जिस प्रकार पर्वत कंदरा में निवास करनेवाले कलापियों का समुदाय पत्रहीन कमल पुष्पों से भरे जलाशय में प्रविष्ट हुआ हो। (भाव है, प्रधान महिषी कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा इनके अतिरिक्त अन्य सब पत्नियों ने सहगमन किया)।

उन स्त्रियों के वदन कमल पुष्प तथा चंद्र के समान शोभायमान हो रहे थे। चिता की अग्नि, उनके पति (दशरथ) का देह स्पर्श करके अत्यंत शीतल लग रही थी। वे राजपत्नियाँ मन की पीड़ा से रहित होकर, पति के साथ सहगमन करनेवाली नारियों की सद्गति को प्राप्त हुईं।

इसके पश्चात् भरत ने शत्रुघ्न के द्वारा पिता के सब संस्कार कराये। फिर, माता के क्रूर कृत्य के कारण क्षत्रियोचित जीवन से वंचित होकर उपमाहीन शोक रूपी समुद्र के साथ अपने निवास में जा पहुँचे।

१ राजा दशरथ ने कहा था कि कैकेयी को मैं त्याग देता हूँ, भरत को भी मैं अपना पुत्र नहीं मानता। इसी कारण से वसिष्ठ मुनि ने शत्रुघ्न से दशरथ का अग्नि संस्कार कराया।—अनु०

चक्रवर्ती के कुमार ने दस दिन तक किये जानेवाले पितृकर्म को, एक एक दिन को एक एक युग के समान व्यतीत करते हुए तथा अत्यन्त वेदना के साथ, शास्त्रोक्त विधान से पूर्ण किया।

सब पितृ संस्कार पूर्ण कराके, अपने कार्य भार से मुक्त होकर महान् तपस्वी वसिष्ठ त्रिसूत्रयुक्त यज्ञोपवीत से शोभायमान ब्राह्मणों के द्वारा अनुसृत होते हुए, विजयी भाले को धारण करनेवाले भरत के निकट पहुँचे।

कुल क्रमागत मंत्री यह विचार कर कि विना राजा के राज्य का रहना उचित नहीं है, भरत को राजा बनाने का दृढ निश्चय करके, उस राज्य के बड़े ज्ञानवान् लोगों को साथ लेकर आये। (१—१४५)

●

अध्याय १०

वन प्रस्थान पटल

मंत्रणा कुशल मंत्री (भरत के प्रति) प्रेम से भरे हृदय के साथ यह सोचते हुए कि परम्परा से प्राप्त वेदों को अधिगत करनेवाले तथा तपस्या के सब तत्त्वों को जाननेवाले वसिष्ठ उस राजसभा में उपस्थित हैं, शीघ्र सभा में आ पहुँचे और भरत को नमस्कार किया।

तपस्या के प्रभाव से गगन में भी संचरण करने की शक्ति रखनेवाले मुनियों के साथ मंत्री, नगर के लोग, सेनापति, राजा तथा सब बुद्धिमान् एवं विवेकी पुरुष, सुन्दर वीर (भरत) को यथाक्रम घेरकर बैठ गये।

जब सब लोग इस प्रकार बैठे हुए थे, तब ज्ञानी तथा रथ चलाने में दक्ष सुमंत्र ने विजयी चक्रवर्ती के कुमार (भरत) को अपने मन के विचार सूचित करने के उद्देश्य से सर्वज्ञ मुनिवर (वसिष्ठ) के मुख की ओर देखा।

तपस्वी वसिष्ठ ने सुमंत्र के अपनी ओर देखने से, वचनों के विना ही, उसके मन के आशय को जान लिया। फिर चक्रवर्ती के कुमार से बोले—राज्य की रक्षा करो। यही तुम्हारा कर्त्तव्य है।

(वसिष्ठ ने भरत से कहा—) हे दोष रहित ! गुणवान्, वेदज्ञ, अपूर्व तपस्या संपन्न, वृद्ध, नरेश आदि जो तुम्हारे पास आये हैं, इनके आगमन का प्रयोजन यही है कि नीति तथा धर्म को स्थिर बनायें (और उसके लिए तुम्हें राजा बनायें)। तुम इस बात को अपने मन में समझ लो।

धर्म नामक अनुपम वस्तु का सबसे आचरण कराना तथा उसको स्थापित करना कठिन कार्य है। हे तात ! तुम इस विषय को भली भाँति समझ लो। यह धर्म इहलोक और परलोक—दोनों का प्रदान करनेवाला है। स्वच्छ चित्तवाले ही इसका पालन कर सकते हैं।

विचार करने पर विदित होता है कि राज्य में न्याय करनेवाले, रक्षण करनेवाले राजा के अभाव में यह संसार सब की इच्छा के पात्र सूर्य से विहीन दिन जैसा होता है, नक्षत्रों से घिरे हुए चंद्र से विहीन रात्रि जैसी होती है तथा अपने अंतर में प्राणों से विहीन शरीर जैसा होता है।

देवलोक में अत्याचार करनेवाले बलवान असुरों के देश में, तथा लोक कहलाने वाले सब प्रदेशों में, रक्षा करनेवाले राजा के बिना कोई कार्य नहीं होता है। यह हम देखते हैं।

उचित रीति से विचार करने पर विदित होता है कि ब्रह्मा के द्वारा बनाये गये धरती तथा स्वर्ग में निवास करनेवाले जंगम तथा स्थावर पदार्थ कभी शासक बिना नहीं रहते।

कमलभव ब्रह्मा से लेकर सब पुण्य पुरुषों ने जिस वंश की प्रशंसा की है, ऐसे (तुम्हारे) वंश के लोगों ने अबतक इस संसार की रक्षा की है। अब ऐसे रक्षक के अभाव में यह संसार, उज्ज्वल समुद्र में टूटी हुई नौका के समान हो गया है।

हे तात! तुम्हारे पिता स्वर्ग सिधारे। तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता राज्य छोड़कर चले गये। अनन्त वैभव से युक्त यह विशाल राज्य तुम्हारी माता के वर से तुम्हें मिला है, इस राज्य पर तुम शासन करो। यही हमारी सलाह है—यों वसिष्ठ ने कहा।

ज्यों ही मुनिवर वसिष्ठ ने कहा कि इस राज्य पर तुम शासन करो, त्यों ही भरत अपने नेत्रों से निर्झर के समान अश्रुधारा बहाते हुए, 'विष खाओ' कहने से भयभीत होकर काँपनेवाले से भी अधिक भीत होकर काँप उठे।

(वसिष्ठ के वचन सुनकर) भरत का मन काँप उठा। कंठ गद्गद हो उठा। नयन मुकुलित हो गये। स्त्रियों के जैसे ही उनका हृदय द्रवित हो उठा। उनके प्राण व्याकुल हुए। कुछ काल यों मूच्छित रहने के बाद जब उनमें प्रज्ञा आई, तब वे उस सभा में स्थित लोगों से अपने विचार कहने लगे—

तीनों लोकों के आदिकारण बने हुए, मेरे ज्येष्ठ भ्राता बनकर उत्पन्न हुए (श्रीराम) के रहते हुए मैं राज्य करूँ। अहो! यह श्रेष्ठ पुरुषों का धर्मोपदेश हो गया। फिर तो अब मेरी जननी के कार्य में भी कोई दोष नहीं रहा।

क्रूरता से युक्त मेरी जननी ने जो कार्य किया, उसके बारे में, सदाचार में निरत आपलोग कहते हैं कि यह उचित है। क्या इस समय, कृतयुग के पश्चात् आनेवाले दोनों युग (द्वापर और त्रेता युग) व्यतीत होकर अंतिम युग (कलियुग) ही आ गया है?

कमलभव ब्रह्मा के सब लोकों में क्या कहीं भी बड़े भाई के रहते हुए छोटा भाई यथाविधि राज्य का शासन करता है?—राजसभा में रहनेवाले आपलोग ही बतायें।

कदाचित् आपलोग इस कार्य का न्याय संगत भी प्रमाणित कर दें, तो भी मैं इस संसार के प्राणियों के शासन भार का वहन करता हुआ जीवित नहीं रहूँगा। किन्तु, मैं उनको (अर्थात्, राम को) ले आऊँगा और पुष्पमाला भूषित किरीट, आदि काल से आगत नीति के अनुसार, उन्हीं को पहनाऊँगा। यह आप देखेंगे।

यदि मै उन (राम) को नहीं ले आ सकूँगा, तो दुर्गम अरण्य में रहकर यथाविधि कठोर तपस्या करूँगा। यदि और कोई बात कहकर आपलोग मुझे विवश करने का प्रयत्न करेंगे, तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगा—इस प्रकार भरत ने कहा।

महिमा में श्रेष्ठ चक्रवर्त्ती (दशरथ) जीवित रहते समय भी प्रभु (राम) ने रत्नमय किरीट को धारण करना स्वीकार किया। किन्तु, हे उत्तमशील भरत! तुम तो, पिता के स्वर्ग गमन के कारण प्राप्त हुए राज्य का भी अस्वीकार कर रहे हो। राजकुल के पुत्रों में तुम्हारे समान (त्यागी) कौन है?

आज्ञा चक्र प्रवर्त्तित करना (अर्थात्, न्याय पूर्ण शासन करना), धर्म की रक्षा करना, यज्ञ करना— इनके द्वारा तुम्हें अपना यश बढ़ाना आवश्यक नहीं है। चतुर्दश भुवन मिट जाने पर भी तुम्हारा बड़ा यश शाश्वत रहेगा—इस प्रकार कहकर उन सभासदों ने भरत को आशीर्वाद दिये।

भरत ने अपने अनुज (शत्रुघ्न) को बुलाकर कहा—मेघ गर्जन के समान नगाड़े की ध्वनि करके, यह घोषणा कराओ कि इस राज्य के धार्मिक प्रभु (राम) को हम लौटा ले आनेवाले हैं और सारी सेना को यात्रा के लिए तैयार करो।

सद्गुण भरत की आज्ञा से शत्रुघ्न ने वैसी घोषणा करा दी, तब दुःख में डूबे हुए उस विशाल नगर के लोग यों आनन्द घोष कर उठे कि मानों उनके प्राणहीन शरीर पर वचनरूपी अमृत छिड़क दिया गया हो।

'रामचन्द्र स्वर्णमुकुट धारण करनेवाले हैं'— यह घोषणा होते ही पंचेन्द्रियों का दमन करनेवाले मुनियों से लेकर सभी लोग महान् आनन्द से भर गये। (रामचन्द्र को लौटा लाने की) वह समाचार कानों के लिए दिव्य अमृत ही था।

'भरत अपने ज्येष्ठ भ्राता को ध्वजाओं से अलंकृत नगर में ले आनेवाले हैं, उनको ले आने के लिए सेनाएँ भी जायेंगी' —नगाड़े बजा बजाकर इस प्रकार की जो घोषणा की जा रही थी, वह उस वैभवपूर्ण अयोध्या नामक महा समुद्र में चन्द्र के उदय होने के समान थी।

वह बड़ी सेना युगान्त में उमड़नेवाले सप्त समुद्रों के समान उमड़ उठी और घोर शब्द करती हुई आगे बढ़ चली। उससे कैकेयी की कामना समूल विनष्ट हो गई। नगर के लोग भी प्रेम से उमड़ उठे और उनका (रामचन्द्र के वियोग से उत्पन्न) दुःख मिट गया।

अलंकारों से सजे हुए घोड़े, हाथी और रथ, धरती को ढककर छा गये। सेना की अत्युन्नत ध्वजाएँ आकाश तल को ढककर छा गईं। ऊपर उठी हुई धूल कमलभव ब्रह्मा के भी नयनों को ढककर उन्हें अंधा बनाने लगी।

इन्द्रदेव जिस समय इस सृष्टि का अंत करता है, उस समय उठनेवाली ध्वनि से भी अधिक (भयंकर) ध्वनि उत्पन्न हुई। अकलंक रामचन्द्र के दर्शन करने के लिए उठनेवाली उमंग से भी अधिक उल्लसित होकर वह विशाल सेना उमड़ने लगी।

उस सेना का एक अति विशाल सूँड़वाला हाथी अपनी हथिनी के साथ इस प्रकार जा रहा था, मानों राज्य के जैसे ही उस नगर का त्याग कर विविध वृक्षों से

पूण अरण्य की ओर सीता नामक लता का साथ लिये हुए रामचन्द्र रूपी मत्र ही जा रहा हो।

कीचड म उत्पन्न होनेवाले कमल पुष्प भी जिनके सामने शोभाहीन हो जाये, जैसे मृदु चरणो मे युक्त कन्याओ के साथ छोटी हथिनियाँ स्पर्धा करने लगी थी, किन्त कदाचित् उन सुकुमारियो की मृदुगति स हारकर ही माना वे (हथिनियाँ) उन सुन्दरियो को ढोये हुए जा रही थी।

वे दीर्घ ध्वजाएँ, जो मेघो के जल बिंदुओ से इस प्रकार सिंचित हो रही कि पीडादायक सूर्य किरण भी उन (ध्वजाओ) से शीतल हो जाती थी, विजयमाला भूषित धनुधारी राम के राज्याभिषेक का दर्शन न पाने से दुःखी हुई स्त्रियो के समान काँप रही थी।

असख्य राजा लोग हाथियो पर आरूढ होकर इस प्रकार जा रहे थे, जैसे महिमामय उष्ण किरणो से युक्त सूर्य, असख्य रूप लेकर, अपने ऊपर धवल चन्द्रमा को (छत्र के रूप मे) धारण किये, मेघो पर आरूढ होकर, धरती पर उतरा हो और एक दिशा म जा रहा हो।

एक समुद्र रथो पर जा रहा था। दूसरा समुद्र लाल चित्तियो से युक्त मुखवाले, मेघ समान हाथियो पर जा रहा था। अन्य एक काला समुद्र सुन्दर घोडो पर जा रहा था और पदाति सेना रूपी समुद्र धरती पर सर्वत्र छा गया था।

'तारै' (एक वाद्य), ताल, शख, शृङ्गी, चर्म से आवृत 'पत्र' (नामक एक वाद्य), डमरू, भेरी तथा अन्य वाद्य भी उसी प्रकार मौन होकर जा रहे थे, जैसे मूर्खों के समुदाय म ज्ञानी पुरुष (मौन) रहते है।

चिरस्थायी लज्जा के अतिरिक्त शरीर मे अन्य आभरणो को भी दूर किये हुए तथा अप्सराओ की भ्राति उत्पन्न करनेवाली अति सुन्दरी स्त्रियाँ ऐसी लगती थी, जैसी, पुष्पो के झड जाने पर, लताएँ हो।

उस सेना मे, गरजते समुद्र से घिरी सारी पृथ्वी का शासन करनेवाले (चक्रवर्ती दशरथ) का परपरा प्राप्त श्वेतच्छत्र नही था। इसलिए वह सेना, अनेक छोटे छोटे श्वेतच्छत्र रूपी नक्षत्रो से युक्त होकर भी कलाओ से पूर्ण चन्द्रमा से रहित रात्रि के समान लगती थी।

वह सेना अपने विस्तार से दिशाओ को बहुत छोटी बना रही थी, ऐसी सेना को जब वह पृथ्वी वहन कर रही थी, तब गरजते समुद्र से आवृत इस भूमि को एक 'स्त्री' कहना क्या सत्य कथन हो सकता है?

उन नारियो के, शीतल चन्दन, अगरु आदि से शून्य, कुकुम लेप से रहित तथा मुक्ता मालाओ से हीन, (प्रतिक्षण) बढनेवाले मृदुल स्तन किसी भी प्रसाधन से रहित होकर नारिकेल वृक्ष पर लगे हुए कोमल नारिकेल फलो के समान लगते थे।

यौवन से पूर्ण अपनी पत्नियो के स्तनो पर के चदन लेप (के चिह्न) एव सुगधित पुष्प मालाओ से शून्य (पुरुषो के) उन्नत वक्ष, घने लता कुजो तथा झाडो से शून्य पर्वतो के समान लगते थे।

सुगध के सस्कार से शून्य केशोवाली नारियो की, नित्य के शृङ्गार अब न किये

जाने के कारण, अंजन से अनलंकृत आँखें, युद्ध की समाप्ति पर रक्त को धो देने के पश्चात् यम के करवाल जैसी लग रही थी।

नारियों के जघन तट, मेखला की मणियों की झनझनाहट से शून्य होकर पटियों से रहित रथों के समान लगते थे। भ्रमरों से शून्य कमल पुष्पों के समान ही उन नारियों के अरुण पद भी नूपुर की ध्वनि से शून्य थे।

नारियों की लचकनेवाली कटियाँ, पहनने योग्य मुक्ताहार आदि के न पहनने से, अब एक प्रकार (बोझ ढोने के काम) से विश्राम पाकर रहती थी, मानो कैकेयी को जो वर दिये गये थे, वे इन नारियों की कटि के लिए ही फलीभूत हुए हों।

रामचन्द्र के वन चले जाने से शोभाहीन होकर कमल में निवास करनेवाली लक्ष्मी भी तपस्या करने लगी हो तथा मन्मथ भी अपार दुःख सागर में डूब गया हो— इसी प्रकार वह सेना भी शोभाहीन और विनोद एवं हर्ष से रहित थी।[1]

'वह सेना भूमि, आकाश, प्रकाशमान दिशाएँ, इन सबको निगलने के लिए उमड़े हुए प्रलयकालिक समुद्र के समान थी'—ऐसा कहना क्या पर्याप्त होगा? उसकी संख्या का विचार करें, तो यह ज्ञात होगा कि वह सृष्टिकर्त्ता की दृष्टि तथा मन से भी अधिक विशाल थी।

वीचियों से भरे समस्त विशाल नदियों का जल, वह (सेना) पी सकती थी। वीचियों से भरे समुद्र के सारे जल को वह (सेना) पी सकती थी। वह धरती का संतुलन बनाये रखती थी। ऊँचे उठे हुए पर्वतों को भी अपने पद भार से धरती में दबा सकती थी। अतः, वह सेना द्रविड महर्षि (अर्थात्, अगस्त्य) की समता करती थी।

वह अयोध्या नगर आबालवृद्ध सब लोगों के तथा समस्त सेना के निकल जाने के कारण, अगस्त्य मुनि के द्वारा समस्त जल के पिये जाने पर समुद्र जैसा लगता था, वैसा ही शून्यता से भराहुआ पड़ा था।

वह सेना, बड़ी वीचियों से भरी नदियों, खेतों, मनोहर वृक्षों, पर्वतों तथा सैकत श्रेणियों को देखती हुई, मार्ग पर जा रही थी। उस समय वह मार्ग अयोध्या की उस वीथी के समान लगता था, जिसकी सफाई नहीं की गई हो।

मेघ के समान अति क्रोधी मत्त गजों के मदजल की गंध के अतिरिक्त, उस सेना में, पुष्प, चन्दन या अन्य कुंकुम लेप आदि किसी प्रकार की गंध नहीं थी।

जिस विशाल समुद्र को लोग बड़ी बड़ी नौकाओं से पार करते हैं, उस (समुद्र) से भी विशाल उस सेना रूपी समुद्र में, उज्ज्वल ललाटवाली सुन्दरियों की कटि के अतिरिक्त, कंधे तक लटकनेवाले कुंडल या अन्य कोई आभरण प्रकाशमान विद्युत् के समान नहीं चमक रहा था।

सुन्दर मर्दल आदि वाद्यों की ध्वनि से हीन होकर चलनेवाली वह सेना विशाल भित्ति पर अंकित सेना के चित्र के समान लगती थी।

१ वैभव की देवी लक्ष्मी है, और स्त्री-पुरुषों की क्रीडाओं का कारण मन्मथ का प्रभाव है। अब लक्ष्मी और मन्मथ के अपने-अपने कार्यों से विरत हो जाने से उस सेना में न पुराना वैभव था न स्त्री पुरुषों की विनोद क्रीडाएं ही थी।—अनु०

विष्णु (के अवतारभूत राम) का वन गमन भी क्या था ?—अयोध्या के युवकों के लिए, प्रफुल्ल पुष्पों की माला से विभूषित सुन्दरियों के कटाक्ष रूपी बाण उन (पुरुषों) के हृदयों को छेदकर उनके प्राणों को पी न डालें—इसके लिए अपूर्व कवच बन गया था।

मन्मथ के पाँच बाणों से पीडित होनेवाले पुरुषों के हृदय अब पहले की तरह युवतियों के स्तनों पर आसक्त नहीं होते थे। स्वर्णमय कर्णाभरण से भूषित कैकेयी के प्रति उन (पुरुषों) के मन में जो क्रोधाग्नि उत्पन्न हुई थी, वह (दृष्टि के द्वारा प्रकट होकर) युवतियों के स्तनों को कहीं जला न डाले, मानो यह सोचकर ही, उन पुरुषों की दृष्टि उनपर से हट गई थी।

इस प्रकार वह विशाल सेना जा रही थी। महिमा से पूर्ण भरत भी, अपनी सुन्दर कटि में वल्कल पहनकर, अपने अनुज (शत्रुघ्न) से अनुसृत होते हुए, एक सुन्दर रथ पर बडी व्यथा के साथ बैठकर जाने लगे।

माताओं, तपस्वियों, पितृ समान गौरव के योग्य वृद्ध मन्त्रिगण, असंख्य बंधुगण, पवित्र स्वभाववाले ब्राह्मण वर्ग—इन सब से अनुसृत होते हुए भरत अयोध्या नगर के बहिर्द्वार पर जा पहुँचे।

उस समय, मन्थरा नामक उस यम (रूपिणी दासी) को भी चलनेवाले लोगों के मध्य धक्काधुक्की करते हुए जाते देखकर शत्रुघ्न का क्रोध भडक उठा और उन्होंने वेग से दौडकर, गरजते हुए उसे पकडकर झकझोरा। तब मनोहर कंधोंवाले भरत ने अपने अनुज को रोककर कहा—

कुल परम्परा को तोडकर अपनी कामना को पूर्ण करनेवाली माता को मैं टुकडे टुकडे करके अपना क्रोध शांत कर सकता था। किंतु हे तात! वैसा करने पर मुझे मेरे प्रभु (राम) त्याग देंगे—इसी विचार से चुप रह गया। मैंने उसे अपनी माता नहीं समझा।

अत, हे दोषहीन सद अर्थों के प्रतिपादक शास्त्रों के ज्ञाता! यद्यपि हम इस कुबडी से रुष्ट हैं, तो भी प्रभु हमारा यह कार्य पसन्द नहीं करेंगे। अत, इसे छोडकर हम आगे चलें। यों कहकर कठिनाई से शत्रुघ्न को समझाते हुए उन्हें अपने साथ लेकर वे आगे चले।

समुद्र जैसी उमडती हुई गज आदि की सेना तथा पदाति सेना के साथ भरत, उसी उपवन में जाकर ठहरे, जिसमें पहले (वन गमन के समय) प्रभु (राम) अपनी पत्नी तथा सिंह समान भाई के साथ ठहरे थे।

भरत उस रात्रि को, अपने नेत्रों से अश्रुजल का प्रवाह करते हुए ठहरे और पर्वत में उत्पन्न कंद फल आदि का आहार किया। धनुर्धारी रामचन्द्र ने जिस स्थान में विश्राम किया था, वहीं धूल पर घास बिछाकर भरत भी पडे रहे।

पौरुषवान् रामचन्द्र उस स्थान से पैदल ही मार्ग तय करते हुए गये थे। इस कारण से भरत भी वहाँ से पैदल ही चले और रथों, अश्वों तथा गजों की सेना उनके पीछे पीछे चली (१–५६)

अध्याय ११

गुह पटल

मनोहर, स्वर्ण निर्मित वीर कंकण से भूषित तथा अनुपम सेना वाहिनी से युक्त भरत, कावेरी नदी से सिंचित चोल देश की समता करनेवाले और उपजाऊ खेतों से भरे कोशल देश को छोड़कर गंगा नदी के तीर पर ऐसे दुःख के साथ जा पहुँचे कि उनको देखकर स्थावर और जंगम—सब वस्तुएँ द्रवित हो उठी।

उनकी सेवा मे स्थित मत्त गजो का मद जल अपार जल से पूर्ण गंगा में मग्न बह चला, जिस कारण से वह गंगा प्रवाह, असंख्य भ्रमरो के अतिरिक्त अन्य प्राणियों के पीने या स्नान करने के अनुपयुक्त हो गया।

उनकी सेना में स्थित अश्वो के खुरो से उठी हुई धूल उड़कर देवताओं के शिरो पर किस प्रकार छा गई, यह हम समझ नहीं सके। वे (अश्व) पानी पीते समय दीर्घकाल तक पानी पीते रहते और फिर लम्बी श्वास छोड़ते, जल में उतरकर तैरते और धूल पर लोट जाते थे।

(पहले) गंगा का प्रवाह दूध के रंग से युक्त होकर गरजते हुए समुद्र में जा मिलता था, किन्तु अब वह पहले जैसे वेग से नहीं बह रहा था, क्योंकि पुष्पमाला से भूषित दीर्घ किरीटधारी भरत की सेना रूपी समुद्र ने उस (गंगा के जल) को पी लिया था।

वन को गये हुए वीर (राम) का अनुसरण करके जानेवाले भरत के पीछे पीछे जो सेना उस समय जा रही थी, वह साठ सहस्र अक्षौहिणी परिमाण की थी।

जब वह सेना गंगा के (उत्तरी) किनारे पर पहुँची, तब गुह उसे देखकर और यह सोचकर कि यह विशाल समुद्र के जल से भरे मेघ समान प्रभु (राम) से युद्ध करने के लिए ही जा रही है, अत्यन्त क्रोध से भर गया।

गुह नामक यम सदृश उग्र पराक्रमी व्यक्ति ने आकाश तक उड़नेवाली धूल से उस सेना की संख्या का अनुमान कर लिया। तब उस (गुह) की आँखों से चिनगारियाँ निकली। नासिका से धुआँ उठा। वह अट्टहास कर उठा। उसकी भौहे ऐसे झुक गई, जैसे युद्ध के उपयुक्त धनुष हो।

पाप करनेवाले सब प्राणियों के प्राणो का अंत करनेवाले, अपने कर में त्रिशूल धारण करनेवाले यम ने ही मानो पाँच लाख वीरो के रूप धारण किये हो— इस प्रकार के थे उस (गुह) की सेना के वीर। वह (गुह) धनुर्विद्या में निपुण था।

उस (गुह) ने अपनी कटि में कटार बाँध रखी थी। अपने ओठ चबा रहा था। कठोर शब्द कह रहा था, उसकी घूरनेवाली आँखो से अग्नि कण निकल रहे थे। उसकी सेना मे डमरू बज रहे थे, शृङ्गी बज रहे थे और उसकी भुजाएँ यह सोचकर कि अब मुझे युद्ध करने का मौका मिला है (हर्ष से) फूल उठी थी।

उस (गुह) ने यह कहते हुए कि 'यह सेना चूहों का झुंड है और मैं उनके लिए

विषधर सप हूँ'—बड़े कोलाहल से भरी अपनी सेना को पुकारा। वह सेना ऐसी थी, मानो तीक्ष्ण नखोंवाले समस्त घोर व्याघ्रों को एकत्र कर दिया गया हो।

बड़े कोलाहल से भरे और प्रलय काल में गरजनेवाले मेघ तथा काले समुद्र ही उमड़ आये हों—इस प्रकार उमड़कर आनेवाली अपनी सेना को लेकर वह (गुह) समीप स्थित (गंगा के) दक्षिणी तट पर आ पहुँचा।

अपने सैनिकों को देखकर गुह ने कहा—मैंने इस षड्यन्त्रकारी सेना को वीर स्वर्ग पहुँचाने तथा अपने प्यारे मित्र (राम) को महिमामय महान राज्य देने का निश्चय किया है। तुम सब सहमत हो न?

गुह ने फिर आज्ञा दी—पटहों को बजाओ। रास्तों तथा घाटों को सर्वत्र मिटा दो। एक भी नाव न चलाओ। सुगंध से पूर्ण गंगा तट पर आनेवाले इन (भरत के) सैनिकों को पकड़ लो और काट डालो।

गुह ने आगे कहा—मेरे प्राणों के नायक, अंजनवर्ण प्रभु (राम) को राज्य से वंचित करके स्वयं (राज्य) लेनेवाले ये राजा यहाँ भी आ पहुँचे, हमारे अग्नि बरसानेवाले तीक्ष्ण बाण क्या इन लोगों पर नहीं चलेंगे? यदि ये मुझसे बचकर चले जायेंगे, तो क्या संसार मुझे कुत्ता नहीं कहेगा?

क्या ये (भरत आदि), गंभीर विशाल और वीचियों से भरी इस (गंगा) नदी को पार करके जा सकेंगे? क्या मैं ऐसा धनुर्धारी हूँ कि इनकी बड़ी गज सेना को देखकर (डर से) भाग जाऊँगा? उन (राम) ने मुझ से मित्रता की जो बात कही थी वह भी तो एक बात थी—(अर्थात्, राम का वह वचन आदरणीय है और मुझे मित्रधर्म का पालन करना है। यदि मित्रधर्म का पालन न करूँ, तो) क्या लोग मेरी निन्दा यह कहकर नहीं करेंगे कि वह क्षुद्र निषाद मरा क्यों नहीं?

आह! इस (भरत) ने यह नहीं सोचा कि वे (राम) हमारे ज्येष्ठ भ्राता हैं। यह भी नहीं सोचा कि उनके साथ अति बलिष्ठ व्याघ्र समान उसका भाई भी है। यदि उन्होंने ये बातें न सोची हों, तो न सही, किन्तु इसने मेरी उपेक्षा कैसे की? जो हो, इसका पराक्रम इस सीमा को पार करने पर ही तो ज्ञात होगा। क्या निषादों के द्वारा प्रयुक्त बाण राजाओं के वक्ष में नहीं लगते?

क्या धरती पर राज्य करनेवाले ये क्षात्रय, पाप, स्थिर रहनेवाला अपयश, शत्रु मित्र, (दूसरों को) दुःख देनेवाले कार्य—इनके बारे में विचार नहीं करते? जो हो सो हो, मेरे अपूर्व प्राण तुल्य मित्र (राम) पर इनका आक्रमण तभी तो हो सकता है, जब ये अपनी सेना तथा अपने प्राणों को (हम से बचाकर) अपने साथ ले जा सकें।

जब मेरे प्रिय मित्र (राम) अपूर्व तपस्या कर रहे हों, तब क्या यह (भरत) पृथ्वी का राज्य कर सकता है? (हमारे लिए) अपने प्राण कुछ अमर तो नहीं हैं। (भरत से युद्ध करके यदि मरना भी पड़े, तो) बड़ा यश पाकर मरूँगा। मेरे प्रति गंभीर प्रेम रखने वाले प्रभु के साथ मैं जो वन में नहीं गया और यहीं रह गया, वह भी अच्छा ही हुआ। अब मैं अपना कर्त्तव्य पूरा करूँगा।

हाथियो और घोडो से भरी सेना से युक्त तथा सुगंधित पुष्पमाला से भूषित इन (भरत) का शस्त्र पराक्रम तो गंगा को पार करने के पश्चात् ही काम आयेगा न? तुम सब उग्र व्याघ्र यहाँ रहते हो। गंगा के घाटों पर नाव चलाना छोड दो। (यदि आज हम मरना भी पडे, तो) हमारे प्रभु (राम) से पहले ही (युद्ध में) अपने प्राण छोड देना उचित ही तो होगा।

हमारे साथ आई हुई सेना के साथ एक बार युद्ध के लिए भी यह (भरत की) सेना पर्याप्त नही है, यह कहना अनावश्यक है। यदि देवताओं की सेना भी (हमारे विरुद्ध) आवे, तो भी हम अपने धनुष रूपी काल मेघो से शरों की वर्षा करके उनकी (चिर स्थिर) आँखो (पलको) को हिला देंगे और करवाल से सारी गज सेना को विध्वस्त कर देंगे। इस प्रकार, सबको अस्त व्यस्त करके हरा देंगे।

उस दिन (जब राम के राज्याभिषेक का निश्चय हुआ था) उदार, दानशील तथा मेरे प्रेम के पात्र प्रभु के पहनने के लिए जिस क्रूर कैकेयी ने वल्कल दिये थे, उसके इस पुत्र (भरत) की सेना को अपने शरीर से निहत करूँगा। चर्बी से भरे शवो की राशि को यह गंगा नदी बहा ले जायगी और लहरो से भरे विशाल समुद्र में डालकर उस समुद्र को पाट देगी।

'निषादो ने फहरानेवाली पताकाओं से युक्त (भरत की) सेना को विध्वस्त करके धर्मरूपी राम को ही शासन करने के लिए राज्य दे दिया'—ऐसा यश क्या हम नहीं पायेंगे। जिन प्रभु (राम) ने अपना राज्य तक भरत को दे दिया था, वही भरत आज हमारे निवास भूत इस अरण्य को भी देना नही चाहता और देखो, यहाँ भी चढाई करने आया है।

'महान् तपस्वियो के बंधु होकर अरण्य में निवास करनेवाले प्रभु (राम) क्रोध करेंगे'—यह विचार न करके यदि हम युद्ध क्षेत्र में इस (भरत) पर शर प्रयुक्त करेंगे, तो चाहे यह सेना सप्त समुद्रो के समान ही क्यो न हो, तो भी हम इसे उसी प्रकार मिटा देंगे, जिस प्रकार गाय अपने सामने की छोटी और कोमल घास को चरा डालती है।

दृढ तथा बडे धनुष से युक्त, मल्ल युद्ध में निपुण भुजाओं से युक्त तथा युद्ध में प्रवीण प्रभु (राम) के प्रति भक्ति से पूर्ण गुह ने लोहे के जैसे शरीरवाले अपने साथियों के प्रति ये वचन कहे। उसको वहाँ खडे देखकर, दृढ रथ को चलानेवाले सुमन्त्र ने सिंह समान बली भरत के निकट आकर कहा—

यह गंगा के दोनो तटो का नायक है। असंख्य नावो का स्वामी है। तुम्हारे वंश में उत्पन्न अनुपम पुरुष राम का प्राणप्रिय मित्र है। उन्नत भुजाओंवाला (वीर) है, मल्ल गज तुल्य है। धनुर्धारी सेना युक्त है। मधुस्रावी प्रफुल्ल पुष्पो की माला से भूषित है। इसका नाम गुह है।

हे बल की सीमा को देखनेवाली मनोहर तथा दीर्घ भुजाओं से युक्त! हे नील मेघ सदृश नीलवर्ण! यह पर्वत के जैसे दृढता से पूर्ण है। (राम के प्रति) असीम प्रेम से पूर्ण है। देखने में, रात्रि की जैसी सुन्दर देह कांति से पूर्ण है। ऐसा यह हमारे मार्ग में सम्मुख आकर खडा हुआ है। तुम्हे देखने की इच्छा रखकर आया है, यो सुमन्त्र ने कहा।

अपने पिता के मित्र सुमंत्र के द्वारा दूर पर अपने सामने खड़े गुह के विषय में सुनकर, कलंक रहित भरत के मन में बड़ी उमंग उत्पन्न हुई। फिर, वे यह कहकर आगे बढ़े कि यदि यह प्रभु के आलिंगन का पात्र, प्रिय मित्र है, तो उसके यहाँ आने के पहले ही मैं स्वयं उसके पास जाकर (उससे) मिलूँगा।

यह कहकर वे उठे और अपने अनुज तथा उमड़ते हुए प्रेम के साथ गंगा के किनारे पर ऐसे जा पहुँचे, जैसे कोई पर्वत चला हो। किनारे पर आये हुए भरत को घने तथा काले केशोंवाले गुह ने देखा और उनकी दशा को पहचानकर वह चौंका।

गुह ने, वल्कल पहने हुए, धूल भरी शरीरवाले, सुन्दर कलाहीन चंद्र जैसे मंदहास की कांति से हीन वदनवाले तथा ऐसे शोक से पूर्ण कि जिसको देखकर पत्थर भी पिघल जाये, भरत को देखा। देखते ही उसके हाथ से धनुष खिसककर नीचे गिर पड़ा। वह व्याकुल हो उठा। स्तब्ध हो गया।

गुह ने सोचा, यह उत्तम पुरुष (भरत) मेरे प्रभु (राम) के जैसा ही लगता है। उसके पार्श्व में खड़ा हुआ कुमार (शत्रुघ्न) भी प्रभु के अनुज (लक्ष्मण) के जैसा ही है। इस (भरत) ने मुनि वेष धारण किया है। इसके शोक की कुछ सीमा नहीं है। राम की दिशा में देखकर नमस्कार कर रहा है। अहो! क्या मेरे प्रभु के भाई कुछ दोष करनेवाले हो सकते हैं? (अर्थात्, नहीं होंगे)।

फिर गुह ने यह कहा—यह (भरत) गंभीर शोक से पीड़ित है। अचंचल प्रेम रखनेवाला है। (राम के) धारण किये मुनि व्रत को स्वयं भी अपनाया है। मैं वहाँ जाकर इसके मनोभावों को समझकर लौट आता हूँ। तबतक तुम लोग घाटों की रक्षा करते हुए यहीं रहो और शीतल गंगा के घाट पर एकाकी ही एक नाव में बैठकर (भरत के निकट) आया।

सम्मुख (राम की दिशा में) खड़े रहकर प्रणाम करते हुए (भरत) के चरणों पर गुह नत हुआ। तब, उत्तम स्वभाववाले, सज्जनों के मन एवं शिर पर धारण किये जाने वाले, पवित्र यशवाले तथा कमल पुष्प पर आसीन ब्रह्मा के लिए भी वंदनीय उन (भरत) ने अपने चरणों पर पड़े (गुह) को उठाकर, (पुत्र से मिलनेवाले) पिता से भी अधिक आनंद के साथ उसका आलिंगन किया।

(भरत के द्वारा इस प्रकार) आलिंगित निषाद पति ने, कमल समान सुन्दर नयनवाले (भरत) से पूछा—हे प्रस्तर स्तंभ तुल्य भुजाओंवाले! किस प्रयोजन से तुम (यहाँ) आये हो? भरत ने उत्तर दिया—पृथ्वी की रक्षा करनेवाले मेरे पिता ने कुल परंपरा के नियम का उल्लंघन किया। उस (अनियम) को दूर करने के लिए रामचन्द्र को लौटा ले जाने के उद्देश्य से मैं आया हूँ।

असत्य रहित चित्तवाले किरातपति ने (यह वचन) सुना। सुनते ही उसने दीर्घ निःश्वास भरा। उसके मन में हर्ष उत्पन्न हुआ। उसकी देह फूल उठी। फिर, वह धरती पर गिर पड़ा और चित्र में अंकित करने के लिए दुस्साध्य रूपवाले भरत के चरण कमलों को अपने करों से बाँधकर यह कहने लगा—

हे यशस्विन्! (तुम्हारी) माता के वचन मानकर (तुम्हारे) पिता ने जो राज्य (तुमको) दिया, उसे पाप कृत्य के समान मानकर तुमने (उसे) त्याग दिया और अपने मन में चिन्ता रखकर इस प्रकार यहाँ आये हो। तुम्हारे, इस समय का यह भाव देखने पर, क्या सहस्र रामचन्द्र भी तुम्हारी समता कर सकते हैं?

हे उत्तम गुणशील तथा बलिष्ठ भुजाओंवाले! मैं अज्ञ किरात तुम्हारी क्या प्रशंसा करूँ? जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों के पुंज से अन्य ज्योतियों को मंद कर देता है, उसी प्रकार क्षत्रिय समुदाय के द्वारा प्रशंसित तुम्हारे कुल के सब पूर्वजों की कीर्त्ति को भी तुमने अपनी कीर्त्ति में अंतर्भूत कर लिया।

वीर कंकण तथा मांस गंध से युक्त शूल का धारण करनेवाले किरातपति ने इस प्रकार के उचित वचन कहकर भरत के प्रति अपना अनुपम प्रेम दिखाया। उन भरत के प्रति प्रेम न रखनेवाले भी क्या कोई हो सकते हैं? (रामचन्द्र के) अचिंतनीय सद्‌गुणों के कारण ही तो गुह उन (राम) का भक्त बना था।

करुणा के समुद्र जैसे, सन्मार्ग पर चलनेवाले मन से युक्त भरत ने उस समय रामचन्द्र की दिशा की ओर देखकर नमस्कार किया और गुह से पूछा—हमारे ज्येष्ठ (राम) ने किस स्थान पर विश्राम किया था? तब किरातपति ने कहा—हे वीर! मैं (वह स्थान) तुम्हें दिखाऊँगा, चलो इस ओर।

तब भरत मेघ के समान चलकर अतिशीघ्र वहाँ गये और पथरीली भूमि पर उस घास की शय्या को देखा, जिसपर रामचन्द्र ने विश्राम किया था। उसे देखते ही भरत तड़पकर गिर पड़े और अपने अश्रुजल से धरती का मंगल स्नान कराया और शोक समुद्र में डूब गये।

(भरत कह उठे—) जब मैंने यह सुना कि 'मेरे कारण तुमको यह वनवास का दुःख प्राप्त हुआ है,' तब मैंने अपने प्राण नहीं छोड़े। 'कंद और फलों को ही अमृत मानकर तुमने उनका भोजन किया'—यह सुनकर भी मैंने अपने प्राण नहीं छोड़े। 'दुःख देनेवाली घास की सेज पर तुम सोये'—यह जानकर भी मैंने प्राण नहीं छोड़े। अतः, उज्ज्वल रत्न जटित मुकुट धारण करने के लिए भी कदाचित् मैं प्रस्तुत हो जाऊँ, तो इसमें आश्चर्य ही क्या होगा?

स्तंभ समान दृढ भुजाओंवाले भरत ने आगे कहा—यदि उन (राम) के विश्राम करने का स्थान यह था, तो कहो कि उनपर अत्यन्त भक्ति रखकर उनके साथ आये हुए अनुज (लक्ष्मण) ने कहाँ विश्राम किया? तब किरातपति ने उत्तर दिया—

हे पर्वत समान ऊँचे कंधोंवाले! रात्रि के समान मनोहर वर्णवाले वे प्रभु तथा वह देवी यहाँ विश्राम करते रहे और वह वीर (लक्ष्मण) कर में धनुष लेकर निःश्वास भरते हुए और आँखों से अश्रु बहाते हुए रात्रि के व्यतीत होने तक, एक पलक भी मारे विना, (पहरे पर) खड़े रहे।

यह सुनकर भरत ने कहा—राम के अनुज बनकर एक समान उत्पन्न हुए हम-लोगों में से एक मैं हूँ, जो (राम के लिए) अपार कष्ट का कारण बना। और, एक वह

(लक्ष्मण) भी है, जो मेरे उत्पादित कष्टों को दूर करने के लिए सहायक बना। अहा! प्रेम की भी कोई सीमा हो सकती है? मेरा दासत्व भी खूब रहा।[1]

फिर, भरत उस रात को वहीं धूल पर लेटे रहे। प्रातःकाल होने पर उन्होंने गुह से कहा—शत्रु भयंकर नाद से युक्त वीर वलय धारण करनेवाले हे वीर! यदि तुम इस समय हमलोगों को गंगा के उस किनारे पर पहुँचा दोगे, तो तुम हमें दुःख के समुद्र से निकालकर प्रभु (राम) के पास पहुँचानेवाले हो जाओगे।

गुह भी 'अच्छा' कहकर अपने सैनिकों के निकट गया और कहा कि तुमलोग शीघ्र जाकर नौकाएँ ले आओ। तब नौकाएँ इस प्रकार आई, मानो शिवजी का कैलास, उनके द्वारा (धनुष के रूप में) झुकाया गया स्वर्ण पर्वत मेरु एवं कुबेर का पुष्पक विमान—ये तीनों एकाकी ही रहने से लज्जित होकर अब अनेक रूप धारण करके आ गये हों।

उस किनारे से इस किनारे पर तथा इस किनारे से उस किनारे पर लोगों को ले जाने और ले आने के कारण वे नौकाएँ (पुण्य पाप रूपी), कर्म युगल से समान थीं, जो जीवों को इस लोक से स्वर्गलोक में तथा स्वर्गलोक से इस लोक में लाते पहुँचाते रहते हैं। युवतियों की गति एवं हंसों (की गति) को लजाती हुई चलनेवाली वे नौकाएँ गंगा नदी में सर्वत्र फैल गई।

तब शृङ्गवरपुराधीश (गुह) ने भरत से कहा—हे दृढ धनुर्धारी वीर! असंख्य नौकाएँ आ गई हैं। अब आप क्या करना चाहते हैं? तब सुन्दर धनुधारी भरत ने सुमंत्र से कहा—इस सारी सेना को शीघ्र इन नौकाओं पर चढ़ाकर उस पार ले चलो।

भरत की आज्ञा से, अश्व जुते बड़े रथ को चलाने में चतुर सुमंत्र ने, क्रम को तोड़े बिना, पृथक् पृथक् वर्गों में, गजों, अश्वों, रथों तथा पदाति सेना को उस पार पहुँचाया। वह सेनावाहिनी, उज्ज्वल रत्नों को अपनी वीचियों से बिखरनेवाली गंगा नदी के दूसरे किनारे पर जा पहुँची।

प्रलय काल में मानो मेघों के झुंड गरजते हुए समुद्र के सारे जल को भरने के लिए उमड़ आये हों, अथवा जल नौकाएँ ऊँची ध्वजा और मस्तूल के साथ (जल में) जा रही हों—इसी प्रकार दीर्घ शुंडवाले मत्तगज, अपनी सूँड को ऊपर उठाये हुए जल में उतर कर तैरते हुए नदी को पार कर गये।

अति विशाल हाथियों के द्वारा ढकेला जाकर गंगा का जल, शंख, मकर, मीन, मुक्ता तथा अन्य रत्नों को बिखरता हुआ तट को लाँघकर दक्षिण की दिशा में उमड़ चला, जिससे (दक्षिण का) समुद्र उसके मार्ग में निकट आ गया, मानो वह गंगा-प्रवाह भी रामचन्द्र के दर्शन करने की इच्छा से ही चल रहा हो।

[1] अंतिम वाक्य का यह भाव है कि प्रेम का क्रियात्मक रूप ही दासत्व है। यह वैष्णवों का सिद्धांत है। वात्सल्य दाम्पत्य, सख्य आदि का प्रेम भी क्रिया-रूप में दास्य ही है। अतः, भरत यह कहते हैं कि मैं राम के प्रति प्रेम रखकर भी उनका कुछ दास्य नहीं कर सका जब कि लक्ष्मण दासोचित कार्य कर रहा है। —अनु०

(गगा के प्रवाह म जब हाथी तैर रहे थ, तब) अत्यन्त मदजल बहानेवाले मत्त गजो के उन्नत कुभ मात्र ऊपर दिखाइ द रह थे। गजा के शरीर के छिप रहने से, तथा सुन्दर उत्तरीय जैसी ही वीचियो के, उन कुभो पर फहराने मे, वे कुभ ऐसे लगत थे, मानो गगानदी रूपी युवती क स्तन ही हो।

रथो के चक्र, धुरी, छत, ध्वजाएँ, पीठ आदि उनके सब भाग पृथक् पृथक् कर दिये गय। अश्व, तथा रथो क भाग, पृथक् पृथक् नावो पर चढाये गये तथा दूसरे पार पहुँचाय गये। पुन रथो के सब अग जोड गये। वह ऐसा था, जैस मनुष्य के शरीर के अगो का अलग अलग करक पुन उन्हे जोडनेवाली किसी विद्या के प्रभाव स उन्हे जोड दिया गया हो।

जैसे दूध हो, वैस (उज्ज्वल) शरीरवाले, जैसे भय ही घनीभूत हो गया हो, वैसे हृदयवाले—(अर्थात्, छोटी सी ध्वनि स भी भडककर दोडनेवाले), जैसे वायु ही घनीभूत हो गई हो, वैसी टॉगोवाले (अति वेगगामी) एव लगाम लगे हुए आठ करोड घोडे, मीन जैसी नावो पर चढकर उस पार जा पहुँचे।

कंकणो से भूषित पल्लव समान करोवाली युवतियाँ, नावो म परस्पर सटकर ओर आमने सामने होकर, इस प्रकार बैठी थी कि उनके उभरे हुए स्तन परस्पर या टकराने लग, जैसे दीर्घ दतोवाले मनोहर मत्तगजो के झुड म उनके दॉत टकरा उठे हो।

जब वेग से चलती हुइ नावे एक दूसरे स टकराकर हिल उठती थी, तब स्वर्ण कणाभरणा स भूषित युवतियाँ भय से व्याकुल होकर दोनो ओर अपनी दृष्टि फेकती था। वह दृश्य ऐसा था, मानो चचल जल तरगो से फेक जाकर मीन घबराकर दानो आर उछल रहे हो।

वेगगामी नावो क दाना आर खेवैयो क द्वारा चलाय जानेवाल डॉडो से जल बिन्दु उड उडकर युवतियो के पतल वस्त्रो का भिगो देते थे ओर उनके विस्तृत जघनो के आकार को प्रकट कर दत थे। वह दृश्य थके मॉदे वीरो की थकावट को मिटा देता था।

कोलाहल भरी सेना को, इस किनारे से लेकर उस किनारे पर उतारकर खाली लोटनवाली नावे उन बडे बडे मघो जैसी लगती थी, जो (मेघ) समुद्र के जल को भरकर लाये हो और उस बरसान के पश्चात् खाली होकर समुद्र की ओर लौट रह हो।

अगरु धूम क समान चुने हुए मयूर पखो स भूषित दड, मस्तूलो जैसे लगत थ। मोती की लडी म सजी हुइ ध्वजाएँ, पाल जैसी लगती था। यो वे नाव विशाल जल नोकाओ की समता करती थी।

विशाल गगा नदी आकाश क समान थी। उसस बिखरनेवाले मोती नक्षत्रो क समान थे। कमल सदृश वदन, अमृत, मधुर रक्त अधर तथा (पुष्पा के) मधु से सिक्त केशोवाली विद्युत् जैसी सुन्दरियो को ढोकर चलनेवाली नावे उन विमानो क समान थी, जो जल विहार करके लोटनेवाली देव स्त्रियो को लेकर चलत ह।

जल बिन्दुओ को उडानेवाल डाड समान अपने पैरो के साथ वे नावे, जो शीतल जलयुक्त गगा नदी म चल रही थी, ऐसी लगती थी, मानो हर्ष भरी, मोर समान,

घने केशावाली तथा मीनाक्षी युवतियाँ के उज्ज्वल पद कमलों के स्पर्श से प्राणवान् हो उठी हो।

मुनि, निम्न जाति के लोगों के द्वारा चलाई जानेवाली नावों को न छूकर, सकल्पमात्र से सिद्ध होनेवाले गगन सचार (गगन मार्ग) से देवों के जैसे गये। स्वर्ग, भूमि और अन्य किसी भी लोक में सत्य युक्त तपस्या से बढ़कर और क्या हो सकता है?

साठ सहस्र अक्षौहिणी सख्यावाली वह सारी सेना तथा नगर की सारी प्रजा, वीचियों से पूर्ण गगा नदी को पीछे छोड़कर आगे बढ़ चली।

जब सारी सेना भौरो से भरी नदी को पार कर गई, तब कपट पूर्ण धन लिप्सा से रहित होकर अपने त्याग के द्वारा पृथ्वी के पुराने बड़े राजाओं को भी नीचा दिखानेवाले भरत, नाव पर आरूढ हुए।

उनका अनुपम अनुज (शत्रुघ्न), तीनों माताएँ, उत्तम गुणवाला सुमत्र तथा पवित्र मित्र गुह—ये सब जब आसीन हो गये, तब वह नाव भी डॉड रूपी अपने पैरों को बढ़ाकर चल पड़ी।

तब गुह ने, बधुजनों तथा देवों के द्वारा भी आवृत होनेवाली अति गभीर कौशल्या देवी को देखकर भरत से पूछा—हे विजयमालाधारी! ये कौन है? भरत ने उत्तर दिया—जिन चक्रवर्त्ती के द्वार पर बड़े बड़े राजा लोग भी खड़े रहते थे, उनकी ये पट्टमहिषी है। जिन्होंने त्रिभुवन के सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा को भी उत्पन्न करनेवाले को (अर्थात्, विष्णु के अवतार को) अपनी अपूर्व सपत्ति के रूप में पाकर भी मेरे जन्म लेने के कारण खो दिया है।

भरत के यह कहते ही गुह उनके चरणों पर दडवत् हो गिर पड़ा और रोने लगा। बछड़े से बिछुड़ी हुई गाय के समान दुःख से युक्त कौशल्या ने भरत से पूछा—यह कौन है? वीर ककणधारी कुमार (भरत) ने उत्तर दिया—यह पुरुष रामचन्द्र का प्रिय मित्र है। लक्ष्मण, उनके अनुज (शत्रुघ्न) तथा मैं, हम तीनों का बड़ा भाई है। पर्वत समान कधोंवाला इस पुरुष का नाम गुह है।

यह वचन सुनकर कौशल्या ने यह कहकर आशीर्वाद दिया—हे पुत्रो! अब तुम लोग दुःखी मत होओ। पराक्रमी राम लक्ष्मण का नगर छोड़कर वन जाना भी तो अच्छा ही हुआ। तुम पाँचों पर्वत समान कधों तथा सूँडवाले हाथी के जैसे वीर इस गुह के साथ मिलकर एकता से चिरकाल तक इस पृथ्वी की रक्षा करते रहो।

फिर साकार धर्म जैसी सुमित्रा के बारे में गुह ने भरत से प्रश्न किया—हे तात! ये करुणामयी देवी कौन है? भरत ने उत्तर दिया—सत्य को स्थिर रखकर, उन्मार्ग पर चलकर, अपने प्राण त्यागनेवाले चक्रवर्त्ती की ये छोटी पत्नी है। सबके लिए वदनीय प्रभु (राम) का अनुज, जो सदा उनका अनुवर्त्ती रहता है, उस (लक्ष्मण) की जननी है।

फिर, उस कैकेयी को, जिसने अपने पति को श्मशान में, पुत्र (भरत) को दुःख सागर में, करुणा समुद्र राम को घोर कानन में भेजकर, वीर ककणधारी त्रिविक्रम

(विष्णु) के द्वारा पूर्वकाल म नापी गई मारी पृथ्वी का अपन मन क षड्यन्त्र से नापा था, दखकर गुह न भरत से पूछा—य कौन ह ?

तब भरत न कहा—सब विपदाओ को उत्पन्न करनेवाली, लोकनिंदा (रूपी) सतान का पालनेवाली माता, उसक पापी पेट म चिरकाल तक वास करनेवाल मुझ पुत्र क प्राणो का भार बनानेवाली तथा इस लोक म, जहाँ क सब प्राणी प्राणहीन शरीर जैसे लगत ह—(अथात्, राम वियोग म दुखी ह), पीडा के लक्षणो स रहित होकर रहनेवाली वह एकमात्र व्यक्ति ह, ऐसी इस स्त्री को क्या तुमने नही पहचाना ? यहाँ खडी हुई यही मरी जननी है।

भरत के वचन सुनकर गुह न उस दयाहीन स्त्री को भी अपने कर जोडकर नमस्कार किया। उस समय वह नाव भी पख रहित होकर तैरनेवाली हसिनी के समान किनारे पर आ लगी।

नाव से उतरकर माताए पालकियो पर आसीन होकर चली। भरत न अश्रु प्रवाह बहानेवाली आँखो क साथ पैदल ही चलकर दीर्घ मार्ग पार किया। गुह भी उनसे पृथक् न होकर उनक साथ चला।

फिर, भरत कर्म भार स मुक्त भरद्वाज नामक, महान् तपस्वी क आश्रम म आदर क साथ जा पहुँचे। उस समय वे महर्षि, वृद्ध तपस्विया के साथ उनके सम्मुख आये।

(१–७२)

●

अध्याय १२

पादुका पट्टाभिषेक पटल

भरत न अपने सम्मुख आये (भरद्वाज) मुनि को, पिता समान मानकर बडी विनम्रता स प्रणाम किया। चन्द्रशेखर (शिव) सदृश उन मुनिवर ने प्रेम से उन्हे अनेक शुभ आशीर्वाद दिये।

फिर भरद्वाज मुनि ने भरत को दखकर कहा—ह तात! तुमको जो राज्य प्राप्त हुआ है, किरीट धारणकर उसका शासन किये विना क्या इस प्रकार जटा धारण करके यहाँ आये हो ?

यह वचन सुनत ही भरत घोर क्रोधाग्नि स भडक उठे। किन्तु क्रोध को दबाकर उन महान् तपस्वी को देखकर कहा—ह ज्ञानी! आपन यह समझकर कि मन अपना कर्त्तव्य पूरा नही किया, अब यह जो प्रश्न किया है, यह क्या आपके लिए उचित है ?

वेदो के प्रभु (विष्णु) के अवतार राम के योग्य भाई भरत ने पुन कहा—कुल परपरा से आगत धर्म का त्याग कर मै राज्य नही करना चाहता। यदि रामचन्द्र उस

(राज्य) को नहीं स्वीकार करेंगे, तो वनवास की अवधि तक मैं भी उनके साथ वन में ही रहूँगा।

राम के प्रति अत्यन्त प्रेम से पूर्ण उन महान तपस्वियों ने, ज्योंही यह वचन सुना, त्योंही उनके फूले हुए शरीर और मन में ऐसी शीतलता व्याप्त हुई, जैसे किसी ने चन्दन लगा दिया हो।

भरद्वाज महर्षि प्रेम के साथ भरत को अपने पवित्र आश्रम में ले गये और उनके साथ आई हुई सेना का आतिथ्य करने के विचार से अपने अरुण करों से अग्नि में कुछ आहुतियाँ दीं।

विरागी तपस्वी (भरद्वाज) के स्मरण करने मात्र से स्वर्गलोक शीघ्र वहाँ आ पहुँचा। सेना के लोग मानो पुनर्जन्म प्राप्त कर दूसरे लोक में जा पहुँचे हों—इस प्रकार अपनी पूर्वदशा को भूलकर बड़े आनन्द में निमग्न हो रहे।

स्वर्ग की अप्सराओं ने यह मानकर कि ये लोग शाश्वत धर्म के आश्रय हैं, उस सेना में स्थित लोगों का प्रेम से स्वागत किया और चन्द्र मंडल के समान स्थित प्रासाद में उन्हें ले गई।

उन (अप्सराओं) ने उस सेना के लोगों का स्नान के उपयुक्त सुगंध चूर्णों का लेप कराकर स्वर्ग गंगा के दुर्लभ तथा अपूर्व जल में स्नान कराया। सुरभिमय बड़े कल्प वृक्षों के दिये हुए पुष्प सदृश मृदु वस्त्र पहनाये।

पुष्पित शाखा के समान लचकती देहवाली उन अप्सराओं ने रक्तस्वर्ण के बने मनोहर आभरण पहनकर बड़े प्रेम से उन लोगों को अमृत समान भोजन कराया।

फिर, भरत की सेना में स्थित पुरुषों ने अलक्तक लगे, नूपुरों से भूषित एवं पल्लव समान चरणों से युक्त तथा विष समान नयनों से शोभायमान उन अप्सराओं के साथ पंच लक्षणों से युक्त उत्तम शय्या पर सुखनिद्रा की।[1]

राजाओं से लेकर पालकी ढोने से सूजे हुए कंधोंवाले लोगों तक, सबका उन सुन्दर केशोंवाली अप्सराओं ने यथाक्रम ऐसा ही सत्कार किया, जैसा देवताओं का करती हैं।

भरत की सेना में आई हुई स्त्रियाँ, बिंबफल समान रक्त अधरोंवाली तथा निर्दोष वैभव से पूर्ण उन अप्सराओं के सखियों तथा दासियों के समान सेवा करते रहने से, देव योग्य भोग अनुभव करती रहीं।

उपवनों में स्थित सब विकसित पुष्पों से भरे कल्पवृक्षों से मंद मारुत, संध्या के हाथ का सहारा लिये हुए, अंधे व्यक्ति के समान, धीरे धीरे आया।

मधु धारा से सिक्त अन्न पिंडों तथा लाल धान के पत्तों की राशि को कल्पवृक्षों ने दिया, तो उनको खाकर मत्तगज तृप्त हुए और उनके मद जल से भ्रमर भी तृप्त हुए।

नरक से मुक्ति देनेवाले पवित्र आकाश गंगा के जल को मत्तगजों ने अपने आगे के

1. शय्या के पांच लक्षण हैं—मार्दव, सुगंध, धावल्य, शीतलता एवं अलंकृत होना। अथवा हंस के पंख, सेमल की रूई, मयूर-पंख, लाल कपास और सफेद कपास—इन पांचों से भरा रहना। —अनु

पेरा को पगारकर, लम्बी सटा मे भरकर पिया। अश्व समूह ने मरकत समान कांति से युक्त घास को खाया।

सब लोग इस प्रकार देव योग्य भोगो का अनुभव कर रहे थे। किन्तु, भरत ने कद मूल और फल खाकर ही, अपनी स्वर्णमय देह को धूल पर डालकर, किसी प्रकार उस रात को व्यतीत किया।

नीलवर्ण अंधकार के हटने से जिस प्रकार स्वप्न भी मिट जाता है, उसी प्रकार उनके स्वर्गिक भोगो के मिटने का कारण बनकर सूर्य इस प्रकार उदित हुआ, जैसे पुण्यानुभव करनेवालो के पुण्य का ही अंत हो गया हो।

सयम के साथ जो धर्म का आचरण नही करते, उनके जीवन के समान ही उन सैनिको का भोग भी मिट गया, मानो उन्हे दूसरा जन्म ही प्राप्त हो गया हो। यो (स्वर्ग भोग के खो जाने से) चिंता न करते हुए वे पूर्व दशा मे पहुँच गये।

उस दिन प्रात ही निद्रा से उठकर वह सेना उपवनो तथा पर्वतो को धूल बनाकर उडाती हुई चल पडी और एक मरुभूमि मे जा पहुँची, जिसे देखकर देवता भी यह सदेह करने लगे कि यह समुद्र है कि सेना है।

ऊपर उठी हुई धूल से आवृत होकर सूर्य, ताप रहित हो शीतल पड गया। गजो के मद प्रवाह, धूल भरे उस मरु प्रदेश मे यो बहे कि आगे चलना कठिन हो गया।

तीक्ष्ण भालेवाले राजाओ के श्वेतच्छत्र, वृक्षो की सी घनी छाया दे रहे थे, जिससे अग्नि के समान उष्ण एवं ककडो से भरा वह मरु प्रदेश इस प्रकार शीतल हो गया, मानो उसके ऊपर घनी लताओ से युक्त कोई वितान ही छा दिया गया हो।

'यह विशाल राज्य तुम स्वीकार करो'—यो कहनेवाली माता के प्रति उत्पन्न क्रोध से जिनका मुख लाल हो गया था, ऐसे नीलवर्ण भरत को देखकर सूखे हुए वृक्ष भी प्रेम के कारण द्रवित होकर पल्लवावत हो गये।

अपने प्राणो से भी सत्धर्म को ही अधिक श्रेष्ठ मानकर प्राण त्यागनेवाले, शासन मे चतुर दशरथ की वह सेना, दु खदायक मरु प्रदेश को ऐसे पार कर गई, जैसे शीतल वृक्षो से भरे (मन्द नामक) भू प्रदेश को ही पार कर रही हो और इस प्रकार चित्रकूट पर्वत के निकट जा पहुँची।

धूलि का समूह, अश्वो, रथो तथा मत्तगजो का शब्द एव पैदल सेना का कोलाहल—यह सब सूचना दे रहे थे कि एक विशाल सेना आ रही है, जिसे सुनकर—

लक्ष्मण उठे और एक ऐसे पर्वत पर चढ गये, जो पृथ्वी के सूज उठने से उभरा सा लगता था और वीचि पूर्ण सागर को छोटा बना देनेवाली तथा दृढ धनुर्धारी उस विशाल सेना को देखा।

तब लक्ष्मण, यह सोचकर कि सारी पृथ्वी का राज्य करने की अदम्य इच्छा से प्रेरित होकर ही भरत इस सेना को लेकर व्रतधारी (रामचन्द्र) पर आक्रमण करने आया है—यह सत्य है।—अत्यन्त क्रोध से भर गये।

वे दौडकर, उस पर्वत को चूर चूर करते हुए भूमि पर कूद पडे और शीघ्र

रामचन्द्र के निकट जा पहुँचे और बोले—भरत आपका आदर किये बिना प्राचीरों से आवृत अयोध्या की सेना को लेकर आप पर आक्रमण करने आ रहा है।

यों कहकर लक्ष्मण ने (कटि में) कटार और (पैरों में) वीर वलय धारण किये। अनेक बाणों से भरा तूणीर लिया। युद्ध कवच पहना। हाथ में धनुष लिया। और प्रभु के चरणों को प्रणाम करके ये वचन कहे—

इह और पर लोक दोनों के फलों को खो देनेवाले उस भरत के ऊँचे कंधों के बल को, उसकी सेना के महत्त्व को एवं अपने इस अनुज (अर्थात्, लक्ष्मण) के अनुपम पराक्रम को देखकर आप आनन्दित होंगे।

बडी पीडा से मरनेवाले हाथियों के ढेरों को लुढ़कानेवाले, रथों को बहानेवाले (हाथी, अश्व आदि की) आँतों को बिखेरकर ले चलनेवाले तथा अरण्य में फैलनेवाले रक्त प्रवाह को आप अभी देखेंगे।

मेरे बाण (शत्रुओं के) हथियार, हाथ, कवच से आवृत वक्ष तथा प्राण सबको छिन्न करके उनके शरीर के भीतर प्रविष्ट होंगे। (मेरे बाण) उनके रक्त से भी आसक्त न होकर बडे वेग से सब दिशाओं में जाकर, दिग्गजों को भी भयभीत करेंगे। हे वीर! आप देखेंगे।

अति वेग से फाँदनेवाले अश्वों के मर जाने पर, रथों की स्वर्णमय पीठों पर, टूट कर गिरे हुए ढालों को अपने हाथ में लेकर भूतों को संगीत के साथ नृत्य करते हुए देखेंगे।

(लक्ष्मण ने राम से कहा—) अलंकारों से युक्त हाथियों से पूर्ण भरत की सेना को मैं एक क्षण में निर्मूल कर दूँगा, जिससे वीर स्वर्ग भी भार से अपनी पीठ झुकाने लगेगा तथा समुद्र रूपी वस्त्र से युक्त पृथ्वी भार मुक्त होकर विश्राम करेगी। हे उदारगुण! यह आप देखेंगे।

उमटकर चलनेवाले रक्त प्रवाह में तैरने के कारण लाल हुए भूत और उनके साथ छोटी आँखवाले पिशाच तथा शिर रहित कबंध देवों के जैसे ही यह कहते हुए कि 'सारी पृथ्वी आपके अधीन हो गई है', नाचेंगे।

मुख पट्टों से भूषित मत्तगजों, अश्वों, भारी भुजाओं से युक्त पैदल सेना के वीरों आदि के मरने पर उनके समुद्र सदृश रक्त से सप्त समुद्रों को उथलकर गरजते हुए आप सुनेंगे।

आप देखेंगे कि मेरे शरों से कैसे पैदल सेना छिन्न भिन्न होती है। रथ विध्वस्त होते हैं। वीरों के करवाल टूट जाते हैं। दृढ धनुष टूट जाते हैं। बडे गजों और अश्वों के पैर, शिर आदि टूट जाते हैं और उनपर आरूढ वीरों के पैर और हाथ कट जाते हैं।

बडे पंखवाले तथा स्वर्णिम कांति को बिखेरनेवाले मेरे बाणों को, उन दोनों— (अर्थात्, भरत और शत्रुघ्न) के वक्षों को छेदकर, उनका मांस निकालकर, गगन मार्ग में उडते हुए और (मांसभक्षी) पक्षियों को बुलाते हुए, आप देखेंगे।

हे चक्रधारी! एक स्त्री के मोह से संसार भर को दुःख देनेवाले चक्रवर्ती (दशरथ) की आज्ञा से जिस भरत ने राज्य पाया है, उसे अब मेरी आज्ञा से यह राज्य

त्यागकर, पुनरावृत्ति से रहित (अर्थात्, जहाँ से लौट आना असंभव है), नरक लोक प्राप्त करते हुए देखेंगे।

यह देखकर कि आपका राज्य छोड़कर वन में निवास करने का दुःख प्राप्त हुआ है, जब आपकी जननी रो रही थी, तब उसे देखकर जो कैकयी आनन्दित हुई थी, उसे अब (पुत्र के शोक में) पृथ्वी पर गिरकर रोते हुए देखेंगे।

सान पर चढ़ाकर तीक्ष्ण किये गये, अग्नि के समान भयंकर और विजयमाला से भूषित बरछा धारण करनेवाले! मैं एक क्षण में एक तीक्ष्ण तथा विध्वंसक बाण से इस सेना समुद्र को त्रिपुर दाह करनेवाले शिवजी के समान सुखा दूँगा—इस प्रकार लक्ष्मण ने कहा।

तब रामचन्द्र ने उससे कहा—हे लक्ष्मण! यदि तुम चतुर्दश लोकों को हिला देना चाहो, तो तुम्हारे इस निश्चय को कोई रोक नहीं सकता। उसके बारे में कुछ कहने की क्या आवश्यकता है? (पर मैं तुम से) एक उचित वचन कहना चाहता हूँ। उसे सुनो।

उज्ज्वल प्रस्तर स्तंभ के प्रतिरूप बने कंधोंवाले! हमारे कुल में जो निष्कलंक गुणवाले राजा उत्पन्न हुए, उनकी गणना नहीं हो सकती। हमारे कुल में कौन ऐसा हुआ, जो अपने कुल धर्म से हटा हो?

ताल वृक्ष जैसी सूँडोंवाले हाथियों की सेना से युक्त भरत ने जो कार्य किया है, वह वेद प्रतिपादित धर्म के अंतर्गत ही है। तुम जैसा कहते हो, वैसा नहीं है (अर्थात्, अधर्म कार्य नहीं है)। इस सत्य को तुमने मेरे प्रति प्रेमाधिक्य के कारण सोचा नहीं।

भरत, मुझ अपने ज्येष्ठ भ्राता पर प्रेम के कारण ही यहाँ आयगा और राज्य मुझे सौंप देगा—यों सोचने के बदले क्या यह सोचना बुद्धिमत्ता है कि वह (भरत) सेना के साथ आकर मुझसे युद्ध करेगा?

हे विद्युत् के समान चमकते हुए बरछे को धारण करनेवाले! वीर वलयधारी भरत यहाँ आकर विशाल सेना को, राज्य संपत्ति के साथ, मुझे सौंपेगा—इसके विपरीत यह कहना भी अनुचित है कि वह मेरे साथ युद्ध करेगा।

हे आभरण योग्य कंधोंवाले! उत्तम धर्म के देवता के समान एवं सच्चारित्र्य की धुरी बने हुए उस (भरत) के संबंध में इस प्रकार सोचना क्या उचित है? उसका यहाँ आना, मुझे देखने के लिए ही है। इसे तुम अभी समझोगे।

प्रभु ने अनुज (लक्ष्मण) से यों कहा—उस समय, भरत अपनी सेना को पीछे छोड़कर, अपने से कभी पृथक् न होनेवाले प्रमुक्त भाई शत्रुघ्न को साथ लेकर, आगे बढ़कर (राम के निकट) आया।

नमस्कार की मुद्रा में हाथों को उठाये हुए, शिथिल देहवाले, अश्रुपूर्ण नेत्रोंवाले तथा साकार दुःख बने हुए चित्र जैसे आनेवाले भरत को सर्वज्ञ प्रभु ने पूर्ण रूप से देखा—(अर्थात्, शिर से पैर तक दृष्टि फेरकर देखा)।

फिर, काले मेघ जैसे आकारवाले प्रभु ने लक्ष्मण से कहा—शब्दायमान दृढ धनुष से युक्त हे अनुज! हे तात! देखो, रथ आदि की सेना को लेकर यह भरत बड़े क्रोध के साथ युद्ध करने के लिए कैसा युद्धोचित वेष धारण कर यहाँ आ रहा है!

यह सुनकर लक्ष्मण तपोवन में, निर्बल हुई भुजाओं से युक्त भरत के संबंध में अपने कहे हुए कठोर वचन भूल गये। उनका क्रोध तथा ज्ञान भी शिथिल हो गये और कांति हीन वदन के साथ यों खड़े रहे कि उनका धनुष तथा अश्रु मानो धरती पर गिर पड़े।

उस समय, भरत अपने दोनों हाथों को जोड़कर इस प्रकार राम के सम्मुख आये, मानो रामचन्द्र को, अपने पति के रूप में पाने के लिए तपस्या करके उन्हें प्राप्त करने के समय अकस्मात् उनसे वियुक्त हुई राज्यलक्ष्मी का (राम के पास) भेजा हुआ कोई दूत हो।

भरत आये और जैसे अपने पिता के ही दर्शन कर रहे हों—यह वचन कहते हुए राम के चरणों पर गिर पड़े कि आपने धर्म का विचार नहीं किया। करुणा का त्याग दिया और परंपरागत नीति को छोड़ दिया।

उसमें प्राण हैं या नहीं, ऐसा संदेह उत्पन्न करनेवाले, अत्यन्त कृशगात्र हुए, भरत को प्रभु ने देखा। देखते ही उनके नयन रूपी कमलों से (अश्रु) जल प्रवाहित होकर (भरत के) जटा मंडल पर गिरकर उसे भरकर फिर उमड़कर बह चला।

दयामय परमात्मा ने धर्म देवता का आलिंगन किया हो, इस प्रकार (का भ्रम उत्पन्न करते हुए) समस्त नीति के एकमात्र आश्रयभूत रामचन्द्र ने निःश्वास भरते हुए तथा वक्ष पर आँसुओं को बहाते हुए द्रवितचित्त होकर भरत का आलिंगन किया।

भरत को गले लगाकर रामचन्द्र ने उनके वेष को बार बार ध्यान से देखा और विविध भाँति के विचार किये। फिर पूछा—हे तात! तुम दुःख समुद्र में डूबे हो। संसार का शासन करनेवाले, मल्लयुद्ध में चतुर भुजाओंवाले, हमारे पिता सुखी हैं न?

ज्ञानी (प्रभु) का वचन सुनकर भरत ने कहा—हे प्रभु! आपके विरह रूपी व्याधि से एवं मेरी जननी के वर रूपी यम से पीड़ित होकर हमारे पिता इस संसार में सत्य को स्थिर करके परलोक में जा पहुँचे हैं।

'(पिता) स्वर्गलोक को गये'—यह तीक्ष्ण वचन घाव में बरछे के समान उनके कानों में घुसने के पूर्व ही परमपद के निवासी प्रभु (विष्णु के अवतार राम) के नयन और मन चरखी के जैसे घूम उठे और वे मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़े।

प्रभु विशाल धरती पर गिरे। उनके प्राण अप्रकट हो रहे। बिजली से पीड़ित सर्प के समान वे मूर्च्छित हो रहे। फिर, बड़ी कठिनाई से उनके प्राण लौटे। तब वे निःश्वास भरते हुए बड़ी व्याकुलता के साथ विविध वचन कहकर विलाप करने लगे।

असद दीप सदृश हे शासक! संसार के निवासियों के लिए पितृ तुल्य! अनुपम धर्म के लिए माता बननेवाले! दया निलय! मेरे पिता! शत्रुरूपी हाथियों के लिए सिंह बननेवाले! तुम मृत हो गये। अब सत्य का यथार्थ आश्रय और कौन बनेगा?

हे शत्रुओं के लिए भयंकर, विध्वंसक तथा विजयमाला से भूषित तीक्ष्णमाला धारण करनेवाले! प्रसिद्ध तपस्वी ऋष्यशृंग की कृपा से उत्तम यज्ञ संपन्न करके तुमने मुझे पुत्र के रूप में पाया। क्या उसका फल तुम्हारा इस प्रकार से प्राण त्याग करके जाना ही है?

रजणरग की धूलि बिखेरनेवाले पुष्पो से भूषित, तीक्ष्ण सूर्य किरण की सी उज्ज्वल कांति बिखेरनेवाली धवल माला धारण करनेवाले ! प्रजा का हित करनेवाले शासन का भार मेरे द्वारा लिये जाने पर विश्राम पाने का तुम्हारा ढग क्या यही है ? मै तुम्हारे प्राणो के लिए यम बनकर उत्पन्न हुआ। क्या मै सचमुच ससार का राज्य करने की योग्यता रखता हूँ ?

शबरासुर को मिटाकर देवेन्द्र को स्वर्ग का शाश्वत राज्य प्रदान करनेवाले हे चक्रधारी ! राज्य का भार मुझे सौंपकर पचेन्द्रियो पर दमन करके तुम्हारी तपस्या करने की क्या यही रीति है ?

सबके स्पृहणीय राज्य को स्वीकार करके ससार के लिए दुःख उत्पन्न करनेवाला क्षुद्र हूँ मै। अब यदि मै अपने प्राण छोडने के बदले इस शरीर को रखकर राज्य करने लगूँ, तो वह किसकी तृप्ति के लिए होगा ?

पुष्ट देहवाले शत्रुओ के प्राण हरण करनेवाला भाला रखनेवाले, हे पिता ! मधुस्रावी पुष्पोद्यानो से पूर्ण कोशल देश को छोडकर मै वन मे आया हूँ—यह बात सुनने मात्र से उसे न सहकर तुम स्वर्ग को चले गये। किन्तु, मै अभी तक यह (ससार का) जीवन चाहता हुआ जीवित हूँ।

गरिमामय चन्द्र का भी शीतलता प्रदान करनेवाले अनुपम छत्र से युक्त हे चक्रवर्ती ! तुम दातृत्व, गौरव, स्वर्गवासियो के लिए भी अविनाशी पराक्रम, न्याय से विचलित न होनेवाली शासन रीति, अपरिवर्त्तनीय सत्य तथा अन्य समस्त सद्गुणो को अपने साथ ही ले गये (अर्थात् , अब इस ससार मे वे गुण नही रहे)।

इस प्रकार, विविध वचन कहकर विलाप करनेवाले, पुष्ट पर्वताकार दृढ कधोवाले, सिहतुल्य राम को विशाल भुजाओवाले भाइयो तथा वहाँ आये हुए नरेशो ने जाकर सँभाला। तब महान् तपस्वी वसिष्ठ उन्हे सात्वना देनेवाले वचन कहने लगे।

उस समय, वर्णनातीत तप प्रभाव से युक्त भरद्वाज आदि जटाधारी मुनि, सप्त द्वीपो के राजा तथा सभी मत्री आ पहुँचे। सेनापति भी आ गये।

आने योग्य सब लोगो के आ जाने पर शोक मे निमग्न विजयशील पुरुषोत्तम (राम) को देखकर कमलभव (ब्रह्मा) के पुत्र (वसिष्ठ) ने कहा—

ससार के प्राणियो के लिए, सन्यास अथवा (गृहस्थ जीवन मे रहकर) उत्तम धर्म मार्ग पर चलना—इनके अतिरिक्त अन्य कोई साथी नही है। इन प्राणियो के लिए जन्म लेना और मरना स्वाभाविक है। वेदो के पारगत तुमने क्या इस बात को भुला दिया ?

'प्राणियो के अनित्य जन्म असख्य कोटि होते हैं, जो सुख और दुःख से भरे रहते हैं'—शास्त्रो मे अनेक स्थानो मे प्रतिपादित इस सत्य को जानने के पश्चात् भी क्या यह सोचना उचित है कि यम पक्षपात से काम करता है ?

तपस्या, धर्म और सृष्टि एव त्रिशूल, चक्र और सरस्वती, क्रमश इनको धारण करनेवाले त्रिदेव (शिव, विष्णु और ब्रह्मा) भी काल के प्रभाव से मुक्त नहीं ह ।

नेत्र आदि इद्रियो के कारणभूत, अपार विशालता से युक्त एव सृष्टि के सब पदार्थों के उत्पत्ति स्थान बने हुए पृथ्वी, जल आदि पचभूत भी नश्वर है, तो अब एक प्राणी के लिए तुम क्यो शोक करते हो ?

हे उत्तम । पुण्य रूपी सुगधपूर्ण तैल म अनुपम काल रूपी बत्ती, विधि रूपी ज्योति से दीप्त होकर जलती रहती है । जब तैल और बत्ती समाप्त होती है, तब दीप बुझ जाता है, इसमे कुछ सदेह नही ।

ये विविध जन्म, इस लोक मे दु ख भोगकर, परलोक मे यातनाएँ भोगकर, फिर जन्मातर मे भी भाग्य का फल भोगने के स्थान है । इनकी गणना कैसे सभव है ?

सबके आदर योग्य सदगुणो से पूर्ण । तुम्हार पिता बनने के कारण दशरथ कमलभव ब्रह्मा के लिए भी दुगम विष्णुलोक मे जा पहुँचे । इसके अतिरिक्त तुम अपने पिता का और क्या उपकार कर सकते हो ?

हे तात । तुम किंचित् भी दु खी मत होओ । उन दशरथ के लिए इससे बढकर उद्धार का मार्ग अन्य कोई नही है । अब तुम शास्त्रोक्त प्रकार से उत्तरकृत्य करो तथा अपने अरुण करो से तिलाजलि आदि दो ।

मेघ से गिरे हुए जल म जैसे बुद्बुद हो, वैसे ही इस नश्वर शरीर के बारे मे सोचकर दु ख करना अज्ञान है । आँखो से आँसू बहाने से हम कुछ नही पाते हैं । अत , अब तुम जाओ और कमल समान अपने करो से पापहारी तथा पवित्रता उत्पन्न करनेवाला जल तर्पण करो—यो वसिष्ठ ने कहा ।

वसिष्ठ के यह कहने पर रामचन्द्र उठे तथा स्वर्ण के रगवाली जटा से युक्त और चार वेदो के ज्ञाता वसिष्ठ के साथ घनी लहरो स भरी गगा पर जा पहुँचे । वसिष्ठ के कथनानुसार राम ने (अपना दु ख शान्त करके) कर्त्तव्य का विचार किया ।

सब जीवात्माओ मे एक ही समान अतरात्मा के रूप मे रहकर उनको ज्ञान दनवाले विष्णु (क अवतार राम) ने, जल म उतरकर स्नान किया, वेदज्ञ वसिष्ठ के बताये ढग से अपने कर से तीन बार जल लेकर छोडा ।

जल तपण करने के पश्चात् अन्य सब कृत्य पूर्ण करके राम, बडे मत्रियो, राजाओ, महान् तपस्वियो तथा अन्य लोगो के साथ उस पर्णशाला मे जा पहुँचे, जहाँ सीता देवी थी ।

जब सब लोग पर्णशाला मे पहुँचे, तब उत्तम भरत ने अकेली बैठी सीता देवी को देखा और उस पर्णकुटी को भी देखा । दु ख क आवेग से, अपनी कमल जैसी आँखो को हाथो से आहत करते हुए वे सीता देवी के चरणो पर गिरकर रोने लगे ।

महत्ता से युक्त भरत की लाल आँखें शोक के उद्वेग क कारण अत्यधिक अश्रुओ को निरतर बहाती रही, जिससे ऐसा लगा, मानो इन्द्रियो म भी वीचियो से पूर्ण समुद्र रहता हो ।

उस प्रकार बडे शोक से आहत वीर भरत को राम ने अपने दीर्घ करो से सँभाला

और मनोहर केशारानी सीता का दग्वकर कहा—हमार पिता (दशरथ) मरे चिरकाल क वियोग के कारण उत्पन्न शोक स मर गये।

यह सुन। ही सीता चौक्कर कॉपने लगी। उनकी दोनो विशाल ऑखे समुद्र के समान जल वहाने लगी। भूमि नामक अपनी धाइ के ऊपर हाथ रखे, सगीत मधुर अपने कठ स्वर से अनेक वचन कहती हुई विलाप करने लगी।

पर्वत के समान पुष्ट भुजाओवाले राम के पीछे पीछे चलनेवाली सीता को अरण्य भी नगर के समान ही लगता था। अब यह सुनने से कि चक्रवर्त्ती मर गये, हसिनी जैसी वह सीता भी शोक समुद्र म निमग्न हो गइ।

उस समय दोष रहित मुनियो की पत्निया ने माताओ के समान होकर (प्रेम से) सीता को अपने हाथो से उठाकर सँभाला। गगा के पवित्र जल म स्नान कराया और उनके शोक को कम करके प्रभु (राम) के पास पहुँचाया।

तब सुमत्र पुष्पमालाधारी चार उत्तम गुणवाले कुमारो को जन्म दनेवाली तीनो माताओ तथा जन्म मृत्यु सुख दु ख आदि द्वन्द्वो क तत्त्व को जाननेवाले गुरुजनो को साथ लिये, सदा धर्म का ही विचार करते रहनेवाले प्रभु (राम) क निकट हाथ जोडे हुए आया।

सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा के भी आदिकारणभूत राम, यह कहते हुए कि 'मेरे पिता कहाँ ह, बताइए'—वहाँ आइ हुई उन माताओ के उज्ज्वल चरणो पर अपने अरुण नयनो से अश्रु बहाने लगे।

तब वे माताएँ राम को गले लगा लगाकर रोने लगी। वहाँ एकत्र सेना के वीर एव अप्सरा समान स्त्रियाँ भी आग म पडे मोम के जैसे पिघल उठी।

फिर, राम आदि उन वीरो को जन्म देनेवाली वे माताएँ जनक की पुत्री का गाढ आलिगन करके शोक समुद्र म निमग्न हो गई।

सेना के वीर, नगर के लोग, प्रेम से पीडित पुरुष, अन्य (स्त्री) जन, राजा लोग—सब दु ख से व्याकुल चित्त के साथ प्रभु (राम) के निकट आ पहुँचे।

शेष शय्या पर शयन करनेवाले विष्णु ने जिस वश को अपन अवतार का स्थान बनाया, उसके कुलपुरुष होने के कारण सूर्य भी, मानो अब (दशरथ की मृत्यु पर) स्वय जल म स्नान करके तिलाजलि आदि दने का कर्त्तव्य पूर्ण करने जा रहा हो—यो सूय पश्चिमी समुद्र म निमग्न हुआ।

वह दिन बीत गया। दूसरे दिन जब राजा लाग, घनी जटा धारण किये मुनि लोग, बधुजन, अनुज वग (भरत आदि) सब एकत्र हुए, तब राम न कहा—

हे भरत। सबके अभीष्ट पूण करनेवाले चक्रवर्त्ती मर गये। उनकी आज्ञा से सारी पृथ्वी तुम्हारी हुई है। तो तुमने किस कारण से मुकुट धारण किये विना मुनि का वष स्वीकार किया है? कहो।

राम के यह कहने पर भरत, विकल मन के साथ उठे और हाथ जोडकर खडे हो गये। अनेक क्षण तक प्रभु को देखकर फिर बोले—आपके अतिरिक्त धम-मार्ग पर स्थिर रहनेवाले और कौन हो सकत है? ऐसे आप भी क्या धर्म से हट जाना चाहते ह?

अनिष्ट उत्पन्न करनेवाले वरों को माँगकर जिस (कैकेयी) ने आपको, आपके लिए योग्य न होनेवाले इस अरण्य वास में भेज दिया और चक्रवर्त्ती के लिए मृत्यु उत्पन्न की, उसी का तो पुत्र हूँ मैं। अतः, विचार करने पर, क्या यह तपस्वी वेष मुझ जैसे (पापी) के लिए उचित लगता है?

संसार को दुःख देनेवाली पापिन का पुत्र होकर मैं उत्पन्न हुआ हूँ। मैंने अपने प्राण त्याग देने का साहस नहीं किया। तपस्या करने योग्य भी नहीं रहा। अब इस अपयश से किस प्रकार से मैं मुक्त हो सकूँगा?

पातिव्रत्य से स्खलित स्त्रियों का शील, क्षमा गुण से फिसले हुए तपस्वी का तप, करुणा से हीन हुआ धर्म—ये सब परंपरागत नीति से फिसले राजा के शासन से भी क्या गये बीते हो सकते हैं? नहीं (अर्थात्, इन सबसे अधिक कठोर है नीति रहित राजा का शासन)।

(चक्रवर्ती का ज्येष्ठ पुत्र होकर) संसार में उत्पन्न होकर भी आपने न त्यागने योग्य राजपद का त्यागकर बड़ा व्रत अपनाया है। तो क्या मैं भूल से भी, नीति से च्युत होकर, धर्म को करवाल से काटकर खाने के समान, वह राज्य स्वीकार करूँगा?

(आपके प्रति) अपार प्रेम के कारण पिता मृत हुए। आप अति भयंकर धूम से पूर्ण वन में प्रविष्ट हुए। तो क्या मैं ऐसा शत्रु हूँ, जो षड्यंत्र करता हुआ, राज्य हरण करने के लिए घात लगाये बैठा रहूँगा?

हे हमारे प्रभु! आपके पिता ने जो हानि की है तथा संसार को अति कठोर दुःख देनेवाली माता ने जो हानि की है—इन दोनों हानियों को दूर करते हुए आप अयोध्या वापस चलकर राज्य करें—यों भरत ने अपने मन के विचार प्रकट किये।

भरत के वचनों से उनके मन का निर्णय सुनकर रामचन्द्र ने सोचा—अहो! इसका विचार कैसा है! फिर बोले—हे विजयी वीर! मेरा कथन सुनो और भली भाँति विचार करके ये वचन कहे—

हे तात! सदाचार, सत्य, सबके लिए अनुसरणीय न्याय, उत्तम धर्म इत्यादि वेदों तथा शास्त्रों के अनुकूल चलनेवाले राजा के सुशासन से ही तो उत्पन्न होते हैं।

हे दृढ धनुर्धारी! प्रशंसा के भाजन शास्त्रों का अध्ययन, दोषहीन ज्ञान, सच्चारित्र्य, उत्तम आचरण, ये सब वंदनीय गुरुजन ही हैं (अर्थात्, गुरुओं के कारण ही ये सब दृढ रहते हैं)।

हे प्यारे! ये उत्तम गुरु कौन हैं? यदि परिशुद्ध मन से विचार करके देखा जाय, तो (विदित होगा कि) माता और पिता के अतिरिक्त अन्य (गुरु) कोई नहीं है।

शास्त्रों के ज्ञान से युक्त हे भाई! माता ने वर माँगा। पिता ने भी आज्ञा दी। अपने उत्तम कुल की नीति के उपयुक्त कार्य ही मैंने किया। अब तुम्हारी प्रार्थना से इस कार्य को छोड़ना क्या उचित होगा?

हे तात! पुत्रों का कर्त्तव्य अपने कार्य से माता पिता की कीर्त्ति को बढ़ाना होता है, या कभी न मिटनेवाला अपयश उत्पन्न करना होता है?

क्या मेरे लिए यह उचित है कि पिता के वचन को भुलाकर वैभव तथा ऐश्वर्य पूर्ण राजभोग का अनुभव करता हुआ शासन करूँ और उससे इस लोक में पिता को असत्य वादी तथा परलोक में कठोर नरक भागी बना दूँ ?

'पिता के दिये वर के अनुसार पृथ्वी का राज्य तुम्हारा है। तुम (उस राज्य का निर्वाह करने योग्य) शक्ति तथा सामर्थ्य से युक्त भी हो। अत, राज्य तुम्हारा ही स्वत्व है, तुम राज्य करो'—राम ने जब यों कहा, तब भरत ने कहा—

यह पृथ्वी, जिसपर त्रिभुवन में भी अपनी ममता न रखनेवाले आप मेरे ज्येष्ठ भ्राता बनकर अवतीर्ण हैं, यदि मेरी है, तो अब इसे मैंने आपको दिया। हे राजन्। आप लौटकर मुकुट धारण करें।

जब सारा संसार व्याकुल हो रहा है, तब स्तंभ तुल्य भुजाओं से युक्त आपका क्या यह उचित है कि आप अपने मन के अनुसार कार्य करें ? अत, संसार की व्याकुलता को शांत करते हुए लौट चलिए और (संसार की) रक्षा कीजिए, यों कहकर भरत ने रामचन्द्र के मनोहर चरणों को पकड़ लिया।

तब राम ने भरत से कहा—मुझपर प्रेम होने के कारण यदि तुम संसार को मुझे सौंप दोगे, तो क्या वह न्याय संगत होगा ? अपयश से डरकर पिता ने जो वर दिया, उसको मानकर जिस वनवास के लिए मैं आया हूँ, क्या (अब राज्य स्वीकार करने से) उस (वनवास) की अवधि पूरी हो जायगी ?

संसार में क्या सत्य के अतिरिक्त अन्य कोई पवित्र गुण है ? उस सत्य से दुर्गुण भी मिट जाते हैं, किन्तु सत्य में कुछ हानि नहीं होती है। तुम ठीक विचार कर देखो।

पिता की आज्ञा के अनुसार मैं चौदह वर्ष वन में निवास करूँगा। तुम मेरी आज्ञा से इन चौदह वर्षों तक, सत्य से विचलित न होते हुए, पिता से दिये गये राज्य का पालन करो।

चक्रवर्त्ती के जीवित रहते हुए भी यदि रत्नमय मुकुट को धारण करने के लिए मैं सहमत हुआ, तो वह पिता की आज्ञा का उल्लंघन न करने के लिए ही था। (राज्य करने की इच्छा मुझे नहीं थी।) मेरा उस प्रकार सहमत होने की बात जानकर भी तुम क्यों मेरी आज्ञा का पालन नहीं करना चाहते हो ? हे भ्राता। दुःख को दूर करो। मेरे कथनानुसार कार्य करो। यों राम ने भरत से कहा।

जब शोभा से पूर्ण रामचन्द्र ने ये वचन कहे, तब कुछ उत्तर देने के लिए उद्यत, समुद्र के समान गंभीर भरत को रोककर वसिष्ठ (राम से) बोले—हे उदारगुण। तुम्हारे वंश में उत्पन्न कुछ प्राचीन राजाओं के आचरण के संबंध में तुम्हें सुनाता हूँ। उन्हें ध्यान से सुनो—

विष्णु ने पूर्वकाल में अनुपम वराह रूप धारण करके, उमड़ते हुए समुद्र से अपने एकदंत के मध्य रखकर भूमि को यों उठाया कि वह बढ़ती हुई चंद्रकला के मध्य कलंक जैसा दृश्य उपस्थित करने लगा।

पूर्व कल्प के अंत में, जब पंचमहाभूत अपने अपने तत्त्वों में लीन हो गये, तब विष्णु, विस्तीर्ण जल को उत्पन्न करके उसपर ज्योति रूप में निद्रित होने लगे।

अनिष्ट उत्पन्न करनेवाले वरो को माँगकर जिस (कैकेयी) ने आपको, आपके लिए याग्य न हानवाले इस अरण्य वास मे भेज दिया और चक्रवर्त्ती के लिए मृत्यु उत्पन्न की, उसी का तो पुत्र हूँ मे। अत , विचार करने पर, क्या यह तपस्वी वेष मुझ जैसे (पापी) क लिए उचित लगता ह ?

ससार का दु ख देनेवाली पापिन का पुत्र होकर मे उत्पन्न हुआ हूँ। मने अपने प्राण त्याग देने का साहस नही किया। तपस्या करने योग्य भी नही रहा। अब इस अपयश से किस प्रकार से म मुक्त हो सकूँगा ?

पातिव्रत्य से स्खलित स्त्रियो का शील, क्षमा गुण से फिसले हुए तपस्वी का तप, करुणा से हीन हुआ धम—ये सब परपरागत नीति से फिसले राजा के शासन से भी क्या गय बीते हो सकत ह ? नही (अथात् इन सबसे अधिक कठोर है नीति रहित राजा का शासन)।

(चक्रवर्त्ती का ज्येष्ठ पुत्र होकर) ससार म उत्पन्न होकर भी आपने न त्यागने योग्य राजपद का त्यागकर बडा व्रत अपनाया हे। तो क्या मै भूल से भी, नीति से च्युत होकर, धर्म को करवाल से काटकर खाने के समान, वह राज्य स्वीकार करूँगा ?

(आपके प्रति) अपार प्रेम के कारण पिता मृत हुए। आप अति भयकर धूम से पूर्ण वन म प्रविष्ट हुए। तो क्या मै ऐसा शत्रु हूँ, जो षड्यन्त्र करता हुआ, राज्य हरण करन के लिए घात लगाये बैठा रहूँगा ?

हे हमारे प्रभु। आपके पिता ने जो हानि की है तथा ससार को अति कठोर दु ख दनेवाली माता ने जो हानि की है—इन दोनो हानियो को दूर करते हुए आप अयोध्या वापस चलकर राज्य कर—यो भरत ने अपने मन के विचार प्रकट किये।

भरत के वचनो से उनके मन का निर्णय सुनकर रामचन्द्र ने सोचा—अहो! इसका विचार कैसा है। फिर बाले—हे विजयी वीर। मेरा कथन सुनो और भली भाँति विचार करके ये वचन कह—

हे तात। सदाचार, सत्य, सबके लिए अनुसरणीय न्याय, उत्तम धम इत्यादि वेदो तथा शास्त्रो के अनुकूल चलनेवाले राजा के सुशासन से ही तो उत्पन्न होत ह।

हे दृढ धनुर्धारी। प्रशसा के भाजन शास्त्रो का अध्ययन, दोषहीन ज्ञान, सच्चारित्र्य, उत्तम आचरण, ये सब वदनीय गुरुजन ही हैं (अर्थात्, गुरुओ के कारण ही ये सब दृढ रहते हैं)।

हे प्यारे। ये उत्तम गुरु कौन हें ? यदि परिशुद्ध मन से विचार करक देखा जाय, तो (विदित होगा कि) माता और पिता के अतिरिक्त अन्य (गुरु) कोई नही हें।

शास्त्रो के ज्ञान से युक्त हे भाई। माता ने वर माँगा। पिता न भी आज्ञा दी। अपने उत्तम कुल की नीति के उपयुक्त काय ही मैंने किया। अब तुम्हारी प्राथना से इस कार्य को छोडना क्या उचित होगा ?

हे तात। पुत्रो का कर्त्तव्य अपने कार्य से माता पिता की कीर्त्ति को बढाना होता है, या कभी न मिटनेवाला अपयश उत्पन्न करना होता हे ?

क्या मेरे लिए यह उचित है कि पिता के वचन को भुलाकर वैभव तथा ऐश्वर्य-पूर्ण राजभोग का अनुभव करता हुआ शासन करूँ और उससे इस लोक में पिता को असत्य-वादी तथा परलोक में कठोर नरक भागी बना दूँ ?

'पिता के दिये वर के अनुसार पृथ्वी का राज्य तुम्हारा है। तुम (उस राज्य का निर्वाह करने योग्य) शक्ति तथा सामर्थ्य से युक्त भी हो। अत, राज्य तुम्हारा ही स्वत्व है, तुम राज्य करो'—राम ने जब यों कहा, तब भरत ने कहा—

यह पृथ्वी, जिसपर त्रिभुवन में भी अपनी ममता न रखनेवाले आप मेरे ज्येष्ठ भ्राता बनकर अवतीर्ण हैं, यदि मेरी है, तो अब इसे मैंने आपको दिया। हे राजन्। आप लौटकर मुकुट धारण करें।

जब सारा संसार व्याकुल हो रहा है, तब स्तंभ तुल्य भुजाओं से युक्त आपको क्या यह उचित है कि आप अपने मन के अनुसार कार्य करें ? अत, संसार की व्याकुलता को शांत करते हुए लौट चलिए और (संसार की) रक्षा कीजिए, यों कहकर भरत ने रामचन्द्र के मनोहर चरणों को पकड लिया।

तब राम ने भरत से कहा—मुझपर प्रेम होने के कारण यदि तुम संसार को मुझे सौंप दोगे, तो क्या वह न्याय संगत होगा ? अपयश से डरकर पिता ने जो वर दिया, उसको मानकर जिस वनवास के लिए मैं आया हूँ, क्या (अब राज्य स्वीकार करने से) उस (वनवास) की अवधि पूरी हो जायगी ?

संसार में क्या सत्य के अतिरिक्त अन्य कोई पवित्र गुण है ? उस सत्य से दुर्गुण भी मिट जाते हैं, किन्तु सत्य से कुछ हानि नहीं होती है। तुम ठीक विचार कर देखो।

पिता की आज्ञा के अनुसार मैं चौदह वर्ष वन में निवास करूँगा। तुम मेरी आज्ञा से इन चौदह वर्षों तक, सत्य से विचलित न होते हुए, पिता से दिये गये राज्य का पालन करो।

चक्रवर्ती के जीवित रहते हुए भी यदि रत्नमय मुकुट को धारण करने के लिए मैं सहमत हुआ, तो वह पिता की आज्ञा का उल्लंघन न करने के लिए ही था। (राज्य करने की इच्छा मुझे नहीं थी।) मेरा उस प्रकार सहमत होने की बात जानकर भी तुम क्यों मेरी आज्ञा का पालन नहीं करना चाहते हो ? हे भ्राता। दुःख को दूर करो। मेरे कथनानुसार कार्य करो। यों राम ने भरत से कहा।

जब शोभा से पूर्ण रामचन्द्र ने ये वचन कहे, तब कुछ उत्तर देने के लिए उद्यत, समुद्र के समान गंभीर भरत को रोककर वसिष्ठ (राम से) बोले—हे उदारगुण। तुम्हारे वंश में उत्पन्न कुछ प्राचीन राजाओं के आचरण के संबंध में तुम्हें सुनाता हूँ। उन्हें ध्यान से सुनो—

विष्णु ने पूर्वकाल में अनुपम वराह रूप धारण करके, उमडते हुए समुद्र से अपने एकदंत के मध्य रखकर भूमि को यों उठाया कि वह बढती हुई चंद्रकला के मध्य कलंक जैसा दृश्य उपस्थित करने लगा।

पूर्व कल्प के अंत में, जब पंचमहाभूत अपने अपने तत्त्वों में लीन हो गये, तब विष्णु, विस्तीर्ण जल को उत्पन्न करके उसपर ज्योति रूप में निद्रित होने लगे।

इस प्रकार (क्षीरसागर म) शयन करत रहनेवाले, दवो को अमृत प्रदान करने वाल समुद्र जैस नीलवण विष्णु भगवान् की नाभि से एक शतदल (कमल) उत्पन्न हुआ, जिसमेसे सारी सृष्टि करनेवाला ब्रह्मा उत्पन्न हुआ।

ब्रह्मा के द्वारा सृष्ट ससार की रक्षा क लिए तुम्हारे कुल का आदि पुरुष सूर्य उत्पन्न हुआ। उस सूर्य कुल मे अवतक कोई ऐसा राजा नही हुआ, जो न्याय से हटा हो। एक बात ओर सुनो।

ह मत्तगज सदृश ! हित करनेवाले पॉच प्रकार के गुरुओ म (अर्थात् माता, पिता, अध्यापक, राजा और ज्येष्ठ भ्राता इनम) वही उत्तम गुरु होता हे, जो इह और परलोक दोनो म सुख उत्पन्न करनेवाली शिक्षा प्रदान करता हे (अर्थात् , आचार्य ही सर्वोत्तम गुरु ह)।

(शास्त्रा म) इसी प्रकार कहा गया हे। मैने तुम्हे विविध विद्याएँ सिखाई हैं। अत , ह तात ! इस समय मेरी आज्ञा का उल्लघन मत करो। लौटकर राज्य का सुशासन करो—यो (वसिष्ठ ने) कहा।

यो कहनेवाले वसिष्ठ को अरुणनेत्र राम ने मुकुलित कमलो को शोभाहीन कर देनेवाली अपनी अ्रजलि से नमस्कार किया और कहा—हे मन पर दमन रखनेवाले। हे ज्ञानी ! आपसे एक निवेदन है—

मधु बहानेवाले कमल पर आसीन ब्रह्मा के पुत्र ! चाहे कोई बड हो, गुरु हो। माता आदि हो, सत्य परायण पुत्र हो, चाहे कोई भी हो, किसी के लिए भी मे यह कार्य करूँगा—यो प्रतिज्ञा कर लेने पर उस प्रतिज्ञा को तोडना उचित नही है।

माता की आज्ञा को तथा पिता के द्वारा अनुमत कार्य को जो पुत्र पूर्ण नही करता हे, उसके जैसा पापी बनकर रहन की अपेक्षा कर्त्तव्य अकर्त्तव्य के ज्ञान से हीन श्वान बनकर सर्वत्र भटकते रहना अच्छा हे।

पहले से ही माता पिता की आज्ञा को मेने अपने शिर पर धारण कर लिया है। उसके पश्चात् अब आप दूसरी आज्ञा दे रहे है। हे महात्मन् ! अब मेरा कर्त्तव्य क्या है ? आप ही बताये—यो राम ने वसिष्ठ से पूछा।

तब वसिष्ठ राम की प्रतिज्ञा के विरुद्ध कुछ नही कह सकने क कारण मौन हो रह। उस समय भरत ने कहा—यदि ऐसी बात है, तो जो चाह राज्य करे। म तो अपने ज्येष्ठ भाई के साथ ही इस भयकर वन मे रहूँगा।

उस समय दवता लोग आकाश पथ म एकत्र होकर यह सोचने लगे कि यदि अब भरत रामचन्द्र को अयोध्या लौटा ले जायगा, तो हमारा कार्य पूण नही होगा और फिर बोल उठे—

प्रशसा के योग्य उत्तम गुणो से युक्त राम , पिता का वचन सुरक्षित करते हुए इस वन म रह और भरत का कर्त्तव्य हे कि वे चोदह वर्ष पर्यंत, राज्य की रक्षा करे।

देवताओ के यो कहने पर राम ने भरत से कहा—यह वचन उपेक्षा करने योग्य नही हे। मेरा भी तुम से यही आग्रह है। अब मेरी आज्ञा से तुम सुचारु रूप से पृथ्वी का

राज्य करो—यो कहकर राम ने भरत के विशाल कमल जैसे करो को अपने हाथो मे ले लिया।

तब भरत ने कहा—यदि ऐसा हो, तो हे प्रभु। चौदह वर्ष व्यतीत होते ही यदि आप भयकर परिखा से घिरे अयोध्या नगर मे आकर पृथ्वी का शासन नही सँभालेगे, तो मै प्रज्वलित अग्नि मे प्रविष्ट होकर अपने प्राण त्याग दूँगा।

इस प्रकार कहकर भरत चिंता से विमुक्त हुए। अपने यश से भी महान् स्वभाव वाले राम ने उन (भरत) की मानसिक दृढता को देखकर प्रेम से द्रवित होते हुए चित्त के साथ कहा—'वैसा ही करूँगा।'

भरत अब और कुछ न कह सके। रामचन्द्र से वियुक्त होकर जाना उनके लिए कठिन था। उन्होने व्याकुल होकर राम से प्रार्थना की कि आप कृपा करके अपनी पादुकाएँ मुझे दे। प्रभु ने भी समस्त सुखो का प्रदान करनेवाली अपनी पादुकाएँ भरत को दी।

अश्रु बहानेवाले नेत्रो तथा धरती की धूलि से धूसर शरीर से युक्त भरत ने (प्रभु की) दोनो पादुकाओ को किरीट मानकर अपने शिर पर रख लिया। फिर, धरती पर गिरकर रामचन्द्र के प्रति साष्टाग प्रणाम करके लौट चले।

माताएँ, असख्य बधुजन, बडे लोग, मुनिगण, विशाल सेना तथा अन्य सब लोग भरत के साथ चले और यज्ञोपवीत से शोभायमान कधेवाले वसिष्ठ महर्षि भी चले।

प्राचीन शास्त्रो के ज्ञाता भरद्वाज महर्षि लौट चले। परिखा से आवृत अयोध्या के निवासी लौट चले। आकाश-पथ मे एकत्र हुए सभी देवता लौट गये। मेघ सदृश राम की आज्ञा लेकर गुह भी लौट चला।

भरत (प्रभु की) पादुकाओ को शिर पर रखे, शीतल जल से युक्त गगा को पार करके, पुष्पो की सुरभि से भरी अयोध्या मे न जाकर रात्रिकाल मे भी निद्रा से विहीन हो—

नदिग्राम नामक स्थान मे ऐसे रहने लगे, मानो प्रभु की पादुकाएँ ही शासन करती रही हो। भरत, रात दिन अश्रु विहीन न होनेवाली आँखो के साथ, मन से पचेन्द्रियो का दमन करके वहाँ रहने लगे।

उधर रामचन्द्र, यह विचार कर कि अयोध्या के निवासी, उनके चित्रकूट पर्वत पर रहने से प्रेम के कारण, बार बार वहाँ आयेगे, इसलिए अपने साथी अनुज लक्ष्मण तथा अपनी देवी के साथ (चित्रकूट को छोडकर) दक्षिण दिशा मे चल पडे। (१ १४१)

मगलाचरण

आदि ब्रह्म भेद रहित है तथा उत्पत्ति तथा विकारो से युक्त नाना प्रकार के रूपो (वस्तुओ) म अनन्य होकर मिला रहता ह । वह, उन वदो के लिए, जो पुन पुन उनका अध्ययन करते रहने से ज्ञान के यथाथ स्वरूप को स्पष्ट करत ह, एव उन वेदो के ज्ञाता ब्राह्मणो और ब्रह्मादि देवताओ के लिए भी अज्ञेय है, वही परब्रह्म (अब रामचन्द्र के रूप म) हमारे ज्ञान का विषय हो गया है।

●

अध्याय १

विराध-वध पटल

मनोहर वक्र धनुष को धारण करनेवाले वे राजकुमार (राम लक्ष्मण), उन सीता दवी के साथ, जिनके दत ऐसे थे, मानो चुनी हुई मुक्ताएँ पक्तियो मे जडकर रखी गई हो, अपूर्व तपस्या से सपन्न अत्रि महामुनि के, पत्र फल से परिपूर्ण घने वृक्षोवाले वन मे जा पहुँचे।

दिशाओ म महान् भार का वहन किये हुए रहनेवाले, पीन और मनोहर सूँडो वाले तथा छोटी आँखोवाले पर्वत सदृश गजो की समता करनेवाले वे (राम लक्ष्मण), उस वन मे प्रविष्ट हुए और काम आदि तीन दुर्गुणो को दूर करके तपस्या करनेवाले अतिपवित्र अत्रि मुनि को प्रणाम किया।

व मुनिवर ऐसे प्रसन्न हुए, जैसे अपने बधु ही आ गये हो और बोले—ह राज कुमारो ! तुम स्वय यहाँ आकर हमे दशन द रहे हो, ऐसे सौभाग्य सदा सुलभ नही होता। यह ता ऐसा है, मानो सब देवता तथा सभी लोक ही यहाँ आ गये हो। न जाने हम मे से किसकी तपस्या का यह फल है।

वे (राम लक्ष्मण) उस दिन वही उस मुनि के साथ आश्रम म रह। फिर, उन जानकी को, जिन्होने उन मुनिवर की पतिव्रता तथा अत्युत्तम पत्नी अनसूया की आज्ञा से सुन्दर आभूषणा, वस्त्रा एव चन्दन को धारण किया था, साथ लेकर चले और महान् दडकारण्य मे प्रविष्ट हुए।

तब उनके सम्मुख एक राक्षस आया, जा सोलह मत्तगजो, उनस दुगुने सिंहो, गोलाकार एव कठोर नयनोवाले पवतवासी सोलह शरभो को, अति तीक्ष्ण घोर त्रिशूल म घने रूप मे पिरोकर एक हाथ म लिये हुए था।

उसके सिर पर रक्त वर्णवाले घुँघुराले घने बाल थ, मानो विष ही घार रूप धारण करके वन मार्ग से आ रहे हो। वह इस प्रकार शीघ्रगति से आया कि घने बादलो से घिरे पर्वत भी उसके पैरो के नीचे दबकर तूल के समान हो गये।

ताजे घाव के समान (लाल) दिखाइ पडनेवाली उसकी आँखो से अग्निकण निकल रह थे। उससे मेघा से घिरा आकाश भी काँप उठता था, पर्वत हिल जात थे, उष्णकिरण (सूर्य) मद पड जाता था। विशाल समुद्र स घिरी धरती ऊपर नीचे हो उठती थी। अति बलवान् यम भी मन म (डर से) शिथिल हो उठता था।

उज्ज्वल सिंह, उसके कानो म (उन्हे पर्वत की कदरा समझकर) प्रवेश करके गरज रह थे। चारो ओर काति बिखेरनेवाले मेरु शिखर उसके कुडल बने हुए थे। उसके साथ युद्ध मे मरे हुए वीरो के रक्त रूपी रक्तचन्दन से लिप्त होकर वह रक्त आकाश की समता करता था।

उसने आयुधधारी वीरा, शीघ्रगामी अश्वो, अति विशाल गजो, रथो, गतिशील सिंहो, प्राणहारी व्याधो तथा माग मे प्राप्त अनेक वस्तुओ को उठाकर, अजगर साँपो मे उन्हे गूँथकर अनेक प्रकार की मालाएँ बना ली थी और वे (मालाएँ) उनकी भुजाओ से लटक रही थी।

उसकी उँगलियो के मध्य पक्तियो मे रखे हुए पवतो के समान क्रोध से गर्जन करनेवाले गज दबे पडे थे, जिन्हे वह अपने विशाल कर से उठा उठाकर अति विशाल बिल सदृश अपने मुँह मे भर लेता था और (मुँह के) एक ओर से उन्हे चबा रहा था, तो भी उसकी भूख बढती ही रहती थी।

उत्तम सर्पो के फनो से रत्नो को निकालकर जिस प्रकार माला बनाते ह, उसी प्रकार अजगरो की देह म, देवताओ के विमानो, उज्ज्वल नवग्रहो एव नक्षत्रो को बीच बीच म जडकर उसने विजय मालाएँ बनाई थी और उन्हे अपने वक्ष पर धारण कर लिया था।

उसके पार्श्वो म रक्ताकाश की समता करनेवाले केश शोभ रहे थे। उसके कुभ सदृश माथे पर इन्द्र का ऐरावत बँधा हुआ था, जिसका मुखपट्ट तथा दतो के वलय चमक रहे थे।

(उसमे) अत्यन्त घनी कालिमा सयुक्त थी। तीक्ष्ण अत्याचार उमड रहा था। अति निष्ठुर पाप, विष, अग्नि—ये सब भयकर रूप से बढ रहे थे। अत, वह ऐसा लगता था, मानो अधकार से लिप्त कलिकाल ही साकार होकर आ रहा हो।

मारे हुए कठोर व्याघ्रो के चर्म को एठकर उसे (उत्तरीय के रूप म) पहन लिया था। हाथियो के चर्मों को कटि म बाँध लिया था। विजयी दिग्गजो के रत्न समुदाय को अजगर रूपी रस्सी मे पिरोकर कटि बध क जैसे बाँध लिया था।

रक्त नयनो एव दीर्घ देहवाले अनुपम सर्पों की मणियो को जडकर अनेक वलय उसने अपने शरीर मे पहन लिये थे। उसके करो म 'चलचल' नामक शब्दायमान शखो के वलय चमक रहे थे।

उसके पैर ऐसे थे कि वह उन पैरो से कैलास और मेरु पर्वत को गेद के समान उछालकर उन्हे परस्पर टकरा सकता था। ऐसे पैरो से गभीर गति म वह चल रहा था। यद्यपि वह भूलोक म सचरण कर रहा था, तथापि देवलोक के निवासियो के मन मे भी उसके वल का प्रभाव पडता था।

उसका आकार ऐसा था, मानो सब प्राणी एक रूप बनकर और नवीन आकृति धारण करके आ गये हो। उसकी कठध्वनि वज्रघोष क समान थी। (उसकी तपस्या से) प्रसन्न हुए ब्रह्मा के द्वारा दिये गये वर के प्रभाव से वह सवा लाख हाथियो के बल से युक्त था।

महावज्र सदृश काय करनेवाला विराध नामक वह राक्षस जब आ रहा था, तब (उसकी गति के वेग से) उसके दोनो पार्श्वो म वृक्ष उखड उखडकर धराशायी हो रहे थे। बडे पर्वत ढह जाते थे। यो वह उन धनुधारियो के सम्मुख आ पहुँचा, जिनको अपनी वीरता के योग्य युद्ध अभी तक प्राप्त नही हुआ था।

मास चबानेवाले लबे दाँतो, बलिष्ठ खड्ग दतो से चमकनेवाले अपने कदरा सदृश मुँह को खोलकर 'ठहरो, ठहरो', चिल्लाता हुआ वह आया और घने दलवाले कमल पर आसीन रहनेवाली लक्ष्मी रूपी (राम की) देवी को, एक शब्द का उच्चारण करने क समय म ही, झट उठाकर आकाश मार्ग से जाने लगा।

वृषभ सदृश वे दोनो वीर उसकी आकृति को देखकर क्रोध से उग्र हो उठे और कधे पर के धनुष को वाम हस्त मे लेकर, उज्ज्वल तथा तीक्ष्ण नोकवाले बाण का दक्षिण कर म लेकर उस राक्षस का पीछा करत हुए बोले—अरे, इस प्रकार धोखा देकर कहाँ जा रहा है ? तब उस विराध ने (कहा—)

ब्रह्मा के द्वारा दिये गये वर क प्रभाव से मे मृत्यु रहित हूँ। समस्त लोको के निवासी भी यदि मेरा सामना करने आये तो, मे किसी आयुध के विना ही उन सब को जीत सकता हूँ। अरे। मेने तुम्हारे प्राण छोड दिये हैं। इस स्त्री को छोडकर सुख से चले जाओ, यो विराध ने कहा। तब—

वीर (राम) ने अपने रजत मदहास रूपी ज्योत्स्ना का प्रकट करते हुए कहा— इस (राक्षस) ने युद्ध क्या है—यह जाना नही ह। अब इसके प्रताप और वल सब मिट जायेगे—फिर, मन मे विचार करक अपने भारी धनुष का टकार किया।

वर्षाकालिक मेघ सदृश रामचन्द्र ने, जो वज्र सम बरछे एव अपार पराक्रम से युक्त थे, अपन कोदड की लबी डोरी से जो घोर टकार उत्पन्न किया, वह तरगायमान समुद्रो से

आवृत तथा भूधरो से भरित पृथ्वी म, पाताल म, स्वर्गलोक म तथा अन्य सब लोको म वज्र घोष के समान प्रतिध्वनित हो उठी।

तब वह राक्षस, वचक तथा अत्याचारी मार्जार के मुँह म फँसे हुए तोते के समान चिल्लानेवाली सीता को छोडकर किंचित् विकल चित्त सा खडा सोचता रहा। फिर, विक्षुब्ध होकर अजनपर्वत सदृश राम के सम्मुख आ खडा हुआ।

फिर, उसने अपने त्रिशूल को, जो शत्रुओ के रक्त म डूब डूबकर पिशाचों की भूख को मिटाता रहता था और जो अपने तीना नोको से वडवाग्नि के सदृश ज्वालाएँ उगलता था, घुमाकर (रामचन्द्र पर) फेका।

वह त्रिशूल हालाहल विष के समान उज्ज्वल हो अतिवेग से आने लगा, जिसे देखकर अष्ट दिशाएँ, दिक्पाल दिग्गज तथा सर्वलोक काँप उठे। तब राम ने महामेरु और सप्त कुलपर्वत समान अति दृढ दीर्घ कोदड म एक अपूव बाण रखकर प्रयुक्त किया।

आज से राक्षस समूह का नाश हो गया—ऐसी सूचना देते हुए, दिन मे ही मानो गगन से नक्षत्र गिर रहे हो—ऐसा दृश्य उपस्थित करते हुए चारो ओर प्रकाश फैलाने वाला वह शूल दो टुकडे हो गया और दिशाओ के अत म जा गिरा।

देवताओ का भी दमन करनेवाले उस शूल को टूटकर गिरते हुए देखकर भी उस राक्षस ने युद्ध करना छोडा नही। किन्तु, अधिक उत्साह दिखाता हुआ धरती को कँपा देनेवाले अपने हाथो से अनेक पर्वतो को जड से उखाडकर त्वरित गति से वह (राम पर) फेंकने लगा।

रामचन्द्र ने अति दृढ तथा अति तीक्ष्ण बाणो को उन (पवतो) पर छोडा जिससे घेरकर आनेवाले वे पर्वत टूटकर नीचे गिर गये। वह राक्षस एक एक करके जो पर्वत फेकता था, वे लौटकर उसी की देह पर गिरत थे, जिससे उसके शरीर म अनेक घाव हो गये।

तब उसने एक बडा वृक्ष उखाड लिया और उसको लेकर उस राम पर आक्रमण करने के लिए आया, जिनके नामो को ज्ञानी पुरुष जपत रहते हैं, जो धर्म को स्थापित करने के लिए सर्पशय्या को छोडकर इस धरती पर अवतीर्ण हुए हैं। तब—

उत्तम वीर (राम) ने चार बाणो से उस बडे वृक्ष के टुकडे टुकडे कर दिये और (राक्षस के) कधो और वक्ष म बारी बारी स अत्यन्त वेग से अनेक अति तीक्ष्ण बाण मारे, तब वह राक्षस—

अपने शरीर म अति पैने बाणो के छिद जाने से बहुत पीडित हुआ और त्वरित गति से अपने शरीर को झटकाकर उन बाणो को छितराने लगा, जैसे कोई बहुत बडा साही अपनी देह पर के काँटो को फुलाकर खडा हो।

तब राम ने और भी अग्नि समान तीक्ष्ण बाणो का प्रयुक्त किया, जो कही भी रुके विना (उसके शरीर को) भेद देते थे। फिर भी, उस (राक्षस) का चित्त पापमुक्त नही हुआ। पर्वत से गिरनेवाले निर्झर के समान उसक शरीर से रक्त बहने लगा। जिससे वह दुर्बल तथा मूच्छित होकर गिर पडा।

वे दोनो (राम लक्ष्मण), जो विना थके हुए मल्लयुद्ध करने मे कुशल थे, यह सोचकर कि इस राक्षस को मृत्यु ही वर प्राप्त हुए है, जिससे यह शस्त्रो के प्रयोग से मर नही सकेगा, अत्यन्त क्रोध से करवाल निकालकर उसकी भुजाओ को काटने के विचार मे उसके कधो पर चढ गये।

बहनेवाले रक्त प्रवाह से युक्त वह (विराध) पुन सज्ञा पाकर उठा। जब उसको यह मालूम हुआ (कि राम लक्ष्मण उसके कधो पर चढ गये है) तब वह तुरन्त दड सदृश अपनी भुजाओ से उन दोनो को दबाकर अपनी पूर्व गति से भी दसगुने वेग से चल पडा।

तब वे दोनो मेरु की परिक्रमा करनेवाले सूर्य चन्द्र के समान शोभायमान हो उठे। उस राक्षस का सिर गगन तल से टकरा रहा था। वह अतिवेग से घूमने लगे और उसके शरीर से रक्त प्रवाह बह चला।

स्वर्णवर्णवाले (लक्ष्मण) के साथ कृष्ण वर्णवाले (राम) को अपने कधो पर लिये आकाश तक उठकर वह राक्षस चल पडा। तब वह उस पक्षिराज गरुड की समता करता था, जो धर्म रूपी अपने पखो पर बलराम और कृष्ण को उठाये वेग से जा रहा हो।

उत्तम कुल मे उत्पन्न सीता, अति कृपालु अपने पति को वचक राक्षस के द्वारा दूर उठा लिये जाते हुए देखकर अत्यन्त व्याकुल हुई और उस हसिनी के समान हो गई, जिसका जोडा (हस) किसी के द्वारा बदी बना लिया गया हो। वह मुरझाई हुई लता के समान अपने केशो को फैलाये धूल मे गिर पडी।

फिर वह उठी। उनको सँभालनेवाला व्यक्ति भी वहाँ कोई नही था। उन्हे सान्त्वना का कोई शब्द भी नही मिला। वह शीघ्रता से (राक्षस का) पीछा करती हुई दौडी, जिससे उनकी विद्युत् समान कटि काँप उठी। फिर, उस (राक्षस) से कहा—इन मातृ समान करुणावाले धर्म स्वरूप कुमारो को छोड दो और मुझको खा डालो।

वह रोई। उनका स्वर गदगद हुआ। उनके प्राण विकल हुए। बडी वेदना से वह चित्र लिखित प्रतिमा के समान स्तब्ध पडी रही। उनकी उस दशा को देखकर कनिष्ठ प्रभु (लक्ष्मण) ने कर जोडकर (राम से) निवेदन किया—देवी अत्यन्त पीडित हो रही है, उनको इस दशा मे छोडकर यो विनोद करना ठीक नही है। इससे अहित हो सकता है। तब सृष्टि के आदिभूत (भगवान् के अवतार राम) कहने लगे—

हे उपमाहीन! मैने सोचा, इस प्रकार ही सही हम अपने गतव्य स्थान को शीघ्र पहुँच जायेगे। अब इसको मारना कोइ बडा काम नही—यो कहकर मदहास करते हुए अपने बलिष्ठ पैर से उस राक्षस को धकेला। तब भी वह नीचे गिरा नही।

तब बलिष्ठ भुजावाले (राम लक्ष्मण) ने क्रुद्ध होकर तीक्ष्ण करवालो से उसकी दोनो भुजाओ को काट डाला और धरती पर कूद पडे। तब वह राक्षस उन दोनो के निकट इस प्रकार झुक गया, जैसे रक्त नयनोवाला सर्प (राहु) बाहो रूपी भुजाओ को झुकाये, दोनो ज्योति पिडो (अर्थात्, सूर्य चन्द्र) को ग्रसने के लिए आया हो।

उस (राक्षस) के घावो से अधिकाधिक रक्त बह रहा था। तो भी उसके प्राण

परलोक को नही जा रहे थे। उस दशा को देखकर सर्वान्तर्यामी (राम) ने विचारकर कहा— भाई! इसे शीघ्र भूमि मे गाड देना ही ठीक है।

मत्तगज सदृश लक्ष्मण ने जो गढा खोदा, दोषहीन रामचन्द्र ने अपने उस रक्त चरण से विराध के शरीर को उसमे ढकेल दिया, जो (चरण) नर्मदा नदी मे निमग्न हुआ था, जो पवित्र यज्ञो की आहुतियो को प्राप्त कर ससार के भक्तो को उनके अभीष्ट प्रदान करता था।

वह राक्षस, उस रामचन्द्र के प्रभाव से, जो ब्रह्माड की सृष्टि करके स्वय उस ब्रह्माड मे अवतीर्ण हुए थे, पूर्व शाप से उत्पन्न दु खदायक राक्षस शरीर से मुक्त हो गया और गगन तल मे पूर्वज्ञान से युक्त होकर दिव्य देह धारण करके शोभायमान हुआ।

अब उस (दिव्य देहधारी) की बुद्धि, पचेन्द्रियो के अधीन नही रह गई थी और वासनाओ से मुक्त हो सन्मार्ग पर स्थिर हो गई थी। उस (विराध) मे पहले से ही अनन्य भक्ति विद्यमान थी। अत , अब उसको तत्त्वज्ञान प्राप्त हो गया, जिससे प्रभु (राम) को पहचानकर वह उनकी स्तुति करने लगा।

सब वेदो के द्वारा स्तुत्य तुम्हारे चरण ही यदि सब लोको मे व्याप्त हैं, तो तुम्हारे अन्य अग कैसे और कहाँ रहते होगे। (कौन जाने ?) तुम शीतलता से युक्त समुद्र के निवासी हो, यदि तुम परस्पर असदृश पाँचो भूतो मे निवास करने लगे, तो क्या वे (भूत) तुम्हे धारण करने मे समर्थ हो सकेगे ? (अर्थात् , नही होगे)।

क्रुद्ध मगर से ग्रस्त होने पर एक गज ने अत्यन्त आर्त्त हो शिथिल शरीर से, अपनी सूँड को ऊपर उठाकर सर्व दिशाओ मे फैलनेवाली अपनी ऊँची ध्वनि से तुम्हे पुकारा था कि हे महिमापूर्ण, अनुपम, आदिकारण भूत, हे परमतत्त्व आओ, मेरी रक्षा करो। उसी क्षण तुम 'क्या हुआ ?' कहते हुए दौडकर वहाँ आ गये थे (और उस गज की रक्षा की थी)।

हे मेरे प्रभु! तुम अपने (अर्थात् , परम पद मे स्थित नित्य तथा मुक्त जीवात्मा) तथा बाह्य (अर्थात् , लोको मे वर्त्तमान भक्त आदि जीव)—इन दोनो को देखनेवाले हो, पक्ष पातहीन हो, कृपा से कभी रहित न होनेवाले हो। हे कमल सदृश नेत्रवाले! तुम धर्म की रक्षा के लिए, अन्य किसी की सहायता के विना, एकाकी चक्र के समान घूमते रहते हो , यह तुम्हारा ही कार्य तो है।

जन्म और मरण इन दोनो खेलो को बडी उमग के साथ करते रहनेवाले हे प्रभु! तुम्हारी कृपा से सब प्रकार के जीवो को मुक्ति पद प्राप्त करना कठिन नही है। विरक्ति को सर्वात्मना अपनाये हुए मुनि लोग यदि दूसरा जन्म ग्रहण भी करते है, तब भी वे अपने आत्मस्वरूप को नही भूलते। इतना ही नही, अन्य लोगो के समान (अर्थात् , जो विरक्त नही है, पुन पुन जन्म भी नही पाते (अर्थात् , वे शीघ्र मुक्त हो जाते हैं)।

भयकर जन्म सागर के पार पहुँचने के लिए तरणि के समान रहनेवाले जितने धर्म हैं, उन सब धर्मों के अनुयायी जिस परमात्मा की प्रशसा अनुपम और अवाड मनसगोचर कहकर करते हैं, तुम उसी परमात्मा के अवतार हो। अब तुम्हारे सम्मुख अन्य देवो की क्या गिनती है ?

ॅ धम के अनुपम स्वरूप। सृष्टिकर्त्ता कमलभव म लेकर मव देवा तथा उनम इतर प्राणिवग क लिए माता और पिता दोनो तुम्ही हो।

आदि परब्रह्म तुम हो, सब लाक तुम्हारे अधीन ह। विवेचन म परे अनेक धम तुम्हारे चरणो के ही आश्रित हे। फिर, तुम वचक के सदृश क्यो छिपे रहत हो? यदि तम प्रकट हो जाओ, तो क्या हानि हे? क्या तुम्हारी यह अनन्त मायामय क्रीडा आवश्यक ह?

हे प्रभु। तुम अजय होत हुए भी (अपने दासो क लिए) सुलभ ज्ञेय भी हा। समार म ऐसा कोई बछडा नही होगा, जो अपनी माता को नही पहचानता हो। एसी माता भी नही होगी, जो अपने बछडे को नही पहचानती हो। अखिल सृष्टि की माता बने हुए तुम सबको पहचानते हो। किन्तु, व सब तुम्हे यथार्थ रूप म नही पहचानत। यह भी तुम्हारी कैसी माया हे?

ससार के लोग अनेक देवताओ की स्तुति करत ह। किंतु महात्मा पुरुष तुम्हारे अतिरिक्त अन्य किसी को श्रेष्ठ नही मानते। सदाचार म स्थिर रहनेवाले वे लोग क्या यह नही जानते कि ब्रह्मा आदि वेदज्ञो के द्वारा आराध्य देव तुम्हारे अतिरिक्त ओर कोई नही ह?

हे लक्ष्मी से अधिष्ठित सुन्दर वक्षवाले। ह सदा जागरित रहनेवाले। अनेक धर्मो के द्वारा आराध्य देवता भी कर्म के बधनो म पडे हुए लोगो के समान ही कठोर तपस्या करते रहत ह। किंतु, तुम्हारे लिए करने योग्य कोई तपस्या नही ह। अतएव कम बधना स मुक्त आत्माओ के सदृश तुम योगनिद्रा म मग्न रहते हो।[1]

तुम स्वय आदिशेष का रूप धारण करके सुन्दर भूमिदेवी का वहन करत हो। (वराह के रूप मे) अपने दाँत पर (इस भूमि को) धारण करत हो। (प्रलय काल म) एक ही बार (एक ही कौर मे) इस सृष्टि का-निगल जात हो। एक ही पग म इस सारी पृथ्वी को ढक लेने हो। उस भूमि के प्रति तुम्हारे प्रेम को यदि सुगंधित तलसी हारो स अलकृत तुम्हारे मनोहर वक्ष पर आसीन (लक्ष्मी) देवी जान लेगी, तो क्या वह तम से रूठ नही जायेगी?

ह प्रभु। तुम्हारे द्वारा सृष्ट प्राणी यदि परम तत्त्व को किंचित् भी पहचान लेंगे और मुक्त हो जायगे, तो इससे तुम्हारी क्या हानि होगी? स्वग एव इस धरती के निवासियो म ऐसे लोग भी तो हैं, जो पूवकाल म, तुमने शिवजी का जा भिक्षा दी थी, उस घटना को जानकर, सदेह से (अर्थात्, कौन परम तत्त्व है, इस शका से) मुक्त हो गये है।[2]

१ भाव यह ह कि भगवान् विष्णु, कर्म बधन म पडे प्राणियो के समान निद्रित नही हे, वह सजग ह। किंतु ऐसा योग-निद्रा मे निरत हे जिससे अखिल विश्व की रक्षा होता हे।

भाव यह ह कि शिवजी ने एक बार ब्रह्मा के पाच शिरो में एक को काट दिया, तो वह कपाल शिवजी के हाथ म सट गया। बहुत कोशिश करन पर भा वह कपाल उनके हाथ स नही छूटा। तब आकाशवाणी हुइ कि उसम भीख मागत रहो। जब वह कपाल भीख स भर जायगा, तब वह छूट जायगा। शिवजी सर्वत्र भीख मागत रहे, किंतु कपाल भरा नही। अत मे विष्णु भगवान के पास पहुच। जब उन्होने भीख दी, तब कपाल एकदम भर गया और हाथ से छूट गया। इस घटना स यह सिद्ध होता है कि विष्णु शिवजी की भी रक्षा करनेवाले हे। —अनु०

हे वराह रूप म पृथ्वी को उबारनेवाले ! तमने हस का आकार धारण करके अपूव शब्दो का उपदेश (ब्रह्मा को) दिया था। पहले तुम्हे उन वेदो को सिखानेवाले कौन थे ? वे सब क्या अब समाप्त हो गये है ? तुम (चर और अचर पदार्थों से) परे होकर अकले रहते हो और सबके अतर्यामी हो। तुम्हारी यह स्थिति क्या इन पदार्था से भिन्न हो रहने से सभव हाती है या अभिन्न होकर रहने से ? यह कैसी माया है ?

हे उपमान रहित ! हे एकनायक ! तुम अपने पूर्व विश्राम स्थान क्षीरसागर को छोडकर मेरे सुकृत से ही यहाँ आये हा। मै इस जीवन के सागर को पार कर गया। मै जन्म हीन हो गया। तुमने अपने प्रवाल समान चरण युगल से मेरे कर्मद्वय को पोछ दिया।

विराध इस प्रकार के वचन कहकर देवरूप धारण कर खडा हुआ। तब विजय शील (राम) ने कहा—तुम अपना वृत्तात कहो।

तब विराध ने सारा वृत्तात यो कह सुनाया—असत्य जीवन से मुक्ति देनेवाले, ज्ञान को प्रदान करनेवाले चरणो से युक्त, हे प्रभु ! तुम्हारी जय हो।

कठोर धनुष को हाथ म धारण करनेवाले हे देव ! मेरा नाम तुबुर है। म कुबेर के लोक का निवासी हूँ। अब मै इस धरती पर जन्म पान का वृत्तात कहता हूँ।

नर्तकी रभा एक बार विशाल नृत्य शाला म गायन और नृत्य कर रही थी। (उसपर अनुरक्त रहने के कारण) मै उसके ऊपर कुपित हुआ और (उसके डराने क लिए) राक्षस का रूप धारण कर लिया।

मेरी काम वेदना मुझे भ्रात करती हुई बढ़न लगी। उस अपराध स (कुबेर ने) मुझे शाप दिया, जिससे मै राक्षस ही बना रहा।

हे आदि भगवन् ! उस यक्षराज (कुबेर) ने मुझे दु ख से मुक्ति पाने का वर देत हुए, मुझ दु खी के प्रति कहा—जब मै तुम्हारे चरण का स्पश प्राप्त करूँगा, तब यह शाप मिट जायगा।

मै, भयकर शूलधारी और विजयी किलिज नामक राक्षस का पुत्र होकर उत्पन्न हुआ तथा इस विशाल लोक के सब प्राणियो का खानेवाला बना।

हे आदिब्रह्म ! अब मै, उस दिन से आजतक, भले बुरे का विचार किय विना (सब प्राणियो को) खाता हुआ पाप कर्म करता रहा।

ज्ञान के प्रबोधक, अनादि वेदो क द्वारा प्रशसित तुम्हारे स्वर्ण वलय भूषित चरण के स्पश से मै आज शाप मुक्त हुआ।

हे सृष्टि के आदिकारण ! तुमने, प्राणियो की हत्या करने क कारण मेरे (सचित) पापो को मिटा दिया। ज्ञानहीन हो, मैने तुम्हारे प्रात जा अपराध किया, उस क्षमा करो—यो प्रार्थना करके वह (विराध) वहाँ से चला गया।

देवो को सतानेवाला राक्षस मिट गया !— यो साचकर आनन्दित हो, धनुर्विद्या म निपुण राम लक्ष्मण भी, कमलासना (लक्ष्मी के अवतार सीता) को साथ लिय हुए वहाँ से आगे बढे।

अपने क्रम म यम मदृश धनुष का धारण करनवाल व वीर, तदनन्तर वेद स्वरूप मुनियो क निवास स्थानभत एक घन उद्यान म गय और दिन भर वही रहे। (–७८)

●

अध्याय २

शरभग-देहत्याग पटल

जब रात्रि के आगमन का ममय हुआ तब कुरवक' तथा का नामक पुष्पा से युक्त लता क मदृश सीता के माथ (राम लक्ष्मण) उम स्थान से चलकर उम सुरभित स्थान म जा पहुँचे, जहाँ शरभग मुनि तपस्या करत थ और जहाँ कुकमवृक्ष और कोगु (नामक) वृक्ष लहलहात थे।

मनोहर शूल म युक्त व वीर जब उम आश्रम म पहुँच, तब देवेन्द्र वहाँ आया जो रात्रि म भी मुकुलित न हानेवाले कमल मदृश प्रथक् प्रथक् शाभायमान महस्र नयनो से युक्त था।

उम (देवेन्द्र) की देह कान्ति ऐमी थी जैसे उसको घरकर रहनवाली लक्ष्मी मदृश सुन्दर अप्सराओ के आभरणा की काति तथा उस (काति) पर फैली हुई विद्युत् की ज्वाला, दोनो मिलकर चमक रही हो।

उमके काले वर्ण के शरीर पर के नेत्र रूपी भ्रमर, दिव्य स्त्रियो के नयन रूपी पुष्पित उद्यान म मत्त हो मँडरा रहे थे। उमके कर्ण रूपी भ्रमर श्रीनारद की वीणा के नाद रूपी मधु का पान कर रह थे।

उमने, शास्त्रो म प्रतिपादित अनेक कर्मा के समूह से युक्त एक सौ अश्वमध यज्ञ किये थे। उसके पैरो के वीर वलयो पर त्रिमूर्त्तिया क अतिरिक्त अन्य मब देवताओ के किरीट आकर लगत थे।

वह इन्द्र विशाल रक्तकमल पर आसीन लक्ष्मी क समान रहनेवाली अपनी देवी (शची) के साथ, त्रिविध मदजलो से युक्त आगे आगे पैर उठा उठाकर चलनेवाल, अति उष्ण श्वेत ऐरावत गज पर आरूढ होता था। वह उज्ज्वल रजतगिरि पर (पार्वती के सग) आसीन शिवजी की समता करता था।

ऊपर का लोक (स्वर्ग) स्वय श्वेत छत्र का रूप धारण कर उम (इन्द्र) के ऊपर यो छाया हुआ था कि उसे देखकर सत्रह कलावाली कान्ति से युक्त शीतकिरण (चद्रमा), यह सोचकर कि यदि अब म चमकता रहूँ तो उसस कुछ प्रयोजन नही है, मन्द हो रहा था।

उसके (दोनो पार्श्वो म) चामर उज्ज्वल काति बिखेर रह थ, जो (चामर) ऐसे थ, मानो असुरो की प्रभूत कीत्ति ही दिग्गजो के स्वच्छ मदजलो का स्पर्श कर तथा उन गजो से अनेक युद्धो म टक्कर लेकर और उनमे परास्त हो घनीभूत बनकर वहाँ आ गये हो।

उसका किरीट ऐसा था, मानो निरन्तर सचरण करती रहनेवाली किरणो से युक्त सूर्य ही परिवेष सहित आ गया हो। युद्ध मे अत्यन्त निपुण उस इन्द्र का रत्नहार इस प्रकार उज्ज्वल था, जिस प्रकार चक्रधारी विष्णु के विशाल वक्ष पर लक्ष्मी शोभित हो रही हो।

उसका कचुक, उसमे जडे हुए सूर्य के समान उज्ज्वल रक्तवर्ण रत्नो के कातिपुज से शोभित था। वह विजयलक्ष्मी के शीतल तथा उज्ज्वल मन्दहास के समान चारो ओर काति बिखेरनेवाले बाहु वलयो से विभूषित था।

अनेक सहस्र जगमगाते हुए अति प्राचीन रत्नमय आभरणो की काति एक साथ चमक उठने के कारण उसकी देह इस प्रकार लग रही थी, जैसे उसके धनुष (अर्थात्, इन्द्र धनुष) से युक्त मेघ ही हो।

वह ऐसे मधुस्रावी, मनोहर पुष्पहारो से अलकृत था, जिनकी सुगध नाना लोको मे फैलती थी। उसपर देव स्त्रियो के, मीन सदृश तथा श्रेष्ठ विजय से युक्त नयन रूपी करवाल आघात करते थे।

उसके पास ऐसा वज्रायुध था, जिसकी धार, सूर्य समान काति से युक्त विजयमाला धारण करनेवाले रावण पर विजय पाने की आकाक्षा से प्रयुक्त करने पर भी धान की नोक के बराबर भी (रत्ती भर भी) कुठित नही हुई थी।

इस प्रकार का इन्द्र शरभग के आश्रम मे आ पहुँचा। मुनिवर ने सम्मुख जाकर उसका स्वागत किया और उत्तम रीति से सत्कार किया। फिर प्रश्न किया—आपके आगमन का प्रयोजन क्या है? अविनश्वर स्वर्ण वलयोवाले इन्द्र ने कहा

हे स्वर्ण सदृश जटा से युक्त महान् तपस्वी! ब्रह्मदेव ने, यह विचार कर कि तुम्हारा अति दीर्घ तप उसके लिए भी अवर्णनीय है, तुम्हे आज्ञा दी है कि तुम उनके लोक मे आ जाओ। अत, अब यहाँ से चलो।

हे महामुने! हे अकुठित तपस्या से सपन्न! सब लोको की ओर सब चराचर प्राणियो की सृष्टि करनेवाले उस ब्रह्मा ने तुम्हे अपने लोक का वास दिया है। यदि तुम उनके लोक मे जाओगे, तो वे सम्मुख आकर तुम्हारा स्वागत करेगे।

हे निर्दोष तपस्या सपन्न! मेरे कहने की आवश्यकता नही है, तुम स्वय जानते हो कि वह (ब्रह्मलोक) सब लोको मे श्रेष्ठ है। अत, तुम तुरत वहाँ चले आओ। इन्द्र का यह कथन सुनकर तत्त्वज्ञ मुनि ने अपनी अस्वीकृति प्रकट करते हुए कहा—

हे अति प्रख्यात कीत्तिवाले! क्या नश्वर चित्रो के सदृश रहनेवाले लोको को मै प्राप्त करना चाहूँगा? मै ऐसे तुच्छ पदो का विचार तक अपने मन मे नही लाता हूँ। मेरी तपस्या अनेक कल्पो की है। यह तुम जानते हो न?

हे वीर ककणधारी! ऐसा वचन कहना उचित नही है। ब्रह्मलोक प्राप्त करना या न प्राप्त करना मेरे लिए दोनो समान है। अधिक कहने से क्या प्रयोजन? मैने यहाँ रहकर अपनी तपस्या पूर्ण की है।

हे देवाधिदेव! ये पचमहाभूत जो चिरकालिक है, सदा स्थिर हैं, सकोच

और विकास से हीन ह तथा जिनके गुणा म परिवत्तन नहा हाता, भले ही व विनष्ट हा जायें तो भी मै अविनश्वर पद के प्राप्ति का उपाय करना नही छोड़ूगा।

इस प्रकार, जब (शरभग) कह रह थ, तभी सुदृढ तथा गठीले धनुष का धारण करनेवाले वीर उस आश्रम के निकट आ पहुँचे और वहाँ होनेवाले कोलाहल को सुनकर, उसका कारण क्या ह—यह सोचते हुए खडे रह।

तब उन्होने देखा कि उज्ज्वल कातिवाले हीरक जटित वलयो स भूषित, परस्पर समान चार दाँता स युक्त, आलान म बाँध जानेवाला (अति महान्) गज वहाँ खडा ह। उससे उन्होने जान लिया कि उस महातपस्वी के पास देवेन्द्र आया ह।

हरिणी सदृश नयनावाली देवी के साथ लक्ष्मण को उस पुष्पोद्यान के बाहर छोड कर रामचन्द्र (अकेल) उस विशाल वन म वृषभ और सिंह के जैसे गये। तब—

देवताओ के स्वामी ने उस स्थान म दर्शन दुर्लभ, चतुर्वेदो के फल को (अर्थात्, भगवान् के अवतार राम को) अपने सहस्र नेत्रो से इस प्रकार देखा, मानो कमलसम नयन वाला एक नीलवर्ण सूर्य को ही देख रहा हो।

इन्द्र उन्हे देखकर मन ही मन दु खी हुआ (क्योकि उन देवो की रक्षा के लिए ही रामचन्द्र को वन का दु ख भोगना पड रहा है)। फिर, उसने मुनियो के नायक उस पुरुषोत्तम को, नित्य प्रणाम करनेवाले अपने शिर से तथा स्तभ समान अपनी भुजाओ स नमस्कार किया।

उस (नारायण के अवतारभूत राम) को—जो ध्वजाओ स भरे हुए युद्धो म शत्रुओं का (असुरो का) विनाश करके, विशाल समुद्र समान वेदो के पदो के अर्थ को समझाकर, नित्य धर्म के सन्मार्ग पर (लोको को) चलाकर, सपत्ति और मोक्ष पद देकर, (प्राणियो की) रक्षा करनेवाला अविनश्वर कवच बनकर, उनके प्राण बनकर, तपस्या बनकर, नेत्र बनकर एव अन्तहीन ज्ञान बनकर (सब लोको की) रक्षा करता है—देखकर वह इन्द्र अपने को भूल गया, द्रवितचित्त हुआ, एक ओर खडा रहा और उस (राम) की महिमा का एक साधारण व्यक्ति के समान ही गान करने लगा।

तुम ऐसी ज्योति हो ,जो सब पदार्थों म (अतर्यामी के रूप म) मिली रहती है, तथापि निर्लिप्त रहती ह। तुम आसक्ति हीन (विरक्त) व्यक्तियो के बधु हो। अपार करुणा का आवास हो। वेदोक्त मार्ग से विवेचन करने से उत्पन्न होनेवाले तत्त्वज्ञान के विषय हा। हे हमारी माता एव पिता! हम, तुम्हारे दासो ने जब शत्रुओ से पीडित होकर तुम्हारी प्रार्थना की, तब यथाप्रदत्त वरदान के अनुसार तुम हमारी सहायता करने के लिए (इस रूप म) अवतीर्ण हुए हो। अन्यथा, क्या तुम्हारे चरण कमलयुगल इस विशाल धरती के योग्य हैं?

(तुम्हारी देह की काति की छाया से) नीलवर्ण बने (क्षीर) सागर म शयन करनेवाले ह देव! (तुम्हारे) शत्रु नही हैं। मित्र भी नही हैं। (तुम्हारे लिए) प्रकाश नही, अधकार भी नही ह। यौवन भी नही, बुढापा भी नही है। आदि, मध्य और अत भी नहा ह। तुम्हारी ऐसी दशा हो रही है। किंतु, यदि तुम यो हाथ म धनुष लिये हुए, अपने

अरुण चरणो को दुखाकर पैर रखते हुए हमारी रक्षा करने को न जाते, तो उससे तुम्हारा क्या अपयश होता ? (जिससे बचने के लिए तुम आये हो) या (हमसे कुछ प्रतिफल की कामना रखते हो, पर) कौन सा प्रतिफल देना हमारे लिए सभव है ?

हे उत्तम ! तुम्हारे नाभि कमल से उत्पन्न चतुर्मुख भी, दोषहीन सब लोको को गणना चिह्न मानकर, गिनने लगे, तो उसका एक अश भी नही गिन सकता है। पूर्वकाल मे धरती को पात्र, क्षीर सागर को दही और उन्नत (मदर) पर्वत को मथानी बनाकर अपने कमल तुल्य करो को दुखाते हुए तुमने मथा था और अमृत निकालकर केवल हम देवो को दिया था। तब असुर लोग भी तुम्हारे दास हो गये थे न ?

आदि मे तुम एक ही थे। फिर, अनेक रूप हुए और सबके प्राण और प्रज्ञा भी हुए। महाप्रलय के समय तुम विनाश का रूप लेते हो और (सृष्टि के आरभ मे) नाना लोको का रूप धारण करते हो। हे स्वच्छ ज्ञान का विषय बने हुए भगवान्! हमारे अभीष्टो को पूर्ण करनेवाले प्रभु ! तुम पवित्र आत्माओ की रक्षा करते हो तथा पापियो को दड देते हो। वह विनश्वर पाप भी तो तुम्हारी ही सृष्टि है।

हे मेरे पिता ! पूर्वकाल मे अपार माया के प्रभाव से जब हम इस शका मे पडकर कि तुम परम तत्त्व हो या नही, विभ्रान्त और दिङ्मूढ हो गये थे, तब हमारे सुकृत के परिणाम से सप्तर्षिगण हमारे सामने प्रकट हुए और शिवजी के पास पहुँचकर, हमने यह निर्णय किया कि समस्त लोक तुम (विष्णु) से ही उत्पन्न होकर वर्त्तते है। यो हमारी शका को दूर करने का साधन भी तुम्ही बने थे।[1]

स्वर्णमय दीर्घ मुकुटवाले इन्द्र ने मन मे विचार कर इस प्रकार के अनेक वचन कहकर उनकी प्रशसा की। फिर, यह सोचकर कि (रामचन्द्र के वहाँ आगमन का) कोई विशेष कारण है, अपना उपमान न रखनेवाले मुनिवर से आज्ञा माँगी और देवलोक को जा पहुँचा।

शरभग ने इस प्रकार जानेवाले देवेन्द्र का मनोगत भाव जान लिया। फिर, देवाधिदेव (राम) के सम्मुख जाकर स्वागत कर उन्हे ले आये। उस समय राम ने उन मुनि के चरणो को प्रणाम किया, तब वह मुनि जो नि श्रेयस पद पाने की इच्छा से कठिन साधना कर रहे थे, प्रेम के आधिक्य से रो पडे।

मुनि ने राम से कहा—'सुखी हो और जीते रहो। अपनी पत्नी और अनुज को भी यहाँ आने दो।' तब रामचन्द्र उनको भी ले आये। अनेक युगो से तप करनेवाले

१ एक बार मुनियो और देवो में यह विवाद छिड़ा कि कौन परमात्मा है। तब सप्तर्षियो में प्रधान भृगु, क्रमश कैलास और सत्यलोक मे गये। किंतु, वहा शिव और ब्रह्मा को अपनी-अपनी देवी के साथ सलाप मे निरत देखा। वहा से निरादृत होने पर वे वैकुठ मे गये। वहा लक्ष्मी के सग सर्प-शय्या पर आसीन विष्णु को देखा पर विष्णु की निगाह भृगु पर न पड़ी। इसपर क्रुद्ध होकर भृगु ने विष्णु के वक्ष पर पदाघात किया। तब विष्णु यह कहते हुए कि ऐसा करने से महर्षि का पैर दुख गया होगा, उनके चरण को पकड़कर दबाने लगे। इस पर भृगु ने पहचाना कि विष्णु ही सात्त्विक देव है और अन्य मूर्त्तियो से श्रेष्ठ है। इसी कथा की ओर इस पद्य मे सकेत किया गया है।—अनु०

उस मुनि के आश्रम में आकर वे बड़े आनन्दित हुए, जैसे नागराज पर (शेष) शयन पर ही विश्राम कर रहे हों।

उस स्थान में, तत्त्वज्ञ मुनि के धर्ममय उपदेश सुनते हुए रामचन्द्र ने हरिणी समान नयनोंवाली देवी के साथ वह अंधकार भरी रात्रि व्यतीत की।

तब सूर्य, संसार को आवृत करनेवाले घने अंधकार रूपी चादर को अपने सब दिशाओं में परिव्याप्त अपरिमेय उज्ज्वल करों के आतप रूपी धारवाले करवाल से हटाने लगा।

उस समय, तत्त्वज्ञ मुनि ने उन (राम) के सम्मुख ही अग्नि को प्रज्वलित करके उसमें प्रवेश करने का विचार किया और शास्त्रोक्त विधि से सत्वर अग्नि प्रज्वलित करके रामचन्द्र से प्रार्थना की कि अब मुझे आज्ञा दीजिए।

दृढ धनुष्य (धनुष के प्रयोग में निपुण) राम ने वेदों में निपुण (शरभंग) को देखकर कहा—आप क्या करना चाहते हैं बताइए। तब मुनि ने कहा—हे लक्ष्मी नायक! मैं मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा से अग्नि में प्रवेश करना चाहता हूँ, आप आज्ञा देने की कृपा कीजिए।

रामचन्द्र ने उनसे प्रश्न किया—अजिन (मृगचर्म) से शोभायमान वक्षवाले, हे मुनिवर! मेरे आगमन के समय आप यह क्या कर रहे हैं? तब मन्मथ की विजय को कुंठित करनेवाली मानसिक दृढता से युक्त उस मुनिवर ने अपना शरीर त्याग करने की उमंग में यों उत्तर दिया—

हे विजयशील! विविध प्रकार की तपस्याओं में निरत रहनेवाला मैं—तुम अवश्य यहाँ आओगे, यह निश्चय करके तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। अब मेरे दोनों प्रकार के कर्मों का बंधन टूट गया। जैसे घटित होना था, वैसे ही हुआ और तुम आये। अब मेरे लिए यहाँ और कोई कार्य नहीं रह गया है।

हे शक्तिशाली! इन्द्र ने आकर कहा था कि कमलभव ब्रह्मा ने तुम्हें सत्यलोक का निवास प्रदान किया है। प्रलय काल तक तुम वहाँ रह सकते हो। किन्तु, शाश्वत परमपद की प्राप्ति की कामना करनेवाले मैंने उस सत्यलोक को पाना नहीं चाहा।

अपौरुषेय वेदों के लिए भी अज्ञेय परमतत्त्व को जाननेवाले (शरभंग) ने कहा कि तुम ऐसी कृपा करो कि मैं परमपद प्राप्त करूँ। फिर, अपनी प्रिय पत्नी के साथ उग्र अग्नि में प्रवेश करके अनुपम अपवर्ग पद में जा पहुँचे।

भावी को जाननेवाले, महिमामय सुगंधित कमल में उत्पन्न ब्रह्मा आदि देव, मुनिगण तथा अन्य लोग भी, दोनों कर्मों के बंधन से मुक्त होकर जिस पद को प्राप्त करने की कामना करते हैं, उस पद में वे मुनिवर जा पहुँचे।

अखिल ब्रह्मांड को अज्ञेय रूप में निगलनेवाले (भगवान् राम) के एक नाम को जो जानते हैं, उनके पुण्य फल भी विचार से परे होते हैं। फिर, जो अपने अंतिम समय में उस भगवान् के दर्शन करते हैं, उनको कौन सा बड़ा पद प्राप्त होगा, इसको कौन जान सकता है। (१—४४)

अरुण चरणो को दुखाकर पैर रखते हुए हमारी रक्षा करने को न आते, तो उससे तुम्हारा क्या अपयश होता ? (जिससे बचने के लिए तुम आये हो) या (हमसे कुछ प्रतिफल की कामना रखते हो, पर) कौन सा प्रतिफल देना हमारे लिए संभव है ?

हे उत्तम ! तुम्हारे नाभि कमल से उत्पन्न चतुर्मुख भी, दोषहीन सब लोको को गणना चिह्न मानकर, गिनने लगे, तो उसका एक अंश भी नहीं गिन सकता है। पूर्वकाल में धरती को पात्र, क्षीर सागर को दही और उन्नत (मंदर) पर्वत को मथानी बनाकर अपने कमल तुल्य करो को दुखाते हुए तुमने मथा था और अमृत निकालकर केवल हम देवो को दिया था। तब असुर लोग भी तुम्हारे दास हो गये थे न ?

आदि में तुम एक ही थे। फिर, अनेक रूप हुए और सबके प्राण और प्रज्ञा भी हुए। महाप्रलय के समय तुम विनाश का रूप लेते हो और (सृष्टि के आरंभ में) नाना लोको का रूप धारण करते हो। हे स्वच्छ ज्ञान का विषय बने हुए भगवान् ! हमारे अभीष्टो को पूर्ण करनेवाले प्रभु ! तुम पवित्र आत्माओं की रक्षा करते हो तथा पापियो को दंड देते हो। वह विनश्वर पाप भी तो तुम्हारी ही सृष्टि है।

हे मेरे पिता ! पूर्वकाल में अपार माया के प्रभाव से जब हम इस शंका में पडकर कि तुम परम तत्त्व हो या नहीं, विभ्रान्त और दिङ्मूढ हो गये थे, तब हमारे सुकृत के परिणाम से सप्तर्षिगण हमारे सामने प्रकट हुए और शिवजी के पास पहुँचकर, हमने यह निर्णय किया कि समस्त लोक तुम (विष्णु) से ही उत्पन्न होकर बनते हैं। यो हमारी शंका को दूर करने का साधन भी तुम्ही बने थे।[1]

स्वर्णमय दीर्घ मुकुटवाले इन्द्र ने मन में विचार कर इस प्रकार के अनेक वचन कहकर उनकी प्रशंसा की। फिर, यह सोचकर कि (रामचन्द्र के वहाँ आगमन का) कोई विशेष कारण है, अपना उपमान न रखनेवाले मुनिवर से आज्ञा माँगी और देवलोक को जा पहुँचा।

शरभंग ने इस प्रकार जानेवाले देवेन्द्र का मनोगत भाव जान लिया। फिर, देवाधिदेव (राम) के सम्मुख जाकर स्वागत कर उन्हें ले आये। उस समय राम ने उन मुनि के चरणो को प्रणाम किया, तब वह मुनि जो निःश्रेयस पद पाने की इच्छा से कठिन साधना कर रहे थे, प्रेम के आधिक्य से रो पडे।

मुनि ने राम से कहा—'सुखी हो और जीते रहो। अपनी पत्नी और अनुज को भी यहाँ ले आओ।' तब रामचन्द्र उनको भी ले आये। अनेक युगो से तप करनेवाले

१ एक बार मुनियों और देवो में यह विवाद छिड़ा कि कौन परमात्मा है। तब सप्तर्षियो में प्रधान भृगु, क्रमशः कैलास और सत्यलोक में गये। किंतु, वहाँ शिव और ब्रह्मा को अपनी-अपनी देवी के साथ संलाप में निरत देखा। वहाँ से निरादृत होने पर वे वैकुंठ में गये। वहाँ लक्ष्मी के संग सर्प-शय्या पर आसीन विष्णु को देखा, पर विष्णु की निगाह भृगु पर न पड़ी। इसपर क्रुद्ध होकर भृगु ने विष्णु के वक्ष पर पदाघात किया। तब विष्णु यह कहते हुए कि ऐसा करने से महर्षि का पैर दुख गया होगा, उनके चरण को पकड़कर दबाने लगे। इस पर भृगु ने पहचाना कि विष्णु ही सात्त्विक देव है और अन्य मूर्त्तियो से श्रेष्ठ है। इसी कथा की ओर इस पद्य में संकेत किया गया है।—अनु०

उम मुनि के आश्रम म आकर वे यों आनन्दित हुए, जैसे क्षीरसागर म (शेष) शयन पर ही विश्राम कर रहे हो।

उस स्थान म, तत्त्वज्ञ मुनि के धर्ममय उपदेश सुनते हुए रामचन्द्र ने हरिणी समान नयनावाली देवी के साथ वह अंधकार भरी रात्रि व्यतीत की।

तब सूर्य, मसार को आवृत करनेवाले घने अंधकार रूपी चादर को अपने सब दिशाओं म परिव्याप्त अपरिमेय उज्ज्वल करों के आतप रूपी धारवाले करवाल से हटाने लगा।

उस समय, तत्त्वज्ञ मुनि ने उन (राम) के सम्मुख ही अग्नि को प्रज्वलित करके उसमे प्रवेश करने का विचार किया और शास्त्रोक्त विधि से सत्वर अग्नि प्रज्वलित करके रामचन्द्र से प्रार्थना की कि अब मुझे आज्ञा दीजिए।

दृढ धनुष्य (धनुष के प्रयोग म निपुण) राम ने वेदों म निपुण (शरभंग) को देखकर कहा—आप क्या करना चाहते हैं, बताइए। तब मुनि ने कहा—हे लक्ष्मी नायक! म मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा से अग्नि म प्रवेश करना चाहता हूँ, आप आज्ञा देने की कृपा कीजिए।

रामचन्द्र ने उनसे प्रश्न किया—अजिन (मृगचर्म) से शोभायमान वक्षवाले, हे मुनिवर! मेरे आगमन के समय आप यह क्या कर रहे हैं? तब मन्मथ की विजय को कुठित करनेवाली मानसिक दृढता से युक्त उस मुनिवर ने अपना शरीर त्याग करने के उमंग म यों उत्तर दिया—

हे विजयशील! विविध प्रकार की तपस्याओं म निरत रहनेवाला मैं—तुम अवश्य यहाँ आओगे, यह निश्चय करके तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। अब मेरे दोनों प्रकार के कर्मों का बंधन टूट गया। जैसे घटित होना था, वैसे ही हुआ और तुम आये। अब मेरे लिए यहाँ और कोई कार्य नहीं रह गया है।

हे शक्तिशाली! इन्द्र ने आकर कहा था कि कमलभव ब्रह्मा ने तुम्हे सत्यलोक का निवास प्रदान किया है। प्रलय काल तक तुम वहीं रह सकते हो। किन्तु, शाश्वत परमपद की प्राप्ति की कामना करनेवाले मैंने उस सत्यलोक को पाना नहीं चाहा।

अपौरुषेय वेदों के लिए भी अज्ञेय परमतत्त्व को जाननेवाले (शरभंग) ने कहा कि तुम ऐसी कृपा करो कि मैं परमपद प्राप्त करूँ। फिर, अपनी प्रिय पत्नी के साथ उग्र अग्नि म प्रवेश करके अनुपम अपवर्ग पद म जा पहुँचे।

भावी को जाननेवाले, महिमामय सुगंधित कमल म उत्पन्न ब्रह्मा आदि देव, मुनिगण तथा अन्य लोग भी, दोनों कर्मों के बंधन से मुक्त होकर जिस पद को प्राप्त करने की कामना करते हैं, उस पद म वे मुनिवर जा पहुँचे।

अखिल ब्रह्मांड को अज्ञेय रूप म निगलनेवाले (भगवान् राम) के एक नाम को जो जानते हैं, उनके पुण्य फल भी विचार से परे होते हैं। फिर, जो अपने अंतिम समय म उस भगवान् के दर्शन करते हैं, उनको कौन सा बडा पद प्राप्त होगा, इसको कौन जान सकता है। (१–४४)

अध्याय ३

अगस्त्य पटल

आनन्द उत्पन्न करनवाल, वक्र धनुष को धारण किये हुए व कुमार (राम लक्ष्मण), उस शरभग की मृत्यु का दृश्य देखकर मन म वहुत दु खी हुए। फिर, (सीता) दवी के साथ उस पवित्र (मुनि) के आश्रम स धीरे धीर चले।

पर्वत, वृक्ष, सुन्दर काली शिलाएँ, तरगो से भरी नदियाँ, झरनो स युक्त पवत शिखर, घने उद्यान, सुहावन स्थान एव गभीर जलाशय सवको धीर धीरे पार करते हुए वे आगे बढे।

पुरातन ब्रह्मदव क पुत्र, मुड हुए शिखावाले बालखिल्य आदि दडकारण्य के निवासी मुनि उनके सम्मुख आये ओर उनके दशन करके आनन्दित हुए।

अत्यधिक बढनेवाले क्रोध से युक्त राक्षसो के अत्याचारो स (बचने का) कोई उपाय न दखकर पीडित हानेवाले वे मुनिगण जलते वन के उन सूखे वृक्षो की समता करते थे, जा अमृत समान जल धारा स सिंचित होकर जीवित हो उठे हो।

अधिकाधिक बढते हुए बलवाले राक्षसो का नाम लेते हुए भी उनका कठ स्वर विकृत हो उठता था। ऐसे सकट से अब मुक्त हुए उन मुनियो की दशा उस बछड़े की सी थी, जा दावानल से जलनेवाले वन म फँस गया हो और फिर अपनी माँ को अपनी ओर दोडकर आते हुए दखकर आनन्दित हो उठा हा।

किसी क द्वारा प्रतिकार करने को दुस्साध्य, क्रूर कृत्यवाले राक्षसो क साथ युद्ध करके उन्हे मिटाने का काइ उपाय न दखकर व मुनि मन ही मन कुढत रहत थे। अब ऐसे निश्चिन्त हुए, जैसे राक्षस नामक समुद्र के मध्य डूबनवालो को एक नोका ही मिल गई हो।

उन मुनियो ने (रामचन्द्र को) भली भाँति देखा और ऐसे प्रसन्न हुए, जैसे अपने महान् तप की महिमा स ज्ञान पाकर, जन्म रूपी कठोर बधन स मुक्त हो गये हो और मोक्ष पद प्राप्त कर लिया हो।

यद्यपि व (मुनि) ऐसी सत्य तपस्या स सपन्न थ, जा साधको क सब अभीष्टो का पूण करनेवाली हाती थी, तथापि उन्हाने क्षमा शक्ति क कारण उत्तरोत्तर बढनेवाले अपने क्रोध को समूल विनष्ट कर दिया था। इसलिए, उस वन क राक्षसो स पीडित होते रहत थे।

वे मुनि उठकर आय। काले मघ सदृश स्थित उन राम के निकट उमडत प्रेम क साथ आ पहुँचे। ज्यो ज्यो व राम उन्हे नमस्कार करत थे, त्यो त्यो व मुनि आशी देते रहे।

वे मुनि उन (रामचन्द्र) को एक सुन्दर पण शाला म ले गय और यह कहकर कि यहाँ तुम सुख से निवास करो, अनक सत्कार किये, फिर वे स्वय अन्यत्र जाकर ठहरे। फिर (उचित समय पर) राक्षसो के अत्याचार का कहने क लिए (राम क पास) आये।

प्रभु ने आय हुए मुनियो को प्रणाम करके उनकी प्रस्तुति की और आसीन होने

पर प्रश्न किया कि क्या आज्ञा ह ? तब उन्होने उत्तर दिया—ह ससार के रक्षक (दशरथ) के पुत्र ! अब जो अत्याचार यहाँ हो रहे ह, उन्हे सुनो ।

दया नामक गुण का लेश भी जिनके हृदय मे नही ह, ऐसे धर्म रहित कुछ लोग ह, जिन्हे राक्षस कहते ह । वे (राक्षस) हमे अनुचित तथा अधर्म के मार्ग पर चलने के लिए विवश करते ह, जिससे हम धर्म और तपस्या के सन्मार्ग से भटक जाते ह ।

हे धनुष से युक्त भुजावाले ! अनेक व्याघ्र जहाँ सचरण करते ह, ऐसे वन मे रहनेवाले हरिणो के समान हम रात दिन व्यथित्मन रहते ह । हमसे अब अधिक सहा नही जायगा । प्रख्यात धर्म पथ से भी हम स्खलित हो रहे ह । क्या हम इन दुखो से मुक्ति मिलेगी ?

महिमामय तपोमार्ग मे हम नही चल पाते । अब वेदो का अध्ययन भी नही कर पाते । अध्ययन करनेवालो की सहायता भी नही कर सकते । पुरातन यज्ञाग्नि को भी हम प्रज्वलित नही कर पाते । सदाचरण मे भी भ्रष्ट हो गये ह । अत हम ब्राह्मण कहलाने योग्य भी नही रहे ।

इन्द्र स्वर्ग मे पूछता तो वह राक्षसो के आदेशो को, अपने शिर आँखो पर धारण कर उनका पालन करता रहता है । हे हमारे प्रभु ! तुम्हारे अतिरिक्त हमारे दुखो को दूर करनेवाला और कौन ह ? हमारे सुकृत से ही तुम यहाँ आये हो ।

ससार भर मे प्रचलित अपने शासन चक्र से ससार की रक्षा करनेवाले चक्रवर्त्ती के हे पुत्र ! हमारे दिन अपाय अन्धकार से भरे ह । अब तुम सूर्य के समान उदित हुए हो । हे कृपालु वीर ! हम तुम्हारी शरण मे ह—यो मुनियो ने निवेदन किया ।

सूर्यकुल मे उत्पन्न वीर (राम) ने कहा—यदि वे (राक्षस) मेरी शरण मे आकर क्षमा नही माँगेगे, तो भले ही वे इस ब्रह्माड को छोडकर बाहर भी क्यो न भाग जायँ मेरे बाण खाकर नीचे गिरेगे । अब आप लोग इस अनुचित पीडा से मुक्त हो जाइए ।

मेरी माता का वर माँगना मेरे पिता की मृत्यु होना, मेरे गौरव पूर्ण भाई (भरत) का दुखी होना, मेरे नगर के लोगो का अत्यत वेदना से दुखित होना—इन सबके होते हुए भी मेरा वन गमन मेरे पुण्यो का ही फल है ।

यदि मै उन राक्षसो की शक्ति का समूल नाश न करूँ, जो धर्म से कभी स्खलित न होनेवाले मुनियो के महत्त्व को भूलकर, नीच बनकर उन्हे सताते ह, तो मेरे लिए यही उचित होगा कि मै (उनके हाथ) मर जाऊँ । अन्यथा, मनुष्य जन्म पाने से मुझे क्या सुकृत मिलेगा ?

उत्तम वेदो के ज्ञाता आपलोग भी उन राक्षसो के कबधो को नाचते हुए सहर्ष देखे । तभी दृढ धनुष तथा अवार्य बाणो से पूर्ण तूणीरो का वहन करनेवाली मेरी भुजाओ की पीडा दूर होगी ।

गो ब्राह्मणो तथा अन्य लोगो की रक्षा के लिए जो अपने प्राणो का त्याग करते हैं, वे ही उत्तम स्वर्ग के निवासी देवताओ के लिए भी पूज्य देवता बनते ह ।

शूरपद्म (नामक असुर) को मारनेवाले (सुब्रह्मण्य), उज्ज्वल चक्रायुध को धारण करनेवाले (विष्णु) या त्रिपुरो को मिटानेवाले (शिव) भी, उन राक्षसो की रक्षा

करने आये, तो भी मै उन अधर्मी (राक्षसो) का समूल विनाश करूँगा। आपलोग डरे नही।

(राम के द्वारा) कथित ये वचन सुनकर वे आनदित हुए। उनका प्रेम उमड उठा, उनकी पीडा दूर हुई। वे अपने दड उछालने लगे। मधुर वेद वाचन करन लगे। नाचने लगे। फिर यो बोले—

हे सृष्टि के नायक। यदि तुम क्रोध करो, तो इन तीनो लोको के जैसे तीस कोटि लोक भी यदि तुम्हारा सामना करन आये, तो व भी तुम्हारे लिए कुछ नही होगे। सब वेद, (हमारी) तपस्या और ज्ञान इसके साक्षी ह।

अत, तुम (वनवास के) दिनो हमारी रक्षा करत हुए, यही इस आश्रम मे आराम से रहो—यो मुनियो ने कहा। तब राम ने उन महान् तपस्वियो के चरणो को नमस्कार करक वही निवास किया।

वे कुमार (राम लक्ष्मण) उस स्थान म बिना किसी कष्ट के दस वर्ष पर्यंत रह। फिर, उन तपस्वियो ने विचार करके इनसे कहा कि तुम अगस्त्य के पास जाओ। तब वे अर्धचद्र सम ललाटवाली सीता दवी क साथ वहाँ से चल पडे।

दरारो से भरी तथा उबड खाबड धरती को और बॉस आदि के झाडो स भरे स्थलो के सकीर्ण मार्गों को धीरे धीरे पार करके वे उज्ज्वल शरीरवाले कर्म बधन से रहित सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम मे पहुँचे।

गर्व रहित चित्तवाले उन कुमारो ने वहाँ पहुँचकर, सूर्य के समान तजस्वी उन मुनिवर के अरुण चरणो को प्रणाम किया। तब मुनि ने उनका सत्कार करके कहा—तुम लोग यही विश्राम करो। तब वे वीर उस सुगधित उद्यान म ठहरे।

जब वे वहाँ ठहरे हुए थे, तब उन मुनिवर ने उनका सब प्रकार से उपचार करके कहा—हे श्रीमन्। यह मरे सुकृत ह, जो तुमने यहाँ आने की कृपा की। प्रभु ने भी बडी भक्तिपूर्वक उन मुनिवर से कहा—

प्रख्यात चतुमुख के वश म उत्पन्न मुनिश्रेष्ठो म तुम्हारे समान पूर्ण तपस्या से सपन्न अन्य कौन ह? और, तुम्हारे जेसे महान् तपस्वी की कृपा का पात्र म बना हूँ। इसलिए, मेरे समान (भाग्यशाली) गृहस्थ भी कौन है?

चिरकालिक तपस्या से सपन्न मुनिवर न उपमान रहित (राम) को उत्तर दिया—तुम आतिथ्य स्वीकार करके उसे सफल बनाओ। मै अपनी समस्त तपस्या दक्षिणा के रूप मे तुम्हे अपित करता हूँ।

वदान्य (राम) ने उस वेदज्ञ मुनि को उत्तर दिया—ह स्वामिन्। तुम्हारी यह करुणा ही किस तपस्या से कम हे? फिर कहा—अब मुझे एक बात निवेदन करनी हे। अगस्त्य महर्षि के दशन अभी मैने किये नही। यही एक कमो रह गई है।

तब मुनि ने कहा—तुमने ठीक सोचा है। मैने पहले ही यह कार्य निश्चित किया था। तुम उन मुनि के आश्रम म उनके निकट जाआ। वहाँ जाने पर तुम्हारे लिए कोई सुफल अलभ्य नही रह जायगा।

इतना ही नही। वे अबतक तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा करत हुए रहते होगे।

अत , ह समस्त कल्याणो से युक्त महानुभाव ! तुम उन मुनिवर के निकट जाओ। इससे देवो तथा अन्य सब का हित होगा।

फिर, मुनि ने (अगस्त्य के आश्रम को जाने का) माग बताकर अनत आशीवाद दिये। तब उस तपस्वी के कमल समान चरणा को प्रणाम करक व वीर वहॉ से चले और मधु की स्वच्छ धाराओ को बहानेवाल एक उद्यान म शीघ्र आ पहुँचे।

विशाल (या चिरतन) तमिल भाषा से सारे लोक को चक्रपाणि (विष्णु) के जैसे नापनेवाले (अगस्त्य) मुनि ने जब यह सुना कि पौरुष मे भरे कुमार (राम लक्ष्मण) वहॉ आये ह, तब उनके मन म जो आनन्द उमडा, वह समुद्र के जैसे उमडकर सत्यलोको मे भर गया। वे महिमावान् वरद (राम) की शरण म जाने के लिए आगे बढे।

व अगस्त्य ऐसे ह कि पूवकाल म जब देवताओ ने, समुद्र मे असुरो के छिप जाने पर उनसे प्रार्थना की कि ह तपस्वी ! हम पर कृपा करो, तब उन्होने सारे समुद्र को एक चुल्लू म भरकर पी लिया था और जब उन (दवो ने) प्राथना की कि समुद्र को उगलने की कृपा करे, तव उसे उगल दिया था।

उस वामनाकार मुनि ने स्वच्छ समुद्र के जल को पीकर उसे उगल दिया था और मायावी राक्षस (वातापि) को खाकर उसक कठोर शरीर को पचा लिया था, एव समार के दु ख को दूर किया था।

जब विध्याचल ने बढ़कर अतरिक्ष को भर दिया था, उस समय यागमार्ग म स्थिर रहनेवाले मुनियो ने (अगस्त्य) से प्राथना की कि आप हमारे जाने का कोई बाधा रहित मार्ग बताइए। तब अगस्त्य ने मेघो की पक्तियो मे उठे हुए गगनोन्नत विध्याचल पर अपना पद रखा और हाथी के जैसे उसपर बैठकर उसे ऐसा दबाया कि वह पाताल मे धॅस गया।

पूर्वकाल म एक बार उत्तर दिशा नीचे झुक गई और दक्षिण दिशा ऊपर उठ गई। तव गंगा का धारण करनवाले शिवजी ने अगस्त्य को आज्ञा दी कि ह निश्चल तथा निर्दोष तपस्यावाले ! तुम (दक्षिण दिशा म) जाओ। उस आदेश के अनुसार व गगनोन्नत मलय पर्वत ('पोदियमलै नामक पवत) पर आ पहुँचे और शिवजी के समान ही दक्षिण दिशा मे रहकर भूमि के सतुलन को बनाये रखा।

कातिमय परशु तथा सुन्दर ललाट म अग्नि उगलनेवाले नेत्रो से शोभित, अग्नि सदृश तेज स्वरूप भगवान् (शिव) के द्वारा उपदिष्ट तमिल (व्याकरण) को उन्होन लोक परपरा, काव्य रूति एव अपनी बुद्धि के द्वारा यथाविधि सुसस्कृत करके परिश्रम से अध्ययन किये जानेवाले चार वेदो से भी श्रेष्ठ बना दिया।[1]

[1] यह कथा प्रसिद्ध ह कि अगस्त्य शिवजी द्वारा प्राप्त व्याकरण को लकर दक्षिण मे 'पोदियमले' पर आकर रहे थ। वहा पेरगत्तियम—(बृहद् अगस्तीयम्) और शिरुअगत्तियम—(लघु अगस्तीयम्) नामक दो ग्रन्थ रचकर अपने बारह शिष्या को सिखाया, जिनम तोलगाप्पियर मुख्य थे। इन्ही तोलगाप्पियर ने आगे चलकर तमिल-भाषा का एक बृहद् व्याकरण लिखा, जो अब तमिल-साहित्य में उपलब्ध प्राचीनतम ग्रन्थ ह। अगस्त्य का लिखा हुआ व्याकरण अब उपलब्ध नही है, किंतु उनके व्याकरण के उद्धरण अन्य ग्रन्थो म मिलते ह। विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य बालकाण्ड (अनुवाद) पृ० ४५ की पादटिप्पणी। —अनु

करने आये, तो भी मै उन अधर्मी (राक्षसो) का समूल विनाश करूँगा। आपलोग डरे नही।

(राम के द्वारा) कथित ये वचन सुनकर व आनदित हुए। उनका प्रेम उमड उठा, उनकी पीडा दूर हुई। व अपने दड उछालने लग। मधुर वद वाचन करन लगे। नाचने लगे। फिर यो बोले—

हे सृष्टि के नायक। यदि तुम क्रोध करो, ता इन तीनो लोको के जैसे तीस कोटि लोक भी यदि तुम्हारा सामना करन आये, तो वे भी तुम्हारे लिए कुछ नही होगे। सब वेद, (हमारी) तपस्या और ज्ञान इसके साक्षी ह।

अत, तुम (वनवास क) दिनो हमारी रक्षा करत हुए, यही इस आश्रम मे आराम से रहो—यो मुनियो ने कहा। तब राम ने उन महान् तपस्वियो के चरणो को नमस्कार करक वही निवास किया।

वे कुमार (राम लक्ष्मण) उस स्थान म विना किसी कष्ट के दस वर्ष पर्यंत रह। फिर, उन तपस्वियो न विचार करके इनस कहा कि तुम अगस्त्य के पास जाओ। तब वे अर्धचद्र सम ललाटवाली सीता दवी क साथ वहॉ से चल पडे।

दरारो से भरी तथा उबड खाबड धरती को और बॉस आदि के झाडो स भरे स्थलो के सकीर्ण मार्गा को धीरे धीरे पार करके वे उज्ज्वल शरीरवाले कर्म बधन से रहित सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम मे पहुँचे।

गर्व रहित चित्तवाले उन कुमारो ने वहॉ पहुँचकर, सूर्य के समान तेजस्वी उन मुनिवर के अरुण चरणो को प्रणाम किया। तब मुनि ने उनका सत्कार करके कहा—तुम लोग यही विश्राम करो। तब वे वीर उस सुगधित उद्यान म ठहरे।

जब वे वहॉ ठहरे हुए थे, तब उन मुनिवर न उनका सब प्रकार से उपचार करके कहा— हे श्रीमन्। यह मरे सुकृत ह, जो तुमने यहॉ आने की कृपा की। प्रभु ने भी बडी भक्तिपूर्वक उन मुनिवर से कहा—

प्रख्यात चतुर्मुख के वश म उत्पन्न मुनिश्रेष्ठो म तुम्हारे समान पूर्ण तपस्या से सपन्न अन्य कौन ह? और, तुम्हारे जैसे महान् तपस्वी की कृपा का पात्र मे बना हूँ। इसलिए, मेरे समान (भाग्यशाली) गृहस्थ भी कौन है?

चिरकालिक तपस्या से सपन्न मुनिवर ने उपमान रहित (राम) को उत्तर दिया—तुम आतिथ्य स्वीकार करके उसे सफल बनाओ। मै अपनी समस्त तपस्या दक्षिणा के रूप मे तुम्हे अर्पित करता हूँ।

वदान्य (राम) ने उस वेदज्ञ मुनि को उत्तर दिया—ह स्वामिन्। तुम्हारी यह करुणा ही किस तपस्या से कम है? फिर कहा—अब मुझे एक बात निवेदन करनी है। अगस्त्य महर्षि के दर्शन अभी मैने किये नही। यही एक कमी रह गई है।

तब मुनि ने कहा—तुमने ठीक सोचा है। मैने पहले ही यह कार्य निश्चित किया था। तुम उन मुनि के आश्रम म उनके निकट जाओ। वहॉ जाने पर तुम्हारे लिए कोई सुफल अलभ्य नही रह जायगा।

इतना ही नही। वे अबतक तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा करत हुए रहते होगे।

अत , ह समस्त कल्याणो से युक्त महानुभाव । तुम उन मुनिवर के निकट जाओ। इमस देवो तथा अन्य सब का हित होगा।

फिर, मुनि ने (अगस्त्य के आश्रम को जाने का) माग वताकर अनत आशीवाद दिये। तब उम तपस्वी के कमल समान चरणो को प्रणाम करक व वीर वहाँ से चले और मधु की स्वच्छ धाराओ को बहानेवाले एक उद्यान म शीघ्र आ पहुँचे।

विशाल (या चिरतन) तमिल भाषा से सारे लोक को चक्रपाणि (विष्णु) के जैसे नापनेवाले (अगस्त्य) मुनि ने जब यह सुना कि पौरुष मे भरे कुमार (राम लक्ष्मण) वहाँ आये ह, तव उनके मन म जो आनन्द उमडा, वह समुद्र के जैसे उमडकर सत्यलोको मे भर गया। वे महिमावान् वरद (राम) की शरण म जाने के लिए आगे बढे।

व अगस्त्य ऐसे ह कि पूर्वकाल म जब देवताओ ने, समुद्र मे असुरो के छिप जाने पर उनसे प्राथना की कि हे तपस्वी। हम पर कृपा करो, तब उन्होंने सारे समुद्र को एक चुल्लू म भरकर पी लिया था और जब उन (देवो ने) प्राथना की कि समुद्र को उगलने की कृपा करे, तव उसे उगल दिया था।

उस वामनाकार मुनि ने स्वच्छ समुद्र के जल को पीकर उस उगल दिया था और मायावी राक्षस (वातापि) को खाकर उसके कठोर शरीर का पचा लिया था, एव ससार के दु ख को दूर किया था।

जब विंध्याचल ने बढ़कर अतरिक्ष को भर दिया था, उस समय योगमार्ग म स्थिर रहनेवाले मुनियो ने (अगस्त्य) से प्राथना को कि आप हमार जाने का कोई बाधा रहित मार्ग वताइए। तब अगस्त्य ने मेघो की पक्तियो म उठे हुए गगनोन्नत विध्याचल पर अपना पद रखा और हाथी के जैसे उसपर बैठकर उसे ऐसा दबाया कि वह पाताल म धँस गया।

पूर्वकाल म एक बार उत्तर दिशा नीचे झुक गई और दक्षिण दिशा ऊपर उठ गइ। तब सर्पो का धारण करनेवाले शिवजी ने अगस्त्य को आज्ञा दी कि ह निश्चल तथा निर्दोष तपस्यावाले। तुम (दक्षिण दिशा म) जाओ। उस आदेश के अनुसार व गगनोन्नत मलय पर्वत ('पादियमलै' नामक पर्वत) पर आ पहुँचे और शिवजी के समान ही दक्षिण दिशा मे रहकर भूमि के सतुलन को बनाये रखा।

कातिमय परशु तथा सुन्दर ललाट म अग्नि उगलनेवाले नेत्रो से शोभित, अग्नि सदृश तज स्वरूप भगवान् (शिव) के द्वारा उपदिष्ट तमिल (व्याकरण) को उन्होन लोक परपरा, काव्य रूढि एव अपनी बुद्धि के द्वारा यथाविधि सुसस्कृत करके परिश्रम से अध्ययन किये जानेवाले चार वेदो से भी श्रेष्ठ बना दिया।[१]

१ यह कथा प्रसिद्ध ह कि अगस्त्य शिवजी द्वारा प्राप्त व्याकरण को लेकर दक्षिण म 'पोदियमल' पर आकर रहे थ। वह। पेरगत्तियम—(बृहद् अगस्तायम्) आर शिरुअगत्तियम—(लघु अगस्तायम्) नामक दो ग्रन्थ रचकर अपने बारह शिष्या को सिखाया, जिनम तोलगाप्पियर मुख्य थे। इन्ही तोलगाप्पियर ने आगे चलकर तमिल-भाषा का एक बृहद् व्याकरण लिखा, जो अब तमिल-साहित्य म उपलब्ध प्राचीनतम ग्रन्थ ह। अगस्त्य का लिखा हुआ व्याकरण अब उपलब्ध नही है, किंतु उनके व्याकरण के उद्धरण अन्य ग्रन्थो म मिलते ह। विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य वालकाण्ड (अनुवाद) पृ० ४२ की पादटिप्पणी। —अनु०

जिस परम तत्त्व के बारे मे सब लोग यह सोचते रहते है कि वह स्वर्ग मे है, भूलोक मे है, अन्य किसी लोक मे है, (योगियो के) हृदय मे है अथवा वेदो मे है, उस तत्त्व को मै अपनी आँखो से देख सकूँगा—यह सोचकर अगस्त्य आनन्दित हुए।

ब्रह्मा आदि भी, प्रसिद्ध वेदो तथा अन्य (दर्शन ग्रन्थो) का सम्यक् अध्ययन करने से तीक्ष्ण बने हुए अपने ज्ञान की कसौटी पर अनेक युगो तक कस कसकर भी जिस तत्त्व को ठीक ठीक पहचान नही पाते, वही परम तत्त्व अब मेरे सम्मुख स्थित होकर मुझसे बोलने वाला है—यो सोचकर अगस्त्य अत्यन्त आनन्दित हुए।

असाध्य तथा क्रूर बलवाले राक्षस रूपी विष को, जड से उखाड देनेवाला वैद्य अब आ गया है। अब देवता लोग बच गये। तपस्वियो के प्राण भी सुरक्षित हो गये। ब्राह्मण भी धर्म मार्ग मे स्थिर हुए—यो अगस्त्य ने विचार किया।

अब प्राणियो को (उनकी आयु के) मध्य मे ही चबाकर खा जानेवाले राक्षसो के वज्र को भी जलानेवाले क्रोध रूपी अग्नि को शीघ्र मिटाकर ससार की रक्षा करने के लिए गगन के मेघ के समान ये (रामचन्द्र) आये है—इस प्रकार सोचकर उमग भरे हृदय से अगस्त्य आगे बढे।

उस मुनि ने, जो अपने कमडलु मे भरकर अनुपम कावेरी को लाये थे और उसके द्वारा अष्ट दिशाओ, सप्त लोको तथा सब प्राणियो को सद्गति प्रदान की थी, राम को आते हुए देखा, तब प्रेमाधिक्य से कमल समान कातिवाले उनके नयनो से आनन्दाश्रु बह चले।

वहाँ स्थित मुनि को श्रीराम ने आकर प्रणाम किया। तब शाश्वत रहनेवाली मधुर तमिल भाषा (के व्याकरण) को प्रचलित कर यशस्वी बने मुनि ने प्रेम से उनका आलिगन किया और आनन्दाश्रु बहाये। फिर 'तुम्हारा स्वागत है।' कहकर अनेक मधुर वचन कहे।

महान् तपस्वी तथा ब्राह्मणजन घिरकर वहाँ आये, वेद पाठ किया तथा कमडलु जल का प्रोक्षण कर पुष्प बरसाये। फिर अगस्त्य, पुष्पो की सुरभि से पूर्ण शीतल उद्यान मे (राम, लक्ष्मण और सीता को) ले गये।

अमल (राम) ने हर्ष के साथ उस सुन्दर उद्यान मे प्रवेश किया। मुनि ने उनका आतिथ्य किया। फिर कहा—हे करुणामय। यह मेरे बडे सुकृत का फल है, जो तुम मेरी कुटी मे आये। तुमने मेरी अपूर्व तपस्या को सफल बना दिया।

यो कहने पर रामचन्द्र ने अगस्त्य से कहा—देवता और महान् तपस्वी मुनि भी आपकी कृपा को (सुलभता से) नही प्राप्त कर सकते। मै आपकी कृपा का पात्र बना, अत मै समस्त लोको का विजयी हो गया हूँ। अब मुझे प्राप्त करने को क्या शेष रह गया?

तब अपने उत्तम शिर पर चन्द्रकला को धारण करनेवाले (शिव) की समता करनेवाले उन मुनि ने कहा—हे प्रशसनीय गुणो से विभूषित। मैने सुना था कि तुम

दडकारण्य म आय हो। इस पर मै यह सोचकर आनन्दित हुआ कि तब इस स्थान पर भी अवश्य आओगे। फिर आगे कहा—

हे प्रभु! अब तुम यही निवास करो, यहाँ रहन से आवश्यक तथा स्पृहणीय महान् तपस्या को पूर्ण कर सकोगे। बढ़ते हुए क्रोध से युक्त क्रूर राक्षस जब आयेंगे, तब युद्ध म उन्हे निहत करके हमारे मन के क्लेश को दूर करना।

ह चक्रवर्त्ती कुमार! (अब) वेद जीवित रहेगा। मनु विहित नीति जीवित रहगी। धम जीवित रहेगा। हीन बने हुए देवता उन्नति प्राप्त करेंगे। असुर अवनति प्राप्त करेंगे। इसम कुछ सदेह नही है। यह निश्चित है। सप्त लाक जीवित रहेंगे। तुम यही निवास करो—यों अगस्त्य न कहा।

तब राम बोले—हे वेद ज्ञान स युक्त मुनिवर! ऐसाले राक्षस, जो अत्याचार कर रहे हैं, उन्हे मिटाने एव उनके गव को दूर करन के हत उनका शीघ्र हनन के लिए मैं सन्नद्ध हूँ। अत, म सोचता हूँ कि व जिस दिशा से आत ह, उसी दक्षिण दिशा म मेरा आगे बढ़ जाना उचित है। आपकी क्या सम्मति ह?

तब अगस्त्य ने यह कहकर कि 'तुमन सुन्दर वचन कह' आगे कहा—यह जो धनु मेरे यहाँ ह, यह पूवकाल म विष्णु के पास था। त्रिलोकी के लोग तथा म इसकी पूजा करते रह ह। इस धनुष को तथा अक्षय बाणोवाले इन (दो) तूणीरो को लो। यह कहकर धनुष एव तूणीर राम को प्रदान किये।

अगस्त्य ने राम को एक ऐसा करवाल दिया, जो यदि त्रिभुवन को तराजू के एक पलडे मे रखकर और दूसरे मे उस करवाल को रखकर तोलें, तो त्रिभुवन भी उसकी समता नही कर सकते। फिर, एक (वैष्णव नामक) शर दिया, जिसे अग्नि रूपी हर ने महान् मेरु को धनुष बनाकर उस पर रखकर प्रयुक्त किया था और उससे त्रिपुरो को मिटाया था। उन दोनो शस्त्रो को देकर—

अगस्त्य ने कहा—हे तात! उन्नत वृक्षो, पवत शिखरो, सिकता श्रेणियो तथा पुष्प राशियो से शोभायमान, आसपास म शीतल उद्यानो स शोभित और तरगायमान नदियो मे घिरे हुए पवत मे पचवटी नामक एक स्थान है।

उस स्थान म फल देनेवाले बालकदली वृक्ष, रक्त धान की बालियो से पूर्ण सस्य, मधुस्रावी पुष्प तथा दिव्य कावेरी के समान नदी का प्रवाह है। वहाँ इस देवी (सीता) के कौतुक के लिए सारस एव हस भी ह।

अब तुम उसी स्थान म जाकर निवास करो—यों। (अगस्त्य न) कहा। घनश्याम ने भी उन्हे प्रणाम किया, उनकी आज्ञा ली और आगे चले। उनके पीछे खाँड के रस के समान मीठी बोलीवाली (सीता) तथा उनके अनुज चले और उनका अनुसरण करता हुआ उन मुनिवर का मन चला। वे सत्वर आगे बढ़ चले। (१–५६)

●

अध्याय ४

जटायु-दर्शन पटल

वे (राम, सीता और लक्ष्मण) कई कोस चले और बहनेवाली अनेक नदियों, स्थिर रहनेवाले कई पर्वतों, क्रमश स्थित घने वनो आदि को पार करके गये और एक स्थान पर गृद्धो के राजा (जटायु) को देखा।

वह जटायु इस प्रकार शोभायमान था, जैसे उदयगिरि पर स्थित पिघले स्वर्ण सदृश बाल रवि हो, जो इस विशाल धरती की सब दिशाओं को प्रकाशित करनेवाली अपनी घनी किरणो रूपी पखो को फैलाये हुए बैठा हो।

वह (जटायु) एक ऊँचे पवत के शिखर मध्य बैठा हुआ ऐसा था, मानो देवताओं ने अपार शब्दायमान क्षीरसागर के मध्य चद्र की काति से सयुत मदर पर्वत को खडा कर दिया हो।

वह जटायु, विशाल प्रदशवाले उस नालवण पर्वत पर (अपनी देह काति से) नीलवर्ण गगन की काति को आवृत किये हुए, दीघ प्रवाल लता के समान सुन्दर वण से युक्त अपनी मनोहर टॉगो की अरुण काति के साथ शोभायमान था।

वह पवित्र था। अपार शिक्षा तथा ज्ञान से युक्त था। सत्यपरायण था। दोषहीन था। सूक्ष्म बुद्धिवाला था। अपनी विवेचन शक्ति से (बातो को) जाननेवालो के जैसे ही दूर की वस्तुओ को भी अपनी छोटी ऑखो से देख सकता था।

वह क्रूर राक्षसो को मारकर यम को भोजन देकर तदनतर बचे हुए मास को स्वय खानेवाला था, नित्य रगड खाने से उसकी चोच इन्द्र के छोटी ऑखवाले (ऐरावत) हाथी के अकुश के समान चमक रही थी।

वह नवग्रहो और इनमे घिरे हुए ध्रुव नक्षत्र का सा दृश्य उपस्थित करनेवाले रत्नहार से शोभित था। उसके शिर पर किरीट इस प्रकार शोभित हो रहा था, जिस प्रकार मेरु के शिखर पर उज्ज्वल रवि हो।

वह शब्दो की शक्ति को कुठित करनवाले (अर्थात्, शब्दो के द्वारा प्रकट करने म असभव) महान् यश से उदित होनेवाले अरुणदेव का पुत्र था और उसने अनेक कल्पो को दिनो के समान व्यतीत होते हुए देखा था।

वह एक अत्युन्नत पर्वत पर खडा था। वह इतना बलवान् था कि उसके भार को न सँभाल सकने के कारण वह पर्वत धरती मे धँसकर नीचा हो गया था। ऐसी वीरता से पूर्ण उस (जटायु) के निकट, वे (राम लक्ष्मण) आशका युक्त मन के साथ जा पहुँचे।

बडे वीर ककण को पहने हुए उन वीरो ने, यह सोचते हुए कि कोई ज्ञान रहित राक्षस हमारी हानि करने के विचार से पक्षी का वेष धारण करके आया है, सदेह के साथ उसे देखा।

वह (जटायु) भी, वीर कंकणा से भूषित तथा दृढ धनुष का धारण करनेवाले उन वीरो को देखकर सदेह करने लगा कि जटायुक्त शिरवाले ये (पुरुष) कर्म बंधन से मुक्ति प्राप्ति का साधन तप करनेवाले (तपस्वी) मात्र नही दिखते क्योंकि इनके हाथ मे धनुष है। शायद ये स्वय देव ही तो नही है?

मै तो इन्द्र आदि सब देवताओ को देखता हूँ। चक्रधारी (विष्णु), अभीष्ट वर देनेवाले (ब्रह्मा) और परशुधारी (शिव) भी मेरे लिए अदृश्य नही है। मै उन्हे सदा देखता हूँ।

मन्मथ को भी मैने अपनी आँखो से देखा है। वह कमल सदृश अरुण नयनो तथा विशाल हाथो से युक्त इन वीरो की चरण धूलि की भी समता नही कर सकता। फिर, ये वीर कौन हैं?

इनके शरीर मे तीनो लोको को अपना स्वत्व बनानेवाले उत्तम पुरुष के लक्षण विद्यमान है। कमलभव देवी (लक्ष्मी) का उपमान कहने योग्य एक रमणी इनके साथ चल रही है। मै नही जानता कि ये धनुधारी वीर कौन है।

ये नील तथा रक्तवर्ण पर्वतो के जैसे रूपवाले है। विजयलक्ष्मी से शोभित वक्ष-वाले हैं। अरुण नयनवाले है। ये दोनो वीर मेरे सुहृद अपूर्व सद्गुणो से पूर्ण चक्रवर्त्ती (दशरथ) के जैसे है।

वह (जटायु) मन मे इस प्रकार अनेक तर्क वितर्क कर रहा था। उसके मन मे कठोर शस्त्रधारी उन वीरो के प्रति प्रेम उमड आया। उसने प्रश्न किया—उत्तम तथा दृढ धनुष को धारण करनेवाले, वृषभ सदृश (बलवान्) आप कौन है?

उसके यो प्रश्न करने पर, पुष्प मालाओ से अलकृत, सत्य के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का वचन न बोलनेवाले इन वीरो ने उत्तर दिया—शोभायमान विशाल सागर से आवृत धरती की रक्षा करनेवाले वीर कंकणधारी चक्रवर्त्ती (दशरथ) के हम पुत्र है।

उनके यो कहने पर, उमडते हुए हर्ष रूपी समुद्र मे निमग्न होकर प्रेम से उनका आलिंगन करने के लिए वह (उस पर्वत पर से) नीचे उतर पडा और बोला—हे सुरभित हारो को धारण करनेवाले वीरो! उस चक्रवर्त्ती की पर्वत समान विशाल भुजाएँ बलशाली तो हैं न?

ज्योही (उन वीरो ने) यह कहा कि वे (चक्रवर्त्ती) अविस्मरणीय सत्य की रक्षा करते हुए स्वर्ग सिधार गये, त्योही उनकी मृत्यु का हाल जानकर वह शोकोद्विग्न हो उठा और फिर मूर्च्छित हो गिर पडा।

तब उन दोनो ने अपने विशाल हाथो से उसे उठाया तथा अपने अश्रुओ से उसके मुख को धोया। अपने प्राण (सज्ञा) लौट आने पर जटायु शिथिलमन होकर रोने लगा।

हे राजाओ के राजा! हे असत्य के शत्रु! हे सत्य के आभरण! हे यश के प्राण! तुम्हारी अवर्णनीय दानशीलता, उज्ज्वल श्वेतच्छत्र तथा क्षमा के सम्मुख जो उडुपति (चद्रमा), समुद्र से आवृत धरती तथा उदार कल्पवृक्ष अपनी गरिमा को खो बैठे थे, अब आनद से जीवित रहेगे। इस प्रकार तुम याचको को सद्धर्म को एव मुझको यह शोक भोगने के लिए छोडकर चले गये।

हे महाराज ! शोभा बढानेवाले तथा लोको को अमृत प्रदान करनेवाले श्वेतच्छत्र से युक्त ! समुद्र से आवृत इस धरती की रक्षा का भार त्याग कर क्या मेरे अस्थिर प्रेममय मित्र की परीक्षा करने के लिए ही तुम यो चले गये हो ? नायक ! हाय ! पापकर्मी मे, मित्र धर्म से स्खलित होकर अभी तक जीवित हूँ ।

हे दोष से रहित परिशुद्ध मनवाले ! दही को मथनेवाली मथानी के समान लोको को दु ख देनेवाले शबरासुर को जब तुमने परास्त किया था, तब तुमने सूक्ष्म मृत्तिका से भरी इस धरती के सब लोगो के सम्मुख अपने को देह और मुझे प्राण कहा था। तुम्हारे वचन अयथार्थ नही होते । विवेक रहित यम प्राणो को छोडकर शरीर को ही स्वर्ग ले गया है ।

मै अब अपनी कीर्त्ति को बढाते हुए प्रज्वलित अग्नि मे गिरूँगा । अन्यथा, भीरु स्त्रियो के समान धरती पर गिरकर विलाप करना क्या मेरे लिए उचित होगा ? यो कहकर आत्मज्ञानी के जैसे वह उठा और उन (राम लक्ष्मण) को देखकर बोला— सब लोको को अपने अधीन बनानेवाले हे कुमारो ! सुनो—

दक्ष प्रजापति की पचास पुत्रियाँ थी जो पीन स्तनोवाली सुन्दरियाँ थी। उनमे तेरह पुत्रियो से काश्यप ने विवाह किया। उनमे से अदिति ने तैंतीस करोड सुरो को जन्म दिया औरकाजल लगी आँखोवाली दिति ने उन (सुरो) से दुगुने असुरो को जन्म दिया।

दनु ने दानवो को जन्म दिया। मति ने मनुष्य जातियो को जन्म दिया। सुरभि ने गायो, अश्वो और अन्य जन्तुओ को जन्म दिया। क्रोधवशा ने गर्दभो, हरिणो और ऊँटो को जन्म दिया।

मेघतुल्य केशोवाली विनता ने घन की विद्युत् को, अरुण ने गरुड को पल्लव तुल्य पखवाले उलूक को तथा चील आदि पक्षियो को जन्म दिया। (स्त्रियो मे) रत्न तुल्य ताम्रा ने गोरैया, कौदारी, 'काटै' आदि (छोटे) पक्षियो को जन्म दिया। कला नामक लता सदृश महिला ने लता गुल्मो को जन्म दिया।

कद्रू नामक विद्युल्लता सदृश स्त्री ने अनेक भयकर फनोवाले सर्पो को जन्म दिया। सुधा ने एक शिरवाले नागो को जन्म दिया। अरिष्टा ने गोह, गिरगिट, गिलहरी आदि जन्तुओ को जन्म दिया। इडा ने जलचरो को जन्म दिया।

अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुधा, कला, सुरभि, विनता, मति, इडा, कद्रू, क्रोधवशा, ताम्रा—इन्होने भी क्रमश इन सब का जन्म दिया। विनता के पुत्र अरुण के कोमल भुजाओ तथा बाल चन्द्र तुल्य ललाटवाली रभा से हम (अर्थात्, सपाति और जटायु) उत्पन्न हुए।[1]

यौवन की शोभा से युक्त हे कुमारो ! मै अरुण का पुत्र हूँ। जिन जिन लोको मे वे (अरुण) व्याप्त होते हैं, उन उन लोको मे जाने की शक्ति मै रखता हूँ। उन दशरथ का, जिन्होने (लोको के) अधकार को दूर करते हुए शासन चक्र को चलाया था, मै प्राण प्रिय मित्र हूँ। जिस समय देव तथा अन्य जातियो का विभाजन हुआ था, उसी समय मैं उत्पन्न हुआ। मै गृद्धराज सपाति का अनुज जटायु हूँ।

१ ऊपर के पाच पद प्रक्षिप्त जान पडते है। —अनु०

उस (जटायु) ने जब ये वचन कहे, तब पर्वत सदृश कंधोंवाले उन (राम लक्ष्मण) ने अपने कमल करों को जोडकर प्रणाम किया। उस समय प्रेम के कारण उत्पन्न अत्यधिक वेदना से अपने कमल सदृश नयनों से अश्रु बहाते हुए इस प्रकार हुए, मानो धरती पर अपार यश को छोडकर स्वर्ग में पहुँचे हुए अपने पिता (दशरथ) को ही पुनः लौटे हुए देख रहे हों।

सुन्दर गुणोंवाले उन वीरों को अपने दोनों पंखों से आलिंगन करके (जटायु ने) कहा—हे पुत्रो! अब तुम ही मुझ पापकर्मवाले की भी अंतिम क्रिया करके मेरा उपकार करो। हमारे दो शरीरों के लिए एक ही प्राण रहते हुए वे (दशरथ) जब चल बसे, तब भी यह मेरा शरीर सुखपूर्वक अबतक जीवित है। यदि मैं इस शरीर का मोह छोडकर अभी इसे अग्नि में न डाल दूँ, तो इस दुःख को मैं कभी भूल नहीं सकूँगा।

इस प्रकार कहनेवाले गृध्रराज को देखकर घनी पुष्प मालाओं से विभूषित उन वीरों ने उसे प्रणाम किया और अपने नयनों में मोती जैसे अश्रुओं को अधिकाधिक बहाते हुए ये वचन कहे—

जबतक चक्रवर्त्ती जीवित रहे, वे हमारी रक्षा करते थे। वे अपने सत्य की रक्षा के लिए, (अपने शरीर का) कुछ भी विचार न करके स्वर्ग सिधार गये। अब हे महाभाग! तुम भी यदि हमें छोडकर चले जाओगे, तो हमारा अवलंब कौन रह जायगा?

हे धर्म का कभी त्याग न करनेवाले! जिनका वियोग असह्य होता है, ऐसे पिता, माता तथा सुखद नगर से बिछुडकर भी तुम्हारे कारण हम वन में आने के दुःख से मुक्त हुए हैं। अब क्या तुम भी हमें छोडकर जाना चाहते हो?

जब वे वीर इस प्रकार प्रार्थना करते हुए, दुःखी मन के साथ खडे रहे, तब उन्हें देखकर जटायु ने कुछ विचार कर कहा—हे तात! यदि मेरा इस समय मर जाना तुम्हें स्वीकार नहीं हो, तो तुमलोग जब अयोध्या वापस पहुँचोगे, तब मैं उन चक्रवर्त्ती (दशरथ) के पास जाऊँगा।

यदि चक्रवर्त्ती स्वर्ग सिधार गये, तो तुम वीर राज्य का भार वहन किये बिना इस वन में क्यों आये हो? तुम्हारे इस कार्य से मेरी बुद्धि चकरा रही है। अतः, सारा वृत्तांत ठीक ठीक कहो।

पत्राकार अति तीक्ष्ण मनोहर तथा रक्त के चिह्नों से युक्त शूल को धारण करनेवाले हे वीरो! बलवान् देव हो, दानव हो, नाग हो अथवा अन्य कोई भी हो, यदि वे तुम्हें कुछ कष्ट देंगे, तो मैं उनके प्राण हरूँगा और तुम्हें राज्य प्रदान करूँगा।

तात (जटायु) के यों कहने पर सीता पति ने अपने अनुज की ओर देखा। तब उस (लक्ष्मण) ने अपनी विमाता के कारण उत्पन्न सारी घटना को संपूर्ण रूप से कह सुनाया।

तब जटायु ने राम से कहा—तुम अपने पिता के सत्य वचन की रक्षा के लिए अपनी विमाता की आज्ञा को शिरोधार्य करके पृथ्वी (के राज्य) को अपने भाई (भरत) को सौंपकर यहाँ आये हो। हे वदान्य! मेरे तात! तुमने जो साहसपूर्ण कार्य किया है, उसे और कौन कर सकता है?

यो कहकर कमल समान नयनावाले (राम) का प्रेम से आलिंगन करके उनका सिर सूँघा और आनन्दाश्रु बहाते हुए कहा—हे समर्थ कुमार ! तुमने उन चक्रवर्ती को तथा मुझको अपार यश दिया है।

फिर, उस महात्मा (जटायु) ने कंकणों से भूषित हंस सदृश देवी (सीता) को देखकर (राम से) पूछा—हे चक्रवर्ती कुमार ! यह स्त्री कौन है? कहो।

तब राम के अनुज ने पूर्वकाल में साकार अंधकार सदृश ताडका के वध से लेकर शिव धनु का भंग करने तक की सारी घटनाएँ तथा वन गमन तक के अन्य प्रसंग भी कह सुनाये।

उज्ज्वल शिरवाले वयोवृद्ध (जटायु) ने सब सुनकर आनन्दित होकर कहा—पुष्प मालाओं से भूषित हे कुमारो ! समृद्ध देश को त्यागकर आये हुए तुमलोग उज्ज्वल ललाटवाली (सीता) के साथ इसी वन में निवास करो। मैं तुमलोगों की रक्षा करूँगा।

तब सबके हृदयों में निवास करनेवाले (राम) ने (जटायु से) कहा—हे तात ! अगस्त्य महर्षि ने विचार करके, एक अति सुन्दर नदी के तट पर स्थित एक स्थान के बारे में कहा है।

तब जटायु ने कहा—वह महिमापूर्ण स्थान बहुत ही अच्छा है। तुमलोग वहाँ रहकर अपने धर्म का निर्वाह करो। आओ। मैं तुम्हें वह स्थान दिखाता हूँ—यों कहकर उनपर अपने विशाल पंखों की छाया करता हुआ वह गगन मार्ग से उडने लगा।

परिशुद्ध चित्तवाले तथा दोषहीन गुणवाले उस जटायु ने उन्हें (पंचवटी नामक) उस स्थान को दिखाया और फिर चला गया। उन धनुर्धारी वीरों ने उस सुन्दर उद्यान में अपना निवास बनाया।

वहाँ के राक्षसों के बल को असंदिग्ध रूप से जाननेवाला जटायु उचित ढंग से विचार करके कंचुकाबद्ध स्तनोवाली वधू (सीता) की एवं अपने पुत्र (सदृश राम लक्ष्मण) की, घोंसले में रहनेवाले अपने बच्चों की तरह रक्षा करता रहा। (१-४८)

●

अध्याय ५

शूर्पणखा पटल

उन वीरों (राम और लक्ष्मण) ने उस गोदावरी नदी को देखा, जो धरती का आभरण थी, उत्तम पदार्थों को प्रदान करनेवाली थी, अनेक धाराओं में प्रवहमाण थी। उष्णता को शांत करनेवाले घाटों से शोभित थी, एवं पंचविध भंगिमाओं से युक्त थी। (अर्थात्, १ पर्वत, २ अरण्य, ३ नगर, ४ समुद्र, एवं ५ मरु नामक पाँचों प्रदेशों में बहती थी तथा पूर्वोक्त पाँच प्रदेशों में होनेवाले मनुष्य के व्यापारों का वर्णन

करनेवाली थी)। वहुत स्वच्छ थी। शीतल गुणवाली थी। या वह नदी उत्तम कवि की कविता के समान थी।[1]

वह दिव्य नदी भ्रमरो से गुजित, कमलपुष्प रूपी अपने वदन का विकसित किय सुरभित नीलोत्पल रूपी नयनो से एकटक देखती हुइ, क्रमश एक के पश्चात् एक आनेवाली लहरो के करो से उत्तम पुष्पो को बिखेर रही थी, मानो उन प्यारे कुमारो क चरणो की पूजा करके उनको प्रणाम कर रही हो।

चचल जल से पूर्ण वह नदी, निरपराध तथा सत्य युक्त उन कुमारो को वन जीवन के कष्ट उठाते देखकर, उमडते हुए प्रेम से, सदाविकसित नीलोत्पल समुदाय रूपी अपन मनोहर नेत्रो से अश्रु बिंदु बहाती हुई, अत्यन्त द्रवित हाकर मानो दहाड मारकर रो रही थी।

दीर्घ धनुर्धारी (राम), नाल सयुक्त कमलपुष्प रूपी शय्या पर युगल नयना क जैसे विश्राम करनेवाले चक्रवाक मिथुन को देखते और अपनी प्रियतमा (सीता) क वक्ष की ओर दृष्टि फेरते तथा उत्तम आभरणो से भूषित सीता महिमावान् प्रभु (राम) के कधो म रमे हुए अपने मन के साथ उन्ही (कधो) के जैसे शोभित होनेवाले रत्नमय पुलिनो की ओर देखती।

उत्तम प्रभु (राम), हसो को (उनके आने की आहट पाकर) वहाँ स हट जाते हुए देखकर अपने समीप मे आनेवाली सीता की पदगति का निहारते हुए मदहास करते। तब वहाँ पर आकर, जल पीकर लौट जानेवाले मत्तगजो को देखती हुई वह देवी भी एक नवीन मद-मुस्कान से खिल उठती।

धनुष को अपने विशाल कर म धारण करनेवाले वीर (राम), जब जल से समृद्ध उस नदी में लताओ को हिलते हुए देखत और अपनी प्रियतमा की कटि को देखत तब सीता अधकार सदृश कातिवाले मनोहर कुवलय पुष्पो के मध्य अरुण कमल को विकसित देखती और (उस दृश्य म) अपने प्रभु के सौदय को देखती।

राम, इस प्रकार चलकर उस नदी के निकट, शीतल पचवटी' नामक पुष्पभरे उद्यान मे जा पहुँचे और वहाँ अनुज के द्वारा निर्मित एक सुन्दर पर्णकुटी म निवास करने लगे। फिर एक दिन—

(शूर्पणखा उस आश्रम म आ पहुँची) जो नीलरत्न समान कातिवाले राक्षस—

१ तमिल काव्य-लक्षणों के अनुसार कविता मे 'तुरै' और 'तिणै' नामक दो लक्षण होन चाहिए। तुरै का अर्थ है 'अहम्' और 'पुरम्'। ये क्रमश मनुष्य के आतरिक भाव और बाह्य व्यापार को व्यक्त करते है। पुरम् की अपेक्षा अहम् को व्यक्त करनेवाली कविता अधिक सुन्दर होती है। नवरसो मे श्रृगार को अहम् मे और अन्य रसो को पुरम् मे अतर्भूत किया जा सकता है। 'तुरै' शब्द मे श्लेष से घाट का अर्थ भी है। तिणै का अर्थ है पाच प्रकार के प्रदेश। इन्ही पाच प्रदेशो की भूमिका पर मनुष्य-जीवन की सुख-दु खात्मक विभिन्न दशाओं का चित्रण करना प्राचीन तमिल कवियों की परिपाटी रही है। नदी और कविता—दोनों का सबध इन पाँच प्रदेशों मे दिखाया गया है। यह पद कबन की कविता-कौशल का एक सुन्दर नमूना है। —ले०

राज (रावण) के समूल विनाश का कारण बननेवाली थी और किसी के जन्मकाल मे ही उसके प्राणो के साथ उत्पन्न होकर, अपना प्रभाव दिखाने के लिए उचित समय की प्रतीक्षा करती हुई किसी व्याधि के सदृश थी ,

जो ताँबे के जैसे लाल और घने केशोवाली थी। राहु को भी मद कर देनेवाले शरीर से युक्त थी। स्वर्ग के देवो, तपस्वियो तथा समुद्र से आवृत धरती के लोगो का एक साथ विनाश करने की शक्तिवाली थी ,

किसी क्रूर कार्य के हेतु अकेले ही उस वन म निवास करनेवाली थी। वह ऐसी दक्ष थी कि इस सारे ससार मे सर्वत्र अनायास ही घूम सकती थी। ऐसी वह (शूर्पणखा) राघव के निवासभूत उस आश्रम मे आई।

अपने बधुजनो का अत खोजनेवाली उस शूर्पणखा ने, पूर्वकाल मे पूजनीय देवताओ की इस प्रार्थना पर कि—'राक्षस लोग हमारा विरोध करते हैं, इसलिए आप उनका नाश करे', आदिशेष पर योगनिद्रा छोडकर ससार म अवतीर्ण हुए प्रभु को देखा।

वह सोचने लगी—मन मे रहनेवाले (मन्मथ) के आकार नही होता। देवेन्द्र के सहस्र नयन होते हैं। शिवजी के कमल तुल्य नयन तीन होत हैं। अपनी नाभि से सारी सृष्टि की रचना करनेवाले (विष्णु) के चार भुजाएँ होती हैं। (अत , यह उनमे से कोई नही हैं।)

वह फिर विचार करने लगी—तो क्या जटा जूट से शोभित (शिव) के (ललाट) नेत्र से देखे जाने से जलकर अनग बना हुआ वह (मन्मथ) ही, श्रेष्ठ तप करके अब पहले से भी अधिक सुन्दर रूप प्राप्त करके यहाँ आया है।

वह सोचने लगी—इसकी मनोहर बाहुएँ, उत्तम लक्षणो से पूर्ण हैं। (आजानु) लबी होकर सुषमा का निवास स्थान बनी है। वृक्ष भी इनकी समता नही कर सकते। पर्वत भी इनके सम्मुख क्षुद्र है। तो क्या ये बल से प्रभूत दिग्गजो की सूँडे ही हैं ?

धनुर्युद्ध मे निपुण इस व्यक्ति के वीरतापूर्ण कधो की समता शिलामय पर्वत भी नही कर सकते। किसी अत्युन्नत इन्द्रनील रत्न के पवत को छोडकर, प्रख्यात मेरु पर्वत भी, स्वर्णमय होने से, इन (कधो) की समता नही कर सकता।

नाल पर उठे हुए रक्तकमल के दलो की समता करनेवाले इसके नयनो तथा पर्वत के समान उन्नत आकार से शोभायमान इस पुरुष की, एक कधे से दूसरे कधे तक फैले हुए (वक्ष) प्रदेश को दृष्टि पथ मे लाने की चेष्टा करू, तो मेरे नेत्र इतने विशाल नही हैं कि इस विशाल वक्ष को पूर्णतया एक साथ देख सक।

यह सुन्दर अति उज्ज्वल वदन क्या प्रफुल्ल कमल के जैसा है ? (नही, उससे भी अधिक सुन्दर है)। क्या किरणा से पूण चन्द्र को (इसके वदन का) उपमान कहे ? पर उस (चन्द्र) की कलाएँ तो क्षीण होती रहती है। वह जब पूण रहता है, तब भी उस मे कलक रहता है (अत , वह इसके वदन का उपमान नही हो सकता)।

ऐसे मनोज्ञ सौदर्य से पूर्ण यह पुरुष किस प्रयोजन से, व्यर्थ ही अपने सुन्दर शरीर

को कष्ट देता हुआ यो व्रताचरण कर रहा है ? न जाने तपस्या ने स्वय कैसी तपस्या की कि ऐसे नवीन कमल तुल्य नयनो से युक्त यह पुरुष उस (तपस्या) को अपनाये हुए है।

समुद्र रूपी वस्त्र से शोभित, सुन्दर रूपवाली, गज की गति से युक्त पृथ्वी का स्त्रीत्व भी कैसा (सार्थक) है ? उसपर उगी हुई हरियाली ऐसी है, मानो इस पुरुष के पदतल के स्पर्श से वह (पृथ्वी) पुलक से भर गई हो।

कटि मे बँधे हुए करवाल से शोभित इस पुरुष की उज्ज्वल काति को दिनकर ने कदाचित् देखा ही नही है। इसीलिए, मन मे लज्जा का अनुभव न करके, वह दूर तक अपनी किरणो को प्रसारित करता हुआ सचरण करता है।

दुर्लंघ्य महान् पर्वत को भी जीतनेवाले उन्नत कधो से युक्त इस पुरुष के अधर का ससार मे उचित उपमान क्या दूँ ? हे मन ! यदि प्रवाल से इसकी उपमा दूँ, तो तू मेरा धिक्कार करेगा (क्योकि वह उपमान योग्य नही है)। अब किस उत्तम पदार्थ को इसका उपमान बताऊँ ?

सब कलाओ से पूर्ण चद्रमा के समान शोभायमान इस सुन्दर की सूर्य को भी (अपनी काति से) विचलित करनेवाली कटि को प्राप्त करने के लिए, न जाने, इन वल्कलो ने कौन सा तप किया था, दोषहीन पीतावर ने कदाचित् वैसा तप नही किया।

लबे, घुँघराले, झुकी हुई मेघ पक्तियो के समान दीखनेवाले, मध्य मे टेढे एव काले केश पाश को, यदि इसने जटा बनाकर न पहन लिया होता, तो उसे देखकर सब युवतियो के प्राण निकल गये होते।

प्रकट प्रकाशवाले उत्तम आभरण भी यदि (इसके शरीर को) प्राप्त करे, तो क्या वे इसके सौदर्य को बढा सकेगे ? क्या अच्छे लक्षणों से युक्त अनुपम रत्न किसी दूसरे रत्न को धारण करके और अधिक प्रकाश से चमक उठेगा ?

जो इन्द्र, वर प्राप्त करके भी इसके परस्पर तुल्य, चरणो की धूलि की भी समता नही कर सकता, वह सब लोको पर शासन करता है। (किन्तु) इस (राम) मे ब्रह्मा ने सब उत्तम लक्षणों को प्रकट किया है, फिर भी यह अरण्य मे निवास करता है। इस कारण ब्रह्मा भी निन्दा का पात्र हो गया है।

उस (शूर्पणखा) के मन मे ऐसी वासना उमडी कि नदी का प्रवाह और समुद्र भी उसके सम्मुख छोटे पड गये। उसकी बुद्धि (उस वासना प्रवाह मे) निमग्न हो गई, जिससे उसका शील इस प्रकार क्रमश घटने लगा, जिस प्रकार धर्म कार्य के लिए कुछ दान दिये बिना अपने धन को बचाकर रखनेवाले व्यक्ति का यश घटता है।

उस समय वह शूर्पणखा गगन पर अकित चित्र प्रतिमा के समान थी। उसका मन मलिन हुआ। उसमे वेदना उत्पन्न हुई। प्रभु की प्रकाशमान सुन्दर भुजाओ मे अपनी दृष्टि गडाये, उस (दृष्टि) को फिर खीच लेने मे असमर्थ होकर वह स्तब्ध खडी रही।

वह इसी प्रकार खडी रही। फिर, यह विचार कर कि इसके विशाल वक्ष का आलिंगन करूँगी, अन्यथा अमृत पीने पर भी मेरे प्राण नही बच सकेगे। अब और कोई उपाय नही है—उन (राम) के सम्मुख जाने का उपाय सोचने लगी।

'खट्गदतवाली यह राक्षसी सब प्राणियो को अपने उदरस्थ करनेवाली (राक्षसी) है'—यो सोचकर कही व मेरा तिरस्कार न कर दे, इसलिए उस (शूर्पणखा) ने कोकिल तुल्य मधुर वाणीवाली तथा बिब समान रक्ताधर से शोभित कलापी तुल्य सुन्दर रमणी का वेष धारण किया।

उसने रक्तकमल पर आसीन लक्ष्मी का अपने मन म ध्यान किया। अपने वश मे स्थित किसी मत्र का जप किया और चद्र से भी अधिक सुन्दर वदनवाली सुन्दरी का रूप लेकर गगन तल म अपनी काति को बिखरती हुई नीचे उतर आई।

रूई को एव रुचिर पल्लव दल को भी दुखानेवाले अरुण मनोहर कमल दल से लगनेवाले उसके छोट छोट पैर थे। वह मायाविनी (शूर्पणखा), मधुर बोलीवाली पिक वयनी सी, कलापी सी, हसिनी सी, उज्ज्वल वजि लता सी एव विष सी बनकर वहाँ आई।

स्वर्ण पराग से युक्त कमल म वास करनेवाली (लक्ष्मी) देवी क सौदर्य को तथा शुक क सौदर्य को भी परास्त कर देनेवाले उत्तम सौदर्य से युक्त होकर, दो चमकते करवालो (अर्थात्, नयनो) से शोभायमान वदन के साथ, वह (गगन तल से) यो उतर आई, मानो विद्युल्लता ही मेखला भूषित विशाल तथा मनोहर रथ (अर्थात्, जघन तट) से युक्त होकर, एक मुग्धा का रूप धारण करके उतर रही हो।

मानो अति सुरभित कल्पवृक्ष की कोई प्रकाशमान लता, एक सुन्दरी का वेष धारण करक, अधिकाधिक बढनेवाली कामुकता तथा मधु सदृश मधुर बोली को पाकर, नेत्रो को आनन्द देनेवाले लावण्य से युक्त होकर, अनुपम हरिणी की चितवन प्राप्त करके कलापी के समान चली आई हो।

(उस शूर्पणखा के) नूपुर, मेखला, हार, काली सिक्ता के समान केशो मे गुँथे हुए पुष्पो पर मँडरानेवाले भ्रमर—इन सबकी ध्वनि यह सूचना दे रही थी कि कोई युवती आ रही है। चक्रवर्ती कुमार (राम) ने उस ध्वनि की दिशा मे दृष्टि डाली।

'स्वर्ग के द्वारा प्रदत्त कोई अनुपम मधुर अमृत हो'—ऐसी वह सुन्दरी, मनोज्ञ स्तनो के भार से कमर लचकाती हुई आ रही थी। अज्ञान को दूर करके उत्तरोत्तर बढनेवाले सत्य ज्ञानरूपी नेत्र प्रदान करनेवाले भगवान् (के अवतार राम) ने अपने दोनो नयनो मे उसे अपने सम्मुख देखा।

विशाल प्रदेशवाले नागलोक म, स्वर्गलोक म एव भूलोक म भी अप्राप्य उस उपमा रहित स्त्री लावण्य को देखकर राम ने सोचा—यह कौन है? इसकी सुन्दरता की भी कोई सीमा है? आभरण भूषित सुन्दरियो म इसका उपमान कौन हो सकता है?

उस समय, कामना से पूर्ण हृदयवाली उस (शूर्पणखा) ने (राम का) वदन देखा। अपने अरुण करो से उनके चरणो का स्पर्श किया। फिर अपने दीर्घ तथा तीक्ष्ण नेत्र रूपी शूलो को उनपर फककर कटाक्ष पात करती हुई, हरिणी के समान लज्जा सी दिखाती हुई, एक ओर खडी रही।

वेदो के आदि (प्रकाशक) उन (राम) ने उससे प्रश्न किया—ह लक्ष्मी समान देवी! गौरवर्ण सुन्दरी! तुम्हारा आगमन मगलप्रद हो। यह हमारा पुण्य ही तो हे कि

तुम्हारा आगमन हुआ है। तुम्हारा स्थान कौन सा है? नाम क्या है? बंधु जन कौन है? तब उस मुग्धा ने अपना वृत्तांत यों कहा—

कमलभव (ब्रह्मा) के पुत्र (पुलस्त्य) के कुमार (विश्रवसु) की मैं पुत्री हूँ। त्रिपुर दाह करनेवाले वृषभ वाहन (शिव) के मित्र रक्त करोंवाले (कुबेर) की भगिनी हूँ। दिग्गजों का बल चूर चूर करके रजत पर्वत को उठानेवाले, त्रिलोक का शासन करनेवाले रावण की कनिष्ठा (बहन) हूँ। मैं कामवल्ली कहलाती हूँ।

ये वचन सुनकर वीर (राम) ने संशय भरे चित्त के साथ सोचा कि इसका कार्य कपट रहित नहीं है। इससे और कुछ प्रश्न पूछकर इसका हाल जानना चाहिए। फिर, प्रश्न किया—यदि यह कथन सत्य है कि तुम रक्तनेत्रवाले, भयंकर आकारवाले (रावण) की बहन हो, तो तुम्हें यह मनोहर रूप कैसे मिला?

उन पवित्र पुरुष (राम) के यों पूछने के पूर्व ही, स्फूर्ति के साथ कह उठी—मायावी तथा क्रूर राक्षसों के साथ रहना अनुचित समझकर, विवेकशील होकर मैंने धर्म को अपनाया और उसी पर स्थिर रहने लगी। फिर ऐसा तप किया, जिससे मेरे पाप मिट गये और देवों का अनुग्रह प्राप्त हुआ।

तब राम ने प्रश्न किया—हे सुन्दरी! देवताओं का अधिपति भी जिसकी सेवा करता रहता है, ऐसे त्रिभुवन के शासक (रावण) की तुम बहन हो, तो समृद्धि वैभव के साथ न आकर, किसी को साथ लिये बिना एकाकी यहाँ क्यों आई हो?

वीर के यह पूछने पर सत्यरहित (शूर्पणखा) ने कहा—हे विमल! हे प्रभु! मैं असज्जन (रावण आदि) लोगों के समीप नहीं जाती हूँ। देवताओं तथा उत्तम मुनियों के संग में रहती हूँ। यहाँ एक काम से तुम्हारे दर्शन करने आई हूँ।

उसके यह कहने पर प्रभु ने यह सोचकर कि सुन्दर ललाटवाली स्त्रियों का हृदय सुलभता से ज्ञात नहीं होता, इसका हृद्गत भाव पीछे प्रकट होगा, कहा—हे कंकन भूषित हाथोंवाली! मुझसे तुम्हें क्या कार्य है? बताओ। यदि उचित होगा, तो वह कार्य पूर्ण करके तुम्हारा उपकार करूँगा।

कुलीन स्त्रियों के लिए यह संभव नहीं है कि वे अपने हृदय के काम-भाव को स्वयं ही प्रकट कर सकें। फिर भी, मैं ऐसी हूँ कि मेरा कोई नहीं है। पर मैं क्या करूँ? काम नामक एक (दुष्ट) के अत्याचार से तुम मेरी रक्षा करो।—यों उस स्त्री ने कहा।

दूर तक जाकर अवरुद्ध हो लौट आनेवाले, बिखरी हुई लाल लाल रेखाओं से युक्त, नानाविध भंगिमाएँ दिखाते हुए, चमचमानेवाले काले रंगवाले तथा करवाल सदृश नेत्रों एवं आभरण भूषित स्तनों से शोभित उस (शूर्पणखा) के ये वचन कहने पर, प्रभु ने विचार किया—यह लज्जाहीन है। नीच स्वभाववाली है। मायाविनी है। इसमें किंचित् भी सद्गुण नहीं है।

मौन रहनेवाले उदार प्रभु के हृदय का भाव वह नहीं जान सकी। भ्रमर समुदाय के गुंजारों से युक्त कुंतलोंवाली यह (शूर्पणखा) मेरे वचनों से मुझपर अनुरक्त हुआ है

अथवा मुझे 'नाही' कहनेवाला ह ' यो सकल्प विकल्प म दोलायमान चित्तवाली हाकर आगे इस प्रकार कहने लगी—

चित्रित करने के लिए दुस्साध्य सौदर्य से पूण ! तुम्हारे यहाँ आगमन का ममाचार नहा जानने से मै सवज्ञ मुनियो के आज्ञानुसार उनकी सेवा मे ही निरत रह गई। मेरे कलकहीन स्त्रीत्व एव यौवन यो ही व्यथ व्यतीत हुए। यो ही एक एक दिन एव उसका प्रत्येक पल व्यर्थ ही चले गये।

यह सुनकर प्रभु ने मन म यह विचार कर कि यह नीच राक्षसी नीति रहित है, अनैतिक काय करने का निश्चय करक यहाँ आई है, उमस कहा—ह सुन्दरी ! तुम्हारी इच्छा परपरागत आचार के अनुकूल नही है। तुम ब्राह्मण जाति म उत्पन्न हो और मे क्षत्रिय वश का हूँ।

(तब शूपणखा ने कहा—) ह युद्ध के अलकारभूत भाले का धारण करनेवाले ! मेरे पिता ब्राह्मण है, कितु अरुधती सदृश पातिव्रत्यवाली मेरी माता धरती का राज्य करनेवाले 'सालकटकट' के वश म उत्पन्न हे। यदि मुझे स्वीकार करने म यही (अर्थात्, मेरा ब्राह्मण जन्म म उत्पन्न होना ही) कारण है, तो मेरे प्राण अब बच गये। भाव यह है कि मेरा पिता ब्राह्मण ह, कितु माता क्षत्रिय हे, अत म अनुलोम जाति म उत्पन्न हूँ और शास्त्र विधान के अनुमार कोई क्षत्रिय मुझसे विवाह कर सकता ह।

उम कामुकी (शूपणखा) के यह कहने पर, अतर के मदहास की उज्ज्वलता बाहर प्रकट करनेवाले नीलवण मेघ सदृश उन प्रभु ने विनोद पूण चित्त से कहा—ह स्त्रीरत्न ! दु खहीन राक्षसो के साथ हम, दु खी मनुष्य, विवाह करे यह उचित नही ह। यह बुद्धिमानो का कथन है।

तब उसने कहा—अवणनीय प्रेमाधिक्य से युक्त मेरी भक्ति भावना को न देखकर मुझ रावण की बहन कहना ही अनुचित है। आदिशेष पर लेटे हुए अमल (विष्णु) जैसे ह सुन्दर ! मने पहले ही कहा था कि उस गहणीय राक्षस वश से पृथक् होकर म देवताओ की स्तुति म लगी रहती हूँ।

वदो के लिए भी अतीत उन भगवान् (क अवतार राम) ने तब उससे कहा—ह सुन्दरी ! यदि विचार करके देखे, तो तुम्हारा एक भाई त्रिभुवन का नायक है, दूसरा कुबेर है, यदि उनम से कोइ तुम्हे प्रदान करे, तो हम विवाह करेगे। अन्यथा, एकाकी आई हुई तुम किसी दूसरे स्थान म जाओ। मुझ तो (तुमसे बात करने मे भी) आशका हो रही ह।

तब उम (शूपणखा) ने कहा—ह पवत समान सुन्दर कधोवाले ! जो पुरुष और स्त्री, अनुराग से एकीभूत हृदयवाले हा जात ह, उनके लिए वेद विहित विवाह एक गाधव विवाह ही है न ? यह विवाह हो जाय, तो मरे भ्राता भी इसे स्वीकार करेगे और एक बात कहती हूँ—

मरा भाई (रावण) पहले स ही मुनियो स गहरा वर रखता है। वह (शत्रुओं का विनाश करने म) नीति का भी विचार नही करता। अत , तुम एकाकी रहनेवाले क

उसक साथ मित्रता हो जाय, इसके लिए यही उपाय ह (कि तुम मुझम विवाह कर लो)। मेरे भाई तुमसे स्नेह करेंगे ओर चाहा तो स्वर्ग का राज्य भी तुम्हे दे दग और स्वय तुम्हारा आदेश पूरा करते रहेगे।

राक्षसो की कृपा मुझे मिल गई। तुम्हारी सगति भी मिली। अब म तुम्हारे सग शाश्वत वेभवपूर्ण जीवन सदा व्यतीत करनेवाला हा गया। उत्तम अयोध्या को त्यागने के पश्चात् मेरे पूर्वकृत तप अनेक रूप म फलित हुए ह। यो कहकर दृढ धनुष के प्रयोग म अभ्यस्त भुजावाले प्रभु अपने दाँतो के उज्ज्वल प्रकाश को दिखाते हुए हँस पडे।

इसी समय, स्त्रियो की रानी, धरती का रत्न, वजि' लता समान सुन्दरी देवी (सीता) सुगधित पर्णशाला के भीतर से, देवताओ क सुकृत के फलस्वरूप, उस मूर्त्ति के पास आ खडी हुई, जो ऐसे प्रकाशमय रूपवान् ह, जिसे देखने पर देवलाक, मनुष्यलोक एव पाताल-लोक के निवासी तथा ब्रह्मा प्रभृति देवो की आँखे भी चौंधिया जाती हे।

मास को पकाकर खाने के लिए ललचानेवाले विल सदृश मुँह से युक्त उस (शूर्पणखा) ने दिव्य ज्योति के समान एक रूप का (राम और उसके) मध्य म आकर खडे होते हुए देखा मानो उसने नक्षत्रो से प्रकाशमान आकाश और धरती मे फैले हुए वीर राक्षस रूपी वन को जलाने क लिए उत्पन्न हुइ पातिव्रत्य रूपी अग्नि ज्वाला का ही देखा हो।

तव वह (शूर्पणखा) यह सोचती हुइ कि सुरभिपूर्ण केशोवाली (अपनी पत्नी) को यह पुरुष वन मे नही लाया होगा, इतनी सुन्दरता से पूर्ण कोई रमणी इस अरण्य म भी नही ह, लक्ष्मी अरविंद का आवास छोडकर क्या अपने चरण-युगल को धरती पर रखती हुई यहाँ आ सकती हे ?

वह (शूर्पणखा) तन्मय होकर विलव तक (सीता को) देखती खडी रही। वह यह सोचती रही—सृष्टिकर्त्ता की कुशलता की सीमा हो सकती हे। किंतु मन से कभी न हटनेवाली (अर्थात्, मन म स्थिर रूप म अकित रहनेवाली) सुन्दरता की कोई सीमा नही ह। फिर सोचा—इसे देखने पर मुझ स्त्री जन्म म उत्पन्न हुई की आँखें भी अन्य वस्तुओ पर नही जा रही हें। जव मेरा ही मन ऐसा हो रहा हे, तव अव दूसरो की (अर्थात्, इसे देखनेवाले पुरुषो की) क्या दशा होगी ?

फिर, उसने युद्ध मे निपुण प्रभु को देखा और शुकी-तुल्य देवी को देखा और वैसी ही (स्तब्ध) खडी रह गई। फिर, यह सोचने लगी—अब अन्य कुछ कहने की आवश्यकता नही है। कमलभव ने स्वय सारी सृष्टि का अवलोकन करके, त्रिभुवन के निवासियो मे दोनो प्रकार के (अर्थात्, स्त्री और पुरुष) व्यक्तियो की सुन्दरता की पराकाष्ठा बनाकर इन दोनो को उत्पन्न किया है।

उसने विचार किया—स्वर्ण के जैसे प्रकाश फेकनेवाले तथा अतसी पुष्प के जैसे रगवाले इस पुरुष का शरीर, इस विद्युत् समान सूक्ष्म कटिवाली के साथ सयुत नही ह (अर्थात्, यह पुरुष इस स्त्री का पति नही ह)। अपनी समता न रखनेवाली, पल्लव-समान चरणोवाली यह सुन्दरी, मेरे जैसे ही वीच म (इस पुरुष पर आसक्त होकर) आई हुई कोई स्त्री हे। इसका तिरस्कार (इस पुरुष से) कराऊँगी।

अथवा मुझे 'नाही' कहनेवाला ह ' यो सकल्प विकल्प म दोलायमान चित्तवाली हाकर आगे इस प्रकार कहने लगी—

चित्रित करने के लिए दुस्साध्य सोंदर्य से पूण ! तुम्हारे यहाँ आगमन का ममाचार नहा जानने से मे सवज्ञ मुनियो के आज्ञानुसार उनकी सेवा मे ही निरत रह गई। मेरे कलकहीन स्त्रीत्व एव योवन यो ही व्यर्थ व्यतीत हुए। यो ही एक एक दिन एव उसका प्रत्येक पल व्यर्थ ही चले गये।

यह सुनकर प्रभु ने मन म यह विचार कर कि यह नीच राक्षसी नीति रहित है, अनैतिक काय करने का निश्चय करक यहाँ आई है, उसस कहा—ह सुन्दरी ! तुम्हारी इच्छा परपरागत आचार क अनुकूल नही है। तुम ब्राह्मण जाति म उत्पन्न हो और म क्षत्रिय वश का हूँ।

(तब शूपणखा ने कहा—) ह युद्ध के अलकारभूत भाले का धारण करनेवाले ! मेर पिता ब्राह्मण ह, किंतु अरुधती सदृश पातिव्रत्यवाली मेरी माता धरती का राज्य करनेवाले 'सालकटकट' के वश म उत्पन्न हे। यदि मुझे स्वीकार करने मे यही (अर्थात्, मेरा ब्राह्मण जन्म म उत्पन्न होना ही) कारण हे, तो मरे प्राण अब बच गये। भाव यह है कि मेरा पिता ब्राह्मण ह, किंतु माता क्षत्रिय हे, अत म अनुलाम जाति म उत्पन्न हूँ और शास्त्र विधान के अनुसार कोई क्षत्रिय मुझसे विवाह कर सकता ह।

उम कामुकी (शूपणखा) के यह कहने पर, अतर के मदहास की उज्ज्वलता बाहर प्रकट करनेवाले नीलवर्ण मेघ सदृश उन प्रभु ने विनोद पूण चित्त से कहा—ह स्त्रीरत्न! दु खहीन राक्षसो के साथ हम, दु खी मनुष्य, विवाह करे यह उचित नही ह। यह बुद्धिमानो का कथन है।

तब उसने कहा—अवणनीय प्रेमाधिक्य से युक्त मेरी भक्ति भावना को न देखकर मुझ रावण की बहन कहना ही अनुचित है। आदिशेष पर लेटे हुए अमल (विष्णु) जैसे ह सुन्दर ! मने पहले ही कहा था कि उस गहणीय राक्षस वश से पृथक् होकर म दवताओ की स्तुति म लगी रहती हूँ।

वदो के लिए भी अतीत उन भगवान् (क अवतार राम) ने तब उससे कहा—ह सुन्दरी ! यदि विचार करके देखे, तो तुम्हारा एक भाई त्रिभुवन का नायक है, दूसरा कुबेर हे, यदि उनमे से कोइ तुम्हे प्रदान करे, तो हम विवाह करेंगे। अन्यथा, एकाकी आई हुई तुम किसी दूसरे स्थान म जाओ। मुझे तो (तुमसे बात करने म भी) आशका हो रही ह।

तब उम (शूपणखा) न कहा—ह पवत समान सुन्दर कधोवाले ! जो पुरुष और स्त्री, अनुराग से एकीभूत हृदयवाले हो जात ह, उनके लिए वेद विहित विवाह एक गाधव विवाह ही है न ? यह विवाह हो जाय, तो मेरे भ्राता भी इसे स्वीकार करेंगे और एक बात कहती हूँ—

मरा भाई (रावण) पहले स ही मुनियो स गहरा वैर रखता हे। वह (शत्रुओ का विनाश करने म) नीति का भी विचार नही करता। अत , तुम एकाकी रहनेवाले का

उसके साथ मित्रता हो जाय, इसके लिए यही उपाय है (कि तुम मुझसे विवाह कर लो)। मेरे भाई तुमसे स्नेह करेंगे और चाहो तो स्वर्ग का राज्य भी तुम्हें दे देंगे और स्वयं तुम्हारा आदेश पूरा करते रहेंगे।

राक्षसों की कृपा मुझे मिल गई। तुम्हारी संगति भी मिली। अब मैं तुम्हारे संग शाश्वत वैभवपूर्ण जीवन सदा व्यतीत करनेवाला हो गया। उत्तम अयोध्या को त्यागने के पश्चात् मेरे पूर्वकृत तप अनेक रूप में फलित हुए हैं। यों कहकर दृढ धनुष के प्रयोग में अभ्यस्त भुजावाले प्रभु अपने दाँतों के उज्ज्वल प्रकाश को दिखाते हुए हँस पड़े।

इसी समय, स्त्रियों की रानी, धरती का रत्न, 'वजि' लता समान सुन्दरी देवी (सीता) सुगंधित पर्णशाला के भीतर से, देवताओं के सुकृत के फलस्वरूप, उस मूर्त्ति के पास आ खड़ी हुई, जो ऐसे प्रकाशमय रूपवान् हैं, जिन्हें देखने पर देवलोक, मनुष्यलोक एवं पाताल-लोक के निवासी तथा ब्रह्मा प्रभृति देवों की आँखें भी चौंधिया जाती हैं।

मांस को पकाकर खाने के लिए ललचानेवाले बिल सदृश मुँह से युक्त उस (शूर्पणखा) ने दिव्य ज्योति के समान एक रूप को (राम और उसके) मध्य में आकर खड़े होते हुए देखा, मानो उसने नक्षत्रों से प्रकाशमान आकाश और धरती में फैले हुए वीर राक्षस रूपी वन को जलाने के लिए उत्पन्न हुई पातिव्रत्य रूपी अग्नि ज्वाला को ही देखा हो।

तब वह (शूर्पणखा) यह सोचती हुई कि सुरभिपूर्ण केशोंवाली (अपनी पत्नी) को यह पुरुष वन में नहीं लाया होगा, इतनी सुन्दरता से पूर्ण कोई रमणी इस अरण्य में भी नहीं है, लक्ष्मी अरविंद का आवास छोड़कर क्या अपने चरण युगल को धरती पर रखती हुई यहाँ आ सकती है?

वह (शूर्पणखा) तन्मय होकर विलंब तक (सीता को) देखती खड़ी रही। वह यह सोचती रही—सृष्टिकर्त्ता की कुशलता की सीमा हो सकती है। किंतु मन से कभी न हटनेवाली (अर्थात्, मन में स्थिर रूप में अंकित रहनेवाली) सुन्दरता की कोई सीमा नहीं है। फिर सोचा—इसे देखने पर मुझ स्त्री जन्म में उत्पन्न हुई की आँखें भी अन्य वस्तुओं पर नहीं जा रही हैं। जब मेरा ही मन ऐसा हो रहा है, तब अब दूसरों की (अर्थात्, इसे देखनेवाले पुरुषों की) क्या दशा होगी?

फिर, उसने युद्ध में निपुण प्रभु को देखा और शुकी तुल्य देवी को देखा और वैसी ही (स्तब्ध) खड़ी रह गई। फिर, यह सोचने लगी—अब अन्य कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। कमलभव ने स्वयं सारी सृष्टि का अवलोकन करके, त्रिभुवन के निवासियों में दोनों प्रकार के (अर्थात्, स्त्री और पुरुष) व्यक्तियों की सुन्दरता की पराकाष्ठा बनाकर इन दोनों को उत्पन्न किया है।

उसने विचार किया—स्वर्ण के जैसे प्रकाश फेंकनेवाले तथा अतसी-पुष्प के जैसे रंगवाले इस पुरुष का शरीर, इस विद्युत् समान सूक्ष्म कटिवाली के साथ संयुत नहीं है (अर्थात्, यह पुरुष इस स्त्री का पति नहीं है)। अपनी समता न रखनेवाली, पल्लव-समान चरणोंवाली यह सुन्दरी, मेरे जैसे ही बीच में (इस पुरुष पर आसक्त होकर) आई हुई कोई स्त्री है। इसका तिरस्कार (इस पुरुष से) कराऊँगी।

तब उस (शूर्पणखा) ने (राम से) कहा—हे उत्तम ! हे वीर ! यह माया म चतुर हे। यह वचक राक्षसी है। इसका हृदय दुर्जय है। इसे सद्गुणवती समझना उचित नही है। इसका यह रूप सत्य नही है। यह मास खाकर जीवित रहनेवाली हे। इसे देखकर मे डर रही हूँ। इसे मेरे निकट आने से रोको ओर मेरी रक्षा करो।

यह सुनकर वीर (राम) बोले—ह विद्युत् समान स्त्री ! तुम्हारा ज्ञान खूब ह। तुम्हे धोखा देने की शक्ति किसमे है ? यह ज्ञात हुआ कि तुम्हारी मति स्वच्छ है और तुम सदगुणवाली हो। अहो ! यह (सीता) कदाचित् क्रूर राक्षसी ही है। इसे तुम भली भॉति देख लो और अपने उज्ज्वल दॉत रूपी मोतियो को दिखाकर हॅस पडे।

उम समय, अमृत के जैसी आई हुई, अरुन्धती के सदृश पातिव्रत्यवाली, मधुर वाली एव बॉस के जैसे सुन्दर कधोवाली देवी (सीता) वीर (राम) के निकट आ पहुँची। तब भडकती अग्नि के सदृश वचकगुण से पूर्ण चित्तवाली (शूपणखा) यह कहकर (सीता को) धमकाने लगी कि ह राक्षस कुल मे उत्पन्न स्त्री, तू क्यो बीच मे आ पड़ी है ?

हसिनी तुल्य वह (सीता) भीत हुइ। भीत होकर झट (राम की ओर) यो दोडी कि उसकी विद्युत् समान सूक्ष्म कटि लचक गई और कोमल चरण दुखने लगे। यो दौडकर वह कुजर समान वीर की पुष्ट भुजाओ स ऐसे लिपट गई, जैसे वर्षाकालिक जल से भरे बादल के मध्य कोई प्रवालमय लता काध गई हो।

तब वीर (राम) ने यह सोचकर कि वक्र खड्गदतवाले राक्षसा के साथ विनोद करना भी बुरा ही होगा, उस (शूर्पणखा) से कहा—तुम कोई अहितकारी कार्य न करो। (मेरा) अनुज यदि तुम्हारा समाचार जान लेगा, तो वह अत्यन्त क्रुद्ध होगा। हे स्त्री ! तुम शीघ्र यहाँ से चली जाओ।

लावण्य से युक्त उस राक्षसी ने कहा—कमल म, जल मे और कैलास म निवास करनेवाले करुणा पूर्ण हृदयवाले देव (ब्रह्मा, विष्णु और शिव), अनग तथा अन्य देवता भी मुझे प्राप्त करने के लिए तपस्या करते ह। ऐसी हूँ मे। मेरी उपेक्षा करके तुम क्षमाहीन इस मायाविनी को चाहत हो, यह कैसे उचित है ?

तब पवित्र चित्तवाले (राम), यह सोचकर कि यह शिलातुल्य कठोर चित्तवाली (राक्षसी), मेरे यह कहने पर भी कि मै तुमसे सबध रखना नही चाहता हूँ, हटती नही है, किन्तु कपट वचन कह रही है—मिथिलापति की पुत्री के साथ विद्युत् के साथ चलनेवाले मेघ के जैसे उस सुन्दर उद्यान क बीच स्थित कुटी मे चले गये।

उनके चले जाने के बाद, यह जानकर कि वे चले गये ह, शूर्पणखा शरीर से निकले हुए प्राणो के साथ श्वासहीन हो गई। मन मे अत्यत विह्वल हुई। उसे कुछ अवलबन नही मिला। मन मे क्रुद्ध हुई और सोचने लगी—अजन समान काले केशोवाली उस नारी पर यह पुरुष गहरा प्रेम रखता है।

इस प्रकार चिंतित होकर, वह वहॉ खडी नही रह सकी। वह उस पुरुषोत्तम की सगति प्राप्त करने का उपाय सोचती हुई वहॉ से चली गई। यह सोचकर कि यदि मे इसके शरीर का आलिगन नही करूँगी, तो अपने प्राण खो दूँगी, स्वर्ण पराग से पूर्ण सुन्दर उद्यान

मे स्थित अपने स्फटिकमय आवाम म जा पहुँची। सूर्य भी पश्चिम दिशा मे जा पहुँचा और लाली छा गई।

वह (शूर्पणखा) इस प्रकार प्रज्ञाहीन और शिथिल हो गई, मानो काल सप के छेदवाले दत से निकला हुआ विष उसकी देह मे सचरण कर रहा हो। प्रख्यात कामाग्नि (उसके शरीर मे) भडक उठी।

युद्धकुशल मन्मथ के तीक्ष्ण बाण उसके वक्ष म ऐसे जा लगे, जैसे ताडका नामक क्रूर राक्षसी के विशाल वक्ष मे पुरुषोत्तम (राम) का तीक्ष्ण शर लगा था, इससे उसके भीत प्राण कॉप उठे।

वह (काम-वेदना से पीडित) राक्षसी यह विचार करके उठी कि कलाओ से पूर्ण चन्द्रमा को साग बनाकर दृढ धनुर्धारी मन्मथ को ही चबा डालूँ, किन्तु मलय पर्वत से आनेवाला पवन, जब यम के दीर्घ शूल के समान उसके वक्ष पर लगा और पीडा उत्पन्न करने लगा, तब वह निष्क्रिय होकर गिर पडी।

(तरगायमान समुद्र जब अपने शब्द से उसे सताने लगा, तब) उसने तरगपूर्ण उस समुद्र को पर्वतों मे पाट देना चाहा, किन्तु स्थिर गगन म प्रकाशित होनेवाले पूणचद्र की दीर्घ किरणे उसे भयभीत कर रही थी, जिससे वह बलहीन होकर कुढती हुई पडी रही।

(कभी) वह क्रुद्ध हो सोचती कि मै इस धरती के सब उद्यानो को विध्वस्त कर, सब पुष्पो को चूर चूर कर दूँगी, किन्तु अपने पति के सग रहनेवाली लाल मुकुटवाली क्रौंची की ध्वनि सुनकर वह अपने मन मे काप उठती।

(कभी) वह क्रोध के साथ सप (राहु) को लाने का विचार करती, जिससे वह अपने प्रतिकूल रहनेवाले चद्र को निगल जाय, किन्तु उसक पीन स्तनो पर शीतल मद पवन के लगने से उसके प्राण तप्त हो उठते और वह व्याकुल हा पडी रहती।

(अपन ताप को शात करने के लिए) वह अपने करा से अति शीतल हिम खडो का लेकर अपने पुष्ट स्तनो पर रख लेती, किन्तु (उसक स्तनो स) उत्पन्न होनेवाली अग्नि म, तप्त पत्थर पर रखे हुए मक्खन के समान व (हिमखड) पिघल जाते।

कभी वह कामाग्नि से पीडित होकर नि श्वास भरती हुई अपने शरीर का शीतल जल म निमग्न करती, किन्तु वह जल (उसके शरीर के ताप से) उष्ण हो उठता। वह चिता करती, किन्तु गरजनेवाले समुद्र एव क्रूर मन्मथ से बचकर रहन का स्थान कहाँ है ?

उसका शरीर इतना तप उठा कि शीतल चद्रकात की शिला भी उसके स्पर्श से पिघलने लगी। वह काले मेघ को दखती या उत्तम नील रत्नमय स्तभ को देखती, तो (रम का स्मरण कर) उन्हे हाथ जोड दती।

वह कभी सोचती कि मे किसी भयकर, क्रूर दॉतोवाले सप से सुरक्षित पर्वत की बडी गुहा म जाकर रहूँगी, जहॉ मनोहर पूणचद्र, शीतल पवन और मदन मुझे पहचान नही सके।

उस समय उष्णता बढानेवाला मद पवन पहले से भी तिगुने वग से बहकर

उसको तपाने लगा। उसके स्तन उत्तप्त हो उठे। वह क्या उपचार करना है—यह न जानती हुई स्वर्ण रंग के नवपल्लवों की शय्या पर करवटें लेने लगी।

वीर (राम) का आकार उस क्रूर स्त्री की दृष्टि में कालमेघ के समान दिखाई पडता। तब वह लज्जित हो उठती, शिथिल हो उठती, चौंक पडती, जैसे वह उनको अपने सम्मुख ही देख रही हो। जब वह आकार अदृश्य हो जाता, तब वह कठोर विरहाग्नि में फँस जाती।

अंजन समान काले मेघ को प्रभु (राम) ही समझकर वह उसे पकडकर अपने स्तनों से लगा लेती। किन्तु, उस मेघ को झुलसकर मिटते हुए देखकर रो पडती। क्षुद्र स्वभाववाली उस राक्षसी की काम वेदना की कोई सीमा भी थी?

वह यों तप रही थी, जैसे प्रलय काल की भीषण अग्नि में फँस गई हो। फिर भी, वह मूढ स्त्री चक्रधारी (राम) को प्राप्त कर जीवित रहूँगी—इस आशा रूपी ओषधि से अपने प्राणों को रोके रही।

कभी वह (राम से) प्रार्थना करने लगती—तुम क्रूर माया को अधिकाधिक बढाने की शक्ति रखनेवाले मेरे विष सदृश हृदय में आ जाओ और मेरी वेदना को दूर करो। कभी कहती—हे अंजन पर्वत! मुझपर कृपा करो। वह इस प्रकार पीडित हुई, जैसे उसने विष पी लिया हो।

प्राण जाने पर भी कामना को न त्यागनेवाली वह (स्त्री) सोचती—(उस स्त्री के नयन) नीलोत्पल हैं? या मीन हैं?—ऐसा संदेह उत्पन्न करनेवाले नयन-युगल से युक्त वह स्त्री (सीता) लक्ष्मी से भी अधिक सुन्दर है। ऐसी दशा में वह (राम) क्या मुझ पापी की ओर दृष्टि भी फेरेगा?

वह सोचती—इस पुरुष के पास रहनेवाली सुन्दरी उत्तम पातिव्रत्यवाली है। रक्त कमल में वास करनेवाली लक्ष्मी ही है, फिर सोचती—मैं उस (पुरुष) पर अनुरक्त होऊँ, तो भी वह इस वेदना से तप्त नहीं होता।

जब उसकी काम वेदना इस प्रकार बढ रही थी, तब सूर्य इस प्रकार उदित हुआ, जैसे तीनों लोकों में भरे हुए राक्षस रूपी गाढ अन्धकार को दूर करने के लिए राम ही उदित हुए हों।

उस क्रूर राक्षसी ने प्रभात को देखा और अपने प्राणों को भी सुरक्षित देखा। उसने विचार किया—जबतक वह अनुपम सुन्दरी उसके समीप रहेगी, तबतक वह पुरुष आँख उठाकर भी मुझे नहीं देखेगा, अतः मैं शीघ्र जाकर उस स्त्री को उठा ले आऊँगी और कहीं छिपा दूँगी। फिर, उस पुरुष के साथ सुखी जीवन व्यतीत करूँगी।

उसने (पर्णशाला में) आकर देखा—राम गोदावरी के सुन्दर घाट पर सन्ध्योपासना में मग्न हैं, पर उसने यह न देखा कि समीपस्थ घनी छाया से पूर्ण सुरभित उद्यान में रहकर उनके अनुज, चंद्र समान ललाटवाली देवी (सीता) की रक्षा कर रहे हैं।

उसने सोचा कि यह (सीता) अकेली है, मेरा उद्देश्य सफल हुआ, अब सोचते हुए विलम्ब करना उचित नहीं है। और, कलंकित चित्तवाली वह, कलापी (तुल्य सीता को)

पकडने के लिए उनका पीछा करती हुई गई। फल भरे उद्यान म स्थित लक्ष्मण ने यह दख लिया।

उन्होने क्रुद्ध होकर गरजते हुए कहा—अरी! ठहर। फिर, झट उसके निकट आकर दखा—यह स्त्री है, हाथ म धनुष लिया नही है, फिर उस (शूर्पणखा) के भडकती आग जैसे दीखनेवाले केशो को अपने अरुण कर से ऐंठकर पकड लिया। उसके पट पर शीघ्रता से एक पदाघात किया और अपने कर म उज्ज्वल करवाल धारण किया।

तब वह उन (लक्ष्मण) को भी उठाकर आकाश माग से उड जाने का प्रयत्न करने लगी। इतने मे (लक्ष्मण ने) उसे झट नीचे ढकेल दिया और 'अब आगे कभी ऐसा कार्य न करना'—कहते हुए उसकी नाक, कान और कठोर स्तन के चूचुको को एक एक कर के काट दिया। फिर शातकोप होकर उसके केशो को छोड दिया।

उस क्षण, वह (शूपणखा) अपना मुँह खोलकर चिल्ला उठी। वह ध्वनि सब दिशाओ म व्याप्त हो गई और देवताओ के काना म भी जा पडी। अब उसकी दशा का क्या वर्णन करना है? उसकी नाक के छेद से प्रवाहित रक्त से धरती गल गई।

उसकी हत्या न करके, लक्ष्मण ने अपने उज्ज्वल करवाल से उस क्रूर (राक्षसी) के नाक कान काट दिये। वह काय ऐसा था, जैसे रावण के रत्नमय मुकुट भूषित शिरो को काटने के लिए सुदिन का निर्णय करके, उसका प्रारभ करते हुए पवत शिखर को ही उन्होने काट दिया हो।

वह धरती पर धडाम से गिर पडी और पैर उछालती हुई दहाड मारकर रोने लगी। वह ऐसी दिखाई पडती थी, मानो यम के समान कठोर शूल को धारण करनेवाले क्षुब्ध हो युद्ध करनेवाले खर प्रभृति राक्षसो के विनाश की सूचना देता हुआ कोई कालमेघ रक्त की वर्षा कर रहा हो।

दु ख स्वय जिनसे डरकर दूर भागता था ऐसे राक्षसो के कुल म उत्पन्न वह स्त्री, आकाश मे उछलती, धरती पर गिरती, लोट जाती, शिथिल पड जाती, व्याकुल हो हाथ मलती, मूर्च्छित होती, मूर्च्छा से जग पडती, बार बार कहती—मुझ स्त्री जन्म पानेवाली का आज कैसा पराभव हुआ?

हाथ से नाक दबाती, लुहार की भाँथी क जैसे नि श्वास भरती, धरती पर हाथ मारती, अपने युगल स्तनो पर हाथ रखती, उसकी दह स्वेद से भर जाती, अपने बलवान् पैरो को लिये चारो ओर दौडती, फिर रक्त बहाती हुई शिथिल पड जाती।

सोत से उमडनेवाले जल क समान बहनेवाले लहू से जो कीचड बन गया, उसमे लोटती हुई वह राक्षसी पीडा को नही सह सकी और अपने कुल के लोगो के नाम पुकार-पुकारकर रोने लगी, जिससे यम भी भयभीत हो गया और देवता भय से भागने लगे।

अग्नि ज्वाला को कर म धारण करनेवाले (शिव) के पर्वत (कैलास) को उखाडकर उठानेवाले, ह पवत (सदृश रावण)! तुम्हारे धरती पर जीवित रहते हुए ये मुनिवेषधारी धनुष लेकर घूम रह हैं। क्या यह तुम्हारे लिए अपमानजनक नही है?

उसको तपाने लगा। उसके स्तन उत्तप्त हो उठे। वह क्या उपचार करना है—यह न जानती हुई स्वर्ण रंग के नवपल्लवों की शय्या पर करवटें लेने लगी।

वीर (राम) का आकार उस क्रूर स्त्री की दृष्टि में कालमेघ के समान दिखाई पड़ता। तब वह लज्जित हो उठती, शिथिल हो उठती, चौंक पड़ती, जैसे वह उनको अपने सम्मुख ही देख रही हो। जब वह आकार अदृश्य हो जाता, तब वह कठोर विरहाग्नि में फँस जाती।

अंजन समान काले मेघ को प्रभु (राम) ही समझकर वह उसे पकड़कर अपने स्तनों से लगा लेती। किन्तु, उस मेघ को झुलसकर मिटते हुए देखकर रो पड़ती। क्षुद्र स्वभाववाली उस राक्षसी की काम वेदना की कोई सीमा भी थी?

वह यों तप रही थी, जैसे प्रलय काल की भीषण अग्नि में फँस गई हो। फिर भी, वह मूढ़ स्त्री चक्रधारी (राम) को प्राप्त कर जीवित रहूँगी—इस आशा रूपी ओषधि से अपने प्राणों को रोके रही।

कभी वह (राम से) प्रार्थना करने लगती—तुम क्रूर माया को अधिकाधिक बढ़ाने की शक्ति रखनेवाले मेरे विष सदृश हृदय में आ जाओ और मेरी वेदना को दूर करो। कभी कहती—हे अंजन पर्वत! मुझपर कृपा करो। वह इस प्रकार पीड़ित हुई, जैसे उसने विष पी लिया हो।

प्राण जाने पर भी कामना को न त्यागनेवाली वह (स्त्री) सोचती—(उस स्त्री के नयन) नीलोत्पल हैं? या मीन हैं?—ऐसा संदेह उत्पन्न करनेवाले नयन युगल से युक्त वह स्त्री (सीता) लक्ष्मी से भी अधिक सुन्दर है। ऐसी दशा में वह (राम) क्या मुझ पापी की ओर दृष्टि भी फेरेगा?

वह सोचती—इस पुरुष के पास रहनेवाली सुन्दरी उत्तम पातिव्रत्यवाली है। रक्त कमल में वास करनेवाली लक्ष्मी ही है, फिर सोचती—मैं उस (पुरुष) पर अनुरक्त होऊँ, तो भी वह इस वेदना से तप्त नहीं होता।

जब उसकी काम वेदना इस प्रकार बढ़ रही थी, तब सूर्य इस प्रकार उदित हुआ, जैसे तीनों लोकों में भरे हुए राक्षस रूपी गाढ़ अन्धकार को दूर करने के लिए राम ही उदित हुए हों।

उस क्रूर राक्षसी ने प्रभात को देखा और अपने प्राणों को भी सुरक्षित देखा। उसने विचार किया—जबतक वह अनुपम सुन्दरी उसके समीप रहेगी, तबतक वह पुरुष आँख उठाकर भी मुझे नहीं देखेगा, अतः मैं शीघ्र जाकर उस स्त्री को उठा ले आऊँगी और कहीं छिपा दूँगी। फिर, उस पुरुष के साथ सुखी जीवन व्यतीत करूँगी।

उसने (पर्णशाला में) आकर देखा—राम गोदावरी के सुन्दर घाट पर संध्योपासना में मग्न हैं, पर उसने यह न देखा कि समीपस्थ घनी छाया से पूर्ण सुरभित उद्यान में रहकर उनके अनुज, चंद्र समान ललाटवाली देवी (सीता) की रक्षा कर रहे हैं।

उसने सोचा कि यह (सीता) अकेली है, मेरा उद्देश्य सफल हुआ, अब सोचते हुए विलम्ब करना उचित नहीं है। और, कलंकित चित्तवाली वह, कलापी (तुल्य सीता को)

पकडने के लिए उनका पीछा करती हुई गई। फल भरे उद्यान म स्थित लक्ष्मण ने यह देख लिया।

उन्होने क्रुद्ध होकर गरजते हुए कहा—अरी! ठहर। फिर, झट उसके निकट आकर दखा—यह स्त्री है, हाथ म धनुष लिया नही है, फिर उम (शूर्पणखा) के भडकती आग जैसे दीखनेवाले केशो को अपने अरुण कर से ऐंठकर पकड लिया। उसके पेट पर शीघ्रता से एक पदाघात किया और अपने कर मे उज्ज्वल करवाल धारण किया।

तब वह उन (लक्ष्मण) को भी उठाकर आकाश माग से उड जाने का प्रयत्न करने लगी। इतने मे (लक्ष्मण ने) उसे झट नीचे ढकेल दिया और 'अब आगे कभी ऐसा कार्य न करना'—कहते हुए उसकी नाक, कान और कठोर स्तन के चूचुको को एक एक कर के काट दिया। फिर शातकोप होकर उमक केशो को छोड दिया।

उस क्षण, वह (शूपणखा) अपना मुँह खोलकर चिल्ला उठी। वह ध्वनि सब दिशाओ म व्याप्त हो गई और देवताओ के कानो म भी जा पडी। अब उसकी दशा का क्या वर्णन करना है? उसकी नाक के छेद से प्रवाहित रक्त से धरती गल गई।

उसकी हत्या न करके, लक्ष्मण ने अपने उज्ज्वल करवाल मे उम क्रूर (राक्षसी) के नाक कान काट दिये। वह काय ऐसा था, जैसे रावण के रत्नमय मुकुट भूषित शिरो को काटने के लिए सुदिन का निर्णय करके, उसका प्रारभ करते हुए पवत शिखर को ही उन्होने काट दिया हो।

वह धरती पर धडाम से गिर पडी और पैर उछालती हुई दहाड मारकर रोने लगी। वह ऐसी दिखाई पडती थी, मानो यम के समान कठोर शूल को धारण करनेवाले क्षुब्ध हो युद्ध करनेवाले खर प्रभृति राक्षसो के विनाश की सूचना देता हुआ कोई कालमेघ रक्त की वर्षा कर रहा हो।

दु ख स्वय जिनसे डरकर दूर भागता था ऐसे राक्षसो के कुल म उत्पन्न वह स्त्री, आकाश मे उछलती, धरती पर गिरती, लोट जाती, शिथिल पड जाती, व्याकुल हो हाथ मलती, मूच्छित होती, मूर्च्छा से जग पडती, बार बार कहती—मुझ स्त्री-जन्म पानेवाली का आज कैसा पराभव हुआ?

हाथ से नाक दबाती, लुहार की भाँथी क जैसे नि श्वास भरती, धरती पर हाथ मारती, अपने युगल स्तनो पर हाथ रखती, उसकी देह स्वेद से भर जाती, अपने बलवान् पैरो को लिये चारो ओर दौडती, फिर रक्त बहाती हुई शिथिल पड जाती।

सोत से उमडनेवाले जल क समान बहनेवाले लहू से जो कीचड बन गया, उसमे लोटती हुई वह राक्षसी पीडा को नही सह सकी और अपने कुल के लोगो के नाम पुकार-पुकारकर राने लगी, जिससे यम भी भयभीत हा गया और देवता भय से भागने लगे।

अग्नि ज्वाला को कर म धारण करनेवाले (शिव) के पर्वत (कैलास) को उखाडकर उठानेवाले, हे पवत (सदृश रावण)! तुम्हारे धरती पर जीवित रहते हुए ये मुनिवेषधारी धनुष लेकर घूम रह है। क्या यह तुम्हारे लिए अपमानजनक नही है?

'देवता लोग आँख उठाकर भी तुम्हारी ओर नही देख सकते—क्या यह कहने मात्र से तुम्हारा काम हो गया ? आओ, यहाँ की दशा भी तो देखो।'

हे प्रलय काल मे भी न डिगनेवाले त्रिमूर्त्ति एव देवो से भी अधिक बल से युक्त (रावण)। 'बाघिन के पीछे पीछे जाते हुए उसके बच्चे कभी पीडित नही होते'—समुद्र से आवृत धरती के लोगो का यह कथन भी क्या असत्य है ? आओ, मेरी इस वेदना को भी तो देखो।

हे रावण। जब देवेन्द्र ऐरावत पर आरूढ हो देवताओ की सेना के साथ गर्जन करता हुआ युद्ध करने के लिए सम्मुख आया था, तब तुमने उसे परास्त करके भगा दिया था। हे इन्द्र की पीठ को देखनेवाले। आओ, मेरे अपमान को भी तो देखो।

हे शिव के द्वारा प्रदत्त बडे करवाल को धारण करनेवाले। तुम पवन, जल, अग्नि, कालातक यम, स्वर्ग एव ग्रहो से अपनी सेवा कराने मे समर्थ हो। क्या अब इन दो नरो के बल से परास्त हो निर्बल होकर बैठे हो ?

चलते समय जिनके भारी पैरो के पद तल से चिनगारियाँ निकलती हैं, ऐसे मद भरे दिग्गजो के दाँतो को तोडनेवाले तथा पर्वतो को फोडनेवाले कधो से युक्त, हे बलवान्। रूप मे मन्मथ के समान होने पर भी ये मनुष्य तुम्हारे जूते के नीचे की धूल के बराबर भी नही हैं क्या इनपर तुम क्रोध न करोगे ?

हाय। क्या मधुपूर्ण सुगन्धिक पुष्प मालाधारी देवो को मिटाने की, रावण एव उसके भाइयो की शक्ति अब नष्ट हो गई है ? क्या अब वह शक्ति मासमय शरीरवाले, हमारे कुलवालो का आहार बननेवाले मनुष्यों के पास चली गई है ?

युद्ध मे सम्मुख पडनेवाले, जिसे देखकर यो सदेह कर उठते हैं कि यह हर है, विष्णु है अथवा ब्रह्मा है—हे ऐसे शक्ति से सपन्न खर। घने वृक्षो से भरे विशाल वन मे एकातवास करनेवाले मुनिवेषधारी मनुष्यो की शक्ति से, अथवा पराक्रमी राक्षसो के निर्वीर्य हो जाने से मुझपर जो विपदा आ पडी है, उसे तू देख।

इद्र, हर, ब्रह्मा तथा अन्य देव जब तुम्हारी सेवा मे निरत रहते हैं, सप्तलोको के निवासी तुम्हारी स्तुति करते रहते हैं, तब तुम्हारे पूर्णचन्द्र सदृश श्वेतच्छत्र की छाया मे आसीन रहते समय, तुम्हारी सभा के मध्य मै निर्लज्ज सी आकर किस प्रकार अपना मुख दिखा सकूँगी ?

शिव के आसन कैलास को उखाडनेवाले हे मेरे भाई। मेरे बल को चूर करते हुए, पदाघात से मुझे नीचे गिराकर जिस (मनुष्य) ने मेरी नाक काट दी, वह जीवित रहकर अपनी भुजा को (गर्व से) देखे और मै नीचे गिरकर रोती रहूँ—क्या यह उचित है ? यह वन खर का है न ? तो भी क्या मुझे ये कष्ट भोगने पडेगे ?

दिग्गजो के क्रोध को कम करते हुए, उनके साथ युद्ध करके उनके दाँतो को तोडनेवाले और उससे प्राप्त यश से फूले हुए कधोवाले हे रावण। कामना के वशीभूत होकर मैने नाक खोई और निर्लज्जता से जिस अपमान का भागी हो गई हूँ, इससे क्या तुम्हारा यश कलकित नही होगा ?

दानवो के कुल को मिटाकर, इन्द्र को बन्दी बनाकर, देवो को दास बनाकर उनसे सेवा करानेवाले हे मेरे भतीजे। अरण्य म दो मनुष्यो ने मेरे कान और नाक काट दिये हैं। क्या, मै पापिन इस अपमान से यहाँ यों ही मिट जाऊँ ?

पूर्वकाल मे, हाथ मे एक ही धनुष लेकर सप्तलोको को जलानेवाले, अशमनीय क्रोध के साथ सब दिशाओ को परास्त करनेवाले तथा इन्द्र के दोनो चरणो मे शृखला डालनेवाले हे मेरे भतीजे। क्या इन मनुष्यो का पराक्रम देखने के लिए नही आओगे ?

शिलाओ को भेदनेवाले शस्त्रो को धारण करनेवाले विशाल करो से युक्त, हे पराक्रमी खर दूषण आदि। हे अधकार को मिटानेवाले प्रकाश से युक्त रत्नाभरणो को धारण करनेवाले राक्षसो के कुल मे उत्पन्न लोगो। लुहार के द्वारा पैनाये गये शस्त्रोवाले कुभकर्ण-जैसे ही क्या तुम लोग भी धरती मे कही सोये पडे हो ? मेरी पुकार तुमलोग सुन क्यो नही रहे हो ?

यो अनेक वचन कह कहकर वह बलवान् राक्षसी शोक मग्न हो रोती हुई वहाँ की मनोहर आश्रम भूमि पर लोटती रही। उस समय, अपने कर में दृढ धनुष लिये, विशाल भुजावाले, मरकत पर्वत (सदृश राम), (गोदावरी) नदी पर सध्या आदि नित्यकर्म समाप्त करके वहाँ आये।

तब वह (शूर्पणखा), वहाँ आनेवाले (राम) को माग के मध्य देखकर, अपनी छाती पीटती हुई, आँखों से अश्रु की वर्षा करती हुई, अपने शोणित के प्रवाह से वहाँ की सुन्दर भूमि को कीचड से भरती हुई, यह कहकर कि—'हे प्रभु। हाय। मै तुम्हारे सुन्दर रूप पर आसक्त होने के अपराध मे इस दुर्दशा को प्राप्त हुई हूँ। यह देखो।'—उन (राम) के सामने गिर पडी।

प्रभु ने अपने उपमाहीन मन से समझ लिया कि बिखरे केशोवाली इस (राक्षसी)ने कोई क्रूर कार्य किया होगा। यह भी समझ लिया कि अनुज ने ही इसके दीर्घ कान नाक काटे हैं। फिर उस (राक्षसी) से पूछा—तू कौन है ?

उस प्रश्न को सुनकर क्रूर राक्षसी ने उत्तर दिया—क्या तुम मुझे नही पहचानते ? वैर के नाम तक को धरती पर से मिटा देनेवाले क्रोध से युक्त, भयकर पत्राकार भाले को धारण करनेवाले, त्रिभुवन के शासक रावण की मै बहन हूँ।

तब (राम के) यह प्रश्न करने पर कि, पराक्रमी राक्षसो के स्थान को छोडकर हमारे तप करने के इस स्थान म तू क्यों आई ? उसने उत्तर दिया कि, हे अग्निकण के समान तपानेवाली काम वेदना के लिए उत्तम ओषधि समान। मै कल भी आई थी न ?

(तब राम ने प्रश्न किया—) क्या रक्त मीन के समान चचल, काले वर्ण से युक्त दीर्घ नयनोवाली, मधुपूर्ण कमल म निवास करनेवाली लक्ष्मी का भ्रम उत्पन्न करनेवाली, जो स्त्री कल आई थी, वह तुम्ही हो ?—(राम के) यो प्रश्न करने पर उस राक्षसी ने उत्तर दिया—सुन्दर नेत्रोवाले हे राजन्। स्तन, ताटक भूषित कान और लतातुल्य नासिका को काट देने पर सुन्दरता कहाँ रह जाती है ?

यह सुनकर प्रभु, दाँतो को किंचित् खोलकर, मुस्कराये और अनुज का मुख

देखकर पूछा—हे वीर। इसने क्या अपराध किया था कि तुमने झट इसके कान नाक काट दिये? तब शूर तथा उदार गुणवाले (लक्ष्मण) ने उनके चरणों पर नत होकर कहा—

अपने तीक्ष्ण दाँतों से (मांस) खाने के उद्देश्य से या क्रूरकर्मा राक्षसों के उभाडने से, न जाने किस कारण से, यह दुर्गुणवाली राक्षसी अपनी आँखों से चिनगारियाँ उगलती हुई अज्ञात रूप से आई और उत्तम गुणवाली देवी (सीता) की ओर क्रोध करके झपटी।

धनुर्धारी लक्ष्मण के अपना कथन समाप्त करने के पूर्व ही, वह क्रूर राक्षसी बोल उठी—हे ऐसे देश के अधिपति, जहाँ के जलाशयों में कीचड में स्थित शंखकीट को अपने पति के संग रहते देखकर गर्भिणी मंडूक स्त्री (ईर्ष्या से) क्रुद्ध हो जल को हिलाने लगती है। अपनी सौत को देखने पर किस स्त्री का मन क्रुद्ध नहीं होगा?

(तब राम ने कहा—) भीरुता से (माया) युद्ध करनेवाले क्रूर राक्षसों के विशाल कुल को एक साथ मिटाने के लिए हम यहाँ उनके स्थान को खोजते हुए आ पहुँचे हैं। अब तू कुछ निंदा वचन कहकर हमारे हाथ से अपने प्राण न गँवा। सत्य के आवासभूत इस वन को छोडकर तू दूर भाग जा। राम के ये वचन सुनकर भी वह राक्षसी बोल उठी—

जिस बुढापे में बाल पक जाते हैं और (शरीर में) झुरियाँ पड जाती हैं—ऐसे बुढापे से रहित ब्रह्मा आदि सब देवता, रावण को कर देते हैं। अतः, तुमने जल्दी में जो यह काम कर दिया है, वह उचित नहीं किया। यदि तुम अपनी भलाई चाहते हो, तो सुनो, मैं एक बात कहती हूँ।

वह दशमुख इतना क्रोधी है कि जो कोई जाकर उससे यह कहे कि तुम्हारी बहन की नाक कट गई है, तो वह उस कहनेवाले की जीभ काट ले। अतः, मेरी नाक काटकर तुमलोगों ने अपने कुल की जड ही काट दी है। अब तुम्हारे प्राण नहीं बच सकते। हाय! अपने इस सारे सौंदर्य को तुमने धूल में मिला दिया।

अब स्वर्ग के रक्षकों (देवताओं), पृथ्वी के रक्षकों (राजाओं) और नाग लोक के रक्षकों में ऐसा कौन है, जो अपने शिरों की रक्षा करते हुए तुमलोगों की देह की भी रक्षा कर सके? यदि तुम मेरे प्राणों की रक्षा करो (अर्थात्, विरह पीडा से मेरी रक्षा करो) तो मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी। अन्यथा वे रावण हैं (जो तुम्हारा विनाश करेंगे)—यों उस (शूर्पणखा) ने कहा।

उसने आगे कहा—चारित्र्य की रक्षा करनेवाले अचंचल पातिव्रत्य धर्म से युक्त स्त्रियाँ, अपने महत्त्व को स्वयं नहीं कहती हैं। तो भी मैं, तुम पर अधिक प्रेम होने के कारण, यह कह रही हूँ। क्या तुम अपने इस अनुज को नहीं बतलाओगे कि मैं देवताओं से भी अधिक बलवान् (रावण) की बहन हूँ और संसार के सब प्राणियों से अधिक बलवान् हूँ।

बडे युद्धों में भी मैं तुमलोगों की रक्षा कर सकती हूँ। तुम्हें उठाकर गगन मार्ग से जा सकती हूँ। मांस सदृश स्वादवाले अनेक फल लाकर तुम्हें दे सकती हूँ। तुम्हारे

मन म जो भी इच्छा उत्पन्न हो, उस म पूरा करूँगी। जो रक्षा कर सकते ह उनसे द्वेष करने से क्या लाभ ? और सुमन के जैसे कोमल स्वभाववाली इस नारी से ही क्या प्रयोजन है ? कहो तो सही।

उत्तम कुल, उत्तम स्वभाव, उद्दिष्ट वस्तुओं को लाने की शक्ति बुद्धि, आकार, यौवन—सब विषयों मे मेरी समता करनेवाली कोई स्त्री पृथ्वी के निवासियों म या स्वर्ग के निवासियों मे भी कौन है ?—यदि तुम समर्थ हो तो कहो।

तुमने मेरी नाक काट दी। उससे क्या हानि है ? यदि तुम मुझे स्वीकार करो, तो म एक क्षण म उसे उत्पन्न कर लूँगी। मेरा सौदर्य पूर्ण हो जायगा। यदि तुम्हारी कृपा प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हो गया, तो नासिका के लोप से क्या हानि होगी ? अत्युन्नत दीर्घ नासिका भी तो स्त्रियों के लिए (सौदर्य का) लोप करनेवाली ही होती है न ?

मन न मिलने पर ही तो द्वेष उत्पन्न होता ह ? यदि मन म प्रेम हो और मे तुम्हे स्वीकृत हो जाऊँ, तो मेरे प्राण भी तुम्हारे अधीन हो जायेगे। देखनेवाले सब लोग मुग्ध होकर प्रेम करने लगे, ऐसा सौदर्य भी विष समान ही तो होता ह, विवाह करनेवाला पति जितना सौदर्य चाहे, केवल उतना ही सौदर्य हो, तो क्या (तुम) उसे स्वीकार नही करोगे ?

शिव, कमलभव चतुर्मुख, विष्णु, विनाशकारी वज्र को धारण करनेवाला इन्द्र सब मिलकर एक रूप धारण करके खडे हो—ऐसे रूपवाले, हे सुन्दर! सब लोकों के प्राणियों को अपने अनुपम बाणों से सतानेवाला मन्मथ भी क्या तुम्हारा भाई ही है ? वह (मन्मथ) भी तुम्हारे इस अनुज जैसा ही करुणाहीन ह।

हे स्वर्णमय वीर कंकण से भूषित वीरो! तुमने यही सोचकर कि यह (शूर्पणखा) सदा के लिए इस सुन्दर रूप म हमारे पास ही रहे, अन्य कही नही जा सके और कोई इसे देखकर मोहित न हो जाय—तुमने मेरे कान नाक काट दिये। तुमने कुछ बुरा नही किया। अन्यथा, मेरी नाक काटकर बडा छेद कर देने मे तुम्हारा अन्य क्या प्रयोजन हो सकता है ? तुम्हारा वह उद्देश्य जानकर ही अब म पहले से दुगुना प्रेम करने लगी हूँ। म क्या ऐसी निर्बुद्धि हूँ (जो इतना भी नही समझ सकूँ) ?

उग्र कोपवाले, शस्त्रधारी राक्षस, यह समाचार जानकर यदि लाल आँखे करेगे, तो सारा ससार ही तुम्हारे कारण विनष्ट हो जायगा। उत्तम कुल म उत्पन्न व्यक्ति धर्म का विचार करके ऐसा विनाश नही होने देगे। तुम यह विचारकर यह अपराध न करो और मेरा उपकार कर मेरे सग रहो—यह कहकर वह विनय करती खडी रही।

तब रामचन्द्र ने कहा—हे क्रूर राक्षसी! ससार के सब प्राणियों को दुःख देनेवाली क्रूर राक्षसी तुम्हारी माता की जननी ताडका के प्राण जिस शर ने हर लिये थे, वह अभी तक मेरे पास ही ह। इतना ही नही, भुजबल से युक्त तथा पुष्प मालाओं से भूषित क्रूर राक्षसों के कुल का विनाश करने के लिए ही मै उत्पन्न हुआ हूँ। तू अपना क्षुद्र व्यवहार त्याग दे। यह कहकर रामचन्द्र ने आगे कहा—

हम, सारी पृथ्वी का शासन करनेवाले चक्रवर्ती दशरथ के पुत्र हैं और माता की आज्ञा से सुगंधित वन में आये हुए हैं। वेदज्ञों तथा तपस्वियों के कहने से हम, अपार सेना समुद्र से युक्त राक्षसों के वंश का विनाश करेंगे और उसके पश्चात् ही पर्वत सदृश सौधोंवाली अयोध्या नगरी में प्रवेश करेंगे—इसे ठीक समझ ले।

राक्षसों के सम्मुख सन्मार्ग पर चलनेवाले देवता लोग खड़े नहीं रह सके और पराजित हो भाग गये, तो यहाँ ये दो मनुष्य क्या कर सकेंगे?—ऐसा विचार मत कर। यदि तू शक्तिमान् है, तो जा, क्रोधी, तीक्ष्ण शस्त्रधारी राक्षसों में तथा बलवान् यक्षों में, जो अत्यन्त शक्तिमान् हैं, उन्हें ले आ। हम उन सबका विनाश कर देंगे।

तब उस राक्षसी ने कहा—हे धान आदि अनाजों को अधिकाधिक उत्पन्न करने वाली जल समृद्धि से पूर्ण देशवाले! सुनो, यदि तुम मुझे मुँह के ऊपर ओठ से बाहर उभरे हुए दाँतोंवाली, विकृत रूपवाली कहकर मेरा तिरस्कार न करो और मुझसे प्रेम करो, तो उन राक्षसों को अवश्य मिटा सकोगे। (उनकी) माया को यथातथ रूप में जान सकोगे। उनको संपूर्ण रूप से परास्त कर सकोगे। उनके क्रूर कृत्यों से तुम बच सकोगे। फिर उसने कहा—

तुम इस बाँस सदृश कंधोंवाली को न त्यागो, तो भी मैं क्या तुम्हारे लिए भार हो जाऊँगी? यदि तुम मायावी तथा सद्ज्ञान हीन राक्षसों से युद्ध करने का विचार करते हो, तो पंचेंद्रियों के समान विविध माया करनेवाले, उनके यत्नों को समझकर मैं उनसे तुम लोगों की रक्षा करूँगी। 'साँप के पैर साँप ही जानता है' वाली कहावत को जानते हो न?

यदि तुम यह सोचते हो कि हृदय में प्रेम करके ही इस (सीता) ने तुमसे विवाह किया है, तो अपने इस अनुज के साथ—जिसने इतना भी विचार न किया कि राक्षसों के साथ युद्ध करना पड़े, तो हम तीनों एक साथ मिलकर रक्त की नदियाँ बहा देंगे और राक्षसों पर विजय प्राप्त करेंगे (और मेरा अंग भंग कर दिया)—मेरा विवाह करा दो। दो ग्रहों (सूर्य और चन्द्र) को बन्दी बनानेवाले रावण से मैं बल में कुछ कम नहीं हूँ।

जब तुम उत्सव के दृश्यों से युक्त अपने बड़े नगर में प्रवेश करोगे, तब मैं (अपनी मायाशक्ति से) मनचाहा रूप धारण करूँगी। तुम्हारा यह अनुज, शांतमन होकर भी यदि यह कहे कि इस नाककटी स्त्री के साथ कैसे रह सकता हूँ? तो हे प्रभु! तुम इसे समझाकर कहना कि चिरकाल से मैं कटिहीन[1] स्त्री के साथ रहता हूँ।

उस (शूर्पणखा) ने जब ये वचन कहे, तब अत्यन्त क्रुद्ध हुए अनुज लक्ष्मण ने पत्राकार बरछे की ओर दृष्टि करके (राम से) कहा—हे प्रभु! यदि इसे अभी न मार दें, तो यह बहुत पीड़ा उत्पन्न करेगी। कहिए, आपकी क्या आज्ञा है? प्रभु ने कहा—यदि अब भी यह हमें छोड़कर न जाये तो वैसा ही करेंगे। तब उस राक्षसी ने यह सोचकर कि ये मुझ पर कुछ दया नहीं करेंगे और यहाँ रहूँगी, तो मेरे प्राणों की हानि होगी।

---

१ शूर्पणखा सीता को 'कटिहीन' कह रही है।—अनु०

फिर, यह कहकर कि—अपनी नाक, कानों और स्तनों का खोकर भी (तुम लोगों के साथ) मैं कैसे रह सकती हूँ? तुम्हारे मन का समझने के लिए ही तो मैंने यह माया की थी? अब मैं पवन से भी तेज अग्नि से भी क्रूर खर को बुला लाऊँगी, जो तुम लोगों के लिए यम बनेगा—अशमनीय वैर के साथ वहाँ से चली गई। (१–६४०)

●

अध्याय ६
खर वध पटल

रक्त की धारा बहाती हुई, बिखरे केशोवाली नाली जैसे छेद से युक्त नाकवाली और विशाल मुँहवाली वह (शूर्पणखा), जाकर (जनस्थान में) स्थित भयंकर खर के चरणों पर ऐसे गिरी जैसे कोई लालिमा से युक्त बादल हो।

'(राक्षसों के) विनाश का यह दिन है'—इस बात की सूचना देते हुए, यम की आज्ञा से बजनेवाले नगाड़े के समान, अकेली चिल्लाती हुई वह (शूर्पणखा), इस प्रकार धरती पर लुढ़कती रही जिस प्रकार गरजते मेघ से गिरे हुए वज्र की अग्नि से जलता हुआ कोई नाग हो।

उस खर ने उसे देखा, जिसके मुँह से कठोर वचनों के अनुकूल धुआँ निकल पड़ता था और पूछा—'निर्भय होकर इस प्रकार तुम्हारा रूप विकृत करनेवाले कौन हैं?' तब नासिका द्वार से बहनेवाले रक्त से रुँधी हुई आँखोवाली उस (शूर्पणखा) ने कहा—

दो मनुष्य हैं, जो मुनिवेषधारी हैं, हाथों में दृढ धनुष एवं करवाल धारण करनेवाले हैं, मन्मथ के समान सुन्दर रूपवाले हैं धर्मस्वभाववाले हैं, दशरथ के पुत्र हैं, राक्षसों के साथ युद्ध करने के विचार से उनको ढूँढ़ते रहते हैं।

वे तुम्हारे बल की कुछ परवाह नहीं करनेवाले हैं। धर्म मार्ग पर स्थिर रहकर उसकी रक्षा का विचार करनेवाले हैं, विजयशील भाले रखनेवाले राक्षसों का विनाश करने का दृढ निश्चय रखनेवाले हैं।

उनके साथ एक मुग्ध (स्त्री) है, जो इतनी महिलोचित सुन्दरता से पूर्ण है कि पृथ्वी में, दुर्लक्ष्य स्वर्ग लोक में तथा अन्य (पाताल) लोक में, कहीं अन्वेषण करने पर भी उसकी समता करनेवाली स्त्री नहीं मिलेगी। मैंने अपनी आँखों से उसे देखा है। लेकिन, उसका वर्णन मैं नहीं कर सकती।

उसे देखकर मैंने सोचा—अन्यत्र दुर्लभ सुन्दरता से युक्त इस रमणी को मैं लंकाधीश के लिए ले जाऊँगी और उस पर झपटी। तब उन मनुष्यों ने क्रुद्ध होकर मेरी नाक काट डाली।—उसने यों कहा।

उस खर ने, जो अपने आकार से संसार को भय विकंपित करनेवाला था और

जिसका सामने से देखनेवालों की आँखें झुलस जाती थीं, जिसने उस (शूर्पणखा) को पहले ठीक ठीक नहीं देखा था, अब उसके वचन सुनते ही, यह कहकर उठा कि उन विनाश को प्राप्त होनेवाले मनुष्यों के द्वारा, ताल फल के कोण के जैसे उखाड़ी गई अपनी नाक को मुझे दिखाओ।

वह उठकर खड़ा हुआ। उसका मन ऐसे क्रोध से खौल उठा, जो सप्त लोकों को जलाकर भस्म कर सके, और बोला—'मनुष्य मात्र मर गये, केवल इतना कह देने से ही हमारा यह अपमान नहीं मिटेगा।'[1]

तब ज्योंही उसने 'रथ लाओ' कहा, त्योंही उसके निकटस्थ रहनेवाले, एक हाथ से सारी धरती को उठाने की शक्ति रखनेवाले, दो हाथवाले ऊँचे पर्वतों के जैसे लगनेवाले, चौदह वीरों ने (खर से) निवेदन किया कि यह (युद्ध का) कार्य हम सौंपो।

त्रिशूल, करवाल, तोमर, चक्र, कालपाश, गदा आदि शस्त्र हाथों में लेकर चले, तो उनके कोलाहल से समुद्र से आवृत धरती के सभी प्राणी भयभीत हो उठे। उनके आकार ऐसे थे, मानों विष ही साकार बन गया हो।

जलती क्रोधाग्नि से युक्त, उन राक्षसों ने (खर से) कहा—हे वीर! हमारी सेवा आज धन्य हुई। क्या तुम देवों से युद्ध करने जा रहे हो? हमारे जीवित रहते यदि तुम मनुष्यों से युद्ध करने जाओगे, तो हमारा जीवन व्यर्थ होगा। यों कहकर उन्होंने उस राक्षस...

तब खर ने कहा—ठीक है। अच्छा कहा, यदि मैं इन क्षुद्र मनुष्यों से युद्ध करने जाऊँ, तो देवता लोग हँसेंगे। तुम लोग जाओ। उनको मारकर उनका रक्त पियो और उस सुकुमारी को साथ लेकर आओ।

(खर के) यह आज्ञा देते ही, आनंदित होकर उन वीरों ने उसे प्रणाम किया और समाचार देनेवाली निर्लज्ज (शूर्पणखा) रूपी यम के दूत को आगे करके, उसके पीछे पीछे चलकर दशरथ के पुत्रों के निवास पर गये।

उस (शूर्पणखा) ने कोलाहल के साथ युद्ध के लिए आये हुए उन राक्षसों को कमल समान नेत्रवाले उन राम को अपनी उँगली उठाकर दिखाया, जो अकलंकसहस्रनामधारी चक्रपाणी (विष्णु) के ध्यान में मग्न थे।

कुछ राक्षस कह रहे थे कि (उन मनुष्यों को) पकड़कर ऊपर उछालेंगे। फिर हाथों में लोक लेंगे। और, कुछ कहते थे कि इन्हें दीर्घ पाश से हम बाँधेंगे। यों राक्षसों ने, अपने नायक (खर) की आज्ञा के अनुसार कार्य को पूर्ण करने के विचार से पहाड़ों के जैसे आकर उन (राम लक्ष्मण) को घेर लिया।

प्रख्यात शक्तिवाले राम ने अपने अनुज को यह आदेश देकर कि देवी की रक्षा करो, उज्ज्वल कल्पवृक्ष के पुष्प समान अपने अनुपम करों में डोरी से युक्त पर्वत सदृश विनाशकारी धनुष को उठा लिया।

कमल सदृश नयनोंवाले प्रभु, यों (धनुष को) उठाये, करवाल के साथ बाणों

१ भाव यह है कि संसार के सारे मनुष्यों को मार देने से भी हमारा यह अपमान न मिटेगा। —अनु०

पूर्ण तलवार को भी लिए हुए सम्पूर्ण निकल और आ गए इधर आओ।—यों वीर वाद कहते हुए भुजाओं को फुलाये युद्ध करने लगे।

परशु, करवाल, उज्ज्वल फलवाला त्रिशूल तथा भयंकर प्रलयकालाग्नि की समता करनेवाले उन राक्षसों के स्तंभ सदृश हाथों को राम ने अनेक शरों से काट काटकर उन्हें धराशायी कर दिया।

बड़े बड़े शस्त्रों सहित अपनी भुजाओं के बड़े बड़े वृक्षों के समान कटकर गिर जाने पर भी अपने बलिष्ठ दाँतों को लिए हुए वे राक्षस युद्ध करने के लिए आगे बढ़े। तब बलवान् (राम) के द्वारा प्रयुक्त शर वेग से उन पर आ लगे जिससे उनके शिर कटकर गिर पड़े। (यह दृश्य देखकर) पापिनी (शूर्पणखा) वहाँ से भाग चली।

गरजनेवाले क्रोधी तथा पराक्रमी सिंह के द्वारा सब हाथियों के मार डाले जाने पर जिस प्रकार हथिनी अपनी सूँड को उठाकर सिर पर रखे हुए चिल्लाती हुई भाग रही हो, उसी प्रकार वह (शूर्पणखा) भी भागकर खर के पास गई और उज्ज्वल शूलधारी खर को उसने सब वृत्तांत सुनाया।

वृषभवाहन (शिव) के लिए भी अजेय पराक्रम से युक्त क्रूर खर नामक वह (राक्षस), यह समाचार सुनकर कि सब राक्षस मारे गए, यों क्रुद्ध हो उठा कि उसकी आँखों में रक्त उमड़ पड़ा।

कन्दरा में रहनेवाले क्रूर सिंह भी जिससे डर जायँ, ऐसा गर्जन करते हुए खर ने यह आज्ञा दी—'हे सेवको! मेरा रथ, मेरे चढ़ने के लिए अभी लाओ। मैं युद्ध करूँगा। क्षणमात्र में सेनाओं के निवास में जाओ और मेघ के जैसे बड़े नगाड़ों को हाथियों पर घुमा कर बजवाओ।'

ज्योंही नगाड़ों की ध्वनि हुई, त्योंही रथारूढ राक्षसों की सेना एकत्र हो आई, मानो वर्षाकालिक बड़े बड़े मेघ अपार रूप में घिर आये हों—यह देखकर स्वर्ग और नाग लोक भी काँप उठे।

युद्ध की सूचना देनेवाले बड़े नगाड़ों की ध्वनि समुद्र गर्जन के सदृश थी। (राक्षसों की) दीर्घ भुजाएँ समुद्र की वीचियों की जैसी थीं। महान् गर्जन और मेघ सदृश काले वर्णवाला समुद्र प्रलयकालिक पवन से प्रताड़ित होकर उमड़ पड़ा हो—यों वह (राक्षसों की) सेना बड़ा कोलाहल करती हुई उमड़ आई।

घना वन ही उड़कर गगन तल को ढक रहा हो (ऐसा दृश्य उपस्थित करते हुए) सर्वत्र उठी हुई ऊँची ध्वजाएँ यों नाच रही थीं जैसे भूत ही 'हमारी भूख मिट जायगी' इस विचार से आनन्दित होकर—नाच रहे हों।

आलान से अभी छूटे हुए, किसी की परवाह न करनेवाले, बड़ी और लम्बी दो दो सूँडोंवाले मत्त हाथियों के झुंड सदृश वह राक्षस सेना चल पड़ी। उनके घने शस्त्र एक दूसरे से टकरा उठते थे, तो उनसे जो चिनगारियाँ निकल पड़ती थीं, उनसे सारे वन में आग लग जाती थी।

दोनों पार्श्वों में 'मुरुडु' (नामक वाद्य) बज रहे थे। उनकी ध्वनि, पहियों के

जिसका सामने से देखनेवाला की आँखें झुलस जाती थीं जिसने उस (शूर्पणखा) को पहले ठीक ठीक नहीं देखा था, अब उसके वचन सुनते ही, यह कहकर उठा कि उन विनाश को प्राप्त होनेवाले मनुष्यों के द्वारा, ताल फल के कोए के जैसे उखाडी गई अपनी नाक को मुझे दिखाओ।

वह उठकर खडा हुआ। उसका मन ऐसे क्रोध से बौखला उठा, जो सप्त लोकों को जलाकर भस्म कर सके, और बोला—'मनुष्य मात्र मर गये, केवल इतना कह देने से ही हमारा यह अपमान नहीं मिटेगा।'[1]

तब ज्योंही उसने 'रथ लाओ' कहा, त्योंही उसके निकटस्थ रहनेवाले, एक ही हाथ में सारी धरती को उठाने की शक्ति रखनेवाले, दो हाथवाले ऊँचे पर्वतों के जैसे लगनेवाले, चौदह वीरों ने (खर से) निवेदन किया कि यह (युद्ध का) कार्य हमें सौंपो।

त्रिशूल, करवाल, तोमर, चक्र कालपाश, गदा आदि शस्त्र हाथों में लेकर वे चले, तो उनके कोलाहल से समुद्र से आवृत धरती के सब प्राणी भयभीत हो उठे। उनके आकार ऐसे थे, मानो विष ही साकार बन गया हो।

जलती क्रोधाग्नि से युक्त, उन राक्षसों ने (खर से) कहा—हे वीर! हमारी सेवा आज धन्य हुई। क्या तुम देवों से युद्ध करने जा रहे हो? हमारे जीवित रहते यदि तुम मनुष्यों से युद्ध करने जाओगे, तो हमारा जीवन व्यर्थ होगा। यों कहकर उन्होंने उसे रोका।

तब खर ने कहा—ठीक है। अच्छा कहा, यदि मैं इन क्षुद्र मनुष्यों से युद्ध करने जाऊँ, तो देवता लोग हँसेंगे। तुम लोग जाओ। उनको मारकर उनका रक्त पियो और उस सुकुमारी को साथ लेकर आओ।

(खर के) यह आज्ञा देते ही, आनंदित होकर उन वीरों ने उसे प्रणाम किया और समाचार देनेवाली निर्लज्ज (शूर्पणखा) रूपी यम के दूत को आगे करके, उसके पीछे पीछे चलकर दशरथ के पुत्रों के निवास पर गये।

उस (शूर्पणखा) ने कोलाहल के साथ युद्ध के लिए आये हुए उन राक्षसों को, कमल समान नेत्रवाले उन राम को अपनी उँगली उठाकर दिखाया, जो अकलंकसहस्रनाम धारी चक्रपाणी (विष्णु) के ध्यान में मग्न थे।

कुछ राक्षस कह रहे थे कि (उन मनुष्यों को) पकडकर ऊपर उछालेंगे। फिर, हाथों में लोक लेंगे। और, कुछ कहते थे कि इन्हें दीर्घ पाश से हम बाँधेंगे। यों सब राक्षसों ने, अपने नायक (खर) की आज्ञा के अनुसार कार्य को पूर्ण करने के विचार में, पहाडों के जैसे आकर उन (राम लक्ष्मण) को घेर लिया।

प्रख्यात शक्तिवाले राम ने अपने अनुज को यह आदेश देकर कि देवी की रक्षा करो, उज्ज्वल कल्पवृक्ष के पुष्प समान अपने अनुपम करों में डोरी से युक्त पर्वत सदृश विनाशकारी धनुष को उठा लिया।

कमल सदृश नयनोंवाले प्रभु, यों (धनुष को) उठाये, करवाल के साथ बाणों से

१ भाव यह है कि संसार के सारे मनुष्यों को मार देने से भी हमारा यह अपमान न मिटेगा। —ल०

प्रण तृण।र का भी लिय स पणकुटी म बाहर निक । आर अ । इ अ आआ। —या वी वाद कहत हुए भुजाओ का प्लाय ुद्ध करने लग।

परशु करवाल उज्ज्वल फलवाला न तथा भयकर प्रलयकालाग्नि की समता करनेवाल उन राक्षमा क स्तभ मदृश हाथा का न वक्र शरा म काट काटकर उन्ह धरा शायी कर दिया।

बडे बट शस्त्रा म त अपना भुजा। क, बट वट वृक्षा क ममान कटकर गिर जाने पर भी अपने बलिष्ठ चो का ।लय व राक्षम युद्ध करन क लिए आग बढ़े। तब बलवान् (राम) के द्वारा प्रयुक्त शर, वग न न आ लगे जिमम उनक शिर कटकर गिर पडे। (यह दृश्य दखकर) पापिनी (शूपणखा) वहाँ ने भाग चली।

गरजनेवाले, क्रोधी तथा पराक्रमी सिंह के द्वारा सब हाथियो क मार जान पर जिम प्रकार हथिनी अपनी सूड को उठाकर सिर पर रखे हुए चिल्लाती हुई भाग रही हो उसी प्रकार वह (शूपणखा) भी भागकर खर क पास गइ ओर उज्ज्वल शूलधारी खर का उसने सब वृत्तात सुनाया।

वृषभवाहन (शिव) क लि भी अजेय पराक्रम स युक्त खर वर नामक वह (राक्षस), यह समाचार सुनकर कि सब राक्षस मारे गये, यो क्रुद्ध हो उठा कि उसकी आँखो म रक्त उमड पडा।

कन्दरा म रहनेवाले क्रूर सिंह भी जिमम डर जाय, ऐसा गजन करत हुए खर ने यह आज्ञा दी—'हे सेवको। मेरा रथ मेरे चलने के लिए अभी लाओ। म युद्ध करूँगा। क्षणमात्र म सेनाओं के निवास म जाओ और मेघ के जैसे बड़े नगाड़ो को हाथियो पर घुमा कर बजवाओ।'

ज्योही नगाडा की ध्वनि हुइ, त्योही रथारूढ राक्षसो की सेना एकत्र हो जाय, मानो वर्षाकालिक बडे बडे मेघ अपार रूप म घिर आय हों—यह देखकर स्वर्ग और नाग लोक भी काँप उठे।

युद्ध की सूचना देनेवाले बड़े नगाडा की ध्वनि समुद्र गजन क मदृश थी। (राक्षसो की) दीर्घ भुजाए समुद्र की वीचिया की जैसी थी। महान् गर्जन और मेघ सदृश काल वर्णवाला समुद्र प्रलयकालिक पवन से प्रताडित होकर उमड पडा हो—यो वह (राक्षसो की) सेना बडा कोलाहल करती हुई उमड आइ।

घना वन ही उडकर गगन तल को ढक रहा हो (ऐसा दृश्य उपस्थित करते हुए) सर्वत्र उठी हुइ ऊँची ध्वजाएँ यो नाच रही थी, जैसे भूत ही 'हमारी भूख मिट जायगी' इस विचार से आनन्दित होकर—नाच रहे हो।

आलान से अभी छूटे हुए, किसी की परवाह न करनेवाले, बडी और लम्बी दो दो सूँडोवाले मत्त हाथियो के झुड सदृश वह राक्षस सेना चल पडी। उनके घने शस्त्र एक दूसरे से टकरा उठते थे, तो उससे जो चिनगारियाँ निकल पडती थी, उनसे सारे वन म आग लग जाती थी।

दोनो पार्श्वो म 'मुरुडु (नामक वाद्य) बज रहे थ। उनकी ध्वनि, पहियों के

घूमने से आगे बढ़नेवाले रथो की ध्वनि म दब जाती थी। उस सेना ने, करुणा की मूर्त्ति के समान स्थित रामचन्द्र रूपी सूय का, फैले हुए अन्धकार की तरह घेर लिया।

वह दृश्य ऐसा था, जैसे सप्त लोको म ऊचे बढ़े हुए सब पवत एक ही स्थान पर इकट्ठे हो गये हो, जिससे बडे बडे सर्पो के द्वारा अपने शिरो पर धारण की हुई यह धरती डोल डोलकर अपनी पीठ झुकाने लगी।

व्याघ्र समूह है ? घनघटा है ? गरजत हाथिया का झुड ह ? ऊँचे पर्वत हैं ? नही तो सिहो की सेना है ?—यो सदेह उत्पन्न करत हुए शस्त्रधारी राक्षसो की सेना हजारो की सख्या मे आ पहुँची।

(जब राक्षसो की उस सेना म एसे रथ थे, जिनम) कुछ म शरभ जुते थे, कुछ म सिह जुते थे, कुछ मे बलवान् हाथी जुत थ, कुछ म बाघ जुते थे, कुछ मे श्वान जुत थे, कुछ मे शृगाल जुते थे, कुछ मे भूत जुत थे, कुछ मे घोड़े जुते थे।

कुछ म वृषभो के झुड जुते थे, कुछ मे शूकर जुत थे, कुछ मे वायु रूपी पिशाच जुत थे, कुछ मे गर्दभ जुते थे, कुछ म बाज जाति के पक्षी जुत थे। वे (रथ) ऐसे थे कि क्षण भर म ही सारे ससार म घूम आ सकत थे।

इस प्रकार के रथो के समुदाय घिर आये। छोटी आँखो और लाल मुखवाले हाथियो के झुड घिर आये। अपने पैरो से वायु क जैसे अतिवेग से दौडनेवाले घोडे घिर आये। उस समय शख बज उठे।

परशु, बरछे, करवाल, वक्रदड, तोमर, भाले, भुशडि, जो (शत्रु के) शरीर भर को आवृत करनेवाले थे, गदाएँ, त्रिशूल, मूसल, काल पाश—

कुतक, कुलिश, दड, भिंदिपाल, असख्य धनुष, शर, चक्र, 'वलै', उज्ज्वल शखो के समुदाय, 'कप्पण' पाश—

इत्यादि शस्त्र ऐसे प्रकाशवाले थे कि सूर्य और अग्नि भी उन्ह देखकर मद पड जात थे, जिनम (शत्रुओ का) मास और रक्त लगे थ, जा देवो को पीडा देनेवाले थे, जो विजयसूचक पुष्प माला से अलकृत थे, घिर आये।

अनेक सहस्र हाथियो के बल से युक्त, विशाल पृथ्वी को निगल सकनेवाले मुँह से युक्त, और अग्नि उगलनेवाली आँखोवाले चौदह राक्षस उस सेना के नायक थे।

विद्वानो का कथन है कि इस सेना वाहिनी म एक एक दल की सख्या साठ लाख थी और उसमे ऐसे चौदह दल थे।

वे सेना नायक अपार बल से युक्त थे, वज्र समान घोष करनेवाले मुँह से युक्त थे, सब शस्त्रो के प्रयोग म कुशल हाथोवाले थे। वे इतने ऊँचे थे कि मेघ, पर्वत शिखर की भ्राति से, उनके शिर पर विश्राम करते थे। व गर्वी थे और उत्साहित मनवाले थे।

उनके आकार अतरिक्ष को मापते थे। उनके वक्ष नेत्रो की परिधि म नही आते थे। अपने पैरो से सारी धरती को नाप सकते थे। बडे पराक्रमवाले थे। देवो के साथ असख्य युद्धों मे उन्होने विजय प्राप्त की थी।

उनके कंधे इतने दृढ तथा बलवान् थे कि इन्द्र आदि के द्वारा फेंके गये बड़े शस्त्र उनपर लगकर चूर चूर होकर छितरा जाते थे। उनकी कठोर आज्ञा ऐसी थी कि यम भी उनके चरणों पर गिरकर उनकी अधीनता स्वीकार करता था। वे ऐसे थे मानो भयंकर अग्नि ही साकार हो गई हो।

वे शूल पाश, घने लाल केश, क्रूर नेत्र और खड्ग दंतों से युक्त थे। वे इतने काले थे कि उनके सन्मुख विष भी सफेद जान पड़ता था। अपनी शक्ति से काल भी उन्हें अपना काल समझकर डरता रहता था। वे ऐसे रूपवाले थे।

वे वीर कंकणधारी थे। पुष्पमालाधारी थे। कवच से आवृत वक्षवाले थे। उज्ज्वल आभरण भूषित थे। कुंचित भृकुटिवाले थे। अग्नि सदृश (लाल) केशवाले थे। उनके मन युद्ध की कामना से उमंग लिए उमंग से भर जाते थे। अपने में वे लोग बड़ी एकता रखते थे।

अतिदृढ दंत और मद स्रावी हाथीवाला इन्द्र भी उनके सम्मुख आ जाय, तो वह भी भयभीत होकर, पीठ दिखाकर भाग खड़ा होगा। तीनों नश्वर भुवनों में युद्ध करने का मौका न पाकर उनके पर्वत जैसे कंधे खुजलाते रहते थे।

हाथी, घोड़े, भूत, वानर, बलवान् सिंह, क्रोधी भालू, श्वान, व्याघ्र, शरभ— ये अग्नि सदृश चमकते तथा भयजनक मुखवाले तथा क्षीर समुद्र में उत्पन्न हलाहल के समान नयनवाले थे।

कोई आठ हाथोंवाले थे। कई सात हाथोंवाले थे। कई नेत्रों से अग्नि उगलनेवाले सात आठ मुखोंवाले थे। बलिष्ठ टाँगोंवाले थे। प्राणियों को अपने दीर्घ करों से उठाकर मुँह में ठूँसकर चबा जानेवाले थे। विनाशहीन थे।

यक्षों से छीनकर लाये गये, असुरों से दिये गये, देवों को डराकर उनसे बलात् लिये गये अश्रान्त गन्धर्वों को भगाकर उनसे छीनकर लाये गये, करुणालु सिद्धों को सताकर उनसे लिये गये—

मयूर पंख, ध्वजा, छत्र, चामर, हाथियों पर रखने योग्य बड़ी पताकाएँ, वितान तथा अन्य अनेक राजचिह्न, विना व्यवधान के, सर्वत्र शोभायमान थे और गगनतल में व्याप्त होकर संसार भर में सूर्य का सा प्रकाश फैला रहे थे।

वे चौदह सेनापति चौदहों भुवनों को जीतनेवाले थे। वे सैनिक परशुधारी थे, करवालधारी थे, उज्ज्वल त्रिशूलधारी थे और सिंह और व्याघ्र के समान हिंस्र क्रोधवाले थे।

वे धनुर्धारी थे। बड़े खड्गों से युक्त थे। ओठों पर रखे (ओठों को चबाते हुए) दाँतोंवाले थे। मेरु पर्वत को भी उखाड़ने की शक्ति रखते थे। अश्व जुते रथोंवाले थे। अपने कहे अनुसार करने की धृति और इच्छा शक्ति रखते थे। ऐसे सैनिक सब दिशाओं से आकर एकत्र हुए।

शत्रुओं के प्राणों को उनके शरीरों से पृथक् करनेवाले और विजयमाला से भूषित त्रिशूलों को धारण किये हुए, दृढता से युक्त दूषण, त्रिशिरा इत्यादि अनेक राक्षस नायक कोलाहल से भरी, नगाड़े बजानेवाली सेनाओं को लेकर आ पहुँचे।

समृद्ध तथा शत्रुविनाशक सेना रूपी विशाल समुद्र जब खर रूपी गगनस्पर्शी मेरु को घेरकर चला और जब उस सेना के मध्य में रथारूढ होकर वह (खर) निकला, तब उस दृश्य को देखकर सब काँप उठे।

निर्झरो के सदृश मद स्रावी हाथी, अश्व, स्वर्ण कलशो से भूषित रथ, राक्षस—इन (चतुर्विध) सेनाओ के अभियान से जो धूलि आकाश मे व्याप्त हुई, उससे सूर्य का स्वर्ण रथ और हरित अश्व भी श्वेत वर्ण हो गये।

क्रोध भरी, विशाल समुद्र के समान फैली हुई सेना के चलने से जो धूलि समुदाय उठा उसमे सब कानन धूलिमय हो गये। पर्वतो पर एव गगन में स्थित बादल भी धूसर हो गये। समुद्र पट गये। अब और क्या कहा जाय।

हत्या करने मे, विष के समान उग्र मनवाले राक्षस, भूमि पर एव आकाश में रिक्त स्थान न रहने से पर्वतो के शिखरो को ऐसे लाँघते चले आये, जैसे उन पर्वतो पर दूसरे पर्वत चल रहे हो।

माया बंधन के कारण उत्पन्न कर्म परिणाम को मिटा देनेवाले, आसक्तिहीन महापुरुषो के लिए भी अवार्य, शरीर के साथ उत्पन्न होकर उनके प्राणो को यम के हाथ सौपनेवाली व्याधि के समान वह राक्षसी (शूर्पणखा) आगे आगे आ रही थी। वह राक्षस वाहिनी उदार महाप्रभु (राम) के निकट आ पहुँची।

उनके वाद्यो की ध्वनि से आकाश के बादल भी काँप उठते थे। दीर्घ धनुषो के टकार से वज्र भी भय विकंपित हो उठते थे। कोलाहल से समुद्र भी डर से उपशान्त हो जाता था। यो वह राक्षस सेना उस वन में स्थित दोनो वीरो के आश्रम पर आ पहुँची।

(उस वन के) पक्षी तथा मृग (उस सेना को देखकर) भय से व्याकुल हुए। उनके मुँह सूख गये। उनके शरीर शिथिल पड गये। वे उसास भरने लगे। उनकी आँखो पर अँधेरा छा गया। यो वे कही भी रुके बिना भागते चले आये और वे क्रूर राक्षसो की सेना के आगमन की सूचना देनेवाले गुप्तचरो के समान लगते थे।

उस वन के शरभ, सिंह आदि ऐसे डरकर भाग रहे थे कि धूलि पुंज उडकर सर्वत्र छा गये। उनके पैरो तले दबकर वृक्ष और झाड चडचडाहट के साथ टूट गये। उन मृगो को देखकर पुष्ट भुजाओवाले राम लक्ष्मण ने सोचा कि राक्षस सेना उनपर चढाई करने आ रही है।

विद्युत् के जैसे प्रकाशमान धनुषवाले, अतिदृढ कवचवाले, कटि में बँधे करवालवाले, स्वर्णमय किनारे से युक्त तूणीरधारी और क्रोधाग्नि से जलते मनवाले लक्ष्मण, स्वयं पहले युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर राम के निकट आये और यह कहकर खडे हो गये कि आप यही रहे और मेरे युद्ध कौशल को देखे। तब अपने अनुज को देखकर प्रभु कहने लगे—

हे वीर। सन्मार्गगामी महातपस्वियो को मैने पहले वचन दिया है कि मै राक्षसो के प्राण हरूँगा, उसको अयथार्थ न करने के लिए इस राक्षस दल को मै ही मारूँगा। सहज सुवासित तथा पुष्पालकृत कुतलोवाली देवी सीता की रक्षा करते हुए तुम यही रहो। मै यही चाहता हूँ—यो (राम ने) कहा।

खड्गो की धार पर मक्खियाँ भनभना रही है। सेना के वीरो की वाम भुजाएँ और वाम नेत्र फडक रहे है। बलिष्ठ भुजाओवाले सेनापतियो के अश्व ऊँघते हुए गिर पडते है। श्वानो के साथ शृगाल दल भी मिलकर आये है और रो रहे है।

हथिनियाँ मद जल बहा रही है। विशाल गडवाले हाथियो के दाँत टूटकर गिर रहे है। धरती काँप रही है। उन्नत आकाश से बिजलियाँ गिर रही है। दिशाएँ अकस्मात् जल उठती है। सबके शिरो की पुष्प मालाओ से मास की दुर्गंधि निकल रही है।

ऐसे लक्षणो के उत्पन्न होने के कारण, इसे अकेला मनुष्य कहकर इसकी उपेक्षा न कीजिए। मेरा कथन सत्य है। यदि हमसब एक साथ युद्ध करने लगे, तो भी इसे परास्त नही कर सकते। हे विजयमालाधारी! मेरे वचनो को क्षमा कर दो। यो अकपन ने कहा।

यह वचन सुनते ही खर हँस पडा, जिससे सारा ससार काँप गया। फिर, वह बोला—मेरा दृढ पराक्रम पत्थर का वह सिल है, जिसपर देवता पिस चुके है। युद्ध की कामना से फूली हुई मेरी भुजाएँ क्या एक क्षुद्र मनुष्य के आगे नीची होकर रहेगी?

खर के इस प्रकार कहते ही क्रोधभरी राक्षस सेना ने दशरथ पुत्र को ऐसे घेर लिया, जैसे घुँघराले केसरो से शोभायमान सिह को क्रुद्ध गज समूह ने घेर लिया हो। उस समय उनके भयकर शस्त्र एक दूसरे से टकराकर वज्र सी ध्वनि कर उठे।

यो उस सेना के घेरते ही राम के हाथ मे स्थित धनुष के सिर झुक गये। उस समय जो युद्ध हुआ और उसका जो परिणाम हुआ, इसका वर्णन हम करेगे। राम के वेगवान् बाणो की नोक से दौडनेवाले अश्व छिद गये और धरती पर लोट गये। लाल बिंदियो से भरे मुखवाले हाथी ऐसे गिरे, जैसे वज्र से आहत पर्वत हो।

(राक्षसो के) त्रिशूल छिन्न हुए। अग्नि ज्वाला उगलनेवाले फरसे टूट गये। करवाल टुकडे टुकडे हो गये। गदाएँ चूर चूर हुईं। भिंदिपाल मिट गये। बाण विनष्ट हुए। शरीर को चीर देनेवाले भयकर भाले तहस नहस हुए। धनुष एव बरछे भी चूर चूर हो उड गये।

वीर ककण टूटे। हाथो के साथ तोमर भी टूटे। गजो के पैर टूटे। धुरियो के साथ रथ और उनपर की ध्वजाएँ टूटी। अश्व टूटे, (शरभ आदि) जन्तुओ के दलो के शिर टूटे। मूसल जड से टूट गये।

रामचद्र के बाण, जीनवाले अश्वो तथा काले वर्णवाले मदजल स्रावी, दीर्घ सूँडवाले, पर्वत समान हाथियो को भेदकर पार कर जाते थे और सब दिशाओ मे छितरा जाते थे। निरतर बरसनेवाली वर्षा के जल के समान रक्त, धरती पर फैल गया। राक्षसो के शोभाहीन वक्ष खुल गये। उनके शिर कटकर (धड से) पृथक् हो गये।

राघव ने एक, दस, सौ, सहस्र, कोटि—यो गणना के लिए दुसाध्य कठोर शरो के सिलसिले को जारी रखा। उन बाणो ने राक्षसो को मारकर पर्वत शिखरो एव अनेक पर्वतो के समुदाय के समान शव राशियो की पक्तियाँ लगा दी।

तडपते हुए कबधो की राशियाँ बहती हुई रक्त धारा के साथ ऐसा दृश्य उपस्थित करती थी, जैसे अरण्य के घने वृक्षों की शाखाएँ दावाग्नि में जल रही हो गगन मे उडनेवाले राम बाण ऐसे लगते थे, जैसे मृत (राक्षसो) के प्राणो का भी पीछा करते हुए जा रहे हो।

युवतियो के दीर्घ नयनो के समान ही राम के बाण, करवालो के साथ ही राक्षसो के करो के गिरने पर उनके कठो के कट जाने पर, कवच से आवृत देहो के छिद जाने पर उनके शिरो को भी भीषण रूप मे छितराते हुए जलकर दिगतो का भी पारकर जाते थे।

वर्षा के सदृश राम बाण, पर्वत समान राक्षसो के विशाल शरीर रूपी तटो के मध्य तालाब बना रहे थे, नदियाँ बना रहे थे, रण मे रक्त प्रवाह को भर रहे थे और यो उस स्थान मे वन के दृश्य को मिटा रहे थे (अथात्, वहाँ के वन को रक्तमय जलाशयो मे परिवर्त्तित कर रहे थे)।

उस समय, विशाल रक्त-समुद्र तरगायमान हो उठे। राक्षसो के शिर उस (समुद्र) मे उतराने लगे। उनकी दीर्घ मास पेशियाँ उतराने लगी। दीर्घ सूँडवाले पर्वत जैसे हाथी उतराने लगे। झपटकर चलनेवाले घोडे उतराने लगे। ध्वजाओ के साथ रथ भी उतराने लगे।

उस समय, अनेक बलवान् राक्षस ज्वाला उगलनेवाली दृष्टि से देखकर गरजकर, किसी विशाल अचल पर्वत को घेरकर, बरसनेवाले मेघ जैसे, तीक्ष्ण बाण आदि उग्र शस्त्रो को (राम पर) बरसाने लगे।

राम ने अपने बाणो से बरसनेवाले शस्त्रो के टुकडे टुकडे कर दिये, अनेक शस्त्रो को विभिन्न दिशाओ मे छितरा दिये और बिखरे रक्त केशोवाले काले राक्षसो के शिरो को काट काटकर यो गिरा दिया, जिससे भूमि (उन शिरो के भार से) अपनी पीठ को झुकाने लगी और वन (उन शिरो से) भर गया।

उस समय कबध नाच उठे, हाथी लाल शोणित की धाराओ मे गोते लगाने लगे, भयकर भूत, वैर भरे क्रोधवाले एव क्रूर कार्य करनेवाले राक्षसो की चरबी को भर पेट खाकर आनन्द मनाने लगे (मृत हो स्वर्ग मे आये हुए वीर) प्राणियो के भार से देवलोक की भी देह झुक गई।

मायावी, दर्प तथा कपट से भरे, वक्र दतोवाले राक्षसो की उन आँखो की पुतलियो को, जिनको देखकर गरुड भी भयभीत हो जाता था, अब काक निकाल निकाल कर खाने लगे। अधकार के समान वचको के मध्य विनाश अनायास ही पहुँच जाता है, क्योकि कृपामय धर्म को छोडकर अन्य कौन-सी वस्तु बलवान् हो सकती है?

तब (अनेक राक्षसो के) घने अधकार को मिटाकर प्रकाशित होनेवाले सूर्य के जैसे धनुर्धारी (राम) को क्रोधी राक्षसो ने चमकते बरछे जैसे अपने नेत्रो से देखा और काली तथा विशाल घनघटा जैसे युगान्त मे पत्थरो की वर्षा करे, वैसे ही सर्व प्रकार के शस्त्रो को उन (राम) पर बरसाकर युद्ध किया।

धनुधारी (राम) ने झुड बाँधकर आये राक्षसो को, पृथक् पृथक् आकर सामना करनेवाले (राक्षसो) को, अत्यत क्रोध से झपटनेवाले (राक्षसो) को, पहले पराजित हो

भागकर दुबारा युद्ध करने के लिए आनेवाले (राक्षसों) को, अपने तीक्ष्ण बाणों से इस प्रकार काटकर गिरा दिया कि यह विदित नहीं होता था कि किसने भाला फेंका, किसने तीर छोडा, किसने प्रयुक्त करने के लिए शस्त्र उठाया, किसने कौशल से कार्य किया या किसने नहीं किया।

काकुत्स्थ (राम) ने बाणों से जो शिर काटे, उनमें से कुछ मेघ मंडल में जा पहुँचे, कुछ समुद्र के किनारे के प्रदेशों में जा गिरे, कुछ चंद्र को घेरे हुए नक्षत्रों में जा पहुँचे, कुछ उज्ज्वल कुंडल भूषित मिथुन नामक राशि में जा पहुँचे, कुछ भीषण अरण्यों में जा गिरे, कुछ पर्वतों पर जा गिरे और कुछ दिशाओं की सीमाओं पर स्थित दिग्गजों के निकट जा गिरे।

वे (राम के) बाण, जो राक्षसों के, मेरु का भी उपहास करनेवाले, अतिदृढ वक्षों को भेदकर आर पार हो जाते थे और क्षतों से बहनेवाली रक्त रूपी ऊँची तरङ्गों से पूर्ण नदियों को उमडा देते थे, कुछ मेघों पर जा लगते थे, कुछ चंद्र से युक्त गगन में जा लगते थे और कुछ समुद्रों के बाहर एवं भीतर जा लगते थे।

सुन्दर मालाधारी एवं अग्नि ज्वालाओं को उगलती आँखोंवाले सब राक्षस, सुदृढ तथा तीक्ष्ण शस्त्रों को प्रयुक्त करके, (राम के) शर से आहत होकर अपने राक्षस शरीर को समुद्र में छोड देते थे और अविनश्वर (देव) शरीर को पाकर देवों के साथ मिल जाते थे और यह कहकर कि राक्षस लोग मिट गये, आनन्द ध्वनि करने लगते थे।

वहाँ विशाल तरंगों से भरे अनेक ऐसे रक्त समुद्र उत्पन्न हो गये, जिनमें (राक्षसों के) यकृत् रूपी कमल थे, रथ रूपी पुलिन थे, बलवान् गज रूपी मगरों के झुंड तैर रहे थे, भारी आँत रूपी घने तथा हरे कमल पत्र ऊपर की ओर फैले थे और जिनमें भूत स्नान करते थे।

प्राणहारी अग्रभागों से युक्त (रामचन्द्र के बाण रूपी) बौछार के गिरने से कुछ (राक्षस) हाय हाय कर उठे, कुछ मूर्च्छित हो गिर पडे, कुछ मिट गये, कुछ उसाँस भरने लगे, कुछ लोट गये, कुछ लुढ़क गये, कुछ कीचड भरे एवं गहरी लहरों से युक्त रक्त समुद्र में डूब गये, कुछ धरती पर पडे रहे, कुछ टुकडे टुकडे हो रहे।

तब विष के समान क्रूर चौदहों सेनापति ऐसे उठ आये, जिनसे विशाल क्षीर समुद्र को मथनेवाले (देव तथा असुर) भी भयभीत हो उठे। वे (सेनापति) निहत होकर गिरे हुए राक्षसों का उपहास करने लगे। दृढ पहियोंवाले रथों पर आरूढ होकर बरछे और करवाल लिये हुए तथा धनुष धारण करके अपार समुद्र जैसी सेना वाहिनी को लेकर एक साथ आ पहुँचे।

पूर्व समय में एक बार पर्वत को धनुष बनाकर आये हुए शिव को त्रिपुरासुरों ने जिस प्रकार घेर लिया था, उसी प्रकार प्रभु (राम) का आदर न करनेवाले वे राक्षस, मन की क्रोधाग्नि को आँखों से निकालते हुए आये और कालमेघ सदृश धनुर्वीर (रामचद्र) को घेरकर युद्ध करने लगे।

चन्द्रकला समान खड्गदंतोंवाले राक्षसों में से कुछ ने बाण का प्रयोग किया, कुछ ने वक्र दंडों का प्रयोग किया। कुछ ने अनेक शस्त्रों से प्रहार किया। कुछ ने निन्दा

वचन कहे। कुछ न समझ कियाँ नी। या उनने पर्वता के जैसे आकर (राम को) घेर लिया।

(रामचन्द्र के) धनुष पर चढ़कर निकले हुए वाणो से (उन राक्षसो के) रथो मे जुते घोडे सब धराशायी हो गये। सब मत्तगज बलि चढ गये। मणीर भूषित योद्धा के सिर उनकी धडो से अलग हो गये। जिस प्रकार उष्णकिरण (सूर्य) को घेरनेवाला परिवेष मडल शीघ्र ही मिट जाता है उसी प्रकार बचे खुचे राक्षसो के पैर उखड गये और वे कॉपते हुए भाग खडे हुए।

मूर्च्छित हुए क्रूर राक्षसो के शरीरो मे जहाँ तहाँ शरो की बौछार लगने से छेद हो गये। वहाँ वहाँ से रक्त के प्रवाह उमडकर बह चले और उज्ज्वल धरती को आवृत करने लगे। विस्तृत गगन मे स्थित देवताओ ने अपनी ऑखो को (करो मे) ढक लिया। यम के दूत अतिवेग से आनेवाली हवा के समान आकर (उन राक्षसो के) प्राण हरने लगे।

भूतो के अधिक सख्या मे आने का कारण बननेवाले उस घोर युद्ध के उन्माद से भरे उन (राक्षसो) के कदराओ जैसे मुँहो मे श्वान आ घुसे। उनके शिरो पर शृगाल आ चढे। अग्नि के जैसे, बलिष्ठ सिहो के जैसे और मेघ मे उत्पन्न होनेवाले वज्र के जैसे जो राक्षस घरकर आये थे वे (राम के) अग्नि उगलनेवाले तीक्ष्ण मुखो से युक्त बाणो की सहायता से स्वर्ग मे चढ गये।

उन (राक्षसो) के शिर बिखर गये। अग्निकण बिखेरनेवाली ऑखे बिखर गई। धरती पर पहाडो के समान हाथी बिखर गये। (राम के) मेघ सदृश धनुष से विच्छिन्न बाण सब दिशाओ मे बिखर गये और चिनगारियाँ बिखेरनेवाले पृथ्वी जैसे राक्षसो के शरीरो से प्राण बिखर गये।

वे चौदह बडे सेनापति, उनके रथ एव उनके बडे शस्त्र—इनके अतिरिक्त बडे कोप के साथ (राम के) सम्मुख आये हुए सब राक्षस उन वीर के बाणो से निहत होकर दुर्गंध भरे भीषण रक्त प्रवाह मे डूब गये।

उन चौदहो सेनापतियो ने चारो ओर देखा। कितु, अपने साथ आई सेना मे एक भी ऐसे सैनिक को नही देखा जिसका सिर उसकी धड से अलग न हुआ हो। इससे अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन्होने दॉतो को पीसते हुए अपने रथो को बडे वेग के साथ चलाते हुए रामचन्द्र को घेर लिया।

तब राम ने एक क्षण मे अपने बाणो से उनके चौदहो रथो को विध्वस्त कर दिया। तब वे विध्वस्त रथ, चक्र, घोडे सारथि सब प्रलय काल मे प्रभजन से फेके गये पर्वतो के जैसे फैल गये।

उनके रथ जब नष्ट हो गये, तब वे चौदहो सेनापति पृथ्वी पर ऐसे कूद पडे कि धरती धॅसने लगी। वे अपने हाथो मे दृढ धनुषो को लेकर, अपनी ऑखो से सबको भस्म कर देनेवाली अग्नि ज्वालाएँ उगलते हुए वज्र जैसे शरो को लगातार बरसाने लगे।

राम ने अपने तीक्ष्ण बाणो से उनके विध्वसकारी शरो को चूर चूर कर दिया। उनके चौदहो धनुषो को तोडकर उनकी युद्ध की उग्रता को शान्त कर दिया।

तब वे सब सेनापति धनुषों के खो जाने से अत्यन्त क्रुद्ध होकर, बड़ी शिलाओं को लेकर, आकाश में उड़ गये और सूर्य की कांति के समान ज्वाला उगलनेवाली शिलाओं को (राम पर) बरसाने लगे।

शास्त्र रूपी समुद्र को पार करनेवाले ज्ञानवान् प्रभु ने, प्राणहारी धनुष के साथ अपनी भौंहों को भी झुकाकर उनपर पत्राकार चौदह भयंकर बाण छोड़े, जिनसे वे पर्वत-खंड एवं उन सेनापतियों के शिर पृथ्वी पर आ गिरे।

इस प्रकार वे चौदहों सेनापति मरकर गिर पड़े। तब अन्य एक राक्षस सेना, अनेक शस्त्रों को उछालती हुई तथा अपनी आँखों से अग्नि उगलती हुई रामचन्द्र के सम्मुख आ गई और पृथ्वी पर, गगन में एवं सब दिशाओं में फैल गई। यह देखकर देवता काँप उठे।

तब बड़े नगाड़े गर्जन कर उठे। बड़े हाथी गर्जन कर उठे। दृढ धनुषों की डोरियाँ गर्जन कर उठीं। शंखों के साथ अश्व भी गर्जन कर उठे। मेघ गर्जन के समान राक्षसों की गर्जन ध्वनि भी होने लगी।

राक्षसों के द्वारा फेंके गये, गगन मार्ग से आनेवाले शस्त्र, वीर (राम) के बाणों से कटकर कहीं अपने ऊपर न आ गिरें, यह सोचकर देवता लोग भाग जाते थे। समस्त लोक काँप रहे थे। निष्कंप रहनेवाले दिग्गज भी आँखें बंद कर लेते थे।

उस उत्तम सेना का सेनापति तीन शिरोंवाला (त्रिशिर नामक) राक्षस था। जो अपार बल संपन्न था, स्वर्ण मुकुटधारी था, अपने धनुष से तीक्ष्ण नोंकवाले बाणों की वर्षा करनेवाला था और त्रिनेत्र के हाथ में रहनेवाले त्रिशूल के जैसा आकारवाला था।

उस राक्षस वीर के साथ, प्रलयकालिक महासमुद्र के समान सब दिशाओं से उमड़कर आई हुई उस राक्षस सेना के बीच में धनुष को लिये, अपनी समता स्वयं करनेवाले वीर (रामचन्द्र) ऐसे लगते थे, जैसे घने अंधकार के मध्य दीप हो।

उज्ज्वल करवालधारी, वज्र सदृश घोषवाले, भारी कवच से आवृत, तथा क्रूर नेत्र वाले उस राक्षस (त्रिशिरा) की सेना पर राम अपनी शरवाहिनी चलाते हुए खड़े रहे।

तब उन राक्षसों के पैर, भुजाएँ, करवाल, परसे, उनकी कटि और उनके छत्र—सब के सब कटकर गिर गये।

जब ध्वजाएँ और कठोर क्रोधवाले अश्वों की पंक्तियाँ विध्वस्त हो गईं, तब बड़े बड़े रथ धरती पर गिर गये और भारी तथा बलिष्ठ मत्तगज वज्रपात से टूटकर गिरनेवाले पर्वत शिखरों के समान लुढ़क गये।

शिर कट जाने पर कुछ राक्षस यह न समझते हुए कि उनके शिर कट गये हैं, अपने विजयी धनुष से शर छोड़ते ही रहे। जिनके शिर अभी कटे नहीं थे, वे गगन में छाये मेघों के समान अपने शस्त्र चला रहे थे।

ढाल लिये हुए विशाल हाथों, पर्वत समान भीम आकारवाले तथा स्वर्णमय कवच धारण करनेवाले महावीरों के शिरोहीन धड़ तड़पते, उछलते हुए ऐसे नाच उठे कि नूपुरों से भूषित अप्सराएँ भी वह नाच देखकर मुग्ध हो गईं।

चामर एव श्वेत-छत्र रूपी फेनवाले गज रूपी ऊँची पीठवाले उन्नत उन्नत मीनों से युक्त भँवरवाले तथा शीतल घटा में विविध रत्न समुदाय को लाकर छितरानेवाली जीन, होदा आदि नौकाओवाले रक्त के प्रवाह में जा मिलते थे और उन्हें नया रूप (अर्थात्, रक्तवर्ण) दे देते थे।

दृढ वक्र दंतोंवाले कुछ राक्षस (राम के) अति तीक्ष्ण बाणों से मृत होकर देवता बन गये और भ्रमरों को आकृष्ट करनेवाली पुष्पमालाओं से शोभित केशोंवाली अप्सराओं के साथ रहकर अपने ही कबंधों का नाच देखने लगे।

कुछ राक्षस देवों के संघ में मिल गये और उत्तम कंकणों से भूषित अप्सराओं के साथ रहकर यह देख रहे थे कि उनकी ही मृत देह की छिन्न भुजाओं को किस प्रकार एक ओर से भूत पकड़कर खाने लगते हैं और दूसरी ओर श्वान उन्हीं टुकड़ों को पकड़कर खींच रहे हैं। यह दृश्य देखकर वे हँस पड़ते थे।

कुछ राक्षस जिनके वक्ष, चुनकर प्रयुक्त किये गये रामचंद्र के बाणों के लगने से छिद गये थे और जो (राक्षस) कर्म बंधन से मुक्त होकर देवता बन गये थे, यह सोचकर मन में भय करने लगे कि अहो! राक्षसों की सेना विशाल है और राम तो एकाकी हैं, अब क्या होगा?

शुंडधारी गज सदृश वीर (राम) के वे बाण जो कंटकों (राक्षसों) के शरीरों को छिन्न भिन्न कर रहे थे, नीच तथा काले मनवाले, झूठी गवाही देनेवाले व्यक्ति के वचनों के जैसे थे।

जिस प्रकार मनोहर पंखवाला भ्रमर अपनी शरण में पड़े हुए कीड़ों को अपने रूप में परिवर्त्तित कर देता है, उसी प्रकार उदार प्रभु ने मायावी राक्षसों को घेरकर अपने उत्तम शरों के पवित्र प्रभाव से देवों में परिवर्त्तित कर दिया।

वहाँ की रक्त की नदियाँ, मानो यह विचार कर कि एक बलवान् मनुष्य ने अनेक राक्षसों को मार दिया है, यह समाचार विजय माला से भूषित रावण को देना चाहिए—क्रोधी राक्षसों के शवों को बहाती हुई (समुद्र में गिरकर) लंका में जा पहुँची।

चारों ओर जुटी हुई राक्षस सेना को (राम के) बाणों ने सर्वत्र छिन्न भिन्न करके उनके प्राणों को पी लिया, जिससे वह (सेना) धरती पर लोट गई, यह देखकर त्रिशिर ने क्रुद्ध होकर भी विलंब किये बिना, रक्त प्रवाह में निमग्न अपने रथ को गगन मार्ग से चलाता हुआ गर्जन किया।

स्थिर रथवाले उस राक्षस ने, सबके लिए दृढ सत्य का साक्षी बनकर रहनेवाले, उस धर्म स्वरूप चक्रवर्त्ती के कुमार (राम) के शरीर को गगन की वर्षा की तरह अपने तीक्ष्ण बाणों की वर्षा से ढक दिया।

राम ने, (राक्षस के द्वारा) बरसाये गये उन सब बाणों को अपने बाणों से छिन्न भिन्न कर दिया। फिर, चौदह बाणों से (उस राक्षस के) उज्ज्वल स्वर्णमय रथ को ध्वस्त कर दिया और उसके सारथी को भी निहत कर दिया।

इतना ही नहीं उसी क्षण, देवों के कोलाहल ध्वनि करते समय, (राम ने)

तब वे सब सेनापति धनुषो के खो जाने से अत्यन्त क्रुद्ध होकर, बड़ी शिलाओं को लेकर, आकाश में उड गये और सूर्य की काति के समान ज्वाला उगलनेवाली शिलाओं को (राम पर) बरसाने लगे ।

शास्त्र रूपी समुद्र को पार करनेवाले ज्ञानवान् प्रभु ने, प्राणहारी धनुष के साथ अपनी भौहो को भी झुकाकर उनपर पत्राकार चौदह भयकर बाण छोडे, जिससे वे पर्वत-खड एव उन सेनापतियो के शिर पृथ्वी पर आ गिरे ।

इस प्रकार वे चौदहो सेनापति मरकर गिर पडे । तब अन्य एक राक्षस सेना, अनेक शस्त्रो को उछालती हुई तथा अपनी आँखो से अग्नि उगलती हुई रामचन्द्र के सम्मुख आ गई और पृथ्वी पर, गगन में एव सब दिशाओ मे फैल गई । यह देखकर देवता काँप उठे ।

तब बडे नगाडे गर्जन कर उठे । बड़े हाथी गर्जन कर उठे । दृढ धनुषो की डोरियाँ गर्जन कर उठी । शखो के साथ अश्व भी गर्जन कर उठे । मेघ गर्जन के समान राक्षसो की गर्जन ध्वनि भी होने लगी ।

राक्षसो के द्वारा फेंके गये, गगन मार्ग से आनेवाले शस्त्र, वीर (राम) के बाणो से कटकर कही अपने ऊपर न आ गिरे, यह सोचकर देवता लोग भाग जाते थे । समस्त लोक काँप रहे थे । निष्कप रहनेवाले दिग्गज भी आँखे बद कर लेते थे ।

उस उत्तम सेना का सेनापति तीन शिरोवाला (त्रिशिर नामक) राक्षस था । जो अपार बल सपन्न था स्वर्ण मुकुटधारी था, अपने धनुष से तीक्ष्ण नोकवाले बाणो की वर्षा करनेवाला था और त्रिनेत्र के हाथ में रहनेवाले त्रिशूल के जैसा आकारवाला था ।

उस राक्षस वीर के साथ, प्रलयकालिक महासमुद्र के समान सब दिशाओ से उमडकर आई हुई उस राक्षस सेना के बीच में धनुष को लिये, अपनी समता स्वय करनेवाले वीर (रामचन्द्र) ऐसे लगते थे, जैसे घने अधकार के मध्य दीप हो ।

उज्ज्वल करवालधारी, वज्र सदृश घोषवाले, भारी कवच से आवृत, तथा क्रूर नेत्र वाले उस राक्षस (त्रिशिरा) की सेना पर राम अपनी शरवाहिनी चलाते हुए खडे रहे ।

तब उन राक्षसो के पैर, भुजाएँ, करवाल, परसे, उनकी कटि और उनके छत्र— सब के सब कटकर गिर गये ।

जब ध्वजाएँ और कठोर क्रोधवाले अश्वों की पक्तियाँ विध्वस्त हो गई, तब बडे बडे रथ धरती पर गिर गये और भारी तथा बलिष्ठ मत्तगज वज्रपात से टूटकर गिरनेवाले पर्वत शिखरो के समान लुढ़क गये ।

शिर कट जाने पर कुछ राक्षस यह न समझते हुए कि उनके शिर कट गये हैं, अपने विजयी धनुष से शर छोडते ही रहे । जिनके शिर अभी कटे नही थे, वे गगन में छाये मेघो के समान अपने शस्त्र चला रहे थे ।

ढाल लिये हुए विशाल हाथो, पर्वत समान भीम आकारवाले तथा स्वर्णमय कवच धारण करनेवाले महावीरो के शिरोहीन धड तडपते, उछलते हुए ऐसे नाच उठे कि नूपुरो से भूषित अप्सराएँ भी वह नाच देखकर मुग्ध हो गई ।

तब व सब सेनापति धनुषो क खो जाने स अत्यन्त क्रुद्ध होकर, बडी शिलाओं का लेकर, आकाश म उड गये और सूर्य की काति के समान ज्वाला उगलनेवाली शिलाओं को (राम पर) बरसाने लगे।

शास्त्र रूपी समुद्र को पार करनेवाले ज्ञानवान् प्रभु ने, प्राणहारी धनुष के साथ अपनी भोहा को भी झुकाकर उनपर पत्राकार चौदह भयकर बाण छोडे, जिमसे वे पर्वत-खड एव उन सेनापतियो के शिर पृथ्वी पर आ गिरे।

इस प्रकार वे चौदहो सनापति मरकर गिर पडे। तब अन्य एक राक्षस सेना, अनेक शस्त्रो का उछालती हुई तथा अपनी ऑखो से अग्नि उगलती हुई रामचन्द्र के सम्मुख आ गई और पृथ्वी पर, गगन म एव सब दिशाओ मे फैल गई। यह देखकर देवता कॉप उठे।

तब बडे नगाडे गर्जन कर उठे। बड़े हाथी गर्जन कर उठे। दृढ धनुषो की डोरियॉ गजन कर उठी। शखो के साथ अश्व भी गर्जन कर उठे। मेघ गर्जन के ममान राक्षसो की गर्जन ध्वनि भी होने लगी।

राक्षसो के द्वारा फेके गये, गगन माग से आनेवाले शस्त्र, वीर (राम) के बाणो से कटकर कही अपने ऊपर न आ गिरे, यह सोचकर देवता लोग भाग जाते थे। समस्त लोक कॉप रहे थे। निष्कप रहनेवाले दिग्गज भी आँखे बद कर लेते थे।

उम उत्तम सेना का सेनापति तीन शिरोवाला (त्रिशिर नामक) राक्षस था। जो अपार बल सपन्न था स्वण मुकुटधारी था, अपने धनुष से तीक्ष्ण नोकवाले बाणो की वर्षा करनेवाला था ओर त्रिनेत्र क हाथ म रहनेवाले त्रिशूल के जैसा आकारवाला था।

उस राक्षस वीर क साथ, प्रलयकालिक महासमुद्र के समान सब दिशाओ से उमडकर आई हुई उम राक्षस सेना के बीच म धनुष को लिये, अपनी समता स्वय करनेवाले वीर (रामचन्द्र) एम लगत थे, जैसे घने अधकार के मध्य दीप हो।

उज्ज्वल करवालधारी, वज्र सदृश घोषवाले, भारी कवच से आवृत, तथा क्रूर नेत्र वाले उम राक्षस (त्रिशिरा) की सेना पर राम अपनी शरवाहिनी चलात हुए खडे रहे।

तब उन राक्षसो के पैर, भुजाएँ, करवाल, परसे, उनकी कटि और उनके छत्र—सब-के सब कटकर गिर गये।

जब ध्वजाएँ ओर कठोर क्रोधवाले अश्वों की पक्तियाँ विध्वस्त हो गइ, तब बडे बडे रथ धरती पर गिर गये और भारी तथा बलिष्ठ मत्तगज वज्रपात से टूटकर गिरनेवाले पर्वत शिखरो के ममान लुढ़क गये।

शिर कट जाने पर कुछ राक्षस यह न समझत हुए कि उनके शिर कट गये हैं, अपने विजयी धनुष स शर छोडत ही रह। जिनके शिर अभी कटे नही थे, वे गगन म छाये मेघो के समान अपने शस्त्र चला रहे थे।

ढाल लिये हुए विशाल हाथो, पवत समान भीम आकारवाले तथा स्वणमय कवच धारण करनेवाले महावीरो के शिरोहीन धड तडपते, उछलते हुए एसे नाच उठे कि नूपुरो से भूषित अप्सराएँ भी वह नाच देखकर मुग्ध हो गई।

चामर एव श्वेतच्छत्र रूपी फनवाले गज रूपी ऊँची पीठवाले, छवत उत्पात मीना न युक्त भॅवरवाले तथा शीतल घाटो म विचित्र रत्न समुदाय को लाकर छितरानेवाली नीन, होदा आदि नोकाओवाले रक्त के प्रवाह म जा मिलते थ और उन नया रूप (अथात , रक्तवण) दे देते थे।

दृढ वज्र दतोवाले कुछ राक्षस (राम के) अति तीक्ष्ण बाणा म मृत होकर देवता बन गये और भ्रमरो का आकृष्ट करनेवाली पुष्पमालाओ से शोभित केशोवाली अप्सराओ के साथ रहकर अपने ही कबधो का नाच देखने लगे।

कुछ राक्षस देवो के सघ म मिल गये आर उत्तम कंकणो से भूषित अप्सराओ के साथ रहकर यह देख रहे थे कि उनकी ही मृत देह की छिन्न भुजाआ का किस प्रकार एक ओर से भूत पकडकर खाने लगते हैं और दूसरी ओर श्वान उन्हा टुकडो को पकडकर खीच रहे हैं। यह देख देखकर वे हँस पडते थे।

कुछ राक्षस, जिनके वक्ष, चुनकर प्रयुक्त किये गये रामचद्र के बाणो के लगने से छिद गये थे और जो (राक्षस) कर्म बधन से मुक्त होकर देवता बन गये थ, यह सोचकर मन मे भय करने लगे कि अहो। राक्षसो की सेना विशाल है और राम तो एकाकी हैं, अब क्या होगा ?

शुडधारी गज सदृश वीर (राम) के व बाण जो कटका (राक्षसो) के शरीरो का छिन्न भिन्न कर रहे थ, नीच तथा काले मनवाले, झूठी गवाही देनेवाले व्यक्ति के वचना के जैसे थे।

जिस प्रकार मनोहर पखवाला भ्रमर अपनी शरण म पडे हुए कीडों का अपने रूप म परिवर्त्तित कर देता है, उसी प्रकार उदार प्रभु ने मायावी राक्षसो को घेरकर अपने उत्तम शरो के पवित्र प्रभाव से देवो म परिवर्त्तित कर दिया।

वहाँ की रक्त की नदियाँ, मानो यह विचार कर कि एक बलवान् मनुष्य ने अनेक राक्षसो को मार दिया ह, यह समाचार विजय माला से भूषित रावण को देना चाहिए— क्रोधी राक्षसो के शवो को बहाती हुई (समुद्र म गिरकर) लका म जा पहुँची।

चारो ओर जुटी हुई राक्षस सेना को (राम के) बाणो ने सवत्र छिन्न भिन्न करके उनके प्राणा को पी लिया, जिससे वह (सेना) धरती पर लोट गई, यह देखकर त्रिशिर ने क्रुद्ध होकर भी विलब किये बिना, रक्त प्रवाह म निमग्न अपने रथ को गगन मार्ग से चलाता हुआ गजन किया।

स्थिर रथवाले उस राक्षस ने सबके लिए दृढ सत्य का साक्षी बनकर रहनेवाले, उस धम स्वरूप चक्रवर्त्ती के कुमार (राम) के शरीर को, गगन की वर्षा की तरह अपने तीक्ष्ण बाणो की वर्षा से ढक दिया।

राम ने, (राक्षस के द्वारा) बरसाये गये उन सब बाणो को अपने बाणों से छिन्न-भिन्न कर दिया। फिर, चौदह बाणो म (उस राक्षस के) उज्ज्वल स्वर्णमय रथ को ध्वस्त कर दिया और उसके सारथी को भी निहत कर दिया।

इतना ही नही, उसी क्षण, देवो के कोलाहल-ध्वनि करते समय, (राम ने)

स्वर्ण के जैसे चमकते हुए तीक्ष्ण फलवाले अनुपम बाणों से क्रूर कार्य करनेवाले उस राक्षस के मुकुटधारी (तीन) शिरों में से, एक को छोड़कर, दो को काट गिराया।

तब वह राक्षस रथ हीन हो गया और उसका त्रिशिर नाम भी निरर्थक हो गया। तो भी उसकी क्रूरता नहीं मिटी। जैसे गगन से काला मेघ उतरा हो, त्योंही उसने अपने वक्र धनुष से बाण पुंज (राम पर) उतारे।

त्रिशिर, ललाट पर भौंहों को चढ़ाकर, प्रलय काल की वर्षा की तरह शरों की घनी वर्षा करनेवाले धनुष को लेकर युद्ध करने लगा। तब जिस प्रकार प्रभंजन मेघ को बिखरा देता है, उसी प्रकार राम ने अपने अपाय बाणों से उस (राक्षस) का धनुष काट दिया।

यद्यपि उस (राक्षस) ने अपना धनुष खो दिया, तथापि घूरनेवाले उसके चमकते मुख का प्रकाश कम नहीं हुआ। उसकी मेघ गर्जन की सी ध्वनि भी मंद नहीं पड़ी। उसका भुजबल मंद नहीं पड़ा। उसके द्वारा राम पर बरसाये जानेवाले पत्थर भी कम नहीं हुए और चाक के जैसे उसका परिभ्रमण भी मंद नहीं पड़ा।

गगन में स्वयं एकाकी रहकर भी उसने ऐसा माया युद्ध किया, जैसे दो सौ व्यक्ति मिलकर युद्ध कर रहे हों। तब उसके दोनों पैरों को राम ने दो तीक्ष्ण बाणों से काट दिया और दो बाणों से उसकी भुजाओं को भी काट दिया।

भुजाओं और पैरों से हीन होकर वह (राक्षस) तीक्ष्ण दाँतों को बाहर किये, पर्वत कंदरा समान एवं मांस दुर्गंधि से युक्त अपने मुख को खोले हुए, रामचन्द्र पर गिरकर उन्हें निगलने को आया। उसे देखकर राम ने किंचित् भी दया किये बिना, अपने दीर्घ विजयशील धनुष से एक बाण प्रयुक्त कर उसके एक शिर को भी काट दिया।

त्रिशिर पर्वत शिखर की भाँति ज्यों ही भूमि पर गिरा, त्योंही, सूर्य के जैसे चमकते हुए करवाल धारण किये, अपने विशाल हाथों में ढालों को लिये हुए, बाकी बचे हुए राक्षस, दूषण नामक सेनापति के मना करने पर भी वहाँ रुके नहीं, किंतु भाग खड़े हुए। उनके दीर्घ पैर, विशाल रक्त प्रवाहों में आँतों के मध्य उलझ जाते थे।

यह दृश्य देखकर, आकाश में झुंड बाँधकर स्थित देवता ताली बजाकर कोलाहल कर उठे। कुछ राक्षस, आदिशेष के फन पर स्थित धरती को दबाते हुए भाग चले और वहाँ फैली हुई चरबी में फिसलकर उसमें डूब गये। कुछ राक्षस अपने सुरक्षित प्राणों के साथ भागे और शव के ढेरों से टकराकर लुढ़क गये।

कुछ राक्षस, भागते हुए, धरती पर पड़े बर्छे और करवाल की धारों से उनके पैर कट जाने से लँगड़े हो पड़े। कुछ, मृत राक्षसों के रक्त प्रवाह में पैर फिसल जाने से डूब गये। कुछ, भय के मारे रक्त धाराओं में कूदकर तैरने लगे, किंतु वे कहीं स्थिर खड़े नहीं रह सके।

कुछ ऐसे भाग रहे थे कि उनके कटि के वस्त्र और खड्ग खिसककर गिर जाते थे और उनके पैरों में उलझकर उन्हें काटने लगते थे, तो भी वे उसपर ध्यान न देते थे। वे भय की मूर्त्ति से बने हुए व्याकुलचित्त होकर जहाँ तहाँ शवों के वक्ष पर लगे हुए उत्तम वीर (राम) के बाणों को देखते थे, वहाँ वहाँ से बेतहाशा दौड़कर भाग निकलते थे।

अनिवग ने भागनेवाल कुछ गाक्षम वडे हाथिना के पेट म पडे क्षता रु द्वार रूपी कदराओं म अपन खड्ग महित घुम जात थ और पाम खड कबध का डखकर यह कहकर सिर पर अपने हाथ जोड लेन थे कि—ह मरे माथी, तुम यही कहना कि हमने हमको नहा देखा हे।

इम प्रकार भागनेवाले राक्षमो का दखकर, अति वगवान् अश्वो मे जुत रथ पर आरूढ दषण ने कहा—हमारे पराक्रम क याग्य युद्ध कौशल से हीन इम मनुष्य का दखकर मत डरो। म जानता हूँ कि डर का कोई कारण नही ह। मे कुछ कहना चाहता हूँ, उमे सुनो।

जो लोग अपयश दनेवाले भय का मन म रखकर जीत ह, उनमे सुन्दर कगन पहननेवाली स्त्रियाँ भी नही डरती हैं। धैर्य रूपी कवच ही वास्तव म रक्षा कर सकता ह। भय प्राणो की रक्षा कभी नहा कर सकता।

पूर्वकाल म, तीक्ष्ण भाले का धारण करनेवाले इन्द्र तथा अविनाशी त्रिदेवो के माथ हुए युद्ध म कान राक्षम डरकर भागा था ? कदाचित् तुम लोगा ने, तुमसे डरकर भागनेवाले देवो से अब यह (डरकर भागना) मीख लिया है इमीलिए अब या भ्रात हा रहे हो।

तुम इतने बडे वीर हो। फिर भी एक मनुष्य से हारकर अपन हाथ म शस्त्र रखे, नगर म जाकर छिपने के लिए भाग रहे हो। तुम अपनी मदमाते नयनोवाली पत्नियो के वक्ष से वक्ष मिलाकर आलिंगन का सुख भोगने जा रहे हो ?

हे वीरो! (क्रोध मे) ताम्रवण रहनेवाली तुम्हारी आँखे अब दूध क समान श्वेत पड गई ह। अहो! क्या तुम लोग अपनी स्त्रियों को, घने वन म भागते ममय वृक्ष की शाखाओ के टकराने स अपनी पीठ पर लगे क्षतो को दिखाओगे, या अपने वक्ष पर ल- शरो के क्षत को दिखानेवाले हो।

'इस हमारे शत्रु, मनुष्य का युद्ध पराक्रम उन देवो के लिए भी दुष्प्राप्य ह'—(शत्रु की) ऐसी प्रशसा का कारण बनकर, इस प्रकार पीठ दिखाकर तुम्हारा भागना—अजेय भुजबल से युक्त, तुम्हारे कुल के नायक (रावण) की बहन (शूर्पणखा) की नाक कटने की बात छोड भी दो, तो भी यह हमारे अपयश का कारण बन रहा है। अब इसस बढ़कर दयनीय दशा और क्या हो सकती है ?

अदभुत शस्त्र-प्रयोग म निपुण, धीरता पूर्ण युद्ध काय मे जीविका निर्वाह करने वाले, शत्रुओ से छीनकर लिये गये करवालो को धारण करनेवाले, हे राक्षमो! अब क्या तुम लोग मोती आदि को बेचकर वणिक् वृत्ति करनेवाले हो ? या तीक्ष्ण बरछे करवाल आदि से पृथ्वी को जीतकर कृषक वृत्ति करनेवाले हो ? बताओ तो सही।

यो कहकर उसने आगे कहा—तुम लोग कुछ समय तक खडे रहकर मरे दीर्घ धनुष का प्रभाव देखो। फिर, वह (दषण) स्वय अपनी तरगायमान समुद्र सदृश सेना को लेकर (राम के) सम्मुख जाकर आक्रमण करने लगा। वह दृश्य देखकर देवता लोग भी मूर्च्छित हो गये। तब राम ने भी उससे यह कहकर कि—'अपने को भली भाँति बचाओ'—आगे पग बढ़ा दिया।

तब (राम के बाणों से सैनिकों के) हाथ खड्गों सहित कटकर गिर गये। हाथियों के ऊँचे बढ़े हुए दंत कटकर गिर गये। पवन गति से जानेवाले रथ, ध्वजाओं सहित, कटकर गिर गये। घोड़ों के शिर ऐसे कटकर गिरे, जैसे लाल धान की बालियाँ कटकर गिर रही हों।

(राम के द्वारा) प्रयुक्त शरों में से कुछ (राक्षसों के) मर्म स्थानों को खोजते हुए चले। कुछ उनके कवच और वस्त्रों को उड़ाकर चले और कुछ शर उनके ढालों और शरीर को भी ऐसे भेद कर चले कि उनके शरीर से रक्त की नदियाँ, पर्वत निर्झरों के जैसे, बह चलीं।

चुनकर प्रयोग किये गये कुछ रुक्मपत्र (बाण), शरीरों में प्रविष्ट होकर राक्षसों के मर्म स्थानों में घुस गये। अर्धचन्द्राकार बाण, उनके मर्म स्थानों पर न घुसकर उनके शिरों को काटकर उड़ गये। कुछ अति तीक्ष्ण शर उनके कवचावृत वक्षों को भेदकर गये, और 'भल्ल' (नामक कुछ शर) मायावी राक्षसों के हृदय को भी छेदकर चले गये।

युद्ध की लीला रचनेवाले (श्रीराम) ने, दूषण के द्वारा प्रयुक्त सब बाणों को काटकर, उसके निकट स्थित राक्षसों के द्वारा प्रयुक्त अन्य शस्त्रों को भी ध्वस्त कर, अपरिमेय वल से युक्त उस राक्षस सेना रूपी शब्दायमान समुद्र को कुछ क्षणों में ही सुखा दिया।

तब देवता लोग आनन्द ध्वनि कर उठे। रक्त की बड़ी बड़ी नदियाँ बड़े पर्वतों एवं वृक्षों को बहा ले चलीं। रामचन्द्र के द्वारा प्रयुक्त उग्र बाण दिग्दिगंतों में भी जाकर, उन दिशाओं को आवृत कर रहनेवाले क्रूर राक्षसों को आहत कर धरती पर लिटा दिया।

युद्ध करने की इच्छा से जो राक्षस रण क्षेत्र में खड़े रहे, वे सब मर मिटे। यम, उन (राक्षसों) के शरीरों से निकलनेवाले प्राणों को ढोते ढोते बहुत थक गया। अब उन भूतों के बारे में क्या कहा जाय, जो उन (राक्षसों) की चरबी को पेट भर खाकर ऊँचे पर्वतों के जैसे लगते थे?

उस समय, दूषण अत्यन्त क्रुद्ध होकर, हाथियों, रथों, अश्वों, क्रोधी राक्षसों के मुकुट भूषित शिरों, कबंधों, उज्ज्वल शस्त्रों से सुसज्जित शरीरों, उनकी श्वेतरंग की चरबी— इन सबके ढेरों के ऊपर से होकर कोलाहल पूर्ण रथ को शीघ्र चलाता हुआ आया।

धर्महीन (राक्षसों) के शरीरों के ढेर की कोई संख्या नहीं थी। अतः, वह दूषण, यद्यपि चरखी के जैसा वेगवान् था, तथापि उसका रथ उन शव राशियों पर चढ़ता उतरता हुआ बड़ी कठिनाई से आगे बढ़ा। उस कठिनाई के बारे में हम क्या कहें?

सुसज्जित चमरोंवाले पच्चीस अश्व जुते तथा उत्कट चक्रोंवाले एक विलक्षण रथ पर वह (दूषण) आरूढ़ था। भूमि के अंधकार को मिटानेवाले चन्द्र के सदृश स्थित रामचन्द्र के उज्ज्वल शर रूपी यम के सम्मुख मानो स्वयं उसके प्राण आ पड़े हों, ऐसी शीघ्रता से वह आया।

उस रथ को तथा उसपर धनुष को हाथ में लिये हुए पर्वत के जैसे खड़े दूषण को, देखकर अकलंक रामचन्द्र ने अपनी कृपा के कारण किंचित् उसकी प्रशंसा करते हुए कहा— 'तुम्हारा साहस भी धन्य है।' उस समय उस क्रूर राक्षस ने तीन बाण प्रयुक्त किये।

अतिदीर्घ तथा वर्तुलाकार अष्ट दिग्गजों तथा पृथक्-पृथक् उनका भार वहन करनेवाले अष्ट दिग्गजों का दान करनेवाले दो में से एक (पादुका)[1] को जिन (राम) ने (अयोध्या को) लौटा दिया था, उनके ललाट पर तथा उनके मुख पर और मुखचन्द्र के समान पट्ट पर वे तीनों शर जा लगे जिस दृश्य को देखकर सभी देवता भयभीत हो गये।

राम ने सोचा कि (दूषण के द्वारा) शर प्रयोग की गति एवं उसका बल भी प्रशंसनीय है। फिर, मनोहर कांतिमय मन्दहास से युक्त होकर तीक्ष्ण बाण चुन-चुनकर त्वरित गति से प्रयुक्त किये और उस (दूषण) के शीघ्रगामी अश्वों से युक्त रथ को विध्वस्त कर दिया। उसके धनुष को छिन्न कर दिया और उज्ज्वल कवच को भी नष्ट कर दिया।

तब देवता हर्ष ध्वनि कर उठे। सभी दिशाओं से ऋषियों की आशीर्वाद ध्वनि समुद्र गर्जन के समान शब्दायमान हो उठी। फिर, राम ने यह कहकर कि—'यदि तुम वीर हो तो इससे अपने को बचा लो', एक बाण प्रयुक्त किया। उससे उस (दूषण) का खड्ग-दंतयुक्त बड़ा शिर कटकर गिर गया।

मुख पर दंतों से शोभायमान दिग्गजों की समता करनेवाला, अति तीक्ष्ण तथा विविध प्रकार के शस्त्रों को धारण करनेवाला खर, यह जानकर कि दशरथ पुत्र के बाणों ने राक्षस सेना का विनाश कर दिया, अत्यन्त क्रुद्ध हुआ।

वह खर, राक्षसों के साथ हाथियों, अश्वों और रथों को सब दिशाओं में फैलाता हुआ यों चल पड़ा कि उसे देखकर यम भी भयभीत हो गया। उसकी सेना ने चन्द्र को आवृत करनेवाले मेघों के समान आकर दृढ धनुष को हाथ में धारण किये हुए मत्तगज (सदृश राम) को घेर लिया।

अदम्य क्रूर कृत्यवाले राक्षस, मदजल बहानेवाले बड़े-बड़े हाथियों को रथों को और अश्वों को अत्यधिक संख्या में धरती पर ले आये, जिससे धरती को वहन करनेवाले आदिशेष का फण भी फटने लगा। फिर, वे भयंकर युद्ध करने लगे। महिमामय राम ने भी अति तीक्ष्ण बाणों को प्रयुक्त किया।

(रामचन्द्र के शरों से) मत्तगज तड़पकर गिरे। रथों में जुते अश्व तड़पकर गिरे। अंगद भूषित भुजाएँ तड़पकर गिरीं। आँतें तड़पकर गिरीं। मांस से लगे चर्म के टुकड़े तड़पकर गिरे। पैर तड़पकर गिरे। और (उन राक्षसों की) वाम भुजाएँ भी तड़प उठीं (अर्थात्, फड़ककर विपदा की सूचना देने लगीं)।

करवालों के समूह, भालों के समूह, धनुषों के समूह, बलिष्ठ भुजाओं के समूह—इन सबसे संकुल होकर राक्षस वीरों का समूह सम्मुख आया। जिसे (रामचन्द्र के) शर समूह रूपी विध्वंसक सेना ने छिन्न भिन्न कर दिया।

धर्म स्वरूपी (राम) से चुनकर प्रयुक्त किये जानेवाले बाण नक्षत्रों को भी भेदकर जा सकते थे। मेरु पर्वत को भी भेदकर निकल जा सकते थे। ऊँचाई पर स्थित ऊपर

१ धरती का भार वहन करनेवाली दो वस्तुएँ हैं—आदिशेष और महाकूर्म। रामचन्द्र की पादुका, जिसे उन्होंने भरत को दिया था आदिशेष का ही अवतार मानी गई है। —अनु०

क लोका का भी पार कर जा सकत थ। धरती का भी भेदकर जा सकत थ। तो अब क्या यह भी कहने की आवश्यकता है कि व (बाण) करवालो को उठाये, उपस्थित राक्षसो के शरीर को भी भेदकर जा सकते थ?

उस समय, उनका घरकर आनेवाले सब राक्षसो का एक साथ विनाश करने क लिए राम ने जो बाण चुन चुनकर चलाये, उन्होने उन राक्षसो को उसी प्रकार अति शीघ्र मिटा दिये, जिस प्रकार किसी बलवान् व्यक्ति क द्वारा किसी बलहीन को अत्याचार स मारकर चुराया गया धन (उस अत्याचारी बलवान् का) शीघ्र ही मिटा देता है।

सब राक्षस वीरो के मिट जाने पर वीर ककणधारी, अतिक्रुद्ध क्रूर खर, उत्तरोत्तर बढ़ आनेवाली मज्जा और रक्त की धारा म ऐसे ही अकेले खडा रहा जैसे विशाल समुद्र के मध्य मदराचल खडा हो।

मन म क्रोधाग्नि स जलता हुआ वह (खर), अपनी लाल आँखो से चिनगारियाँ उगलता हुआ और अपने दृढ धनुष से बाणो को उगलता हुआ, बढ़ती हुई रक्त धारा के मध्य से समुद्र मध्य जानेवाली नौका के सदृश रथ पर आया। काक और गिद्ध भी उसको घर कर आये।

युगात म सार ससार का जलानेवाली अग्नि के समान वैर एव क्रूरता से युक्त, एकाकी रहनेवाले उस राक्षस के अपने निकट आने के पूर्व ही, नीलकठ (शिव) क धनुष को तोडनेवाले प्रभु, उत्तम बाणा को लिये हुए उसके सम्मुख बढ़ आये।

अग्नि क जैसे तीक्ष्ण रूपवाल, पवन क जैसे वेगवाले तथा अन्य सब लक्षणो स युक्त तीक्ष्णाग्र बाणो को उस राक्षस पति ने छोडा। किंत राम ने उन सबको वैस ही सहस्रा उत्तम बाणो से छिन्न भिन्न कर दिया।

सब लोको क प्रभु राम ने प्रलयाग्नि से भी अधिक तीक्ष्ण, नौ बाणा को प्रयुक्त किया। किन्तु, चक्र के रूप म झुके हुए धनुषवाला खर ने आग्न उगलनेवाले बाणो को चलाकर राम के बाणो का रोक दिया।

फिर, खर न माया युद्ध करत हुए, शरो की वर्षा उत्पन्न की ओर रामचन्द्र के शरीर को उन बाणो स ढक दिया। इससे देवता भयभीत होकर भागे, तब महावीर राम अत्यन्त क्रुद्ध हुए आर उनके उज्ज्वल दाँत और उन (दाँतो) को ढकनेवाल ओठ दोनो व्यत्यस्त हो गये (अर्थात्, उनके दाँत ओठो का चबाते हुए उन ओठो को ढकने लगे।)

राम ने यह सोचकर कि अब एक तीक्ष्ण बाण से इस राक्षस को मिटा दूँगा, एक शर को धनुष पर चढाकर उस आकर्ण खीचा, तब उनक हाथ का धनुष, विशाल आकाश म उत्पन्न मेघ गर्जन के सदृश घोष क साथ टूट गया।

(राम की) जय जयकार करनेवाल देवताओ ने देखा कि राम का धनुष टूट गया है और उनके पास अन्य कोई दृढ धनुष नही है और यह सोचकर कि हमारी शक्ति अब नष्ट हो गइ है, भय स काँप उठ और व्याकुल हो उठे।

इसी क्षण राजाधिराज के पुत्र (राम) ने अपने अकेलेपन की एव अपने धनुष

के टूट जाने के। किञ्चित् भी चिन्ता किये बिना ही प्राचीन सकेत[1] के अनुसार अपनी विशाल बाँह को पीछे की ओर बढ़ाया।

वरुणदेव ने यह दृश्य देखा और उनके मन की बात जानकर परशुराम से पूर्व में प्राप्त विष्णु धनुष को उस देवाधिदेव (राम) के हाथ में लाकर रख दिया।

वरुण के द्वारा लाये हुए उस धनुष को नीलमवर्ण प्रभु ने अपने हाथ में लिया और अपने बायें हाथ से उसे पकड़कर दायें हाथ से खींचकर झुकाया तो धर्महीन राक्षसों के वाम नेत्र और वाम भुजाएँ फड़क उठीं।

यों एक पलक भर में राम ने उस धनुष को लिया, और उसे ऐसा झुकाया कि यम भी भयभीत हो गया। उसके बाद डोरी चढ़ाई और सौ बाण प्रयुक्त किये जिनसे खर का दृढ़ चक्रवाला रथ चूर चूर हो गया।

खर दृढ़ चक्रवाला अपना रथ खो बैठा। तब वह बड़ा कोलाहल करता हुआ आकाश में उछल गया और सुन्दर तथा अनुपम धनुर्धारी राम की भुजा रूपी मंदराचल पर बाणों की घोर वर्षा करने लगा।

राम ने उन बाणों को रोक लिया और अपने तूणीर से तीक्ष्ण बाणों को निकाल निकालकर चलानेवाले खर के दक्षिण हाथ को एक बाण से काटकर धरती पर गिरा दिया।

खर ने, अपने दाहिने हाथ के कट जाने पर अपने बायें हाथ से एक भयंकर वज्र के समान मूसल को उठाकर उसे राम पर फेंका। तब लक्ष्मण के अग्रज ने उसे एक ही बाण से दूर फेंक दिया।

जैसे कोई सर्प अपने विष दंत के टूट जाने के पश्चात् फुफकार रहा हो ऐसे ही वह खर एक बड़े वृक्ष को हाथ में लेकर झपटा। तब राम ने एक अनुपम बाण का उसपर प्रयोग किया।

यद्यपि उस खर ने अनेक वर प्राप्त किये थे बड़ा मायावी था और बड़ा बलवान् था, तथापि राक्षसराज (रावण) के सप्त लोक के प्राणियों का विनाश करने के पाप के कारण उसके दक्षिण हाथ के जैसे ही उसका कंठ भी कट गया।

उस समय, देवता हर्ष ध्वनि कर उठे, नाचने और गाने लगे और पवित्र पुष्प बरसाने लगे। पवित्रमूर्त्ति (राम) भी सब दिशाओं में फैले कुहरे को मिटाकर निखरनेवाले सूर्य के समान ही चमकने लगे।

अनेक मुनि आये और राम का अभिनन्दन करने लगे, फिर पवित्र हृदयवाले (राम) उन सीताजी के समीप जा पहुँचे, जो अपने प्राणों (रामचन्द्र) के राक्षस-सेना के साथ युद्ध करने के लिए चले जाने पर प्राणहीन शरीर बनकर पर्णशाला में रहती थीं।

लक्ष्मण और सीता ने रामचन्द्र के चरणों को अपने अश्रुजल से इस प्रकार धोया कि उन चरणों पर लगा हुआ, युद्ध में मृत राक्षसों का रक्त और धूल धुल गये।

१ प्राचीन सकेत यह है—पहले धनुर्भंग के समय परशुराम ने राम से पराजित होकर अपने पास का विष्णु-धनुष उन्हें दिया था। राम ने वह धनुष वरुण को सौंपा था और कहा था कि जब उन्हें उसकी आवश्यकता पड़ेगी तब वह धनुष उन्हें मिल जाना चाहिए।—अनु

के लाका का भी पार कर जा सकत थ। धरती का भी भेदकर जा सकत थ। तो अब क्या यह भी कहने की आवश्यकता है कि व (वाण) करवालो को उठाये, उपस्थित राक्षसो के शरीर को भी भेदकर जा सकते थ?

उस समय, उनका घरकर आनेवाले सब राक्षसो का एक साथ विनाश करने के लिए राम ने जो बाण चुन चुनकर चलाये, उन्होने उन राक्षसो को उसी प्रकार अति शीघ्र मिटा दिये, जिस प्रकार किसी बलवान् व्यक्ति के द्वारा किसी बलहीन को अत्याचार से मारकर चुराया गया धन (उस अत्याचारी बलवान् को) शीघ्र ही मिटा देता है।

सब राक्षस वीरो के मिट जाने पर वीर कंकणधारी, अतिक्रुद्ध क्रूर खर, उत्तरोत्तर बढ़ आनेवाली मज्जा और रक्त की धारा म ऐसे ही अकेले खडा रहा जैसे विशाल समुद्र के मध्य मदराचल खडा हो।

मन म क्रोधाग्नि स जलता हुआ वह (खर), अपनी लाल आँखो से चिनगारियाँ उगलता हुआ और अपने दृढ धनुष से वाणो को उगलता हुआ, बहती हुई रक्त धारा के मध्य से समुद्र मध्य जानेवाली नौका के सदृश रथ पर आया। काक और गिद्ध भी उसको घर कर आये।

युगात म सारे ससार को जलानेवाली अग्नि के समान वैर एव क्रूरता से युक्त एकाकी रहनेवाले उस राक्षस के अपने निकट आने के पूर्व ही, नीलकठ (शिव) के धनुष को तोडनेवाले प्रभु, उत्तम बाणो को लिये हुए उसके सम्मुख बढ आये।

अग्नि के जैसे तीक्ष्ण रूपवाले, पवन के जैसे वेगवाले तथा अन्य सब लक्षणो से युक्त तीक्ष्णाग्र बाणो को उस राक्षस पति ने छोडा। किंतु राम ने उन सबको वैसे ही सहस्रो उत्तम बाणो से छिन्न भिन्न कर दिया।

सप्त लोको के प्रभु राम ने प्रलयाग्नि से भी अधिक तीक्ष्ण, नौ बाणो को प्रयुक्त किया। किन्तु, चक्र के रूप म झुके हुए धनुषवाले खर ने आग्न उगलनेवाले बाणो को चलाकर राम के बाणो को रोक दिया।

फिर, खर ने माया युद्ध करते हुए, शरो की वर्षा उत्पन्न की और रामचन्द्र के शरीर को उन बाणो से ढक दिया। इससे देवता भयभीत होकर भाग, तब महावीर राम अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उनके उज्ज्वल दाँत और उन (दाँतो) को ढकनेवाले ओठ दोनो व्यत्यस्त हो गये (अर्थात् , उनके दाँत ओठो को चबाते हुए उन ओठो को ढकने लगे।)

राम ने यह सोचकर कि अब एक तीक्ष्ण बाण से इस राक्षस को मिटा दूँगा, एक शर को धनुष पर चढाकर उसे आकर्ण खीचा, तब उनके हाथ का धनुष, विशाल आकाश म उत्पन्न मेघ गर्जन के सदृश घोष के साथ टूट गया।

(राम की) जय जयकार करनेवाले देवताओ ने देखा कि राम का धनुष टूट गया है और उनके पास अन्य कोई दृढ धनुष नही है और यह सोचकर कि हमारी शक्ति अब नष्ट हो गई है, भय स काँप उठे और व्याकुल हो उठे।

इसी क्षण राजाधिराज के पुत्र (राम) ने अपने अकेलेपन की एव अपने धनुष

न टूट जाने के। किंचित् भी चिन्ता किये बिना ही प्राचीन संकेत[1] के अनुसार अपनी विशाल भुजा को पीछे की ओर बढ़ाया।

वरुणदेव ने यह दृश्य देखा और उनके मन की बात जानकर परशुराम से पूर्व में प्राप्त विष्णु धनुष को उस देवाधिदेव (राम) के हाथ में लाकर रख दिया।

वरुण के द्वारा लाये हुए उस धनुष को नीलमपर्वण प्रभु ने अपने हाथ में लिया और अपने बायें हाथ से उसे पकड़कर दायें हाथ से खींचकर झुकाया तो धर्महीन राक्षसों के बाम नेत्र और वाम भुजाएँ फड़क उठीं।

यों एक पलक भर में राम ने उस धनुष को लिया, और उसे ऐसा झुकाया कि यम भी भयभीत हो गया। उसके बाद डोरी चढ़ाई और सौ बाण प्रयुक्त किये, जिनसे खर का दृढ़ चक्रवाला रथ चूर चूर हो गया।

खर दृढ़ चक्रवाला अपना रथ खो बैठा। तब वह बड़ा कोलाहल करता हुआ आकाश में उछल गया और सुन्दर तथा अनुपम धनुर्धारी राम की भुजा रूपी मन्दराचल पर बाणों की घोर वर्षा करने लगा।

राम ने उन बाणों को रोक लिया और अपने तूणीर से तीक्ष्ण बाणों को निकाल निकालकर चलानेवाले खर के दक्षिण हाथ को एक बाण से काटकर धरती पर गिरा दिया।

खर ने, अपने दाहिने हाथ के कट जाने पर, अपने बायें हाथ में एक भयंकर वज्र के समान मूसल को उठाकर, उसे राम पर फेंका। तब लक्ष्मण के अग्रज ने उसे एक ही बाण से दूर फेंक दिया।

जैसे कोई सर्प अपने विष दंत के टूट जाने के पश्चात् फुफकार रहा हो ऐसे ही वह खर एक बड़े वृक्ष को हाथ में लेकर झपटा। तब राम ने एक अनुपम बाण का उसपर प्रयोग किया।

यद्यपि उस खर ने अनेक वर प्राप्त किये थे, बड़ा मायावी था और बड़ा बलवान् था, तथापि राक्षसराज (रावण) के सप्त लोक के प्राणियों का विनाश करने के पाप के कारण, उसके दक्षिण हाथ के जैसे ही उसका कंठ भी कट गया।

उस समय, देवता हर्ष ध्वनि कर उठे नाचने और गाने लगे और पवित्र पुष्प बरसाने लगे। पवित्रमूर्त्ति (राम) भी सब दिशाओं में फैले कुहर को मिटाकर निखरनेवाले सूर्य के समान ही चमकने लगे।

अनेक मुनि आये और राम का अभिनन्दन करने लगे फिर पवित्र हृदयवाले (राम) उन सीताजी के समीप जा पहुँचे, जो अपने प्राणों (रामचन्द्र) के राक्षस सेना के साथ युद्ध करने के लिए चले जाने पर प्राणहीन शरीर बनकर पर्णशाला में रहती थीं।

लक्ष्मण और सीता ने रामचन्द्र के चरणों को अपने अश्रुजल से इस प्रकार धोया कि उन चरणों पर लगा हुआ, युद्ध में मृत राक्षसों का रक्त और धूल धुल गये।

१ प्राचीन संकेत यह है—पहले धनुर्भंग के समय परशुराम ने राम से पराजित होकर अपने पास का विष्णु-धनुष उन्हें दिया था। राम ने वह धनुष वरुण को सौंपा था और कहा था कि जब उन्हें उसकी आवश्यकता पड़ेगी तब वह धनुष उन्हें मिल जाना चाहिए।—अनु

एक मुहूर्त्त म मरे हुए राक्षसो का रक्त प्रवाह सब दिशाओ म भर गया। इधर श्रीरामचन्द्र विश्राम करने लगे और देवता समुद्र म, पक्तियो म उठनेवाली लहरो के समान, घोष करते हुए उनकी स्तुति करने लगे।

इधर जो वृत्तात कहना शेष रह गया है, अब उसे कहेगे। रावण की बहन, अपनी छाती पीटती हुई, अधकार समान खर का आलिगन करके, दूर तक फैले हुए उसके उष्ण रक्त प्रवाह म लोटने लगी।

मने अपने मन म (राम का पाने की) जो इच्छा की थी, हाय! उस इच्छा को अपनी नासिका के साथ ही मैने नही खोया। मने अपने वचनो के कारण तुम लोगो (खर दूषण) के जीवन को भी मिटा दिया। मै अत्यन्त क्रूर हूँ—यो रोती कलपती हुइ वहाँ से चली गई।

विजयमालाधारी (लका म रहनेवाले) राक्षस समूह का भी नाश करने के विचार से, ससार के प्राणियो को भयभीत करनेवाली आँधी क समान, वह शीघ्र लका म जा पहुँची। (१-१६२)

●

अध्याय ७

मारीच-वध पटल

शूर्पणखा, कोलाहल स पूर्ण समुद्र की जैसी राक्षस सेना के विनष्ट होने की बात का भूल सी गई। रामचन्द्र क पर्वत सदृश कधो के प्रति आकर्षण उसके मन को व्यथित करने लगा। उससे अत्यत व्याकुल हो वह यह सोचकर चल पडी कि, तरगो से भरे समुद्र रूपी परिखा से आवृत विशाल लका म शीघ्र जा पहुँचूँगी और (रावण स) सीता के सौदर्य के बारे मे कहूँगी। अब उस लका मे स्थित रावण का वर्णन करेगे।

वह (रावण) एक ऐसे अति मनोहर अनुपम रत्न मडप म आसीन था, जो (मडप) इस नश्वर ससार म स्थावर जगम पदार्थों की सृष्टि करनेवाले कमल भव, चतुमुख (ब्रह्मा) क लिए भी विरचित करने का असभव था और जो सूक्ष्म ज्ञान स उत्पन्न अनुपम दक्षता से युक्त तथा निष्कलक धम के जैसे ही, सकल्प मात्र से सब वस्तओ का सर्जन करनवाले (विश्वकर्मा नामक) देव शिल्पी के द्वारा निर्मित होकर, उसके समस्त शिल्पशास्त्र ज्ञान को प्रकट करता था।

भ्रमरो से गुजित शिरवाले दिग्गजो के दाँतो का भी अपने कठार आघात से तोड दनेवाले (उस रावण के) मनोहर कधे, आकाश तक उन्नत होकर ऊँचे उदयाचल के समान शाभित हो रहे थे। उन कधो पर (रावण के बीस) कुण्डल इस प्रकार प्रकाशमान थे, जैसे उज्ज्वल किरण पुज से युक्त द्वादश सूय मडल, मेरु पवत की परिक्रमा करते हुए, बीस मडलवाले होकर चमक रहे हो।

स्वतांओं में व्याघ्र चर्म धारण करनेवाले (शिव) स्वर्णमय वस्त्र धारण करनेवाले (विष्णु) और कमल से उत्पन्न (ब्रह्मा) भी इस रावण को कुछ पीडा नहीं दे सकते थे, तो अब इस संसार में दूसरा कोई सबव में क्या कहा जाय। (अर्थात् दूसरे कौन उससे युद्ध करने की शक्ति रखते हैं)। सूक्ष्म कटि, पीन स्तनों, कोमल दण्ड समान करों रेखाओं से युक्त करों तथा सबको आकृष्ट करने की शक्ति से युक्त सुन्दरियों के साथ दुस्सह प्रणय कलह में भी न झुकनेवाले उसके किरीटों की पंक्ति अत्यन्त उज्ज्वल थी।

(उसके आभरणों के) उज्ज्वल तथा बड़े बड़े रत्न प्रकाश पुञ्ज बिखेर रहे थे। (उसके) वज्रमय पर्वताकार कंधे धरती का भार वहन करनेवाले विषमय सर्पराज के फनों के समान शोभित थे। (उसके वक्ष पर) के उज्ज्वल रत्नहार भयंकर समुद्र से घिरी लंका के मध्य स्थित उस कारागार का दृश्य उपस्थित करते थे, जिसमें (रावण) के द्वारा बंदी बनाकर लाये गये नवग्रह तथा उनके पार्श्वों में नक्षत्र रखे गये हों।

अरुण कांतिवाला, उत्तम रत्नों से खचित उसका वीर वलय, उसके चरण में शब्दायमान हो रहा था और अवर्णनीय महाबल से युक्त राक्षस नायकों के गौरवमय रत्न किरीटों की रगड खा खाकर नव कांति बिखेर रहा था।

सुरों तथा असुरों ने सब दिशाओं से ला लाकर जो सुरभित पुष्प (रावण के चरणों पर) बरसाये, वे पुष्प त्रिभुवन के राजाओं के द्वारा निरन्तर ला लाकर समर्पित धन राशियों के समान भरे पडे थे।

बिजली के जैसे चमकते हुए किरीटोंवाले विद्याधर नरेश, यह न जानने से कि वह (रावण) किस समय किस ओर अपनी दृष्टि डालेगा, सदा अपने शिर पर हाथों को जोडे हुए सभा मंडप में उसके समीप पंक्ति बाँध खडे रहते थे।

सिंह सदृश बलशाली सिद्ध लोग, उस (रावण) के समीप शिर झुकाये, हाथ जोडे और संकोच से भरे मन के साथ विनम्र होकर खडे रहते थे। यदि वह रावण किसी दासी को भी कोई आज्ञा देता, तो भी (ये सिद्ध लोग) यह समझकर कि वह उनको ही आज्ञा दे रहा है, झट उसे करने के लिए दौड पडते थे।

यदि वह रावण उस सभा मंडप में मंत्रियों को देखकर कोई वचन कहता, तो भी किन्नर (यह सोचकर कि वह उन किन्नरों को कुछ दंड देने की ही बात कर रहा है), व्याकुल तथा भयभीत होकर शिर झुकाकर खडे रहते थे।

नागलोग, रावण को देखकर, विशाल (दक्षिण) दिशा के प्रभु तथा भयंकर दंड धारी यम को देखनेवाले नरक वासियों के समान ही, गद्गदकंठ एवं भय व्याकुल मन होकर घेरे खडे रहते थे।

तुंबुरु नामक ऋषि अपनी संगीतमय वीणा के साथ रावण की उन भुजाओं का यशोगान कर रहे थे, जिन भुजाओं ने दिग्गजों के बल को कुंठित कर दिया था, कैलाश गिरि को उखाडकर महादेव के लिए अपवाद उत्पन्न किया था और इन्द्र के साथ युद्ध करके सभी स्वर्ग वासियों को भयभीत किया था।

नारद मुनि, स्वर्ग में प्रचलित संगीत पद्धति से किंचित् भी स्खलित हुए बिना,

अपने करो म वीणा का नाद करते हुए, सरस्वती के समान ही, दोषहीन राग मे मधुर वद का गान करते थ और उसक कानो का तृप्त करते थे ।

मकर मीन से पूण समुद्र का अधिपति वरुण, दव तरुओ तथा विद्याधर लाक क वृक्षो क पुष्पो से झरे हुए मधु को, स्वच्छ जल क साथ मिलाकर, मेघ नामक पिचकारी म भरकर, डरत डरत उस रावण पर बँदो म वरसा रह थ कि कही (पिचकारी का जल) मयूर और हरिणी सदृश रमणियो क वस्त्रो पर न पड जाय ।

वासुदेव, सुगन्धित पुष्पो से झरनेवाले पराग और मधु का, एव (उस सभा म स्थित) राजाआ क ऊचे ऊचे किरीटो के (एक दूसरे से) रगडने से झरनेवाले रत्नो और मुक्ताओ के टुकडा का, धरती पर उनके गिरने के पूव ही, इधर से उधर आर उधर से इधर दौड दौडकर इस प्रकार बटोर लेता था मानो वह उस स्थान पर झाड सा लगा रहा हो ।

बृहस्पति और शुक्राचाय—दानो अपने हाथो म बिजली के जैसे चमकनेवाले दड लिये हुए, सारे शरीर को ढकनेवाले दीर्घ कचुक धारण किये हुए, अथक रूप से घूम-घूमकर (रावण के सभा मडप म) इन्द्र आदि देवताओ को यथोचित आसन दिखाने का काय कर रह थे (अर्थात् , रावण की सेवकाई कर रह थे) ।

काल त्रिशूल आदि अपने शस्त्रो का त्याग कर, अपने शरीर क वस्त्र से अपना मुँह ढककर, जब जब चम से आवृत भरी वाद्य बजने का समय हाता था, तब तब आकर, ठीक समय की सूचना दता था । (भाव यह है कि कालदव रावण के सभा मडप म समय की सूचना देन का काय करता था) ।

उज्ज्वल अग्निदेव, दीपो मे सुगधित घृत को भर भरकर, उत्तम कर्पर बत्ती को तथा कपास की बत्ती को जलाकर, जलाशयो म स्थित रक्त कमल क समान दीपा को प्रकाशित कर रहा था ।

नवीन पुष्पा से पुष्पित कल्पवृक्ष, अमन्द कांति स पूर्ण (चितामणि आदि देव लोक के) रत्न, दुधार (कामधेनु आदि) गाये तथा (शख, पद्म आदि) निधियाँ, (रावण के) मन क कोमल भावो को पहचानकर क्रम क्रम से अनेक वस्तुओ को लाकर उसके सामने रख देता था और उसे आश्चय म डाल दता था ।

(रावण क पहने हुए) कुडल आदि आभरण, अपनी घना काति का इस प्रकार फैला रह थे कि ऐसा लगता था, मानो सप्त लोको मे रात्रि नामक पदाथ ही कही नही रह गई ह, न अष्ट दिशाओ म कही अँधेरा रह गया है ।

गगा आदि नदी देवियाँ, अपने स्तन भार स लचकनेवाली लता समान कटि के साथ, उस सभा मडप म आती और (रावण पर) अपने अरुण करो से अक्षत एव पुष्प बिखेरती तथा बारी बारी से प्रशस्तियाँ गाती ।

(नारायण मुनि के) उरु से उत्पन्न उर्वशी[1] नामक अप्सरा को आगे किये हुए

[1] पुराणो मे एक कथा प्रसिद्ध है—बदरिकाश्रम मे विष्णु के अशभूत नर और नारायण क्रमश शिष्य और गुरु क रूप मे तपस्या करते थे । उनकी तपस्या को भग करन के लिए इन्द्र के द्वारा प्रेषित अप्सराओं को आया हुआ देखकर नारायण ने अपने उरु स उन अप्सराओ स भी अधिक सुन्दर स्त्री को उत्पन्न किया, जिसे देखकर व सब अप्सराए लज्जित होकर चली गई —उसका नाम उर्वशी पड़ा ।

अनेक स्त्रियाँ, कलापों के समान क्षममय वाणी (अर्थात् , मदल आदि) के ताल के अनुसार अत्युत्तम नृत्य करती थीं, जिसे वह (रावण) देखता रहता था।

वह रावण जिसने अपूर्व तपस्या के प्रभाव से त्रिभुवन को भी अपने अपार बल के अधीन कर रखा था अब (उस सभा मंडप में) भ्रू-रूपी धनुष को धारण करनेवाली काल तथा विशाल नयनोंवाली रमणियों की दृष्टियों के प्रवाह में (तैर रहा) था।

उस समय, रावण की बहन (शूर्पणखा), अपने लाल हाथों को सिर पर रखे हुए, स्तनों से लाल रक्त बहाते हुए, नाक और कानों से रहित होकर अपना मुँह खोलकर मेघ के जैसे गरजती हुई, दौड़ी आई।

वह (शूर्पणखा) अपने अत्यन्त दुर्गन्धपूर्ण मुँह से रोती गरजती हुई, युगान्त कालिक समुद्र घोष के समान शब्द करती हुई, व्याकुल चित्त होकर, पश्चिम दिशा में दीख पड़नेवाली सध्याकालीन लालिमा के जैसे केशों के साथ (लंका के प्रासाद के) उत्तरी द्वार से होकर प्रकट हुई।

उसके इस प्रकार प्रकट होते ही, उस पुरातन (लंका) नगर की राक्षस स्त्रियाँ उस (शूर्पणखा) के सम्मुख जाकर अपनी छाती पीट पीटकर रोने लगीं। हाय! त्रिभुवन के शासक की बहन नककटी होकर, निस्सहाय इस प्रकार आवे, तो वे स्त्रियाँ कैसे उस दृश्य को सह सकती थीं?

राक्षस, (शूर्पणखा को) हठात् उस दशा में आती हुई देखकर स्तब्ध रह गये। उनके मुख से कुछ वचन नहीं निकला, फिर वज्र घोष के जैसा गर्जन करके, एक हाथ से दूसरे हाथ को पीटते हुए, आँखों से चिनगारियाँ निकालते हुए और ओठ चबाते हुए खड़े रहे।

कुछ राक्षस यह कहकर क्षुब्ध हो रहे कि क्या यह कार्य इन्द्र का है? नहीं तो सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा ने किया है? या चक्रधारी विष्णु का यह कार्य है? अथवा चद्रशेखर का ही यह कार्य है?

कुछ राक्षसों ने कहा—(इस ब्रह्मांड में) कहने योग्य शत्रु कोई (रावण का) नहीं है। अतः, त्रिभुवन को अपने अन्तर में रखे हुए इस ब्रह्मांड में रहनेवाले) किसी भी व्यक्ति के द्वारा यह कार्य नहीं हुआ है, इसे करनेवाला इस ब्रह्मांड से परे रहनेवाला कोई होगा।

कुछ राक्षसों ने कहा— अरे, यह रावण की बहन है।'—यह वचन सुनते ही सब लोग इसे 'हे माता!' कहकर इसके चरणों को नमस्कार करते हैं। कोई इसके अपमान की बात सोच भी नहीं सकता। अतः, इस (शूर्पणखा) ने स्वयं ही अपने कान नाक काट लिये होंगे।

कुछ राक्षस कहते थे—देवेन्द्र युद्ध में पराजित होकर अब (रावण की) सेवकाई कर रहा है, तीक्ष्ण धारवाले चक्र को धारण करनेवाला विष्णु, शक्तिहीन होकर समुद्र में जाकर रहने लगा है। आग को हाथ में धारण करनेवाला शिव (रावण से डरकर) पर्वत पर जाकर रहने लगा है फिर ऐसा कार्य करनेवाला व्यक्ति कौन है?

यशस्वी कुल में उत्पन्न कोई भी व्यक्ति ऐसा कार्य करने का साहस नहीं कर

सकता, शायद खर ने ही, यह सोचकर कि यह (शूर्पणखा) उत्तमकुल की स्त्रियों के लिए उचित कार्य न करके चरित्र भ्रष्ट हो गई है, इस सौन्दर्य से हीन कर दिया है।

कुछ राक्षस कहते थे—शिथिल एवं व्याकुल चित्तवाले देवताओं में से किन्हीं बलवान् व्यक्तियों ने, पागलपन के साथ, जीवित रहने के लिए अनुपयोगी विचार से (अर्थात्, विनाशकारी विचार से), त्रिलोक का विनाश करने के लिए ही, इस प्रकार का कार्य किया है।

कुछ राक्षस कहते थे—दूसरा कल्प आने पर है, किन्तु इस कल्प में ऐसा कौन वीर वलयधारी तथा शस्त्रधारी वीर है, जो इस प्रकार ऐसा कार्य करने की क्षमता रखता है? भयंकर अरण्य में, दोषहीन तप कर्म में निरत ऋषियों के क्रोध का ही यह परिणाम है।

अपार संपत्ति से पूर्ण उस लंका नगर में, काले नयनोंवाली राक्षस स्त्रियाँ (शूर्पणखा की वह दशा) देखकर, वलय पंक्तियों से भूषित अपने हाथों को मलती हुई, जामन डाले दूध के समान अस्तव्यस्त दशा में पड़ी हुई, गदगद वचन कहती हुई, एक के आगे एक होती हुई, दौड़ी चली आई।

उस नगर में, मर्दल, वीणा, मधुर नादवाले याक् वाद्य, मनोमोहक वंशी, शंख, (तारे) (नामक वाद्य)—इनकी ध्वनि अब नहीं रही, किन्तु जैसी रुदन ध्वनि इसके पहले कभी उत्पन्न नहीं हुई थी, वैसी रुदन ध्वनि होने लगी।

समुद्र को भी लज्जित करनेवाले विशाल नयनों से शोभित राक्षस स्त्रियाँ, मधु पात्रों को, मत्त भ्रमरों को एवं अपने मनों को एक ओर ढकेलकर दौड़ी चली आईं, तब उनकी कटि लचकने सी लगी, जिससे वे एक दूसरे को सँभालती हुई आईं।

कुछ राक्षस स्त्रियाँ, जो करवाल के धनी अपने पतियों को (प्रणय कलह में हुए उनके अपराधों के लिए) दंड देने में निरत थीं और अपने उद्विग्न मन में क्रोध उमड़ने के कारण लालिमा से भरे अपने नेत्रों से अश्रु बहा रही थीं, रावण की उस बहन के चरणों पर जा गिरीं।

कुछ राक्षस-स्त्रियाँ, जो स्वर्णमय फलों से युक्त मरकत वर्णवाले क्रमुक वृक्षों में बाँधी गई नवरत्नमय जंजीरों से लटकनेवाले झूलों में झूल रही थीं, वे झूलना छोड़कर, व्यथित चित्त के साथ, अपनी सूक्ष्म कटियों को दुखाती हुई, वीथियों में आ पहुँचीं।

और कुछ राक्षस स्त्रियाँ, जो (अपने पतियों के) स्तंभ और पर्वत तुल्य कंधों के आलिंगन में बँधी थीं, अपनी वलय विभूषित बाँहों को शिथिल करके, अपने कमल तुल्य वदन पर के दो मीनों से मुक्ता की धारा बहाती हुई, सिसक सिसककर रोने लगीं।

क्षीण कटिवाली कुछ राक्षस स्त्रियाँ, यह कहती हुई कि शत्रु विध्वंसक और (शत्रुओं के) रक्त में डूबे हुए शूल को धारण करनेवाला राजा (रावण) यदि इस बात को जान ले, तो उसकी क्या दशा होगी? अपनी अंजन लगी आँखों से मेघ की वर्षा करती हुई, रोती कलपती धरती पर लोटने लगीं।

निद्रा करनेवाली कुछ राक्षस तरुणियाँ, मधुर स्वप्न के आनन्द को भूल गईं। मेघ की समता करनेवाले केशों को अस्त व्यस्त किये हुए, शिथिल वस्त्रों तथा कंपित स्तनों के साथ घर से निकल पड़ीं और दुःख से रोने लगीं।

खुल नश पाशवाली कुछ राक्षस स्त्रियाँ, यह कहकर कि शत्रु क नाम को अपने विशाल करो म उठानेवाले हमारे पराक्रमी प्रभु की बहन की यह दशा हो गइ ह ! हाय ! शोक से उद्विग्न हुए स्तना पर अपन करा मे आघात करने लगी और उस स्त्री (शूपणखा) के पैरो पर आ गिरी।

कुछ राक्षस स्त्रियाँ यह कहकर कि अपने हाथ म शूल का रखनवाले हमार प्रभु के रहने के कारण लका क पशुओ ने भी कभी ऐसा दु ख नहा भागा अब क्या हमार सब सुकृत मिट गये ह ? दु खी हुइ आर अपन अति सुन्दर नयनो स अश्रु की धारा बहाने लगी।

जब लका नगर इस प्रकार दारुण दु ख म निमग्न हा रहा था तब शूपणखा, पवत सानु पर आकर झुकनेवाले मेघ क समान सभा मडप म प्रविष्ट होकर राक्षसराज (रावण) क स्वणमय विशाल वीर कंकण से भूषित पैरो पर आ गिरी। अकस्मात् उसको उस रूप म देखकर उस मडप मे बैठे हुए और खडे हुए सब लोग भय से भाग निकलने का माग देखने लग।

तीनो लोको म अधकार छा गया। (धरती का भार वहन करनवाला) शेषनाग भयभीत होकर अपने फनो को झुकाने लगा, कुलपवत हिल उठे, सूर्य कातिहीन हो गया, दिग्गज अपना स्थान छोडकर भागने लगे देवता भय स यत्र तत्र छिपने लगे।

उज्ज्वल वलयभूषित (रावण की) भुजाएँ फूल उठी, उसकी आँखो स चिनगारियाँ निकलने लगी, दाँतो से अग्नि ज्वालाएँ फूट निकली, कुचित भाह ललाट के मध्य जा पहुँची। (रावण का क्रोध देखकर) सब भुवन डाँवाडोल हो उठे, देवता किंकर्त्तव्य विमूढ होकर खडे रहे।

दक्षिण दिशा के शासक यम के साथ सब देवता, यह सोचकर कि अब हमारे विनाश का समय आ गया ह चुपचाप पडे रह। स्वर्गलोक क निवासी तथा इहलोक के निवासी भी भ्रात हाकर थर थर काँपते हुए, उसास भरते हुए घबराइ हुई दशा म अवाक हो खडे रह।

रावण के (कोप क कारण) दाँतो से दबे हुए ओठवाले बिल समान मुँहो से धुआँ निकलने लगा। उसने श्वास छाडा, तो पक्तिश रहनेवाली उसकी मूँछो म आग लग गइ, उसके तीक्ष्ण तथा उज्ज्वल दत बिजली क जसे चमक उठे, यो मेघ के गजन के समान गरजकर उसने पूछा—'यह किसका काय ह ?

शूपणखा ने उत्तर दिया—अरण्य म मीनकेतन (मन्मथ) क समान रूपवाले, स्वर्ग वासियो एव पृथ्वी क निवासियो म अपना उपमान कही भी न पानेवाले दो मनुष्य राजकुमार आये हैं। उन्होने ही करवाल स (मेरे अगो को) काट दिया ह।

शूपणखा क यह कहते ही कि मनुष्यो ने यह काय किया ह, रावण ने ऐसा ठहाका भरा कि सारी दिशाएँ गूँज उठी। उसकी बीसो आँखो से चिनगारियाँ निकल पडी। फिर शूपणखा से बोला—मनुष्यो का पराक्रम तो अतिक्षुद्र होता ह, क्या तुम्हारा कथन सत्य है ? असत्य कहना छाड दो, भय को दूर करो और यथाथ घटना बताओ।

तब शूपणखा कहने लगी—व अपन रूप सौदर्य म मन्मथ की समता करनेवाले ह अपनी पुष्ट भुजाओं क बल से मरु पवत की दृढ़ता का भी मिटाने म समर्थ ह, एक क्षण भर म सप्त लोकों क निवासियों व पराक्रम को मिटा सकते ह। उनके गुणा का वणन म अब कैसे कर सकती हूँ ?

व लोग मुनियों क प्रति आदर भाव दिखात ह। गगन क चद्र क सदृश मुखवाले ह। तरग भर जल म नाल पर शोभायमान सुरभित कमल क दल सदृश नेत्रवाले ह, वैसे ही (अर्थात्, कमल तुल्य ही) कर चरणवाले ह, अपार तपस्या स सपन्न ह। उनकी समता करनेवाले कौन ह ? (अर्थात्, नही ह।)

व वल्कलधारी ह। विशाल वीर वलयधारी ह। वक्ष पर सुन्दर सूत्र (यज्ञोपवीत) म शोभायमान ह। धनुर्विद्या म निपुण हैं। वद के आवास वाणी स युक्त ह। कोमल पल्लव सदृश (मृदुल) शरीरवाले ह। तुमस भयभीत नही होनेवाले ह। तुम्ह धूलि क समान भी नही समझनेवाले ह। शब्द रूप शास्त्रों क समान ही अक्षय रहनेवाले तूणीर धारण करनेवाले ह।

उत्तम चरित्रवाल मुनियों ने उन दोनों के निकट आकर निवदन किया कि अपने मन को सयम म रखनेवाले हमलोग राक्षसों से आशकित ह। इसपर उन मनुष्यों ने शपथ की कि सब लोकों का जीतनवाले रावण क कुल का हम समूल विनाश करेंगे।

ह प्रभु! क्या एक ही लोक म दो मन्मथ निवास करते ह ? क्या धनुविद्या म उनस अधिक निपुण कोई ह ? क्या उनकी समता करनेवाला कोई एक भी व्यक्ति ह ? उन दोनों म से प्रत्येक, अकेले ही, त्रिमूत्तियों की समता करता है।

सारे भूमडल म अपना शासन चक्र प्रवत्तित करनेवाले दशरथ नामक प्रशस्त राजा के व दोनों पुत्र हैं। किंचित् भी दोष से रहित ह। अपने पिता की आज्ञा से दुगम अरण्य म आकर निवास कर रह है। उनके नाम राम और लक्ष्मण ह।—यों शूपणखा ने कहा।

अमृत सदृश प्यारी बहन (शूपणखा) की नासिका को तीक्ष्ण करवाल से काटने वाले, मनुष्य हैं। काटने के पश्चात् भी वे जीवित ह। ऐसा होने पर भी नवीन खड्ग का धारण किय हुए रावण, किंचित् भी लज्जित हुए बिना, नयन खोलकर देखता हुआ अभी तक प्राण रखे हुए है।—इस प्रकार रावण कहने लगा।

सवत्र विजय पाकर, अपने पराक्रम से राज्य को प्राप्त करने पर भी अन्त म मुझ यही (अपयश) मिला है। मेरा सारा यश मिट गया। ससार क समस्त वीरों के शिर कट जाने पर भी, मेरा खोया हुआ मान किस प्रकार लौटकर आ सकता है ?

मुझे इस प्रकार अपमानित करनेवाल मनुष्य भी अभी तक जीवित ह। उनक प्राण अभी स्थिर ह और मेरा यह खड्ग भी अभी मेरे हाथ म वत्तमान है। समुद्र म उत्पन्न विष को पीनेवाले (शिव) के द्वारा प्रदत्त मेरी आयु भी बनी हुई है। मरी भुजाएँ भी ह तथा मै भी (वैसा ही) हूँ।

हे मेरे मन! क्या यह सोचकर कि ऐसा अपवाद शूल बनकर तुम म चुभ गया है, तू लज्जित हो छटपटा रहा है, तू व्याकुल न हो। इस अपवाद को ढोने के लिए मेरे दस

ाशर ह। उन (शिरा) न भी अ क मरया म मर्द भुनाए ह। फिर नम क्ना कना हो मकता है?

यों कहकर वह (रावण) हँसने लगा और अपनी आँखों से चिनगारियाँ निकालने लगा। फिर पूछा—ऊँचे पर्वतों से भरे दण्डकारण्य म रहनेवाले खर आदि राक्षसों ने क्या इन निस्सहाय मनुष्यों को अपने शस्त्रों से मिटा नहीं दिया?

रावण के ये वचन कहते ही शूर्पणखा निर्झर के समान अश्रु बहाती हुई अपनी छाती पीटती हुई, धरती पर लोट लोटकर रोने लगी और बोली—हे तात! हम भी व बन्धु भी शीघ्र उन (मनुष्यों) के द्वारा ध्वस्त हो गये। फिर सिर पर हाथ धरकर सारा वृत्तांत कहने लगी।

खर आदि वृषभ सदृश वीर, मेरे मुँह से घटित वृत्तांत को सुनकर अपनी सारी सेना को लेकर बड़े कोलाहल के साथ वहाँ गये और सूर्य किरणों का स्पर्श पाकर विकसित कमल की समता करनेवाले अरुण नयनों से शोभित राम नामक वीर के धनुष से तीन घड़ी के अन्दर ही वे स्वर्ग म जा पहुँचे—यों शूर्पणखा ने कहा।

उसके भाई (खर और दूषण) एकाकी राम के साथ के युद्ध में अपनी विजय माला भूषित सेना के साथ मारे गये—यह वचन उसके कानों म पहुँचने के पूर्व ही रावण की विशाल आखें वज्र और जलधारा को गिरानेवाले मेघ के समान अश्रुओं के साथ अग्निकण उगलने लगी।

उस समय रावण के मन म जो क्रोध उत्पन्न हुआ, उससे बढ़कर उसका दुःख अग्नि म पड़े घृत के जैसा काम करने लगा। उसने प्रश्न किया—वे मनुष्य तुम्हारी नाक और कान काटे—ऐसा तुमने कौन सा अपराध किया?

शूर्पणखा ने उत्तर दिया—किसी के द्वारा चित्रित करने के लिए असभव रूपवाले उस (राम) के साथ (एक स्त्री आई हुई है वह) कमल के आवास को छोड़कर आई हुई लक्ष्मी के समान है बिजली के तुल्य कटि से शोभित है, बाँस के तन कोमल कधोंवाली है एव स्वर्ण के रग की देहवाली है। उस नारी के निकट म गई थी, बस इतना ही मेरा अपराध था।

यह सुनकर रावण ने पूछा—वह नारी कौन है? तब उस राक्षसी ने कहा—हे प्रभु! उस नारी का जघन तट चक्रवाला रथ है उसके स्तन रक्त स्वर्ण के कलश है, जिनपर दृगुदिक वात के सपुट लगे है, यह भूमि का बड़ा सौभाग्य है कि उस नारी के पद तल का स्पर्श उसे मिला है। अहा! उसका नाम सीता है।—यों कहकर शूर्पणखा सीता के रूप का वर्णन करने लगी।

उसकी वाणी भ्रमरों की गुंजार तथा मधु के समान रस भरी है, उसके केशपाश मधुपूर्ण पुष्पों से सुवासित है। अप्सराओं के लिए भी पूजनीय, कमल म निवास करनेवाली सुन्दरी लक्ष्मी उसकी दासी बनने के लिए भी योग्य नहीं है। यह कहना भी कि हम उसके सौन्दर्य का वर्णन करेंगे, अज्ञान का कार्य होगा।

हे प्रभु! अपनी वाणी को अमृत से भर भरकर लानेवाली (अर्थात् अमृत समान

तब शूर्पणखा कहने लगी—वे अपने रूप सौंदर्य में मन्मथ की समता करनेवाले हैं अपनी पुष्ट भुजाओं के बल से मेरु पर्वत की दृढ़ता को भी मिटाने में समर्थ हैं, एक क्षण भर में सप्त लोकों के निवासियों के पराक्रम को मिटा सकते हैं। उनके गुणों का वर्णन मैं अब कैसे कर सकती हूँ?

वे लोग मुनियों के प्रति आदर भाव दिखाते हैं। गगन के चंद्र के सदृश मुखवाले हैं। तरंग भरे जल में नाल पर शोभायमान सुरभित कमल के दल सदृश नेत्रवाले हैं, वैसे ही (अर्थात्, कमल तुल्य ही) कर चरणवाले हैं, अपार तपस्या से संपन्न हैं। उनकी समता करनेवाले कौन हैं? (अर्थात्, नहीं हैं।)

वे वल्कलधारी हैं। विशाल वीर वलयधारी हैं। वक्ष पर सुन्दर सूत्र (यज्ञोपवीत) से शोभायमान हैं। धनुर्विद्या में निपुण हैं। वेद के आवास वाणी से युक्त हैं। कोमल पल्लव सदृश (मृदुल) शरीरवाले हैं। तुमसे भयभीत नहीं होनेवाले हैं। तुम्हें धूलि के समान भी नहीं समझनेवाले हैं। शब्द रूप शास्त्रों के समान ही अक्षय रहनेवाले तूणीर धारण करनेवाले हैं।

उत्तम चरित्रवाले मुनियों ने उन दोनों के निकट आकर निवेदन किया कि अपने मन को संयम में रखनेवाले हमलोग राक्षसों से आशंकित हैं। इसपर उन मनुष्यों ने शपथ की कि सब लोकों को जीतनेवाले रावण के कुल का हम समूल विनाश करेंगे।

हे प्रभु! क्या एक ही लोक में दो मन्मथ निवास करते हैं? क्या धनुर्विद्या में उनसे अधिक निपुण कोई है? क्या उनकी समता करनेवाला कोई एक भी व्यक्ति है? उन दोनों में से प्रत्येक, अकेले ही, त्रिमूर्त्तियों की समता करता है।

सारे भूमंडल में अपना शासन चक्र प्रवर्त्तित करनेवाले दशरथ नामक प्रशस्त राजा के वे दोनों पुत्र हैं। किंचित् भी दोष से रहित हैं। अपने पिता की आज्ञा से दुर्गम अरण्य में आकर निवास कर रहे हैं। उनके नाम राम और लक्ष्मण हैं।—यों शूर्पणखा ने कहा।

अमृत सदृश प्यारी बहन (शूर्पणखा) की नासिका को तीक्ष्ण करवाल से काटनेवाले, मनुष्य हैं। काटने के पश्चात् भी वे जीवित हैं। ऐसा होने पर भी नवीन खड्ग को धारण किये हुए रावण, किंचित् भी लज्जित हुए बिना, नयन खोलकर देखता हुआ अभी तक प्राण रखे हुए है।—इस प्रकार रावण कहने लगा।

सर्वत्र विजय पाकर, अपने पराक्रम से राज्य को प्राप्त करने पर भी अन्त में मुझे यही (अपयश) मिला है। मेरा सारा यश मिट गया। संसार के समस्त वीरों के शिर कट जाने पर भी, मेरा खोया हुआ मान किस प्रकार लौटकर आ सकता है?

मुझे इस प्रकार अपमानित करनेवाले मनुष्य भी अभी तक जीवित हैं। उनके प्राण अभी स्थिर हैं और मेरा यह खड्ग भी अभी मेरे हाथ में वर्त्तमान है। समुद्र में उत्पन्न विष को पीनेवाले (शिव) के द्वारा प्रदत्त मेरी आयु भी बनी हुई है। मेरी भुजाएँ भी हैं तथा मैं भी (वैसा ही) हूँ।

हे मेरे मन! क्या यह सोचकर कि ऐसा अपवाद शूल बनकर तुम में चुभ गया है, तू लज्जित हो छटपटा रहा है, तू व्याकुल न हो। इस अपवाद को ढाने के लिए मेरे दस

शिर है। इन (शिरों) से भी अधिक संख्या में मेरी भुजाएँ हैं। ... ... हो सकता है?

यों कहकर वह (रावण) हँसने लगा और अपनी आँखों से चिनगारियाँ निकालने लगा। फिर पूछा—ऊँचे पर्वतों से भरे दण्डकारण्य में रहनेवाले खर आदि राक्षसों ने क्या इन निस्सहाय मनुष्यों को अपने शस्त्रों से मिटा नहीं दिया?

रावण के ये वचन कहते ही, शूर्पणखा निर्झर के समान अश्रु बहाती हुई अपनी छाती पीटती हुई धरती पर लोट लोटकर रोने लगी और बोली—हे तात! हमारे वे बन्धु भी शीघ्र उन (मनुष्यों) के द्वारा ध्वस्त हो गये। फिर सिर पर हाथ रखकर सारा वृत्तांत कहने लगी।

खर आदि वृषभ सदृश वीर मेरे मुँह से घटित वृत्तांत को सुनकर अपनी सारी सेना को लेकर बड़े कोलाहल के साथ वहाँ गये और सूर्य किरणों का स्पर्श पाकर विकसित कमल की समता करनेवाले अरुण नयनों से शोभित राम नामक वीर के धनुष से तीन घड़ी के अन्दर ही वे स्वर्ग में जा पहुँचे—यों शूर्पणखा ने कहा।

उसके भाई (खर और दूषण) एकाकी राम के साथ के युद्ध में अपनी विजय माला भूषित सेना के साथ मारे गये—यह वचन उसके कानों में पहुँचने के पूर्व ही रावण की विशाल आँखें वज्र और जलधारा को गिरानेवाले मेघ के समान अश्रुओं के साथ अग्निकण उगलने लगीं।

उस समय रावण के मन में जो क्रोध उत्पन्न हुआ, उसमें दबकर उसका दुःख, अग्नि में पड़े घृत के जैसा काम करने लगा। उसने प्रश्न किया—वे मनुष्य तुम्हारी नाक और कान काटें—ऐसा तुमने कौन सा अपराध किया?

शूर्पणखा ने उत्तर दिया—किसी के द्वारा चित्रित करने के लिए असंभव रूपवाले उस (राम) के साथ (एक स्त्री आई हुई है वह) कमल के आवास को छोड़कर आई हुई लक्ष्मी के समान है, बिजली के तुल्य कटि से शोभित है, बाँस के जैसे कोमल कंधोंवाली है एवं स्वर्ण के रंग की देहवाली है। उस नारी के निकट मैं गई थी, बस इतना ही मेरा अपराध था।

यह सुनकर रावण ने पूछा—वह नारी कौन है? तब उस राक्षसी ने कहा—हे प्रभु! उस नारी का जघन तट चक्रवाला रथ है, उसके स्तन रक्त स्वर्ण के कलश हैं, जिनपर इंगुदिक धातु के संपुट लगे हैं, यह भूमि का बड़ा सौभाग्य है कि उस नारी के पद तल का स्पर्श उसे मिला है। अहो! उसका नाम सीता है।—यों कहकर शूर्पणखा सीता के रूप का वर्णन करने लगी।

उसकी वाणी भ्रमरों की गुंजार तथा मधु के समान रस भरी है, उसके केशपाश मधुपूर्ण पुष्पों से सुवासित हैं। अप्सराओं के लिए भी पूजनीय, कमल में निवास करनेवाली सुन्दरी लक्ष्मी उसकी दासी बनने के लिए भी योग्य नहीं है। यह कहना भी कि हम उसके सौन्दर्य का वर्णन करेंगे अज्ञान का कार्य होगा।

हे प्रभु! अपनी वाणी को अमृत से भर भरकर लानेवाली (अर्थात्, अमृत समान

मीठी बोलीवाली) उस नारी के अलक, मेघ समान है। सुसज्जित केश पाश, झुके हुए सजल घन की समता करते हैं। उसकी उँगलियाँ, रक्त प्रवाल के तुल्य है। उसका वदन, यद्यपि निर्दोष कमल पुष्प के परिमाण का है, तथापि उसके नयन समुद्र से भी अधिक विशाल हैं।

'मन्मथ शिव के नेत्र की अग्नि से जल गया'—यह कथन सत्य नहीं है। सत्य बात तो यह है कि उस मन्मथ ने, स्वाभाविक सुगंधि से भरे केश पाशवाली उस सीता को देखा, किन्तु उसके सौंदर्य को अपनाने में असमर्थ रहा, जिससे अवर्णनीय पीडा से दु खी होकर उसका शरीर क्षीण हो गया, इसीलिए वह अनंग बन गया।

हमारे शत्रु देवों के लोक में जाकर ढूँढो, फनवाले नागों के लोक में जाकर ढूँढो, कहीं भी वैसी रूपवती नहीं मिलेगी। लुहार की गरम भट्ठी में तपाकर बनाये गये बरछे और करवाल को भी परास्त करनेवाले नयनों से शोभित वह नारी इसी धरती पर है, किन्तु किसी के लिए भी उसका चित्र अंकित करना असंभव है।

क्या मैं उसके कंधों की सुन्दरता का वर्णन करूँ? या उसके उज्ज्वल मुख पर स्पंदित होनेवाले मीनों (अर्थात्, नयनों) का वर्णन करूँ? या अन्य अति मनोहर अंगों का वर्णन करूँ? मैं पुन पुन चकित रह जाती हूँ किन्तु उसका वर्णन नहीं कर पाती हूँ। तुम तो कल स्वयं ही उसे देखनेवाले हो तो फिर मैं क्यों तुमसे उसका वर्णन करके बताऊ।

यदि यह कहें कि उसकी भौहें धनुष के समान हैं, उसके नेत्र बरछे के समान हैं, उसके दाँत मोतियों के समान हैं, उसका अधर प्रवाल के समान है, तो यह केवल कथन मात्र होगा। वास्तव में ये सब उपमान उसके अवयवों के योग्य नहीं हैं। अत, कहने योग्य उपमान कुछ भी नहीं है। इस प्रकार का उपमान देने की अपेक्षा तो यही कहना अधिक संगत होगा कि धान धान के समान ही है (अर्थात्, धान की उपमा धान से ही दी जा सकती है।)

हे प्रभु, इन्द्र ने शची देवी को पाया है। षण्मुख (कार्त्तिकेय) के पिता (शिव) ने उमा को पाया है। कमलनयन (विष्णु) ने सुन्दर लक्ष्मी को पाया है। यदि तुम सीता को पा लोगे, तो फिर वे (इन्द्र, शिव और विष्णु) तुम से छोटे रह जायेंगे। इससे तुम्हारा महत्त्व उनसे अधिक बढ़ जायगा।

गगनान्नत कंधावाले हे वीर! एक (अर्थात्, शिव) ने (अपनी देवी को) अर्धाङ्ग में रख लिया, एक (विष्णु) ने कमलभव लक्ष्मी को अपने वक्ष पर रख लिया। ब्रह्मा ने वाणी देवी को अपनी जिह्वा पर रख लिया, यदि तुम घन की विद्युत् को परास्त करनेवाली सूक्ष्म कटि से शोभित उस सीता को पाओगे, तो उसे कहाँ रखोगे? (भाव यह है—सीता तुम्हारे लिए शिर पर धारण करने योग्य है।)

हे प्रभु! हे सरदार! शिशु की सी मधुर बोलीवाली उस सीता को पाने पर तुम कुछ भी कमी का अनुभव नहीं करोगे। तुम अपनी इस संपत्ति को, जिसे दूसरों पर लुटा रहे हो, उसी को दे दोगे। मैं तुम्हारा हित करनेवाली हूँ, किन्तु तुम्हारे अन्त पुर में रहनेवाली शुक की सी बोलीवाली सब युवतियों का अहित अवश्य कर रही हूँ।

रथ तुल्य जघन तट से शोभित वह सीता देवलोक में या अन्य लोक में किसी कंचुक-बद्ध स्तनवाली स्त्री के गर्भ से उत्पन्न नहीं है। पूर्वकाल में शंख के समान श्वेत जलवाले समुद्र ने देवासुरों के द्वारा मथे जाने पर प्रफुल्ल कमल में आसीन लक्ष्मी को उत्पन्न किया था। अब भूमि, उस लक्ष्मी को भी परास्त करनेवाली सीता को देकर धन्य हुई है।

मीनकेतन के आनन्द को बढ़ाते हुए, समस्त की प्रशंसा का पात्र बनते हुए, भ्रमरों से आवासित पुष्पों से विभूषित कुन्तलोंवाली तथा सूक्ष्म कटिवाली सीता को तुम अपना स्वत्व बना लो और अपने पराक्रम का प्रदर्शन करके राम को मेरे वश में कर दो।

हे मेरे प्रभु! यद्यपि भाग्य हमें (जीवन के) फल प्रदान करता है, तो भी महान् तपस्वियों को भी वे फल समय पर ही प्राप्त होते हैं। उनके पूर्व नहीं मिलते हैं। दस मुख, बीस नयन, बीस हाथ, सुन्दर रूप और मनोहर वक्ष से शोभायमान तुम भी आगे चल कर ही बड़ा गौरव प्राप्त करनेवाले हो।

इस प्रकार की सीता को तुम्हारे पास पहुँचाने के विचार से मैं उसके निकट गई तब उस राम के भाई ने बीच में पड़कर चमकते हुए कटार से मेरी नाक काट दी। मेरा जीवन तो तभी समाप्त हो गया। फिर भी इस विचार से कि तुम्हारे सम्मुख आकर सारा वृत्तांत बताने के पश्चात् ही अपने प्राण त्याग करूँगी, यहाँ आई हूँ, यों शूर्पणखा ने कहा।

(शूर्पणखा के वचन सुनते ही रावण के मन में) क्रोध, वीरता, अभिमान के कारण उत्पन्न ताप—ये सब इसी प्रकार मिट गये, जिस प्रकार पाप के रहने के स्थान से धर्म मिट जाता है और जिस प्रकार एक दीप, दूसरे दीप के स्पर्श से प्रज्वलित होता है। उसी प्रकार रावण के मन में काम व्याधि और उससे उत्पन्न होनेवाले ताप ने घर कर लिया।

रावण खर को भूल गया, अपनी बहन की नाक को काटनेवाले वीर के पराक्रम को भूल गया, उससे उत्पन्न अपने अपयश को भूल गया। शिव को जीतनेवाले मन्मथ के बाणों के प्रभाव के कारण वह पूर्वकाल में प्राप्त अपने वरों को भी भूल गया। किन्तु सीता, जिसके रूप के विषय में उसने अभी सुना था, उसको नहीं भूल सका।

सूक्ष्म कटिवाली सीता का नाम और रावण का मन दोनों एक होकर रह गये। अब सीता के अतिरिक्त अन्य किसी विषय के बारे में सोचने के लिए भी उसके पास दूसरा मन कहाँ था? सीता को भूलने का कोई उपाय ही उसके पास नहीं था। पढ़े लिखे व्यक्ति भी जबतक आत्म ज्ञान नहीं प्राप्त करते, तबतक वे काम को कैसे जीत सकते हैं?

उन्नत प्राचीरवाली लंका का अधिपति कलापी तुल्य रूपवाली सीता का हरण करके बंदी बनाने के पूर्व ही उसको अपने मन रूपी कारागार में बंदी बना लिया। धूप के स्पर्श से मक्खन जैसे पिघलता है, उसी प्रकार शूलधारी रावण का हृदय धीरे धीरे पिघलने लगा।

विधि की विडंबना के कारण, भावी की प्रबलता के कारण एवं उस लंका का विनाश निकट आने के कारण रावण की काम व्याधि उसकी सब इन्द्रियों में उसी प्रकार व्याप्त हो गई, जिस प्रकार विद्याविहीन मूढ़ व्यक्ति का छिपकर किया हुआ कोई पाप-कर्म सबपर प्रकट हो जाता है।

स्वणमय सुन्दरी (सीता) क उसके मन म प्रविष्ट होने स, या रावण के लघुत्व को प्राप्त होने से, न जाने किस कारण से अब मन्मथ भी उस (रावण) पर बाण छोडकर उसे पीडित करने म समर्थ हुआ। सब पराक्रम को हर लेने की शक्ति काम म होती है न?

उस समय, रावण अपने आसन से उठा। सब लोको के निवासी जय ध्वनि कर उठे, सर्वत्र शख बज उठे, पुष्प की वर्षा हुई, आसपास खडे लोग हट हटकर मार्ग देने लगे। यो वह (रावण) अधिकाधिक शिथिल होनेवाले मन के साथ स्वणमय प्रासाद के भीतर गया।

पालियो के समूह को हटाकर, वह एकाकी एक पुष्पमय विशाल पर्यंक पर जा पहुँचा, तब कस्तूरी की सुगन्धि से युक्त केशोवाली सीता के नयनो और कुचो का ध्यान अधिकाधिक उसके मन म ताप बढाने लगा।

अवारणीय काम पीडा उसके मन मे अत्यधिक मात्रा म बढ गई। इसस सुरभित मद पवन से लाये गये हिम तुषारो से पूर्ण, कोमल शय्या के पुष्प झुलस गये। अष्ट दिग्गजो को जीतनेवाली भुजाओ से युक्त उस रावण की देह झुलस गई। उसका मन विह्वल हो गया और उसके प्राण तडप उठे।

(दासियाँ) शीतल चदन, मनोहर तथा कोमल पल्लव और मकरन्दपूर्ण पुष्प आदि को लेकर उसके समीप आई, पर उन उपचारो से उसकी देह यो तप्त हो उठी, जैसे उसे आँच ही दिखाइ गई हो। आग को भडकानेवाली भाथी के जैसे वह श्वास भरता हुआ शिथिल हो गया।

वह अपने मन को स्थिर नही कर सका। पर नारी गमन को पाप न समझता हुआ और निरतर सीता का ध्यान करता हुआ, वह रावण आम का टिकोरा, नीलकमल, बरछा आदि के जैसे नयनोवाली सीता के रूप को देखने की उमडती हुई इच्छा के कारण अत्यन्त व्याकुलप्राण होकर पीडित हुआ।

वह रावण, जिसने भारी दिशाओ का वहन करनेवाले बलशाली दिग्गजो की सूँडो के दाना ओर उगे हुए दाँतो को तोडकर उन्हे पराजित किया था, अब काठ को छेदनेवाले भ्रमर के जैसे मन्मथ के बाणो से उसके वक्ष को छेदने के कारण, अत्यन्त पीडित होकर शिथिल पडा रहा।

कानूरे (नामक वृक्ष के) फल के समान (काले) केशोवाली सुन्दरी मेरे हृदय म आ बसी है। मैने उसे देख लिया।' यो कहता हुआ वह (रावण) अस्वस्थ और पीडित हो पडा रहा। तब सुरभित पुष्पमालाधारी मन्मथ के बाणो के समान मल्लिका पुष्प की गध स युक्त मद पवन उसपर आकर लगा, जिसस वह विक्षुब्ध हो उठा।

पीडित चित्तवाला रावण, उस समय, वहाँ से उठकर, यह न जानते हुए कि क्या करना उचित है, एक उद्यान की ओर चला और वीणा को परास्त करनेवाली मधुरवाणी से युक्त, लक्ष्मी सदृश अनेक रमणियाँ, दीपो की पक्तियाँ लेकर उसके आगे आगे चली।

उस उद्यान म पनस वृक्ष माणिक्यमय थे, कदली वृक्ष मरकतमय थे, मधुर आम्र के वृक्ष हीरकमय थे, 'वेगै' नामक वृक्ष उत्तम स्वर्णमय थे, 'कोगु' नामक वृक्ष पद्मरागमय थे।

अमुक वृक्ष दूर तक काति बिखेरनेवाल इन्द्रनील रत्नमय थ नारिकल वृक्ष रत्नमय । पुन्नाग वृक्ष स्फटिकमय थ और पाटल वृक्ष प्रवालमय थ।

गगनान्नत तथा उज्ज्वल रत्नमय वृक्ष इस प्रकार घने होकर फैल थ कि नभ म चमकनेवाले नक्षत्र भी वहाँ के विविध पुष्पो का पृथक् पृथक् करके पहचान नही पाते थ। ऐसे मधु वर्षा करनेवाल उस उद्यान के मध्य अरुण स्वर्णमय मडप म रख गए जैसे श्वेत पलक पर वह (रावण) जा पडा और बहुत पीडित हुआ।

फलो और पुष्पो के मधु को पीकर मत्त रहनेवाल पक्षी, रमणियो की सी मीठी बोलीवाले शुक, कोकिल, भ्रमर एव मधुर गान करनेवाले अन्य सब प्रकार के पक्षी यह सोचकर कि उनकी ध्वनि से लकाधिपति क्रुद्ध होगा, मौन होकर गूँगे के जैसे हो रहे।

उत्तरी वायु, उस ऋतु के लिए उचित रूप म शीतल ओसकणो को लेकर आइ और मन्मथ के बाणो से विद्ध (रावण के) क्षता म आ लगी जिसस वह क्रुद्ध होकर चिल्ला उठा कि यह कैसी ऋतु चल रही है। शिशिर ऋतु तुरन्त भयभीत होकर वहाँ स हट गइ और वसन्त ऋतु आ पहुँची।

जो शिशिर बडे बडे वृक्षो तथा दावाग्नि से आवृत पर्वता को भी ठडा कर देता है, वह भी रावण के लिए तापजनक हो गया, तो वसन्त के बारे म क्या कहा जाय? काम व्याधि को शान्त करनेवाली ओषधि भी कहा होती है? सुख और दुःख मन की दशा पर ही तो आधृत रहते हैं?

रावण के मन की काम व्याधि को वसन्त ने इस प्रकार भडका दिया कि उसका ताप दिगता तक व्याप्त हो गया। तब उसने आज्ञा दी—यह कौन सी ऋतु है? इससे तो पहले का शिशिर ही अच्छा था। अब इस ऋतु को हटाओ और शरद् ऋतु को ले आओ।

जब शरद् आया, तब उसके पुष्ट कध तपने लगे। तब उसने कहा—क्या शरद् ऋतु भी तपानेवाली होती है? यह तो पहले की शिशिर ऋतु ही विदित होती है। तब दासियो ने निवेदन किया—हे प्रभु! हम आपकी आज्ञा के विरुद्ध कुछ नही करते हैं। इसपर रावण ने आज्ञा दी कि सब ऋतुओ को अब यहाँ से दूर हटा दो।

रावण के यह आज्ञा करते ही सब ऋतुएँ अपने अपने व्यापार का छोडकर योगी के समान ससार के सबन्ध से मुक्त होकर, हट चली। फिर सारा ससार दुष्कर तपस्या की साधना से कर्म बधन को तोडकर प्राप्त किये जानेवाल मुक्ति लोक के जैसे दिखाई पडने लगा।

समुद्र से आवृत धरती म शीतलता और उष्णता दोनो नही रह। किंतु, रावण की नीलवर्ण देह, बिना तेल के ही, दीप के समान जलती रही। केवल समय के परिवर्त्तन से कोई कार्य नही होता। काम से उत्पन्न तीक्ष्ण ताप, शील से ही बुझाइ जा सकती है। उसका उपशमन अन्य किसी उपाय से सभव नही होता।

जल से पूर्ण मेघ, कोमल कमल के भीतर के दल, कस्तूरी मिलित चदन रस, पल्लव, मृदुल पुष्प रज, मोती—इन सबका स्पर्श पाकर उसकी देह जलने लगी, जिससे वह

स्वर्णमय सुन्दरी (सीता) के उसके मन में प्रविष्ट होने से, या रावण के लघुत्व को प्राप्त होने से, न जाने किस कारण से अब मन्मथ भी उस (रावण) पर बाण छोड़कर उसे पीड़ित करने में समर्थ हुआ। सब पराक्रम को हर लेने की शक्ति काम में होती है न?

उस समय, रावण अपने आसन से उठा। सप्त लोकों के निवासी जय ध्वनि कर उठे, सर्वत्र शंख बज उठे, पुष्प की वर्षा हुई, आसपास खड़े लोग हट हटकर मार्ग देने लगे। यों वह (रावण) अधिकाधिक शिथिल होनेवाले मन के साथ स्वर्णमय प्रासाद के भीतर गया।

पत्नियों के समूह को हटाकर, वह एकाकी एक पुष्पमय विशाल पर्यंक पर जा पहुँचा, तब कस्तूरी की सुगन्धि से युक्त केशोंवाली सीता के नयनों और कुचों का ध्यान अधिकाधिक उसके मन में ताप बढ़ाने लगा।

अवारणीय काम पीड़ा उसके मन में अत्यधिक मात्रा में बढ़ गई। इससे सुरभित मंद पवन से लाये गये हिम तुषारों से पूर्ण, कोमल शय्या के पुष्प झुलस गये। अष्ट दिग्गजों को जीतनेवाली भुजाओं से युक्त उस रावण की देह झुलस गई। उसका मन विह्वल हो गया और उसके प्राण तड़प उठे।

(दासियाँ) शीतल चंदन, मनोहर तथा कोमल पल्लव और मकरन्दपूर्ण पुष्प आदि को लेकर उसके समीप आई, पर उन उपचारों से उसकी देह यों तप्त हो उठी, जैसे उसे आँच ही दिखाई गई हो। आग को भड़कानेवाली भाथी के जैसे वह श्वास भरता हुआ शिथिल हो गया।

वह अपने मन को स्थिर नहीं कर सका। पर नारी गमन को पाप न समझता हुआ और निरंतर सीता का ध्यान करता हुआ, वह रावण आम का टिकोरा, नीलकमल, बरछा आदि के जैसे नयनोंवाली सीता के रूप को देखने की उमड़ती हुई इच्छा के कारण अत्यन्त व्याकुलप्राण होकर पीड़ित हुआ।

वह रावण, जिसने भारी दिशाओं का वहन करनेवाले बलशाली दिग्गजों की सूँडों के दोनों ओर उगे हुए दाँतों को तोड़कर उन्हें पराजित किया था, अब काठ को छेदनेवाले भ्रमर के जैसे मन्मथ के बाणों से उसके वक्ष को छेदने के कारण, अत्यन्त पीड़ित होकर शिथिल पड़ा रहा।

कानूरे (नामक वृक्ष के) फल के समान (काले) केशोंवाली सुन्दरी मेरे हृदय में आ बसी है। मैंने उसे देख लिया।' यों कहता हुआ वह (रावण) अस्वस्थ और पीड़ित हो पड़ा रहा। तब सुरभित पुष्पमालाधारी मन्मथ के बाणों के समान मल्लिका पुष्प की गंध से युक्त मंद पवन उसपर आकर लगा, जिससे वह विक्षुब्ध हो उठा।

पीड़ित चित्तवाला रावण, उस समय, वहाँ से उठकर, यह न जानते हुए कि क्या करना उचित है, एक उद्यान की ओर चला और वीणा को परास्त करनेवाली मधुरवाणी से युक्त, लक्ष्मी सदृश अनेक रमणियाँ, दीपों की पंक्तियाँ लेकर उसके आगे आगे चलीं।

उस उद्यान में पनस वृक्ष माणिक्यमय थे, कदली वृक्ष मरकतमय थे, मधुर आम्र के वृक्ष हीरकमय थे, 'वेंगै' नामक वृक्ष उत्तम स्वर्णमय थे, 'कोंगु' नामक वृक्ष पद्मरागमय थे।

त्रमुक वृक्ष दूर तक कांति बिखेरनेवाले इन्द्रनील रत्नमय . नारिकेल वृक्ष रजतमय थे पुन्नाग वृक्ष स्फटिकमय थे और पाटल वृक्ष प्रवालमय थे।

गगनान्नत तथा उज्ज्वल रत्नमय वृक्ष इस प्रकार घने होकर फैले थे कि नभ मे चमकनेवाले नक्षत्र भी वहाँ के विविध पुष्पो का पृथक् पृथक् करके पहचान नही पाते थे। ऐसे मधु वर्षा करनेवाले उस उद्यान के मध्य अरुण स्वर्णमय मडप मे रखे गये जैसे श्वेत पर्यंक पर वह (रावण) जा पडा और बहुत पीडित हुआ।

फलो और पुष्पो के मधु को पीकर मत्त रहनेवाले पक्षी रमणियो की सी मीठी बोलीवाले शुक, कोकिल, भ्रमर एव मधुर गान करनेवाले अन्य सब प्रकार के पक्षी यह सोचकर कि उनकी ध्वनि से लकाधिपति क्रुद्ध होगा, मौन होकर गूँगे के जैसे हो रहे।

उत्तरी वायु, उस ऋतु के लिए उचित रूप से शीतल जलकणो को लेकर आई और मन्मथ के बाणो से विद्ध (रावण के) छाती मे आ लगी जिससे वह क्रुद्ध होकर चिल्ला उठा कि यह कैसी ऋतु चल रही है। शिशिर ऋतु तुरन्त भयभीत होकर वहाँ से हट गई और वसन्त ऋतु आ पहुँची।

जो शिशिर बडे बडे वृक्षो तथा दावाग्नि से आवृत पर्वतो को भी ठडा कर देता है, वह भी रावण के लिए तापजनक हो गया, तो वसन्त के बारे मे क्या कहा जाय? काम व्याधि को शान्त करनेवाली ओषधि भी कहा होती है? सुख और दु ख मन की दशा पर ही तो आश्रित रहते हैं?

रावण के मन की काम व्याधि को वसन्त ने इस प्रकार भडका दिया कि उसका ताप दिगंत तक व्याप्त हो गया। तब उसने आज्ञा दी—यह कौन सी ऋतु है? इससे तो पहले का शिशिर ही अच्छा था। अब इस ऋतु को हटाओ और शरद् ऋतु को ले आओ।

जब शरद् आया, तब उसके पुष्ट कच तपने लगे। तब उसने कहा—क्या शरद् ऋतु भी तपानेवाली होती है? यह तो पहले की शिशिर ऋतु ही विन्ति होती है। तब दासियो ने निवेदन किया—हे प्रभु! हम आपकी आज्ञा के विरुद्ध कुछ नही करते हैं। इसपर रावण ने आज्ञा दी कि सब ऋतुओ को अब यहाँ से दूर हटा दो।

रावण के यह आज्ञा करते ही सब ऋतुएँ अपने अपने व्यापार को छोडकर योगी के समान ससार के सबन्ध से मुक्त होकर, हट चली। फिर सारा ससार दुष्कर तपस्या की साधना से कर्म बधन को तोडकर प्राप्त किये जानेवाले मुक्ति लोक के जैसे दिखाई पडने लगा।

समुद्र से आवृत धरती मे शीतलता और उष्णता दोनो नही रहे। किंतु, रावण की नीलवर्ण देह, बिना तेल के ही, दीप के समान जलती रही। केवल समय के परिवर्तन मे कोई कार्य नही होता। काम से उत्पन्न तीक्ष्ण ताप, शील से ही बुझाई जा सकती है उसका उपशमन अन्य किसी उपाय से सभव नही होता।

जल से पूर्ण मेघ, कोमल कमल के भीतर के दल, कस्तूरी मिलित चदन रस, पल्लव, मृदुल पुष्प रज, मोती—इन सबका स्पर्श पाकर उसकी देह जलने लगी, जिससे वह

अत्यन्त शिथिल हो गया। तब उसने अपने परिजनो को आज्ञा दी कि तुमलोग जाकर शीघ्र चद्रमा को ले आओ, क्योकि लोग कहते ह कि वह शीतल होता है।

परिजनो ने जाकर उस पूर्णचद्र से, जो दारुण क्रोधवाले राक्षस (रावण) के द्वारा शासित उस विशाल लकापुरी के ऊपर जाने स भी डरता था, कहा कि—डरो नही, शीघ्र आओ। राजा तुझे बुला रहा है। इसपर चद्र अपने मन की अधीरता को छोडकर आकर प्रकट हुआ।

युद्ध म परास्त होकर वैर को छिपाकर दबे रहनेवाले लोग, अपने शत्रु के कमजोर पडने पर जिस प्रकार उस (शत्रु) को सताने के लिए आगे बढ जात ह, उसी प्रकार मडलाकार चद्र रावण के प्राणो के लिए यम जैसा बनकर, सूक्ष्म सिकता से युक्त जल भरे समुद्र से उदित हुआ।

चद्रमा, अपनी अवर्णनीय किरणो को सब दिशाओं म फैलाकर ऊपर उठा और स्वर्ग तथा धरती के निवासियो म से किसी के लिए भी प्रिय न होनेवाले उस रावण को सताता हुआ (वह चद्र) इस प्रकार दिखाइ पडा, जैसे आदिशेष पर शयन करनेवाले विष्णु के द्वारा रावण के वध के लिए भेजा गया चक्रायुध ही हो।

क्षीर सागर के अमृत को छक छककर पान करनेवाला चद्रमा, अपनी शीतल किरणो के समुदाय को चारो ओर व्याप्त करने लगा। वह चद्रिका टेढी भौहो और लाल आँखोवाले रावण को ऐसी लगी, जैसे आग म पिघली हुई चाँदी भर भरकर चारों ओर छिडकी जा रही हो।

चद्र किरणे, जो धरती पर सचरण करनेवाली बिजली सी लगती थी, लाल धान के मनोहर खेतो से आवृत मिथिला नगर के राजा की पुत्री के सौदर्य का वर्णन सुनकर विरह पीडा से तप्त होनेवाले रावण को उसी प्रकार जलाने लगी, जिस प्रकार कभी पराजित न होनेवाले शत्रु की कीर्त्ति किसी वीर को जलाती है।

वीर ककणधारी यम भी जिसको देखकर भयभीत होता है, उस रावण ने पूछा—मैंने कहा था कि शीतल किरणोवाले चद्र को ले आओ, तो जलानेवाली आग और दारुण विष म बुझी हुई तपती किरणो स युक्त सूर्य को कौन ले आया?

उस समय, कुछ दासो ने भय के साथ निवेदन किया—हे प्रभु! यह कथन सत्य नही है कि जिसे लाने की आज्ञा नही हुइ थी, उसे हम लाये है। अरुण किरणवाला सूर्य सदा रथ पर ही आता है। यह चद्रमा यद्यपि आपको उष्ण किरण सा लगता है, तो भी विमान पर ही आरूढ है।

सर्प के फन से जमे जघन तट तथा शीतल वचनो से युक्त रमणियो के प्रति होने वाले प्रेम की वेदना को उस (रावण) ने इससे पहले कभी नही जाना था। वह अब चद्रमा से अत्यन्त पीडित हुआ। अब उसे ज्ञात हुआ कि शीतल और मनोहर कमल पुष्पो का शत्रु चद्रमा, यही है। फिर, उस चद्र से प्रार्थना करने लगा कि हे चद्र! तू मेरे प्राणों को ला दे।

रावण कहने लगा—हे नक्षत्रों के पति! तू क्षीण होता है। तेरा शरीर श्वेत

पड गया है। [illegible] अन्त [illegible] गया [illegible] मदन [illegible]—ईतना—छेडकर तू तप रहा है, क्या तू भी अकेला रहता है और किसी सुन्दरी को देखे हुए व्यक्ति ने उस (सुन्दरी) के सौन्दर्य की चर्चा सुनी है? (विरह या विरह में पीडित [illegible])। मेरे हृदय में पुष्पबाण [illegible] लगे हैं। उनसे मेरी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है। अब मेरे प्राणों को कौन बचायेगा?

मेरे प्राणों के लिए यम बने हुए उत्तम कन्यारत्न उस सीता के दो कुवलय जैसे शोभायमान कमल (जैसे वदन) से तू पराजित हो गया है। इसीलिए तू काला पड गया है, क्षीण हो गया है और तम [illegible] उठा है। यदि शत्रु की सम्पत्ति को देखकर ही इस प्रकार मिट गये, तो तू विजय कैसे पा सकता है? बुद्धिमान् व्यक्ति (शत्रु के हराने के) पराक्रम से रहित होते हैं, तो विवेक से अपने ऊपर संयम रखते हैं।

इस प्रकार अनेक वचन कहकर वह पीडित होता रहा। फिर उसने पारषदों को आज्ञा दी कि इस चन्द्र को रात्रि सहित यहाँ से हटा दो और सूर्य को दिन सहित ले आओ। उसके यह कहने के पूर्व ही उपेक्षित चन्द्रमा और रात्रिकाल हट गये। एक क्षण काल में ही अवर्णनीय सूर्य तथा दिन का समय आ पहुँचा।

वेद की ऋचाओं को जाननेवाले (ब्राह्मण) अग्नि में घृत डालकर जब होम करते हैं, तब जिस प्रकार वह अग्नि प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार पिघले हुए ताँबे के जैसी किरणों वाला सूर्य प्रकाशमान हुआ। उससे रक्त कमल विकसित हुए। सूर्य के आगमन से रक्त कुमुद देखकर निर्जीव से हो गये। वे उन क्षुद्र व्यक्तियों के जैसे थे, जिन्होंने अपने लिए अयोग्य उत्तम पदार्थों को प्राप्त कर उससे गर्वित होकर फिर उन्हें खो दिया हो।

विश्व के आभरण जैसे रहनेवाला सूर्य एक दिशा में आकर प्रकट हुआ, तो चन्द्रमा लज्जित हो, कांतिहीन हो काँपता हुआ और अपनी पत्नी—रात्रि द्वारा अनुसृत होता हुआ, दूसरी दिशा में गगन से [illegible] हट चला। वह उस क्षुद्र राजा के समान था जो किसी यशस्वी तथा पराक्रमी शासक की आज्ञा से अपने स्थान को छोडकर चला जाता है।

विविध कर्णाभरणों से भूषित जो राक्षस सुन्दरियाँ पुष्प पर्यंकों पर अपने पतियों के समागम का सुख उठाती हुई प्रणय कलह में क्रुद्ध हो गई थीं, अब हठात् रात्रि के हट जाने पर भी उस बात को न जानकर स्वप्न में भी मान करती हुई (निद्रित) पडी रहीं।

कुछ राक्षस स्त्रियाँ अर्धरात्रि में ही हठात् रात्रि के समाप्त हो जाने के कारण मुमूर्षु प्राण सी हो गईं, थरथराती हुई काँप उठीं और उनकी आँखों से आँसू इस प्रकार बह चले, जिस प्रकार प्रफुल्ल नीलोत्पल से मधुबिंदु बह चलते हैं।

कुछ राक्षस स्त्रियाँ, जो रूई के कोमल पर्यंक पर काम सुख का आनन्द प्राप्त कर चुकी थीं, वृक्ष की पुष्ट शाखा से लिपटी हुई लताओं के समान, अपने प्राण पतियों के पुष्प सदृश दोनों बाहों द्वारा दृढता से बँधी हुई, निद्रित पडी थीं।

उत्तम मत्तगज, जो उनके कुंभों पर गुंजार भरते हुए मंडरानेवाले भ्रमरों के झुंड को और उज्ज्वल सूर्य प्रकाश को न जानते हुए सोये पडे थे उन मद्यपों के समान ये कोमल शय्या पर प्रज्ञाहीन होकर निद्राग्रस्त रहते हैं।

जिस प्रकार कुल नारियाँ, विद्या बुद्धि से युक्त अपने प्रियतमो से वियुक्त होकर कातिहीन हो जाती हैं, उसी प्रकार, वहाँ के प्रासादो मे रखे हुए दीप, तेल के न घटने पर भी, निष्प्रभ हो गये।

प्रभात काल मे विकसित होनेवाले पुष्प, उनके सुन्दर दलो को खोलनेवाले सूर्योदय के होने पर भी, प्रफुल्ल न होकर, विशाल पर्यंक पर सोई हुई सुन्दरी के बन्द नयनो के जैसे बद पडे रहे।

सब लोग गहरी निद्रा मे सो रहे थे। अत, उनकी आँखे सचमुच प्रभात होने पर भी नही खुली। वे आँखे किसी को भिक्षा देने का विचार न करनेवाले लोभियो के बडे घरो के दरवाजो के समान बद थी।

चक्रवाक दिन के निकल आने से विष सदृश वियोग पीडा से मुक्त हुए और कठोर कारावास से मुक्ति पानेवाले अपराधी के हृदय के समान आनद मे भर गये।

चन्द्र के कर स्पर्श के अतिरिक्त अन्य किसी भी उपाय से विकसित न होनेवाले पुष्पो की ओर सगीत गानेवाले भ्रमर झपटे थे। लेकिन (इतने मे चन्द्र के अस्त होकर सूर्य के उदित हो जाने से, उन बद हुए पुष्पो से निकट) कला की महत्ता को नही जाननेवाले लोगो के दरवाजे पर दु खी होकर खडे रहनेवाले भाट लोगो के समान वे भ्रमर दु खी होकर रह गये।

सूर्य की उष्ण किरण, अपूर्व रत्नो से जटित वातायनो के मार्ग से (प्रासादों के) भीतर पहुँचकर निद्रा मग्न सुन्दरियो को जगाने लगी। किन्तु, वे (स्त्रियाँ) सत्य को स्पष्ट न जाननेवाले लोगो के समान, तद्रा और जागरण की मिश्रित दशा मे पडी रही।

रावण की कठोर आज्ञा से परिचय न रखनेवाले विद्वान, जो ज्यौतिष शास्त्र लिख रखा था, उसे भली भाति जानकर कुछ गणित शास्त्र मे कुशल व्यक्ति अभी तक सोये पडे थे। (प्रभात काल मे) टेर लगानेवाले कुक्कुट भी सो रहे थे।

ससार मे इस प्रकार के व्यापार हो उठे थे। ऐसे समय मे शब्दायमान वीर ककणधारी रावण ने आँख उठाकर सूर्य को देखा और बोला—यह (सूर्य) उसका ध्यान करनेवाले के मन को भी तपाता है। अत, पहले यहाँ आकर जिस चन्द्र ने हमको तपाया था, यह भी वही है।

तब कुछ दासो ने निवेदन किया—हे ईश। यह चन्द्र नही है। यह अरुण किरणवाला सूर्य ही है। देखिए, इसके रथ मे दीर्घ केसरोवाले मनोहर हरित अश्व जुते हैं। उष्ण किरणवाला सूर्य शरीर को तपाता है। किंतु, शीतल रहनेवाला चन्द्र नही तपाता।

शिखरो से शोभित नील पर्वत के जैसे रावण ने उन (दासो) से कहा कि यह सूर्य विष से अधिक दारुण है। अत, इसे यहाँ से हटा दो। समुद्र के गर्जन को भी बन्द कर दो और सध्या वेला में, पश्चिम दिशा मे, प्रकट होनेवाली चन्द्र कला को शीघ्र ले आओ।

राक्षस राज ने यह वचन कहा। यह कहते ही, षोडश कलाओ से शोभायमान

चन्द्र तुर त न्ता या का चन्द्र बनकर एक ओर प्रकट हुआ। अब कहा ना स्ना प्रभावश ली रहनेवाली तपस्या स बढकर य र काम हमरा कौन सा ह ?[1]

पश्चिम दिशा म उदित उस चद्रकला क दखकर, दूर गुणवाल रावण कहन लगा—यह (चद्रकला) वडवाग्नि ह बह न ता यह धरती का वहन करनेवाल शेषनाग का विष हन्त ह, अगर वह भी नहा ह त म जा काल मुझे मारने क लिए ही इस (चद्रकला रूपी) कटार का लेकर आया ह।

पूर्वकाल म जब शीतल तरगा स पूर्ण समुद्र न सारण विष उत्पन्न हुआ तब उस अपने कठ के भीतर रखनेवाल शिव न इस चद्रकला का भी पुष्प रज म पर्ण अपने जट जट म रख लिया था शायद वह इसी कारण म हागा कि यह (चद्र कला) भी विषमय ह।

वज्र के समान भयकर रूप म सचरण करत हुए जिस चद्र ने मर प्राण पी लिये थे, उससे उसका यह परिवर्त्तित लघु रूप कठ रता म कुछ कम नहा ह। दारुण कोप से भरे विषमय सर्प क बड आकार की अपेक्षा उस (सप) का छाटा रूप क्या अपन विष के प्रभाव म कुछ कम होता ह ?

(फिर, रावण कहने लगा) अति घोर अधकार का गुण कैसा हाता ह—यह भी देखे। इस चद्रकला से ता पूर्व आगत सूर्य ही अच्छा था। इस (चद्रकला) का शीघ्र हटा दो। पराक्रम म प्रसिद्ध रहनेवाले मुझ का ही यह (चद्रकला) तपाती ह ता अब यह कैसे कहा जा सकता ह कि सप्त लाको म कोई इसकी पीडा स बचकर जीवित रह सकता है ?

उस समय, उस चद्रकला क हट जात ही अधकार इतना घना होकर आ पहुँचा कि उसे छुआ जा सकता था। उसपर किसी भी वस्तु को रगडा जा सकता था। चाह तो कोइ उसे (अथात् अधकार का) खड्ग से काट सकता था या उसे (अधकार का) खराद पर चढाकर उसक खभे बनाकर रखा जा सकता था।

अब क्या यह कहा जाय कि उस अधकार का काठ की तरह काट काटकर टुकडे बनाकर फेका जा सकता था वह अधकार इतना काला था, जितना निर्दोष तत्त्वज्ञान रूपी प्रकाश के प्रविष्ट न हाने से अधा बनकर किंचित् भी दयाभाव स हीन (किसी अज्ञ व्यक्ति का) हृदय काला होता ह।

कही भी भिन्न न रहनेवाला (अथात्, अत्यन्त घना रहनेवाला) वह अधकार अतराल को सर्वत्र भरकर व्याप्त हुआ और सारी धरती का निगल लिया। तब रावण ने कहा—(शायद) विष को निगलनेवाले शिव ने यह न सोचकर कि यह (विष) सारे विश्व को मिटा देगा उसे उगल दिया है।

मैंने ठीक ठीक जान लिया ह कि यह (अधकार) समुद्र से उत्पन्न होकर शिवजी के द्वारा निगला गया विष नही है। यह, धरती आकाश आदि सब प्रदेशो को अपनी जिह्वाओ से चाटनेवाली प्रलयाग्नि ही है, जो काले हलाहल विष को पीकर स्वय कालीपड गइ ह।

१ भाव यह है—रावण न पूर्वकाल म बडी तपस्या की थी, जिसके परिणामस्वरूप चन्द्र-सूर्य आदि भी उसकी आज्ञा क पालक बन गए थ। अत, तपस्या ही सबसे उत्तम कार्य ह। —अनु

नाण और अग्नि भी जिसमे प्रवेश करके उसे भिन्न नही कर सकते, ऐसे इस अंधकार मे, मुझ विरह से पीडित होनेवाले एकाकी व्यक्ति के सम्मुख अपना उपमान न रखनेवाली एक प्रवाल लता (के सदृश सुदरी), अपने ऊपर काले मेघ को धारण किये, नारिकेल के कोमल फल युगल से शोभित होकर, एक चद्र को भी धारण किये हुए, दीपक के समान प्रकाशमान हो रही है।

यह क्या मेरे मोह से उत्पन्न भ्रम है ? या मेरा ज्ञान ही किसी कारण से अन्यथा हो गया है ? स्पष्ट ज्ञात नही होनेवाला यह आकार क्या है ? अजन का प्रवाह भी जिसकी समता नही कर सकता, ऐसे इस घने अधकार मे एक उज्ज्वल पूर्ण चद्र, दो कुडलो से शोभित होता हुआ, अति काले केशो के साथ मेरे सम्मुख आकर प्रकट हुआ है।

अपने दोनो पार्श्वों मे बढनेवाले स्तन युगल तथा जघन तट से सयुक्त होकर रहनेवाली कटि को हम नही देख पा रहे है। उसके अतिरिक्त अन्य सब अवयवो को हम देख रहे है। विषपूर्ण नयनोवाला यह आकार धीरे धीरे एक नारी बनकर मेरे मन मे प्रविष्ट हो रहा है।

चिरकाल से मै सप्त लोको की सुदरियो को देखता आ रहा हूँ, किन्तु उनमे इसके जैसे रूपवाली किसी स्त्री को कही नही देखा है। अवश्य यह अद्भुत रूपवती रमणी मेरी बहन शूर्पणखा के द्वारा बताई गई, भ्रमरो से आवृत केशोवाली, वह तरुणी (सीता) ही है।

मेरी इस विरह पीडा को जानकर कदाचित् वह (सीता) स्वय मुझे ढूँढती हुई यहाँ आ गई है। उसके इस उपकार का मै क्या प्रत्युपकार कर सकता हूँ ? दर्शन मधुर इस (सीता) को अपनी आँखो से शूर्पणखा ने देखा है। उसी से पूछकर मै अपने सदेह को दूर कर लूँगा (यही सीता है या नही—यह सदेह दूर करूँगा)। इस प्रकार, विचार कर रावण ने अपने दासो को आज्ञा दी कि वे उसे (अर्थात्, शूर्पणखा को) शीघ्र वहाँ बुला लावे।

रावण की यह आज्ञा सुनते ही परिजन शीघ्र दौडे और शूर्पणखा को समाचार दिया। तुरन्त वह (शूर्पणखा), जिसने पराक्रमी राक्षसो के कुल का समूल नाश करने के कार्य मे लगी हुई, अपनी नासिका तथा कर्णाभरणो से भूषित कानो को खो दिया था, (राम के विरह मे) कामाग्नि से तप्त होनेवाले मन के साथ (रावण के स्थान मे) आ पहुँची।

शत्रुओ के रक्त मे बुझे हुए तीक्ष्ण बरछे को धारण करनेवाले रावण ने, असत्य के आवासभूत मनवाली क्रूर शूर्पणखा को वहाँ आये हुए देखकर पूछा हे स्त्रीरत्न! मेरे सम्मुख खडी हुई अजन अचित करवाल तुल्य नयनोवाली, कलापी समान यह स्त्री ही क्या तुम्हारी बताई हुई वह सीता है ?

तब शूर्पणखा ने उत्तर दिया—अरुण कमल जैसे नयनो, रक्त बिबफल समान अधर, मनोहर और उन्नत कधो, लबी दीर्घ बाहुओ तथा सुन्दर पुष्पमाला से भूषित वक्ष के साथ आया हुआ, अजन पर्वत सदृश दीखनेवाला यह दृढ धनुर्धारी रामचन्द्र है।

यह सुनकर रावण ने कहा—मैं यहाँ एक स्त्री का रूप देख रहा हूँ। तुम मुझसे एक पुरुष के रूप की बात कर रही हो। मैंने मन में विचार में भी नहीं किया। हम तो दूसरों की आँखों के सामने माया उत्पन्न करके उनको भ्रम में डालनेवाले हैं। क्या क्षुद्र मनुष्य हमारे सामने कोई माया कर सकते हैं?

तब शूर्पणखा ने कहा—मेरी बुद्धि उसी के ध्यान में निमग्न होकर अन्य किसी विषय में प्रवृत्त नहीं हो रही है। तुम ऐसी काम वेदना से पीड़ित हो कि तुम्हारी आँखें जहाँ भी पडती हैं, वहाँ वहीं सीता दिखाई देती है। ऐसा भ्रम होना चिरकाल की बात ही है, (अर्थात्, कामुक लोग अपने प्रेम पात्र को सर्वत्र देखते हैं) यह कोई नई बात नहीं है।

शूर्पणखा के यों कहने पर रावण ने उससे पूछा—ठीक है। वैसे ही होगा। किन्तु, तुम्हारी आँखों को वह राम क्यों दिखाई देता है? इसका उत्तर शूर्पणखा ने यों दिया—जिस दिन (राम) ने मेरा प्रतिकार रहित अपमान किया उस दिन से अब तक मैं उसे भूल नहीं पाई हूँ।

तब रावण ने कहा—सच है, तुम्हारा कथन संगत ही है। इस समय मेरी इस पीडा का निवारण किस प्रकार हो सकता है? इसका उत्तर शूर्पणखा ने दिया—तुम समस्त विश्व के एकमात्र प्रभु हो। तुम क्यों इस प्रकार दीन हो रहे हो? तुम जाओ और उस पुष्प भूषित कुन्तलोंवाली सुन्दरी (सीता) को उठा लाओ।

यों कहकर वह (शूर्पणखा) वहाँ से हट चली। वह राक्षस (रावण) भी शक्तिहीन होकर, कुछ भी सोच नहीं पाता हुआ, व्याकुल प्राणों के साथ पडा रहा। उसे उस दशा में देखकर समीप खडे रहनेवाले लोग भी काँप उठे। फिर भी वह (रावण) अपनी शेष रही आयु के प्रभाव से मरा नहीं।

कोई मृत व्यक्ति पुनः जीवित हो उठा हो, इस प्रकार उठकर वह रावण अपने पराक्रम का स्मरण करके वहाँ स्थित लोगों से कहने लगा कि धारा रूप में जल को प्रवाहित करनेवाली चन्द्रकान्त शिलाओं से एक अति सुन्दर मंडप का निर्माण करो।

देवशिल्पी, रावण के मन की बात जानकर तुरन्त आ पहुँचा और अपने संकल्पमात्र से ही नहीं, किंतु हस्त कौशल को भी दिखाकर ऐसा एक सहस्र स्तंभोंवाला अति सुन्दर मंडप निर्मित किया, जिसे देखकर ब्रह्मा भी लज्जित हो जाय।

उस (देवशिल्पी) ने उस मंडप में ऐसी चंद्रकान्त शिलाएँ बिछाईं, जिनसे किरणों के स्पर्श के बिना ही, जल धारा बह चलती थी। ऐसे वातायन भी निर्मित किये, जिनसे पुष्प की सुरभि से पूर्ण मन्द पवन संचरण कर सकता था। उसने सुन्दर कल्प तरुओं का एक मनोहर और शीतल उद्यान भी बनाया।

उभरे हुए कंधोंवाला रावण एक माणिक्यमय विमान पर आरूढ होकर उस मंडप को देखने के लिए आया। उसके दोनों पार्श्वों में, आभरणों से उज्ज्वल अप्सराएँ, गगन तक परिव्याप्त अंधकार को दूर करती हुई, अपने सुन्दर करों में ज्योति पूर्ण दीप लिये आईं।

वह अधकार यद्यपि ऐसा था, जैसे अनेक सहस्र रात्रियो को एक करके रखा गया हा, तथापि उन सुन्दर रमणियो के वदन रूपी शीतल चद्रिका का बिखरनेवाले अत्युज्वल तथा अनेक सहस्र कोटि चद्रमडल के एक हो जाने से, वह अधकार छिन्न भिन्न हो मिट गया।

अति मनोहर नव रत्ना स खचित पुष्पो स युक्त कल्पतरुओ स, सूय को भी लज्जित करनेवाला कातिपुज प्रकट हो रहा था, जिससे अधकार मिट गया और दिन का सा प्रकाश व्याप्त हा गया। सूय के उदित होत ही, उसकी दीर्घ किरणो क प्रभाव से, अधकार मिटकर प्रभात हो जाता ह न? (उसी प्रकार कल्पतरुओ के प्रकाश स प्रभात हो आया।)

स्पर्श, शब्द आदि विषयो का ग्रहण करनेवाली जिसकी इद्रियॉ एक समान मद पड गई थी, जिसका मन स्तब्ध हा गया था और जा कर्त्तव्य ज्ञान स रहित हो गया था ऐसा वह रावण, इच्छा के आवेग से खीचा जाकर उस मडप म इस प्रकार आकर प्रविष्ट हुआ, जिस प्रकार जन्मान्तर के समय प्राण नवीन शरीर के भीतर प्रविष्ट हात ह।

निष्पाप तपस्या से सपन्न व्यक्तियो के सब अभीष्टा का पूरा करनेवाला तथा वर्त्तुलाकार मीनो से पूण क्षीर समुद्र ही मानो, अमृत के साथ, आ गया हो—ऐसा भ्रम उत्पन्न करनवाले, गानेवाले भ्रमरो से आवासित, हरित वृक्षो क कामल पल्लवो तथा पुष्प दलो से निमित, शीतल पयक पर आकर वह (रावण) लेट गया।

ऐसा मद पवन, जो किसी मरनेवाले व्यक्ति के प्राणो का भी राक सकता था, सुन्दर आभरणा से भूषित सुन्दरियो के कुतलो की सुगधि को लेकर, वहॉ पर यो आ पहुँचा, जैसे उस सुगधित उद्यान म मन्मथ को भोज देने के लिए क्षीर सागर ने अमृत भेजा हो।

रक्त बिदुओ और अग्निकणो को बरसानेवाली ऑखो मे युक्त वह रावण, वातायन से मद पवन का सचार होने पर उसका सहन नही कर सका और इस प्रकार घबरा उठा, मानो कोई, अपने घर म अजगर को घुसत हुए दखकर भयभीत हा उठा हो। फिर, अपने समीपस्थ लोगो से उसने कहा—

मानो कुएँ का थोडा सा जल सारे ससार का डुबो रहा हा, इसी प्रकार, देवो म एक, यह वायु मुझे पीडित कर रहा है। मेरी आज्ञा के बिना यह पवन यहॉ किस प्रकार घुस पाया? फिर, उसने आज्ञा दी कि द्वारपालको को शीघ्र ले आओ।

उस समय, सेवक दौड चले और द्वारपालको को शीघ्र ले आये। क्रूर रावण न कठार नेत्रो स उन्ह देखकर पूछा—क्या तुमने मद मारुत क वश म आये हुए वायुदेव को भीतर आने का माग दिया? तब उन द्वारपालको ने निवदन किया— जब आप इस स्थान म रहते ह, तब उसे यहॉ आने से कोई रोक नही सकता ह न?

इसपर रावण न सोचा कि वायु पर कोप करने स कुछ प्रयाजन नही है। अगर मै बरछे जैसे नयनावाली सीता की कृपा का नही प्राप्त करूँगा, तो अभी यम आकर मेरे प्राण हर लेगा। फिर, उसने सेवको को आज्ञा दी कि बुद्धि के कौशल स सब कार्यो का पूर्ण करनेवाले मत्रियो को बुला लाओ।

रावण की आज्ञा पाकर व सेवक ... ध्वनि करत ... अतिशीघ्र ही) अनेक स्थानों म गाट आर मन्त्रियो का समाचार ... पात ही व मत्री लाग पताकाओ से युक्त रथो पर, घाडो पर शिविकाओ म तथा ... मद से युक्त गजा पर आरूढ हाकर इस प्रकार आ पहुँच कि उन्हे देखकर असुर और देवताओं के मन भी व्याकुल हो उठे।

मन म उठ विचार का शीघ्र कार्यान्वित करनेवाले, किन्तु अब अपने कर्त्तव्य का निश्चित नही कर पानेवाले रावण न अपने मन्त्रियो के साथ ठीक मत्रणा की फिर गगन गामी विमान पर चढकर अकेले ही उस मारीच के आश्रम म जा पहुँचा जो पचेंद्रियो का दमन करके तपस्या म निरत था।

रावण के आते ही मारीच ने, सभय तथा व्याकुल होकर काल तथा बडे आकारवाले रावण का आगे जाकर सब प्रकार से स्वागत सत्कार किया और उसके मुख की ओर दखकर कहने लगा—

मन म यह सोचकर चितित होता हुआ कि न जाने यह (रावण) किस प्रयोजन से यहाँ आया है, मारीच कहने लगा—सुन्दर तथा शीतल कल्पवृक्षो की छाया म रहकर शासन करनेवाले देवेंद्र और यमराज का भी भयभीत करते हुए राज्य करनेवाले, हे शासक ! अब इस अरण्य म मेरे इस कष्टदायक कुटीर म, दीन जन के जैसे किस प्रयोजन से आये हो ? कहो।

रावण कहने लगा—अपनी शक्ति भर प्रयत्न करके मै अपने प्राणो का राखे हुआ हूँ। अब शिथिल हो रहा हूँ। मेरे महत्त्व, कीर्त्ति, प्रभाव—सब मिट गये हैं। इसका क्या कारण है, म उसके बारे म तुमसे किस प्रकार शांति के साथ कह सकता हूँ ? इस घटना से हम ऐसा अपयश प्राप्त हुआ है कि दवताओं स हम लज्जित होना पडा ह।

हे शूलधारी ! मनुष्य पराक्रम दिखाने लगे ह। उनके खड्ग से तुम्हारी भतीजी की नाक और कान कट गये ह। विचार करने पर मरे और तुम्हारे वंशो के लिए इससे बढकर और क्या अपमान हो सकता है ? तुम्ही कहो।

एक मनुष्य ने दृढ धनुष को लेकर, बडे क्रोध के साथ अधिक सख्या म आकर युद्ध करनेवाले मेरे भाइयो की आयु का समाप्त कर दिया। यह तो अबतक की हमारी सब विजयो के लिए कलंक है न ... शूलधारी तुम्हारे भतीजे इस प्रकार मर मिटे। वह मनुष्य तो अपनी ... ना भुजाओ का ही लेकर अबतक सुखी रहता है न ?

मेरे मन की अग्नि शान्त नही हुई है। मरण की वदना भोग रहा हूँ। व मेरे समान नहीं ह। अत म उनसे युद्ध करना नही चाहता हूँ। म यहाँ इसलिए आया हूँ कि तुम्हारी सहायता लकर उन (मनुष्यो) के साथ रहनेवाली प्रवाल का भी परास्त करनेवाले लाल अधर से युक्त, लता समान सुन्दरी को उठा ले आऊँ और अपने अपमान का बदला लूँ—यों रावण ने कहा।

भडकती हुई ज्वाला म जैसे लोहे का पिघलाकर डाला गया हो, उसी प्रकार रावण के वचन मारीच का तप्त करने लगे। उसका कथन पूरा होने के पूर्व मारीच ने

वह अधकार यद्यपि ऐसा था, जैसे अनेक सहस्र रात्रियो को एक करके रखा गया हो, तथापि उन सुन्दर रमणियो के वदन रूपी शीतल चद्रिका को बिखरनेवाले अत्युज्वल तथा अनेक सहस्र कोटि चद्रमडल के एक हो जाने से, वह अधकार छिन्न भिन्न हो मिट गया।

अति मनोहर नव रत्नो से खचित पुष्पो से युक्त कल्पतरुओ मे, सूर्य को भी लज्जित करनेवाला कातिपुज प्रकट हो रहा था, जिससे अधकार मिट गया और दिन का सा प्रकाश व्याप्त हो गया। सूर्य के उदित होते ही, उसकी दीर्घ किरणो के प्रभाव से, अधकार मिटकर प्रभात हो जाता है न? (उसी प्रकार कल्पतरुओ के प्रकाश से प्रभात हो आया।)

स्पर्श, शब्द आदि विषयो का ग्रहण करनेवाली जिसकी इद्रियाँ एक समान मद पड गई थी, जिसका मन स्तब्ध हो गया था और जो कर्त्तव्य ज्ञान से रहित हो गया था ऐसा वह रावण, इच्छा के आवेग से खीचा जाकर उस मडप मे इस प्रकार आकर प्रविष्ट हुआ, जिस प्रकार जन्मान्तर के समय प्राण नवीन शरीर के भीतर प्रविष्ट होते है।

निष्पाप तपस्या से सपन्न व्यक्तियो के सब अभीष्टो को पूरा करनेवाला तथा वर्त्तुलाकार मीनो से पूर्ण क्षीर समुद्र ही मानो, अमृत के साथ, आ गया हो—ऐसा भ्रम उत्पन्न करनेवाले, गानेवाले भ्रमरो से आवासित, हरित वृक्षो के कोमल पल्लवो तथा पुष्प दलो से निर्मित, शीतल पर्यक पर आकर वह (रावण) लेट गया।

ऐसा मद पवन, जो किसी मरनेवाले व्यक्ति के प्राणो को भी रोक सकता था, सुन्दर आभरणो से भूषित सुन्दरियो के कुतलो की सुगधि को लेकर, वहाँ पर यो आ पहुँचा, जैसे उस सुगधित उद्यान मे मन्मथ को भोज देने के लिए क्षीर सागर ने अमृत भेजा हो।

रक्त बिदुओ और अग्निकणो को बरसानेवाली आँखो से युक्त वह रावण, वातायन से मद पवन का सचार होने पर उसको सहन नही कर सका और इस प्रकार घबडा उठा, मानो कोई, अपने घर मे अजगर को घुसते हुए देखकर भयभीत हो उठा हो। फिर, अपने समीपस्थ लोगो से उसने कहा—

मानो कुएँ का थोडा सा जल सारे ससार को डुबो रहा हो, इसी प्रकार, देवो मे एक, यह वायु मुझे पीडित कर रहा है। मेरी आज्ञा के विना यह पवन यहाँ किस प्रकार घुस पाया? फिर, उसने आज्ञा दी कि द्वारपालको को शीघ्र ले आओ।

उस समय, सेवक दौड चले और द्वारपालको को शीघ्र ले आये। क्रूर रावण ने कठोर नेत्रो से उन्हे देखकर पूछा—क्या तुमने मद मारुत के वश मे आये हुए वायुदेव को भीतर आने का मार्ग दिया? तब उन द्वारपालको ने निवेदन किया— जब आप इस स्थान मे रहते है, तब उसे यहाँ आने से कोई रोक नही सकता है न?

इसपर रावण ने सोचा कि वायु पर कोप करने से कुछ प्रयोजन नही है। अगर मैं बरछे जैसे नयनोवाली सीता की कृपा को नही प्राप्त करूँगा, तो अभी यम आकर मेरे प्राण हर लेगा। फिर, उसने सेवको को आज्ञा दी कि बुद्धि के कौशल से सब कार्यो को पूर्ण करनेवाले मत्रियो को बुला लाओ।

रावण की आज्ञा पाकर वे सेवक = ग न क न क म्मम क भीत ी (अथात्, अतिशीघ्र ही) उनके स्थानों में गोट और मंत्रियों को समाचार दिया। समाचार पाते ही वे मंत्री लोग पताकाओं से युक्त रथों पर, घोडों पर शिविकाओं में तथा त्रिवर्ग मद से युक्त गजों पर आरूढ होकर इस प्रकार आ पहुँचे कि उन्हें देखकर वसुधा और देवताओं के मन भी व्याकुल हो उठे।

मन में उठे विचार को शीघ्र कार्यान्वित करनेवाले, किन्तु अब पर क्तव्य को निश्चित नहीं कर पानेवाले रावण ने अपने मंत्रियों के साथ ठीक मंत्रणा की फिर गगन गामी विमान पर चढ़कर अकेले ही उस मारीच के आश्रम में आ पहुँचा जो पंचेन्द्रियों का दमन करके तपस्या में निरत था।

रावण के आते ही मारीच ने, सभय तथा व्याकुल होकर काल तथा रुद्र आकारवाले रावण को आगे जाकर सब प्रकार से स्वागत सत्कार किया और उसके मुख की ओर देखकर कहने लगा—

मन में यह सोचकर चिंतित होता हुआ कि न जाने यह (रावण) किस प्रयोजन से यहाँ आया है, मारीच कहने लगा—सुन्दर तथा शीतल कल्पवृक्षों की छाया में रहकर शासन करनेवाले देवेंद्र और यमराज को भी भयभीत करते हुए राज्य करनेवाले, हे शासक! अब इस अरण्य में, मेरे इस कष्टदायक कुटीर में, दीन जन के जैसे किस प्रयोजन से आये हो? कहो।

रावण कहने लगा—अपनी शक्ति भर प्रयत्न करके मैं अपने प्राणों को रखे हुआ हूँ। अब शिथिल हो रहा हूँ। मेरे महत्त्व, कीर्त्ति, प्रभाव—सब मिट गये हैं। इसका क्या कारण है, मैं उसके बारे में तुमसे किस प्रकार शांति के साथ कह सकता हूँ? इस घटना से हमें ऐसा अपयश प्राप्त हुआ है कि देवताओं से हमें लज्जित होना पडा है।

हे शूलधारी! मनुष्य पराक्रम दिखाने लगे हैं। उनके खड्ग से तुम्हारी भतीजी की नाक और कान कट गये हैं। विचार करने पर मेरे और तुम्हारे वंशों के लिए इससे बढ़कर और क्या अपमान हो सकता है? तुम्हीं कहो।

एक मनुष्य ने दृढ धनुष को लेकर, बड़े क्रोध के साथ अधिक संख्या में आकर युद्ध करनेवाले मेरे भाइयों की आयु को समाप्त कर दिया। यह तो अबतक की हमारी सब विजयों के लिए कलंक है न? हे शूलधारी तुम्हारे भतीजे इस प्रकार मर मिटे। वह मनुष्य तो अपनी दोनों भुजाओं को ही लेकर अबतक सुखी रहता है न?

मेरे मन की अग्नि शान्त नहीं हुई है। मरण की वेदना भोग रहा हूँ। वे मेरे समान नहीं हैं। अतः मैं उनसे युद्ध करना नहीं चाहता हूँ। मैं यहाँ इसलिए आया हूँ कि तुम्हारी सहायता लेकर उन (मनुष्यों) के साथ रहनेवाली प्रवाल को भी परास्त करनेवाले लाल अधर से युक्त, लता समान सुन्दरी को उठा ले आऊँ और अपने अपमान का बदला लूँ—यों रावण ने कहा।

भडकती हुई ज्वाला में जैसे लोहे को पिघलाकर डाला गया हो, उसी प्रकार रावण के वचन मारीच को तप्त करने लगे। उसका कथन पूरा होने के पूर्व मारीच ने

'छि ! छि !' कहते हुए अपने कान बंद कर लिये। उसके मन से भय दूर हो गया और क्रोध उत्पन्न हुआ। फिर वह (मारीच) कहने लगा—

हे राजन्! तुम अपना जीवन समाप्त कर रहे हो। तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। यह तुम्हारा दोष नहीं है। मेरा विचार है कि यह कर्मों का ही परिणाम है। मेरा कथन तुम्हें मीठा नहीं लगेगा। तो भी मैं यह हित वचन बताता हूँ—यों कहकर उस (मारीच) ने अनेक हितकारी उपदेश उस (रावण) को दिये।

तुमने स्वयं अपने हाथों से अपने करों और शिरों को काट काटकर अग्नि में होम किया था और दीर्घकाल तक भूखे रहकर, अपने प्राणों को पीडित करके तपस्या की थी। उसके पश्चात् ही सारी संपत्ति प्राप्त की। उस संपत्ति को यदि तुम अब अनुचित कार्य करके खो डालोगे, तो क्या उसे पुनः प्राप्त कर सकोगे?

हे विचारणीय वेदों के पंडित! तुमने अपूर्व तपस्या करके संपत्ति प्राप्त की है। यह धर्म के प्रभाव से हुआ या अधर्म के प्रभाव से? बताओ तो। तुमने यह महत्त्व धर्म के प्रभाव से ही तो पाया है? अब क्या उसे अधर्म करके खो देना चाहते हो?

जो राजा अपने ऊपर विश्वास करनेवाले मित्रों के राज्य का हरण करते हैं, जो राजा न्यायेतर मार्ग से अपनी प्रजा से अधिक कर उगाहते हैं और जो व्यक्ति पर पुरुष की गृहिणी को अपने वश में करते हैं—इन सबके धर्म का देवता स्वयं ही विनाश कर देता है। यह तुम जान लो, हे तात! लोक पीडा उत्पन्न करनेवालों में से कौन उद्धार पा सका है?

स्वर्ग का अधिपति (इन्द्र) अहल्या के रूप की आसक्ति के कारण दुर्दशा ग्रस्त हुआ। उस (इन्द्र) के जैसे अनेक लोग हुए हैं, जो पर स्त्री के मोह में पडकर अधःपतन को प्राप्त हुए हैं। गौरवर्ण लक्ष्मी के समान अनेक सुन्दरियाँ तुम्हारे भोग की भागिनी हैं। तो भी तुमने बिना सोचे समझे कुछ कह दिया है। तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है।

यदि तुम अपनी इच्छा के अनुसार काम भी करो, तो भी इससे पाप और अपयश ही तुम्हारे हाथ आयेंगे। तुम्हारी इच्छा पूर्ण नहीं होगी, नहीं होगी। संसार को उत्पन्न करनेवाला राम शाप सदृश कठोर शरों से तुम्हारी शक्ति को मिटाकर तुम्हारी संतति और तुम्हारे सारे कुल को मिटा देगा, यह निश्चित है।

मेरे ऐसा कहने पर भी, न जाने क्यों, तुम कुछ ठीक विचार नहीं कर रहे हो। अहो! तुम्हारी सेना का सबसे बडा सेनापति खर अपनी सेना के साथ उस (राम) के एक ही शर से मारा गया। वह (राम) अब सारे राक्षस कुल को मिटानेवाला है।

क्रूर व्यक्तियों में वीर विराध से बढकर कौन था? वह (राम के) एक ही शर से, परलोक में पहुँच गया, तो अब हममें से कौन बचनेवाला है? जब मैं यह बात सोचता हूँ, तब मेरा मन व्याकुल हो जाता है। अब तुम अपने वचनों से मेरी चिन्ता को और भी बढा रहे हो।

जिनको मरना था, वे मर गये। उन मरनेवालों के जैसा काम मत करो। यदि तुम भी वैसा ही कार्य करोगे, तो क्या तुम को भाग्य बचा सकेगा? संसार में कितने ही

शासक हुए, उनमे अधमो गिनाओ न कभी सुख ना पाया। इस संसार मे कोई चिरकाल तक जीवित रहनेवाला है। सब मिट जानेवाले ही तो है।

उस वीर (राम) ने जिसने अपने बाण से मेरे भाई (सुबाहु) को और मेरी माता (ताडका) को मार डाला और जिसके निकट खडे रहनेवाले उसके भाई ने मेरा सारा पराक्रम मिट गया, उनके स्मरण से ही मेरा व्याकुल मन काँप उठता है। उस के ऐसे पराक्रम से मैं बहुत चिन्तित हूँ।

हम इस सत्य को प्रत्यक्ष देखते है कि सब स्थावर तथा जगम पदार्थ अस्थिर है नष्ट होनेवाले है, अत हे तात! कोई नीच कार्य करने का विचार न करो। मेरी बात सुनो, अपनी महान् समृद्धि के साथ तुम चिरकाल तक जियो। इस प्रकार मारीच ने (रावण से) कहा।

यह सुनकर रावण अपनी भयकर आँखो से आग उगलने लगा। उसकी भौहे तन गई, बहुत क्रुद्ध होकर उसने कहा—तुम कहते हो कि मेरी ये पराक्रमी सुन्दर भुजाएँ, जिन्होने गगा को अपनी जटा मे धारण करनेवाले (शिव) को उसके कैलास के सहित एक हथेली पर उठाया था, अब एक मनुष्य से पराजित होनेवाली है।

अभी जो घटना हुई, उसके बारे मे तुमने नही सोचा पर नि सकोच होकर मेरी निंदा की। जिन्होने मेरी बहन के मुँह मे एक गढा सा खोद डाला हो उन (मनुष्यो) की तुमने प्रशसा की, यह तुम्हारा एक अपराध है। फिर भी, मैने इसके लिए क्षमा कर दिया।

तब मारीच, यह सोचकर भी कि उसके ऊपर क्रोध करनेवाला वह निर्भीक (रावण) उसके वचनो को सुनकर पुन क्रुद्ध होगा- चुप नही रहा। किन्तु फिर कहा—तुम्हारा यह क्रोध मुझ पर नहा है, किंतु यह स्वय तुम पर ही है और तुम्हारे कुल पर है।

यदि तुम यह सोचते हो कि तुमने कैलास पर्वत को उठाया था, तो यह भी तो सोचो कि जब जनक ने (राम से कहा) कि यह धनुष शिवजी के द्वारा झुकाया हुआ पर्वत ही है, तुम इसे चढाओ, तो राम ने एक क्षण मे अनायास ही उस (धनुष) को हाथ मे उठा लिया और उस पर डोरी चढाने के निमित्त उसे झुकाकर तोड दिया। वह पर्वताकार शिव धनुष गगन को छूनेवाला मेरु पर्वत ही तो था।

तुम (राम के प्रभाव के बारे मे) कुछ नही जानते हो। मेरे वचन को भी स्वीकार नही करते हो। वह (राम), युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर पुष्पमाला धारण करे, इसके पूर्व ही, उसके शत्रुओ के प्राण लुट जाते है। तुमने मूढता से यह समझ रखा है कि वह (सीता) एक मानव स्त्री मात्र है। क्या वह, सीता का अपना रूप है? वह तो राक्षसो के पाप के परिणाम की ही प्रतिमूर्त्ति है।

मेरे मन मे यह सोचकर कि (यदि तुम सीता का हरण करोगे, तो) तुम अपने बंधुओ-सहित मिट जाओगे, नहीं बच सकोगे, ऐसी धडकन उत्पन्न हो रही है, जैसे नगाडा बज रहा हो। इसका तुम विचार नही करते। अज्ञान मे पडकर जो विष पीने जा रहा हो, उससे उसके समीप रहनेवाले ज्ञानी व्यक्ति, क्या यह कहेगे कि यह कार्य ठीक है?

उग्र तथा कलक रहित विश्वामित्र क द्वारा प्रदत्त अनेक एसे शस्त्र राम की आज्ञा म ह, जो शिव आदि देवो के लोको को तथा सत्र भुवनो को भी क्षण काल म विध्वस्त कर सकते है।

जिस परशुराम न एक सहस्र बलिष्ठ हाथोवाले (कार्त्तवीय अर्जुन) को अपने परस स क्षण काल म काटकर ढेर कर दिया था, उस (परशुराम) की सारी शक्ति को, उसके दृढ धनुष क साथ ही, राम ने अपन वश म कर लिया था। क्या वैसा बल हमारे लिए प्राप्त करना सभव ह ?

काम पीडा के बढ जाने से तुम दुबल हो गय हो। अत, तुमने एस वचन कह। यह कार्य विनाशकारी हे। मै तुम्हारा मामा हूँ और तुम्हारे कुल का वृद्ध पुरुष हूँ। म कहता हूँ, हे तात ! यह पाप कार्य छोड़ दो।—इस प्रकार मारीच ने कहा।

राक्षसराज न, अपने कथन के बारे म किंचित् विचार करने का परामर्श देने वाले उस मारीच का धिक्कार करत हुए कहा—तुम, अपनी माता को मारनेवाले उस (राम) स डरकर जी रह हो। क्या तुम्ह एक वीर पुरुष मानना उचित हे ?

स्वगवाली दवी के निवासो को भस्म करके मे सब लोको पर इस प्रकार शासन चक्र चलाता हूँ कि दिग्गज सब भयभीत होकर भागकर छिप गये ह और देवता भी दुर्दशा ग्रस्त हो गये ह। क्या ऐसे मुझको दशरथ क व पुत्र कष्ट दे सकेग ?—यह मेरी शक्ति भी अच्छी है।

मे त्रिभुवन का एकच्छत्र राज्य वहन करता हूँ। यदि मुझे कोई शक्तिशाली शत्रु प्राप्त हो, तो उससे बढकर मेरे आनद का विषय कोई दूसरा नही होगा। मेरी आज्ञा के अनुसार तुम्हे काय करना है। राजा क काय सपादन करनेवाले मत्री के कर्त्तव्य से क्या तुम स्खलित हो जाओगे ?

अगर तुम मेरी आज्ञा का अतिक्रमण करोगे, तो म तीक्ष्ण करवाल स तुम्हे काट दूँगा। किन्तु, अपने इच्छित कार्य को पूर्ण किये विना नही रहूँगा। यदि तुम जीवित रहना चाहत हो, तो इन घृणास्पद वचनो को छोडकर मेरे मन की बात करो। यो रावण ने कहा।

राक्षसराज के यह वचन कहने पर, मारीच न मन म विचार किया—जिसके मन म गर्व उत्पन्न होता है, वह उसी समय मिट जाता है। यही कथन सत्य है। लोग मन म काम वासना उत्पन्न होने पर, उसी कामना पर प्राण छोडने के लिए भी तैयार हो जाते हैं—और वह तपाये हुए पात्र म डाले गये जल के जैसे ही, उफनकर, भीतर शात हो गया। वह फिर कहने लगा—

तुम्हारे हित की कामना से मने यथार्थ बात कही। होनेवाले अपन किसी अहित को सोचकर और उससे डरकर मेने कुछ नही कहा। विनाश का काल आ जाता है, तो भला भी बुरा लगता हे। ह क्षुद्र स्वभाववाले। बताओ, मुझे क्या करना हे ? यो मारीच ने कहा।

मारीच के यह कहत ही रावण न अपना क्रोध शान्त कर उसका आलिगन किया

और कहा—पर्वत के समान पुष्ट कंधोंवाले ! मन्मथ के सदृश राम से मारे न जाकर अपने हाथ के बाण से मरना ही कीर्तिदायक है न ? अतः मेरे मारुत में मेरे हृदय में काम उत्पन्न करनेवाली (सीता) को ला दो।

रावण के यह वचन कहते ही मारीच बोला—(मेरी माँ को मारनेवाले) राम से अपना बदला लेने के लिए मैं एक बार, दो एक राक्षसों को साथ लेकर तपोवन में गया था। तब राम के बाणों से मेरे साथी मरकर गिर पड़े। भयभीत होकर मैं भाग आया। ऐसा मैं इस समय क्या कार्य कर सकता हूँ ? बताओ।

मारीच की बातें सुनकर रावण ने कहा तुम्हारी माता को मारनेवाले इस राम के प्राण हरने के लिए मैं तैयार हूँ। तुम्हारा यह प्रश्न कि मैं जाकर क्या करूँ उचित नहीं है। हमारा कर्त्तव्य माया से धोखा देकर उस सीता का अपहरण करना ही है।

मारीच ने कहा—हे राजन् ! अब मैं और क्या कह सकता हूँ ? उस (राम) की देवी को पराक्रम से हरण करना उचित है। धोखे से हरण करना नीच कार्य है। तुम (राम से) युद्ध करके, विजय पाकर सीता को अपना लो और अपने प्रताप को बढ़ाओ। ऐसा करना नीतिशास्त्र के अनुकूल होगा।

अपने हित चिंतक (मारीच) का कथन सुनकर रावण हँस पड़ा और बोला उन मनुष्यों को जीतने के लिए क्या सेना की भी आवश्यकता है ? क्या मेरे विशाल हाथ का करवाल पर्याप्त नहीं है ? फिर भी, सोचने की बात यह है कि यदि वे दोनों मनुष्य मर जायेंगे तो वह नारी (सीता) एकाकिनी होकर अपने प्राण त्याग देगी न ? अतः, धोखे से उस नारी का हरण करना ही ठीक है।

यह सुनकर मारीच ने सोचा—मैं ऐसा उपाय बताता हूँ कि राम की देवी का स्पर्श करने के पूर्व ही इस (रावण) के शिर (राम के) बाणों से बिखर जायँ, पर यह मेरी बात नहीं मानता। अब मेरे जीवित रहने का कोई मार्ग नहीं है। विधि के परिणाम को कौन जान सकता है ? अब इसकी आज्ञा का पालन करने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है।

फिर उस (मारीच) ने कहा—अब मुझे कैसी माया रचनी है, बताओ। रावण ने कहा—तुम एक सोने के हिरण का रूप धारण कर लो और उस सीता के मन को ललचाओ। मारीच वैसा करने की सम्मति प्रकट करके चल पड़ा। उज्ज्वल शूलधारी राक्षसराज (रावण) भी दूसरे मार्ग से चला गया।

मारीच, पूर्वकाल में राम के बाण का प्रभाव जान चुका था। अतः वह स्वयं हरिण का रूप लेकर वहाँ जाना नहीं चाहता था। किंतु रावण की वैसी आज्ञा होने के कारण वह गया। अब उसके मन की दशा और उसके व्यापारों का वर्णन करेंगे।

मारीच का मन, अपने बन्धुओं का स्मरण करके दुःखी होता। वह वीर राम-लक्ष्मण से भयभीत होकर चक्कर खाता। गहरे तालाब का पानी विषमय हो जाय, तो उसमें रहनेवाली मछली जिस प्रकार विकल होती है, उसी प्रकार मारीच का मन भी व्याकुल हुआ। उसकी दशा का अनुमान करना भी कठिन है।

विश्वामित्र क यज्ञ क समय राम स पीडित हाकर और (दडकारण्य म) पहले एक बार हरिण वेष म जाकर भी जो मरा नही, वह मारीच अब तीसरी बार प्रयत्न करता हुआ राघव के आश्रम म जा पहुँचा।

उसन ऐस एक स्वण हरिण का रूप धारण किया, जिसकी अनुपम उज्ज्वल देह की काति से गगन और धरती भी प्रकाशित हो उठी। उत्तम हरिणी समान सीता क मन म आकर्षण उत्पन्न करने के विचार से वह (पर्णकुटी के पास) गया।

किसी पर आसक्ति नही रखनेवाले मन तथा कपट से युक्त वेश्याओ की ओर जिस प्रकार सब कामुक व्यक्ति आकृष्ट होते है, उसी प्रकार उस स्वर्ण हरिण की ओर सब प्रकार क हरिण आकृष्ट होकर उसको घेरकर चले।

उसी समय सीतादवी, अपने अति सुन्दर ककण भूषित कोमल कर कमलो से पुष्प चयन करती हुई, इस प्रकार वहाँ चली आई कि देखनेवालो क मन म यह सदेह उत्पन्न हाने लगा कि इसके कटि है या नही।

जिसपर विपदा आनेवाली होती है, वे स्वप्न मे ऐसे रूपो को देखते है, जिनका विचार तक व अपने मन म कभी नही लाये होगे। इसी प्रकार, सीता देवी ने, जिनको, इसके पूर्व कभी किसी का न प्राप्त हुइ बडी विपदा आनेवाली थी, उस माया मृग को देखा।

रावण की आयु अब समाप्त होनेवाली थी, और उसकी मृत्यु से धर्म की सुरक्षा होनेवाली थी। अत, सीता उस (माया मृग) को देखकर, यह नही जानती हुई कि यह धोखा है, उसके न चाहने योग्य सौदय पर मुग्ध हो गई।

वह हिरण ज्यो ही अर्धचद्र समान ललाटवाली सीता क सम्मुख आकर खडा हुआ, त्यो ही वह (सीता) उसके प्रति अत्यधिक आकर्षण से भरकर, इस विचार से कि राम से उस हरिण का पकड लाने का कह, सत्वर विजयी धनुर्धारी (राम) क निकट जा पहुँची।

सीता ने हाथ जोडकर राम से कहा—हमार आश्रम म अति उत्तम स्वणमय, दूर तक अपना प्रकाश फेंकनेवाला माणिक्य तथा रत्नमय सुदृढ करो और कर्णों से शोभायमान एक हरिण आया है। वह अत्यन्त दर्शन मधुर है।

ऐसा हरिण ससार म कही नही हो सकता, एसा किचित् भी विचार किये बिना ही, हमारे प्रभु और कमलभव के पिता (विष्णु के अवतारभूत) राम, हरिण तुल्य देवी की बात सुनकर उमग से भर गये।

यह मुझे चाहिए—यो अपनी दवी के कहने पर, राम न यह नही कहा कि यह (हरिण) चाहने योग्य नही है। किन्तु, यह कहा कि आभरणधारी, स्वर्णलता तुल्य हे देवि। हम उस हरिण को देखेंगे। तब अनुज लक्ष्मण ने उनका मनोभाव जानकर उस समय एक वचन कहा—

(उस हरिण क) स्वर्णमय देह है, माणिकमय पैर, पूँछ और कान है और वह कुदकता है—यो कहने स यह स्पष्ट है कि वह कोई मायामय मृग है। हे प्रभु। इसके विपरीत उसे यथार्थ मृग मानना ठीक नही है।

तब राम ने कहा—हे मेरे अनुज ! यद्यपि अनेक मुनि कुछ जानते हैं, तो भी इस अस्थिर संसार की दशा को पूरा पूरा नहीं जान सकते। इस संसार में अनेक करोड़ कोटि प्राणी हैं। अत, संसार में कोई वस्तु असम्भव नहीं है।

तुम्हारा मन क्या कहता है? तुम अपने कानों से सृष्टि की विचित्र वस्तुओं के बारे में सुनते हो। क्या तुम नहीं जानते कि पूर्वकाल में सात स्वर्णमय हंस[1] पैदा हुए थे?

सृष्टि के प्राणियों की कोई एक व्यवस्था या कोई सीमा नहीं है। यों राम ने अपने भाई से कहा। इतने में मुग्धा (सीता) देवी चिन्ता करने लगी कि वह स्वर्ण मृग वन के मार्गों में जाकर कहीं अदृश्य न हो जाय।

इस प्रकार चिन्ता करनेवाली देवी का मनोभाव जानकर अंजन पर्वत सदृश प्रभु, यह कहते हुए कि हे आभरणों से भूषित देवि ! कहाँ है वह हरिण? मुझे दिखाओ ! चल पड़े। मुखरित वीर वलयधारी अनुज (लक्ष्मण) अपने भ्राता का यह कार्य देखकर चिन्तामग्न हो, उनके पीछे पीछे चले। उसी समय अवश्यभावी विधि के विधान के समान आया हुआ वह माया मृग सम्मुख दिखाई पड़ा।

सम्मुख दिखाई पड़नेवाले उस हरिण को देखकर रामचन्द्र अपनी सूक्ष्म बुद्धि से कुछ विचार न करके कह उठे—अहा ! यह तो बहुत सुन्दर है। उन (सर्वज्ञ राम) के इस प्रकार कहने का कारण क्या था? विष्णु ने सर्पशय्या को छोड़कर धरती पर (राम के रूप में) अवतार लिया था, तो वह देवताओं के पुण्यफल के परिणामस्वरूप ही तो था? वह (भाग्य) क्या व्यर्थ होगा? (अर्थात्, देवताओं के भाग्य परिपाक के कारण ही रामचद्र मायामृग को पकड़ने के लिए तैयार हुए थे।)

फिर, श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा—हे भाई ! इसे देखो। इसका उपमान क्या हो सकता है? इसका उपमान यह स्वयं है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपमान नहीं है। इसके दाँत उज्ज्वल मुक्ता तुल्य हैं। इसी पास पर बढ़ाई गई इसकी जीभ बिजली के सदृश है। इसकी देह रक्त स्वर्ण के तुल्य है जिसपर चाँदी की सी चित्तियाँ शोभित हो रही हैं।

हे दृढ़ धनुधारी ! इस हरिण की सुन्दरता को देखने पर स्त्री हो या पुरुष,—कौन इसपर मुग्ध नहीं होगा? रेंगनेवाले और उड़नेवाले सब प्राणी इसे देखकर पिघल उठते हैं और इस प्रकार आकर घेर लेते हैं, जिस प्रकार दीपक पर पतंग आकर गिरते हैं।

---

[1] एक कथा प्रसिद्ध है कि पूर्वकाल में भरद्वाज मुनि के सात पुत्र मानससरोवर पर योग साधना करते थे। किसी कारण से वे योगभ्रष्ट हो गये और दूसरे जन्म में कौशिक ऋषि के पुत्र होकर उत्पन्न हुए। उस जन्म में एक दिन अत्यन्त क्षुधा से पीडित होकर उन्होंने अपने गुरु गार्ग्य महर्षि की गाय को मारकर खा डाला। किन्तु खाने के पूर्व पितरों का श्राद्ध कर उन्हें तृप्त किया। इस पाप के कारण उन्हें अनेक योनियों में जन्म लेना पड़ा। किन्तु पितरों को तृप्त करने के पुण्यफल से उन्हें सब जन्मों में अपने पूर्वजन्मों का स्मरण बना रहता था। एक बार वे सात स्वर्णहंस होकर जनमे थे। कदाचित् इसी कथा की ओर इस पद्य में संकेत है।—अनु

आय (राम) के इस प्रकार कहने पर लक्ष्मण ने उस हरिण को देखकर यह स्पष्ट रूप से जान लिया कि यह (हरिण) सच्चा नहीं है। फिर कहा—हे सुरभित तथा सुन्दर मालाधारी। यह हरिण स्वर्ण का भले ही हो, तो भी इससे हम क्या प्रयोजन है? अत, हम अपने स्थान पर लौट जाना ही उचित है।

लक्ष्मण के ये वचन समाप्त करने के पूर्व ही उस अतिरूपवती (सीता) ने अनघ (रामचंद्र) को देखकर कहा—हे चक्रवर्ती पुत्र। मन को आकृष्ट करनेवाले इस हरिण को शीघ्र पकड लाओ। जब हम (वनवास की) अवधि पूरा करके नगर को लौटेंगे, तब यह खेलने के लिए अत्यंत उपयुक्त होगा।

'है या नहीं'—यों संदेह उत्पन्न करनेवाली कटि से युक्त (सीता) के यह कहने पर प्रभु उस हरिण को पकडने के लिए सन्नद्ध हुए यह देखकर स्पष्ट विवेकवाले भाई (लक्ष्मण) ने उनसे निवेदन किया—हे भ्राता। आप सोचकर जान सकते हैं कि हमें धोखा देने के लिए राक्षसों के द्वारा भेजा गया यह मायामय मृग है।

तब देवताओं के कष्टों को दूर करने के लिए अवतीर्ण प्रभु ने उत्तर दिया—यदि यह मायामृग ही है तो भी मेरे बाण से यह मरेगा। मैं उस दशा में एक क्रोधी (क्रूर) राक्षस का वध करने का कर्त्तव्य पूरा करूँगा। यदि यह यथार्थ हरिण है तो इसे पकडकर लाऊँगा। इन दोनों बातों में कोई भी अनुचित नहीं।

इसपर लक्ष्मण ने फिर कहा—हे वज्रसदृश दृढ तथा अतिसुन्दर कंधोंवाले। इस (हरिण) के पीछे किस प्रकार के राक्षस छिपे हैं—यह हम निश्चित नहीं है। उनकी माया कैसी है—इससे भी हम परिचित नहीं हैं। यह हरिण क्या है—यह भी हमने समझा नहीं है। नीति निष्ठ महाजनों ने जिस आचरण को घृणित और वर्ज्य कहा है, उसे करना कीर्तिकारक नहीं होता।

यह सुनकर चतुर्मुख के पिता (विष्णु के अवतार, राम) ने अपने उत्तम भाई से कहा—राक्षस वैर रखनेवाले हैं। उनकी संख्या अपार है। उनकी माया प्रभूत है—इन बातों को सोचकर ही क्या हम अपने व्रत को छोड दें? यह हास्यास्पद बात होगी। अत, (हरिण) को पकडने का यह कार्य उचित ही है।

तब लक्ष्मण ने कहा हे भ्राता। योग्य कार्यों को ठीक सोच समझकर करना उचित है। इस (हरिण) को पकड लाने के लिए मैं जाऊँगा। इसे यहाँ भेजकर इसके पीछे छिपे रहनेवाले राक्षस असंख्य भी क्यों न हों, उन सबको मैं अपने धनुष पर अनेक तीक्ष्ण बाण चलाकर मिटा दूँगा। यदि यह मायामय मृग न हो, तो इसे पकडकर ले आऊँगा।

उस समय हंसिनी तुल्य उस (सीता) ने, गद्गदकंठ से शुकी की जैसी अमृत वर्षिणी वाणी में कहा—हे नाथ। क्या तुम स्वयं जाकर इस (हरिण) को नहीं पकड लाओगे? फिर रक्त रेखाओं से युक्त नीलोत्पल जैसे अपने नयनों से मोती जैसे अश्रु बिंदु बरसाती हुई और मान करती हुई पर्णशाला की ओर चल पडी।

इस प्रकार जानेवाली सीता का रोष देखकर रक्षक प्रभु ने (लक्ष्मण से) कहा—

ह सुन्दरमाला भषित। इस हरिण को म स्वय पकडकर शीघ्र लौट आऊँगा। वन म रहनेवाली कलापी समान सीता की रक्षा करते हुए तुम यहीं रहो—यो कहकर वरछे जैसे तीक्ष्ण वाण और धनुष लेकर सत्वर चल पडे।

तब लक्ष्मण ने यह कहकर कि पहले (विश्वामित्र के) यज्ञ के समय आये हुए तीन राक्षसो म से (अर्थात्, ताडका, सुबाहु और मारीच—इनम से) एक राक्षस हमसे बचकर निकल गया था। हे प्रभु। मेरा अनुमान है कि उस समय बचकर भागा हुआ मारीच ही इस रूप म अब यहाँ आया है। आप सत्य को देखेंगे। जाइए। आपकी जय हो। लक्ष्मण ने हाथ जोडकर उन्हे नमस्कार किया और लक्ष्मी तुल्य सीता के निवास भूत कुटीर के बाहर पहरा देते हुए खडे रह।

पर्वत समान उन्नत कधोवाले रामचद्र न अपने विवकवान् भाई के वचनो पर ध्यान नही दिया और पूर्णचद्र का उपमान बननेवाले सुन्दर मुख से शोभित (सीता) देवी के मान का स्मरण करत हुए, सिन्दूर और प्रवाल के जैसे रक्तवण अपने मुँह पर मदहास भरकर उस हरिण का पीछा करत हुए चल पडे।

वह हरिण मद मद पैर रखता हुआ कभी चलता कभी स्थिर खडा हाता। फिर, घबराकर झपटता और कभी कान खडे करके अपने खुरो को वक्ष मे सटाता हुआ उछल पडता एव अपनी गति से प्रभजन और मन को भी मानो नवीन गति सिखाने लगता।

राम ने, त्रिभुवन को नापनेवाले अपने पैर को उठाकर आगे रखा। क्या उस चरण की पहुँच से परे रहनेवाला कोई लोक भी हो सकता है? यो राम ने (उस हरिण का) पीछा किया। उन राम के उस समय के वेग के बारे मे इससे अधिक क्या कह सकते हैं कि उन्होने अपनी अनुपम सर्वव्यापिता को प्रकट किया?

वह (हरिण) पर्वत पर चढता, मेघों के मध्य कूद पडता। उसका पीछा करने पर वह बहुत दूर भाग जाता। उसका पीछा करना छोडकर विलब करे, तो इतना निकट आ जाता कि हाथ बढाकर उसे छू सकें। स्थिर खडा हुआ सा दिखता किन्तु झट उछलकर भाग जाता। इस प्रकार, वह (हरिण), धन पर ललचानेवाली वारनारियो के मन के समान सचरण करता। अहो!

तब उदार स्वभाववाले प्रभु ने विचार किया—इस (हरिण) का रूप कुछ है और इसके कार्य कुछ और हैं। पहले ही मेरे अनुज ने जो सोचा, वह ठीक ही लगता है। यदि मै ठीक ठीक विचार करता, तो इसके पीछे नही आता। राक्षसो की माया के कारण ही मुझे यह क्लेश उठाना पड रहा है।

इतने मे वह मायावी राक्षस यह सोचकर कि यह (राम) अब मुझे पकडेगा नही, किंतु अपने बाण से मुझे परलोक मे भेजने की बात सोच रहा है—अतिवेग से गगन मे उड गया।

उसी क्षण प्रभु ने भी अपने चक्रायुध के समान अवाय एक रक्तवण बाण को यह आज्ञा देकर छोडा कि यह हरिण जहाँ भी जाये, वहाँ उसका पीछा करता हुआ जा और उसके प्राण हर ले।

वह दीर्घ, तीक्ष्ण तथा पत्राकार बाण, उस मायावी के वक्ष म जा लगा। तुरन्त वह (मारीच) अपने खुले मुँह से (हा लक्ष्मण ! हा सीते ! कहकर) पुकार उठा और अष्ट दिशाओ और उनमे परे भी प्रतिध्वनि करता हुआ एक पर्वत के जैसे गिर पडा।

ज्योही वह क्रूर राक्षस अपने यथार्थ रूप म मरकर गिरा, त्योही राम अपने उस भाई क बारे म, जिसने उस (हरिण को पकडने के) प्रयत्न को अहितकारी बताया था, सोचने लगे—मेरा वह भाई चतुर है। मेरे प्राणो के समान प्रिय है। मेरा वह चतुर अनुज मेरा उद्धार करनेवाला है।

फिर, रामचद्र ने उस मारीच की देह को निकट जाकर देखा, जो दिगत को अपनी पुकार से प्रतिध्वनित करता हुआ गिरा था, और स्पष्ट रूप स यह जान लिया कि वह वही मारीच है, जो पहले कलक रहित विश्वामित्र क महायज्ञ के समय आया था।

फिर, यह सोचकर वे (राम) चिंतित हुए कि दारुण बाण ज्योही उसके वक्ष म लगा, वह अपनी माया से मेरे कठ स्वर का अनुकरण करके पुकार उठा। वह ध्वनि सुनकर मेघ समान नयनोवाली (सीता) देवी चिंतित हुई होगी।

मेरा भाई इस (हरिण) को देखत ही समझ गया था कि यह मायावी मारीच है। वह मेरे पराक्रम को समझने की बुद्धि रखता है। अत , इस (मारीच) की पुकार के यथार्थ तत्त्व को (सीता को) वह समझा देगा। यो विचार कर राम स्वस्थचित्त हुए।

फिर, यह विचार कर कि यह (मारीच) केवल मरने क उद्देश्य से ही यहाँ नही आया होगा, हो न हो, कोई षड्यन्त्र करने का उपाय करक ही आया है, इसकी पुकार से कोई हानि उत्पन्न होने की सभावना है, अत , ऐसी कोई विपदा उत्पन्न होने के पूर्व ही पणशाला को लौट जाना उचित है। रामचद्र लौट पडे। (१—५२)

●

अध्याय ८

सीता-हरण पटल

शखो से पूर्ण अनुपम समुद्र के जैसे सुन्दर स्वरूपवाले (राम) क सबध म हमने वणन किया। अब सुरभिपूण पुष्पालकृत केशोवाली लता सदृश (सीता) देवी के सम्बन्ध म कहेगे।

मारीच ने अपने दाँत पीसकर, अपने कदरा क समान मुँह को खोलकर जो करुण पुकार की थी, वह ज्योही सीता के कानों मे पडी, त्योही वह वृक्ष पर से धरती पर गिरी हुई कोयल के समान व्याकुल होकर छाती पीटती हुई मूर्च्छित हो गई।

घने कुतलोंवाली वह (सीता) देवी अवलब से छूटी हुई लता के समान, और वज्र ध्वनि के श्रवण से भयभीत हुए सर्प के समान मूर्च्छित होकर धरती पर लोट गई। फिर,

(सज्ञा पाकर) रोती हुई कहने लगी—हा ! मैंने अज्ञान में पडकर हरिण को पकडकर लाने की बात कही और उनके फल स्वरूप अपने जीवन सर्वस्व को खो बैठी।

फिर, सीता ने लक्ष्मण से कहा—कलक रहित शुभगुणों से पूर्ण हमारे प्रभु राक्षस की माया से विपन्न ग्रस्त हो गये हैं—यह विषय जानने के पश्चात् भी उनके भाई, तुम अभी तक मेरे निकट ही खडे हो ? क्या यह उचित है ?

तब उस सत्यनिष्ठ (लक्ष्मण) ने समझाया—क्या आपका यह कथन उचित है कि इस लघु ससार में राम से भी अधिक पराक्रमी व्यक्ति है ? स्त्रीजनोचित बुद्धि के कारण ही आपने ऐसा कहा है।

हे स्त्रीत्व गुण से पूर्ण देवि ! सप्त समुद्र चतुर्दश भुवन, सप्त कुलपर्वत, इन सब प्रदेशों के निवासियों के क्षुद्र बल से क्या युद्ध में राघव का विशिष्ट पराक्रम कभी घट सकता है ? (अर्थात् , कम नहीं हो सकता है।)

भूमि, जल, पवन, आकाश और अग्नि नाम के जो पदार्थ हैं, वे सब उन (राम) के क्रोध करने पर घबरा उठते हैं। मेघ सदृश काले वर्णवाले उन कमल नयन को आपने क्या समझा है, जो आप इस प्रकार व्याकुल हो रही हैं ?

क्या रामचद्र निशाचरों से परास्त एव विपदा ग्रस्त होकर दुहाई देंगे ? यदि कभी उन्हें वैसी दुहाई देनी भी पडे, तो सारा ब्रह्माड अस्तव्यस्त हो जायगा और ब्रह्मा प्रभृति सब जीव विनष्ट हो जायेंगे।

(उनके बल के विषय में) और क्या कहा जाय ? हमारे प्रभु रामचन्द्र, जिन्होंने भयकर त्रिपुरों को जला देनेवाले और भूमि और स्वर्ग के निवासियों के द्वारा प्रशसित शिवजी के धनुष को तोड दिया था, उनके बल की अपेक्षा अधिक बल क्या किसी में हो सकता है।

(हमारे) रक्षक (राम) यदि ऐसी दशा को प्राप्त हुए होते, जैसा आपने सोचा है, तो तीनों लोक विध्वस्त हो गये होते। देव और मुनि मिट गये होते। उत्तम धर्म भी विनष्ट हो गया होता।

अधिक कहने की क्या आवश्यकता है ? महिमामय प्रभु ने वहाँ पर शर का प्रयोग किया है। उससे आहत होकर वह राक्षस वह दुहाई दे रहा है। उसके लिए आप द्रवीभूत होकर चिन्तित मत हो। निश्चिन्त होकर रहें।—यों लक्ष्मण ने कहा।

लक्ष्मण के इस प्रकार कहने पर, सीता का क्रोध और उबल उठा। उसे मरण की सी वेदना होने लगी। उसका मन अत्यधिक घबरा उठा। वह निष्करुण होकर लक्ष्मण के प्रति कठोर शब्द कहने लगी कि तुम्हारा यों खडा रहना नीति मार्ग के अनुकूल नहीं है।

एक दिन का भी परिचय होने पर सच्चे बधु (अपने मित्र की सहायता के लिए) अपने प्राण तक देने को सन्नद्ध हो जाते हैं। किन्तु, तुम अपने ज्येष्ठ भ्राता को विपदा ग्रस्त जानकर भी निर्भय हो स्थिर खडे हो। मेरे लिए (इससे बुरी) और क्या गति हो सकती है ? अब मैं अग्नि में गिरकर अपने प्राण का त्याग करूँगी।

कमल के उद्यान में विहार करनेवाला हंस जिस प्रकार धुआँधार दावाग्नि में कूदने जाता हो, उसी प्रकार का कार्य करने के लिए प्रस्तुत (सीता) देवी की बातों को सुनकर उनकी रक्षा के लिए धनुष धारण करनेवाले (लक्ष्मण) ने उनके छोटे चरण कमलों के सम्मुख धरती पर गिरकर साष्टांग नमस्कार किया। फिर बोला—

आप प्राण त्याग करना क्यों चाहती हैं? आपकी बातों से मैं भयभीत हो रहा हूँ। (आपकी आज्ञा का) मैं उल्लंघन नहीं कर सकता हूँ। आप दुःख मुक्त होकर यहीं रहें। यह दास जा रहा है। कठोर विधि विधान को कौन रोक सकता है?

यह दास जा रहा है, कुछ अहित होने को है। आप कह रही हैं कि मैं प्रभु की आज्ञा का उल्लंघन कर यहाँ से जाऊँ। (मेरे जाने पर) आप अकेली रह जायँगी। इसलिए सावधान रहिए।—यों कहकर उत्तप्त मन के साथ विदा होकर लक्ष्मण वहाँ से चलने लगे।

उस समय लक्ष्मण यह विचार करते हुए चले कि यदि मैं यहीं रहूँ, तो ये अग्नि में गिरेंगी। यदि मैं पर्वत सदृश प्रभु के निकट जाऊँ, तो इनकी रक्षा न होने से कुछ अहित होगा। मुझे अपने प्राणों पर भी आसक्ति है। अब मैं क्या करूँ?—इस प्रकार सोचकर लक्ष्मण बहुत व्याकुल हुए।

यदि हो सके, तो धर्म से अहित को रोका जा सकता है। अज्ञ मैं, जो पूर्वकर्म के परिणाम के फलस्वरूप इस प्रकार का जन्म पाकर यहाँ आकर इस विपदा में ग्रस्त हुआ हूँ, इन सीता की मृत्यु का कारण बनूँ—इससे तो यही उत्तम है कि मैं इस स्थान से हट जाऊँ।

फिर, सीता से कहा—मैं जा रहा हूँ। यदि (अहित) घटित हुआ, तो गृध्रराज (जटायु) अपनी शक्ति भर आपकी रक्षा करेगा। (यह कहकर) देवताओं के पुण्य प्रभाव से महिमामय वह पुरुष श्रेष्ठ (लक्ष्मण) उसी मार्ग से चल पड़ा, जिससे राम गये थे।

लक्ष्मण के वहाँ से जाते ही खड्ग दंतोंवाला रावण, जो अवसर की ताक में छिपा बैठा था, अपनी रचना को सफल बनाने के उद्देश्य से बाँस का त्रिदंड लिये, अंतश्शत्रुओं (अर्थात्, काम, क्रोध और मोह) के बंधनों से मुक्त हुए तपस्वी का वेष धारण करके आया।

उपवास रखनेवाले के समान उसकी देह दुर्बल थी। बहुत दूर तक पैदल चलकर आनेवाले के समान उसमें थकावट दिखाई पड़ती थी। नृत्य के संगीत के जैसे ही अति शुद्ध तथा वीणागान के समान मधुर शैली में (साम) वेद का गान करता हुआ वह (रावण) आया।

वह इस प्रकार मन्द मन्द चलता था, जैसे पुष्पों की शय्या पर चल रहा हो। वह अपना पद इस प्रकार रखता था, मानो अग्नि कणों पर चल रहा हो। उसके हाथ और पैर अनियन्त्रित रूप से काँप रहे थे और उसमें अतिवार्द्धक्य दिखाई पड़ रहा था।

वह कमल के बीजों की एक जप माला हाथ में लिये हुए था। उसके पास कूर्माकार एक आसन भी था। उसका शरीर झुका हुआ था। उसके वक्ष पर यज्ञोपवीत

शोभासमान था। इस वेष में वह पवित्र व्रत धारणवाली उस अनन्यता (के समान पावन सत्यवाली सीता) के आवास-भूत कुटीर के समीप जा पहुँचा।

देवताओं का भी सुख करनेवाला (संन्यासी का) वेष धारण करके वह (रावण), उस कलकरहित पर्णशाला के द्वार पर पहुँचा और गद्गदित कंठ से बोला—इस कुटी में कौन है?

कलापी तुल्य वह देवी यह सोचकर कि कपट रहित मनवाले कोई तपस्वी आये हैं, इक्षुरस समान मधुर स्वर में यह कहती हुई कि 'पधारिए! पधारिए!' इस प्रकार उसके सम्मुख आ खडी हुई जैसे कोई प्रवाल लता हो।

उस (रावण) ने, लावण्य के भी लावण्य, यश के आगार और शील की मन्दिर उस देवी को अपनी आँखों से देखा और मदस्रावी मत्तगज के समान स्वर से भरकर लालसा रूपी वीचियों में पूर्ण कामना समुद्र में डूब गया।

अशिथिल कोकिल स्वर से युक्त देव स्त्रियों में भी उत्तम रूपवाली वह (सीता) देवी ज्योंही उसके सम्मुख प्रकट हुई, उस (रावण) के विरह तप्त मनकी क्या दशा हुई— इसके बारे में क्या वर्णन करें? उसकी शक्तिशाली भुजाएँ फूल उठीं और फिर कृश हो गईं।

उसकी नयन पंक्ति, वन मयूर जैसी (सीता) के सौंदर्य के दर्शन से, पुष्पों के समृद्ध मधु का छककर पान करके गानेवाले भ्रमरों के समान आनंद से मत्त हो उठी— ऐसा कहने में क्या बड़ाई होगी? उसके मन के जैसे ही उसकी आँखें भी आनन्दित हो गईं।

वह (रावण) यह सोचता हुआ कि अरुण कमल के समान को तजकर मेरे ये बीस नयन यहाँ आई हुई इस सुन्दरी के रत्न कांति से युक्त लावण्य को देखने के लिए क्या पर्याप्त हैं? हाय! मेरे एक हजार अपलक आँखें नहीं हैं।—व्याकुल हो खड़ा रहा।

उसने सोचा—कलाइयों पर कंकण पंक्तियों से शोभित होनेवाली इस नारी रत्न के साथ क्रीडा करते हुए आनंद के अपार समुद्र में निमग्न होने के लिए क्या कठोर तपस्या के प्रभाव से प्राप्त, साढ़े तीन करोड़ वर्ष की मेरी आयु भी पर्याप्त होगी।

(फिर, उसने सोचा) अब मैं इस सुन्दरी को तीनों लोकों की सम्राज्ञी बना दूँगा। सब सुर और, असुर अपनी पत्नियों के साथ इसकी सेवा में निरत रहकर जीवन व्यतीत करेंगे। और, मैं भी इसकी सेवा करता हुआ रहूँगा।

(उसने यह भी विचार किया) दुःख के समय में ही जब इसका मुख इतना लावण्यपूर्ण है, तब किंचित् दंत प्रकाश से युक्त मंदहास फैलने पर इसका मुख कितना मनोहर लगेगा? मैं अपनी उस बहन (शूर्पणखा) को, जिसने इस पुष्प भरित कुंतलोंवाली का अन्वेषण कर मुझे इसकी पहचान दी है, अपना राज्य दे दूँगा।

वह (रावण) उस स्थान पर आकर इसी प्रकार के विविध विचार करता हुआ मन में अनुचित इच्छा भरकर खड़ा रहा। उसे देखकर अस्खलित शीलवाली सीता ने अपने अश्रु पोंछ लिये और कहा कि इस आसन पर आप आसीन हो जायें। (और एक आसन डाल दिया।)

सीता न उसका स्वागत करक एक वत्रासन डालकर उसपर आसीन हाने का कहा। तब अपने बडे त्रिदड को पाश्व म रखकर वह कपटी सन्यासी उस सुन्दर पणशाला म बैठ गया। उस समय—

पर्वत और वृक्ष थरथरा उठे। कठार पापकर्म करनवाल उस राक्षस को दखकर पक्षी भी मौन हो रह। मृग भयभीत हुए। सप अपन फन को समटकर कहा छिप गय।

आसन पर बैठने क पश्चात् उसने (सीता से) प्रश्न किया—यह कौन सा स्थान है ? यहाँ निवास करनेवाले तपस्वी कौन ह ? इसक उत्तर म विशाल नयनावाली वह दवी, यह सोचती हुई कि यह कोई निष्कपट सन्यासी है, जो इस स्थान के लिए अजनबी है, कहने लगी—

ह महात्मा। दशरथ क प्रसिद्ध कुल म उत्पन्न उन प्रभु का नाम आपने सुना होगा, जा उत्तम कुल जात अपनी माता की आज्ञा को शिरोधार्य करक अपने भाई के साथ विना किसी दु ख के इस स्थान म आकर रहते ह।

फिर, रावण ने प्रश्न किया मैने (यह समाचार) सुना है, किन्तु उन्ह (अर्थात्, राम को) मन दखा नही ह। गगा क समृद्ध जल से सिचित (कोशल) देश को एकबार गया हूँ। नील कुवलय और बरछे के जैसे नयनोवाली तुम किनकी सुपुत्री हो, जो अपने अमूल्य समय को इस अरण्य म व्यतीत कर रही हो ?

तब कलकहीन शीलवती उस (सीता) देवी ने उत्तर दिया—अनघ माग पर चलनेवाले हे यतिवर। म उन जनक की पुत्री हूँ, जिनका मन आप (जैसे मुनिया) के अतिरिक्त अन्य दवता का ध्यान भी नही करता। मेरा नाम जानकी है। म काकुत्स्थ की पत्नी हूँ।

फिर, उत्तम आभरण भूषित सीता ने पूछा—आप अत्यत वृद्ध ह। कमभाग से मुक्ति पाने की इच्छा रखनेवाले आप कहाँ से इस समय, इस कठोर वन माग का पार करक आये हे ?

तब रावण कहने लगा (ऐसा एक व्यक्ति ह), जो इन्द्र का भी इन्द्र ह (अथात्, इन्द्र से भी बढकर प्रभावशाली), (चित्र म) अकित करने क लिए असाध्य सौदय से युक्त है। चतुर्मुख (ब्रह्मा) क वश म उत्पन्न हे, स्वग सहित सब लोको पर शासन करनेवाला है ओर जिसकी जिह्वा वेदो क मन्त्रो का आवास है।

जा ऐसी शक्तिवाला है कि उसने पूर्वकाल म शिवजी क विनाशभूत महान् कैलासगिरि का जड सहित उखाड लिया था। जिसको भुजाएँ ऐसी ह कि (उन भुजाओं ने) दिशाओ को वहन करनेवाले गजो पर आघात करक उनके दाँतो को चूर चूर कर दिया था।

जिसके द्वार के रक्षक स्वय देवता ह। जिसकी महिमा का गान करने की शक्ति शब्दो म नही हे। जिसके अधीन कल्पतरु आदि देवलोक की सब विभूतियाँ ह। जिसका सुन्दर निवास स्थान गम्भीर समुद्र से आवृत स्वर्णमय लका नगरी है।

जिसके वैभव से आकृष्ट होकर सुन्दर मन्दहास से युक्त तिलोत्तमा आदि अप्सराएँ

स्वर्गलोक को छोड़कर (उसकी लंका में) आ गये हैं और (उसकी सेवा में रहकर) उसका पानदान उठाना, (उसके) पैर सहलाना उसकी पादरक्षा लाना इत्यादि कार्य करती रहती हैं।

चन्द्रमा और सूर्य, उसके मन को देखकर (उसके अनुसार) सञ्चरण करते हैं दिव्यकांति से युक्त इंद्र आदि देवता, उस लोक में स्थित उसके मेघस्पर्शी प्रासाद की रखवाली करते हैं।

इस धरती पर स्थित उसकी उस लंकापुरी में जो स्वर्णमय अमरावती से भी बढ़कर है, नागलोक की राजधानी और इस विशाल भूलोक के सब नगरों से बढ़कर सुन्दर है, रहनेवाली सब वस्तुएँ दोषरहित हैं।

कमलभव (ब्रह्मा) के द्वारा दिये गये वर के प्रभाव से वह अनन्त आयुवाला है। वह अपने विशाल कर में, अर्धाङ्ग में अपनी स्त्री को धारण करनेवाले (शिवजी) के द्वारा प्रदत्त करवाल रखता है। उसने सब ग्रहों को कारागार में बन्दी बना रखा है। वह सब गुणों में महान् है।

वह क्रूरता से रहित सदाचरणवाला है। विस्तृत शास्त्र ज्ञान से युक्त है। तटस्थ स्वभाववाला है (अर्थात्, पक्षपात से हीन बुद्धिवाला है)। उसका यौवन ऐसा है कि उसे देखकर मन्मथ भी (आश्चर्य से) स्तब्ध रह जायें। सब लोकों के निवासी जिन त्रिदेवों को अपने देवता मानते हैं, उन (त्रिमूर्तियों) की समस्त शक्ति से वह संपन्न है।

सब लोकों में रहनेवाली असंख्य सुन्दरियाँ उसकी कृपा को प्राप्त करने की लालसा रखती हैं। उसका ध्यान करती हुई वे सुन्दरियाँ कृश होती रहती हैं। तो भी वह उन सब की उपेक्षा करके अपने हृदय को मुग्ध करनेवाली एक रमणी को खोज रहा है।

इस प्रकार के पुरुष द्वारा शासित उस वैभव पूर्ण नगरी में कुछ दिन निवास करने की इच्छा से मैं वहाँ गया। दीर्घकाल तक वहीं रह गया। अब उस (पुरुष) से दूर होने की इच्छा न होते हुए भी किसी न किसी प्रकार वहाँ से चलकर इस स्थान में आया हूँ।— यों उस मायावी ने कहा।

तब सीता ने उस कपट सन्यासी से पूछा— अपने शरीर को भी भार माननेवाले हे मुनि श्रेष्ठ! वेदों तथा उन वेदों के ज्ञाताओं की कृपा की कामना न करके, लालच के साथ प्राणियों को खानेवाले उन क्रूरकर्मा राक्षसों के नगर में जाकर आप क्यों रहे?

अरण्य में स्थित महातपस्वियों के समीप जाकर आप नहीं रहे, जल संपत्ति से परिपूर्ण देशों में निवास करनेवाले पवित्र स्वभाववालों के ग्रामों में जाकर भी आप नहीं रहे। किन्तु, धर्म का स्मरण तक नहीं करनेवाले राक्षसों के मध्य जाकर रहे। यह आपने क्या किया?— इस प्रकार सीता ने कहा।

उस मर्यादाहीन (अर्थात्, धर्म की मर्यादा से परे रहनेवाले) ने यौवनवती देवी के कथन को सुना और उनकी निष्कपटता को देखा, जो यह कहते हुए भी कि वे राक्षस कठोर नेत्रवाले और भयंकर खड्गवाले हैं— भयविह्वल हो रही थीं। फिर यों उत्तर दिया— हे चन्द्रमुखि! राक्षस देवताओं के समान क्रूर नहीं हैं। हम जैसे व्यक्तियों के लिए वे अच्छे ही हैं।

उसके यह कहने पर सुन्दर आभरण भूषित सीता यह न जानने से कि माया म चतुर राक्षस कामरूपी है, उसपर कुछ सदह न करती हुई बोली— पापियो से स्नेह करनेवाले लोग पवित्र नही होते। विचार करने पर यही कहना पडेगा कि व भी (अर्थात् , पापियो से स्नेह रखनेवाले भी) उस पाप क भागी होत ह।

तब रावण न यह आशका करके सीता कदाचित् उसपर सदेह कर रही है, उस सदेह को दूर करने क विचार से दूसरे ढग स कहा कि तीनो लोको क विवकी पुरुषो के लिए उन बलशाली राक्षसो के स्वभाव क अनुकूल रहन के अतिरिक्त अन्य क्या आचरण सभव हो सकता ह?

(दूसरो की) मनोदशा को पहचाननेवाले उस मायावी के यह कहने पर सद्गुणो म बडी हुई देवी ने कहा—धर्म क रक्षक उदार गुणवाले वे (रामचन्द्र) जबतक इस अरण्य म तपस्साधना करते रहेगे, तबतक पाप कर्म से जीनेवाले राक्षस अपने बधु सहित मर मिटेंगे। उसके पश्चात् ससार क कष्ट भी मिट जायेंगे।

हरिण समान उस सीता क यह कहते ही वह (रावण) बोल उठा— ह मीन जैसे चमकते नयनोवाली। यदि मनुष्य, राक्षसो का समूल नाश करनेवाले हो तो (इसका अर्थ यह हुआ कि) एक छोटा खरगोश हाथियो के झुड को मार देगा और एक हिरण का बच्चा वक्र नखोवाले सिंह को मार देगा।

तब सीता ने कहा—घनीभूत विद्युत् पुज जैसे केशोवाले विराध तथा क्रोध के ताप से भरे मनवाले विजयी खर आदि राक्षसो के (राम हाथो) मरने का समाचार कदाचित् आपने नही सुना है। यह कहकर राम को उस समय जो क्लेश उठाना पडा था, उसका स्मरण करके वह देवी आँखो से अश्रु की वर्षा करने लगी।

फिर, आगे उन देवी न कहा—आप कल ही देखेंगे कि प्रतापी सिंह सदृश मेरे प्रभु से लका के निवासी अपने कुल सहित कैसे मिटते ह और देवो की उन्नति कैसे होती है। क्या अवारणीय धर्म को पाप जीत सकता ह? आप, दोषहीन मुनिवर क्या यह नही जानते?

वह रावण, जिसका मासल शरीर (सीताजी की) मधुमिश्रित अमृत जैसी अति मृदुल वाणी के उसके कानो म पडने स फूल उठा था, अब इस वचन को सुनकर कि मानव अधिक बलवान् है, अभिमान क उमडने से क्रोध से भर गया।

उस क्रोधी ने कहा—एक मनुष्य ने (अर्थात् , राम न) धनुबल म क्षुद्र उन राक्षसो को मारा। यदि तुम इस बात की बडाई करती हो, तो कल ही तुम इसका परिणाम देखोगी कि (रावण की) बीस भुजाओ की हवा मात्र लगने से वह मनुष्य (अर्थात् , रामचन्द्र) सेमर की रूई के जैसे उड जायगा।

निरर्थक वचन कहनेवाली ह मुग्धे। यदि मेरु पर्वत को उखाडना हो, ब्रह्माड के खप्पर को तोड देना हो, समुद्र के जल को आलोडित करना हो, अथवा पृथ्वी को उठा लेना हो, इस प्रकार के अनेक कार्य करने हो, तो भी रावण के लिए ये सब सुलभ हैं। उसके लिए कौन सा कार्य कठिन हो सकता ह? तुमने क्या समझकर ये बातें कही ह?

इस समय सीता के मन मे सदेह उत्पन्न हुआ कि यह कर्म के द्वन्द्व से युक्त मुनि

नही ह। फिर यह साचती हुई खडी रही कि यह कौन हा सकता है? इतने म वह कपट सन्यासी एसा बन गया जसा कोइ विषधर कालसर्प क्रोधानल स उत्पन्न होकर अपना फन फैलाकर खडा हो गया ह।।

(राम के वियोग से) पहले से ही अत्यन्त विषण्ण वह देवी, इस समय जिस प्रकार के दुख मे निमग्न हुई, यदि उसके बारे मे विचार करे, ता विदित होगा कि इससे बढकर अन्य कोई कही दुख हो ही नही सकता। उन देवी के पास ऐसा कोइ शब्द नहा रहा जिसे व धीरज के साथ उस राक्षस का कह सकें। उनसे कोई काम भी करते नही बनता था। व इस प्रकार विकपित हुई, जिस प्रकार यम के आने पर प्राण कॉपने लगते ह।

तब रावण ने कहा—देवता लाग भी मेरी सेवा करते ह। एसे मेरे पराक्रम का तुमने नहा जाना और (तुमने) मिट्टी के कीडे जैसे जीनेवाले मनुष्य का बलवान् कहा। तुम स्त्री हो, अत बच गई, नही तो म तुमको पीसकर खा डालता। पर यदि वैसा करने का विचार भी करूँ, तो मेरे प्राण मिट जायेंगे—(अथात् तुम्हे मार डालूगा, तो तुम्हारे वियोग म म भी मर जाऊँगा, अत तुम्हे नही मारूँगा)।

ह हंसिनि! भयविकम्पित मत हाओ। जो मेरे सिर इसके पहले किसी के सामने नही झुके, उनपर बारी बारी से, मुकुट के समान तुम्ह वहन करके म आनंदित होऊँगा। असख्य आभरणो से भूषित देव सुन्दरियाँ तुम्हारी चरण सेवा करेंगी। यो तुम चतुर्दश भुवन की सम्राज्ञी बनकर रहेगी।

ये वचन सुनते ही सीता ने झट अपने कर पल्लवो स कानो को बन्द कर लिया। फिर कहा—अरे राक्षस! मनोहर तथा भयकर धनुष का धारण करनेवाले उनके कर, तथा विजय से शोभायमान काकुत्स्थ के प्रति अनन्य प्रेम तथा पातिव्रत्य रखनेवाली मेरे प्रति तू ने ससार के उत्तम धर्म की उन्नति के लिए प्रज्वलित वह्नि म पवित्र ऋषियो के द्वारा देने योग्य हवि को खाने की इच्छा करनेवाले कुत्ते जैसे (हाकर), क्या कहा?

घास की नोक पर रहनेवाली ओस की बूंद के जैसे क्षण भगुर जो प्राण ह, उनके खा जाने के भय मे क्या म उत्तम कुल के योग्य आचरण का त्याग दूँगी? यह सभव नही। यदि तू अपने प्राणो की रक्षा करना चाहता ह, ता बिजली के जैसे चमकते हुए वज्र के जैसे घोष करनेवाले तीक्ष्ण (राम के) बाण के लगने के पूर्व ही यहाँ से भाग जा।

सीता का यह वचन सुनकर उस क्रूर राक्षस ने कहा—दिशाओ का वहन करने वाले हाथियो के अतिदृढ दाँतो का तोडनेवाले मेरे वक्ष पर यदि तुम्हारे पति का बाण आकर लगेगा, तो वह पर्वत पर गिरी हुई पुष्पमाला जैसा जान पडेगा।

लक्ष्मी के लिए भी लक्ष्मी होनेवाली ह सुदरि! तुम्हारे प्रति उत्पन्न प्रेम की व्याधि के कारण मेरा शरीर दुर्बल हो रहा है। मुझे प्राण दान करो और स्वर्गवासिनी घन केशोवाली अप्सराओ के लिए भी दुर्लभ पद को प्राप्त करो—यो कहकर भूधर से भी दृढ भुजावाले रावण ने उसे नमस्कार किया।

ज्योहि वह (रावण) सीता के चरणो का प्रणाम करने के लिए झुका त्योहि

क्षमा की मूर्त्ति और अनुपम सुन्दरी वह देवी, इस प्रकार व्याकुल होकर जैसे मर्मस्थान में रक्ताञ्चित खड्ग धँस गया हो, हे प्रभु ! हे अनुज ! कहकर पुकार उठी।

उस समय उस क्रूर (रावण) ने, पहले दिये गये अपने इस शाप[1] का स्मरण करके कि उसे परनारी का स्पर्श (उसकी इच्छा के बिना) नहीं करना चाहिए, अपनी स्तंभ जैसी बलवान् एवं ऊँची भुजाओं से उस आश्रम के स्थान को ही नीचे से एक योजन पर्यन्त खोदकर उठा लिया।

(इस प्रकार सीता को उसके आश्रम के साथ) उठाकर उसने अपने रथ पर रख लिया। सुन्दर कंकण भूषित सीता ने रावण का यह कार्य देखा। किन्तु, अपने प्राणों (के समान प्रभु) को नहीं देखा। वह इस प्रकार मूच्छित हो गिर पड़ी जैसे मेघों से छूटकर कोई बिजली धरती पर आ गिरी हो। तब उस (रावण) ने आकाश मार्ग से जाने का विचार किया। (१—७५)

●

अध्याय ९

जटायु-मरण पटल

रावण ने अपने सारथी से कहा कि रथ आगे बढ़ाओ। उस कथन को सुनकर सीता अग्नि में पड़ी हुई पुष्प लता के समान तड़पने लगी। वह नीचे गिरकर लोटती। विह्वल होकर काँपती। मूच्छित होती। पीडा से छटपटा उठती। 'हे धर्म देवता ! इस विपदा से शीघ्र मुझे बचाओ'—यों प्रार्थना करती।

(सीता कहती—) हे पर्वतो ! हे वृक्षो ! हे मयूरो ! हे कोयलो ! हे हरिणो ! हे हरिणियो ! हे हाथियो ! हे करिणियो ! हे मेरे कातर प्राणो ! तुम मेरे प्रभु के निकट शीघ्र जाओ और उन अचंचल बलवान् वीर से मेरा हाल कहो।

हे मेघो ! हे उद्यानो ! हे वनदेवताओ ! उत्तम वीर, वे मेरे प्रभु कहाँ हैं ? क्या तुम जानते हो ? यदि तुम मुझे अभयदान दो, तो मैं जीवित रह सकती हूँ—इससे तुम्हारी क्या हानि हो सकती है ?

हे वरद ! हे अनुज ! क्या आप (दोनों), कालमेघ के समान शरवर्षा करते हुए और राक्षस आदि क्रूर जनों का विनाश करते हुए यहाँ नहीं आयेंगे ? हे निष्कलंक भरत ! हे अनुज (शत्रुघ्न) ! क्या तुम अपयश के भागी बनोगे ?

---

१ यह कथा प्रसिद्ध है कि एक बार रंभा अपने प्रियतम कुबेर के पुत्र नलकूबर से मिलने के लिए जा रही थी। मार्ग में रावण ने बलात् उसको पकड़ लिया। तब रंभा और नलकूबर से रावण को यह शाप मिला कि यदि आगे कभी वह किसी स्त्री की इच्छा के विरुद्ध उसका स्पर्श करेगा, तो उसके सिर के टुकडे-टुकडे हो जायेंगे और पतिव्रता स्त्री के पातिव्रत्य की अग्नि में वह जल जायगा। उसी शाप के रहने से रावण ने सीता का स्पर्श नहीं किया।—अनु०

हे गादावार ! तू शीतल ह। त द्रवीभूत ह। तू माता समान ह। तरा अन्त करण स्वच्छ हे। तू दौडकर जा और कुछ न कहन पर भी (दशनमात्र स मन की बात) समझने की शक्ति रखनेवाल मरे प्रभु क निकट पहुँच जा और मुझ अभागिन का समाचार उन्हे दे।

सम्मुख दिखनेवाल ह निझरा। पवत कदराओ म निवास करनेवाल मित्र ! तुम (मेरे प्रभु का) यह समाचार दकर उनसे धरती के साथ मुझे उठा ल जानेवाल इस रावण की बीस भुजाओ और उसके दस शिरो को विध्वस्त कराके आनदित होओ।

इस प्रकार क विविध वचन कहकर मुक्त होने की इच्छा स रोनेवाली सीता को देखकर, अपने जीवन क दिनो का व्यथ करनेवाले उस रावण ने कहा—ह स्वणहारो से भूषित सयुत स्तनोवाली ! स्वणमय कर्णाभरणो से शोभायमान ह सुन्दरि ! व मनुष्य क्या युद्ध मे मुझे मारकर तुम्हे मुक्त कर सकग ? और, अपने बालष्ठ हाथो से ताली बजाकर ठठाकर हँस पड़ा।

उसके यो कहने पर सीता ने कहा—तूने माया स एक कपट हरिण बनाया। तरे प्राणो के लिए यम सदृश प्रभु को तूने आश्रम से बाहर भजने का उपाय किया। फिर आश्रम म घुसकर मुझे हरकर ले जा रहा है यदि उनस (अथात् राम से) युद्ध करने की शक्ति तुझम ह तो अपना रथ आगे न बढ़ा।

फिर सीता ने कहा—यदि तुम वीर होते तो, क्या यह सुनने क पश्चात् भी कि तुम्हारे कुल के राक्षसो को क्षणकाल म मारनेवाले और तुम्हारी बहन की नाक कान काटनेवाले मनुष्य अरण्य म ही हैं। (उन मनुष्यो क साथ युद्ध कर उन्हे मारे बिना), इस प्रकार माया करके मेरा अपहरण करते ? यह भय स उत्पन्न तुम्हारे मन की कायरता ही तो है ?

सीता के यह कहने पर रावण ने उससे कहा—ह नारीरत्न ! सुनो। बलहीन शरीरवाल क्षुद्र मनुष्यो के साथ यदि मै युद्ध करूँ, तो ललाट नत्र के पर्वत (हिमालय) को उठानेवाली मेरी भुजाओ का अपमान होगा। उस अपवाद की अपेक्षा ऐसी माया ही फलप्रद हे न ?

मनोहर नयनोवाली प्रतिमासमान सुन्दर देवी ने वह वचन सुनकर कहा—अपने कुल के जो शत्रु ह, उनक सम्मुख जाना अपमान ह। उनके साथ करवाल लेकर युद्ध करना अपमान हे। किन्तु, पतिव्रताओ को धोखा दना अपमान नही हे। अहो ! निष्करुण राक्षसो के लिए अपमान क्या है ? अपयश क्या है ?

इस समय, 'अरे ! तू कहाँ जा रहा है ? ठहर, ठहर'—यो गर्जन करता हुआ, आँखो से क्रोध की अग्नि उगलता हुआ, विद्युत् के जैसे चमकती हुई चोंच के साथ जटायु ऐसा आया, मानो मरु नामक स्वणमय पर्वत ही गगन मार्ग स उडकर आ गया हो।

उसके दोनो पखो क हिलने से ऐसा प्रभजन उठा कि उससे बडे बडे पवत अपने स्थान से उखडकर उडत और एक दूसरे से टकराकर चूर चूर होकर धूल बनकर उड गये। समुद्र का जल गगन म भर गया और जल और थल एकाकार हो गय। ऐसा लगता था, जैसे प्रलयकालीन पवन विश्व भर म फैल रहा हो।

वृक्ष अपनी सब शाखाओं के साथ धरती पर लंब हो गिर गये। गगन के मेघ, अंतरिक्ष में बहुत ऊपर कहीं उड गये। सर्प, यह सोचकर कि उग्र रूप गरुड ही नभोमार्ग से आ रहा है, अपने फन समेटकर छिप गये।

जटायु के दोनों पंखों की हवा के वेग के कारण, हाथी, शरभ आदि मृग, वृक्ष, रज, शिलाएँ तथा सब अरण्य उडकर अंतरिक्ष में भर गये। जिससे अंतरिक्ष और अरण्य दोनों स्थानांतरित से हो गये।

जटायु अपने विशाल तथा बलवान् पंखों को फैलाये, यह कहता हुआ आया कि पुरुषोत्तम (राम) की देवी को भूखंड सहित ऊँचे रथ पर रखे, तू कहाँ ले जा रहा है? मैं गगन को और सब दिशाओं को (अपने पंखों से) आवृत कर दूँगा (जिससे तेरे जाने का मार्ग नहीं रहे)।

गुणहीन उस (रावण) के यंत्रमय रथ की गति को रोकने के विचार से, सिंदूर जैसे लाल पैर और सिर एवं सन्ध्याकाश जैसे कंठ के साथ, कैलास पर्वत के जैसे आकार वाला गृद्धराज (जटायु) आ पहुँचा।

उस समय वहाँ आकर उस (जटायु) ने उस स्त्री रत्न को देखकर कहा—डरो नहीं। फिर यह जानकर कि (रावण ने सीता का) स्पर्श नहीं किया है, अपने उमडते क्रोध को किञ्चित् शान्त करके रावण से कहने लगा—

तू मिट गया। तू ने अपने बन्धुवर्ग सहित, अपने जीवन को जला दिया। अरे तू यह क्या करने लगा है? यह जान ले कि तू मर गया। इस देवी को छोडकर चला जा। यदि ऐसा करेगा, तभी जीवित रह सकेगा।

हे मूढ! तूने अपराध किया है। विश्व की माता समान देवी को तूने अपने मन में क्या समझा है? हे विवेकहीन! अब तेरा सहारा कौन है? (अर्थात्, विश्व की माता के प्रति अपराध करने पर तेरी रक्षा करनेवाला कोई नहीं रहा।)

हे राजन्! क्या तू नहीं जानता कि राम ने तेरे कुलवालों के साथ घोर युद्ध करके उनके प्राणों को यमराज का सुन्दर भोजन बनाया था और यम ने हाथों में भर भर कर नवीन भोजन पाकर आनन्द उठाया था?

तुझ को मारने के लिए दौडकर आनेवाले क्रोधी तथा घोर मत्तगज पर तू मिट्टी का ढेला फेंकना चाहता है। घोर विष को खाकर, भले ही तू यह न जाने कि वह (विष) प्राणहारी है, फिर भी क्या अपने प्राणों को स्थिर रख सकेगा?

तीनों लोकों के निवासी, देवेंद्र, त्रिमूर्ति, यम आदि सब राम के आगे ऐसे रहते हैं जैसे व्याघ्र के सम्मुख हरिण हों। अति उत्तम धनुर्धारी राम को जीतने की शक्ति किसमें है?

इस संसार में अपने कुल के साथ विनाश पाने का इससे बढकर अन्य कुछ उपाय नहीं है। इतना ही नहीं। दूसरे जन्म में भी (यह कार्य) घोर नरक देनेवाला है। तूने इस कार्य को अपने किस जन्म के लिए सुखप्रद समझा है?

ये मानव (राम और लक्ष्मण) त्रिदेवों में प्रधान तथा (सारी सृष्टि के) आदि

कारणभूत परमतत्त्व (अर्थात् , विष्णु) ही है। अत , इनकी समता किस देवता के साथ की जा सकती है ? तुझमे विवेक नहा है। अत , पागल होकर तूने यह अपराध किया है।

उस अविनाशी तत्त्व (अर्थात् , रामचन्द्र) के धनुष से शर के निकलते ही त्रिपुरो को जलानेवाले वृषभारूढ शिवजी की कृपा से प्राप्त तेरे वरदान और तेरी सारी विद्याएँ विनष्ट हो जायेगी।

स्वर्ग के राज्य म आनन्द पानेवाले चक्रवर्ती (दशरथ) के पुत्र (राम) अपना धनुष झुकाये हुए तेरे सम्मुख आ जायँ, तो उन्हे रोकना असभव होगा। मैं इस सुन्दर ललाट वाली देवी को उनके आवास म पहुँचा दूँगा। तू शीघ्र यहाँ से भाग जा। जटायु के इस प्रकार कहते ही—

रावण अपनी उज्ज्वल आँखो से चिनगारियाँ उगलने लगा। ओठ चबाते हुए उसने जटायु को देखकर कहा—अब ज्यादा बक वक मत कर। अब शीघ्र तू उन मानवों को दिखा।

सम्मुख आनेवाले ऐ गिद्ध। मेरे शर से तेरी छाती म बडा छेद न हो जाय, इसलिए तू अभी यहाँ से हट जा। गरम किये हुए लोहे म पडा हुआ जल उससे कदाचित् निकल भी आ जाये, किन्तु मेरे हाथो म पडी इक्षु समान बोलीवाली यह सुन्दरी मुक्त नही हो सकती, तू यह जान ले।

इस समय जटायु ने हसिनी तुल्य सीता को दुगुने डर म काँपती हुई देखकर कहा—हे माता। इस राक्षस की देह अभी टुकड टुकडे हो जायगी। अत , यह सोचकर कि प्रभु (राम), धनुष लेकर नही आये हैं, तुम चिंतित मत होओ।

तुम व्याकुल होकर मुक्ता के समान अश्रुओ को अपने मुख पर से स्तन तटा पर गिराती हुई दु ख मत करो। इसके दस शिरो को ताड के फलो के गुच्छे के समान मै तोड दूँगा और इसके द्वारा वशीभूत दसो दिशाओ को (उन शिरो को) मैं बलि के रूप म अर्पण करूँगा।

फिर जटायु, रावण के शिरा की पक्ति का गरजते मुँह से काटकर गिराने के लिए अपने पखो से वज्र की ध्वनि उत्पन्न करते हुए शीघ्र उडकर आया और रावण की मनोहर, विशाल, वीणा के चित्र से युक्त ध्वजा को तोडकर देवो के आशीर्वाद का पात्र बना।

रावण, जो पहले कभी इस प्रकार के अपमान का भाजन नही बना था, उस समय अपनी आँखो को पिघली लाख जैसे लाल करके ठठाकर हँस पडा और सप्तलोको को भयभीत करते हुए पर्वत के जैसे अपने धनुष को एव अपनी भौहो को झुका लिया।

अर्धचन्द्र के जैसे वक्र खड्ग दतोंवाले उस (रावण) के शरो की घोर वर्षा जटायु पर होने लगी। जटायु ने कुछ शरो को अपने दृढ नखो से तोड दिया, कुछ शरो को यम का भी भयभीत करनेवाली चोच से छिन्न भिन्न कर दिया।

विशाल और भयकर आँखोवाले असख्य सर्पों को एक साथ मिटानेवाले गरुड के समान जटायु, (रावण के) दशो शिरो पर अपनी चोच नामक चक्रायुध को बढाकर, उसके पुन अपने धनुष को झुकाने के पूर्व ही उसके निकट पहुँच गया और उसके कुडलो को छीनकर उड गया।

तब बडा गर्जन करता हुआ रावण ने, चौदह बाणों को जटायु के विशाल वक्ष पर इस प्रकार छोडा कि वे (बाण) उसके वक्ष को भेदकर पार हो गये। फिर, उसपर अनेक बाण और छोडे। देवता, यह सोचकर कि जटायु अब गिर गया भय कंपित होकर उष्ण नि श्वास भरने लगे।

वह गृद्धराज अपने घावो से रक्त की अविरल धारा बहाता हुआ उस मेघ के जैसा लगता था, जो धरती पर खर आदि राक्षसों के रक्त प्रवाह को समुद्र समझकर (उसे) पीने के पश्चात् उस (रक्त रूपी) जल को बरसाकर श्वेत वर्ण हो रहा हो।

इस प्रकार का जटायु क्रुद्ध हुआ। नि श्वास भरा। रावण की बीस भुजाओ के मध्य झपटा। अपनी चोच से मारा। नखो से खरोचा। अपने पखो से आघात किया और उस (रावण) के मुक्ताहार भूषित वक्ष पर के कवच के बधनो को ढीला कर दिया।

यो अपने कवच को ढीला करनेवाले जटायु पर रावण ने एक सौ बाण चलाये। तब देवता भी भय विकंपित हुए। इतने म जटायु ने उछलकर रावण के धनुष को चोच से पकडकर छीन लिया। यह देखकर देवता हर्षध्वनि कर उठे।

उज्ज्वल रजताचल (हिमाचल) को उसपर निवास करनेवाले शिवजी सहित अपने बलवान् कधो पर उठानेवाले उस (रावण) के धनुष को जटायु ने अपनी चोच से पकडकर खीच लिया और ऊपर उडा, तो वह इन्द्र धनुष के साथ गगन मे उडनेवाले मेघ के समान लगा। उस (जटायु) के बल का वर्णन कौन कर सकता है?

जिस रावण ने (युद्ध म) कभी अपनी पीठ न दिखानेवाले सहस्रनेत्र (इन्द्र) को भी अपने शस्त्र से पीडित किया था और भगा दिया था, उस (रावण) के धनुष को उस जटायु ने अपनी चोंच से छीन लिया और अपने पैरो से तोड दिया। जो (जटायु) रक्तवर्ण देव (शिव) के धनुष का अपने हाथो से तोड देनेवाले (राम) का सहायक था और उनके पिता का प्रिय मित्र था।

विश्वकटक रावण, अपने बल के योग्य उस धनुष को टूटते हुए देखकर क्रुद्ध हुआ और अपने पराक्रम में कुठित न होकर, विषकठ (शिव) के त्रिपुर दाह करनेवाले अनुपम शर के समान (भयकर) शूल को उठाकर जटायु पर प्रयुक्त किया।

तब गृद्धराज ने, इस विचार से कि वह (रावण) कही मुझे शक्तिहीन न समझ ले, यह कहते हुए कि, देख मेरी शक्ति को, उस (रावण के) त्रिशूल को अपनी छाती पर रोक लिया। तब स्वर्ग के निवासी (देवता) यह सोचकर कि इस प्रकार का कार्य करने वाला पराक्रमी दूसरा कोई नही है, अदृश्य खडे रहकर ही अपनी भुजाएँ ठोंकने लगे।

वह त्रिशूल (जटायु के वक्ष से टकराकर) इस प्रकार लौट आया, जिस प्रकार, धन पर लक्ष्य रखनेवाली वारनारियो की सगति की कामना करनेवाले निर्धन पुरुष (उन वारनारियो के पास से) लौट आते हैं, मधुर दृष्टि रखनेवाली गृहिणी विहीन[1] गृहों मे

[1] अतिथि उसी घर में आतिथ्य पाना चाहते हैं जहा गृहिणी मीठी वाणी से उनका स्वागत-सत्कार करती है अन्यथा अतिथि लौट जाते हैं।—अनु०

जानेवाले अतिथिजन (आतिथ्य सत्कार न पाकर) लौट आते ह और आत्मदशी योगियों के पास जानेवाली मनोहर कामिनियाँ (विफल होकर) लौट आती ह।

शूल के व्यर्थ हो जाने पर रावण शीघ्र ही कोइ दूसरा शस्त्र उठाकर प्रयुक्त करे, इसके पूर्व ही जटायु ने, रावण के, गगन को आवृत करनेवाले तथा ऊँचे अश्व जुत रथ पर स्थित सारथि का शिर काट दिया और पतिव्रता रत्न (सीता) पर आसक्त होनेवाले उस रावण के मुख पर, उसे दु खी करते हुए, (उस शिर को) फेंक दिया।

इस प्रकार (शिर को) फेंकनेवाले के कार्य को देखकर रावण ने उस (जटायु) की हृदय की धीरता को समझ लिया और अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपनी अभ्यस्त (अथात्, जिसका प्रयोग करने का वह अच्छा अभ्यासी था ऐसी) स्वर्णगदा को उठाकर ऐसा आघात किया कि अग्नि की ज्वालाएँ निकल पडी। (उस आघात से) गृद्धराज धरती पर एक बडा पर्वत जैसा आ गिरा।

ज्योही जटायु धरती पर गिरा, त्योही रावण उत्तम अश्वो से युक्त अपने रथ को इतने वेग से चलाता हुआ कि (किसी की) दृष्टि भी उसका पीछा न कर सके, गगन म उड गया। तब मृदु स्वभाववाली सीता देवी इस प्रकार तडप उठी, जैसे किसी के घाव म अग्निकण प्रविष्ट हो गया हो।

कोमल पल्लव समान उस (सीता) देवी को शोक विह्वल होती हुई देखकर जटायु कह उठा—हे हसिनि। शोक म मत डूबो। निर्भय रहो—और नि श्वास भरता हुआ वह उठा। फिर (रावण से) यह कहकर कि अरे। अब तू बचकर कहाँ जायगा, उसके रथ पर झपटा, जिसे देखकर देवता हर्ष ध्वनि कर उठे।

इस प्रकार झपटकर उस (रावण) की विविध रत्न जटित गदा को छीनकर दूर फेंक दिया। अपनी चोच रूपी खड्ग को चला चलाकर (रावण के) रथ मे जुते अतिवेग-वान् सोलहों अश्वों को छिन्न भिन्न करके विध्वस्त कर दिया। वह दृश्य देखकर यम भी (भय से) हाथ कँपाता हुआ खडा रहा।

जटायु ने रावण के दृढ रथ को ध्वस्त करने के पश्चात् उसके दृढ कधों से बँधे उन तूणीरों को, जो गगनोन्नत थे और धनुष के टूट जाने से युद्ध के लिए अनुपयोगी होकर लोभी के धन कोष जैसे लगते थे, अपने तीक्ष्ण नखों से छीनकर फेंक दिया।

फिर, जटायु ने उसके वक्ष और कधो पर विचित्र ढग से आक्रमण करके अपने पखो से उसे मारा और चोच से काटा। तब रावण शक्तिहीन होकर मूर्च्छित हो गया और सिर झुकाये पडा रहा। उसे देखकर जटायु ने कहा—बस। इतनी ही तेरी शक्ति है?

उस समय, साकार शक्ति जैसे बरछे को धारण करनेवाला वह (रावण) क्रुद्ध हुआ और प्रयोग के योग्य अन्य कोइ शस्त्र न देखकर, जटायु के प्राणो का तत्क्षण अन्त कर देने के विचार से (लक्ष्य से) न चूकनेवाले अपने करवाल को उठाकर ठीक से चलाया।

वह दिव्य करवाल किसी के लिए अवारणीय था और किसीका भी सिर काट सकता था। जटायु की आयु भी क्षीण हो गई थी। अत , कभी शक्तिहीन न होनेवाला जटायु, देवेंद्र के कुलिश से आहत होकर पख हीन होकर गिरनेवाले पर्वत के समान गिर पडा।

तब बडा गर्जन करता हुआ रावण ने, चौदह बाणो को जटायु के विशाल वक्ष पर इस प्रकार छोड़ा कि वे (बाण) उसके वक्ष को भेदकर पार हो गये। फिर, उसपर अनेक बाण और छोडे। देवता, यह सोचकर कि जटायु अब गिर गया भय कपित होकर उष्ण नि श्वास भरने लगे।

वह गृद्धराज अपने घावो से रक्त की अविरल धारा बहाता हुआ उस मेघ के जैसा लगता था, जो धरती पर खर आदि राक्षसों के रक्त प्रवाह को समुद्र समझकर (उसे) पीने के पश्चात् उस (रक्त रूपी) जल को बरसाकर श्वेत वर्ण हो रहा हो।

इस प्रकार का जटायु क्रुद्ध हुआ। नि श्वास भरा। रावण की बीस भुजाओं के मध्य झपटा। अपनी चोच से मारा। नखो से खरोचा। अपने पखो से आघात किया और उस (रावण) के मुक्ताहार भूषित वक्ष पर के कवच के बधनो को ढीला कर दिया।

यो अपने कवच को ढीला करनेवाले जटायु पर रावण ने एक सौ बाण चलाये। तब देवता भी भय विकपित हुए। इतने म जटायु ने उछलकर रावण के धनुष को चोच से पकडकर छीन लिया। यह देखकर देवता हर्षध्वनि कर उठे।

उज्ज्वल रजताचल (हिमाचल) को उसपर निवास करनेवाले शिवजी सहित अपने बलवान् कधो पर उठानेवाले उस (रावण) के धनुष को जटायु ने अपनी चोच से पकडकर खीच लिया और ऊपर उडा, तो वह इन्द्र धनुष के साथ गगन मे उडनेवाले मेघ के समान लगा। उस (जटायु) के बल का वर्णन कौन कर सकता है?

जिस रावण ने (युद्ध म) कभी अपनी पीठ न दिखानेवाले सहस्रनेत्र (इन्द्र) को भी अपने शस्त्र से पीडित किया था और भगा दिया था, उस (रावण) के धनुष को उस जटायु ने अपनी चोच से छीन लिया और अपने पैरो से तोड दिया। जो (जटायु) रक्तवर्ण देव (शिव) के धनुष का अपने हाथो से तोड देनेवाले (राम) का सहायक था और उनके पिता का प्रिय मित्र था।

विश्वकटक रावण, अपने बल के योग्य उस धनुष को टूटते हुए देखकर क्रुद्ध हुआ और अपने पराक्रम मे कुठित न होकर, विषकठ (शिव) के त्रिपुर दाह करनेवाले अनुपम शर के समान (भयकर) शूल को उठाकर जटायु पर प्रयुक्त किया।

तब गृद्धराज ने, इस विचार से कि वह (रावण) कही मुझे शक्तिहीन न समझ ले, यह कहते हुए कि, देख मेरी शक्ति को, उस (रावण के) त्रिशूल को अपनी छाती पर रोक लिया। तब स्वर्ग के निवासी (देवता) यह सोचकर कि इस प्रकार का कार्य करने वाला पराक्रमी दूसरा कोई नही है, अदृश्य खडे रहकर ही अपनी भुजाएँ ठोंकने लगे।

वह त्रिशूल (जटायु के वक्ष से टकराकर) इस प्रकार लौट आया, जिस प्रकार, धन पर लक्ष्य रखनेवाली वारनारियो की सगति की कामना करनेवाले निर्धन पुरुष (उन वारनारियो के पास से) लौट आते हैं, मधुर दृष्टि रखनेवाली गृहिणी विहीन[1] गृहों मे

[1] अतिथि उसी घर में आतिथ्य पाना चाहते हैं, जहा गृहिणी मीठी वाणी से उनका स्वागत-सत्कार करती है अन्यथा अतिथि लौट जाते हैं।—अनु०

जानेवाले अतिथिजन (आतिथ्य सत्कार न पाकर) लौट आते है और आत्मदर्शी योगियों के पास जानेवाली मनोहर कामिनियाँ (विफल होकर) लौट जाती हैं।

शूल के व्यर्थ हो जाने पर रावण शीघ्र ही कोई दूसरा शस्त्र उठाकर प्रयुक्त करे, इसके पूर्व ही जटायु ने, रावण के, गगन को आवृत करनेवाले तथा ऊँचे अश्व जुते रथ पर स्थित सारथि का शिर काट दिया और पतिव्रता रत्न (सीता) पर आसक्त होनेवाले उस रावण के मुख पर, उसे दुःखी करते हुए, (उस शिर को) फेंक दिया।

इस प्रकार (शिर को) फेंकनेवाले के कार्य को देखकर रावण ने उस (जटायु) की हृदय की धीरता को समझ लिया और अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपनी अभ्यस्त (अर्थात्, जिसका प्रयोग करने का वह अच्छा अभ्यासी था ऐसी) स्वर्णगदा को उठाकर ऐसा आघात किया कि अग्नि की ज्वालाएँ निकल पड़ी। (उस आघात से) गृद्धराज धरती पर एक बडा पर्वत जैसा आ गिरा।

ज्योंही जटायु धरती पर गिरा, त्योंही रावण उत्तम अश्वों से युक्त अपने रथ को इतने वेग से चलाता हुआ कि (किसी की) दृष्टि भी उसका पीछा न कर सके, गगन में उड गया। तब मृदु स्वभाववाली सीता देवी इस प्रकार तडप उठी, जैसे किसी के घाव में अग्निकण प्रविष्ट हो गया हो।

कोमल पल्लव समान उस (सीता) देवी को शोक विह्वल होती हुई देखकर जटायु कह उठा—हे हंसिनि! शोक में मत डूबो। निर्भय रहो—और निःश्वास भरता हुआ वह उठा। फिर (रावण से) यह कहकर कि अरे! अब तू बचकर कहाँ जायगा, उसके रथ पर झपटा, जिसे देखकर देवता हर्ष ध्वनि कर उठे।

इस प्रकार झपटकर उस (रावण) की विविध रत्न जटित गदा को छीनकर दूर फेंक दिया। अपनी चोंच रूपी खड्ग को चला चलाकर (रावण के) रथ में जुते अतिवेगवान् सोलहों अश्वों को छिन्न भिन्न करके विध्वस्त कर दिया। वह दृश्य देखकर यम भी (भय से) हाथ कँपाता हुआ खडा रहा।

जटायु ने रावण के दृढ रथ को व्यस्त करने के पश्चात् उसके दृढ कंधों से बँधे उन तूणीरों को, जो गगनोन्नत थे और धनुष के टूट जाने से युद्ध के लिए अनुपयोगी होकर लोभी के धन कोष जैसे लगते थे, अपने तीक्ष्ण नखों से छीनकर फेंक दिया।

फिर, जटायु ने उसके वक्ष और कंधों पर विचित्र ढंग से आक्रमण करके अपने पंखों से उसे मारा और चोंच से काटा। तब रावण शक्तिहीन होकर मूर्च्छित हो गया और सिर झुकाये पडा रहा। उसे देखकर जटायु ने कहा—बस! इतनी ही तेरी शक्ति है?

उस समय, साकार शक्ति जैसे बरछे को धारण करनेवाला वह (रावण) क्रुद्ध हुआ और प्रयोग के योग्य अन्य कोई शस्त्र न देखकर, जटायु के प्राणों का तत्क्षण अन्त कर देने के विचार से (लक्ष्य से) न चूकनेवाले अपने करवाल को उठाकर ठीक से चलाया।

वह दिव्य करवाल किसी के लिए अवारणीय था और किसीका भी सिर काट सकता था। जटायु की आयु भी क्षीण हो गई थी। अतः, कभी शक्तिहीन न होनेवाला जटायु, देवेंद्र के कुलिश से आहत होकर पंख-हीन होकर गिरनेवाले पर्वत के समान गिर पडा।

जटायु धरती पर गिरा। उसके पख बिखरकर गिरे। देवता भय से भाग चले। मुनिगण आश्रयहीन से होकर विलाप करने लगे। बैकुठ के निवासी (जटायु पर) स्वर्ण वर्षा करने लगे। सीता (भय से) थरथरा उठी।

जटायु के आघात से जो (रावण) मूर्च्छित होकर लज्जित हुआ था, उसने अब अपनी हर्ष ध्वनि से गगन प्रदेश को भर दिया। जाल म फँसी हरिणी जैसी सीता चिन्तामग्न होती, नि श्वास भरती, मूर्च्छित होती, कोई आश्रय न पाकर अवलब से हीन लता के समान गिर पडती।

सीता यह सोचकर अपने साथी स वियुक्त क्रौंची क समान रो पडी कि मेरी सहायता करने के लिए आया हुआ गृद्ध राज भी मर मिटा। हाय। अब मेरी गति क्या होगी?

मूढ होकर मैने अनुज के वचनो का तिरस्कार कर उसे शीघ्र (आश्रम से) भेज दिया था। अब मेरे लिए युद्ध करनेवाले जटायु के मर जाने से मै स्तब्ध हो गई हूँ। न जाने अब विधि हमपर और क्या आपत्ति डालनेवाला है।

विपदा म पडी हुई मुझको देखकर जिस (जटायु) ने 'अभय' कहा था, ऐसा यह सद्गुण (जटायु) पराजित हो और नरक के योग्य (रावण) विजयी हो यह कैसी बात है? क्या पाप जीतेगा और वेद (अर्थात्, वेद प्रदिपादित धर्म) हारेगा? क्या धर्म कही नही रहा? इस प्रकार वह विलाप करने लगी।

मुझ, निर्लज्ज नारी के वचन के कारण (आश्रम से) गये हुए हे नरश्रेष्ठो। अनश्वर धर्ममार्ग पर चलनेवालो के लिए अवलब बना हुआ तथा आपके पिता का मित्र, जटायु, यहाँ पडा है। इसे देखने के लिए आइए— यो कहकर व्याकुल हो रोने लगी।

पातिव्रत्य की रक्षा करना मेरा धर्म है। किन्तु अकुठित शक्तिवाले तथा युद्ध मे निपुण मेरे प्रभु (राम) का धनुष अब अपयश का भाजन हो गया। मुझ जैसी पापिन के जन्म से मेरे कुल को अपयश उत्पन्न हुआ। इस प्रकार सोचती हुई सीता शोकमग्न हुई।

हे प्रकाशमय स्वर्ग लोक म भी अपना शासन चक्र चलानेवाले (दशरथ)। क्या अब आप सत्धर्म के मार्ग पर चलनेवाले, मित्रता के योग्य, पवित्र कर्त्तव्य को पूरा करनेवाले अपने भाई (जटायु) को, उस (स्वर्ग) लोक म गले लगानेवाले हैं? यह कहकर वह सिसक सिसककर रो पडी।

रावण ने, इस प्रकार विलपती हुई सीता की निस्सहाय दशा देखी और पखो के कट जाने से धरती पर पडे हुए गृद्धराज को भी देखा। फिर, यह सोचकर कि अब यहाँ से हट जाना ही उचित है, रथ पर रखे हुए भूखड को सीता सहित उठाकर अपने पुष्ट कधो पर रख लिया और गगन मार्ग मे चल पडा।

गगन म उस क्रूर के गमन वेग स वह पतिव्रता (सीता), जिनका मन और आँखे चकरा रही थी, प्रज्ञाहीन होकर, अपने को भी भूलकर भूमि पर गिर पडी।

रावण चला गया। जटायु मूर्च्छा से किंचित् ज्ञान पाकर, विशाल गगन में मायावी (रावण) का शीघ्रता से प्रस्थान देखता हुआ सोचने लगा—

पुत्र (अर्थात्, राम लक्ष्मण) नहा आये। जिस विधि न अपनी पुत्रवधू की कठोर वेदना को शान्त करने का यश मुझको नही दिया, उसने धर्म की बाड को ही तोड दिया। अब न जाने, आगे क्या होनेवाला हे।

विजयशील (राम लक्ष्मण) यदि यहाँ रहते, तो क्या बिजली जैसी सूक्ष्म कटि वाली एव स्वणककण भूषित सीता की यह दशा होती ? म नही जानता हूँ कि उन (राम और लक्ष्मण) को क्या हुआ है। क्या विमाता (कैकेयी) की वचना इस प्रकार समाप्त हो रही है ? (भाव यह है कि कैकयी ने जो काय सोचा था, वह इस प्रकार पूरा हो रहा है)।

आदिशेष के पर्यंक पर शयन करनेवाले अजन वर्ण भगवान् नारायण ही राम होकर अवतीर्ण हुए हैं। अत, क्रोधी तथा क्रूर राक्षस से व (युद्ध म) परास्त नही हो सकते। अतएव, इस राक्षम ने माया करके इस प्रकार धोखा दिया है।

मेरा तात (राम), राक्षस-कुल को जड से मिटा देगा और अपने इस अपयश को दूर करेगा। रावण कमलभव सृष्टिकर्त्ता (ब्रह्मा) क शाप से आक्रान्त ह, अत आर्य (राम) की देवी का स्पर्श करने से डरेगा।

विशाल पखोवाला जटायु इस प्रकार अनेक बातो का विचार कर फिर सोचने लगा—अब सीता कठोर कारागार मे बदी के रूप म रहेगी। भले ही मेरे युद्ध करने योग्य पख कट गये, किन्तु मीठी बोलीवाली सीता के पातिव्रत्य रूपी पख नही कटेंगे।

जटायु के पख, रक्त के प्रवाह मे भीगकर शिथिल हो गये। उसके मन म बडी ग्लानि उत्पन्न हुई, क्योंकि लता तुल्य कोमलागी (सीता) को वह छुडा नही सका। साथ ही, (उसके मन मे) कुमारों (अर्थात्, राम और लक्ष्मण) के प्रति प्रेम उमड उठा। जिससे वह प्रज्ञा रहित होकर अत्यन्त व्याकुल हुआ।

रावण सीता देवी को शीघ्र लका म ले गया और उन (सीता) की देह का स्पश करने से भयभीत होकर वहाँ के अशोक-वन मे, शिंशपावृक्ष के नीचे, विष के स्वभाव-वाली राक्षसियों के मध्य बदी बनाकर रखा।

उस राक्षस का (अर्थात्, रावण का) वृत्तान्त हमने कहा। अब हम उस अनुज (लक्ष्मण) का वृत्तान्त कहेगे, जो सीता की आज्ञा से, कि स्वर्ण हिरण के पीछे गये हुए प्रभु की दशा को जाकर देखो, गया था।

उसका मन इस व्यथा मे अत्यधिक धडक रहा था कि अनुपम सीता आश्रम म एकाकी रहती हैं। उस समय लक्ष्मण की दशा भरत की उस दशा सी थी, जब वह (भरत) अयोध्या की रक्षा करना छोडकर रामचन्द्र को अयोध्या लौटा लाने के लिए अरण्य म गया था।

स्वच्छ तरगो से भरे समुद्र म चलनेवाली नौका के समान, लक्ष्मण अतिशीघ्र गया। महान् रक्त कमल से युक्त विशाल कालमेघ-जैसे प्रभु को उसने देखा और उसके मन के जैसे ही उसकी आँखें भी आनदित हो उठी।

कालवर्ण प्रभु ने भी जिनका हृदय इस विचार से व्याकुल हो रहा था कि

भयोत्पादक मारीच ध्वनि के श्रवण से कलापी तुल्य सीता देवी स्त्री सुलभ अज्ञान क कारण कातर हो रही होगी, अपने अनुज को सम्मुख आते हुए देखा।

तब रामचन्द्र ने सोचा—शिथिल मन और तन के साथ यह लक्ष्मण, उसके (अर्थात् , राम लक्ष्मण के) वचन की उपेक्षा करके (माया मृग के पीछे आकर) थक जाने वाले मेरे निकट, मरी आज्ञा का उल्लघन करके अकेले आ गया है। कदाचित् मायावी राक्षस की दु खजनक पुकार को सुनकर और उसे धोखा न समझकर सीता ने इसे कठोर आज्ञा दी है, इसीसे मेरी दशा को जानने लिए यह आया है।

विधि विधान को टालने का क्या उपाय हो सकता है ?—यो सोचत हुए व खडे थे कि अनुज (लक्ष्मण), सुन्दर धनुष को हाथ में रखे हुए उनके निकट आ पहुँचा और उनके सुन्दर चरणों पर नत हुआ। तब ज्येष्ठ ने उसे झट उठाकर विद्युत् जैसे यज्ञोपवीत से शोभायमान अपने वक्ष से लगा लिया। फिर, द्रवितमन हो उससे पूछा—हे भाई ! तुम क्या सोचकर यहाँ आये ? तब लक्ष्मण ने उत्तर दिया—

अलौकिक और अनुचित एक ध्वनि सुनाई पडी, जिससे भीत होकर उन्होने (सीता ने) मुझे आज्ञा दी (कि मै आपके निकट आऊँ)। तब मैने उन्हे समझाया कि यह क्रूर राक्षस की पुकार है। किन्तु, उस (मेरे) वचन की उपेक्षा करके अत्यन्त व्याकुल होकर उन्होंने फिर कहा—यह क्या है, जानकर आओ। यहाँ मत खडे रहो। दुबारा मेरे समझाने पर भी कुछ न मानकर, आपकी भुजा के पराक्रम को भी विस्मृत करके, वे अधिक कातर हो उठी।

फिर, यह कहकर यदि तुम न जाकर यही खडे रहोगे, ता म अग्नि म जा गिरूँगी—अरण्य म दौडने लगी। तब मैं भयभीत हुआ। सोचा कि ये (सीता) मुझे वचक समझ रही हैं। यदि मैं यही खडा रहूँगा, तो ये आत्महत्या किये विना नही रहेगी। इन्हे नही मरना चाहिए, यह धम विरुद्ध होगा। इसलिए, मेरा यहाँ आना हुआ—इस प्रकार लक्ष्मण के कहने पर अमल प्रभु ने विचार किया—

वह (सीता) आत्महत्या किये विना नही रहेगी। उसकी मृत्यु को रोकना इसके लिए (लक्ष्मण के लिए) असभव था और भयभीत हुई सीता इसके वचन भी नही मान सकी। अहो ! रक्षा हीन आश्रम मे कोई विपदा हो सकती है। उसको रोकना असभव है। यह सब, हमे अलग करके, उस (सीता) को हरण कर ले जाने का उपाय करनेवाले मायावी राक्षसो का काय है।

फिर (राम ने) लक्ष्मण से कहा—यहाँ आने म तुम्हारा दोष कुछ नही। उस मुग्धा ने भ्रांत और व्यथा से कातर होकर जो किया, उसीका यह परिणाम है। तुमने पहले ही समझकर कहा था वह मृग—मायामृग है। किन्तु, उसकी उपेक्षा कर मैने जो काय करने का निश्चय किया, हाय ! उसीसे यह बुरा (परिणाम) हुआ।—यो कहकर चिंता म निमग्न हो रह।

फिर, राम ने कहा—समय व्यतीत हो रहा है। अब यहाँ खडे रहने से कुछ प्रयोजन नहीं। क्रौंची-जैसी उस (सीता) को जबतक मै नही देखूँगा, तबतक मेरी व्यथा

नही मिटेगी, नही मिटेगी। और, त्वरित गति से दीर्घ मार्ग को पार करके, नृप ने निकले शर के समान चले और स्वर्ण सदृश सीता के आवासभूत मनोहर पर्णशाला में जा पहुँचे।

इस प्रकार, राम आश्रम में लौटे आये। किन्तु, वहाँ फुलवारी के सघन पुष्पों से आभूषित कुंतलोंवाली (सीता) को न देखकर इस प्रकार स्तब्ध खडे रहे, जिस प्रकार प्राण शरीर को छोडकर बाहर जाकर फिर वापस लौट आये हो और अपने शरीर को न देखकर स्तब्ध खडे हो।

सुन्दर कर्णाभरण से भूषित सीता को न देखकर रामचन्द्र का मन विरक्त सा हुआ। वे इस प्रकार हो गये, जिस प्रकार कोई धनी व्यक्ति जिसकी भूमि में गाडी हुई सब सम्पत्ति को धूर्त व्यक्तियों ने हर लिया हो और जो जीवन के आश्रयभूत किंचित् धन से भी वञ्चित हो गया हो और भ्रांत होकर खडा हो।

उस समय धरती चकराने लगी। बडे बडे पर्वत चकराने लगे। दिव्य ज्ञान से युक्त सत्पुरुषों के हृदय चकराने लगे। वीची भरे सप्त समुद्र चकराने लगे। आकाश चकराने लगा। ब्रह्मा के नयन चकराने लगे। सूर्य और चन्द्र चकराने लगे।

समस्त लोक यह आशंका करते हुए थरथराने लगे कि यह महिमावान् (राम) धर्म पर क्रुद्ध होनेवाला है? या कृपा (नामक गुण) पर क्रुद्ध होनेवाला है? देवताओं के पराक्रम पर क्रुद्ध होनेवाला है? मुनियों पर क्रुद्ध होनेवाला है? क्रूर राक्षसों के अत्याचार पर क्रुद्ध होनेवाला है? वेदों पर क्रुद्ध होनेवाला है? न जाने, राम के क्रोध का परिणाम क्या होगा?

उस श्याम रूप (राम) की मनोदशा के परिवर्त्तित हो जाने से अपरिमेय (चर अचर रूप) वस्तुजाल, ऊपर के रहनेवाले नीचे और नीचे के रहनेवाले ऊपर होकर सब उसी प्रकार अस्त व्यस्त हो गये, जिस प्रकार प्रलय काल मे, सृष्टि के कारणभूत परमात्म तत्त्व में विलीन होने के लिए वे (सृष्टि के पदार्थ) अस्त व्यस्त होकर मिट जाते हैं।

तब अनुज (लक्ष्मण) ने रामचन्द्र को नमस्कार करके कहा—रथ के पहियो के चिह्नों को हम यहाँ देख रहे हैं। कोई राक्षस देवी का स्पर्श करने से डरकर यहाँ के भूखंड सहित ही उन्हें उठाकर ले गया है। अब निःशक्त से खडे रहकर व्यर्थ ही कुछ सोचते रहने से कुछ लाभ नहीं होगा। (उस राक्षस के) दूर जाने के पूर्व ही हम उसका पीछा करेंगे।

अमल रूप (राम) ने भी इससे सहमत होकर कहा—हाँ, यही उचित है। फिर, वे दोनों वीर अपने उज्ज्वल तूणीर आदि को लेकर उस मार्ग से होकर चल पडे, जहाँ से रावण का बडा रथ सुन्दर तथा बडे पर्वतों को चूर चूर करता हुआ गया था।

उस मार्ग में, उस राक्षस के रथ का चिह्न कुछ दूर तक जाकर फिर अदृश्य हो गया था और ऐसा लगा, जैसे वह रथ नभ में उठ गया हो। तब रामचन्द्र ने ऐसी व्यथा के साथ, जैसे जले हुए घाव में बरछा चुभ गया हो, कहा—ऐ भाई! अब हम क्या उपाय करें?

लक्ष्मण ने उत्तर दिया—मल्लयुद्ध के लिए सन्नद्ध, पुष्ट कंधोंवाले हे महिमामय! यह बात स्पष्ट विदित हो रही है कि वह रथ दक्षिण दिशा की ओर गया है। आपके धनुष

से निकलनेवाले शर के लिए गगन मडल भी कुछ बडा नही है। आपका इस प्रकार दुःख मे अधीर होना उचित नही है।

तब राम ने कहा—हाँ, तुम्हारा कथन ठीक ही है। फिर, वे दोनो दक्षिण दिशा की ओर गये। दो योजन दूर जाने पर वहाँ उन्होने ढहे हुए ऊँचे पर्वत के समान धरती पर गिरी हुई और वीणा के चित्र से युक्त पटवाली एक ध्वजा देखी।

उस ध्वजा को देखकर उन्होने विचार किया—कदाचित् सीता के निमित्त से देवा ने उन राक्षसो से युद्ध किया होगा। फिर, रामचन्द्र ने यह सोचकर कि (जटायु की) चोंच रूपी शस्त्र से ही यह उज्ज्वल ध्वजा टूटकर गिरी है। अपने कमल जैसे नयनो मे अश्रु भरकर कहा—

भाई। मेरा विचार है कि हमारे पितृतुल्य (जटायु) शीघ्रता से यहाँ आये होंगे और उनकी चोच से ही यह (ध्वजा) टूटी होगी। (जटायु) ने बड़े वेग से इसपर आक्रमण किया होगा। हमे विदित नहीं हुआ है कि उन्हे (अर्थात्, जटायु को) इस बीच में क्या हुआ। वे अकेले हैं और जरा से जीर्णदेह भी हैं।

तब लक्ष्मण ने कहा—बहुत ठीक है। यह निश्चित है कि अवार्य पराक्रम से युक्त वे (जटायु) आज दिन भर उस राक्षस को रोके खडे रहेंगे। हम भी शीघ्र उनके पास पहुँच जायँ। कदाचित् वे (जटायु) स्वय ही (सीता) देवी को मुक्त कर लायेंगे। अब अन्य कुछ सोचते हुए विलब करने से कुछ प्रयोजन नही है।

राम भी वैसे ही आगे बढने को सहमत हुए। फिर, वे दोनो धरती पर चक्कर काटकर बहनेवाली हवा (अर्थात्, बवडर) के जैसे, और चरखी के जैसे अतिवेग से बढ चले। इधर उधर दृष्टि डालते हुए जानेवाले उन वीरो ने एक स्थान पर, गगन से टूटकर गिरे हुए इन्द्र धनुष के समान और समुद्र से उठी हुई वीची के समान पडे हुए एक टूटे हुए विशाल धनुष को देखा।

तब रामचन्द्र ने लक्ष्मण से कहा—हे लक्ष्मण। यह धनुष देवताओं के द्वारा क्षीर सागर को मथने मे मथानी बनाये गये मन्दर पर्वत की समता करता है। चन्द्र की सी देहकांति वाले जटायु ने अपनी चोच से काटकर इसे ताड दिया है, उस (जटायु) की शक्ति भी कैसी है?

फिर, कुछ दूर जाने पर उन्होने एक स्थान मे एक त्रिशूल का और अनेक बाणों से पूर्ण दो तूणीरो को पर्वत जैसे पडे हुए देखा और उनके निकट गये।

फिर, आगे बढ़कर उन्होंने राक्षसराज के वक्ष पर से (जटायु के द्वारा) खीचकर नीचे गिराये गये उस कवच को देखा, जो ऐसा लगता था, मानो नभ मे सचरण करनेवाले सब ज्योतिष्पिड एकत्र होकर उस रूप मे वहाँ आये हो और जो अरण्य पथ को (अपनी विशालता और कांति से) आवृत करके पडा हुआ हो।

फिर, वे आगे बढकर उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ पवन के से वेगवाले घोडे, अरण्य प्रदेश को ढककर बिखरे पडे थे और सारथि भी मरा हुआ पड़ा था। वहाँ रक्त से युक्त मास खड भी बिखरे थे। फिर, वे उस स्थान पर आ पहुँचे, जहाँ जटायु ऐसे गिरा हुआ था, जैसे गगन ही धरती पर आ गिरा हो।

प्रलय काल म जिस प्रकार उज्ज्वल काति बिखेरनवाल अनेक सूर्यमडल मनोहर नभामडल को छोडकर धरती पर आ पडे हो, उसी प्रकार अनेक रत्नमय कुडल एव उत्तम रत्न जटित अनेक आभरण वहॉ बिखरे पडे थ। उन्हे दखकर व विस्मित हुए।

राम ने लक्ष्मण से कहा—ह भाइ! यहॉ अनेक अगद गिरे ह। उज्ज्वल कुडल भी अनेक गिरे हैं। रत्नमय किरीट अनेक गिरे हैं। अत निस्महाय वृद्ध जटायु क माथ युद्ध करनेवाले सिह सदृश वीर अनेक रह होगे।

लक्ष्मी के पति ने जब इस प्रकार कहा, तो सुमित्रा क सिह (सदृश पुत्र) ने कहा—वृक्ष-समान दीर्घ भुजाएँ अनेक हैं, शिर अनेक ह, हमारे तात (जटायु) से युद्ध करनेवाला और इतनी दूर तक ले आनेवाला एक ही था। वह रावण ही रहा होगा।

पुष्पहारो से भूषित अनुज की बात से सहमत होकर रामचन्द्र अपने दृढ मन तथा नयनो से क्रोधाग्नि उगलते हुए इधर उधर देखते हुए वह चले और वहॉ एक स्थान पर अपन शरीर से प्रवाहित रक्त धारा म, समुद्र म रखे पर्वत (मदर) जैसे पडे हुए तात (जटायु) को देखा।

उत्तम तथा अमल (रामचन्द्र), पुष्ट अरुण कमल जैसे अपन नयनो से अश्रु बहात हुए, अपने प्राणो के सदृश उपमाहीन, उदार, गुणवान् जटायु पर आकर इस प्रकार गिरे मानों अग्निवर्ण शिवजी के रजताचल पर कोई अजन पर्वत आ गिरा हो।

रामचन्द्र एक मुहूर्त्तकाल तक श्वास हीन पडे रह। लक्ष्मण ने यह आशका करके कि राम मूर्च्छित हो गये हैं, उनके समीप जाकर उनको अपने अरुण करो से उठाकर आलिगित कर लिया और निर्झर से जल लेकर उनके मुख पर छिड़का। तब राम ने अपने कमल समान नयन खोलकर धीरे-धीरे प्रज्ञा पाई और यो कहने लगे—

कौन पुत्र ऐसे हुए हैं, जिन्होने अपने पिता की हत्या की हो। मरे पिता मर विरह से पहले ही मृत्यु को प्राप्त हो गये। हे मेरे पितृतुल्य (जटायु)! मेरी सहायता करने आकर तुम भी प्राणहीन हो गये। हाय! मै पापी, इन (दोनो) की मृत्यु (का कारण) बन गया।

हे मेरी माता समान (जटायु)! यह न सोचकर कि म अकेला हूँ और यह भी विचार न करके कि आगे का परिणाम क्या होगा, मोह ग्रस्त होकर (मायामृग क पीछे) गया। मेरी पत्नी की विपदा से रक्षा करने क लिए आकर तुमने अपना कर्त्तव्य निबाहा। किन्तु मै, जो अपने कर्त्तव्यो को पूर्ण नही कर सका हूँ, किस प्रयोजन से व्याकुल होऊँ? (अर्थात्, अब मेरा रोना व्यर्थ ह।)

मुझे मर जाना चाहिए। किन्तु, वेदज्ञ मुनियो की इच्छाओ का पूर्ण करन का व्रत मैंने लिया हे। अत, अभी तक प्राण रख रहा हूँ। वृक्ष के जैसे बढा हूँ, किन्तु किंचित् भी प्रयोजन से रहित नीच कार्य करनेवाला हूँ। वचना के विषयभूत इस क्षुद्र जन्म को मै नही चाहता।

मेरी पत्नी के बन्दी हो जाने पर, उसे मुक्त करने क लिए लडकर महिमामय तुम, यो आहत होकर पडे हो। तुमको मारनेवाला वह शत्रु अभी जीवित हे। दृढ धनुष का और शरों को ढोता हुआ मै लबे पेड के जैसे खडा हूँ, खडा हूँ। अहो!

न निकलनवाले शर क लिए गगन मडल भी कुछ बडा नही ह । आपका इम प्रकार दु ख मे अधीर होना उचित नही ह ।

तब राम ने कहा—हॉ, तुम्हारा कथन ठीक ही है । फिर, व दोनो दक्षिण दिशा की ओर गये । दो योजन दूर जाने पर वहॉ उन्होने ढहे हुए ऊँचे पर्वत के समान धरती पर गिरी हुई और वीणा के चित्र से युक्त पटवाली एक ध्वजा देखी ।

उस ध्वजा को देखकर उन्होने विचार किया—कदाचित् सीता के निमित्त से दवो न उन राक्षसो से युद्ध किया होगा । फिर, रामचन्द्र ने यह सोचकर कि (जटायु की) चोंच रूपी शस्त्र से ही यह उज्ज्वल ध्वजा टूटकर गिरी है । अपने कमल जैसे नयनो मे अश्रु भरकर कहा—

भाई । मेरा विचार है कि हमारे पितृतुल्य (जटायु) शीघ्रता से यहॉ आये होंगे और उनकी चोंच से ही यह (ध्वजा) टूटी होगी । (जटायु) ने बडे वेग से इसपर आक्रमण किया होगा । हमे विदित नही हुआ है कि उन्हे (अर्थात् , जटायु को) इस बीच में क्या हुआ । वे अकेले हैं और जरा से जीर्णदेह भी हैं ।

तब लक्ष्मण ने कहा—बहुत ठीक है । यह निश्चित है कि अवार्य पराक्रम से युक्त वे (जटायु) आज दिन भर उस राक्षस को रोके खडे रहेगे । हम भी शीघ्र उनके पास पहुँच जायँ । कदाचित् वे (जटायु) स्वय ही (सीता) देवी को मुक्त कर लायेगे । अब अन्य कुछ सोचते हुए विलब करने से कुछ प्रयोजन नही है ।

राम भी वैसे ही आगे बढने को सहमत हुए । फिर, व दोनो धरती पर चक्कर काटकर बहनेवाली हवा (अर्थात् , बवडर) क जैसे, और चरखी के जैसे अतिवेग से बढ चले । इधर उधर दृष्टि डालते हुए जानेवाले उन वीरो ने एक स्थान पर, गगन से टूटकर गिरे हुए इन्द्र धनुष के समान ओर समुद्र से उठी हुई वीची के समान पडे हुए एक टूटे हुए विशाल धनुष को देखा ।

तब रामचन्द्र ने लक्ष्मण से कहा—हे लक्ष्मण । यह धनुष देवताओ के द्वारा क्षीर सागर को मथने म मथानी बनाये गये मन्दर पवत की समता करता है । चन्द्र की सी देहकाति वाले जटायु ने अपनी चोंच से काटकर इसे तोड दिया है, उस (जटायु) की शक्ति भी कैसी है ?

फिर, कुछ दूर जाने पर उन्होने एक स्थान म एक त्रिशूल का और अनेक बाणो से पूर्ण दो तूणीरो को पर्वत जैसे पडे हुए देखा और उनके निकट गये ।

फिर, आगे बढकर उन्होने राक्षसराज के वक्ष पर से (जटायु के द्वारा) खीचकर नीचे गिराये गये उस कवच को देखा, जो ऐसा लगता था, मानो नभ म सचरण करनेवाले सब ज्योतिष्पिंड एकत्र होकर उस रूप म वहॉ आये हो और जो अरण्य पथ को (अपनी विशालता और काति से) आवृत करके पडा हुआ हो ।

फिर, वे आगे बढकर उस स्थान पर पहुचे, जहाँ पवन क से वेगवाले घोडे, अरण्य प्रदेश को ढककर बिखरे पडे थे और सारथि भी मरा हुआ पडा था । वहा रक्त स युक्त मास खड भी बिखरे थे । फिर, वे उस स्थान पर आ पहुँचे, जहॉ जटायु ऐसे गिरा हुआ था, जैसे गगन ही धरती पर आ गिरा हो ।

प्रलय काल म जिम प्रकार उज्ज्वल काति विखेरनेवाल अनक सूर्यमडल मन हर नभामडल को छोडकर धरती पर आ पडे हो, उसी प्रकार अनेक रत्नमय कुडल एव उत्तम रत्न जटित अनेक आभरण वहाँ विखरे पडे थ। उन्हे देखकर व विस्मित हुए।

राम ने लक्ष्मण से कहा—ह भाई। यहाँ अनेक अगद गिर ह। उज्ज्वल कुडल भी अनेक गिरे हैं। रत्नमय किरीट अनक गिरे हैं। अत निस्सहाय वृद्ध जटायु क साथ युद्ध करनेवाले सिह सदृश वीर अनेक रह होगे।

लक्ष्मी के पति ने जब इस प्रकार कहा, ता सुमित्रा क सिह (सदृश पुत्र) ने कहा—वृक्ष-समान दीर्घ भुजाएँ अनेक हैं, शिर अनेक हे, हमारे तात (जटायु) से युद्ध करनेवाला और इतनी दूर तक ले आनेवाला एक ही था। वह रावण ही रहा होगा।

पुष्पहारो से भूषित अनुज की वात से सहमत होकर रामचन्द्र अपने दृढ मन तथा नयनो से क्रोधाग्नि उगलते हुए इधर उधर देखते हुए वहा चले और वहाँ एक स्थान पर अपन शरीर से प्रवाहित रक्त धारा म, समुद्र म रखे पर्वत (मदर) जैसे पडे हुए तात (जटायु) को देखा।

उत्तम तथा अमल (रामचन्द्र), पुष्ट अरुण कमल जैस अपने नयना से अश्रु वहाते हुए, अपने प्राणो के सदृश उपमाहीन, उदार, गुणवान् जटायु पर आकर इस प्रकार गिरे, मानों अग्निवर्ण शिवजी के रजताचल पर कोइ अजन पवत आ गिरा हो।

रामचन्द्र एक मुहूर्त्तकाल तक श्वास हीन पडे रह। लक्ष्मण ने यह आशका करके कि राम मूर्च्छित हो गये हैं, उनके समीप जाकर उनको अपने अरुण करो मे उठाकर आलिंगित कर लिया और निर्झर से जल लेकर उनके मुख पर छिडका। तब राम ने अपने कमल-समान नयन खोलकर धीरे धीरे प्रज्ञा पाई और यो कहने लगे—

कौन पुत्र ऐसे हुए हैं, जिन्होने अपने पिता की हत्या की हा। मेरे पिता मेरे विरह से पहले ही मृत्यु को प्राप्त हो गये। हे मेरे पितृतुल्य (जटायु)। मेरी सहायता करने आकर तुम भी प्राणहीन हो गये। हाय। मे पापी, इन (दोनो) की मृत्यु (का कारण) वन गया।

हे मेरी माता समान (जटायु)। यह न सोचकर कि मे अकेला हूँ और यह भी विचार न करके कि आगे का परिणाम क्या होगा, मोह ग्रस्त होकर (मायामृग क पीछे) गया। मेरी पत्नी की विपदा से रक्षा करने क लिए आकर तुमने अपना कर्त्तव्य निवाहा। किन्तु मैं, जो अपने कर्त्तव्यो को पूर्ण नही कर सका हूँ, किस प्रयोजन से व्याकुल होऊँ? (अर्थात्, अब मेरा रोना व्यर्थ है।)

मुझे मर जाना चाहिए। किन्तु, वेदज्ञ मुनियो की इच्छाओ को पूर्ण करन का व्रत मैंने लिया ह। अत, अभी तक प्राण रख रहा हूँ। वृक्ष के जैसे बढा हूँ, किन्तु किंचित् भी प्रयोजन से रहित नीच कार्य करनेवाला हूँ। वचना के विषयभूत इस क्षुद्र जन्म को म नही चाहता।

मेरी पत्नी के वन्दी हो जाने पर, उसे मुक्त करने के लिए लडकर महिमामय तुम, यो आहत होकर पडे हो। तुमको मारनेवाला वह शत्रु अभी जीवित है। दृढ धनुष को और शरों को ढोता हुआ मे लवे पेड के जैसे खडा हूँ, खडा हूँ। अहो।

अब मरे समान यशस्वी (इस ससार म) और कौन है ? ह दृढ पखोवाले। असख्य दॉतोवाले। पुरातन पाप से युक्त मेरी पत्नी के देखते हुए, शस्त्रधारी शत्रु ने तुमको मार दिया और चला गया। म धनुष हाथ म रखकर व्यर्थ ही जीवित हूँ। अहो, मेरी वीरता भी कैसी है।

अपना उपमान न रखनेवाले रामचन्द्र इस प्रकार के अनेक वचन कहकर अश्रु बहाते रहे और मूच्छित हो गये। अनुज (लक्ष्मण) की भी वैसी ही दशा हो गई। तब गृध्र राज कुछ कुछ प्रज्ञा पाकर बडी कठिनाई स सॉस लेने लगा और ऑखे खोलकर उन दोनों को देखा।

(सीता की क्या दशा हुई) यह वृत्तात कुछ न जाननेवाले व्याकुल प्राणो के साथ उष्ण श्वास भरनेवाले जटायु ने उन विजयी वीरो को देखा। उससे उसका मन ऐसा आनदित हुआ, जैसे उसके कटे हुए पख, प्रिय प्राण और सप्त लोक भी उसे प्राप्त हो गये हो। उसने ऐसा सोचा कि मैने शत्रु को ही जीतकर उमस प्रतिशोध लिया है।

फिर जटायु ने कहा—ह पुण्यात्माओ। मै अब अपने इस निष्प्रयोजन तथा अपयश क भाजन शरीर को त्याग रहा हूँ। सौभाग्य से ही इस समय तुम दोनो को देख सका हूँ। मेरे निकट आओ। फिर रावण क किरीटधारी शिरो पर चोट मार मारकर छिन्न हुई अपनी चोच से उनक शिरो को बारी बारी से कई बार सूँघा।

मरे मन ने पहले ही कहा था कि उस (रावण) का यहॉ आगमन माया से हुआ है। (अर्थात्, वह माया से तुमको धोखा दकर ही वहॉ आया)। फिर भी, अक्षुण्ण पराक्रम से युक्त तुम दोनो, मधुर बोलीवाली उस अरुधती को (अर्थात्, अरुधती तुल्य पतिव्रता सीता को) अकेली ही छोड़कर कैसे चले गये ?

उसके यह कहते ही कनिष्ठ (लक्ष्मण) ने मायामृग के आने से लेकर सारी घटनाओ का कह सुनाया।

रामचन्द्र की आज्ञा से वीर लक्ष्मण ने जब सब कह सुनाया, तब गृध्रराज ने सब सुनकर और यह विचार करके कि राम लक्ष्मण को उनके दु ख म कुछ सात्वना देना आवश्यक है, इस प्रकार के वचन कहे—

इस निदनीय जीवन के सुख दु ख विधि क वशीभूत है। कोई उनमे कुछ परिवर्त्तन नही कर सकता। इस तत्त्व को हम मानना पडेगा। यदि इसे नही मानेंगे, तो क्या अपनी बुद्धि के बल स विधि के विधान को मिटा सकेंगे ?

जब विधिवश विपदा उत्पन्न होती है, तब मन की धीरता का त्याग कर व्याकुल होना अज्ञता है। जिस नियति ने सारी सृष्टि के कर्त्ता के सिर को काटा था, उसके लिए असाध्य कार्य कुछ नही है।

जब सुख या दु ख उत्पन्न हो, तब यह कहना कि इसको हम रोक सकते हैं, असत्य वचन होगा (अर्थात्, कर्मफल से प्राप्त सुख को कोई रोक नही सकता)। त्रिपुरो को जलाने क लिए जिस (शिव) ने शर का प्रयोग किया था, उसने कपाल म भिक्षा मॉगकर खाते हुए तपस्या की थी। क्या यह उसके लिए योग्य था ?

फुफकार भरनेवाले घोर सर्प (राहु और केतु) गगन में उष्ण किरणों को प्रसारित करनेवाले (सूर्य) को निगलकर फिर उगल देते हैं। विशाल धरती के अंधकार को दूर करके उसे प्रकाशित करनेवाला चंद्रमा घटता बढता रहता है।

हे सुन्दर कंधोवाले ! विपदाओं का आना और जाना प्रारब्ध कर्म का परिणाम है। ज्ञानवान् देवगुरु (बृहस्पति) के शाप वचन से देवेंद्र[1] को जो विपदाएँ उठानी पडी क्या उन्हें कोई गिन सकता है ?

हे धनुर्विद्या में चतुर वीर ! जब अपार पराक्रमशाली शंबर नामक असुर के अत्याचारों से वज्रधारी इंद्र पराजित हुआ था, तब तुम्हारे पिता ने अपने पुष्ट कंधों के प्रभाव से उस असुर को मारा था।

(गीध, चील आदि) पक्षियों और ज्ञान रहित भूतों के लिए मातृ-तुल्य मांसगंध से युक्त माला धारण करनेवाला (अर्थात्, राक्षसों को युद्ध में मारकर उनके मांस का भोजन भूतों तथा पक्षियों को देनेवाला) उपेक्षित धर्म एवं देवताओं की विपदा ने तुम्हें मधुर बोलीवाली सीता से विलग किया है, अतः माया-युद्ध करनेवाले राक्षस नामक कांटेदार झाडियों को उखाडकर तुम जियो।

आम के टिकोरे के जैसे सुन्दर नयनावाली तथा दीर्घ केशपाशवाली (सीता) को रावण भूखंड सहित उठाकर ले जा रहा था। तब मैंने अपनी शक्ति भर उसे रोका किंतु उसने तपस्या के प्रभाव से प्राप्त करवाल से मुझे आहत कर दिया, जिससे मैं यों गिरा हूँ। आज ही यह घटना घटी है।—इस प्रकार जटायु ने कहा।

जटायु के कहे ये वचन कानों में प्रवेश करे, इसके पूर्व ही रामचन्द्र के अरुण नयन अग्नि उगलने लगे। उनके निःश्वास से चिनगारियाँ बिखरी। भौंहें ऊपर जा चढी। (उनके ऐसे क्रोध से) ज्योतिष्पिंड (सूर्य, चन्द्र आदि) भयभीत होकर भाग गये। ब्रह्मांड में अनेक स्थानों पर दरारें पड गईं। पर्वत ढह गये।

धरती घूम उठी। ऊँचे पर्वत घूम उठे। विशाल समुद्र जल, पवन और सूर्य चन्द्र घूम उठे। ऊपर के लोक में स्थित ब्रह्मा घूम उठा। तब यह सत्य स्पष्ट हुआ कि वह वीर (राम) ही सब प्रकार के पदार्थ हैं (अर्थात्, सृष्टि के सब पदार्थ उस राम के ही अनेक रूप हैं)।

यह सोचते हुए कि रामचन्द्र अपना क्रोध न जाने, किस पर उतारेंगे, सकल लोक भय से काँप उठे। उस समय लाल अग्नि ज्वालाएँ चिनगारियों तथा धुएँ के साथ सर्वत्र

१ पुराणों में यह कथा प्रसिद्ध है कि एक बार देवेंद्र ने अपनी संपत्ति से गर्विष्ठ होकर अपने गुरु बृहस्पति का निरादर किया, जिसपर क्रुद्ध होकर बृहस्पति कहीं अदृश्य हो गये। गुरु के न रहने से इन्द्र त्वष्टा के पुत्र विश्व-रूप को गुरु बनाकर स्वर्ग का शासन करने लगा। विश्व-रूप ने असुरों के प्रति प्रेम दिखाकर उन्हें यज्ञों में हविर्भाग दिया तो उसपर क्रुद्ध होकर इंद्र ने उन्हें मार डाला। तब त्वष्टा ने यज्ञ से वृत्र को उत्पन्न करके इंद्र के विरुद्ध भेजा। उसके साथ युद्ध में इंद्र ने अनेक कष्ट उठाये। पश्चात् दधीचि महर्षि की अस्थि का शस्त्र बनाकर उसे मारा। किन्तु, ब्रह्महत्या के कारण इंद्र को अनेक वर्ष तक राज्यभ्रष्ट होकर कष्ट भोगने पडे। इस पद्य में उसी कथा की ओर संकेत है। —अनु०

उठने लगी। एक ज्वलन्त अट्टहास भयकर शब्द कर उठा (अर्थात्, रामचन्द्र वीरता क आवेश म ठठाकर हँस पड)। फिर व कहने लगे—

एक अज्ञ राक्षस एक निस्सहाय स्त्री का उठाकर ले गया और तुम्हारी ऐसी दशा हुई। तो भी अष्ट दिशाओं म स्थित ये सब लोक विचलित हुए बिना अबतक स्थिर खडे हैं। देवता लोग अत्याचार को दखत हुए चुपचाप खडे रह। देखो, अभी म इन सबको विध्वस्त कर डालता हूँ।

अभी तुम दखागे कि सब नक्षत्र टूटकर गिरत ह। अनुपम किरणवाला सूर्य चूर चूर हो जाता है। विशाल आकाश म सर्वत्र आग लग जाती हे। जल, पृथ्वी, अग्नि, आकाश और पवन एव सब चराचर वस्तुजाल समूल विनष्ट हो जात हैं और देवता लोग मिट जात हैं—(यह सब तुम अभी देखोगे)।

तुम यह भी देखोगे कि किस प्रकार स्थित रहनेवाले तथा महान् लगनेवाले ये चतुर्दश लोक एक क्षण म मिट जात हैं। अष्ट दिशाओं की सीमा म स्थित तथा ब्रह्माड के बाहर स्थित पदार्थ ही एक क्षण म जलकर भस्म हो जात ह—यह सारा दृश्य तुम अब देखनेवाले हो। इस प्रकार राम ने क्रोध क साथ कहा।

उष्ण किरणवाला सूर्य (राम के क्रोध से) बचने का प्रयत्न करता हुआ मेरु पर्वत क शिखरो मे जा छिपा। अष्ट दिशाओं म स्थित महान् गज भय से भाग गये। अब क्या यह कहना आवश्यक हे कि ससार के सब प्राणी भय से विह्वल हो गये? अत्यन्त धीर चित्तवाला लक्ष्मण भी (राम का क्रोध देखकर) भय से काँपने लगा, तो अन्य लोगो के भय की क्या कोइ सीमा हो सकती थी?

जब इस प्रकार घट रहा था, तब गृध्रराज (जटायु) न कहा—ह उत्तम गुणवाले! तुम जीवित रहो, किंचित् भी क्रोध मत करो। कठोर प्रतापयुक्त हे वीर, देव और मुनि यह विचार कर कि तुम्हारे कारण (राक्षसो पर) उनकी विजय होगी, आनदित ह। व अन्य किस बल से रावण को पराजित कर सकते ह?

कमलभव ब्रह्मा से प्राप्त वर के प्रभाव से रावण न मुझपर जो वीरता दिखाई, इसे प्रत्यक्ष तुम देख रहे हो। अब इसके बारे म (अर्थात्, रावण के पराक्रम के सम्बन्ध म) और क्या कहना है? कमल म उत्पन्न ब्रह्मा से लेकर सब देवता उस दशमुख की सेवकाई करते ह, न कि धर्म की रक्षा। उसकी रक्षा करनेवाला कौन ह?

समुद्र स घिरी धरती पर रहनेवाले सब लोग स्त्रियो के समान उस शत्रु (रावण) की सेवकाई करत रहत हैं। देवताओं की यह दशा है। यदि क्षीरसागर के मथन के समय उन देवताओं ने अमृत नहीं पिया होता, तो उनके प्राण कभी के मिट गये होत।

दृढ शरासन को अपने सुन्दर करो म धारण करनेवाले हे वीरो! कचुक मे बँधे स्तनोवाली लता तुल्य उस देवी का एकाकी छोडकर सींगवाले हरिण क पीछे जाकर तुम इस प्रकार के अपयश के भाजन हो गये। विचार कर देखने पर विदित होगा कि यह अपराध तुम्हारा ही है। ससार के लोगो का नहीं।

अत, तुम क्रोध मत करो। अरुंधती समान उस पतिव्रता की विपदा को दूर करो।

देवताओं के मनोरथ को पूर्ण करो। अपने मन्त्र कर्त्तव्यों का वेदोक्त विधान में संपन्न करो और संसार के पापों को दूर करो। इस प्रकार, भगवान् के चरण-कमलों को प्राप्त होनेवाले जटायु ने कहा।

मेघ जैसे श्यामल (राम) ने उस पुण्यवान् (जटायु) की बात को दशरथ की ही आज्ञा मानकर स्वीकार किया और यह विचार कर कि दूसरों पर क्रोध करने से अब क्या प्रयोजन है, राक्षसों के कुल का नाश करना ही प्रस्तुत कर्त्तव्य है, अपने मन के क्रोध को शान्त कर लिया।

फिर, उस अमल (राम) ने जटायु से कहा—तुमने मुझे शान्त रहने की जो आज्ञा दी है, उसके अतिरिक्त मेरे लिए अन्य कोई कर्त्तव्य नहीं है। अब बताओ कि वह राक्षस (रावण) किस दिशा में गया? किन्तु, इतने में वह गृध्रराज शिथिल हो गया। उसकी प्रज्ञा मिट गई। कुछ उत्तर नहीं दे पाया और धीरे धीरे उसके प्राण निकल गये।

वह जटायु (अपनी अंतिम घड़ी में) उस भगवान् (राम) के चरणों के दर्शन कर सका, जो भगवान् शीतल कमल से उत्पन्न ब्रह्मा के लिए क्या, स्वयं वेदों के लिए भी अज्ञेय हैं। अतः वह उस (वैकुंठ) लोक में जा पहुँचा, जो पंचभूतों को भी मिटा देनेवाले महाप्रलय में भी नहीं मिटता।

जब जटायु मुक्ति पा गया, तब राम और उनके अनुज शोक मग्न हुए। वन के वृक्ष, मृग, पक्षी और पत्थर भी पिघल उठे। ब्रह्मा आदि देवता, नाग तथा भूलोकवासी अपने शिर पर हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए खड़े रहे।

उस समय राम ने अपने अनुज से कहा—भाई! धर्महीन राक्षस से मेरा पौरुष परास्त हुआ। क्या अब सन्यास लेकर तपस्या करूँ? या प्राण छोड़ दूँ? बताओ। मुझे पुत्र के रूप में पाकर पिता मर गये। ऐसा जन्म पाकर मैं अबतक मरा नहीं। मैं क्या करूँ?

राम के इस प्रकार कहने पर लक्ष्मण ने उन्हें प्रणाम करके उत्तर दिया—हे विजयशील! विधि के परिणाम से ऐसी विपदाएँ होती हैं। अब उनको सोचकर दुःखी होने से क्या प्रयोजन है? उन क्रूर राक्षसों का समूल विनाश करना पहला कर्त्तव्य है। उसके पश्चात् (जटायु की मृत्यु आदि विपदाओं का स्मरण कर) दुःख कर सकते हैं (अर्थात्, यह दुःख करने का समय नहीं, वरन् शत्रु नाश करने का है)।

हे मेरे प्रभु! विरक्त होकर आप सुन्दर कुंतलोंवाली देवी को खोकर भी शांति के साथ रह सकते हैं, तो रहें। किन्तु, हमारे पितृ तुल्य (जटायु) को मारनेवाले राक्षस को मारे बिना आप किस प्रकार तपस्या निरत रह सकते हैं?

अनुज के वचनों से किंचित् स्वस्थ होकर सर्वज्ञ राम ने यह सोचकर कि इस प्रकार दुःख मग्न होना अज्ञता है, अपनी व्याकुलता तथा अश्रुओं को भी दूर करके कहा—हे भाई! मरे हुए पितृ तुल्य जटायु की अंतिम क्रिया यथाविधि संपन्न करें।

उन्होंने काले अगरु काष्ठों के साथ चंदन काष्ठों को सजाकर उनपर दर्भों को बिछाया। फिर पुष्प बिखेरे। मिट्टी की वेदी बनाकर उसपर स्वच्छ जल को रखा। फिर राम जटायु की देह को अपने विशाल हाथों से उठाकर लाये।

समृद्ध शास्त्रो के तत्त्वो और मत्रो को जाननेवाल राम ने (जटायु की देह पर) जल, चदन और पुष्प डाले। अपने दोनों हाथों स उसे चिता पर रखा। फिर, चिता के मिरहाने मे अग्नि प्रज्वलित की एव अन्य सब सस्कार पूण किये।

राक्षसो के प्रति क्रोध करने से राम का दु ख किञ्चित शान्त हुआ। उनके पुष्ट तथा शुक के से रगवाले श्यामल शरीर पर उनके नेत्रो से इस प्रकार अश्रु झड़ पडे, जिस प्रकार प्रफुल्ल कमल से मधु बिन्दु गिरते ह। यो मेघ समान उन (राम) ने नदी मे स्नान किया और अजलि म स्वच्छ जल लेकर जटायु को तिलाजलि अपित की।

राम के द्वारा अर्पित उस जलाजलि से ब्रह्मा से लेकर उच्च तथा नीच सब प्राणि जात, अत्यत तृप्त हुए। गृध्रराज का उद्दिष्ट करके प्रभु ने अपनी अजलि से जो स्वच्छ जल अर्पित किया, वह स्वय भगवान् के लिए भी पीने योग्य बन गया। अब उस जल तर्पण के बारे मे और क्या कहा जाय ?

विजयशील चक्रवर्त्ती कुमार (राम) ने सब सस्कार वेदोक्त प्रकार से सपन्न किये। उस समय सूर्य पश्चिमी समुद्र म जा पहुँचा, मानो वह अपने कुल से सम्बन्ध रखने वाले जटायु की मृत्यु से उत्पन्न शोक से जल मे स्नान करने और सद्‌गति देनेवाले सस्कार करने को जा रहा हो। (१–१५०)

●

अध्याय १०

अयोमुखी पटल

जब सध्या हो रही थी तब वे (राम लक्ष्मण) उस स्थान से चलकर उस वन म स्थित एक पर्वत पर जाकर ठहरे, जिस पर्वत के शिखर पर हाथी और मेघ विश्राम करते थे। इतने मे अत्यन्त दु ख का कारणभूत अधकार इस प्रकार फैला, जैसे इद्र के वश मे न होने वाले राक्षस सवत्र फैल गये हो।

उस रात्रिकाल मे, जब वन्य वृक्षो तथा पर्वतो से मधु और जल की धाराएँ इस प्रकार बह रही थी, मानो (राम लक्ष्मण के दु ख से) शोकाकुल होकर वे आँसू बहा रहे हों, राम और लक्ष्मण के मन मे अभिमान, क्रोध, दु ख तथा ज्ञान—ये सब परस्पर सघष करने लगे।

उस रात्रिकाल म, जो तत्त्वज्ञान म रहित बुद्धि को पापमाग म चलानेवाले असत्य जन्म के जैसे ही उत्तरोत्तर बढ रहा था, उन (राम और लक्ष्मण) का नि श्वास घी के पडने पर भडकी हुई आग के समान बढ रहा था। तब उनके शोक का कही कुछ अन्त नही था।

मधुयुक्त पुष्पमाला से भूषित राम के नयन रूपी अरुण कमल रात्रि के समय मे भी मुकुलित नही हुए। वह क्या मनोहर मदहास से शोभित सीता नामक लक्ष्मी के वियोग

के कारण था ? या उस (सीता) के मुख रूपी चन्द्र के दर्शन न करने के कारण था ? हम उसका कारण नही कह सकते।

स्त्री रूप दीप के समान स्थित, अति रूपवती सीता के वियोग के कारण उत्पन्न अत्यधिक दु ख म राम ने अपने मन म क्या विचार किया—यह हम नहा जानते, (हम इतना ही कह सकते हैं कि) उस पुष्प स्वरूप राम क नयन भी निद्रा म मुकुलित न होकर उनके पुष्ट कधोवाले भाई (लक्ष्मण) के नयनो के जैसे ही (खुले) रहे[1] (अथात्, राम न निद्रा नही की)।

जहाँ शीतल तथा मधुर मद मारुत रूपी सर्प सचरण करता था, उस पर्वत क समीप मे गगनतल को प्रकाशित करता हुआ उज्ज्वल चन्द्रमा इस प्रकार उदित हुआ कि रामचन्द्र न मानो भ्रमरो से गुजरित पुष्पमाला धारण करनेवाली सीता के वदन बिब को ही देखा हो।

उस रात्रिकाल म गर्व भरा मन्मथ रूपी चोर जब छिपकर अपना प्रभाव दिखाता था, ससार भर में प्रकाशित होकर बढनेवाली चाँदनी की बात (राम का) इस प्रकार जलाने लगी, जैसे अधकार रूपी विष से युक्त सर्प के छेदवाले विष दत के भीतर का विष हो।

विष के समान फैलनेवाली उज्ज्वल चाँदनी वीर (राम) को पीडित कर रही थी। सीता के हरण से उत्पन्न अपमान की भावना उनके विवेक को हर रही थी, वे अन्य सब विचारो को छोडकर केवल उन सीता के जो सर्पफन सदृश जघन तटवाली थी, दुग्ध जैसी मीठी बोलीवाली थी और दीर्घ नेत्रवाली थी, अकेलेपन के बारे में ही सोच रहे थे।

राम ओठ चबाते, नि श्वास भरते, उनके कधे फूलते और शिथिल होते। महान गज के द्वारा तोडी गई शीतल पल्लवो तथा पुष्पों से शोभायमान शाखा सदृश सीता के बारे मे सोचते।

समुद्र म उठनेवाली वीचियो के समान उनके नि श्वास उठ उठकर गिरते थे। वे सोचते कि सीता यह सोचकर कि रामचन्द्र अपना धनुष झुकाये हुए आते ही होंगे, मार्ग के दोनों ओर देखती हुइ गई होगी।

जब विद्युत् जैसे खड्ग दतोवाला रावण—'ठहरो।' 'ठहरो।' कहता हुआ सीता के निकट (उसे उठा ले जाने के लिए) गया होगा, तब सीता ने मेरा स्मरण नही किया होगा—यह कहना उचित नही है। (उसके स्मरण करने पर भी जब मैं उसकी रक्षा के लिए नही आया, तब न जाने मेरे बारे मे उसने क्या सोचा होगा।)

विष-दतो से युक्त (राहु नामक) सर्प के मुँह मे पडे चन्द्र के समान कातिहीन सीता, क्रूर राक्षस के क्रोध से भयभीत हुई होगी। हाय। यो सोचते।

अपमान और विरह ताप—इन दोनो से व्याकुल होनेवाले उनके प्राण इन दोनो क मध्य रहकर इनके द्वारा बारी बारी मे सताये जा रहे थे, जिससे दु खी हो रामचन्द्र सोचते—क्या अब भी मुझे धनुष की आवश्यकता है ?

सनातन वदो के पारगत सब पडितो के द्वारा देखे जानेवाले राम अपने धनुष को

---

१ इसके पूर्व अयोध्याकाड में यह कहा गया है कि लक्ष्मण वनवास के समय, कभी नही सोते थ किंतु रात-दिन जागरित रहकर राम की परिचर्या मे निरत रहते थे।—अनु०

देखकर हँसते, तथा ससार म, प्राप्त होनेवाले अपने अपयश को सोचकर स्तब्ध रह जाते।

वे (राम) हाथी के जैसे जड शब्द के साथ नि श्वास भरते। शीतल पवन रूपी क्रूर यम को देखकर कहते—हाय! वेदोक्त विधान से मेरे द्वारा परिणीत सीता मुझसे वियुक्त हो गई।

मैने अनेक प्राणियों की रक्षा करने का व्रत लिया है। किन्तु, आभरणों से भूषित मेरी पत्नी बनी हुई एक कुलीन नारी की विपदा को मै दूर नही कर सका। मेरा पराक्रम भी खूब है। इस प्रकार सोचकर राम लज्जित होते।

उसका मन व्याकुल होता, उसके ओठ सूख जाते, वे मूर्च्छित होते। अनुज के द्वारा निमित शीतल पल्लव शय्या पर लेट जाते। उनके शरीर ताप से वे पल्लव झुलस जाते, तो (राम) अपने अनुज से कहते कि ये पत्ते हटा दो। फिर (लक्ष्मण के द्वारा लाये गये) नये तथा अरुण पल्लवों को देखते। किंतु, उनके शरीर स्पर्श से वे नये पल्लव भी झुलस जाते, तो व्याकुल प्राण हो वे थक जाते।

वे राम, जिनके कमल समान नयनों के झँपने के एक क्षण काल मे अनेक युग व्यतीत होते थे (अर्थात्, जो विष्णु के अवतार थे) इस समय वहाँ रहकर उस रात्रि का कुछ अन्त नही देख पाते थे। इसका कारण सीता का वियोग था या (सीता के प्रति) उनके प्रेम की अधिकता थी, यह हम (लेखक) नही जानते।

विजय के कारणभूत भाले को रखनेवाले अपने भाई को देखकर, वे (राम) कहते—तुमने देखा है न कि इसके पहले, सभी दिन एक ही जैसे व्यतीत होते थे। किंतु, आज यह रात्रि क्यों इतनी दीर्घ हो रही है?

दीर्घ लगनेवाले रात्रिकाल मे प्रकाशमान चन्द्र को देखकर वे कहते—हे चन्द्र! पहले तुम प्रतिदिन आते और (सीता के मुख की समता न कर सकने के कारण) क्षीण होकर लज्जित होते रहते थे। अब आभरण भूषित सीता के उज्ज्वल वदन के दूर हो जाने पर तुम पूर्ण प्रकाश से चमक रहे हो।

राम फिर कहते—गगन मे सचरण करनेवाला एक चक्र रथ से युक्त सूर्य भगवान्, प्रभूत चन्द्रिका के सदृश उज्ज्वल कीर्त्ति से सम्पन्न अपने कुल मे अवारणीय अपयश के आ जाने से मानो लज्जित होकर ही भूलोक से अदृश्य हो गये है।

दु खद रात्रि के दीर्घ लगने से शिथिल होनेवाले राम सोचते, कदाचित् क्रूर रावण ने सूर्य के सारथि अरुण के साथ सूर्य को भी बाँधकर बडे कारागार मे डाल रखा है (इसलिए दिन नही हो रहा है)।

राम सोचते—यदि डमरू समान कटिवाली सीता नही दिखाई पडे और घोर अधकार से पूर्ण रात्रि रूपी कल्पकाल भी यों ही व्यतीत हो जाये, तो समुद्र से घिरी हुई यह धरती मेरे हाथों विनष्ट हो जायगी।

राम कहते—कठोर तपस्या करनेवाले मुनिगण विपदा मे पडे रहे और उन (मुनियों) के प्राणों को पीडित करके ससार के प्राणियों को खाकर विचरनेवाले अधर्मी राक्षस बलवान् होकर जीवित रहे, तो अब धर्म से क्या प्रयोजन है?

भ्रमरो की दिव्य डोरी से युक्त धनुष म पुष्प शरो को रखकर प्रयुक्त करनेवाले वीर मन्मथ ने राम पर बाण प्रयुक्त करने के लिए लक्ष्य सधान किया। तब रामचन्द्र कर्त्तव्य-मूढ होकर स्तब्ध रह गये।

जब कोई दु खी व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है, तब उसे उसके पुराने दु ख का स्मरण अधिक सताने लगता है। उसी प्रकार मन्मथ, जो इसके पहले एक बार तपस्वी शिव के क्रोध से जल गया था, अब उसका स्मरण करके दु खी हुआ। (भाव यह है कि अपने बाणो से भीत होकर सतप्त होनेवाले राम को देखने से मन्मथ को शिवजी के द्वारा उसको उत्पन्न पुराना दु ख स्मरण हो आया, जिससे अब वह दु खी हुआ।)

इस प्रकार, नीलवर्ण रामचन्द्र के मन म (वियोग दु ख) शूल सा साल रहा था। इस समय वह रात्रिकाल ऐसे ही समाप्त हुआ, जैसे आदिकारणभूत भगवान् (नारायण) के नाभि कमल से उत्पन्न ब्रह्मा का एक कल्प समाप्त हुआ हो।

जल धारा से शब्दायमान क्षीरसागर म सुखमय योग निद्रा करना छोडकर भ्रमरो तथा मधु से शब्दायमान पुष्पमाला स भूषित सीता के शील रूपी समुद्र म निमग्न होनेवाले राम को देखकर सहानुभूति से पक्षी शब्द करत थे, कानन शब्द करते थे और पावन निर्झर शब्द करते थे। राम के मन म (सीता का) अलकृत रूप प्रकट था। किन्तु नयनो के सम्मुख प्रकट नही था। अत , उन (राम) के प्राणो के स्वस्थ रहने का क्या उपाय हो सकता था ?

मयूर और मयूरी साथ-साथ सचरण करते थे। हरिण और हरिणी साथ साथ विहार करत थे। करी और करिणी साथ साथ घूमने फिरते क्रीडा करते थ। इन सबको देखकर, रामचन्द्र, जो पिक, इक्षु, मधु, मुरली वीणा गाढी चाशनी, अमृत आदि को भी फीका करनेवाली मीठी वाणी से युक्त सीता से वियुक्त थे, क्या दु खी न होगे ?

किरणो से युक्त सूर्य, किरीट जैसे शिखरवाले उदयगिरि पर अत्युज्ज्वल रूप म ऐसे प्रकाशमान हुआ, मानो प्रभात होने पर भी सीता के दर्शन न पाने से दु खी रहनेवाले वीर रामचन्द्र को उस समय कमल पुष्पो को प्रफुल्ल कर यह दिखाना चाहता हो कि पहले दिन की सध्या को जिन कमलों को मैने बन्द किया था, उनम सीता नही है।

रामचन्द्र वहाँ के वन को देखत। उस वन म स्थित चक्रवाक को देखत। वृक्ष की पुष्पित शाखाओं को देखत। बाल कलापी तुल्य सीता के केशपाश का स्मरण करत। पर्वत सदृश स्तन द्वय को याद करते। उनपर की पत्रलेखा को याद करत और फिर अपनी भुजाओं को देखते। यो अपना समय व्यतीत करते।

उस समय, अनुज (लक्ष्मण) ने उनके चरणो को नमस्कार करके कहा—हे प्रभु! देवी का अन्वेषण किये विना यहाँ इस प्रकार विलब करना क्या उचित है ? तब कीर्त्तिमान् प्रभु ने उत्तर दिया—उस रावण के स्थान का ढूढकर पहचानेंगे। फिर, उज्ज्वल धनुष से युक्त व दोनों पर्वत श्रेणी से युक्त तथा धूप से तप्त उस कानन म चल पडे।

दिग्गजों के समान वे दोनों हरियाली से युक्त अनेक अरण्यों को पीछे छोडकर अट्ठारह योजन दूरी पार कर चले।

भूमि के भाग्य से पृथ्वी पर अवतीर्ण मधुपूर्ण पुष्पमालाओं से भूषित सीता का अन्वेषण करते हुए वे दोनो चलते रहे। कहीं भी सीता को न देखकर, मन के क्रोध से नि श्वास भरते हुए, पक्षियो के आवासभूत एक शीतल तथा विशाल उपवन मे प्रविष्ट हुए।

उष्णकिरण सूर्य, ज्ञान मे श्रेष्ठ उन राम लक्ष्मण के मन की वेदना को जानकर, सर्वत्र सीता को ढूँढ़कर, फिर मेरु पर्वत के पीछे अदृश्य हो गया।

सर्वत्र अंधकार इस प्रकार भर गया, जैसे अंजन पुंज उन (राम लक्ष्मण) को कहीं जाने से रोकने के हेतु पहरा देने के लिए घिर आये हो। तब दसों दिशाएँ स्पष्ट ज्ञान से रहित व्यक्तियों के मन के समान शीघ्र तमोवृत हो गई।

मीठे स्वर में बोलनेवाले नागणवाय् (नामक पक्षी) जहाँ शुकों को मधुर संगीत सिखा रहे थे वैसे उस उपवन मे एक स्फटिक मंडप दिखाई पड़ा, जिसके चारो ओर किंशुक वृक्ष थे और जो प्रकाश एवं कलंक से युक्त चन्द्र मंडल के समान शोभित हो रहा था। वे दोनो उस मंडप मे जाकर विश्राम करने लगे।

तब महिमामय प्रभु ने बलवान् वृषभ जैसे वीर अनुज से कहा—हे वीर ! कहीं से पीने के लिए जल ढूँढ़कर लाओ। शत्रुओं को भगानेवाले धनुष से युक्त वह वीर (लक्ष्मण, जल लाने के लिए) अकेले गया।

कहीं भी जल न पाकर इधर उधर ढूँढ़ते रहनेवाले उस लक्ष्मण को उस समय उस अरण्य मे स्थित अयोमुखी नामक एक राक्षसी ने देखा और उनपर मुग्ध हो गई।

वह (अयोमुखी), ज्ञानियों के मन्त्रोच्चारण से भी कीलित न होनेवाले सर्प के समान लक्ष्मण का पीछा करती हुई चली, उनको देख देखकर उन्हें मन्मथ समझती हुई उनके प्रति यों कामातुर हुई कि उसका गर्व और क्रूरता उस काम वासना से दब गये।

अथाह काम वासना से युक्त वह राक्षसी पीडित होकर लक्ष्मण के सम्मुख आ खड़ी हुई और यह विचार करती हुई कि मैं इसका आलिंगन कर अपनी काम वेदना को तृप्त करूँगी, इसको मारकर नहीं खाऊँगी व्याकुल खड़ी रही।

अग्नि से भी अधिक भयंकर वह राक्षसी, यह सोचती हुई कि यदि मेरी प्रार्थना सुनकर भी यह सहमत न होकर तिरस्कार करे, तो मैं बलात् इसे अपनी गुफा मे ले जाऊँगी और इसका आलिंगन करूँगी, अतिवेग से लक्ष्मण के निकट आ पहुँची।

वह अग्निमय नि श्वास भर रही थी, अपने दाँतों से हाथियो के झुंड को एक साथ चबाकर अपने पेट मे भरनेवाली थी। उसने बड़े तथा दृढ सर्पों से अपने स्तनो को बाँध रखा था और उसकी आँखें धँसी हुई थी।

बड़े सिंहो और शरभों को सर्प रूपी रस्सी मे पिरोकर उसने अपने पैरों मे नूपुर जैसे पहन रखा था। उसका मुख सर्व वस्तुओं का विनाश करनेवाले युगांतकाल मे प्रकाशित होनेवाले सूर्य के समान उग्र था।

उसका मुँह इतना विशाल और ऐसी गुफा के समान था कि समुद्र के सारे जल को एक साथ पीकर उसे सुखा सकता था। उसके चारों ओर लाल लाल केश बिखरे थे, जिनसे वह प्रलयकाल की अग्नि का दृश्य उपस्थित कर रही थी।

दीर्घ मापदड से मापने योग्य दरी उसके एक पग म समाती थी। ~~ ~ई तेजी से चलने के कारण आँतो और चरबी मे सयुक्त मासखड इधर उधर गिरत थ। उसका जघन तट अनेक पापी का स्थान था। उसके दाँत पीसने से वज्र घोष सा शब्द होता था।

वह इस प्रकार घूरती थी कि उसकी दृष्टि शिवजी की सी (अग्निमय) लगती थी। उसके दाँत इतने भयकर थे कि व अग्निमय नयन भी (उन दाँतों की तुलना म) शीतल लगत थे। उसके गमन वेग से पर्वत अस्त व्यस्त हो जाते थे। समुद्र परस्पर मिल जात थ और दोषहीन भूमि भी उसे देखकर लज्जित होती थी। (अर्थात्, क्षमामय भूदेवी भी अयो मुखी जैसी एक पापिन स्त्री को देखकर उसके स्त्रीत्व पर लज्जित होती थी)।

उसके करों में दीर्घ सर्पों के वलय पडे थे। उसने गरजनेवाले व्याघ्रों का हार पहन रखा था। अनेक शरभों को एक साथ गूँथकर ताली[1] बनाकर पहन लिया था। बलवान सिंहो को कर्णाभरण के रूप मे धारण कर लिया था।

वह (अयोमुखी) प्रकृति से ही 'घुँघची' के जैसे रहनेवाले (अथात् लाल नेत्रो मे काम वेदना से अश्रु भरकर (लक्ष्मण को) घूरती हुई खडी रही। तब अँधेरे म घूमनेवाले सिंह सदृश लक्ष्मण ने उसके बिजली जैसे दाँतो के प्रकाश म उसे देखा।

तुरत वे लक्ष्मण समझ गये कि यह स्त्री दुष्ट राक्षसो के कुल म उत्पन्न है और पहले नाक आदि के कट जाने से दु खी हुई, अति बलशाली शूर्पणखा ताडका आदि के जैसे स्वभाववाली है।

इन गुणहीन तथा पापी राक्षसियों के हमारे निकट आने का और कोई उपयुक्त कारण नही है, यों विचारकर उससे पूछा—हिंस्र जन्तुओ के आवासभूत इस अरण्य म इस घने अँधेरे मे आई हुई तू कौन है? शीघ्र बता।

लक्ष्मण ने इस प्रकार कहा। उस समय, सशय से युक्त मनवाली उस राक्षसी ने, बोलने में कुछ सकोच किये विना, उत्तर दिया—यद्यपि तुमसे मेरा पूर्ण परिचय नही है तो भी तुम पर प्रेम करके मैं आई हूँ। मेरा नाम अयोमुखी है।

फिर वह कहने लगी—हे अति सुन्दर वीर! पहले अन्य किसी से अस्पृष्ट (इसक पहले दूसरे किसीसे न छुए गये) मेरे इन स्तना का, तुम अपने स्वर्ण रगवाले विशाल वक्ष से आलिंगन करो और मेरे प्राणों की शीघ्र रक्षा करो।

क्रूर गुण को शात करके उस राक्षसी ने ये वचन कहे। तब क्रोधी सिंह जैसे लक्ष्मण के नयन लाल हो उठे और उन्होने कहा—यदि तू ऐसी बात फिर अपने मुँह से निकालेगी, तो मेरा अनुपम बाण तेरे शरीर के टुकडे टुकडे कर देगा।

लक्ष्मण को अपने प्रतिकूल कुछ कहत हुए सुनकर भी वह मन म क्रुद्ध नही हुई। किन्तु, सिरपर हाथ जोडकर (नमस्कार करती हुई) उसने निवेदन किया—हे नायक! यदि तुमको मै अपने प्राण रक्षक के रूप म पाऊँगी, तो मुझे आज नया जन्म मिलेगा।

क्रोधहीन हो वह (राक्षसी) पुन बोली—ह उत्तम! अगर तुम्हे यहाँ स्वच्छ जल को पाना है, तो मुझे अभयदान दो। मै गगा का जल भी अभी यहाँ पर लाकर उपस्थित करूँगी।

१ 'ताला' एक आभूषण या पदक है, जिसे दक्षिण में विवाहिता स्त्रियाँ अपने गले में पहनती है।—अनु०

भूमि के भाग्य से पृथ्वी पर अवतीर्ण मधुपूर्ण पुष्पमालाओं से भूषित सीता का अन्वेषण करते हुए वे दोनों चलते रहे। कहीं भी सीता को न देखकर, मन के क्रोध से निःश्वास भरते हुए, पक्षियों के आवासभूत एक शीतल तथा विशाल उपवन में प्रविष्ट हुए।

उष्णकिरण सूर्य, ज्ञान मे श्रेष्ठ उन राम लक्ष्मण के मन की वेदना को जानकर, सर्वत्र सीता को ढूँढकर, फिर मेरु पर्वत के पीछे अदृश्य हो गया।

सर्वत्र अंधकार इस प्रकार भर गया, जैसे अंजन पुंज उन (राम लक्ष्मण) को कहीं जाने से रोकने के हेतु पहरा देने के लिए घिर आये हों। तब दसों दिशाएँ स्पष्ट ज्ञान से रहित व्यक्तियों के मन के समान शीघ्र तमोवृत हो गईं।

मीठे स्वर मे बोलनेवाले नागणवायू (नामक पक्षी) जहाँ शुकों को मधुर संगीत सिखा रहे थे वैसे उस उपवन मे एक स्फटिक मंडप दिखाई पड़ा, जिसके चारों ओर किंशुक वृक्ष थे और जो प्रकाश एवं कलंक से युक्त चन्द्र मंडल के समान शोभित हो रहा था। वे दोनों उस मंडप में जाकर विश्राम करने लगे।

तब महिमामय प्रभु ने बलवान् वृषभ जैसे वीर अनुज से कहा—हे वीर! कहीं से पीने के लिए जल ढूँढकर लाओ। शत्रुओं को भगानेवाले धनुष से युक्त वह वीर (लक्ष्मण, जल लाने के लिए) अकेले गया।

कहीं भी जल न पाकर इधर उधर ढूँढते रहनेवाले उस लक्ष्मण को उस समय उस अरण्य में स्थित अयोमुखी नामक एक राक्षसी ने देखा और उनपर मुग्ध हो गई।

वह (अयोमुखी), ज्ञानियों के मन्त्रोच्चारण से भी कीलित न होनेवाले सर्प के समान लक्ष्मण का पीछा करती हुई चली, उनको देख देखकर उन्हें मन्मथ समझती हुई उनके प्रति यों कामातुर हुई कि उसका गर्व और क्रूरता उस काम वासना से दब गये।

अथाह काम वासना से युक्त वह राक्षसी पीड़ित होकर लक्ष्मण के सम्मुख आ खड़ी हुई और यह विचार करती हुई कि मैं इसका आलिंगन कर अपनी काम वेदना को तृप्त करूँगी, इसको मारकर नहीं खाऊँगी व्याकुल खड़ी रही।

अग्नि से भी अधिक भयंकर वह राक्षसी, यह सोचती हुई कि यदि मेरी प्रार्थना सुनकर भी यह सहमत न होकर तिरस्कार करे, तो मैं बलात् इसे अपनी गुफा मे ले जाऊँगी और इसका आलिंगन करूँगी, अतिवेग से लक्ष्मण के निकट आ पहुँची।

वह अग्निमय निःश्वास भर रही थी, अपने दाँतों से हाथियों के झुंड को एक साथ चबाकर अपने पेट में भरनेवाली थी। उसने बड़े तथा दृढ सर्पों से अपने स्तनों को बाँध रखा था और उसकी आँखें धँसी हुई थीं।

बड़े सिंहों और शरभों को सर्प रूपी रस्सी में पिरोकर उसने अपने पैरों मे नूपुर जैसे पहन रखा था। उसका मुख सर्व वस्तुओं का विनाश करनेवाले युगांतकाल में प्रकाशित होनेवाले सूर्य के समान उग्र था।

उसका मुँह इतना विशाल और ऐसी गुफा के समान था कि समुद्र के सारे जल को एक साथ पीकर उसे सुखा सकता था। उसके चारों ओर लाल लाल केश बिखरे थे, जिनसे वह प्रलयकाल की अग्नि का दृश्य उपस्थित कर रही थी।

दीर्घ मापदड से मापने योग्य धरी उसके एक पग म समाती थी। तेज तेजी से चलने के कारण आँतों और चरवी से सयुक्त मासखड इधर उधर गिरते थे। उसका जघन तट अनेक पापों का स्थान था। उसके दाँत पीसने से वज्र घोष सा शब्द होता था।

वह इस प्रकार घूरती थी कि उसकी दृष्टि शिवजी की सी (अग्निमय) लगती थी। उसके दाँत इतने भयकर थे कि वे अग्निमय नयन भी (उन दाँतों की तुलना म) शीतल लगते थे। उसके गमन वेग से पर्वत अस्त व्यस्त हो जाते थे। समुद्र परस्पर मिल जाते थे और दोषहीन भूमि भी उसे देखकर लज्जित होती थी। (अर्थात्, क्षमामय भूदेवी भी अयोमुखी जैसी एक पापिन स्त्री को देखकर उसके स्त्रीत्व पर लज्जित होती थी)।

उसके करो में दीर्घ सर्पों के वलय पड़े थे। उसने गरजनेवाले व्याघ्रों का हार पहन रखा था। अनेक शरभों को एक साथ गूँथकर ताली[1] बनाकर पहन लिया था। बलवान सिंहो को कर्णाभरण के रूप मे धारण कर लिया था।

वह (अयोमुखी) प्रकृति मे ही 'घुँघची' के जैसे रहनेवाले (अर्थात् लाल) नेत्रो मे काम वेदना से अश्रु भरकर (लक्ष्मण को) घूरती हुई खडी रही। तब अँधेरे म घूमनेवाले सिंह सदृश लक्ष्मण ने उसके बिजली जैसे दाँतो के प्रकाश म उसे देखा।

तुरत वे लक्ष्मण समझ गये कि यह स्त्री दुष्ट राक्षसो के कुल म उत्पन्न है और पहले नाक आदि के कट जाने से दु खी हुई, अति बलशाली शूर्पणखा ताडका आदि के जैसे स्वभाववाली है।

इन गुणहीन तथा पापी राक्षसियों के हमारे निकट आने का और कोई उपयुक्त कारण नही है, यों विचारकर उससे पूछा—हिंस्र जन्तुओं के आवासभूत इस अरण्य म इस घने अँधेरे मे आई हुई तू कौन है? शीघ्र बता।

लक्ष्मण ने इस प्रकार कहा। उस समय, सशय से युक्त मनवाली उस राक्षसी ने, बोलने में कुछ सकोच किये विना, उत्तर दिया—यद्यपि तुमसे मेरा पूर्ण परिचय नही है तो भी तुम पर प्रेम करके मै आई हूँ। मेरा नाम अयोमुखी है।

फिर वह कहने लगी—हे अति सुन्दर वीर! पहले अन्य किसी स अस्पृष्ट (इसके पहले दूसरे किसीसे न छुए गये) मेरे इन स्तनो का, तुम अपने स्वर्ण रगवाले विशाल वक्ष मे आलिंगन करो और मेरे प्राणो की शीघ्र रक्षा करो।

क्रूर गुण को शात करके उस राक्षसी ने ये वचन कहे। तब क्रोधी सिंह जैसे लक्ष्मण के नयन लाल हो उठे और उन्होने कहा—यदि तू ऐसी बात फिर अपने मुँह से निकालेगी, तो मेरा अनुपम बाण तेरे शरीर के टुकडे टुकडे कर देगा।

लक्ष्मण को अपने प्रतिकूल कुछ कहते हुए सुनकर भी वह मन म क्रुद्ध नही हुई। किन्तु, सिरपर हाथ जोड़कर (नमस्कार करती हुई) उसने निवेदन किया—हे नायक! यदि तुमको मै अपने प्राण रक्षक के रूप म पाऊँगी, तो मुझे आज नया जन्म मिलेगा।

क्रोधहीन हो वह (राक्षसी) पुन बोली—हे उत्तम! अगर तुम्हे यहाँ स्वच्छ जल को पाना है, तो मुझे अभयदान दो। मै गगा का जल भी अभी यहाँ पर लाकर उपस्थित करूँगी।

१ 'ताली' एक आभूषण या पदक है, जिसे दक्षिण में विवाहिता स्त्रियाँ अपने गले में पहनती है।—अनु०

सौमित्रि उसके वचनो को सह नहीं सके और बोले— अभी यहाँ से भाग जा नही तो तेरे कानो और नाक को काट दूँगा। तब वह राक्षसी स्तब्ध हो, अपलक खडी रह और सोचने लगी—

मै इसको अपनी गुफा मे उठा ले जाऊँगी और वहाँ बन्दी बनाकर रखूँगी। ज इसकी उग्रता शान्त होगी, तब यह मेरी इच्छा पूरी करने को सहमत होगा। यही कर्त्तव्य है इस प्रकार सोचकर वह लक्ष्मण के पार्श्व मे गई।

उस क्रूर राक्षसी ने मोहन मन्त्र का प्रयोग किया और गगनान्नत पर्वत सदृ लक्ष्मण को उठाकर गगन मार्ग से इस प्रकार चली, जैसे चन्द्रमंडल के साथ मेघ ज रहा हो।

लक्ष्मण को ले चलनेवाली वह अयोमुखी, मन्दर पर्वत से युक्त समुद्र, देवेन्द्र आरूढ करिणी और भाले से शूर पद्म नामक असुर को मारनेवाले, घोर पराक्रम से युक्त कार्त्तिकेय से आरूढ मयूर के जैसे लगती थी।

उस समय, उस राक्षसी के वक्ष तथा हाथो मे स्थित, उज्ज्वल वीर वलय भूषि लक्ष्मण, उन शिवजी की समता करते थे, जिन्होने क्रोध भरे, मदस्रावी हाथी को मारक उसके चर्म को वस्त्र के रूप मे पहन लिया था।

वह (अयोमुखी) इस प्रकार गई। इधर सतप्तचित्त रामचन्द्र, यह चिं करते हुए कि जल की खोज मे गया हुआ, मेरे प्राण समान तथा बलवान् पर्वत समा लक्ष्मण अभीतक, न जाने, क्यो नही आया। वे लक्ष्मण की खोज मे चल पडे।

राम सोचते जाते थे कि लक्ष्मण कम वेगवान् नही है। वह शीघ्र आनेवाला है कदाचित् धूप से जले अरण्य मे जल नही मिला या अन्य कोई घटना घटित हुई है न जाने क्या कारण है?

मैने कहा कि इस मार्ग से जाकर कही से जल ले आओ। किन्तु, इतना विल हो जाने पर भी वह अभी तक नही आया। क्या उसने सीता का हरण करनेवाले राक्षसों साथ, कुछ प्रयोजन होने के विचार से, युद्ध छेड दिया है?

क्या मधुरभाषिणी शुकी जैसी सीता का हरण करनेवाला रावण, इसे भी उठ ले गया? या विष से भी भयंकर उस रावण के माया कृत्य से और दुर्दैव से वह मृ हो गया?

दृढ धनुष को धारण करनेवाला मेरे प्राण समान भाई अभीतक नही लौटा। क्य इस वेदना मे कि मै उसके कथन की उपेक्षा करके सीता को खो बैठा, उसने अपने प्राण का अन्त कर दिया है?

इस घने अंधकार मे, मुझसे वियुक्त उस प्यारे लक्ष्मण के अतिरिक्त, मेरे औ नेत्र नही है? (अर्थात्, लक्ष्मण ही मेरे नेत्र हैं, जिसके बिना मै अंधा सा हूँ)। पहले घायल हुए मेरे हृदय में अब एक नई पीडा उत्पन्न हुई है। मै कुछ भी सोच नही पा रहा हूँ अब मै कैसे उसका अन्वेषण करूँ?

मेरे दुर्भाग्य को बदलने का कुछ उपाय नही है। अब मेरे प्राण सदृश तुम भ

अदृश्य हो गये। हे तात! मुझे इस प्रकार छोड़कर तुमने भल की। यह तुम्हारा कार्य कठोर है। गुरुजन तुम्हारे इस कार्य को नहीं सराहेंगे।

आई हुई विपदाओं को दूर करने में समर्थ हे वीर! तुमने मुझे अपार दुःख दिया। शत्रुओं से भी प्रशंसित होनेवाले हे वीर! क्या मुझसे घृणा करते हुए मुझे इस अरण्य में पीडित होने के लिए छोडकर चले गये हो? इतनी देर तक मुझसे वियुक्त होकर कहीं रह जाना, क्या तुम्हारे लिए उचित है?

मैं अपने पिता से वियुक्त हुआ। अपनी माता से वियुक्त हुआ। लक्ष्मी समान स्वर्णाभरण भूषित सीता से वियुक्त हुआ। फिर मैं जो जीवित रहा, वह तुम एक के वियुक्त न होने से ही तो था?

(हरिण के पीछे मेरे जाने पर) मुझे ढूँढते हुए तुम हाथी के समान चले आये। अब तुम अदृश्य होकर, स्वर्णमय कर्णाभरणों से भूषित सीता को ढूँढनेवाले मुझ दीन को, अपने भी ढूँढने के लिए दुःखी बनाकर छोड गये हो।

कौन बतानेवाला है कि तुम कहाँ हो? (तुम्हारे न मिलने पर) मैं आज प्राण त्याग किये बिना नहीं रहूँगा। यदि मैं मरूँगा, तो मेरे स्वजनों में से भी कोई जीवित नहीं रहेगा। अतः, हे कठोरहृदय! तुम एक साथ सब स्वजनों को मारनेवाले हो गये हो। यह क्या तुम्हारे लिए उचित है?

मान्धाता आदि हमारे पूर्वजों के आचार के अनुसार राजा बनना छोडकर मैंने अरण्य वास करने का साहस किया। उस समय सच्चा बन्धु बनकर जब दूसरा कोई नहीं आया, तब तुम्हीं मुझ एकाकी के साथी बनकर आये। अब तुम भी मुझे छोडकर चले गये हो?

इस प्रकार कहते हुए मेरे अनुपम प्रभु रामचन्द्र उठते, गिरते, स्तब्ध होते, प्रज्ञाहीन होते, फिर कहते—हाय! इस घने अँधेरे में न बिजली है, न गर्जन। फिर भी, यह क्या विपदा आ पडी है? (अर्थात्, भावी विपदा की पूर्व सूचना कुछ नहीं हुई और यह अकस्मात् क्या हुआ?) रामचन्द्र की वह दुःखपूर्ण दशा एक जैसी नहीं थी।

युद्ध के उन्माद से पूर्ण मत्तगज की समता करनेवाले वे (राम), अनेक स्थानों में जाकर (लक्ष्मण को) ढूँढते। शीघ्र गति से जाते। (लक्ष्मण का) नाम लेकर पुकारते। व्याकुलप्राण और मूर्च्छित होते।

क्षमाशील (सीता) देवी के साथ मेरे प्राणों की भी रक्षा करते हुए अपलक रहनेवाला लक्ष्मण, क्या लौट आने में इतना विलंब करता? धरती का भार बनकर दुर्भाग्य के साथ सचरण करनेवाले मुझ पापी का जीवित रहना अनुचित है।

फिर यह कहकर कि, 'यदि मेरे द्वारा किया गया कोई सुकृत हो और उस (लक्ष्मण) का ज्येष्ठ होकर उत्पन्न होने की कुछ योग्यता मुझमें हो, तो मैं वैसे ही पुनर्जन्म पाऊँ'—रामचन्द्र अपना तीक्ष्ण करवाल कर में लेकर अपने प्राणों का अन्त करने को उद्यत हुए, इतने में—

उधर लक्ष्मण राक्षसी की माया से मुक्त हुआ और उस (राक्षसी) की नासिका

आदि अंगो को काट दिया। तब उस राक्षसी ने बड़ी व्यथा से जो चीख मचाई, वह ध्वनि राम के कानों में आ गिरी, तो उससे राम किंचित् स्वस्थ से हुए।

फिर, राम ने सोचा—प्रस्तरमय अरण्य में अनेक वीर कंकणों से मुखरित युद्ध करनेवाले राक्षसों की विरोध सूचक ध्वनि यह नहीं है। यह तो विपदा में पड़ी हुई एक स्त्री की ही ध्वनि है और वह कोई राक्षसी ही है।

उस समय, नीलवर्ण राम ने आग्नेय अस्त्र को अपने अरुण कर में लेकर उसे प्रयुक्त करने का उपक्रम किया। तब वहाँ का अंधकार हटकर भूलोक के दूसरे कोने में जाकर इकट्ठा हो गया और उस स्थान में रात्रिकाल दिन के समान भासमान हो उठा।

रामचन्द्र बड़े बड़े पर्वतों को चूर करते हुए, ऊँचे वृक्षों को तोड़ते हुए, भूमि को अपने पदचाप से पीड़ित करते हुए और अपने दोनों पार्श्वों में चड़चड़ाहट की ध्वनि उत्पन्न करते हुए चंडमारुत से भी तिगुने वेग के साथ (उस राक्षसी को निहत करने के लिए) बढ़ चले।

प्रलयकाल में जिस प्रकार काला समुद्र धरती पर उमड़ आये, उस प्रकार का दृश्य उपस्थित करते हुए आनेवाले, अपने सहायक ज्येष्ठ भ्राता को लक्ष्मण ने देखा और कहा—'हे उदार! चिंता न करें, चिंता न करें।'

'यह दास आ गया। आप मन में व्याकुल न हों।'—यों कहते हुए लक्ष्मण रामचन्द्र के कोमल पल्लव जैसे चरणों पर नत हुआ। रामचन्द्र ने मानो अपनी खोई आँखें पुनः प्राप्त की।

उन रामचन्द्र की दशा, जिनकी आँखों से झरने के समान अश्रु बह रहे थे, उस गाय की सी हो गई, जो अपना बछड़ा खो जाने से, उसे खोजने का मार्ग भी न देखती हुई व्याकुल रहती हो और स्वयं ही उस बछड़े के आ जाने पर अपने थन से दूध बहाती हुई खड़ी हो।

उस समय, राम ने लक्ष्मण का पुनः पुनः आलिंगन किया और अपनी अश्रुधारा से उसके स्वर्ण जैसे शरीर को धो डाला। फिर कहा—हे लोहे के स्तंभ जैसे कंधोंवाले! यह सोचकर कि तुम कहीं खो गये हो, अबतक मैं अत्यंत दुःखी हो रहा था।

'क्या घटित हुआ? मुझे बताओ।'—राम के यों पूछने पर लक्ष्मण ने सारा वृत्तांत कह सुनाया। तब उन प्रभु ने, जिनसे बड़ी अन्य कोई सत्ता नहीं है, आनंद और व्यथा दोनों को एक साथ ही प्राप्त किया।

फिर, राम ने लक्ष्मण से कहा—जो विशाल समुद्र के मध्य फँसा हो, क्या प्रत्येक लहर के आते समय उसका भयभीत होना उचित है? उसी प्रकार दुर्दैव के प्रभाव से जन्म रूपी बंधन में पड़े हुए हम, दुःखद विपदा के प्राप्त होने पर शिथिल नहीं होना चाहिए।

तीन देव (ब्रह्मा, विष्णु और महेश), तीन लोकों के निवासी—सब मेरे शत्रु बनकर आवें, तो भी मुझे कौन जीत सकेगा? भाई! तुम मेरे साथ हो—यह एक बात ही मुझे बल देती है। इससे बढ़कर मुझे और कोई रक्षा नहीं चाहिए। (अर्थात्, अन्य कोई सेना आवश्यक नहीं है।)

मुझसे जो वियुक्त हो न हो जावे। जितनी भी आपदाएँ आती हैं, आवें। किंतु दीर्घ वीर कंकण धारण करनेवाले हे वीर! वे सारी आपदाएँ तुम्हारे से दूर रहनेवाली हैं। मेरे निकट रहकर वे (विपदाएँ) मुझे सता नहीं सकतीं।

भयंकर युद्ध करने में निपुण वीर! तुमने कहा कि युद्धकुशल राक्षसी का अन्त कर लौटे हो। क्षुद्र स्वभाववाली उस राक्षसी के वचनों से उत्तेजित होकर उसे तुमने मार तो नहीं डाला? बताओ।

तब लक्ष्मण ने कहा—'मैंने उस राक्षसी की नाक, कान और वक्ष में स्थित स्तनों को काट दिया। उस समय वह चीख उठी।' यह कहकर (लक्ष्मण) हाथ जोड़कर खड़े रहे।

आनंद से प्रफुल्ल होकर राम ने कहा—अंधेरे में तुम्हें मारने के लिए आई हुई राक्षसी को भी तुमने नहीं मारा। किन्तु, उसका अंग भंग मात्र किया। तुम चतुर हो। मनु प्रभृति राजाओं के इस वंश के अनुकूल ही तुमने आचरण किया है और अपने भाई को गले लगा लिया।

वीर (राम) और लक्ष्मण—जैसे अपार दुःख से मुक्त हुए। वारुण अस्त्र को प्रयुक्त करके गगन से वर्षा उत्पन्न की और उसका जल पीकर प्रभात काल की प्रतीक्षा करते हुए एक पर्वत पर विश्राम करते रहे।

पत्थरों से भरी धरती पर, अरण्य के पल्लवों और पुष्पों को लेकर लक्ष्मण के द्वारा बनाई गई शय्या पर, बड़ी वेदना भोगते हुए रामचन्द्र ने शयन किया। लक्ष्मण उनके कोमल चरणों को सहलाते रहे।

राम ने कलापी तुल्य सीता से वियुक्त हो जाने के पश्चात् अपमान की पीड़ा से कुछ आहार नहीं किया था। शोक की अधिकता से निद्रा भी नहीं की थी। उनके ऐसे दुःख का वर्णन हम कैसे कर सकते हैं? उनके निःश्वासों के मध्य उनके प्राण झूलते रहे।

राम, विरह की पीड़ा में बोल उठे—मेरी आँखों को अरण्य में सर्वत्र सीता का रूप ही दिखाई पड़ता है। यह क्या इसलिए कि मैं उसके रूप को नहीं भूल सका हूँ, या नहीं तो क्या यह भी राक्षसों की माया है?

काले केशोंवाली, अरुण रेखावाले नेत्रों से युक्त तथा पतिव्रता नारियों के आभरण सदृश उस (सीता) को मैं अपने पार्श्व में देखता हूँ। किन्तु, उसका आलिंगन करने के लिए उद्यत होने पर उसका स्पर्श नहीं पाता हूँ। क्या उसकी कटि के समान ही उसका आकार भी थोड़ा थोड़ा करके क्षीण होता हुआ अदृश्य हो गया है।

(पहले मुझे ऐसे लगा जैसे) मैंने उसके सद्योविकसित कमल (समान मुख) के मधुपूर्ण बिंब तथा प्रवाल के समान अधर के अमृत का पान किया। किन्तु वह मेरे पार्श्व में नहीं थी। क्या पलक न लगने पर भी स्वप्न दिखाई पड़ते हैं?

यदि यह रात्रि मुझे ऐसा दुःख दे, जो पृथ्वी, गगन आदि पंचभूतों एवं मन के विचार से भी बड़ा हो, तो क्या यह (रात्रि) शीतल, सुगंध तथा नीलवर्ण से युक्त कुंतलों वाली सीता की आँखों से भी बड़ी होगी?

आाद ग्रगा को काट दिया। तब उस राक्षसी ने बडी व्यथा स ना चीत्र मचाई, वह ध्वनि राम क कानो म आ गिरी, तो उसस राम किञ्चित् स्वस्थ स हुए।

फिर, राम ने सोचा—प्रस्तरमय अरण्य म अनेक वीर कक्णो स मुखरित युद्ध करनेवाले राक्षसो की विरोध सूचक ध्वनि यह नही है। यह तो विपदा म पडी हुई एक स्त्री की ही ध्वनि है और वह कोई राक्षसी ही है।

उस समय, नीलवण राम ने आग्नेय अस्त्र को अपन अरुण कर म लेकर उस प्रयुक्त करने का उपक्रम किया। तब वहाँ का अधकार हटकर भूलोक के दूसरे कोने म जाकर इकट्ठा हो गया और उस स्थान म रात्रिकाल दिन के समान भासमान हो उठा।

रामचन्द्र बडे बडे पर्वतो को चूर करते हुए, ऊँचे वृक्षो को तोड़त हुए, भूमि को अपने पदचाप से पीडित करते हुए और अपने दोनो पार्श्वों मे चडचडाहट की ध्वनि उत्पन्न करते हुए चडमारुत से भी तिगुने वेग के साथ (उस राक्षसी को निहत करने के लिए) बढ चले।

प्रलयकाल म जिस प्रकार काला समुद्र धरती पर उमड आये, उस प्रकार का दृश्य उपस्थित करत हुए आनेवाले, अपने सहायक ज्येष्ठ भ्राता को लक्ष्मण न देखा और कहा—'हे उदार। चिंता न करें, चिंता न करें।'

'यह दास आ गया। आप मन म व्याकुल न हो।'—यो कहत हुए लक्ष्मण रामचन्द्र के कोमल पल्लव जैसे चरणो पर नत हुआ। रामचन्द्र ने मानो अपनी खोई आँखे पुन प्राप्त की।

उन रामचन्द्र की दशा, जिनकी आँखो स झरने के समान अश्रु बह रह थे, उस गाय की सी हो गई, जो अपना बछडा खो जान से, उस खोजने का मार्ग भी न देखती हुई व्याकुल रहती हो और स्वय ही उस बछडे क आ जाने पर अपने थन से दूध बहाती हुई खडी हो।

उस समय, राम ने लक्ष्मण का पुन पुन आलिगन किया और अपनी अश्रुधारा से उसके स्वर्ण जैसे शरीर को धो डाला। फिर कहा—हे लोहे के स्तभ जैसे कधोंवाले। यह सोचकर कि तुम कही खो गये हो, अबतक मै अत्यत दु खी हो रहा था।

'क्या घटित हुआ? मुझे बताओ।'—राम के यो पूछने पर लक्ष्मण ने सारा वृत्तात कह सुनाया। तब उन प्रभु ने, जिनसे बढी अन्य कोई सत्ता नही है, आनद और व्यथा दोनो को एक साथ ही प्राप्त किया।

फिर, राम ने लक्ष्मण से कहा—जो विशाल समुद्र क मध्य फँसा हो, क्या प्रत्येक लहर क आत समय उसका भयभीत होना उचित है? उसी प्रकार दुर्दैव के प्रभाव स जन्म रूपी बधन मे पडे हुए हमें, इ खद विपदा के प्राप्त होने पर शिथिल नही होना चाहिए।

तीन देव (ब्रह्मा, विष्णु और महेश), तीन लोकों के निवासी—सब मेरे शत्रु बनकर आवे, तो भी मुझे कौन जीत सकेगा? भाई। तुम मेरे साथ हो—यह एक बात ही मुझे बल देता है। इससे बढकर मुझे और कोई रक्षा नही चाहिए। (अर्थात्, अन्य कोई सेना आवश्यक नही है।)

मुझसे जो वियुक्त होने हो, होवे। जितनी भी आपदाएँ आतीं हो आएँ। किंतु दीर्घ वीर कंकण धारण करनेवाले हे वीर ! वे सारी आपदाएँ तुम्हारा न दर हो जातो हैं। मेरे निकट रहकर वे (विपदाएँ) मुझे सता नही सकती।

भयकर युद्ध करने म निपुण वीर ! तुमने कहा कि युद्धकुशल राक्षसी का प्राप्त कर लौटे हो। क्षुद्र स्वभाववाली उस राक्षसी के वचनो से उत्तेजित होकर उसे तुमने मार तो नही डाला ? बताओ।

तब लक्ष्मण ने कहा—'मैने उस राक्षसी की नाक कान और वक्षस्थल म स्थित स्तनो को काट दिया। उस समय वह चीख उठी।' यह कहकर (लक्ष्मण) हाथ जोडकर खडे रहे।

आनद से प्रफुल्ल होकर राम ने कहा—अँधेरे म तुम्हे मारने के लिए आई हुई राक्षसी को भी तुमने नही मारा। किन्तु, उसका अग भग मात्र किया। तुम चतुर हो। मनु प्रभृति राजाओ के इस वश के अनुकूल ही तुमने आचरण किया है और अपने भाई को गले लगा लिया।

वीर (राम) और लक्ष्मण—जैसे अपार दु ख से मुक्त हुए। वारुण अस्त्र का प्रयुक्त करके गगन से वर्षा उत्पन्न की और उसका जल पीकर प्रभात काल की प्रतीक्षा करते हुए एक पर्वत पर विश्राम करते रहे।

पत्थरो से भरी धरती पर, अरण्य के पल्लवो और पुष्पो को लेकर लक्ष्मण के द्वारा बनाई गई शय्या पर, बडी वेदना भोगते हुए रामचन्द्र ने शयन किया। लक्ष्मण उनके कोमल चरणों को सहलाते रहे।

राम ने कलापी तुल्य सीता से वियुक्त हो जाने के पश्चात् अपमान की पीडा से कुछ आहार नही किया था। शोक की अधिकता से निद्रा भी नही की थी। उनके ऐसे दु ख का वर्णन हम कैसे कर सकते हैं ? उनके नि श्वासो के मध्य उनके प्राण झूलते रहे।

राम, विरह की पीडा मे बोल उठे—मेरी आँखो को अरण्य म सर्वत्र सीता का रूप ही दिखाई पडता है। यह क्या इसलिए कि मैं उसके रूप को नही भूल सका हूँ, या नही तो क्या यह भी राक्षसो की माया है ?

काले केशोवाली, अरुण रेखावाले नेत्रो से युक्त तथा पतिव्रता नारियो के आभरण सदृश उस (सीता) को मै अपने पार्श्व मे देखता हूँ। किन्तु, उसका आलिंगन करने के लिए उद्यत होने पर उसका स्पर्श नही पाता हूँ। क्या उसकी कटि के समान ही उसका आकार भी थोडा थोडा करके क्षीण होता हुआ अदृश्य हो गया है।

(पहले मुझे ऐसे लगा जैसे) मैने उसके सद्योविकसित कमल (समान मुख) के मधुपूर्ण बिंब तथा प्रवाल के समान अधर के अमृत का पान किया। किन्तु, वह मेरे पार्श्व म नही थी। क्या पलक न लगने पर भी स्वप्न दिखाई पड़ते हैं ?

यदि यह रात्रि मुझे ऐसा दु ख दे, जो पृथ्वी, गगन आदि पचभूतो एव मन के विचार से भी बडा हो, तो क्या यह (रात्रि) शीतल, सुगध तथा नीलवर्ण से युक्त कुतलो वाली सीता की आँखो से भी बडी होगी ?

आादि अंगों को काट दिया। तब उस राक्षसी ने बडी व्यथा में जो चीख मचाई, वह ध्वनि राम के कानों में आ गिरी, तो उससे राम किंचित् स्वस्थ से हुए।

फिर, राम ने सोचा—प्रस्तरमय अरण्य में अनेक वीर कंकणों से मुखरित युद्ध करनेवाले राक्षसों की विरोध सूचक ध्वनि यह नहीं है। यह तो विपत्ति में पडी हुई एक स्त्री की ही ध्वनि है और वह कोई राक्षसी ही है।

उस समय, नीलवर्ण राम ने आग्नेय अस्त्र को अपने अरुण कर में लेकर उसे प्रयुक्त करने का उपक्रम किया। तब वहाँ का अंधकार हटकर भूलोक के दूसरे कोने में जाकर इकट्ठा हो गया और उस स्थान में रात्रिकाल दिन के समान भासमान हो उठा।

रामचन्द्र बडे बडे पर्वतों को चूर करते हुए, ऊँचे वृक्षों को तोडते हुए, भूमि को अपने पदचाप से पीडित करते हुए और अपने दोनों पार्श्वों में चडचडाहट की ध्वनि उत्पन्न करते हुए चंडमारुत से भी तिगुने वेग के साथ (उस राक्षसी को निहत करने के लिए) बढ चले।

प्रलयकाल में जिस प्रकार काला समुद्र धरती पर उमड आये, उस प्रकार का दृश्य उपस्थित करते हुए आनेवाले, अपने सहायक ज्येष्ठ भ्राता को लक्ष्मण ने देखा और कहा—'हे उदार। चिंता न करें, चिंता न करें।'

'यह दास आ गया। आप मन में व्याकुल न हों।'—यों कहते हुए लक्ष्मण रामचन्द्र के कोमल पल्लव जैसे चरणों पर नत हुआ। रामचन्द्र ने मानो अपनी खोई आँखें पुनः प्राप्त कीं।

उन रामचन्द्र की दशा, जिनकी आँखों से झरने के समान अश्रु बह रहे थे, उस गाय की सी हो गई, जो अपना बछडा खो जाने से, उसे खोजने का मार्ग भी न देखती हुई व्याकुल रहती हो और स्वयं ही उस बछडे के आ जाने पर अपने थन से दूध बहाती हुई खडी हो।

उस समय, राम ने लक्ष्मण का पुनः पुनः आलिंगन किया और अपनी अश्रुधारा से उसके स्वर्ण जैसे शरीर को धो डाला। फिर कहा—हे लोहे के स्तंभ जैसे कंधोंवाले! यह सोचकर कि तुम कहीं खो गये हो, अबतक मैं अत्यंत दुःखी हो रहा था।

'क्या घटित हुआ? मुझे बताओ।'—राम के यों पूछने पर लक्ष्मण ने सारा वृत्तांत कह सुनाया। तब उन प्रभु ने, जिनसे बडी अन्य कोई सत्ता नहीं है, आनंद और व्यथा दोनों को एक साथ ही प्राप्त किया।

फिर, राम ने लक्ष्मण से कहा—जो विशाल समुद्र के मध्य फँसा हो, क्या प्रत्येक लहर के आते समय उसका भयभीत होना उचित है? उसी प्रकार दुर्दैव के प्रभाव से जन्म रूपी बंधन में पडे हुए हम, दुःखद विपदा के प्राप्त होने पर शिथिल नहीं होना चाहिए।

तीन देव (ब्रह्मा, विष्णु और महेश), तीन लोकों के निवासी—सब मेरे शत्रु बनकर आवें, तो भी मुझे कौन जीत सकेगा? भाई! तुम मेरे साथ हो—यह एक बात ही मुझे बल देती है। इससे बढकर मुझे और कोई रक्षा नहीं चाहिए। (अर्थात्, अन्य कोई सेना आवश्यक नहीं है।)

मुझसे ना वियुक्त होने हो, हावे। जितनी भी आपदाएँ आवें, ना आव। किंतु दीघ वीर-कंकण धारण करनेवाले हे वीर। व सारी आपदाएँ तुम्हा म त्र हानेवाली । मेरे निकट रहकर वे (विपदाएँ) मुझे सता नही सकता।

भयकर युद्ध करने म निपुण वीर। तमने कहा कि युद्धकुशल राक्षमी का परान्त कर लौटे हो। क्षुद्र स्वभाववाली उस राक्षसी के वचनो से उत्तेजित होकर उम तमन मार तो नही डाला? बताओ।

तब लक्ष्मण ने कहा—'मने उम राक्षमी की नाक कान और वक्ष म स्थत स्तनो को काट दिया। उम समय वह चीख उठी।' यह कहकर (लक्ष्मण) हाथ जोडकर खडे रहे।

आनद से प्रफुल्ल होकर राम ने कहा—अधरे म तुम्हे मारने क लिए आइ हुइ राक्षसी को भी तुमने नही मारा। किन्तु, उसका अग भग मात्र किया। तुम चतुर हो। मनु प्रभृति राजाओ के इस वश के अनुकूल ही तुमने आचरण किया है और अपने भाइ को गले लगा लिया।

वीर (राम) और लक्ष्मण—जैसे अपार दु ख से मुक्त हुए। वारुण अस्त्र का प्रयुक्त करके गगन ने वर्षा उत्पन्न की और उसका जल पीकर प्रभात काल की प्रतीक्षा करते हुए एक पर्वत पर विश्राम करते रहे।

पत्थरो से भरी धरती पर, अरण्य के पल्लवा और पुष्पो को लेकर लक्ष्मण के द्वारा बनाई गई शय्या पर, बडी वेदना भोगते हुए रामचन्द्र ने शयन किया। लक्ष्मण उनके कोमल चरणों को सहलाते रहे।

राम ने कलापी तुल्य सीता से वियुक्त हो जाने के पश्चात् अपमान की पीडा से कुछ आहार नही किया था। शोक की अधिकता से निद्रा भी नही की थी। उनके ऐसे दु ख का वणन हम कैसे कर सकते हैं? उनके नि श्वासो के मध्य उनके प्राण झूलते रहे।

राम, विरह की पीडा मे बोल उठे—मेरी आखो को अरण्य म सवत्र सीता का रूप ही दिखाई पडता है। यह क्या इसलिए कि मै उसके रूप को नही भूल सका हूँ, या नही तो क्या यह भी राक्षसो की माया है?

काले केशोवाली, अरुण रेखावाले नेत्रो स युक्त तथा पतिव्रता नारियो के आभरण सदृश उस (सीता) को मै अपने पार्श्व मे देखता हूँ। किन्तु, उसका आलिंगन करने के लिए उद्यत होने पर उसका स्पर्श नही पाता हूँ। क्या उसकी कटि के समान ही उसका आकार भी थोडा थोडा करके क्षीण होता हुआ अदृश्य हो गया है।

(पहले मुझे ऐसे लगा जैसे) मैने उसके सद्योविकसित कमल (समान मुख) के मधुपूर्ण बिंब तथा प्रवाल के समान अधर के अमृत का पान किया। किन्तु, वह मेरे पार्श्व म नही थी। क्या पलक न लगने पर भी स्वप्न दिखाई पड़ते हैं?

यदि यह रात्रि मुझे ऐसा दु ख दे, जो पृथ्वी, गगन आदि पचभूतो एव मन के विचार से भी बडा हो, तो क्या यह (रात्रि) शीतल, सुगध तथा नीलवर्ण से युक्त कुतलो वाली सीता की आँखो से भी बडी होगी?

नल तथा उसमे सचरण करनेवाले मीनो से युक्त समुद्र से मनोहर चन्द्र के नाम से जो प्रलयाग्नि उत्पन्न हुई है, उसकी उष्ण किरणों के स्पर्श से उत्तप्त आकाश के शरीर भर मे फफोले से पड गये हैं (अर्थात्, नक्षत्र आकाश के फफोले कहे गये हैं।)

चक्रवर्त्ती राम इस प्रकार के अनेक वचन कहकर व्याकुल हो रहे थे। उसी समय अरुण किरणोंवाला सूर्य इस प्रकार उदित हुआ, जैसे उन (राम) की दु खमय दशा को देखकर स्वय दु खी होकर सहानुभूति दिखा रहा हो (१-१०१)

●

अध्याय ११

कबन्ध पटल

वे (राम लक्ष्मण), प्रभात के समय उस कलापी तुल्य रूपवती, पतिव्रता (सीता) देवी का, जिसकी क्षमा की तुलना मे पृथ्वी का क्षमा गुण भी निस्सार सा लगता था, अन्वेषण करते हुए गये। पक्षी इस प्रकार शब्द कर रहे थे, मानो वे उनके दु ख को देखकर रो रहे हों।

वे दोनो धनुर्धर वीर, पचास योजन पर्यत अरण्य को पार करके गये और कबध नामक उस राक्षस के वन मे जा पहुँचे, जो एक ही स्थान पर पडा रहता था और अपनी दीर्घ बाँहो को दूर तक फैलाकर सब प्राणियो को हाथो मे उठाकर अपने पेट मे भर लेता था। इतने मे सूर्य भी आकाश के मध्य आ पहुँचा।

(उस राक्षस के हाथों मे पडनेवाले) हाथी से चीटी तक, सब प्राणी मिट जाते थे। उसको देखने मात्र से अत्यत भय से काँपने लगते थे। उसके चगल मे आकर फिर उस बधन मे वे कभी छूट नही पाते थे।

कबध के निकट सब प्राणी इस प्रकार काँपते रहते थे, जिस प्रकार, कुल परपरा से आगत नीतिमार्ग को छोडनेवाले, शासन की दक्षता से रहित, शक्तिहीन राजा के राज्य मे रहनेवाले प्राणी हो। वे बिखर जाते, एक साथ सम्मिलित होते, पीडित होकर भागते और स्तब्ध हो खडे रहते।

बडे बडे पर्वत भी कबध के हाथों मे लुढकते हुए चले आते। बड़े बड़े वृक्ष भी जड से उखड उखड़कर निकल आते। अरण्य की नदियाँ उमडकर ऊँचे स्थानो एव सब दिशाओ मे फैल जाती। जल भरे मेघ भी नीचे आ गिरते। यह सारा दृश्य उन वीरो ने देखा।

जिस प्रकार सारी सृष्टि के विनाश का कारणभूत प्रलय काल जब आता है, तब प्रभजन का थपेड़ा खाकर चतुर्दिक् मे समुद्र उमड़ उठता है और गर्जन करता हुआ सारी पृथ्वी को ढक देता है, उसी प्रकार सबको चारों ओर से घेरकर आनेवाली (कबध की) उन बाँहों मे वे (राम लक्ष्मण) भी फँस गये।

मानो चक्रवाल पर्वत ही सिमटकर आ रहा हो, इस प्रकार आनेवाली उन प्राचीर जैसी बाँहों में फँसकर वे दोनों वीर, यह सोचकर प्रसन्न हुए कि मधु जैसी मीठी बोलीवाली सीता की रक्षा के उद्देश्य से रावण की सेना ही आकर उन्हें घेर रही है (और उस सेना को मिटा देने का सुअवसर हमें प्राप्त हुआ है)।

राम ने अपने अनुज को देखकर कहा—हे तात! ऐसा लगता है कि सीता का हरण करनेवाला रावण यहीं पर निवास करता है। अब हमारा दुःख मिटनेवाला है।

तब लक्ष्मण ने (राम को) प्रणाम करके उत्तर दिया—यह राक्षस सेना होती तो क्या नगाड़े बजने की ध्वनि और शंखनाद नहीं सुनाई देते? यह राक्षस सेना नहीं है और कुछ है। फिर, लक्ष्मण भी सोचने लगे (कि यह क्या है?)।

फिर, लक्ष्मण ने (राम से) कहा—प्रलयकाल में भी अमर रहनेवाले हे प्रभु! यह कदाचित् वह सर्प ही है, जिससे देवों ने मंदर पर्वत को लपेटकर क्षीर-सागर को मथा था, अथवा यह कोई दूसरा सर्प है। यह (सर्प) अपने मुँह में अपनी पूँछ को जोड़कर वृत्त बनाकर हमें बाँध रहा है।

आगे-आगे चलनेवाले (राम) ने लक्ष्मण के इन वचनों को सुनकर सोचा कि उसका कथन ठीक ही है। फिर (उस घेरे में) दो योजन दूर जाने पर वे दोनों उस पर्वताकार राक्षस के सम्मुख आ खड़े हुए।

वह राक्षस अपनी आँखों के साथ ऐसा दृश्य उपस्थित करता था, जैसे उष्ण किरणवाले दो सूर्यों से युक्त मेरुपर्वत हो। उसके पेट में ही उसका मुँह था, जिसमें दाँत ऐसे थे कि उनके मध्य दो दो 'खात' (दस मील का एक खात होता था) की दूरी थी और (वह मुँह) मकर मीनों से पूर्ण समुद्र के समान था।

उसकी बाँहें इस प्रकार पड़ी थीं, जैसे देवों के द्वारा मंदर रूपी दिव्य मथानी को (क्षीरसमुद्र में) डालकर उसपर लपेटा गया वासुकि सर्प दोनों ओर से खींचा जाकर फैला हुआ पड़ा हो।

उसकी नासिका से इस प्रकार अग्नि और धूमलता निकल रही थी, जैसे लुहार की भाथी हो। उसके सामने उसकी जिह्वा इस प्रकार निकली हुई थी, जैसे विशाल समुद्र को एक ही दशा में रखनेवाली वड़वाग्नि की ज्वाला हो।

उसके मुँह के दोनों खड्ग दंत इस प्रकार लगते थे, मानो पूर्णचंद्र, (राहु नामक) सर्प को अपनी ओर आते हुए देखकर भय से एक सुरक्षित स्थान को खोजता हुआ आया हो और निर्झरों से पूर्ण महान् पर्वत की कंदरा के भीतर, दो खंड होकर, घुस रहा हो।

उसका शरीर शीतल जल, प्रभृति प्रसिद्ध पंचभूतों से नहीं बना था, किंतु शास्त्रों में बताये गये पंचमहापाप ही एकत्र होकर उस आकार में आ गये थे।

उसके कर्ण कुहर ऐसे थे, जैसे उष्ण तथा शीतल किरणवाले ज्योतिष्पिंडों (अर्थात्, सूर्य चंद्रों) को निगलनेवाले सर्पों (राहु केतु) के, कुछ कार्य न रहने पर, विश्राम करने के लिए योग्य बिल हों। उसका उदर उस नरक का भी उपहास करनेवाला था, जिसमें असत्य भाषण आदि पाप कर्म करनेवाले नीच गुणवाले पापी रहते हैं।

वह (कबंध) अपने करो मे सब प्राणियो को उठाकर अपने विशाल नाव उदर म भर लेता था, जिससे उसका मुह यम पुरी के विजयशील द्वार के समान था।

वह समुद्र के समान बडा कोलाहल कर रहा था। उसका शरीर हलाहल के समान काला और उष्ण था। उसका आकार, विष्णु के चक्र के द्वारा शिर के कट पर पडे हुए कालनेमि (नामक राक्षस) के कबंध (धड) के समान था।

वह ऐसा लगता था, जैसे मरु पवत प्रभजन के झोंके स्थान से शिखरों के जाने पर, शिखरहीन हो पडा हो। इस प्रकार के कबंध को सूक्ष्म ज्ञानवाले उन द वीरो ने देखा।

उन्होंने उसके उस फटे मुँह को देखा, जिसमे चक्रवाल पवतो की सीमा से हुई सारी पृथ्वी समस्त समुद्रो सहित घुस सकती थी और उन्होने सोचा कि यह राक्षसो किसी प्राचीरावृत नगर का द्वार है, जिसके भीतर देवता लोग भी प्रवेश नही कर सकते

उस समय अनुज (लक्ष्मण) ने, (कबंध को) भली भॉति देखकर कह हे धनुविद्या म निपुण। यह कोई बडा भूत है। यह सब प्राणियो को अपने हाथो घेरकर अपने मुह म डालता है। हमको भी उन प्राणियो के साथ मिलाकर खा जाय अब हम क्या करे। तब राम ने उत्तर दिया—

हे धरती को उठानेवाले आदिवराह जैसे बलवाले। हॉ, यह कोई भूत ह क्योकि वह देखो, इसका शरीर इस प्रकार फैला है कि यह विशाल धरती भी इसके पर्याप्त नही मालूम होती। इसके दाये और बाये दीर्घ बॉहे फैली हैं।

हे भाई। कलापी तुल्य सीता वियुक्त हुई। पितृ तुल्य जटायु मर गये। अ से पीडित चित्त के साथ मै जीवित रहना नही चाहता हूँ। अत, म इस (भूत) भाजन बन जाऊँगा। तुम यहॉ से बचकर चले जाओ।

मुझे जन्म देनेवालो को दु खी बनाते हुए, अपने भाई को दु खी करत गुरुजनो के दु खी होते हुए, सब अपयश का आश्रम बनकर, म उत्पन्न हुआ हूँ। अ अपने प्राण छोडे बिना इस अपयश को मिटा नहा सकता।

क्या म मिथिला के राजा के पास पवत जैसे दृढ तूणीर तथा धनुष को यह कहता हुआ जा सकूँगा कि गृहस्थाश्रम के योग्य आपके द्वारा प्रदत्त, मधुरभाषिणी लता समान सीता राक्षसो के घर मे रहती है।

'विकसित पुष्पों से भूषित सीता की रक्षा करने के सामर्थ्य से हीन हो म, अपने अनुज की रक्षा पाकर ही जीवित हूँ'—ऐसी बात सुनने की अपेक्षा यह अच्छा होगा कि 'मै परलोक म रहता हूँ।' अत, अब इस जीवन को त्याग देना उचित है।

हमारी (लेखक की) दासता को स्वीकार करनेवाले राम ने जब ये बातें तब अनुज ने कहा—मै आपके पीछे पीछे इस कानन म आया। मेरे आने पर भी विपदा आपको प्राप्त हुई है। किन्तु, यदि आपके पूर्व ही मै अपने प्राण न त्यागकर प्यारे प्राण लेकर लौट जाऊँ, तो मेरी सेवा क्या बहुत भली होगी?

फिर, लक्ष्मण ने कहा—दुःख को जीतनेवाले ही तो वीर होते है। यदि अपने पिता, माता, ज्येष्ठ भ्राता आदि गुरुजनो म पहले ही (उन गुरुजनो की रक्षा म) कोइ अपने प्राण न त्याग करे, तो उमका जीवन अपयश का ही तो भाजन होगा ?

'हरिणी तुल्य पत्नी के साथ ज्येष्ठ भ्राता अरण्य म निवास करने गया त उसका अनुज, निद्राहीन रहकर उनकी रखवाली करता रहा'—इस प्रकार मेरी प्रशंसा जो लोग करते थे, उनके द्वारा, 'उस ज्येष्ठ भ्राता तथा उस भ्राता की पत्नी से अलग होकर आ गया'—इस प्रकार का अपयश पाना कितना बडा पाप होगा ?

मेरी माता (सुमित्रा) ने मुझसे कहा था—'तुम अपने ज्येष्ठ भ्राता की सब आज्ञाओ का पालन करते रहना। किसी भी विपदा का सहने के लिए तैयार रहना। यदि महान् यशस्वी राम का कभी विनाश होने की संभावना हो, तो उनसे पहले तुम अपने प्राण त्यागना।' मै यदि अपनी माता के वचन पर स्थिर न रहूँगा, तो मेरा सत्य कैसे टिकेगा ?

हे सुन्दर स्वर्ण आभरणों से भूषित कंधोवाले! 'मेरी जननी तथा मै आपकी जननी तथा आपके मन के अनुकूल और सब सज्जनो के लिए प्रिय, व्यवहार करते रहते है'—ऐसी प्रशंसा के पात्र हम बनना चाहते है। इसके विपरीत अपने प्राणो को बचाये रखने की इच्छा करके हम अपने कर्त्तव्य का त्याग नही करेंगे।

उस प्रलय काल मे भी जब सारी सृष्टि मिट जाती है, जब शाश्वत वेदो के द्वारा प्रशंसित देवता भी मिट जाते हैं, तब भी आपका अन्त नही होता। ऐसे आप हाथी आदि प्राणियो को खाकर इस वन मे रहनेवाले भूत के द्वारा मारे जाकर मिट जायँ, क्या यह भी संभव है ?

सुननेवाले इस बात को न मानेंगे। देखनेवाले इसे नही चाहेंगे। 'पुष्पमाला भूषित कुंतलोवाली सीता को दुःख म न रखा, किन्तु (राक्षसो के साथ) युद्ध करके (उस सीता को) मुक्त किया'—इस प्रकार का महान् यश न पाकर, 'युद्ध म (राक्षसो को) नही जीत सका और ऐसे ही मर गया'—ऐसी निंदा पाना क्या उचित है ? ऐसी निंदा से बढकर और क्या अपयश हो सकता है ?

विष के समान क्रूर इस भूत की गणना ही क्या है ? यह बात नही है कि इस करवाल के आघात से इसके प्राण नही निकलेंगे। देखिए, मैं किस प्रकार, हमे घेरनेवाले इसके हाथो को और इसके बिल जैसे मुँह को काट देता हूँ। आप चिन्ता छोडिए।—यो लक्ष्मण ने कहा।

इस प्रकार के वचन कहकर लक्ष्मण स्वयं प्रभु से आगे बढने लगे। तब राम लक्ष्मण से आगे जाने लगे। इस समय लक्ष्मण ने राम को रोका। यह देखकर हाय! स्वयं देवता भी रो पडे, फिर अन्यो के संबंध मे क्या कहा जाय।

इस प्रकार, वे दोनो वीर कंकणधारी वीरमुख के दो नेत्रो के समान चलकर कबंध के निकट पहुँचे। तब कबंध ने उनसे प्रश्न किया, 'कर्म के परिणामस्वरूप यहाँ आये हुए तुम दोनों कौन हो ?' यह सुनकर वे दोनो बडे क्रोध के साथ उसके सामने अपलक खडे रहे।

कबध यह देखकर कि उसके प्रश्न से व (राम लक्ष्मण) डरे नही, किन्तु उसकी अवहलना करते हुए खड ह, अत्यधिक क्रोध स भर गया। उसके रोम रोम से चिनगारी निकलने लगी। वह उन्हे निगलन की इच्छा म बढा। तब उसके गगनोन्नत कधो को उन्होन अपने करवाल स काट दिया।

उसकी दोनो बाँहो के कट जान म उसकी देह स रक्त की धारा नीचे की ओर बहने लगी। तब वह एक ऐस पवत की समता करने लगा, जिसके दोनो ओर पत्थरो से भरे सानु होत ह।

प्रभु के कर का स्पश होन स उस (कबध) का वह शापमय रूप भी मिट गया। उसका पाप मिट गया। कट हाथोवाले घोर आकार को छोड़कर वह गगन म इस प्रकार जाकर प्रकाशमान हुआ, जैसे कोई पक्षी अपने पिजरे स आकाश म उड चला हो।

गगन म खड होकर उसन सोचा कि यह राम ही ब्रह्मा प्रभृति सब देवो के ध्यान म प्रत्यक्ष होनेवाले हैं, और उनके गुणो का गान करन लगा। जब पुण्य फल अनुकूल होता है, तब कौन सा पदार्थ दुर्लभ हो सकता ह ?

कबध ने राम स कहा—ह प्रभु! मुझ, पापी क शाप को तुमन दूर किया। क्या तुम्ही सारी सृष्टि क निर्माता हो ? तुम्ही अविनश्वर धम के साक्षीभूत हो ? तुम्ही दवो की पूर्वकृत तपस्या क फल क साकार रूप हो ? क्या तुम्ही वह परमतत्त्व हो, जो तीन मूर्त्तियो म विभक्त हुआ हे ?

ह कारण रहित आदिपरब्रह्म! तुम्हारे अवतार के तत्त्व का कोई भी नही पहचान सकता। क्या तुम वह वटवृक्ष हो, जो प्रलय काल म उत्पन्न होता है। या, क्या उस वृक्ष का पत्ता हो ? या उस वट पत्र म शयन करनवाले बालक हो। या सृष्टि के आदिकारणभूत परमपुरुष हो ? कहो, तुम कौन हो ?

ससार म जो देखनेवाले जीव हैं और जो दख जानेवाल पदार्थ हैं, तुम उन सबकी दृष्टि हो। तुम सब पदार्थो मे सलग्न रहत हो, किन्तु तुम्हे सुख दु ख से कुछ सम्बन्ध नही रहता। अपने दिव्य प्रभाव से तुम सब लोको को अपने उदर म समा लेते हो और फिर उन्हे प्रकट कर देते हो। क्या तुम पुरुष हो ? स्त्री हो ? अथवा उन दोनो से परे हो (अर्थात्, उभय स पृथक् हो) ? अथवा और कोई हो ?

सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा तुम्ही हो। उस ब्रह्मा का कारणभूत परमपुरुष (विष्णु) तुम्ही हो। उस परमपुरुष का भी कोई कारणभूत तत्त्व हो, तो वह भी तुम्ही हो। प्रसिद्ध वेद तुमको परम ज्योति कहत हैं। तो क्या अन्य देवता लोग उससे लज्जित नही होत (अर्थात्, अन्य देवो को परम ज्योति कहना उचित नही है) ?

अष्ट दिशारूपी प्राकार स युक्त, चौदह मजिलो क इस ब्रह्माड रूपी महान् मदिर को सर्वत्र प्रकाशित करनेवाले तीनो ज्योतिर्मडलो (अर्थात्, चद्र मडल, सूर्य मडल और नक्षत्र मडल) के ऊपर स्थित परमपद म कभी प्रफुल्ल न होनेवाले कमल कोरक के भीतर रहनेवाला बीज ही तुम्हारा आवास है।

हे परमेष्ठिन् (अर्थात्, परमपद क स्थान म निवास करनेवाले)! अनत अष्ट

दिशाओं में स्थित भूदेवों (ब्राह्मणों) के द्वारा किये जानेवाले उत्तम यज्ञों में हविर्भाग का भाजन करनेवाले तुम्ही हो। वह भाजन देनेवाला (अर्थात्, यज्ञकर्ता) भी तुम्ही हो। तुम्हारे इन दो रूपों में रहने के तत्त्व को कौन जान सकता है?

हे परात्पर! जिस प्रकार स्थिर जलाशय में बुद्बुद उत्पन्न होकर मिटते रहते हैं, उसी प्रकार अनेक अंड तुममें एक समान निकलते हैं और (प्रलय काल में) तुममें विलीन हो जाते हैं। इस तत्त्व को कौन ठीक ठीक समझ सकता है?

क्या तुम्हारी लीलाओं को देखकर ही वेद प्रकाशित किये गये हैं? या वेदों में प्रतिपादित ढंग से तुम्ही अपने कार्य करते रहते हो? तुमने मुझे ऐसा फल दिया है जिसे पापकर्म करनेवाले लोग कभी प्राप्त नहीं कर सकते। न जाने पूर्वजन्म में मैंने क्या पुण्य किये थे (जिससे यह भाग्य मुझे अब प्राप्त हुआ है)?

प्रेत के समान मेरे पापों के आश्रयभूत राक्षस-जन्म के दोषों को मिटाकर तुमने मुझे निर्दोष दिव्य जन्म प्रदान किया। मुझे दुःख समुद्र के पार लगाया और तुम्हारे प्रति अज्ञान जन्य मेरे विरोध को मिटा दिया। हे मेरे प्रभु! श्वान सदृश रहनेवाला मैंने, न जाने कौन-सा बड़ा सुकृत किया था?

इस प्रकार के मधुर वचन कहकर कबंध यह सोचकर कि यदि मैं मारे भविष्य को स्पष्ट रूप से कह दूँ, तो वह देवताओं की इच्छा के अनुकूल नहीं होगा, माँ को देखकर प्रसन्न होनेवाले गाय के बछड़े के जैसे चुपचाप खड़ा रहा। तब धर्मनिष्ठ लोग जिनका साक्षात्कार प्राप्त करते हैं, उन प्रभु (राम) ने उसकी ओर देखा।

फिर, राम ने अपने अनुज से पूछा—हे भाई! यह अत्युज्ज्वल दुर्लभ देह धारण कर खड़ा रहनेवाला क्या वही है, जो अभी हमारे हाथों मरा था? या नहीं तो, यह कोई दूसरा प्रभावशाली व्यक्ति है? तुम इसे भली भाँति देखो। तब लक्ष्मण ने उस (कबंध) से प्रश्न किया कि तुम कौन हो?

तब कबंध ने कहा—मनोहर आभरणों तथा पुष्पमालाओं से भूषित हे वीर! मैं तनु नामक एक गंधर्व हूँ। शाप के कारण मुझे यह राक्षस जन्म मिला था। तुम दोनों के कर कमल का स्पर्श पाकर मैं अपने पूर्वरूप को प्राप्त कर सका। तुम मेरे पितामह तुल्य[1] हो। मेरे वचन सुनो—

तुम दोनों शर प्रयोग के लिए उपयुक्त धनुष को धारण करनेवाले हो। यद्यपि तुम्हारी सहायता करनेवाला कोई नहीं है, तथापि सीता का अन्वेषण करने के लिए तथा अन्य आवश्यक कार्य करने के लिए किसी सहायक का होना उत्तम होगा। जिस प्रकार बिना नाव के समुद्र को पार करना कठिन है, उसी प्रकार बिना सहायक के शत्रु पक्ष का विनाश करना भी कठिन है।

दोषरहित शिव के प्रताप के बारे में क्या कहें? वह देव, पद्म में उत्पन्न ब्रह्मा के द्वारा बनाई हुई सारी सृष्टि का विनाश करनेवाला है, किन्तु वे भी अवार्य बलशाली भूतों को अपने साथी बनाकर रखते हैं। यह तुम जानते ही हो।

१ कबंध के दुःख को दूर करने के कारण वह राम-लक्ष्मण को अपने पितामह-तुल्य समझता है। — अनु०

कबंध यह देखकर कि उसके प्रश्न से वे (राम लक्ष्मण) डरे नही, किन्तु उसकी अवहेलना करते हुए खडे हैं, अत्यधिक क्रोध से भर गया। उसके रोम रोम से चिनगारी निकलने लगी। वह उन्हें निगलने की इच्छा में रहा। तब उसके गगनोन्नत कंधों को उन्होंने अपने करवाल से काट दिया।

उसकी दोनो बाँहों के कट जाने से उसकी देह से रक्त की धारा नीचे की ओर बहने लगी। तब वह एक ऐसे पर्वत की समता करने लगा, जिसके दोनो ओर पत्थरों से झरने बहते हो।

प्रभु के कर का स्पर्श होने से उस (कबंध) का वह शापमय रूप भी मिट गया। उसका पाप मिट गया। कटे हाथोंवाले घोर आकार को छोड़कर वह गगन में इस प्रकार जाकर प्रकाशमान हुआ, जैसे कोई पक्षी अपने पिंजरे से आकाश में उड चला हो।

गगन में खडे होकर उसने सोचा कि यह राम ही ब्रह्मा प्रभृति सब देवों के ध्यान में प्रत्यक्ष होनेवाले हैं, और उनके गुणो का गान करने लगा। जब पुण्य फल अनुकूल होता है, तब कौन सा पदार्थ दुर्लभ हो सकता है ?

कबंध ने राम से कहा—हे प्रभु ! मुझ, पापी के शाप को तुमने दूर किया। क्या तुम्ही सारी सृष्टि के निर्माता हो ? तुम्ही अविनश्वर धर्म के साक्षीभूत हो ? तुम्ही देवों की पूर्वकृत तपस्या के फल के साकार रूप हो ? क्या तुम्ही वह परमतत्त्व हो, जो तीन मूर्त्तियों में विभक्त हुआ है ?

हे कारण रहित आदिपरब्रह्म ! तुम्हारे अवतार के तत्त्व को कोई भी नही पहचान सकता। क्या तुम वह वटवृक्ष हो, जो प्रलय काल में उत्पन्न होता है। या, क्या उस वृक्ष का पत्ता हो ? या उस वट पत्र में शयन करनेवाले बालक हो। या सृष्टि के आदिकारणभूत परमपुरुष हो ? कहो, तुम कौन हो ?

संसार में जो देखनेवाले जीव हैं और जो देखे जानेवाले पदार्थ हैं, तुम उन सबकी दृष्टि हो। तुम सब पदार्थों में संलग्न रहते हो, किन्तु तुम्हे सुख दुःख से कुछ सम्बन्ध नही रहता। अपने दिव्य प्रभाव से तुम सब लोकों को अपने उदर में समा लेते हो और फिर उन्हें प्रकट कर देते हो। क्या तुम पुरुष हो ? स्त्री हो ? अथवा उन दोनो से परे हो (अर्थात्, उभय से पृथक् हो) ? अथवा और कोई हो ?

सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा तुम्ही हो। उस ब्रह्मा का कारणभूत परमपुरुष (विष्णु) तुम्ही हो। उस परमपुरुष का भी कोई कारणभूत तत्त्व हो, तो वह भी तुम्ही हो। प्रसिद्ध वेद तुमको परम ज्योति कहते हैं। तो क्या अन्य देवता लोग उससे लज्जित नही होते (अर्थात्, अन्य देवों को परम ज्योति कहना उचित नही है) ?

अष्ट दिशारूपी प्राकार से युक्त, चौदह मंजिलों के इस ब्रह्मांड रूपी महान् मंदिर को सर्वत्र प्रकाशित करनेवाले तीनों ज्योतिमंडलों (अर्थात्, चंद्र मंडल, सूर्य मंडल और नक्षत्र मंडल) के ऊपर स्थित परमपद में कभी प्रफुल्ल न होनेवाले कमल कोरक के भीतर रहनेवाला बीज ही तुम्हारा आवास है।

हे परमेष्ठिन् (अर्थात्, परमपद के स्थान में निवास करनेवाले) ! अनंत अष्ट

दिशाओं मे स्थित भूदेवो (ब्राह्मणों) के द्वारा किये जानेवाले उत्तम यज्ञो मे हविभाग का भाजन करनेवाले तुम्ही हो। वह भाजन देनेवाला (अर्थात्, यज्ञकर्त्ता) भी तुम्ही हो। तुम्हारे इन दो रूपो मे रहने के तत्त्व को कौन जान सकता है ?

हे परात्पर ! जिस प्रकार स्थिर जलाशय मे बुद्बुद उत्पन्न होकर मिटते रहते हैं, उसी प्रकार अनेक अंड तुममे एक समान निकलते है और (प्रलय काल मे) तुझमे विलीन हो जाते हैं। इस तत्त्व को कौन ठीक ठीक समझ सकता है ?

क्या तुम्हारी लीलाओ को देखकर ही वेद प्रकाशित किये गये है ? या वेदो मे प्रतिपादित ढंग से तुम्ही अपने कार्य करते रहते हो ? तुमने मुझे ऐसा फल दिया है, जिसे पापकर्म करनेवाले लोग कभी प्राप्त नही कर सकते। न जाने, पूर्वजन्म मे मैने क्या पुण्य किये थे (जिससे यह भाग्य मुझे अब प्राप्त हुआ है) ?

प्रेत के समान मेरे पापो के आश्रयभूत राक्षस जन्म के दोषो को मिटाकर तुमने मुझे निर्दोष दिव्य जन्म प्रदान किया। मुझे दुःख समुद्र के पार लगाया और तुम्हारे प्रति अज्ञान जन्य मेरे विरोध को मिटा दिया। हे मेरे प्रभु ! श्वान सदृश रहनेवाला मन, न जाने कौन सा बडा सुकृत किया था ?

इस प्रकार के मधुर वचन कहकर कबंध यह सोचकर कि यदि मैं मारे भविष्य को स्पष्ट रूप से कह दूँ, तो वह देवताओ की इच्छा के अनुकूल नही होगा, माँ को देखकर प्रसन्न होनेवाले गाय के बछडे के जैसे चुपचाप खडा रहा। तब धर्मनिष्ठ लोग जिनका साक्षात्कार प्राप्त करते हैं, उन प्रभु (राम) ने उसकी ओर देखा।

फिर, राम ने अपने अनुज से पूछा—हे भाई ! यह अत्युज्ज्वल दुर्लभ देह धारण कर खडा रहनेवाला क्या वही है, जो अभी हमारे हाथो मरा था ? या नही तो, यह कोई दूसरा प्रभावशाली व्यक्ति है ? तुम इसे भली भाँति देखो। तब लक्ष्मण ने उस (कबंध) से प्रश्न किया कि तुम कौन हो ?

तब कबंध ने कहा—मनोहर आभरणो तथा पुष्पमालाओ से भूषित हे वीर ! मै तनु नामक एक गंधर्व हूँ। शाप के कारण मुझे यह राक्षस जन्म मिला था। तुम दोनो के कर कमल का स्पर्श पाकर मैं अपने पूर्वरूप को प्राप्त कर सका। तुम मेरे पितामह तुल्य[1] हो। मेरे वचन सुनो—

तुम दोनो शर प्रयोग के लिए उपयुक्त धनुष को धारण करनेवाले हो। यद्यपि तुम्हारी सहायता करनेवाला कोई नही है, तथापि सीता का अन्वेषण करने के लिए तथा अन्य आवश्यक कार्य करने के लिए किसी सहायक का होना उत्तम होगा। जिस प्रकार विना नाव के समुद्र को पार करना कठिन है, उसी प्रकार विना सहायक के शत्रु पक्ष का विनाश करना भी कठिन है।

दोषरहित शिव के प्रताप के बारे मे क्या कहें ? वह देव, पद्म मे उत्पन्न ब्रह्मा के द्वारा बनाई हुई सारी सृष्टि का विनाश करनेवाला है, किन्तु वे भी अवार्य बलशाली भूतो को अपने साथी बनाकर रखते हैं। यह तुम जानते ही हो।

१ कबंध के दुःख को दूर करने के कारण वह राम लक्ष्मण को अपने पितामह-तुल्य समझता है। — अनु०

कर्त्तव्य कार्य क्या है?—इसका भली भाँति विचार करना चाहिए। धर्म क्या है?—इसका विचार रखना चाहिए। दुर्जनो को साथी न बनाकर सज्जनो को ही सहायक बनाना चाहिए। अत, तुम दोनो उस शबरी के पास जाओ, जो सब प्राणियो के लिए माता के तुल्य है। उसके कथन के अनुसार चलकर ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचो।

वहाँ रहनेवाले सूर्य पुत्र, स्वर्ण की कातिवाले सुग्रीव स मित्रता कर लेना। उसकी सहायता से, दीर्घ बाँस जैसे कधोवाली (सीता) का अन्वेषण करना उचित होगा। इस प्रकार कबध ने कहा। शब्दायमान वीर वलयधारी वीर (राम लक्ष्मण) वैसे ही करने को सहमत हुए।

फिर, कबध ने उन्हे प्रणाम किया और उनकी 'जय' बोलकर गगन मार्ग से उडकर चला गया। मनुवश के उत्तम कुमार वे (राम लक्ष्मण) भी दक्षिण दिशा मे चलकर पर्वतो और अरण्यो को पार करते हुए गये। जब रात्रि का समय आया, तब मतगमुनि के आश्रम मे जा पहुँचे। (१-५८)

●

अध्याय १२

शबरी-मुक्ति पटल

सब अभीष्टो को प्रदान करनेवाले कल्पवृक्षो के सदृश दिव्य वृक्षो से परिपूर्ण सुगधित वह (मतगाश्रम का) उपवन उस स्वर्गलोक के समान था, जहाँ स्पृहणीय सुख ही रहते हैं, कोई दु ख नही रहता है, और जहाँ पुण्यकर्म करनेवाले लोग ही जाते हैं।

वे राम, जिनके मूलभूत कोई पदार्थ नही है, उस आश्रम मे पहुँचे, जहाँ उन (राम) का ही ध्यान करती हुई तपस्या करनेवाली शबरी रहती थी। निकट पहुँचकर उन्होने उससे प्रश्न किया—'सुख से रहती हो न?'

उस समय, उस (शबरी) ने बड़ी भक्ति से उन (राम) की प्रस्तुति की। अपनी आँखों से अश्रु की धारा बहाते हुए कहा—'मेरा मायामय सासारिक बधन अब टूटा। चिरकाल से मै जो तपस्या करती रही, उसका फल अब प्राप्त हुआ। मेरा जन्म (सकट) मिटा।' यह कहकर फिर उसने बडे प्रेम से एकत्र कर रखे हुए फल कद आदि लाकर उन (राम लक्ष्मण) को भोजन कराया। तब—

शबरी ने राम से कहा—'हे प्रभु! शिव, कमलभव (ब्रह्मा), इद्रादि देवता आनन्द के साथ यहाँ आये और मुझसे यह कहकर गये कि तुम्हारी पवित्र तपस्या की सिद्धि का काल आ गया है। और कुछ दिन यही रहो। जब रामचद्र यहाँ आयेंगे, तब उनका सत्कार करके उसके पश्चात् हमारे लोको मे आना।

हे मेरे प्रभु! तुम यहाँ आनेवाले हो—यह समाचार पाकर में तुम्हारे दर्शन की

अभिलाषा से यही रहती हूँ। आज ही मेरा सुकृत मफल हुआ ह। इस प्रकार, शबरी न कहा। तब उम महातपस्विनी का प्रेम से देखकर राम ने कहा— हे माता। हमारे मार्ग गमन के श्रम को तुमने दूर किया। तुम्हारा श्रेय हो।'

राम तथा उनके अनुज उस दिन वही रह। तब पापनाशक तपस्या करनेवाली (शबरी) ने उन्हे सच्चे प्रेम के साथ देखकर शीघ्रगामी अश्वो से युक्त रथ पर चलनेवाल और उष्णकिरण सूर्य का पुत्र सुग्रीव जिस स्थान पर रहता था, वहाँ जाने का माग पूरे विवरण के साथ बताया।

शास्त्र श्रवण स जिनके कर्ण पवित्र हुए हैं, ऐसे महात्मा लोग जिस अमृतमय आस्वाद (ब्रह्मानद) को अपने सूक्ष्म तत्त्व ज्ञान के द्वारा प्राप्त करते हैं, उस (ब्रह्मानद) के साकार रूप प्रभु (राम) ने शबरी के उन वचनो को सुना जो महान् आचार्यो के द्वारा मोक्ष प्राप्ति के लिए दिये जानेवाले उपदेशों के समान थे।

फिर, वह शबरी बडी कठिनाई से सपन्न की गई तपस्या के प्रभाव से अपनी दह का त्याग कर अनुपम मोक्ष लोक मे आनद से जा पहुँची। उस दृश्य को उन वीरा ने आश्चर्य से देखा। और फिर, उस (शबरी) के कह मार्ग पर अपने वीर-वलयो को झकृत करते हुए चल पडे।

वे (राम लक्ष्मण), शीतल वना, पर्वतो तथा विभिन्न दिशाओ को पीछे छोड़त हुए आगे बढ चले और उस पपा सरोवर के निकट जा पहुँचे, जो ऐसा था, मानो धरती क मानवो के प्रतिदिन आकर उसम स्नान करने के कारण, उनके प्रभूत पाप-रूपी अग्नि से पुण्य ही पिघलकर उस सरोवर के रूप मे रहता हो। (१–६)

●

कर्त्तव्य कार्य क्या है?—इसका भली भाँति विचार करना चाहिए। धर्म क्या है?—इसका विचार रखना चाहिए। दुर्जनों का साथी न बनाकर सज्जनों का ही सहायक बनाना चाहिए। अत, तुम दोनों उस शबरी के पास जाओ, जो सब प्राणियों के लिए माता के तुल्य है। उसके कथन के अनुसार चलकर ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचो।

वहाँ रहनेवाले सूर्य पुत्र, स्वर्ण की कांतिवाले सुग्रीव से मित्रता कर लेना। उसकी सहायता से, दीर्घ बाँस जैसे कंधोंवाली (सीता) का अन्वेषण करना उचित होगा। इस प्रकार कबंध ने कहा। शब्दायमान वीर वलयधारी वीर (राम लक्ष्मण) वैसे ही करने को सहमत हुए।

फिर, कबंध ने उन्हें प्रणाम किया और उनकी 'जय' बोलकर गगन मार्ग से उड़कर चला गया। मनुवंश के उत्तम कुमार वे (राम लक्ष्मण) भी दक्षिण दिशा में चलकर पर्वतों और अरण्यों को पार करते हुए गये। जब रात्रि का समय आया, तब मतंगमुनि के आश्रम में जा पहुँचे। (१–५८)

●

अध्याय १२

शबरी-मुक्ति पटल

सब अभीष्टों को प्रदान करनेवाले कल्पवृक्षों के सदृश दिव्य वृक्षों से परिपूर्ण सुगंधित वह (मतंगाश्रम का) उपवन उस स्वर्गलोक के समान था, जहाँ स्पृहणीय सुख ही रहते हैं, कोई दुःख नहीं रहता है, और जहाँ पुण्यकर्म करनेवाले लोग ही जाते हैं।

वे राम, जिनके मूलभूत कोई पदार्थ नहीं है, उस आश्रम में पहुँचे, जहाँ उन (राम) का ही ध्यान करती हुई तपस्या करनेवाली शबरी रहती थी। निकट पहुँचकर उन्होंने उससे प्रश्न किया—'सुख से रहती हो न?'

उस समय, उस (शबरी) ने बड़ी भक्ति से उन (राम) की प्रस्तुति की। अपनी आँखों से अश्रु की धारा बहाते हुए कहा—'मेरा मायामय सांसारिक बंधन अब टूटा। चिरकाल से मैं जो तपस्या करती रही, उसका फल अब प्राप्त हुआ। मेरा जन्म (संकट) मिटा।' यह कहकर फिर उसने बड़े प्रेम से एकत्र कर रखे हुए फल-कंद आदि लाकर उन (राम लक्ष्मण) को भोजन कराया। तब—

शबरी ने राम से कहा—'हे प्रभु। शिव, कमलभव (ब्रह्मा), इंद्रादि देवता आनन्द के साथ यहाँ आये और मुझसे यह कहकर गये कि तुम्हारी पवित्र तपस्या की सिद्धि का काल आ गया है। और कुछ दिन यहीं रहो। जब रामचंद्र यहाँ आयेंगे, तब उनका सत्कार करके उसके पश्चात् हमारे लोकों में आना।

हे मेरे प्रभु। तुम यहाँ आनेवाले हो – यह समाचार पाकर मैं तुम्हारे दर्शन की

अभिलाषा से यही रहती हूँ। आज ही मेरा सुकृत मफल हुआ ह। इस प्रकार, शबरी न कहा। तब उस महातपस्विनी को प्रेम से देखकर राम ने कहा—'हे माता। हमारे मार्ग गमन के श्रम को तुमने दूर किया। तुम्हारा श्रेय हो।'

राम तथा उनके अनुज उस दिन वही रहे। तब पापनाशक तपस्या करनेवाली (शबरी) ने उन्हे सच्चे प्रेम के साथ देखकर शीघ्रगामी अश्वो से युक्त रथ पर चलनेवाल और उष्णकिरण सूर्य का पुत्र सुग्रीव जिस स्थान पर रहता था, वहाँ जाने का मार्ग पूरे विवरण के साथ बताया।

शास्त्र श्रवण से जिनके कर्ण पवित्र हुए हैं, ऐसे महात्मा लोग जिस अमृतमय आस्वाद (ब्रह्मानद) को अपने सूक्ष्म तत्त्व ज्ञान के द्वारा प्राप्त करते हैं, उस (ब्रह्मानद) के साकार रूप प्रभु (राम) ने शबरी के उन वचनो को सुना, जो महान् आचार्यों के द्वारा मोक्ष प्राप्ति के लिए दिये जानेवाले उपदेशों के समान थे।

फिर, वह शबरी बडी कठिनाई से सपन्न की गई तपस्या के प्रभाव स अपनी देह का त्याग कर अनुपम मोक्ष लोक मे आनद से जा पहुँची। उस दृश्य को उन वीरा ने आश्चर्य से देखा। और फिर, उस (शबरी) क कहे मार्ग पर अपने वीर वलयो को झंकृत करते हुए चल पडे।

वे (राम लक्ष्मण), शीतल वना, पर्वतो तथा विभिन्न दिशाओ को पीछे छोड़त हुए आगे बढ चले और उस पपा सरोवर के निकट जा पहुँचे, जो ऐसा था, मानो धरती क मानवो के प्रतिदिन आकर उसम स्नान करने के कारण, उनके प्रभूत पाप रूपी अग्नि से पुण्य ही पिघलकर उस सरोवर के रूप मे रहता हो। (१–६)

मंगलाचरण

तीन वर्ण के तीनो गुण (मत्य, रज, तम) वाली मूल प्रकृति, उससे उत्पन्न मव तत्त्व उस प्रकृति को गोचर करनेवाले नानारूपात्मक लोक तथा इन लोकों म म्थित मव पदार्थ, जिम परब्रह्म का शरीर बने हैं, वही (हमारे) मत्ज्ञान का मधुर विषय बना है, (जिसका चरित्र हम गा रहे हैं) ।

●

अध्याय १

पपा पटल

वह (पपा सरोवर) मधुपूण पुष्पो मे भरा था। उममे रक्तनेत्र एव उष्ण शुड म युक्त मत्तगज गोते लगात थे। वह स्वच्छ था। वह ऐसा था, मानो जल से भरा समुद्र बिजली से युक्त मेघों के सहित आकाश को भी माथ लेकर धरती के मध्य आकर विराजमान हो गया हो।

काटकर चिकना किये गये स्फटिक खड क समान अति स्वच्छ (उम सरोवर का) शीतल जल नवविध रत्नो मे जडित सीढ़ियोंवाले घाटों पर जब जब तरगे उठाकर टकराता था, तब तब व चल रत्नो की काति से रजित होकर, (अनेक शास्त्रो का) विवेचन करके भी सत्यज्ञान से विहीन रहनेवाले लोगो क चित्त की ममता करता था।

मुक्ताओ मे पूर्ण उस सरोवर के मध्य, प्रवाल सदृश टाँगोंवाले राजहंस और हंसिनियाँ, एक माथ दृष्टि गोचर होते थे, जिमसे वह मरोवर उस विशाल आकाश के समान दिखता था, जिसमे अनेक राका चद्र उज्ज्वल नक्षत्रो सहित निखर रहे हो।

वह सरोवर ऐसा लगता था, जैसे असमान गाधिसुत (विश्वामित्र) ने समुद्र स आवृत लोक, प्राणिवर्ग तथा वद पारग (ब्राह्मण) आदि की प्रतिसृष्टि करते समय, शीतल लवण समुद्र के बदले मधुर जल से पूर्ण इम (सरोवर) का सर्जन किया हो।

वह सरोवर इतना गभीर और इतना स्वच्छ जल से पूर्ण था कि (उसके सबध मे) यह कहा जा सकता है कि सूर्य के प्रतिस्पर्धी नागों का लोक यही है (अर्थात्, उसके जल की स्वच्छता के कारण पाताल तक दिखाई पड़ता था)। कल्पवृक्ष सदृश तथा महा कवियो के शब्दो के अर्थ के समान ही वह सरोवर, पाताल तक अत्यन्त स्वच्छता से परिपूर्ण था।

विशाल दलों से युक्त पुष्पों मे विश्राम करनेवाले और अव्यक्त मधुर शब्द करने वाले हस आदि पक्षियो की ध्वनियो से युक्त वह सरोवर, नाना प्रकार की वस्तुओं से सपन्न किसी बड़े नगर की पण्यवीथी की समता करता था।

उस सरोवर मे सर्वत्र फैले हुए रक्तकमलों के मध्य जो हस विचर रहे थे, वे ऐसे लगते थे, मानो यह सोचकर कि हम सुवासित कुतलोवाली सीता का पता नही लगा सके, इसलिए हम (रामचन्द्र का) मुख देखे बिना ही अपना प्राण त्याग कर देंगे, वे (हस) अग्नि के मध्य कूद पड़े हों।

वह सरोवर इतना स्वच्छ था कि उसके अतर्गत (रहनेवाले) मुक्ता आदि स्पष्ट दिखाई पड़ते थे। साथ ही वह यत्र तत्र सेवार आदि के फैले रहने से मलिन भी दिखाई पडता था। वह उस ज्ञान के सदृश था, जो अविद्या के स्पर्श से कलकित हो गया हो।

उस सरोवर मे जो मीन थे, वे मानों यह सोचकर छिपे हुए थे कि दु खी मनवाले श्रीरामचन्द्र यदि हम देख लेंगे तो, वे साकार सतीत्व जैसी और शुकमधुर भाषिणी देवी (सीता) के नयनो (की छाया) को हम मे देखकर, कभी अश्रु न बहानेवाले अपने नयनो मे कहीं आँसू न भर लावे।

खानों मे उत्पन्न मोतियो, मदजल बरसानेवाले मेघ सदृश हाथियो के दतों से उत्पन्न मोतियो, तथा अन्य रत्नों को लिये हुए पर्वत निर्झर, आभरणों से भूषित वस्तु के जैसे होकर उस सरोवर मे आकर गिरते थे। अत, वह (सरोवर) कर्णाभरणो से शोभायमान वदनवाली सुन्दरियो की छवि की समता करता था।

उष्ण मदजल बहानेवाले हाथी उस सरोवर मे निमग्न होते थे, जिससे उसका जल पकिल हो जाता था। अत वह (सरोवर) उन आभरण भूषित वारनारियो की समता करता था जिनका शरीर, रात्रिकाल मे मन्मथ समर से श्रांत हो गया हो।

गगन चुबी पर्वतों से प्रवाहित मेघ धाराएँ और हाथियो के, भ्रमरो को आकृष्ट करनेवाले सुरभित मदजल प्रवाह, उस सरोवर मे भर जाते थे, जिससे उस जल को पीनेवाले प्राणी भी मस्त हो जाते थे। इस कारण से वह (सरोवर) मनोहर केशोंवाली सुन्दरियों के बिंब सदृश अधर की समता करता था।

आर्यवाणी (सस्कृत) आदि अठारहो भाषाएँ किसी एक अल्पज्ञ व्यक्ति को प्राप्त हो गई हो, (और शब्दायमान हो गई हों) इसी प्रकार उस सरोवर मे विविध पक्षी निरतर ऐसी विविध प्रकार की ध्वनियाँ करते रहते थे जिन (ध्वनियों) को पृथक् पृथक् पहचानना असभव था।

एक हस, जो प्राणो के समान ही उसका आलिंगन करके रहनेवाली अपनी

हसिनी से इस प्रकार बिछुड गया था जैसे शरीर प्राणो से अलग हो गया हो। सुन्दरियो के (जो वहाँ स्नान करने के लिए आई थी) नूपुरो के मधु सदृश शब्द को कान लगाकर सुन रहा था।

असख्य पर्वतो से निर्झरो के द्वारा बहाकर लाये गये सुगधित अगरु चन्दन इत्यादि उस सरोवर मे निमग्न रहते थे, जिससे वह (सरोवर) उस पात्र के समान था जिसमे नगर-वासियो ने चदन इत्यादि के सुगध रसो को भरकर रखा हो।

उस सरोवर के मकर हरिणनयना बालाओ के अधर की समता करनेवाले रक्त कुमुद के सुरभित मधु का पान करके (रमणियो का अधर) पान करनेवाले पुरुषो के जैसे ही मत्त हो उठते थे। करड पक्षी (जलकौए), मानो जन्म मरण की प्रक्रिया को दिखाने के लिए, अपनी चोंचो मे मीन को पकडे हुए बार बार जल मे डुबकियाँ लगाते और बाहर निकलते थे।

हस, मानो यह सोचकर कि हम पुष्ट हाथी सदृश श्रीरामचन्द्र को, सुरभित कमल मे निवास करनेवाली लक्ष्मी (अर्थात् , सीता) को लाकर नहा दे सके, अत उनकी और कोई, अल्प ही सही, सेवा करे—इस खयाल से मनोहर पद गति दिखा रहे थे (जिससे रामचन्द्र को सीता की पदगति का स्मरण हो आये)। वहाँ के नीलोत्पल (सीता के) नेत्रो की सुन्दरता को दिखा रहे थे और रक्त कुमुद (सीता के) अधर का दृश्य उपस्थित कर रहे थे।

वहाँ के कुछ हस (सरोवर के) तट की पुष्पित शाखाओ पर बैठे थे। वे शाखाएँ ऐसी लगती थी, मानो उस सरोवर मे अपने आभरणो की काति को चारो ओर बिखेरती हुई नित्य स्नान करनेवाली देवागनाओ की चोटियाँ उनके कृत्रिम हसो को अपने करों मे लिये हुए (उस सरोवर के) तट पर खडी हो।

वहाँ, पद्मराग मणियो की काति इस प्रकार व्याप्त हो रही थी कि एक ओर लगी हुई नीलमणियो की काति उससे दब जाती थी, जिससे वहाँ रात्रिकाल मे भी दिन जैसा प्रकाश व्याप्त रहता था। चक्रवाको के जोडे भी (उसे दिन समझकर) तरुणियो के स्तनद्वय के समान एक दूसरे से मिले रहते थे।

बडी बडी मछलियाँ, वेग से फेके गये खड्ग के समान झपटती थीं। क्रमश उठ उठकर बहनेवाली तरगो मे लुढ़क लुढ़ककर चलनेवाले जल नकुल उन नटो के जैसे लगते थे, जो (अपने पैरो मे पायल बाँधकर) मुखरित गति के साथ नाचते हैं। दादुर (उन नृत्यों को देखकर) 'वाह वाह !' कहते से लगते थे।

रामचन्द्र, उस विशाल जलमय सरोवर के निकट पहुँचे। वहाँ के बालहस कमल पुष्प इत्यादि को देखकर वे कोमल पल्लव तुल्य सीता देवी का स्मरण करके द्रवित मन हो उठे। उनका विवेक भी मन्द पड गया, जिससे वे रो पडे।

रेखाओ से युक्त सुन्दर पैरवाले चक्रवाको ! बालहसो ! कभी मुझसे अलग न होनेवाली सीता मुझसे बिछुड गई है। अब वह (मेरे साथ) नही है। मै विरह से पीडित हूँ। अब तुम्हारे लिए कोई बाधा नही रही (अर्थात् तुम मुझे सता सकते हो)। फिर भी, यदि तुम दु खी प्राणों पर दया करोगे, तो वह तुम्हारे यश का ही कारण होगा।

कभी वियोग का अनुभव न किये हुए मुझ जैसे को यों कुछ सांत्वना दोगे, तो इससे क्या तुम्हारी कोई हानि होगी ?

हे सरोवर ! सुन्दर कमलों और मद्यांसिक्त सुवासित नीलोत्पलों को दिखाकर तूने घाव के जैसे जलनेवाले मेरे मन पर मलहम सा लगा दिया। तुम (सीता के) नयनों तथा उसके वदन को दिखा रहे हो। क्या उसके रूप को एक बार भी नहीं दिखाओगे ? (जो अपने लिए संभव हो, उस वस्तु को) न देकर लाभ करनेवाले व्यक्ति अच्छे नहीं होते।

विकसित नील उत्पलों, रक्त कुमुदों, सुगंधित कोमल कमलों, 'वलै' (एक जल लता) के पत्तों, तरंगों, मीनों, कछुओं तथा ऐसे ही अन्य पदार्थों को देखकर, रामचन्द्र उस सरोवर से कह उठे—हे सरोवर ! मैं अमृत समान उस (सीता) देवी के अवयवों को तुम्हारे अंतर में देख रहा हूँ। क्या विशाल आकाश में जब बलवान् राक्षस (सीता को) खाने लगा, तब उसके ये अवयव यहाँ गिर पड़े थे ?

दौड़ते और खेलते रहनेवाले हे मयूर ! तू उस (सीता) की छवि से पराजित होकर मन मसोसकर शत्रु के जैसे फिरता रहता था। क्या अब आनंदित हो रहा है ? उस (सीता) को खोजनेवाले मेरे (विकल) प्राणों को देखकर तू मन में उमंग से नाच रहा है ? तू सहस्र नेत्रवाला है। तुझे कुछ भी अज्ञात (अदृश्य) नहीं है (अर्थात्, तूने सीता के अपहरण को जान लिया होगा, इसीलिए तू आनन्द से नाच रहा है)।

हंस मिथुनो ! यद्यपि तुम मेरे निकट नहीं आओगे, तथापि (सीता के संबंध में) कुछ कहो। क्या कुछ भी नहीं कहोगे ? मैंने तुम्हारा कुछ अपकार नहीं किया है, तो क्या तुम मेरा अपकार करोगे ? कटि रहित उस (सीता) ने ही तो तुम्हारी गति की सुन्दरता को परास्त किया था ? उससे (सीता से) तुम्हारा वैर है। किन्तु, मैं तो तुम्हें देखकर आनंदित हो रहा हूँ। तुम मुझपर क्यों कोप करते हो ?

सुनहले और सुरभित अंतर्दलों के मध्य मकरंद में रहनेवाले एवं मधुर गान करनेवाले भ्रमरों से शोभायमान हे कमल ! (सीता) देवी मेरे पार्श्व में नहीं है। वह (मुझसे) अन्यत्र रहनेवाली भी नहीं है। यदि तुम भी यह कहते हो कि वह तुम्हारे पास नहीं है, तो तुम सत्य को छिपा रहे हो। यों सत्य को छिपानेवालों से मित्रता कैसे हो सकती है ?

सीता के मुख की समानता करते हुए भी कुछ भी न बोलकर सरोवर में छिपे रहनेवाले रक्त कुमुद के पास पड़ी हुई हे रक्तजट ![1] तुम मेरे सम्मुख आओ और अमृतवर्षी, अति सुन्दर चित्र सदृश (सीता के) अधर को मुझे दिखाओ। उस अधर के अमृत रस को तथा शीतल वचनों को मुझे दो।

हे जल लता के पत्र ! तुम तो पुष्पलता सदृश मुग्धा सीता के कान ही हो, और कुछ नहीं। अतः, मुझ दुःखी की सहायता करने में तुम्हें क्या आपत्ति है ? फिर भी, तुम जो स्वर्ण कुंडल, वक्र ताटंक और मुक्तामय झुमके को छोड़कर यहाँ आये हो (सीता के संबंध में) कुछ न कहकर, क्यों वैर निकाल रहे हो ?

महावर लगी उँगलियों से जिसके चरण ऐसे लगते थे, मानो पद्म से प्रवाल फूट

१ रक्तजट, पानी में फैलनेवाली एक प्रकार की लता है, जो बहुत लाल होती है।—अनु०

निकला हो, जो ने [illegible] नहीं स्मृत म रहनी है [illegible] काल [illegible] पुष्प म भूषित केशोवाली है उस (सीता) के नयनों की समता करनेवाले [illegible]। तू ऐसा हँसता है कि उसमें विष [illegible] फैल जाता है तू क्या इस प्रकार मुझे [illegible]

मन की वेदना से [illegible] श्रीरामचन्द्र ने उस सरोवर [illegible] पूर्ण तट पर खड़े होकर फिर कहा—[illegible] निर्दय कठोर [illegible] मिटा [illegible] तुम कुछ भी नहीं कहते।—इस प्रकार [illegible]

प्रभात [illegible] प्रभु ने देखा—काले भ्रमर [illegible] बहानेवाले काले हाथी मीठे पत्ते खानेवाली [illegible] ([illegible]) जल उठा उठाकर भर रहे हैं। उस दृश्य को देखते हुए वे खड़े [illegible]।

उस समय प्रेम नामक अपूर्व आभरण से सुशोभित अनुज (लक्ष्मण) ने प्रभु से कहा—दिन व्यतीत हो गया। अत [illegible] आप [illegible] सरोवर [illegible] जल में स्नान करके आप अपनी कीर्ति के समान ही सर्वत्र व्याप्त [illegible] भगवान् के चरणों की वन्दना करें।

राजा (श्रीराम) उस स्थान से बड़ी कठिनाई से [illegible] और [illegible] सरोवर के सुरभिपूर्ण जल में ऐसे स्नान करने लगे कि पर्वत जैसे [illegible] ([illegible]) की शोभा को देखकर लज्जित हो गये।

ज्योंही प्रभु उस जल में निमग्न हुए त्योंही उनकी वियोगाग्नि की ज्वाला से वह जल ऐसा तप्त हो गया, जैसे लुहार ने खूब तपाये हुए लोहे को शीतल जल में डुबा दिया हो।

हंस का रूप धारण कर (ब्रह्मा के प्रति) दुर्गम वेदों का उपदेश देनेवाले उन (विष्णु के अवतार रामचन्द्र) ने स्नान करके अनादि वेदों में उक्त विधि से चक्रधारी (विष्णु) के प्रति अर्घ्य प्रदान किया फिर मुनियों से आवासित एक वन में जाकर ठहरे। उष्णकिरण (सूर्य) भी डूब गया।

सन्ध्या रूपी स्त्री आ पहुँची। किन्तु कंचुक से बद्ध स्तनवती (सीता) नहीं आई। उस देवी के वियोग में रहकर अनुपम नायक (राम) उसका स्मरण करके विकल हो [illegible] तब शीतल जल से पूर्ण समुद्र से चन्द्रमा आकाश मध्य में उठ आया मानो तप्त किरण (सूर्य) ही हो।

उस समय विविध कमल पुष्प बंद हुए पक्षी उद्यानों में अपने अपने नीड़ों में बंद हुए। मृग के कार्य कलाप बंद हुए। वृक्षों के पत्ते बंद हुए। शुकों का बोलना बंद हुआ। कलापियों के नृत्य बंद हुए। कोकिल के गान बंद हुए। हाथियों के गर्जन भी बंद हुए।

धरती के प्राणी निद्रित हुए। पर्वत के प्राणी निद्रित हुए। स्वच्छ जल से भरे सरोवर निद्रित हुए। भूत भी पलक मूँदने लगे। किंतु क्षीर सागर में निद्रा करनेवाले दोनों हाथी[1] अपनी आँखें बंद न कर सके।

विमल स्वरूप (राम) को दारुण वेदना से मुक्त करते हुए उष्णकिरण पुनः

१ राम और लक्ष्मण—दोनों, विष्णु के अंश माने जाते हैं। अतः उन दोनों को क्षीरसागर में निद्रा करनेवाले हाथी कहा गया है।—अनु०

समुद्र से उदित हुआ। रात्रि भी जो अंतहीन सी लगती थी, अब उसी प्रकार मिट गई, जिस प्रकार स्वच्छ आत्मज्ञान के प्राप्त होने पर धूम एवं कीचड़ के पंज जैसे पाप मिट जाते हैं। कमल पुष्पों का मुख विकसित हुआ।

गन्ने पेरने के कोल्हू में बहनेवाले रस प्रवाह की ध्वनि से युक्त (कोशल) देशवासी, वे दोनों (राम लक्ष्मण) क्षीरसागर से उत्पन्न अमृत के समान मधुरवाणी तथा हरिण समान नयनों से युक्त देवी का अन्वेषण करते हुए, समुद्र जैसे वनों से घिरे पर्वतों, तथा वहाँ के अरण्यों के दीर्घ मार्गों को पार करके, त्वरित गति से आगे चले। (१–४५)

●

अध्याय २

हनुमान् पटल

इस प्रकार चलकर राम लक्ष्मण, उस बड़े ऋष्यमूक पर्वत पर, जिसपर दीर्घकाल तक शबरी निवास करती थी, सुगमता से शीघ्र चढ़ गये। तब उस पर्वत पर स्थित महिमामय वानराधिप (सुग्रीव) ने उन्हें देखकर सोचा कि वे कोई शत्रु हैं और भयभीत और कर्त्तव्य विमूढ़ होकर अपने प्राण लेकर भागा और एक कंदरा में जा छिपा।

उस सुग्रीव ने (हनुमान् से) कहा कि 'हे वायु के वीर पुत्र! दृढ़ धनुष धारण करनेवाले महान् पर्वत सदृश वे दोनों हमारे वैरी वाली की आज्ञा से ही आये हैं। तुम जाकर देखो। सत्य को पहचानो।'—यह कहकर वह बिना कुछ जाने बूझे ही अति व्याकुल हो, कंदरा के भीतर जा छिपा।

तार, नील तेजस्वी हनुमान आदि वीरों के साथ, सूर्यपुत्र (सुग्रीव) मेरु पर्वत समान उस ऊँचे पर्वत के एक ओर जा छिपा। सुन्दर हार भूषित वक्षवाले वे दोनों (राम लक्ष्मण) यह सोचकर उस पर्वत पर चढ़े कि वहाँ सीता का अन्वेषण करने का कोई उपाय विदित होगा।[1]

वे सीता का अन्वेषण करने में तत्पर हुए। इतने में कुछ वानरों ने उस पर्वत कंदरा में जाकर सुग्रीव से कहा वे दोनों वाली की आज्ञा से आये हुए नहीं हो सकते, क्योंकि वे बहुत दुःखी हैं, व्याकुलमन और शिथिलप्राण हैं। तब हनुमान ने अपने (दिव्य) ज्ञान से विचार किया।

---

१ अरण्यकांड में कबंध वध के प्रसंग में यह उल्लिखित है कि कबंध मरकर गंधर्व का रूप लेता है और राम से यह कहता है कि आप दक्षिण दिशा में जायें और ऋष्यमूक पर्वत पर सूर्यपुत्र के साथ मैत्री करें। उनसे सीता के अन्वेषण में आपको सहायता मिलेगी। रामचन्द्र उसी बात का स्मरण करके इस पर्वत पर चढ़ते हैं।—अनु०

उस समय सब वानर व्याकुल तथा भयभीत हो साहस छोड़कर खड़े थे। तब हनुमान् ने सोच विचार करके उन्हें उसी प्रकार सान्त्वना दी जिस प्रकार लंबी जटायुक्त रुद्रदेव ने (क्षीरसागर के मथन के समय) हलाहल विष को देखकर डरे हुए देवताओं के भय को दूर करते हुए उन्हें सान्त्वना दी थी।

अंजनि पुत्र एक ब्रह्मचारी का रूप धारणकर नील पर्वत सदृश रामचन्द्र के निकट जा पहुँचा और एक स्थान में छिपकर उन्हें देखकर सोचने लगा—ये तपस्वी के वेष में हैं किंतु हाथों में धनुष धारण किये हैं और कठोर क्रोध से भरे लगते हैं। फिर विवेक से विचार करने लगा—

क्या इन्हें, देवों के अद्वितीय नायक त्रिमूर्ति मानूँ? क्योंकि वे तो तीन हैं, पर ये दो ही हैं। ये धनुर्धारी भी हैं। इनकी समता करनेवाले संसार में कौन हो सकते हैं? इनके लिए असाध्य कार्य ही क्या हो सकता है? उनके स्वभाव को मैं किस प्रकार सरलता से पहचान सकता हूँ?

इन्हें देखने से ऐसा लगता है जैसे चित्त की किसी व्यथा से ये शिथिल हों। ये ऐसे नहीं लगते कि किसी सामान्य विषय पर ये चिन्तित हो सकते हों। क्या ये स्वर्गवासी देव हैं? पर नहीं, ये तो मानव रूप में हैं। अपने मन को मुग्ध करनेवाली किसी वस्तु के अन्वेषण में अनन्यचित्त होकर व्यस्त हैं।

ये धर्म एवं चारित्र्य को ही सर्वस्व माननेवाले हैं। इनका यहाँ आगमन अन्य किसी उद्देश्य से नहीं हो सकता। ये दोनों और किसी ऐसी वस्तु को ढूँढते आ रहे हैं जो इनके लिए अलभ्य अमृत सदृश है और बीच में ही खो गई है।

ये कोप नामक दोष से हीन हैं। करुणा के समुद्र हैं। (पर) हित को छोड़कर दूसरा व्यापार जानते नहीं हैं। ऐसी गंभीर आकृतिवाले हैं कि इन्हें देखकर इन्द्र भी सहम जाय। ऐसे चरित्रवाले हैं कि धर्मदेवता भी इनके सम्मुख परास्त हो जाय और ऐसे पराक्रम वाले हैं कि यम भी त्रस्त हो जाय।

अपने उत्तम गुणों के कारण, अपना उपमान स्वयं ही बननेवाले, अन्य उपमान से रहित उस (हनुमान्) ने इस प्रकार अनेक तरह से विचार करके दोनों को ध्यान से देखा। फिर, उनके प्रति अधिक प्रेम (भक्ति) से खड़ा रहा, जैसे वह अपने बिछुड़े हुए प्रियजनों को देख रहा हो।

फिर, हनुमान् सोचने लगा—बड़े मुखवाले, भय रहित हाथी इनको देखकर ऐसे खड़े हैं, जैसे अपने बच्चों को देख रहे हों (अर्थात्, इनके प्रति प्रेम से भरे हैं)। बिजली को भी (अपनी उज्ज्वलता से) मंद करनेवाले दाँतों से युक्त सिंह, बाघ जैसे हिंस्र प्राणी भी इनके प्रति आकृष्ट होकर इनके पीछे पीछे चल रहे हैं। भूत भी उनका आदर करते हुए द्रवितमन हो जाते हैं। तो, उनके संबंध में विविध प्रकार की बातें सोचकर व्याकुल क्यों होना चाहिए?

मयूर आदि पक्षी भी इनकी मनोहर देह पर धूप लगने से (मन में) पिघल उठते हैं और वितान जैसे अपने पंखों को फैलाकर और प्राचीर जैसे उन्हें चारों ओर से घेरकर

साथ साथ चल रहे है। गगन की घटाएँ मदगति से इनके साथ चलकर, सर्वत्र वर्षा बिंदुओं को घने रूप से छिटक रही है।

धूप में तपकर आग जैसे गरम कंकड़, इनके स्वच्छ रक्त कमल जैसे चरणों का स्पर्श पाते ही मधु भरे पुष्पों के समान मृदुल हो जाते हैं। जहाँ जहाँ ये जाते है, वहाँ वहाँ के वृक्ष एवं पौधे वंदना से करते हुए झुक जाते है। अतः, कदाचित् ये ही धर्म देवता है।

अथवा, क्या ये वही भगवान् है, जो (जीवों के) मायाजन्य चिरकर्म बंधन को मिटाकर, जन्मदुःख से मुक्त करके, दक्षिण दिशा के यमलोक के नरकों उन्हें अपुनरावृत्ति के (मोक्ष के) मार्ग में भेजते है? इन्हें देखकर (मेरे मन में) अपार प्रेम उमड़ रहा है। मेरी हड्डियाँ भी पिघल रही है। मेरे मन में इस प्रेम के उत्पन्न होने का क्या कारण है?

जब सन्मार्गगामी मनवाला हनुमान् इस प्रकार सोच रहा था, तब वे दोनों (राम लक्ष्मण) उधर ही आ पहुँचे। तब हनुमान् उनके सम्मुख गया और बोला—आपका आगमन शुभप्रद हो। करुणामूर्ति (राम) ने उससे पूछा—तुम कौन हो? कहाँ से आ रहे हो? हनुमान् कहने लगा—

हे सजल मेघ सदृश मनोहर आकारवाले! स्त्रियों के लिए विष बननेवाले (अर्थात्, स्त्रियों को अपनी ओर आकृष्ट करके उन्हें प्रेम से पीड़ित करनेवाले) तथा हिम से अम्लान रक्त कमल की समानता करनेवाले प्रफुल्ल नयनों से युक्त! मैं वायु का पुत्र हूँ और अंजना के गर्भ से उत्पन्न हूँ। मेरा नाम हनुमान् है।

उस (हनुमान्) ने, जिसकी यश का भार वहन करनेवाली भुजाएँ ऐसी है कि कुलपर्वत भी उन्हें देखकर लज्जित हो जायँ, कहा—हे प्रभु! इस ऋष्यमूक पर्वत पर रहनेवाले, उज्ज्वल सहस्रकिरण (सूर्य) के पुत्र की सेवा में मैं रहता हूँ। आपको आते हुए देखकर वह व्यग्र हुआ और आपके बारे में जानने के लिए मुझे भेजा है।

(हनुमान् के) वह वचन कहते ही, दृढ़ धनुर्धारी चक्रवर्ती कुमार (राम) ने मन में कुछ विचार करके यह जान लिया कि इस (हनुमान्) से उत्तम और कोई नहीं है। पराक्रम, शास्त्र सपत्ति, ज्ञान तथा अन्य सभी गुण इसमें अभिन्न रूप से वर्त्तमान है। फिर, वे (लक्ष्मण से) बोले—

हे धनुर्भूषित कंधवाले वीर (लक्ष्मण)! कोई कला (शास्त्र) समुद्र सदृश वेद, ऐसा कहा भी नहीं है, जिसे इस (हनुमान्) ने प्रशंसनीय रूप से अधीत न किया हो। इसका गभीर ज्ञान इसके वचनों से ही प्रकट होता है। मधुर भाषा से संपन्न यह क्या ब्रह्मदेव है? या वृषभवाहन (शिव) है? नहीं तो यह कौन है?

हे भाई! इसका (यथार्थ) स्वरूप एक साधारण ब्रह्मचारी का नहीं है। किन्तु, मुझे निश्चित रूप से यह ज्ञात हो रहा है कि यह सब लोकों के लिए आधार बन सके, ऐसे पराक्रम तथा अत्यधिक महिमा से संपन्न है। इसकी सत्यता तुम आगे देखोगे (पहचानोगे)। अतिसुन्दर प्रभु (राम) ने इस प्रकार कहा—

और, इस संसार के निवासी मुनियों, तथा (स्वर्ग के निवासी) देवताओं में

कौन ऐसा है, जो इसकी जैसी वाक्पटुता रखता है? समस्त वेदों में पारंगत इस ब्रह्मचारी के वचनों के सम्मुख सर्वश्रेष्ठ त्रिमूर्तियों का महान् कौशल भी तुच्छ लगता है।

फिर (रामचन्द्र ने हनुमान् से) कहे—उस कपिकुलनायक को जिसके सम्बन्ध में तुमने कहा है, देखने की इच्छा से ही हम यहाँ आये हैं। यह सब संयोगवश हुआ है। तुम्हारे मधुवचन के सदृश ही सन्मार्ग पर चलनेवाले मन से युक्त उस (कपि-नायक) को हमें दिखाओ।

(तब हनुमान् ने ये वचन कहे—) अमर सदृश स्वामिन्! इस विशाल धरती पर, जो आठों दिशाओं के (चक्रवाल) पर्वत पर्यंत फैली है, आप लोगों के समान पवित्र कौन हो सकते हैं? यदि आप ही उस (कपिराज) से यहाँ आकर के साथ मिलने आये हैं, तो उसका संयम के साथ अर्जित किया हुआ तप रूपी धन कितना अद्भुत है!

पर्वत से भी अधिक पुष्ट भुजाओंवाले (उस वीर) प्रभावान इन्द्र पुत्र (बालि) के क्रुद्ध होने से रवि पुत्र (सुग्रीव) एकाकी दुःख भोगता हुआ निष्कर्म से युक्त इस पर्वत पर आकर, मेरे साथ (छिपकर) रहता है। अब आप ऐसे आये हैं जैसे उसकी संपत्ति ही आ गई हो।

(धार्मिक व्यक्ति) इस विशाल संसार के सब लोगों को सभी अभीष्ट पदार्थों का दान देते हुए यज्ञ करते हैं तथा अन्य (तप आदि) कार्य भी करते हैं इस प्रकार वे अनादि धर्म को स्थिर रखते हैं। किन्तु, किसी ऐसे व्यक्ति को, जो मारने के लिए यम के समान आये हुए अपने कुल शत्रु से डरकर, शरण में आया हो, उसको अभयदान देने से भी श्रेष्ठ धर्म और कोई हो सकता है?

यह कहना कि आप हमारी रक्षामात्र करेंगे, बहुत छोटी सी बात होगी, क्योंकि आप अपलक देवताओं से लेकर सब चर अचर पदार्थों से भरे हुए तीन प्रकार में बने हुए सप्तलोकों की भी रक्षा करने में समर्थ हैं, मुरुगन (कार्त्तिकेय) के समान मान्य तथा पराक्रम से युक्त हैं। आपकी शरण में आने से बढ़कर हमारा और क्या भला हो सकता है?

सत्य (रूपी शस्य) के लिए (उसकी रक्षा करनेवाले) घेरे के जैसे रहनेवाले उस हनुमान् ने कहा—हे वीर! अपने नायक को मैं यह बताऊँगा कि आप कौन हैं। अतः आप हमसे कहें (कि आप कौन हैं)। तब वीर कंकण से भूषित लक्ष्मण ठीक विचार करके, किंचित् भी सत्य से स्खलित न होकर, अपना सारा वृत्तांत स्पष्ट रूप में कहने लगे—

सूर्यवंश में उत्पन्न आर्य चक्रवर्त्ती, जो एक श्वेतच्छत्रधारी हो सर्वत्र अपने उज्ज्वल शासन चक्र को चलाते थे, जिन्होंने अपने पराक्रम से असुरों के प्राण पी डाले थे, अनेक यज्ञों को संपन्न करके स्वर्गलोक पर भी अपना प्रभाव डाला था, जो करुणामय दृष्टि-युक्त थे;

जिन्होंने मेघ के सदृश मद वर्षा करनेवाले, दृढ़ दंतवाले लाल बिन्दियोंवाले पर्वत सदृश श्रेष्ठ गज पर आरूढ़ होकर अपने दृढ़ धनुष को लेकर ऐसा युद्ध किया था जिसमें मदमत्त असुर विध्वस्त हो गये थे, जो सहजात ज्ञान और राजनीति से युक्त थे, जिनकी समता मनुप्रभृति नरेशों में कोई भी नहीं कर सकता था, ऐसे दशरथ नामक वह (चक्रवर्ती) स्वर्ण प्रासादों तथा विशाल प्राचीरों से शोभायमान अयोध्या के राजा थे।

उन्हीं चक्रवर्ती के पुत्र ह, यह तजस्वी पुरुष, जा अपनी माता (कैकेयी) की आज्ञा स अपने स्वत्वभूत राज्य सपत्ति को अपने अनुज को प्रम स देकर बडे अरण्य मे प्रविष्ट हुए ह, इन पुरुष का नाम है, राम। दीर्घ धनुष के प्रयाग म कुशल इस वीर पुरुष का किकर हूँ मै।

इस भाँति, रामचन्द्र के जन्म स प्रारभ कर रावण के मायामय क्षुद्रकार्य (सीता हरण) तक की सारी कथाएँ, किचित् भी त्रुटि के बिना, बताइ। सारा वृत्तात सुनकर वायु कुमार अत्यत आनदित हुआ और (राम के) चरणो पर प्रणत हुआ।

यो उसके प्रणाम करने पर, राम न उसस कहा—वेद शास्त्रो के ज्ञाता हे ब्रह्म चारिन्! तुमन यह कैसा अनुचित काय किया (ब्राह्मण होकर मुझ क्षत्रिय के चरणो पर क्या नत हुए) ? यह सुनकर बलवान्, सुन्दर तथा विशाल भुजावाले वीर मारुति ने कहा—पकज समान रक्तनेत्र तथा चक्रधारी हे वीर! यह दास कपिकुल म उत्पन्न व्यक्ति है।

फिर, धर्म को अनाथ होने से बचानेवाला वह (हनुमान्), अपना वास्तविक रूप लेकर इस प्रकार खडा हुआ कि स्वणमय मेरु पवत भी उसकी भुजाओ की समता नही कर सकता था। मानो, वद तथा शास्त्र ही बडा आकार होकर खड हो गये हो। सभी बडे बडे पदार्थ उसक सम्मुख छोट लगने लगे। तब उसे देखकर विद्युत् जैसे धनुष को धारण करने वाले वे वीर (राम लक्ष्मण) विस्मय करने लगे।

तीनो लोको को अपने चरण से मापनेवाले पुडरीक नयन, चक्रधारी (विष्णु के अवतार, श्रीरामचन्द्र), स्वणमय उज्ज्वल कुडलो से भूषित उसके मुख को नही देख पाते थे (अर्थात्, हनुमान् उतना ऊँचा हो गया था)। तो, अब उसक विश्वरूप का वणन किस प्रकार कर सकते ह, जिसने सूर्य से प्राचीन शास्त्रो को अधीत किया था।

ताल से पृथक् हुए कमल सदृश विशाल नयनवाले राम ने अपने भाई से कहा—हे तात! वह मोक्ष पद ही इस वानर का रूप लेकर उपस्थित हुआ है, जो क्षुद्र गुणो स रहित होकर (अर्थात्, केवल सत्त्वगुणमय होकर) अमद प्रकाश से युक्त, नित्य वेदो एव दोष रहित ज्ञान से भी दुज्ञेय है।

(फिर राम ने लक्ष्मण से कहा—) इस महानुभाव स भेट हुई। एक अच्छा साधन हमने प्राप्त किया (अर्थात्, सीता के अन्वेषण के लिए अच्छा साधन मिला है)। अब हमारी विपदा मिट जायगी। सुख प्राप्त होगा। हे धनुर्धर! यदि यह महावीर, कपिकुलनायक (सुग्रीव) की आज्ञा का पालक हे, तो न जाने वह स्वय किस प्रकार के प्रभाव से सयुत है।

यो आनदित होकर, प्रसन्नवदन रहनवाले, पर्वत सम पुष्ट कधोवाले वीरो (राम लक्ष्मण) को देखकर वानर श्रेष्ठ ने निवदन किया—मै अभी जाकर उस (सुग्रीव) को ले आता हूँ। हे पराक्रमशीलो! किचित् समय तक आप यही रहे और उनकी अनुमति पाकर वह त्वरित गति से चला गया। (१–३८)

●

अध्याय ३

सख्य पटल

मदर पर्वत सदृश भुजाओ तथा दीर्घ यश स युक्त हनुमान् अपने ज्ञान म मनुवश म उत्पन्न उन (राम) के सद्‌गुणो का चिंतन करता हुआ चला और युद्धोचित क्रोधयुक्त राजा (सुग्रीव) क समीप जाकर बोला—म, तुम्हारा कुल और यह लोक, तीनो तर गये।

सुरभित हारधारी, अपार बल स सपन्न बाली नामक वीर के प्राण हरण क लिए काल आ गया ह। हम दु ख सागर के पार पहुँच गये—अंतरिक्षगामी (सूर्य) क पुत्र (सुग्रीव) के प्रति इस प्रकार कहा और हलाहल विष पीनेवाले (रुद्र) के समान अपूर्व नृत्य करने लगा।

वे (राम लक्ष्मण) इस धरती के रहनेवाले ह। स्वर्ग के ह (अर्थात्, सर्वत्र इनका प्रभाव ह) । वे (हमारे) मन म रहते ह, क्रियाओ म रहते हैं, वचनो मे रहते ह और नेत्रो म रहते ह। वे शत्रुवान् हैं (अर्थात्, उनके कुछ शत्रु भी हैं) और शत्रुओ के द्वारा किये गये अनेक घावो से युक्त लोगो के अपूर्व प्राणो क लिए अमृत समान भी है।

व अपने पराक्रम स समस्त लोको को एकच्छत्र की छाया म लानेवाले विजयी शासक, मुखपट्टधारी हाथियो की सेनावाले राजाओ से वंदित चरणवाले, दशरथ के श्रीकुमार हैं। वे महान् ज्ञानवाले है। अतिसुन्दर हैं और अनायास ही तुम्हे अपना राज्य दिलाकर तुम्हारी सहायता कर सकनेवाले ह।

वे नीतिमान् हैं। मधुर करुणा से भरे हैं। सन्मार्ग स कभी न हटनेवाले ह। सबसे अधिक महिमावान् हैं। बिना सीखे ही, स्वय उत्पन्न अपार ज्ञान से सपन्न हैं। महान् कीर्तिमान् हैं। गाधिसुत (विश्वामित्र) के द्वारा प्रदत्त समुद्र सदृश विशाल दिव्य अस्त्र-समुदाय के स्वामी हैं।

(उनम से ज्येष्ठ वीर न) बड़े क्रोध स युक्त, शूलधारी ताडका को अपने बाण स निहत किया। उसके क्रूर कर्मवाले बेटे (सुबाहु) को मारा। अपने चरण की रज से एक बड़े प्रस्तर के रूप म पड़ी हुई अहल्या को दुष्प्राप्य आत्म स्वरूप प्रदान किया।

उत्तम सामुद्रिक लक्षणा स युक्त उन वीरो म ज्येष्ठ (राम) ने मिथिला नगरी म जाकर, उस शिवजी क महान् धनुष का भग किया था, जिन (शिव) न अंधकार के नाम तक को मिटा देनेवाले उज्ज्वल किरण समुदाय से युक्त सूर्यदेव के दाँतो का गिरा दिया था।[1]

कमर स शोभायमान अश्ववाले दशरथ का वर प्राप्त करके अपार पातिव्रत्य से सपन्न छोटी माता (कैकयी) ने उन्हे (राम को) आदेश दिया, तो (उसे मानकर) शख भरे समुद्र मे घिरी धरती का सारा राज्य अपने छोटे भाई को देकर व यहाँ आये हैं।

---

१ यह कहानी पुराण में प्रसिद्ध है कि दक्षयज्ञ के समय शिवजी ने दक्ष को मारकर उसके यज्ञ का विध्वंस किया था और उस यज्ञ मे आये सब देवताओ का अपमान किया था। उस समय उन्होने पूषा (सूर्य) को तमाचा मारकर उसके दाँतो को गिरा दिया था।—अनु०

इस राघव ने, संसार को शत्रुहीन बनानेवाले, ज्वालामय परशु से युक्त उस राम के असीम बल को मिटा दिया। क्रोध करके आक्रमण करनेवाले अंधकार सदृश क्रूर विराध को मिटा दिया।

समुद्र जैसी सेनावाले खर आदि करुणाहीन राक्षसों के शिरों को अपने धनुष को झुकाकर (बाणों का प्रयोग कर), काट दिया। वह सब दिशाओं में रहनेवाले शत्रुओं को मिटानेवाला है। उत्तम देव शंकर आदि से भी अधिक पराक्रम से युक्त है।

हे राजन्! यह (मानव) शरीर धारण कर आया हुआ पुरुष, दिव्य देवताओं से वंदित चक्रधारी (विष्णु) ही है। तुम उस महानुभाव से मित्रता कर लो। यह मायामृग बनकर आये हुए राक्षस मारीच के लिए भयंकर यम बना था।

जो कबंध अपने दीर्घ करों को सब दिशाओं में फैलाकर, बड़े क्रोध के साथ सब प्राणियों का विनाश करता था, उसे मारकर, उसके भारी शरीर को गिराकर, उसी प्रकार उसको मोक्षपद में जाने दिया, जिस प्रकार उसने देवताओं के द्वारा पूजित शबरी को (मोक्ष पद) दिया था। उसकी उस महिमा का वर्णन हम जैसे लोग किस प्रकार कर सकते हैं?

हे रविकुमार! मुनि तथा दूसरे लोग अनादिकाल से इनके आगमन के लिए अपनी अपनी शक्ति भर तपस्या करते रहे और कर्म बंधन से मुक्त होकर मोक्षपद को प्राप्त कर गये। मैं कैसे उन (राम लक्ष्मण) का बखान कर सकता हूँ?

हे प्रभो! बुद्धिहीन राक्षसराज उनकी पत्नी को माया से हरण कर भयंकर अरण्य पथ से ले गया। उसी देवी का अन्वेषण करते हुए ये वीर, तुम्हारे सत्कर्म और तुम्हारी निष्कपटता के कारण तुम्हारी मित्रता प्राप्त करने की इच्छा से आये हैं।

हे ज्ञान संपन्न! उनकी करुणा हमारी ओर है। हमारे प्रतापवान् शत्रु वाली की मृत्यु निकट आ गई है। अत:, उनसे सख्य करने के लिए चलो—प्रसिद्ध नीतिशास्त्रों की रीति को जानकर मंत्रणा देनेवाले (हनुमान्) ने यों कहा।

अपने सूक्ष्म ज्ञान में इस प्रकार के वचनों का ठीक ठीक विचार कर सुग्रीव ने सब कुछ समझ लिया। फिर, यह कहकर कि हे स्वर्णपंज सदृश! जब तुम मेरे साथी बने हो, तब मेरे लिए कौन सा कार्य असाध्य है? 'चलो'—यह कहकर अपने ही सदृश रहनेवाले (अर्थात्, पत्नी से वञ्चित) राम के चरणों के समीप आया।

सूर्यपुत्र ने प्रफुल्ल पंकज पुष्पों से भरे, काले मेघ से ढके हुए और उदीयमान चंद्रमा से शोभित मरकत गिरि की समता करनेवाले (राम) के उस वदन को, जो सुन्दर कुंडलों से रहित होकर भी देखने में अति मनोहर था, तथा उनके शीतल नयनों को देखा।

(सुग्रीव ने राम को) देखा। देखता हुआ देर तक खड़ा रहा और सोचने लगा कि क्या अवर्णनीय कमलासन (ब्रह्मा) की सृष्टि में रहनेवाले प्राणियों का, आदिकाल से अबतक किया हुआ, समस्त भाग्य पुंजीभूत होकर इन दोनों अत्युन्नत स्कंधवाले वीरों के आकार में उपस्थित हुआ है?

अथवा, देवों के अधिदेव आदि भगवान् (विष्णु) ने ही अपना रूप बदलकर इस अवतार में मनुष्य रूप धारण किया है। इस कारण से मनुष्य जन्म ने गंगाधारी जटा

वाले शिव और ब्रह्मा प्रभृति के दिव्य जन्मों को भी जीत लिया है—यों सुग्रीव ने सोचा।

इस प्रकार सोचकर अधिकाधिक उमड़ते हुए प्रेम रूपी तरंगायमान समुद्र का पार न पाता हुआ, अपने आनन्दपूर्ण नयनकुसुम से उस अनघ राम को देखता हुआ उनके निकट आ पहुँचा। उस महानुभाव ने प्रेम के साथ अपने रक्तकमल सदृश करों को पसार कर कहा—यहाँ आकर आराम से बैठो।

जिसके चित्त ने कामना को समूल मिटा दिया था वह अनघ (राम) तथा कपिकुल के राजा (सुग्रीव) अमावास्या के दिन परस्पर मिले हुए चंद्र तथा सूर्य के सदृश थे। मानो, वे अक्षीण बलवाले राक्षस नामक अंधकार को मिटाकर पुंजीभूत धर्म को सुस्थिर रखने के लिए उपयुक्त समय पर परस्पर मिले हों।

मित्र बनकर रहनेवाले वे दोनों वीर (राम और सुग्रीव) अभिलषित कार्य की पूर्त्ति के लिए संयुक्त—पूर्व अर्जित पुण्य एवं वर्त्तमान में किये जानेवाले प्रयत्न के समान थे और क्रूर राक्षस रूपी पाप का उन्मूलन करने के लिए सम्मिलित हुए (आचार्यों से) श्रुत विद्या एवं यथार्थ विवेक के समान थे।

जब वे दोनों इस प्रकार आसीन हुए, तब सूर्यपुत्र ने रामचन्द्र को देखकर कहा—हे संपन्न! सब लोकों में अत्युत्तम कहलाने योग्य अनेक सद्गुणों से पूर्ण तुमसे मिलने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। अतः मुझसे बढ़कर पापनाशक तपस्या करनेवाले व्यक्ति और कौन है? यदि स्वयं भाग्य ही कुछ देना चाहे, तो उसके लिए असंभव क्या हो सकता है?

तब राम ने कहा—हे उत्तम! दोष रहित तपस्या में संपन्न शबरी ने कहा था कि तुम इस ऋष्यमूक पर्वत पर रहते हो। यह सोचकर कि हमारी बड़ी विपदा तुमसे दूर हो सकती है, हम यहाँ आ पहुँचे हैं। हमारा दुःख तुमसे ही दूर होगा। तब कपिकुल नायक ने कहा—

मेरा अग्रज, मुझे छोटे भाई को मारने के लिए अपने बलिष्ठ कर को ऊपर उठाये दौड़ा और मुझे इस संसार में सर्वत्र और संसार के परे रहनेवाले तपोमय प्रदेश में भी खदेड़ता रहा। तब मैं केवल इस पर्वत को अपना दुर्ग बनाकर बच गया। यहीं पर अपने प्यारे प्राणों को रखे जी रहा हूँ। मैं आपकी शरण में आया हूँ। मेरी रक्षा करना आपका धर्म है।

तब, उस कपिकुल के राजा को कृपा के साथ देखकर, राम ने ये वचन कहे—तुम्हारे सुख दुःखों में से जो व्यतीत हो चुके हैं उन्हें छोड़कर अब आगे होनेवाले तुम्हारे सब दुःखों को मैं दूर करूँगा। अब से होनेवाले सब सुख दुःख, तुमको और मुझे एक समान होंगे (अर्थात् तुम्हारे सुख दुःख मेरे सुख दुःख होंगे)।

अब अधिक क्या कहूँ? स्वर्ग में या धरती में, तुमको दुःख देनेवाले मुझे दुःख देनेवाले होंगे। दुर्जन ही क्यों न हों यदि वे तुम्हारे मित्र हैं, तो मेरे भी मित्र होंगे। अब से तुम्हारे लोग मेरे लोग हैं। मेरा प्यारे बन्धुवर्ग तुम्हारे भी बन्धु हैं। तुम मेरे प्राण समान हो।

तब वानर सेना यह सोचकर कि अनघ (राम) के वचन सब कुलों के व्यक्तियों के लिए वेदवाक्य से भी अधिक सत्य प्रमाणित होंगे, आनन्द से कोलाहल कर उठी। अवनि

पुत्र की देह पुलकित हो उठी। देवता लोग पुष्प वर्षा करने लगे। मेघ वर्षा की बूंदे बरसाने लगे।

तब अंजना का सिंह सदृश पुत्र उठकर (राम के) चरणों पर नत हुआ और निवेदन किया—हे स्तंभ समान पुष्ट स्कंधवाले चक्रवर्ती कुमार! आपके मित्र (सुग्रीव) और आप चिरकाल तक जीते रहें। इस समय मेरी इच्छा है कि आप दोनों अपने आवास में (अर्थात्, सुग्रीव के निवास स्थान में) चलकर आराम करें। आपकी इच्छा क्या है? तब राम ने कहा—तुम्हारा विचार उत्तम है।

रविपुत्र चल पड़ा। दोनों वीर भी चल पड़े। वानर सिंह (हनुमान्) भी अन्य वानरों के साथ चल पड़ा। तब धर्म देवता भी उनका अनुसरण करके चल पड़ा और आनंद के साथ उन्हें अशीर्वाद देता रहा। वे लोग पुन्नाग, नरद आदि वृक्षों तथा कमलमय सरोवर से युक्त होने से भोग भूमि (अर्थात्, स्वर्ग) को भी निंदित कर देनेवाले नवपुष्पों से भरे उद्यान में जा पहुँचे।

(उस उद्यान में) चंदन और अगरु के वृक्ष अधिक संख्या में थे। स्थान स्थान पर स्फटिक शिलाओं के वितान तने हुए थे, जो ऐसे लगते थे, मानो स्वच्छ जल ही खड़ा कर दिया गया हो। नूतन पुष्पों से पूर्ण सरोवरों के दोनों तटों पर, दिव्य सुन्दरता से युक्त वृक्षों से, जलक्रीडा करनेवाली अप्सराओं के झूले लग रहे थे—इस प्रकार की शोभा से (वह उद्यान) युक्त था।

वहाँ के रत्नों की कांति के सम्मुख सूर्यातप और चंद्र की रजत चन्द्रिका भी उसी प्रकार प्रकाशहीन हो जाती थी, जिस प्रकार प्रगाढ शास्त्रज्ञान से युक्त विद्वानों के सम्मुख शास्त्र-ज्ञान से हीन व्यक्ति प्रकाशहीन हो जाते हैं।

इस प्रकार के सुन्दर उद्यान में, राम लक्ष्मण तथा कपिराज एक शुद्ध पुष्पमय आसन पर आसीन होकर स्नेहालाप करने लगे।

वानरों ने फल, कंद, शाक तथा अन्य शुद्ध रसों से पूर्ण भोजन ला दिया और पवित्र प्रभु ने स्नान आदि से निवृत्त होने के उपरांत सुखासीन होकर उनका आहार किया।

इस प्रकार, भोजन समाप्त करने के पश्चात्, सत्य स्नेह से पूर्ण होकर वे सुग्रीव के साथ बैठ गये और कुछ समय तक विचार करके सुग्रीव से पूछा—क्या तुम भी गृहस्थ जीवन के लिए अनुकूल सहायक अपनी पत्नी से वियुक्त हो गये हो?

जब राम ने ऐसा प्रश्न किया, तब मारुति पर्वत के समान उठ खड़ा हुआ और अपने हाथ जोड़कर (राम से) निवेदन किया—हे स्थिर धर्मवाले! इस दास को कुछ कहना है। आप सावधानी से सुनें।

वाली नामक एक असीम पराक्रमी वानर वीर रहता है जो, चतुर्वेद रूपी समुद्र के लिए किनारे जैसे रहनेवाले, अनादि (कैलास) पर्वत पर निवास करनेवाले त्रिशूलधारी (शिव) के वर से अत्यन्त प्रबल हो गया है।

वह इतना बलशाली है कि पूर्वकाल में उसने विख्यात देवों तथा असुरों के सम्मुख

क्षीरसागर को अकेले ही इस प्रकार मथ डाला था कि घूमनेवाला मन्दर पर्वत और वासुकि सर्प के शरीर घिस गये थे।[1]

पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन—इन चारों भूतों की समस्त शक्ति उस (वाली) में एकत्र रहती है। वह सप्त समुद्रों से परे स्थित चक्रवाल पर्वत से इस पर्वत तक फाँद सकता है।

कोई उसके साथ युद्ध करने के लिए उसके निकट आ जाय, तो युद्ध करने के लिए आये हुए व्यक्ति के प्राप्त वरों का अग्रभाग उस (वाली) को प्राप्त हो जाता है।

उस (वाली) के वेग के आगे पवन भी नहीं बढ़ सकता। उसके वक्ष में स्कन्द का बरछा भी धँस नहीं सकता। जहाँ वाली की पूँछ चलती है, वहाँ रावण का अधिकार नहीं चल सकता। और, उस रावण की विजय भी उसके सामने कुछ नहीं है।

यदि वह (आक्रमण कर) उठे, तो मेरु आदि पर्वत सब जड़ से उखड़ जायँ। उसकी विशाल भुजाओं में विशाल मेघ, आकाश, सूर्य चंद्र और पर्वत सब छिप जायँ।

वह आदिवराह, जिसने पूर्वकाल में भूमि को अपने दाँत से ऊपर उठाया था या आदिकूर्म, जो क्षीरसागर का मथन करने के लिए उपयुक्त साधन बना था और वह नरसिंह जिसने अपने नख से हिरण्यकशिपु का वक्ष फाड डाला था—वे भी उस वाली की विजयमाला भूषित भुजाओं से संघर्ष नहीं कर सकते।

आदिशेष अपने विशाल फनों को फैलाकर, उनपर भूमि का बोझ रखे (भूमि को) नीचे से इसकी रक्षा कर रहा है। किंतु, इस पर्वत पर निवास करनेवाला (वाली) स्वयं (इस भूमि पर) चलता फिरता हुआ ही इस (धरती) की रक्षा करता है।

हे शक्ति तथा विजय से विभूषित! समुद्र निरंतर गरजता है, पवन बहता है (द्वादश) सूर्य अपने रथों पर संचरण करते हैं तो यह सब उस (वाली) के क्रोध का लक्ष्य बन जाने के डर से ही है—अन्य किसी कारण से नहीं।

हे वदान्य! उस वाली के जीवित रहते हुए, उसकी अनुमति के बिना यम भी वानरों के प्राण हरण करने में डरता है। अतः पाँच सौ साठ समुद्र[2] संख्यावाले वानर, जो

१ तमिल में एक पुराण, काचीपुराणम् है। उसमें यह कथा है कि देव तथा असुर, मंदर पर्वत को मथाना, वासुकि को रस्सी तथा चंद्र को मथाना का चक्राकार आधार बनाकर क्षीरसागर का मथन लगे, किंतु, उसे मथ नहीं सके। इतने में वाली जो नित्य विभिन्न दिशाओं के समुद्रों में जाकर संध्या आदि नित्यकर्म किया करता था, क्षीर-सागर में संध्या करने के लिए आया। देवासुरों ने उससे प्रार्थना की कि क्षीरसागर को वह मथे। तब वाली ने अकेले ही एक हाथ से वासुकि का सिर और दूसरे हाथ से उसकी पूँछ पकड़कर क्षीरसागर को मथ डाला। इस घटना का उल्लेख कंबन ने अनेक स्थानों पर किया है।—अनु०

२ एक हाथी एक रथ, तीन अश्व और पाँच पदातियों का दल एक पत्ति होता है। तीन पत्तियों का एक सेनामुख होता है। तीन सेनामुखों का एक गुल्म, तीन गुल्मों का एक गण, तीन गणों की एक वाहिनी, तीन वाहिनियों की एक पृतना, तीन पृतनाओं की एक चमू, तीन चमुओं की एक अनीकिनी, दस अनीकिनियों की एक अक्षौहिणी होती है। आठ अक्षौहिणियों का एक 'एक', आठ 'एक' का एक कोटि, आठ कोटियों का एक शंख, आठ शंखों का एक विंद, आठ विंदों का एक कुमुद, आठ कुमुदों का एक पद्म, आठ पद्मों का एक देश तथा आठ देशों का एक समुद्र होता है।—शुक्रनीति

इतने शक्तिमान् हैं कि मेरु पर्वत को भी ढाहकर गिरा सकते हैं, जीवित रहते हैं।

उस (वाली) से डरकर उसके निवास स्थान पर मेघ भी नहीं गरजते। क्रूर सिंह अपनी कंदराओं के भीतर भी नहीं गरजते। शक्तिमान् वायु इस डर से नहीं बहता कि कहीं एक छोटा पत्ता न गिर पड़े।

जब वाली ने अपनी पूँछ से बलवान् रावण की पुष्ट भुजाओं को एक साथ बाँध लिया था, तब उस (रावण) के शरीर से जो रक्त बह चला, उसने किस लोक को सिंचित नहीं किया? (अर्थात्, सभी लोकों में रावण का रक्त प्रवाहित हो चला।)

हे पराक्रमशालिन्! इन्द्र का अनुपम पुत्र वह वाली शीतल राकाचन्द्र का सा रंगवाला है। उसकी आज्ञा का उल्लंघन यम भी नहीं कर सकता। वह इस (सुग्रीव) का अग्रज है।

वह वाली हमारा राजा था और यह (सुग्रीव) युवराज। उस समय एक दिन विद्युत् जैसे दाँतवाला एक करवाल सदृश क्रूर असुर[1] हमारे कुल का शत्रु बनकर आया और वाली पर आक्रमण किया।

युद्ध करता हुआ वह असुर वाली के पराक्रम से भीत होकर भागा और यह सोचकर कि इस धरती पर सजीव रहना असंभव है, एक दुर्गम गुफा में प्रविष्ट होकर पाताल में जा छिपा।

तब क्रोध पूर्ण वाली, सुग्रीव से यह कहकर उस गुफा में प्रविष्ट हुआ कि हे शक्तिशालिन्! मैं इस गुफा में प्रविष्ट होकर शीघ्र उस असुर को पकड़ लाऊँगा। तुम इस गुफा के द्वार की रखवाली करते रहो।

गुफा में प्रविष्ट होकर वाली चौदह ऋतुओं (अट्ठाईस मास) तक उस असुर को खोजता रहा और अंत में उसे पाकर उसके साथ युद्ध करता रहा। इधर उसका भाई सुग्रीव व्याकुल हो खड़ा रहा।

रो रोकर व्याकुल होनेवाले सुग्रीव को देखकर हम सब वानरों ने आदर के साथ उसकी प्रार्थना की, कि हे प्रशंसनीय विजयशालिन्! राज्य करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। अतः, शासन का भार तुम अपने ऊपर लो। यह सुनकर उसने कहा—ऐसा करना अनुचित है।

फिर, यह कहकर कि मैं भी इस गुफा में प्रवेश करूँगा और यदि उस असुर ने मेरे भाई को मार दिया हो, तो मैं उसको मारूँगा, नहीं तो वहीं युद्ध में मरूँगा—सुग्रीव उस गुफा के भीतर प्रविष्ट होने लगा।

तब वाक्चतुर मन्त्रियों ने उसको रोककर बहुत समझाया और उसके दुःख को कम किया। फिर, राज्य का भार इसे दिया। यह सुग्रीव उन वानरों की बात को नहीं टाल सका और किसी न किसी प्रकार से राज्य भार को स्वीकार किया।

उस समय, इस विचार से कि मायावी (नामक वह असुर) कहीं फिर इस बिल से बाहर न आ जाय, हमने, मेरु को छोड़कर, अन्य सब पर्वतों को ला लाकर उस गुफा के द्वार पर चुन दिये।

---

१. यह असुर मायावी नामक था।—अनु०

इस प्रकार, उस गुफा को सुरक्षित करके हम अरुणकिरण के पुत्र के साथ उस स्थान पर रहने लगे। तब वाली उस मायावी के प्राण पीकर—

उन प्राणों को पीने से उत्पन्न नशे में मत्त होकर लौटा। गुफा द्वार पर (अपने भाई को) पुकारता रहा। किन्तु कोई उत्तर न पाकर यह मानता हुआ कि मेरा भाई भी कैसी रखवाली कर रहा है, अत्यंत क्रुद्ध हुआ।

फिर, उस (वाली) ने अपना पैर उठाया और अपने पैरों को उठाकर ऐसा आघात किया, जैसे प्रभंजन बह उठा हो। तब (गुफा के द्वार पर रखे) सब पर्वत आकाश में उड़कर समुद्र में जा गिरे।

वाली (उस गुफा में) बाहर निकलकर सबको भयभीत करनेवाले क्रोध से भरा हुआ इस पर्वत के ऊँचे शिखर पर आ पहुँचा, तब सत्य मार्ग पर चलनेवाले और कपटहीन इस सूर्यपुत्र ने उसके समीप आकर उसके चरणों को नमस्कार किया।

प्रणाम करके वाली से सुग्रीव ने कहा—हे अग्रज! हे प्रभु! बहुत दिनों तक तुम्हारे न लौटने पर मैं बहुत चिंतित हुआ और तुम्हारे निकट आना चाहता था। किन्तु तुम्हारी प्रजा ने इससे सहमत न होकर कहा कि राज्य पर शासन करना ही मेरा कर्त्तव्य है।

हे आभरणों से भूषित भुजावाले! प्रजा की आज्ञा मानकर राज्यभार वहन करता हुआ मैं निर्लज्ज सा जीवित रहता हूँ। तुम मेरे इस अपराध को क्षमा करो। सुग्रीव का कथन सुनकर वैरभाव से भरे हुए वाली ने अत्यंत क्रोध के साथ अनेक निष्ठुर वचन कहे।

बलिष्ठ भुजाओं से युक्त उस (वाली) ने हम सब वानर यों डरने लगे कि हमारी आँतों में हलचल मच गई। पूर्वकाल में समुद्र को मथनेवालों ने अपने करों से सुग्रीव को मारा पीटा, जिससे यह बहुत पीड़ित हुआ।

यह बहुत पीड़ित होकर सप्त समुद्रों के पार ब्रह्मांड की बाहरी सीमा की दीवार पर जा पहुँचा। पीड़ाहीन वाली भी पवन के समान इसके पीछे चलकर सप्त समुद्रों को भित्ति के समान फाँद गया।

वायुपुत्र के इस प्रकार कहने पर प्रभु कह उठे—अच्छा! अति वेग से पीछा करनेवाले वाली के आगे आगे भागनेवाला सुग्रीव वाली से भी अधिक वेग से फाँद सकता था।

वीर कंकणधारी कृपामूर्ति (राम) ने अपने भाई लक्ष्मण समेत इस प्रकार आश्चर्य करते हुए फिर कहा—इन दोनों वीरों ने आगे क्या किया, सुनाओ। तब विजय से भूषित मारुति कहने लगा—

सुग्रीव मकरों से भरे सातों समुद्रों के पार चला गया। किन्तु उस चक्रवाल पर्वत को भी, जहाँ सूर्य की रक्तिम किरण भी नहीं पहुँचती है, पारकर वह (वाली) वहाँ आ गया और सुग्रीव को पकड़ लिया।

भाई को पीड़ित करने के अपवाद से न डरकर उसने सुग्रीव को अपने क्रूर करों से मारने के लिए अपना हाथ ऊपर उठाया। किन्तु, सुग्रीव मौका पाकर झट वहाँ से निकल भागा।

हे प्रभु! यदि वह (वाली) क्रोध करके दाँत पीसे, तो यम को भी सुरक्षित रहने

के लिए कोई स्थान नहीं मिलेगा। तो भी (वाली के प्रति) पूर्व में दिये गये एक शाप के कारण यह (सुग्रीव) इस पर्वत पर आकर बच गया।

हे भगवन्! इसके स्वत्व को तथा दुर्लभ अमृत समान इसकी पत्नी को भी उसने छीन लिया। यह, राज्य और पत्नी दोनों से एक साथ वंचित हो गया। यही सारा वृत्तांत है।—यों हनुमान् ने कहा।

अमत्य हीन (हनुमान्) ने जब सारा वृत्तांत कह सुनाया, तब सहस्र नामयुक्त उस अमल प्रभु के समस्त लोकों को (प्रलय काल में) निगलनेवाले मुख का अधर फड़क उठा। नेत्र रूपी कमल रक्तकुमुद के समान लाल हो उठे।

अनेक अंगों से युक्त वेदों को अधिगत करनेवाले ब्रह्मा, पंचमुख (रुद्र) तथा अन्य देव, अपने बाहर और अन्तर में खोजकर भी जिसे पा नहीं सकते, वह भगवान् यदि अपने सुन्दर पद कमलों को दुखाकर और उन्हें अधिक लाल करते हुए इस धरती पर अवतीर्ण होता है, तो यह धर्म की रक्षा तथा अधर्म का विनाश करने के लिए ही तो है?

करुणाहीन विमाता के कहने पर जिस प्रभु ने अपने स्वत्वभूत राज्य को, रत्न भूषित पुष्ट भुजावाले अपने भाई को दे दिया व यह सुनकर भी कि एक निष्ठुर व्यक्ति ने अपने कनिष्ठ भ्राता की पत्नी का अपहरण किया है, कैसे चुप रह सकते हैं?

प्रभु ने सुग्रीव से कहा—चौदहों भुवनों के सब प्राणी भी उस (वाली) के प्राणों को बचाने के लिए आये, तो भी मैं अपने धनुष से प्रयुक्त शर से उसे मार दूँगा और तुम्हारे राज्य के साथ तुम्हारी पत्नी को भी तुम्हें दिला दूँगा। हे विज्ञ! दिखाओ, वह कहाँ रहता है।

यह सुनकर सुग्रीव (बहुत आनन्दित हुआ), मानो वह महान् आनन्द रूपी समुद्र की बड़ी बड़ी तरंगों के उमड़ उठने से, दु:ख रूपी समुद्र के किनारे पर आ लगा हो। उसने यह सोचकर कि वाली की शक्ति अब समाप्त हुई, आदर के साथ (वाली वध की) प्रतिज्ञा करनेवाले महावीर से कहा—पहले हमें कुछ विचार करना है।

उसके पश्चात् सूर्यपुत्र, विद्या, विवेक नीति, मन्त्रणा आदि में कुशल हनुमान् आदि के साथ पृथक् रहकर कुछ मन्त्रणा करने लगा। उस समय पवनपुत्र ने कहा—

हे शक्तिशालिन्! तुम्हारे मनोभाव को मैं समझ गया। तुम शंका कर रहे हो कि उस (वाली) को यम के मुँह में भेजने की शक्ति इन वीरों में है या नहीं। मेरे वचन को ध्यान से सुनो। फिर, वह कहने लगा—

(श्रीराम चन्द्र के) विशाल हाथों और चरणों में शंख और चक्र के चिह्न हैं। इनके जैसे उत्तम लक्षण कहीं किसी में नहीं हैं। अरुणनयन और धनुर्धारी श्रीराम, धर्म की रक्षा करने के लिए धरती पर अवतीर्ण, लक्ष्मी के वल्लभ विष्णु ही हैं।

जिन शिवजी ने लोककंटक तथा अतिशक्तिशाली त्रिपुरासुरों को अपने क्रोध की अग्नि से जला दिया था और निष्ठुर क्रोध से युक्त काल को भी अपने पद के आघात[1] से

१ इस पद्य में मार्कण्डेय के जीवन की ओर संकेत है। मार्कण्डेय शिवभक्त था, किंतु उसकी आयु की अवधि सोलह वर्ष की ही थी। जब काल उसके प्राण-हरण करने के लिए आया, तब वह शिवलिंग का आलिंगन करके शिव के ध्यान में निमग्न हो गया। काल उसको पाश से खींचने लगा, तो शिवजी ने क्रुद्ध होकर उसे पदाघात से हटा दिया और मार्कण्डेय को अमर कर दिया।—अनु०

दूर हटा दिया था, उनके हस्त के स्वर्णमय अनुपम धनुष को तोड देना उस ब्रह्म के अति-रिक्त अन्य किसी के लिए सभव नही था।

हे राजन्! मेरे पिता ने मुझसे कहा था—तुम इस ससार के सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा की भी सृष्टि करनेवाले भगवान् (विष्णु) की सेवा करोगे। वह सेवा ही उत्तम तपस्या है। हे तात! उससे मेरा (पिता का) भी बडा हित होगा। यह श्रीराम ही वह भगवान् है इसका और भी एक प्रमाण है।

मैने अपने पिता से पूछा था—तुम्हारे कथित उस भगवान् के अवतार को मै कैसे पहचान सकूँगा? तब मेरे पिता ने कहा था—जब समस्त लोकों को विपदा उत्पन्न होगी तब वह भगवान् अवतार लेंगे। उन्हे देखते ही तुम्हारे मन में उनके प्रति प्रेम (भक्ति) उत्पन्न होगा। यही उसे पहचानने का प्रमाण होगा। हे स्वामिन्! इसी वीर को देखते ही (मेरे मन मे ऐसा प्रेम उमडा, जिसमे) मेरी अस्थियाँ भी गल गई जिससे उनका रूप तक पहचानने मे नही आया। फिर, और क्या शका हो सकती है?

हे उत्तम! यदि तुम अब भी उस वीर (श्रीराम) के अपार पराक्रम की परीक्षा करके देखना चाहते हो, तो उसके लिए एक उपाय है। वह यह—अतिविशाल सप्त साल वृक्ष, जो एक ही पक्ति म खडे हैं, उनको एक ही शर से वह वीर छेद डाले।

यह सुनकर सुग्रीव आनदित हुआ और कहा—अच्छा। अच्छा। उसने अपने साथी मारुति की पवतों को भी लज्जित करनेवाली दोनों भुजाओं का आलिंगन कर लिया फिर, श्रीरामचन्द्र के निकट जाकर कहा—आपसे मेरा एक निवेदन है। श्रीरामचन्द्र ने वह सुनकर कहा—कहो, क्या कहना चाहते हो? (१–८४)

●

अध्याय ४

सालवृक्ष-छेदन पटल

सुग्रीव, यह कहता हुआ कि इस ओर से जाना है, इधर से आइए (राम को) ले चला और (सालवृक्षों के निकट जाकर) कहा—गगन को छूनेवाले, आकाश छोटा करते हुए, शाखाओं को फैलाकर खडे रहनेवाले सात सालवृक्षों को एक ही शर से आप छेद डालें, तो मेरे मन की व्याकुलता दूर होगी।

उस निष्कलक (सुग्रीव) के यह कहने पर देवताओ के प्रभु (राम) उसका विचार जानकर मुस्करा उठे। फिर अपने विशाल करों से अपने धनुष पर डोरी चढाई। और कल्पना से भी दुर्ज्ञेय उन सालवृक्षों के समीप गये।

वे वृक्ष ऐसे थे कि प्रलय काल मे भी अपने स्थान से विचलित नहीं होनेवाले थे। जब सब लोक विध्वस्त हो जाते थे, तब भी खडे रहनेवाले थे। मानो धरती का आधार बने हुए सातो कुलपर्वत वहाँ आकर एक साथ खडे हो गये हों।

कमल पर आमीन रहनेवाले ब्रह्मदेव भी उन वृक्षो के बारे मे इतना ही कह मकता था कि 'षोडश कलावाले चद्रमा और महस्र किरणवाले (सूय) को भी उन वृक्षो के शिखरो को पार करके जाने क लिए तपस्या करनी पड़ती है। मैने अत्युन्नत उन पर्वतों[1] के ढालो को ही देखा हे।' इनक अतिरिक्त (वह ब्रह्मा भी) यह नही कह मकता था कि मैने (उन वृक्षो के) पत्ते देखे हैं।

नित्य एक ममान वेग से दौडत रहनेवाले सूर्य के रथ के घोड अन्यत्र कही अपनी थकावट मिटा पाते हो—यह हम नही जानत, कितु (इतना हम जानत हैं कि) वे घोडे आकाश में चारो ओर व्याप्त इन वृक्षों की शाखाओ के बीच से होकर जाते समय इनकी शीतल छाया मे अपनी थकावट दूर कर लेते हैं।

वे वृक्ष इतने ऊँचे थे कि नक्षत्र तथा ग्रह, उन (वृक्षो) की शाखाओ म लगे पुष्पों जैसे थ। आकाशगामी धवल चद्रमा म जो कलक है, वह इन वृक्षों की शाखाओं की रगड लगने मे ही उत्पन्न चिह्न है, यो कह सकते हैं।

वे वृक्ष अनश्वर विशाल शाखा प्रशाखाओं से युक्त होन के कारण वेदा के समान थे। स्वग से भो ऊँचे थे। ब्रह्माड की सृष्टि करनेवाले उम (ब्रह्मा) का वाहन हस अपनी हसिनी के साथ इन वृक्षों म ही निवाम करता था।

पवन के चलने पर उन वृक्षों के सुगधित पत्र, पुष्प, फल इत्यादि विविध वस्तुएँ धरती पर नही गिरती थीं, कोलाहलयुक्त विशाल आकाशगगा म गिरती था और तरगायित ममुद्र म जाकर मिलती थी।

उन वृक्षों के शिखर, चतुर्वेदो क ज्ञाता ब्रह्मा क अडगोल से भी परे बढे हुए थे। अत, वे अनत विष्णु भगवान् की समानता करत थे। वे जल मध्य स्थित धरती पर जो मेरुपर्वत खडा है, उससे भी अधिक भारी थे।

उन वृक्षो म हीर (निर्यास) उसी प्रकार फैला था, जिस प्रकार इद्रकुमार वाली और उसके भाई क हृदयो म परस्पर वैर फैला था। उनकी जडें, जल मध्य स्थित पृथ्वी को ढोनेवाले शेषनाग के रजत जैमे धवल फनों को भी चीरकर नीचे चली गई थी।

उनकी शाखाएँ मब दिशाओ को नापती थी, जिममे देवो को यह आशका होती थी कि कदाचित् सूर्य का मार्ग ही न रुक जाय। वे वृक्ष सूय चद्र जहाँ सचरण करत हैं, उन पर्वतो से भी (मेरुपर्वत अथवा उदयगिरि या अस्ताचल) ऊचे थे। किसी भी दृष्टि मे वे वृक्ष उनसे कम नही थे और एक दूसरे से अनेक योजन दूर पर खडे थे।

अमल (श्रीराम) ने उन वृक्षो को ध्यान मे देखा और दीघ बाण को छोडने क लिए धनुष की डोरी से ऐसा टकार किया कि देवलोक और दिशाएँ वधिर हो गइ। देवो को ऐमा भय उत्पन्न हुआ, जैमा पहले कभी नही हुआ था।

वह टकार ध्वनि सब लोकों में एक समान व्याप्त हो गई। उस समय समीप मे खडे रहनेवालों की क्या दशा हुई—यह कैसे कहे? उस ध्वनि से दिग्गज मूच्छित हो गये और दिशाएँ व्याकुल हो उठीं। उस ध्वनि से सत्यलोक भी काँप उठा।

१, वे वृक्ष इतने विशाल थे कि वे पर्वत-जैसे लगते थे।—अनु०

ज्यो ही उस अरिंदम (राम) के धनुष की ध्वनि हुई, त्यो ही देवता इस भय से त्रस्त होकर भागे कि कहीं प्रलय काल ही तो नही आ गया। भक्तिपूर्ण कनिष्ठ प्रभु (लक्ष्मण) ही उन (राम) के समीप दृढ खडे रह सके। यदि दूसरे लोगो की दशा का वर्णन करने लगेंगे, तो उन सबकी बदनामी होगी।

असत्य रहित मारुति आदि वीर यह सोचकर कि राम का शर प्रयोग हम अवश्य देखना चाहिए, किसी प्रकार उनके निकट आकर उपस्थित रहे। तब कुशल धनुर्धारी (राम) ने दृढ तथा दीर्घ कोदड म लगी डोरी को भली भाँति खीचकर शर का सधान किया।

वह राम बाण, सातों सालवृक्षों का भेदकर चला। नीचे रहनेवाले सातों लोका को भेदकर चला। फिर, उनसे आगे सप्त सख्या से युक्त किसी वस्तु के न होने से लौट आया। अब भी यदि वह बाण सप्त सख्यावाली किसी वस्तु को देखे, तो उसे छेदे बिना नहीं रहेगा।

सप्त समुद्र, ऊपर के सप्त लोक, सप्त कुलपर्वत, सप्त ऋषि, सप्त अश्व और सप्त कन्याएँ भी यह आशका कर काँप उठी कि कदाचित् सप्त सख्या का कोई भी पदार्थ इस बाण का लक्ष्य हो सकता है।

ऐसा भय होने पर भी सब लोग, श्रीराम के उस स्वभाव को जानकर स्वस्थ हुए जो धर्म के आधारभूत सभी पदार्थों को सुरक्षित रखता है। तब सूर्यकुमार ने स्वर्णमय वीर ककणों से भूषित श्रीराम के चरणो को अपने शिर पर रखकर ये वचन कहे—

तुम पृथ्वी हो, आकाश हो, अन्य सब भूत हो, पकज से उत्पन्न देव (ब्रह्मा) हो, क्षीरशायी भगवान् हो, पापों का विनाश करनेवाले सद्धर्म के देवता हो। तुमने आदिकाल में लोको को उत्पन्न किया। अब मुझ श्वान जैसे दास को तारने के लिए यहाँ आये हो।

हे राजाओं के अधिराज। मेरे पूर्वपुण्यों ने ही तुम्हें यहाँ लाकर मेरी सहायता की है। तुम मातृ सदृश प्रभु के दासों का मै दास हूँ। अब मेरे लिए सब कार्य सभव हो गये। कौन सा कार्य अब असभव रह गया ?—इस प्रकार उस दोषहीन सुग्रीव ने कहा।

चिरकाल से दु खी रहनेवाले सब वानर यह विचार कर कि वाली के लिए यम बननेवाले एक व्यक्ति हमे मिल गया है, आनद मधु का पान करके मत्त हो गये और उनकी भुजाएँ फूल उठी। वे नाचने लगे, गाने लगे तथा यत्र-तत्र झुडों म दौडने और कूदने लगे।

रामचन्द्र ने उस पर्वत पर, समुद्र सदृश दुदुभि के एक दूसरे पर्वत जैसे शरीर को (अर्थात्, उसके अस्थिपजर को) वहाँ देखा, जो रक्तहीन होने पर भी आकाश को छूता हुआ पडा था, मानो सारा ब्रह्माण्ड ही अग्नि में जलकर झुलस गया हो।

श्रीराम ने सुग्रीव से प्रश्न किया—यह क्या दक्षिणदिशाधिप (यम) का वाहन महिष है ? या दिग्गजो मे से कोई मरकर यहाँ पडा है ? या कोई तिमिंगिल सूखकर अस्थिशेष रह गया है ? असीम प्रेमयुक्त तुम, कहो। तब सुग्रीव ने दुदुभि की कहानी सुनाई। (१-२३)

अध्याय ९
दुदुभि पटल

ददुभि नामक असुर, जो शत्रु विध्वंसक क्रोध से युक्त था, जो इतना ऊँचा बना हुआ था कि गगन तक पहुँचकर चद्र को भी छूता था। जिसके दो सीग थे (महिषाकार था)। वह क्षीरसागर को मदर पर्वत के समान मथकर कालवण विष्णु को ढूँढने लगा।

तब विष्णु भगवान् उसके सम्मुख आये और उससे पूछा—तू यहाँ किसलिए आया है? ददुभि ने उत्तर दिया—मैं तुम्हारे साथ युद्ध करने आया हूँ। तब विष्णु ने कहा—तुझ जैसे महान् शक्तिसपन्न व्यक्ति से युद्ध करने की शक्ति केवल नीलकठ (शिव) म ही है।

तब वह असुर शीघ्र वहाँ से चलकर शिवजी के कैलाश को अपने सीगो से ढकलने लगा। तब शिवजी उसके सामने आये और पूछा कि तुझे क्या चाहिए? उसने उत्तर दिया—मैं तुम्हारे साथ ऐसा युद्ध करना चाहता हूँ, जिसका कभी अत न हो।

तब शिव ने उससे कहा—तू बड़ा दक्ष है और वीरता से युक्त है। तुझसे युद्ध करना सभव नही। तू देवताओ के पास जा। यह कहकर (शिवजी ने) उसे वहाँ से भेज दिया। तब उसने देवेंद्र के पास जाकर अपनी इच्छा प्रकट की। देवेंद्र ने उत्तर दिया—यदि अनेक दिन तक युद्ध करने की इच्छा है, तो तू वाली के पास चला जा।

देवेंद्र से प्रेषित होकर वह प्रसन्नतापूर्वक (ऋष्यमूक पर) आ पहुँचा और यह गर्जन करता हुआ कि हे वानरराज आओ, मेरे साथ युद्ध करो, पर्वतों को अस्त व्यस्त करने लगा। तब मेरा अग्रज क्रुद्ध होकर उसके साथ युद्ध करने लगा।

वे दोनो ऐसा भयकर युद्ध करने लगे कि जब वे वेग से घूम जाते थे, तब यह पहचानना कठिन हो जाता था कि कौन कहाँ है। किसी भी लोक म न डरनेवाले वे दोनो कभी गिरते और कभी उठकर खड़े होते। उनके भयकर युद्ध से भीत हो असुर और देवता भी उनके निकट नही आ पाते थे।

जब वे अपना पद भूमि पर पटकते थे, तब ऐसी आग निकलती थी, जो आकाश को छू लेती थी। उनका निनाद दीर्घ दिशाओ मे सुनाई पड़ता था। उनकी उस अग्नि का धूम सर्वत्र फैल गया। जलमय समुद्र तथा महान् पर्वत भी अपने अपने रूप को खो बैठे। (अर्थात्, जहाँ पर्वत थे, वहा गढे पड़ गये और समुद्र ऊपर उठ आये।)

मेघ, आकाश, विशाल समुद्र, समुद्र से घिरी पृथ्वी, सब उनके द्वारा उठाई गई धूलि से इस प्रकार आवृत हो गये कि वे अपना रूप रग खो बैठे। मय नामक असुर का पुत्र ददुभि और वाली दोनो बारह मास पर्यंत युद्ध करते रहे।

वैसा भयकर युद्ध करते समय, विजयी वाली ने अपनी भुजाओ के बल से उस असुर के, दिशाओ म फैले हुए दोनों सीगो को उखाड़कर (उन्ही से) उसे मारा। तब वह असुर मेघगर्जन के जैसे चिंघार उठा।

उसके शिर पर चोट लगी। उसकी टाँग टूट गई। वह पर्वत की गुहा जैसे

अपने मुख गह्वर को खोलकर रक्त उगलने लगा। तब वाली ने उसपर ऐसा प्रहार मारा जैसे पर्वत पर बिजली गिरी हो। उसके शब्द से ऊपर के सब लोक काँप उठे और सब दिशाएँ बहरी हो गईं।

वाली ने उसे अपने हाथो मे यो उठा लिया जैसे चामर हो और उसे घुमाने लगा। उसमे (ददुभी का) रक्त चारो ओर छितरा गया जिससे सब दिग्गज, जो सफेद दांत तथा मद से युक्त थे, लाल हो गये।

वाली ने अपने वज्रमय करो से उस असुर को उठाकर इस प्रकार ऊपर फेका कि मेघ मडल, सूर्य मडल तथा देवलोक को पार कर वह (दुदुभि का शरीर) ऊपर उठ गया फिर, उसके प्राण ऊपर चले गये और शरीर धरती पर आ गिरा।

दुर्गंध भरित उसका शरीर गगन की ऊपरी सीमा से टकराकर फिर नीचे आ गिरा। तब करुणालु मतग मुनि ने जो शाप दिया, वह अब मेरे लिए सहायक बना है — इस प्रकार (सुग्रीव ने) पूरा वृत्तात कह सुनाया।

अमल प्रभु (राम) ने सारी कथा सुनी और अपने युद्ध कुशल भाई (लक्ष्मण) से कहा—हे वीर! इस शव को तुम दूर फेक दो। लक्ष्मण ने अपने पैर के अगूठे से उसे उठाकर फेका। तब वह अस्थिपजर पुन एक बार सत्यलोक तक जाकर नीचे आ गिरा।

उस समय कपि समूह मुँह खोलकर वज्र के समान गरज उठा। जब श्रीराम उद्यान मे लौटकर आये, तब सुग्रीव ने राम से कहा—हे प्रभु! मेरा आपसे एक निवदन है। (१ १५)

●

अध्याय ६

आभरण-दर्शन पटल

पहले एक दिन, हम (वानर) इस स्थान पर बैठे थे, तब पापी रावण एक स्त्री को (अपहरण करके) लिये जा रहा था, न जाने वह आपकी पत्नी ही थी या अन्य कोई स्त्री। वह स्त्री दूर आसमान पर से इस वन की ओर देखकर विलाप कर उठी थी।

कदाचित् यह विचार करके कि उसके आभरण दूत का काम देगे ताटको तक फैले हुए नयनोंवाली उस नारी ने अपने आभरणो को एक वस्त्र मे बाँधकर वर्षा के समान नयन जल के साथ धरती पर गिरा दिया। हमने उस (आभरणो की गठरी) को अपने हाथो से पकड लिया।

हे वदान्य! हमने उन्हे सुरक्षित रखा है। हम आपके पास उन्हे ला देगे। आप देखकर समझे (कि वे सीता के ही हैं या नही)। —ये वचन कहकर घृत मिश्रित दूध जैसे सख्यवाले उस (सुग्रीव) ने आभरणों को अपने हाथ से लाकर दिखाया।

देवी सीता के आभरणो को (रामचन्द्र ने) भली भाँति देखा। उस समय

रामचन्द्र की क्या दशा हुई, उसका वणन हम कैसे कर सकते ह ? हम यह नही कह सकते कि उनका शरीर जलती आग म गिरे मोम जैसा पिघल उठा। और यह भी नही कह सकते कि उन्होने अपने प्राणो को शक्ति देनेवाले अमृत का पान किया।

देवी के स्तनो को विभूषित करनेवाले वे आभरण उनको उन (आभरणो) से युक्त स्तनो जैसे ही दिखाई पडे। कटि के आभरण कटि ही जैसे दिखाई पडे। अन्य अगो पर धारण किये जानेवाले आभरण अन्यान्य अग ही जान पडे। अब उन आभरणो से और अधिक क्या प्राप्त हो सकता था ?

क्या यह कहूँ कि (रामचन्द्र की) खोई हुई सुधि को वे आभरण वापस लाये ? या यह कहूँ कि उन (आभरणो) ने उनके प्राणो को आहत किया ? या यह कहूँ कि वे शरीर पर लगाये चदन लेप के समान शीतल लगे ? या यह कहूँ कि उन आभरणों ने उन्हे जला ही दिया ? क्या कहूँ ?

सीतादेवी के वे आभरण (रामचन्द्र के) नासिका आघ्राण के लिए सुरक्षित पुष्प बने। कधो पर धारण करने के लिए उत्तरीय वस्त्र बने। उनपर (स्वर्ग और मणियो की) काति के फैलने से चदन लेप बने तथा उनकी देह को आवृत करने से वे (आभरण) उनकी सुन्दर चादर बन गये।

उन (रामचन्द्र) के दोनो अरुण नयनो से जो अश्रुजल बहा, उसमे सब वस्तुएँ वह चली। रोमाच ने उनकी देह को ढक दिया। फूली हुई भुजाएँ, स्वेद से भर गइ या यह कहूँ कि ताप से तप्त हो उठी। उस समय की उनकी दशा का मै क्या वर्णन करूँ ?

राम की देह मे ऐसी वेदना उत्पन्न हुई, मानों उसमे विष व्याप्त हो गया हो, जिससे वे दीर्घकाल तक, श्वास के साथ अपनी सुध भी खोकर (मूच्छित हो) पड़े रहे। तब उन विशाल नयन का सुग्रीव ने सँभाल लिया। तब उसके शरीर पर के रोम (राम की देह मे) चुभ गये।

सुग्रीव ने रामचन्द्र को सँभालकर बिठाया। उनके दु ख से स्वय भी सतप्त होकर द्रवितचित्त हुआ और अश्रु बहाने लगा। वह यह कहकर विलाप कर उठा कि—हे पुष्ट कधोवाले। मुझ पापी ने उन आभरणो को देकर आपके प्राणों को हरा है।

हे श्रुति शास्त्र निपुण। इस ब्रह्माड से भी परे जाकर हम आपकी देवी का अन्वेषण करेगे। हम अपना पराक्रम दिखाकर आपकी उत्तम पत्नी को ला देंगे। आप क्यों व्याकुल होते है ?

लक्ष्मी के समान, और दिव्य सतीत्व से युक्त उस देवी को भय विकपित करनेवाले उस निष्ठुर पापी (रावण) की बीस भुजाएँ तथा दस शिर, आपके एक शर के लिए भी पर्याप्त लक्ष्य नही बन सकेगे। सातो लोक भी क्या आपके एक बाण का लक्ष्य बनने की योग्यता रखते है ?

आप यही रहे। मै अपने पराक्रम से चौदहो भुवनो म प्रवेश करूँगा और वहाँ देवी का अन्वेषण करूँगा। मेरी छोटी सेवा को भी देखिए मै किस प्रकार आपकी पत्नी को यहाँ ले आता हूँ।

हम आपका आदेश पूरा करनेवाले आपके तुच्छ साथी है। यह आपका अनश्वर पराक्रमी अनुज भी यहाँ उपस्थित है। हे पुरुषश्रेष्ठ! यदि आपमे इतना बल है, तो क्या त्रिलोक भी आपकी आज्ञा का उल्लघन कर सकता है? आप क्यो अपने को छोटा समझते हैं?

उत्तम जन, बडे होने पर भी अपनी महिमा का स्वय नही बताते। ससार उनके कार्य को ही देखता है। धर्म ही आपके रूप मे साकार बना है आपके अतिरिक्त और धर्म क्या है? आपके लिए असाध्य क्या है? इतने पर भी आप क्यो शोक उद्विग्न होते हैं?

हे सशयहीन वचनवाले! पकजभव (ब्रह्मा), कात्तिकेय के पिता एव कोमलागी को अपने वाम भाग मे धारण करनेवाले (शिव) तथा चक्रधारी (विष्णु)—ये तीनो एक साथ मिलकर आपकी समता कर सकते हैं। पृथक् पृथक् होने पर वे भी आपकी समता नही कर सकते।

हे उज्ज्वल धनुष धारण करनेवाले! मेरे छोटे से अभाव की पूत्ति अब नहीं तो पीछे भी आप कर सकते हैं (अर्थात्, वाली का वध पीछे ही हो)। पहले हम उन दुखी देवी को मुक्त करके लायेंगे। इस प्रकार सुग्रीव ने कहा—

उष्णकिरण के पुत्र के यह कहने पर लक्ष्मी अकित वक्षवाले (श्रीराम), किसी न किसी प्रकार मूर्च्छा त्यागकर सज्ञा प्राप्त कर सके और अपने अश्रुसिक्त मनोहर नयनो को खोलकर स्नेह के साथ (सुग्रीव को) देखा, फिर कहने लगे—

पर्वत सदृश उन्नत भुजाओवाले! मुझ पापी के इस उज्ज्वल धनुष को हाथ मे रखकर जीवित रहने पर भी, उस (जानकी) ने अपने आभरण उतारकर फेंक दिये। क्या ताटकधारिणी, पतिव्रता नारियो मे इस प्रकार करनेवाली अन्य कोई स्त्री भी थी? (अर्थात्, नही।)

उधर, करवाल सदृश दीर्घ नयनोवाली (जानकी) मेरे आगमन की प्रतीक्षा करती हुई व्याकुल बैठी है। इधर मै बडे बडे पर्वतो और सरोवरो मे भटकता हुआ, उसके आभरणो के साथ रोता हुआ व्यर्थ समय व्यतीत कर रहा हूँ। डोरीवाले इस दीर्घ धनुष को ढोने पर मुझे लज्जित होना चाहिए।

यदि कोई किसी नारी का अपमान कर दे, तो राह चलनेवाले व्यक्ति भी उस अपमान करनेवाले को रोकेंगे और उनसे युद्ध करके अपने प्राण भी त्याग देंगे। मै तो, अपने आप पर भरोसा रखकर जीवित रहनेवाली (सीता) के दुख को भी दूर नही कर रहा हूँ।

मेरे कुल मे ऐसे राजा उत्पन्न हुए है, जिन्होने समुद्र खोदा था। जिन्होने व्याघ्र और हरिण को एक ही घाट पानी पिलाया था। किन्तु, उसी वश मे उत्पन्न हुआ मैं ऐसा हूँ कि आभरण धारिणी अपनी पत्नी को दुख मुक्त करने का भी सामर्थ्य मुझमे नही है।

मेरे पिता ने उस (शबर नामक) असुर को, जो यमराज के लिए दुर्निवार था और जो त्रिलोक कटक था, मिटाकर देवेन्द्र का दुख दूर किया था। उनका पुत्र होकर जनमा हुआ मैं, अपने धनुष के साथ, अत्यन्त पीडा देनेवाले क्रूर अपवाद को भी ढो रहा हूँ।

सब से प्रशंसनीय महिमा से युक्त मेरे पिता का सत्य व्रत यदि टूट जाय, तो उससे बड़ा अपवाद होगा—यह विचार करके मैंने राज्य मुकुट धारण नहीं किया। अब यहाँ इक्षुरस सदृश बोलीवाली (पत्नी) के शत्रु से अपहृत होने का सबसे बड़ा अपवाद मुझे प्राप्त हुआ है। अपवाद मुक्त मैं कब हुआ?

राम, इस प्रकार के वचन कहकर वर्णनातीत दुःख से मूच्छित हो गये। उनकी वेदना को देखकर सहस्रकिरण के पुत्र ने उन्हें सांत्वना दी और उन्हें दुःख सागर के तट पर लाकर खड़ा किया।

(तब राम ने सुग्रीव से कहा—) हे मित्र! तुम्हारे वचनों से मेरा दुःख शांत हुआ। नहीं तो क्या मैं जीवित रह सकता था? मेरे लिए मृत्यु से बढ़कर हितू अन्य कोई नहीं है। अपवाद मुक्ति के लिए वही कर्त्तव्य है (अर्थात्, मर जाना ही भला)। फिर भी, जबतक मैं तुम्हारे दुःख को दूर न करूँ, तबतक मैं मृत्यु को नहीं अपनाऊँगा।

राघव ने इस प्रकार कहा। इसी समय अतिबली मारुति ने (राम को) नमस्कार किया और कहा—हे उन्नत पर्वत सदृश कंधोंवाले! मुझे कुछ निवेदन करना है। आप ध्यान से सुनने की कृपा करें।

हे अपने आज्ञाचक्र को सर्वत्र चलानेवाले! क्रूरकर्मी वाली का वध होना चाहिए। सूर्यपुत्र को राजा बनाना चाहिए और फिर बड़ी सेना का संगठन करना चाहिए। तभी भयंकर आयुधधारी राक्षसों के निवास स्थान को ढूँढकर हम वहाँ जा सकते हैं। अन्यथा यह कार्य असंभव है।

हे भ्रमरों से संकुल पुष्पमालाधारी! राक्षसों का निवास धरती पर है? कहीं पर्वतों में है? अंतरिक्ष में है? इनसे पृथक् नागलोक में है?—अल्पशक्तिवाले नर जन्म[1] में उत्पन्न होने के कारण हम यह निश्चित रूप से नहीं जान सकते कि उनका निवास कहाँ है।

वे राक्षस पलमात्र में किसी भी लोक में जा सकते हैं। वहाँ अपने अभिलषित किसी भी पदार्थ को ग्रहण कर सकते हैं। किसी विपदा के समान ही वे अकस्मात् आ गिरते हैं और फिर लौट जाते हैं। अतः, उनके निवास को पहचानना आसान नहीं है।

एक ही समय में सर्वत्र जाकर सीता का अन्वेषण करना है। यदि एक एक करके सब दिशाओं में ढूँढने लगेंगे, तो उसमें बड़ी कठिनाई होगी। धरती अनंत रूप में फैली है और अन्वेषण में असंख्य वर्ष लग जायँगे।

सत्तर 'धारा' संख्यावाली वानर सेना युगांत में उमड़नेवाले सागर के समान सर्वत्र फैल जायगी। समुद्र को पी डालना हो, ब्रह्मांड को उठाना हो, आज्ञा पाने पर वह सेना सब कुछ कर सकेगी।

अतः, हे नीतिज्ञ! यही उचित होगा—(कि पहले वाली वध हो, फिर सीता का अन्वेषण हो)—यों हनुमान् ने कहा। तब उस सद्गुणागार प्रसिद्ध धनुर्धारी ने कहा—चलो, वाली के निवास स्थान पर जायेंगे। फिर, वे सब चल पड़े।

१ वानर भी नर के जैसे होते हैं, अतः नर जन्म शब्द से वानर-जन्म को भी लिया गया है।—अनु०

(सुग्रीव, उसके चार मन्त्री राम और लक्ष्मण) वे सब ऐसे चले, जैसे भयकर नेत्रवाला एक शरभ (सुग्रीव), दो पराक्रमी व्याघ्र (नल और नील), शीघ्र गतिवाले दो गज (हनुमान् और तार) तथा दो सिह (राम और लक्ष्मण) जा रहे हो। साल हरे भरे तमाल, ऐला, कदली, आम्र, नाग आदि वृक्षो मे होकर पवत के सानु मार्ग पर वे चले।

उस मार्ग म हरिणनयनोवाली वानरियो के झूले लगे थ। जहाँ झूले नहा थे वहाँ हवा म स्पदित होनेवाले पत्रो से शोभायमान चदन के वृक्ष लगे थे। जहाँ चदन के वृक्ष नही थे, वहाँ मेघो से आवृत सानु प्रदेश थे। जहाँ वैसे सानु प्रदेश नही थे, वहाँ सुरभिमय चपक उद्यान थे। जहाँ वैसे चपक उद्यान नही थे, वहाँ स्वर्ण से भरे टीले थ।

धम स्वरूप वे दोनो (राम लक्ष्मण) वानर वीरो के साथ उस पवत मार्ग म कहा उतरते, कही चढते हुए जा रहे थे। उनके मुखर वीर वलय अपार शब्द करते थे। उस शब्द को सुनकर सोये पडे रहनेवाले मेघ भी मानो जग जाते थे और आकाश म उड जाते थे।

मेघ ऊँचे आकाश मे उड रहे थे। झरने झर रहे थ। पुन्नाग वृक्षो से भरित सानुओ म फनवाले सप इनकी आहट पाकर हट जाते थे। मत्तगज इधर उधर बिखर जाते थे। सिंह भाग जाते थे। सोतो मे विचरण करनेवाली मछलियो के साथ जल सप भी त्वरित गति से जाकर छिप जाते थे और व्याघ्रो के साथ काले मुखवाले लगूर भी भाग जाते थे।

जब मदमत्त गज ढालो पर के वृक्षो से टकराते थे, तब वज्रमय काले रगवाले अगरु और चदनवृक्ष टूटकर लुढक जाते थे, जिससे (उनपर लगे हुए) मधु के छत्ते बिखर जाते थे और उनसे मधु बह चलता था, उस मधु के कारण उस विकट पर्वत मार्ग पर चलना कठिन हो रहा था।

वहाँ चमकनेवाले रत्नसमुदाय, अपनी काति को गगन तक फैला रहे थे और ऐसे लगते थे, मानो पर्वत पर अग्नि ज्वाला फैल रही हो। स्वर्णमय टीलो की काति इस प्रकार फैल रही थी, मानो उस अग्नि ज्वाला को बुझाने के लिए जल धाराएँ बह रही हो।—उन धनुर्धारियो के मार्ग पर ऐसा दृश्य उपस्थित हो रहा था।

उस पर्वत पर के सब जलस्रोतो मे आकाश गगा बहती थी। जलाशयो के मीन आसपास के वृक्षा पर झपटते थे। जल स्रोत नदियो पर झपटते थे। हाथी एक दूसरे पर झपटते थे। पक्षी शालि के पोधो पर झपटते थे और लगूर वृक्ष शाखाओ पर झपटते थे।

स्वर्गवासियो को भी आकृष्ट करनेवाली ऐला की सुगधि से युक्त वे पर्वत-शिखर मधु के बहने के कारण पिच्छिल हो गये थे। उनपर जल के बहने से गगन के नक्षत्र भी फिसल जाते थे। आकाश मे दिखाई पडनेवाला इन्द्र धनुष भी फिसल जाता था। धवल चद्र बिंब फिसल जाता था और अतरिक्ष मे सचरण करनेवाले ग्रह भी फिसल जाते थे।

इस प्रकार के पवत मार्ग से चलनेवाले वे सब वीर दस योजन चलकर वाली के निवासभूत उस पर्वत के निकट पहुँचे, जो ऐसा था, मानो स्वर्णमय स्वर्ग ही उतर आया हो। फिर, वे अपने कर्त्तव्य का विचार करने लगे। (१४२)

●

ग्र स प्रशसनीय महिमा से युक्त मेरे पिता का सत्य व्रत यदि टूट जाय, तो उससे बडा अपवाद होगा—यह विचार करके मैने राज्य मुकुट धारण नही किया। अब यहा इक्षुरस सदृश बोलीवाली (पत्नी) के शत्रु से अपहृत होने का सबसे बडा अपवाद मुझे प्राप्त हुआ है। अपवाद मुक्त म कब हुआ ?

राम, इस प्रकार के वचन कहकर वणनातीत दु ख स मूच्छित हा गय। उनकी वदना का देखकर सहस्रकिरण के पुत्र ने उन्हे सात्वना दी और उन्हे दु ख सागर के तट पर लाकर खडा किया।

(तब राम न सुग्रीव से कहा—) ह मित्र। तुम्हारे वचनो से मेरा दु ख शात हुआ। नही तो क्या म जीवित रह सकता था। मेरे लिए मृत्यु से बढकर हितू अन्य कोई नही है। अपवाद मुक्ति के लिए वही कर्त्तव्य है (अथात् , मर जाना ही भला)। फिर भी, जबतक म तुम्हारे दु ख को दूर न करूँ, तबतक म मृत्यु को नही अपनाऊँगा।

राघव ने इस प्रकार कहा। इसी समय अतिबला मारुति ने (राम को) नमस्कार किया और कहा—ह उन्नत पर्वत सदृश कधोवाले। मुझे कुछ निवेदन करना है। आप ध्यान स सुनने की कृपा करे।

ह अपने आज्ञाचक्र को सर्वत्र चलानेवाले। क्रूरकर्मी वाली का वध होना चाहिए। सूयपुत्र का राजा बनाना चाहिए और फिर बडी सेना का सगठन करना चाहिए। तभी भयकर आयुधधारी राक्षसो के निवास स्थान को ढूँढकर हम वहाँ जा सकते हैं। अन्यथा यह काय असभव है।

हे भ्रमरो से सकुल पुष्पमालाधारी। राक्षसो का निवास धरती पर ह ? कहा पर्वतो म हे ? अतरिक्ष मे हे ? इनसे पृथक् नागलोक में हे ?—अल्पशक्तिवाले नर जन्म[1] मे उत्पन्न हाने के कारण हम यह निश्चित रूप से नही जान सकते कि उनका निवास कहाँ है।

व राक्षस पलमात्र मे किसी भी लोक म जा सकते ह। वहाँ अपने अभिलषित किसी भी पदाथ का ग्रहण कर सकते ह। किसी विपदा क समान हा व अकस्मात् आ गिरते हैं और फिर लौट जाते हं। अत , उनके निवास को पहचानना आसान नही हे।

एक ही समय म सर्वत्र जाकर सीता का अन्वेषण करना है। यदि एक एक करके सब दिशाओ म ढूँढने लगगे, तो उसम बडी कठिनाई होगी। धरती अनत रूप मे फैली है और अन्वेषण मे असख्य वर्ष लग जायँगे।

सत्तर 'धारा' सख्यावाली वानर सेना युगात म उमडनेवाले सागर के समान सवत्र फैल जायगी। समुद्र को पी डालना हो, ब्रह्माड को उठाना हो, आज्ञा पाने पर वह सेना सब कुछ कर सकेगी।

अत , हे नीतिज्ञ। यही उचित होगा—(कि पहले वाली वध हो, फिर सीता का अन्वेषण हो)—यो हनुमान् ने कहा। तब उस सद्गुणागार प्रसिद्ध धनुर्धारी ने कहा—चलो, वाली के निवास स्थान पर जायेगे। फिर, व सब चल पडे।

१ वानर भी नर के जैसे होते हैं अत नर जन्म शब्द से वानर-जन्म को भी लिया गया है।—अनु०

(सुग्रीव, उसके चार मन्त्री, राम और लक्ष्मण) वे सब ऐसे चले, जैसे भयकर नेत्रवाला एक शरभ (सुग्रीव), दो पराक्रमी व्याघ्र (नल और नील), शीघ्र गतिवाले दो गज (हनुमान् और तार) तथा दो सिंह (राम और लक्ष्मण) जा रहे हो। साल, हरे भरे तमाल, ऐला, कदली, आम्र, नाग आदि वृक्षो से होकर पर्वत के सानु मार्ग पर वे चले।

उस मार्ग में हरिणनयनोवाली वानरियो के झूले लगे थे। जहाँ झूले नही थे, वहाँ हवा मे स्पदित होनेवाले पत्रो से शोभायमान चदन के वृक्ष लगे थे। जहाँ चदन के वृक्ष नही थे, वहाँ मेघो से आवृत सानु प्रदेश थे। जहाँ वैसे सानु प्रदेश नही थे, वहाँ सुरभिमय चपक उद्यान थे। जहाँ वैसे चपक उद्यान नही थे, वहाँ स्वर्ण से भरे टीले थे।

धर्म स्वरूप वे दोनो (राम लक्ष्मण) वानर वीरो के साथ उस पर्वत मार्ग में कहीं उतरते, कही चढते हुए जा रहे थे। उनके मुखर वीर वलय अपार शब्द करते थे। उस शब्द को सुनकर सोये पडे रहनेवाले मेघ भी मानो जग जाते थे और आकाश में उड जाते थे।

मेघ ऊँचे आकाश मे उड रहे थे। झरने झर रहे थे। पुन्नाग वृक्षो से भरित सानुओं में फनवाले सर्प इनकी आहट पाकर हट जाते थे। मत्तगज इधर उधर बिखर जाते थे। सिंह भाग जाते थे। सोतो मे विचरण करनेवाली मछलियो के साथ जल सर्प भी त्वरित गति से जाकर छिप जाते थे और व्याघ्रो के साथ काले मुखवाले लगूर भी भाग जाते थे।

जब मदमत्त गज ढालो पर के वृक्षो से टकराते थे, तब वज्रमय काले रगवाले अगरु और चदनवृक्ष टूटकर लुढक जाते थे, जिससे (उनपर लगे हुए) मधु के छत्त बिखर जाते थे और उनसे मधु बह चलता था, उस मधु के कारण उस विकट पर्वत मार्ग पर चलना कठिन हो रहा था।

वहाँ चमकनेवाले रत्नसमुदाय, अपनी काति को गगन तक फैला रहे थे और ऐसे लगते थे, मानो पर्वत पर अग्नि ज्वाला फैल रही हो। स्वर्णमय टीलो की काति इस प्रकार फैल रही थी, मानो उस अग्नि ज्वाला को बुझाने के लिए जल धाराएँ बह रही हो।—उन धनुर्धारियो के मार्ग पर ऐसा दृश्य उपस्थित हो रहा था।

उस पर्वत पर के सब जलस्रोतो मे आकाश गगा बहती थी। जलाशयो के मीन आसपास के वृक्षो पर झपटते थे। जल स्रोत नदियो पर झपटते थे। हाथी एक दूसरे पर झपटते थे। पक्षी शालि के पौधो पर झपटते थे और लगूर वृक्ष शाखाओ पर झपटते थे।

स्वर्गवासियो को भी आकृष्ट करनेवाली ऐला की सुगधि से युक्त वे पर्वत शिखर मधु के बहने के कारण पिच्छिल हो गये थे। उनपर जल के बहने से गगन के नक्षत्र भी फिसल जाते थे। आकाश मे दिखाई पडनेवाला इन्द्र धनुष भी फिसल जाता था। धवल चद्र बिब फिसल जाता था और अतरिक्ष मे सचरण करनेवाले ग्रह भी फिसल जाते थे।

इस प्रकार के पर्वत मार्ग से चलनेवाले वे सब वीर दस योजन चलकर वाली के निवासभूत उस पर्वत के निकट पहुँचे, जो ऐसा था, मानो स्वर्णमय स्वर्ग ही उतर आया हो। फिर, वे अपने कर्त्तव्य का विचार करने लगे। (१ ४२)

●

अध्याय ७

वाली-वध पटल

उस समय, शत्रु विजयी राम ने विचार कर तथा अपने निर्णय को उचित मानकर सुग्रीव से कहा—तुम जाकर वाली नामक उस अनुपम क्रूर विष के साथ युद्ध करो। उस समय मै अलग एक स्थान पर रहकर (वाली पर) शर का प्रयोग करूगा। यही मेरा निश्चित विचार है।

रामचन्द्र का वचन सुनत ही गगनगामी रथवाले (सूर्य) के पुत्र ने ऐसा बड़ा गर्जन किया कि उस शब्द को सुनकर तरगो से पूर्ण जलधि भयभीत हो उठी। नीले मेघ लज्जित हो गये। भूमि के निवासी थरथराकर भागने लगे। स्वर्गवासी व्याकुल हुए। वह गर्जन ब्रह्माड भर मे गूँज उठा।

सुग्रीव किष्किन्धा के निकट जा पहुँचा। अपना ओठ चबाता हुआ उसने गर्जन क साथ वाली के प्रति यह कहा—यदि तुम युद्ध करने के लिए आओगे, तो मे तुम्हारे प्राण हर लूँगा। यह कहकर वज्र के समान शब्दो मे धमकी देता हुआ, पैर पटकता हुआ और भुजाओ को ठोकता हुआ वह खडा रहा। यह ध्वनि किष्किन्धा म सोये हुए वाली के कानों मे जाकर पडी और उसके वाम अग फडक उठे।

पर्यंक पर मानो एक क्षीरसमुद्र ही लेटा हो, यो पडे हुए वाली ने सुग्रीव के गर्जन की उस महान् ध्वनि को सुना, जैसे हिंस्र सिह ने किसी मत्तगज का चिघाड सुना हो।

पर्वत सदृश कधोवाला वाली, अपने भाई को युद्ध करने के लिए आया हुआ जानकर हँस पडा। उसकी उस हँसी से चौदहो भुवन तथा दिशाओ के परे रहनेवाले प्रदेश भी काँप उठे।

ऊँची तरगो से पूर्ण समुद्र प्रलय काल म उमड उठा हो, उसी प्रकार वाली सत्वर उठा। तब उसके भार से वह पर्वत धँस गया। उसकी बाँहो के हिलाने से जो हवा उठी, उससे समीपस्थ पर्वत ढह गये।

उसका शरीर रोमाचित हो उठा। तब उसके रोओ से चिनगारियाँ निकल पडी। उसके नेत्र यो आग उगलने लगे कि वडवाग्नि की आँखें भी उसकी तीव्रता को देखकर अधी हो जायँ। उसके श्वास से धुआँ ऐसा उठा कि वह देवलोक के भी ऊपर पहुँच गया।

वाली ने हाथ से ताल ठोका। उसे सुनकर दिशाओं के रक्षक गज भी मदरहित हो गये। वज्र शक्ति हीन हो गये। ऊपर के लोक थरथरा उठे। धरती पर स्थिर खडे हुए पहाड़ भी ढह गये।

वाली का यह शब्द कि, 'मै आ गया, मै आ गया'—पूर्व आदि अष्ट दिशाओ मे गूँज उठा। वह उठ खड़ा हुआ। तब उसके मणिमय किरीट के स्पर्श से नक्षत्र झड पडे।

उसके चलते समय हवा बडे वेग से बह चली, जिससे पर्वत समूह जड से उखड

गये और दिशाओं की सीमा पर जा गिरे। उसके श्वेत रोमों से निकली हुई चिनगारियाँ ब्रह्माड की भित्ति पर छा गई। यम भी उन चिनगारियों को देखकर त्रस्त हो उठा। अन्य देवता लोग व्याकुल हुए।

वाली के दाँतो के पीसने से जो अग्नि कण निकले, वे वर्षाकाल मे बिजलियों जैसे सर्वत्र झड पडे। उसके अत्युत्तम भुजा वलयो के रत्न इस प्रकार चूर चूर हो झड पडे, जैसे विद्युत् ही झड रही हो।

वह सर्वभयकर (वाली) उस कालाग्नि की समता करता था, जो प्रलय काल मे पृथ्वी, चारो दिशाओं के समुद्र और देवलोक तथा सृष्टि के कारणभूत तत्त्वो को जला देती है। वह उस (वाली) के द्वारा मथे गये क्षीरसागर से उत्पन्न हलाहल की भी समता करता था।

उस समय, अमृत सदृश, बाँस के जैसे कधोवाली 'तारा' नामक स्त्री (वाली की पत्नी), उसके मार्ग मे आ खड़ी हुई। वाली के नेत्रो से निकलनेवाली चिनगारियों से उस (तारा) के लबे केश झुलस गये।

हे पर्वतवासी कलापी! मुझे मत रोको। हटो। जिस प्रकार क्षीरसागर का मथन करके मैंने अमृत निकाला था, उसी प्रकार युद्ध का आह्वान देनेवाले सुग्रीव के बल को मथकर उसके प्राणों का पान करूँगा और शीघ्र लौट आऊँगा—यों वाली ने कहा। तब उसकी पत्नी ने कहा—

हे विजयी प्रभु! वह (सुग्रीव) पूर्व-जैसा नही है। तुम्हारी पुष्ट भुजाओं की शक्ति से आहत होकर वह भागा था। अब उसे नई शक्ति कुछ नही मिली है। अपना यह जन्म छोडकर कोई दूसरा जन्म भी उसने नही पाया है। फिर भी, वह पुन युद्ध करने के लिए आया है। अवश्य ही उसे कोई बडा सहायक मिल गया है।

अतहीन तीनों लोको के रहनेवाले समस्त प्राणी भी यदि एक साथ मिलकर मुझसे युद्ध करने के लिए आये, तो भी सब मुझसे हार जायँगे। इसके जो कारण हैं, उन्हे तुम सुनो—

मदर पर्वत को मथानी, वासुकि सर्प को रस्सी, चक्रधारी (विष्णु) को कटावदार खोरिया, चद्र को आधार (लकडी का वह तख्ता, जो मथानी को खभे से लगाये रखता है) बनाकर इन्द्र आदि देवता तथा उनके शत्रु असुर, क्षीरसागर को मथने लगे थे।

किंतु, उस मथानी को घुमाने की शक्ति उनमे नही थी, इसलिए वे थक गये। तब मैंने उन्हे देखा और स्वय क्षीरसागर को मथ डाला एव उन्हे अमृत निकालकर दे दिया। ऐसी मेरी शक्ति को हे कलापी सदृश रूप तथा कोकिल सदृश कठ से युक्त रमणी! क्या तुम भूल गई हो?

युद्ध मे मुझसे अनेक देव और असुर हार गये हैं। उनकी संख्या मै कैसे बताऊँ। यम भी मेरा नाम सुनकर थरथरा उठता है। ऐसा होने पर भी यदि कोई मेरे शत्रु (सुग्रीव) की सहायता करने के लिए आया हो, तो—

वह बुद्धिहीन है। यदि मेरे साथ युद्ध करने के लिए कोई आ भी जाय, तो

वरदान के प्रभाव से उनके बल का अर्धांश मुझे मिल जायगा। अत, कोई मेरे साथ क्या वैर कर सकता है? तुम निश्चिन्त रहो।— यों वाली ने तारा से कहा।

यह सुनकर उस (तारा) ने कहा — हे प्रभु! अपने हितचिन्तक लोगो से मैने सुना है कि राम नामक व्यक्ति उस (सुग्रीव) का प्राण मित्र बन गया है। अब वही तुम्हारे प्राणहरण करने के लिए आया है।

तब वाली ने तारा से कहा—हे पापिन! तुमने यह कैसा वचन कहा? वह महाभाग (राम) पुण्य पाप रूपी द्विविध कर्मों का अत न देखकर, दु खी होकर पुकारने वाले प्राणियो को अपने आचरण के द्वारा धर्म का स्वरूप दिखाता है। ऐसे व्यक्ति के प्रति तुमने अनुचित वचन कहे। स्त्री सुलभ अज्ञान के कारण तुमने कैसा अपराध कर दिया।

इहलोक और परलोक, दोनो लोको के फलो का विचार रखनेवाले उस महाभाग के लिए, तुम्हारा कथित यह कार्य क्या शोभा देनेवाला होगा? ऐसा करने से उनका लाभ ही क्या होगा? सब प्राणियो की रक्षा करनेवाला वह अपूर्व पदार्थ धर्म ही क्या स्वय अपना नाश कर लेगा?

विशाल ससार के राज्य को प्राप्त करके जिसने अपनी माता की सपत्नी के कहने से उस राज्य को अपार आनन्द के साथ उसके पुत्र को दे दिया, उस प्रभु की स्तुति करना छोड़कर तुम (उनके सबध मे) इस प्रकार के निंदा वचन कहने लगी?

यदि सारे लोक एक साथ मिलकर सामना करने आये, तथापि उनपर विजय पाने के लिए, उस (राम) के भयकर कोदण्ड के अतिरिक्त अन्य किसी की सहायता आवश्यक नही है। वह प्रभु जिसकी समता करनेवाला वही है, अन्य कोई नही है, क्या क्षुद्रकार्य करनेवाले एक मर्कट (अर्थात्, सुग्रीव) के साथ मित्रता करेगा?

मेरे भाइयो के अतिरिक्त मेरे अन्य प्राण नही है—ऐसी भावना रखकर चलने वाला तथा कृपापूर्ण समुद्र जैसा वह प्रभु (राम) क्या मैं जब अपने भाई के साथ युद्ध करता रहूँगा, तब बीच मे मुझपर बाण प्रयोग करेगा?

तुम कुछ समय तक यही ठहरो। मै एक पल मे उस वैरी (सुग्रीव) के प्राण पीकर, उसके साथियो को भी मिटाकर लौट आऊँगा। व्याकुल मत हो।—यो वाली ने कहा। इसके पश्चात् सुरभित केशोवाली तारा डर से कुछ नही कह सकी और मौन रह गई।

वाली, युद्ध के उत्साह से सत्वर ऊँचा बढ गया। उसकी बलशाली भुजाएँ देवलोक की सीमा से भी ऊपर उठ गइ। अपने कधे रूपी दो पर्वतो के साथ, प्रकृति के वैभव से सपन्न उस पर्वत पर से वह इस प्रकार निकला, जिस प्रकार प्राची के पुरातन पर्वत पर सूर्य उदित होता है।

अपने पुष्ट कधो से मनोहर और महान् पर्वत की समता करनेवाला वाली, क्रूर हिरण्यकश्यप के निर्देश पर बडे स्तभ से प्रकट होनेवाले महान् नरसिंह जैसे उस पर्वत के एक भाग से ऐसे निकला कि देखनेवाले सभी मन में काँप उठे।

गर्जन करनेवाले अपने अनुज को देखकर वह (वाली) भी गरज उठा। उसके गर्जन से भीत होकर स्वेद से भरे हुए मेघों से वज्र गिरे। उस गर्जन की ध्वनि सभी लोकों

म इस प्रकार व्याप्त हो गई, जिस प्रकार कालवर्ण पर्वत सदृश विष्णु के चरण तीनों लोकों को नापने के लिए बढ गये थे।

उस समय, रामचन्द्र ने अपने प्रिय भाइ (लक्ष्मण) से कहा—हे तात! भली भाँति ध्यान से इसे देखो। दानवों और असुरों को रहने दो, सारे ससार म कौन समुद्र ऐसा है, कौन मेघ ऐसा है, कौन पवन ऐसा है अथवा कौन सी ऐसी भयकर प्रलयाग्नि है जो इसकी देह की समता कर सके?

तब उस महाभाग को देखकर अनुज (लक्ष्मण) ने उत्तर म कहा—यह (सुग्रीव) अपने ज्येष्ठ भ्राता के प्राणों का हरण करने के लिए यम को बुला लाया है। वानरों के लिए सहज, निदा रहित युद्ध यह नही कर रहा है। यही बात मेरे मन म खटकती है। इसके अतिरिक्त मे और कुछ भी सोच नही पा रहा हूँ।

अशात मन से (लक्ष्मण ने) फिर कहा—हे वीर! धर्म के विरुद्ध विश्वासघाती कार्य करनेवालो पर विश्वास करना हितकारी नही है। यह (सुग्रीव) किसी शत्रु के सग न, अपने भाई का ही मारने के लिए सन्नद्ध खडा है। भला यह पराये लोगो का सहायक किस प्रकार बन सकेगा?

तब रामचन्द्र कहने लगे—हे तात! सुनो, इन विवेकहीन मृगों के चारित्र्य के सबध म कुछ कहना ठीक नही है। यदि सभी माताओ के गर्भ से उत्पन्न कनिष्ठ पुत्र अपने बडे भाइयो के अनुकूल ही आचरण करनेवाले होते, तो भरत अत्यत उत्तम सहोदर कैसे कहलाता?

प्रकाशमान पर्वत सदृश मनोहर कधोंवाले! यथार्थ यह है कि (इस ससार म) सपूर्ण रूप स धर्माचरण करनेवाले बहुत कम लोग हैं। विरुद्ध आचरण करनेवाले (अधार्मिक) व्यक्ति अनेक हैं। अत, हम जिनमे मिलते हैं, उनम विद्यमान सद्‌गुणों का ही ग्रहण करना चाहिए। सर्वथा निदोष कहलाने योग्य व्यक्ति (ससार मे) कौन हैं?—यों राम ने कहा।

वे पराक्रमी वीर (राम लक्ष्मण) जब आपस म इस प्रकार के वचन कह रहे थे, तब रथ पर सचरण करनेवाले (सूर्य) का पुत्र और इन्द्र का पुत्र—दोनों, जो धरती पर चलने फिरनेवाले महान् हिमाचल के जैसे थे, एक दूसरे से ऐसे टकराये, जैसे दो भारी दिग्गज हो।

जैसे एक पर्वत के निकट दूसरा पर्वत आ गया हो, वैसे ही वे दोनो परस्पर समीप हो गये। जैसे हिंस्र तथा विजयी दो सिंह, एक दूसरे से लडने के लिए खडे हो, वे दोनो वैसे ही लगते थे। वे दोनो, अनेक बार एक दूसरे के दाईं और बाईं ओर चक्कर लगाने लगे जिस प्रकार दृढ बाहुओवाले कुम्हार के द्वारा घुमाया गया चाक हो।

समीप आये हुए दो ग्रहों के समान स्थित वे दोनो, क्रोधाविष्ट होकर, परस्पर की भुजाओं से टकरा उठे। उनके पैर, जिनके भार से यह पुरातन धरती धँसी जा रही थी

भाव यह है—लक्ष्मण को यह बात खटक रही है कि सुग्रीव धर्म-युद्ध नहीं कर रहा है, बल्कि वाली को मारने के लिए रामचन्द्र को ले आया है।—अनु०

वरदान के प्रभाव से उनके बल का अधाश मुझे मिल जायगा। अत, कोई मेरे साथ क्या वैर कर सकता है ? तुम निश्चिन्त रहो।— यो वाली ने तारा से कहा।

यह सुनकर उस (तारा) ने कहा — प्रभु ! अपने हितचिन्तक लोगो से मैने सुना है कि राम नामक व्यक्ति उस (सुग्रीव) का प्राण मित्र बन गया है। अब वही तुम्हारे प्राणहरण करने के लिए आया है।

तब वाली ने तारा से कहा—हे पापिन ! तुमने यह कैसा वचन कहा ? वह महाभाग (राम) पुण्य पाप रूपी द्विविध कर्मो का अत न देखकर, दु खी होकर पुकारने वाले प्राणियो को अपने आचरण के द्वारा धर्म का स्वरूप दिखाता है। ऐसे व्यक्ति के प्रति तुमने अनुचित वचन कहे। स्त्री सुलभ अज्ञान के कारण तुमने कैसा अपराध कर दिया।

इहलोक और परलोक, दोनो लोको के फलो का विचार रखनेवाले उस महाभाग के लिए, तुम्हारा कथित यह कार्य क्या शोभा देनेवाला होगा ? ऐसा करने से उनका लाभ ही क्या होगा ? सब प्राणियो की रक्षा करनेवाला वह अपूर्व पदार्थ धर्म ही क्या स्वय अपना नाश कर लेगा ?

विशाल ससार के राज्य को प्राप्त करके जिसने अपनी माता की सपत्नी के कहने से उस राज्य को अपार आनन्द के साथ उसके पुत्र को दे दिया, उस प्रभु की स्तुति करना छोड़कर तुम (उनके सबध मे) इस प्रकार के निंदा वचन कहने लगी ?

यदि सारे लोक एक साथ मिलकर सामना करने आये, तथापि उनपर विजय पाने के लिए, उस (राम) के भयकर कोदण्ड के अतिरिक्त अन्य किसी की सहायता आवश्यक नही है। वह प्रभु जिसकी समता करनेवाला वही है, अन्य कोई नही है, क्या क्षुद्रकार्य करनेवाले एक मर्कट (अर्थात्, सुग्रीव) के साथ मित्रता करेगा ?

मेरे भाइयो के अतिरिक्त मेरे अन्य प्राण नही है—ऐसी भावना रखकर चलने वाला तथा कृपापूर्ण समुद्र जैसा वह प्रभु (राम), क्या मै जब अपने भाई के साथ युद्ध करता रहूँगा, तब बीच मे मुझपर बाण प्रयोग करेगा ?

तुम कुछ समय तक यही ठहरो। मै एक पल मे उस वैरी (सुग्रीव) के प्राण पीकर, उसके साथियो को भी मिटाकर लौट आऊँगा। व्याकुल मत हो।—यो वाली ने कहा। इसके पश्चात् सुरभित केशोवाली तारा डर से कुछ नही कह सकी और मौन रह गई।

वाली, युद्ध के उत्साह से सत्वर ऊँचा बढ गया। उसकी बलशाली भुजाएँ देवलोक की सीमा से भी ऊपर उठ गई। अपने कधे रूपी दो पर्वतो के साथ, प्रकृति के वैभव से सपन्न उस पर्वत पर से वह इस प्रकार निकला, जिस प्रकार प्राची के पुरातन पर्वत पर सूर्य उदित होता है।

अपने पुष्ट कधो से मनोहर और महान् पर्वत की समता करनेवाला वाली, क्रूर हिरण्यकश्यप के निर्देश पर बडे स्तभ से प्रकट होनेवाले महान् नरसिह जैसे उस पर्वत के एक भाग से ऐसे निकला कि देखनेवाले सभी मन मे काँप उठे।

गर्जन करनेवाले अपने अनुज को देखकर वह (वाली) भी गरज उठा। उसके गर्जन से भीत होकर स्वेद से भरे हुए मेघों से वज्र गिरे। उस गर्जन की ध्वनि सभी लोकों

म इस प्रकार व्याप्त हो गई, जिस प्रकार कालवर्ण पवत सदृश विष्णु क चरण तीनों लोकों को नापने के लिए बढ गये थे।

उस समय, रामचन्द्र ने अपने प्रिय भाइ (लक्ष्मण) से कहा—हे तात ! भली भाँति ध्यान से इसे देखो। दानवो और असुरों को रटने वा सार समार न कौन समुद्र एसा ह, कौन मेघ ऐसा हैं, कौन पवन ऐसा है अथवा कौन सी ऐसी भयकर प्रलयाग्नि है जो इसकी देह की समता कर सके ?

तब उस महाभाग को देखकर अनुज (लक्ष्मण) ने उत्तर म कहा—यह (सुग्रीव) अपने ज्येष्ठ भ्राता क प्राणों का हरण करने के लिए यम को बुला लाया है। वानरों के लिए सहज, निदा रहित युद्ध यह नही कर रहा ह। यही बात मरे मन म खटकती है।[1] इसके अतिरिक्त मै और कुछ भी सोच नही पा रहा हूँ।

अशात मन से (लक्ष्मण ने) फिर कहा—हे वीर ! धर्म के विरुद्ध विश्वासघाती कार्य करनेवालो पर विश्वास करना हितकारी नही ह। यह (सुग्रीव) किसी शत्रु के समान, अपने भाई को ही मारने के लिए सन्नद्ध खडा है। भला यह पराये लागो का सहायक किस प्रकार बन सकेगा ?

तब रामचन्द्र कहने लगे—हे तात ! सुनो, इन विवकहीन मृगों क चारित्र्य क सबध म कुछ कहना ठीक नही ह। यदि सभी माताओ क गभ मे उत्पन्न कनिष्ठ पुत्र अपने बडे भाइयो के अनुकूल ही आचरण करनेवाले होत, तो भरत अत्यत उत्तम सहोदर कैसे कहलाता ?

प्रकाशमान पर्वत सदृश मनोहर कधोंवाले ! यथार्थ यह है कि (इस ससार म) सपूर्ण रूप स धर्माचरण करनेवाले बहुत कम लोग हैं। विरुद्ध आचरण करनेवाले (अधार्मिक) व्यक्ति अनेक हैं। अत, हम जिनमे मिलते हैं, उनम विद्यमान सद्गुणो का ही ग्रहण करना चाहिए। सर्वथा निदाष कहलाने योग्य व्यक्ति (ससार मे) कौन हैं ?—यों राम ने कहा।

वे पराक्रमी वीर (राम लक्ष्मण) जब आपस म इस प्रकार के वचन कह रह थे, तब रथ पर सचरण करनेवाले (सूर्य) का पुत्र और इन्द्र का पुत्र—दोनों, जो धरती पर चलने फिरनेवाले महान् हिमाचल के जैसे थे, एक दूसरे से ऐसे टकराये, जैसे दो भारी दिग्गज हो।

जैस एक पवत के निकट दूसरा पवत आ गया हो, वैसे ही व दोना परस्पर समीप हो गये। जैसे हिंस्र तथा विजयी दो सिंह, एक दूसरे से लडने के लिए खडे हो, व दानो वैसे ही लगत थे। वे दोनो, अनेक बार एक दूसरे के दाएँ और बाईं ओर चक्कर लगाने लगे, जिस प्रकार दृढ बाहुओवाले कुम्हार के द्वारा घुमाया गया चाक हो।

समीप आये हुए दो ग्रहों के समान स्थित वे दोनो, क्रोधाविष्ट होकर, परस्पर की भुजाओं से टकरा उठे। उनके पैर, जिनके भार से यह पुरातन धरती धँसी जा रही थी,

[1] भाव यह है—लक्ष्मण को यह बात खटक रही है कि सुग्रीव धर्म-युद्ध नहीं कर रहा है, बल्कि वाली को मारने के लिए रामचन्द्र को ले आया है।—अनु०

परस्पर रगड़ा उठे, जिससे अग्निकण निकलकर अतरिक्ष म ऐस उड चले, जैसे उज्ज्वल विद्युत् खड उड़ रहे हों।

अत्यधिक भुजबल से युक्त, एक ही माता से उत्पन्न तथा एक ही मुग्धा स्त्री के लिए लड़नेवाले वे दोनो, (उनके शरीरों पर) फैली हुई रक्त रेखाओं से शोभित, उज्ज्वल नेत्रोवाली सुन्दरी तिलोत्तमा के लिए लडनेवाले प्राचीन काल के सुन्द उपसुन्द नामक दो राक्षसो के जैसे लगते थे।

एक समुद्र को दूसरे समुद्र से लड़ते हुए, भूमि की रक्षा करनेवाले मेरुपर्वत को दूसरे मेरुपर्वत से लडते हुए, क्रोध को स्वय दो रूप धारण कर आपस म युद्ध करते हुए, हमने कभी नही देखा है। अत, इस ससार में उन बलवानों (वाली सुग्रीव) के भयकर युद्ध के लिए कोई उपमान भी हम नही दे सकते।

उन वानरों के नायको (वाली सुग्रीव) के नयनो से जो अग्नि ज्वालाएँ उठी, उनसे मेघ जल गये, पहाड़ जल गये, दिग्गज काँप उठे, धरती के चारों प्रकार के प्रदेश[1] अस्त व्यस्त हो गये, अतरिक्ष में रहनेवाले देवता दूर भागकर कही छिप गये।

देखनेवाले यह सोचकर विस्मय करते थे कि ये (वाली सुग्रीव) अतरिक्ष म हैं, ऊँचे पर्वत पर हैं, भूमि पर हैं, चारो दिशाओ की सीमाओं पर हैं अथवा हमारे नयनों म ही हैं, वे कहाँ खडे हैं? (अर्थात्, दोनों इतनी त्वरित गति से लड रहे थे कि यह विदित नही होता था कि वे कहाँ खडे हैं)। इस प्रकार, वे दोनों वानर एक दूसरे को मुष्टि से आहत करते थे और दाँतों से काटते थे, जिससे क्षत उत्पन्न होकर रक्त बह चलता था।

दसो दिशाओ मे स्थित सातो समुद्र एक साथ गरज उठें, तो उनके उस गर्जन से भी पाँचगुना अधिक था उन दोनों वानर नायकों का गर्जन घोष। एक दूसरे की बडी भुजाओ और वक्ष पर वे तीव्र मुष्टि-प्रहार करते थ, तो उससे उत्पन्न शब्द युगात के मेघों के गर्जन की समानता करता था।

वे बलवान् वीर एक दूसरे पर झपटकर अपने कराल दाँतों से काटते थे। तब उनके क्षतो से बहकर रक्त सब दिशाओं में छितरा जाता था, जिससे अतरिक्ष के सब नक्षत्र मगल ग्रह के समान हो गये—(मगल ग्रह रक्त काति से चमकता है, उसी प्रकार अन्य नक्षत्रों की काति भी रक्त वर्ण हो गई)। बादल भी लाल आकाश जैसे दीखने लगे।

जिस प्रकार अत्यधिक तपाये गये लौह खड को बडे हथौडे से मारने पर चिनगारियाँ छिटक उठती हैं, उसी प्रकार इन्द्र पुत्र (वाली) की भुजाओं द्वारा रवि-पुत्र (सुग्रीव) के वक्ष पर दीर्घ करों का आघात होने से चिनगारियाँ निकल रही थी।

व दोनों एक दूसरे को छाती से ढकेलते, टाँगो को फैलाकर लात मारते, बडे वेग के साथ हाथो से मारते, काटते, खडे होकर टकरा जाते, पेड़ो से पीटते हुए चिल्लाते,

---

१ तमिल साहित्य में चार प्रकार के प्रदेशों का वर्णन होता है, जिन्हे मुल्लै, कुरिजी, मरुदम और नेयिदल कहते हैं। जो क्रमश अरण्य-भूमि, पर्वतीय स्थान, खेती से भरी समतल भूमि और समुद्र-तट का प्रदेश होते है, पाँचवें प्रदेश पालै अर्थात्, मरुभूमि का भी उल्लेख होता है। किंतु, वहा प्राणियों का निवास न होने से कदाचित प्रस्तुत प्रसंग में उसे नहीं लिया गया है। —अनु०

शिलाओ को उखाडकर एक दूसरे के शिर पर फेंकते और धमकी देकर डराते। उनके क्रुद्ध कि आँखों से चिनगारियाँ निकल पडती।

वे एक दूसरे को पकडकर ऊपर उठाते और फेंक देते, फिर समीप आकर अपने वक्ष फुलाकर दिखाते। मुष्टि का ऐसा प्रहार करते कि हाथ शरीर में गड जाता। अति वेग मे लट्टू के समान दाये और बायें पैंतरे बदलने, एक दूसरे को रोककर खडे हो जाते पीछे हटते, (परस्पर की) भुजाओं को बधन में बाँधकर नीचे गिर जाते।

कभी पूँछ से एक दूसरे के वक्ष को बाँधकर ऐसे खीचते कि उनकी हड्डियाँ भी चूर चूर हो जाती। अपनी टाँग मे दूसरे की टाँग को उलझाकर कष्ट देते। फिर कुछ ढील देते। जैसे भाला तानकर मारा हो, ऐसे ही अतिदृढ तीक्ष्ण नखों से परस्पर के देह को चीर देते जिससे शरीर का चर्म ऐसा फट जाता जैसे पर्वत की कदरा हो।

धरती में गडे हुए पर्वत, वृक्ष तथा दृष्टि में पडनेवाले सभी पदार्थों को वे अपने बलवान् हाथो मे उखाड उखाडकर फेंकते थे और उनमे आघात करते थे जिससे वे (पर्वत वृक्ष आदि) टूटकर कुछ अतरिक्ष में अदृश्य हो जाते और कुछ समुद्र में जा गिरते।

उस युद्ध में कोई किसी से हारा नही। दोनो उग्र युद्ध जन्य उमग से मत्त होकर लड रहे थे। उनके श्वेत रोमो से रक्त वर्ण अग्नि कण निकल रहे थे, जैसे सूखी घास से भरी भूमि पर आग फैल रही हो। (उस भयकर युद्ध को देखकर) देवता भी भय से व्याकुल हो उठे, तो अब उस युद्ध के बारे मे और क्या कहा जाय?

जब इस प्रकार वे दोनो बडे पराक्रम से लड रहे थे, तब दीर्घ तथा पुष्ट भुजाओ तथा शत्रुध्वसकारी पराक्रम से युक्त वाली ने सुग्रीव को अपने भयकर नखों तथा करो से ऐसे मारा, जैसे सिंह हाथी को मारता है।

तब रविकुमार (सुग्रीव) बहुत पीडित हो उठा और श्रीराम के पास गया। तब रामचन्द्र ने उससे कहा—दुःखी मत होओ। मैं तुम दोनो में कोई अतर नही देख सका। अब तुम वनपुष्पो की माला पहनकर जाओ—यो कहकर उन्होंने सुग्रीव को दुबारा भेजा। सुग्रीव फिर जाकर वाली से युद्ध करने लगा।

सुग्रीव, जिसके शिर पर की पुष्पमाला ऐसी थी, मानो उज्ज्वल नक्षत्रो की गुँथी हुई माला हो, अपने गर्जन से भयकर व्याघ्र और मेघ गर्जन को भी चकित करता हुआ त्वरित गति से आया और शत्रु विनाशक वाली को मुक्कों से मार मारकर त्रस्त कर दिया।

तब वाली मन में आशकित हुआ। वह क्रोध के साथ इस प्रकार घूरा कि यम भी उससे डर गया। वह मदहास कर उठा। फिर, अपने दृढ हाथो और पैरो से सुग्रीव के मर्म स्थानों में आघात किया, जिससे वह मूच्छित हो गया।

सुग्रीव अपने निःश्वासो के साथ प्राण भी उगलने लगा। उसके कानो और नेत्रो से अग्नि ज्वालाओ के साथ रक्त की धारा भी बह चली। तब सूर्यपुत्र (सुग्रीव) चारों दिशाओ में व्याकुल होकर देखने लगा और इन्द्रपुत्र (वाली) गर्व से आगे बढकर अधिकाधिक प्रहार करने लगा।

(फिर) वाली ने, यह सोचकर कि इसे धरती पर पटककर मार दूँगा, अपने

भाई की कटि और कंठ म अपने करो को डालकर ऊपर उठा लिया। इतने म रामचन्द्र ने एक बाण लेकर अपने धनुष पर चढाया और उसकी डोरी के साथ अपने हाथ को भी पीछे खींचकर (बाण को) छोड दिया।

वह शर जल, जल के कारणभूत अग्नि, वेगवान् वायु, नीचे की पृथ्वी—इन चारा भूतो के बल से युक्त हो वाली के वक्ष को उसी प्रकार छेदकर चला, जिस प्रकार भली भाँति पके हुए कदली फल को सूई छेद देती है। अब और कहने को क्या शेष रह गया ?

वह वाली, जिसने भुजबल म रहित हुए अपने अनुज (सुग्रीव) पर करुणा रहित होकर, दृढ भूमि पर पटककर उसे मार डालना चाहा था, (राम का शर लगते ही) अत्यन्त व्याकुल हुआ और युगात के प्रभजन के लगने से जिस प्रकार मेरुपर्वत जड से उखडकर गिरता हो, उसी प्रकार गिर पडा।

वज्र के आघात से उखडे हुए पर्वत के समान, धरती पर गिरे हुए, युद्ध म शत्रु भयकर वाली ने, सूर्य पुत्र (सुग्रीव) को पकडे हुए अपने हाथो को शिथिल कर दिया। किंतु उग्र शर, जो उसके प्राणो को पकडे हुए था, उसे वह ढीला नही कर सका।

विजयशील महावीर (राम) का वह अमोघ बाण उस (वाली) के बलिष्ठ वक्ष म जा लगा। वाली ने उस बाण को (अपने वक्ष को छेदकर पीठ की ओर से) बाहर निकल जाने के पहले ही अपने बलिष्ठ हाथ से पकड लिया और अपनी पूँछ और पैरों से उसे बाँधकर रोक लिया। (उसके उस बल को देखकर) विजयी यमराज भी शिर हिलाने लगा (अर्थात् यम भी वाली की प्रशसा करने लगा।)

वाली कभी यह विचार कर कि मै उछलकर अतरिक्ष रूपी ढक्कन से टकराकर उसे चूर चूर करके गिरा दूँगा, ऊपर उछलता। कभी यह विचार कर कि एक उडद के लुढक जाने के समय के भीतर ही (अर्थात्, क्षणाध मे) समस्त दिशाओं को विध्वस्त कर दूँगा, आगे लपकता। कभी यह विचार कर कि पृथ्वी को समूल खोद डालूँगा, नीचे गिर जाता। कभी यह सोचने लगता कि मेरे वक्ष मे घुस जानेवाले ऐसे (तीक्ष्ण) बाण का प्रयोग करनवाला कौन है ?

वह धरती पर अपने हाथो को पटकता। चारो ओर आँख उठाकर यो घूरता कि उनसे चिनगारियाँ निकल पडती। उस उग्र बाण को अपने दोनों हाथो से पकड़कर पूँछ और पादो मे दृढतापूर्वक खीचता। लेकिन, उस शर के न निकलने से अत्यत पीडित होता। फिर, पर्वत के समान लुढक जाता।

वह यो शका करता कि (उस शर का प्रयोग करनेवाले) कदाचित् कोई देवता ही है, फिर यह सोचता कि ऐसा कार्य करने की शक्ति क्या उन देवताओं मे है ? तो यह अन्य कौन है ?—यह विचार कर हँसने लगता। कभी यह कहता कि यह ऐसे व्यक्ति का ही कार्य होगा, जो त्रिदेवों की समता करता है।

मेरे वक्ष में लगा हुआ यह क्या (विष्णु का) चक्र ही है ? या नीलकठ (शिव) का त्रिशूल है ? यदि उनम से कोई नही है, तो क्या पर्वतों को ध्वस्त करनेवाले प्रसिद्ध इन्द्र

के आयुध वज्र मे इतनी शक्ति है कि वह मेरे वक्ष म प्रवेश कर सके ? यह क्या — इस प्रकार सोच सोचकर वाली व्यथित होता।

अति वेग से अपने वक्ष म धँस जानेवाले उस शर को देखकर वाली यह न जानता हुआ आश्चर्य करने लगता कि यह बाण एक धनुष से प्रयुक्त हुआ हो यह असम्भव है। तब क्या ऋषियो ने मत्रो के प्रभाव से इसे प्रयुक्त किया है ? फिर, दीर्घकाल तक अपने दाँतो को पीसता रहता।

अब उसे यह ज्ञात हुआ है कि यह एक शर ही है। अनेक शकाएँ करने से क्या प्रयोजन है ? प्राणो के साथ मेरे वक्ष स्थल का छेद डालनेवाले इस अनुपम शर को दोनो हाथो, पूँछ ओर पैरो से निकालकर इसे प्रयुक्त करनेवाले वीर का नाम जान लूँगा— (अर्थात्, शर पर लिखे नाम को पढ़कर उसके प्रयोक्ता को जान लूँगा)—यो विचार कर वह बाण को निकालने लगा।

अत्यधिक दृढता से युक्त मनवाले तथा अत्यन्त व्याकुलता से भरे सिंह समान वाली ने उस शर को पकडकर थोडा खीच लिया। वह दृश्य देखकर देवताओ, असुरो तथा अन्य लोगो ने विस्मय म पडकर अपनी भुजाओ को फुला लिया। वीरो के प्रति विस्मय भी न दिखावे, ऐसे कौन होगे ?

उस समय (वाली के वक्ष से) जो रक्त प्रवाह हुआ, वह जगलो और ऊँचे पवतो को लाँघकर बह चला, मानो वह समुद्र म जाकर मिलने के लिए ही बहा हो। क्या उसका ऐसा वर्णन करना उचित हो सकता है कि वह (रक्त प्रवाह) ऊँची तरगो से पूर्ण समुद्र जैसे गर्जन करता हुआ, सब लोको को पार कर उमड़ चला ?

सुरभित पुष्पहारो से भूषित (वाली) के वक्ष रूपी पर्वत से बहनेवाले शब्दायमान रक्तप्रवाह को देखकर, सहोदरत्व रूपी बधन से बँधा हुआ उसका भाई सुग्रीव, अपनी पीली आँखों से प्रेमाश्रु बहाता हुआ धरती पर गिर पडा।

मेरु को तोडने की शक्ति से युक्त वह यशस्वी (अपने शरीर से) निकाले हुए शर को अपने विशाल तथा बलवान् हाथो म लेकर पहले यह सोचा कि मै इसे तोड दूँगा। किन्तु, फिर यह कहता हुआ कि मेरे प्रयत्न करने से भी यह बाण टूटनेवाला नही है, उसपर अकित नाम को देखने लगा।

जो तीनो लोको के लिए मूलमत्र है, जो उसका जप करनेवालों को स्वय को ही (अर्थात्, अपने वाच्य भगवान् को ही) पूर्ण रूप से दे देता है, जो इसी जन्म म सातो प्रकार की (योनियो[1] मे जन्म लेने की) व्याधियो से मुक्ति देनेवाला औषध है, उस अनुपम महिमामय राम शब्द को वाली ने अपनी आँखो से देखा।

गृहस्थ धर्म का त्याग कर (वनवास म) आये हुए तथा मेरे जैसे व्यक्ति के लिए अपने कुल क्रमागत धनुर्युद्ध के धर्म को भी छोडनेवाले, ऐसे वीर के उत्पन्न होने के कारण, वह सूर्यवश भी, जिसने वेद प्रतिपादित धर्म को कभी नही छोडा था, आज सनातन धर्म से

१ सात योनियां—मनुष्य, देवता, पशु, पक्षी, रेंगनवाले प्राणी, स्थावर और जलचर।—अनु०

रहित हो गया।—यों विचार कर वह (वाली) हँस पड़ा और फिर मन में लज्जा से भर गया।

बड़ी पीड़ा से शिथिल हो पड़ा हुआ वह वाली, जो एक बड़े गड्ढे में गिरे हुए बलवान् मत्तगज के समान था, मन में लज्जा से भरकर अपने किरीट भूषित शिर को झुकाता, अट्टहास करता, फिर (मौन हो) सोचता और विचार करता कि क्या इस प्रकार शर का प्रयोग करना धर्म हो सकता है?

यदि सब (लोकों) के प्रभु (राम) ही धर्म से च्युत हो गये, तो निम्न व्यक्तियों का स्वभाव कैसा होगा? मेरे विषय में उस प्रभु ने अन्याय कर दिया है।—ऐसे वचन मुँह से बोलनेवाले उस (वाली) के सम्मुख वे रामचन्द्र आ उपस्थित हुए, जो वेद प्रतिपादित सत्य और क्षत्रियों के लिए विहित प्राचीन धर्म को अस्खलित रूप में सुरक्षित रखने के लिए अवतीर्ण हुए थे।

वाली ने अपनी आँखों के सामने उस विष्णु के अवतार (राम) को देखा, जो ऐसा था, मानों वर्षाकालिक नीलजलद धनुष को धारण किये, अपने पार्श्व में विकसित कमल वन (लक्ष्मण) के साथ, धरती पर उतर आया हो। उस (वाली) ने अपनी आँखों से, घावों से बहनेवाले रुधिर के सदृश ही रक्तवर्ण अग्नि कणों को निकालते हुए राम को देखा और कहा—'तुमने क्या सोचा? क्या किया?' फिर उनकी निंदा में कहने लगा—

सत्य तथा कुल धर्म की रक्षा करने के लिए अपने उत्तम प्राणों को भी छोड़ने वाले उदारगुण एवं पवित्रात्मा (दशरथ) के हे पुत्र। तुम भरत से पूर्व (अर्थात्, भरत का बड़ा भाई होकर) जनमे। यदि दूसरों को बुरा काम करने से रोककर स्वयं बुरा काम करो, तो क्या वह पाप नहीं माना जायगा? संसार के लिए मातृ वात्सल्य के साथ मित्रता तथा धर्म का भी निर्वाह करनेवाले (हे राम)। कहो तो।

उत्तम कुल तुम्हारा है। श्रेष्ठ विद्या तुम्हारी है। विजय तुम्हारी है। उचित सत्कर्म तुम्हारे हैं। त्रिभुवन का नायकत्व भी तुम्हारा ही है न? बल तुम्हारा। इस संसार की रक्षा करनेवाली महिमा भी तुम्हारी। तो भी सबको विस्मृत सा करके, उस सारी महिमा को विनष्ट करनेवाला ऐसा कार्य करना क्या तुम्हारे लिए उचित है?

हे चित्र में अंकित करने के लिए दुष्कर सौंदर्य से विशिष्ट। तुम्हारे कुल के सब लोगों के लिए क्षत्रिय धर्म स्वत्व बना हुआ है न? तो अब क्या तुम अपने प्राण समान, हंसिनी तुल्य, जनक की पुत्री, जो तुम्हें अमृत के सदृश प्राप्त हुई थी, उस देवी को खोकर अपने कर्त्तव्य में भी भ्रांत हो गये हो?

यदि राक्षस तुम्हारा अहित करें, तो उसके बदले, उनसे भिन्न एक वानर-राजा को मार दो—क्या यही तुम्हारे मनु धर्मशास्त्र में लिखा है? दया नामक गुण को तुमने कहाँ खो दिया? मुझमें तुमने कौन सा दोष देखा? हे तात। तुम्हीं यदि ऐसे अपयश का भाजन हो जाओगे, तो यश को धारण करनेवाला और कौन होगा?

हे कृपामय। उदारचरित। शब्दायमान समुद्र से आवृत पृथ्वी पर दौड़ते, उछलते रहनेवाले वानरों के मध्य ही क्या कलिकाल आ गया है? क्या सत्कर्म तथा उत्तमशील अब

बलहीनों के पास ही रहने योग्य हो गये हैं ? यदि बलवान् लोग नीच कार्य करेंगे तो क्या उन्हें अपयश न होकर सुयश प्राप्त होगा ?

हे (युद्ध में) किसी की सहायता की अपेक्षा न रखनेवाले वीर ! ... गये ऐश्वर्य को उसी समय अपने भाई का स्वत्व बनाकर तुम वनवास के लिए ... प्रकार नगर में तुमने एक (विलक्षण) कार्य किया किंतु मेरे अनुज को यह ... वन में तुमने एक दूसरा ही कार्य किया, इससे बढ़कर भी क्या कोई कार्य हो सकता है ? (यहाँ वाली व्यंग्य करता है।)

मुखर वीर वलय तथा विजयमाला को धारण करनेवाले वीर लोग जो भी काम करते हैं, वह वीरों के योग्य ही तो माना जायगा। सब पुरातन शास्त्रों के प्रभु बने हुए तुमने यदि मेरे विषय में ऐसा क्षुद्र कार्य किया है, तो हे क्रोधरहित ! ... के अधर्म कृत्य पर तुम कैसे क्रोध कर सकते हो ?

जब दो व्यक्ति युद्ध करने में निरत हों, तब उन दोनों को समान रूप से न देखकर यदि एक पर दया दिखाओ और दूसरे पर आड में खड़े होकर अपने दृढ धनुष को ... भाँति झुकाकर तीक्ष्ण बाण को मर्म स्थान में प्रयुक्त करो, तो क्या यह धर्म है अथवा ... कुछ है ? जैसे भी हो ऐसा पक्षपात अनुचित है।

(तुम्हारे इस कार्य में) वीरता नहीं है। (शास्त्र में) विहित विधि भी नहीं है। वह सत्य में सम्मिलित होनेवाला कार्य भी नहीं है। तुम्हारा स्वत्व बनी हुई इस पृथ्वी के लिए मेरा यह शरीर भारभूत भी नहीं है। मैं तुम्हारा शत्रु भी नहीं हूँ। तो, सद्गुण का त्याग कर ऐसा दया रहित कार्य तुमने क्यों किया ?

द्विविध कर्मों (इस लोक के और परलोक के लिए हितकारी कर्म) का भली भाँति विचार करके, सबके लिए (अर्थात्, शत्रु, मित्र और तटस्थ—तीनों प्रकार के लोगों के लिए) समान रूप से उत्तम कार्य करना ही तो धर्म की रक्षा है और उसी में महत्त्व है। अन्यथा पक्षपात से एक को सहायता पहुँचाना क्या धर्म माना जा सकता है और क्या ऐसा करके कोई अपने को दोष से मुक्त रख सकता है ?

तुम्हारी रक्षा को दूरकर (सीता का) अपहरण करनेवाले शत्रु (रावण) को विनष्ट करने के लिए यदि तुम किसी दूसरे की सहायता पाना चाहते हो, तो तुम्हारा यह कैसा प्रयत्न है कि काले मेघ जैसे हाथी के प्राण पीनेवाले, क्रोध से उमडनेवाले सिंह को छोडकर, तुम एक मगर को अपना साथी बना रहे हो ?

विश्व में विचरण करनेवाले चंद्र में प्राचीन काल से ही कलंक लगा है, कदाचित् यह देखकर ही सूर्य के वंश में तुमने जन्म लेकर उस वंश के लिए भी एक अमिट कलंक उत्पन्न कर दिया है।

युद्ध के लिए किसी दूसरे के आह्वान करने पर मैं यहाँ आया था। तुमने छिप कर मेरा प्राण-हरण किया। अब जब मैं धरती पर गिरा हूँ, तब तुम दूसरों की दृष्टि में सिंह बनकर यहाँ आ खडे हुए हो। वाह !

हे प्रतापी वीर ! शास्त्र-विधान की, अपने वंश के पितृ पितामहों के शील तथा

स्वभाव की रक्षा किये विना, तमने (मुझे निहत करके) वाली को नही, किंतु राजधर्म की बाड को ही गिरा दिया है।

किसी ने तुम्हारी पत्नी का हरण किया, तो तुमने किसी दूसरे पर हाथ उठाया। तुम्हारे हाथ का भार बना हुआ यह धनुष वीरता के लिए कलक है। तुम्हारी धनुविद्या की प्रवीणता, क्या सामने न आकर आड म खडे होकर एक नि शस्त्र क वक्ष मे शर छोडन के लिए ही है ?

यो अपने दाँतो को पीसता हुआ और अपनी आँखो से चिनगारियाँ निकालता हुआ वाली बोला। तब उसके सामने खडे हुए महावीर (राम) कहने लगे—

जब तुम (मायावी का पीछा करते हुए) गुहा के भीतर गये थे और अनेक दिनों तक नही लौटे थे, तब दु खी होकर सुग्रीव भी उसी गुहा म जाना चाहता था। उसे देखकर तुम्हारे कुल के बुद्धिमान् वृद्धो ने समझाया कि हे स्वर्णहार भूषित (सुग्रीव)। हमारी बात सुनो। अब तुम्हारा राजा बनना ही उचित है।

इसपर सुग्रीव ने कहा—मेरे ज्येष्ठ भ्राता वाली को मायावी ने मारकर वीर स्वग का शासन दिया है, अत मैं उस मायावी को उसके परिवार सहित मिटा दूँगा। या स्वय प्राण त्याग करूँगा। मै जीवित रहकर राज्य करना नही चाहता। आपके वचन मरे लिए योग्य नही हैं।

तब उत्तम सेनापतियो और सवज्ञ तथा अनुभवी वृद्धो न उसका माग रोककर समझाया—तुम्हारा राज्य करना ही सब प्रकार से उचित है। तब उस दोषहीन (सुग्रीव) ने विजय किरीट धारण किया।

वह (सुग्रीव) तुम्हें लौट आया देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसने तुम्हे नमस्कार कर निवेदन किया—हे प्रभु, यह तुम्हारा राज्य है, जिसका भार वृद्धो ने मुझपर हठ करके रखा है। इस प्रकार, गर्वरहित सुग्रीव ने पूर्व घटित सारा वृत्तात तमसे निवेदन किया था। किंतु तुम उसपर क्रुद्ध हुए और—

उसको निरपराध जानकर भी उसपर तुमने दया नही की। जब वह तुमसे यह प्राथना कर रहा था कि मै तुम्हारी शरण म हूँ, मेरे अपराध को क्षमा करो, तब भी उसको क्षमा न करके तुमने बडे क्रोध के साथ उसे मारा पीटा।

बल समृद्ध सुग्रीव, यह कहकर कि मै तुम्हारे साथ युद्ध म पराजित हो गया हूँ, अपने शिर पर हाथ जोडे खडा रहा, किंतु तुम उसके प्राण यम को सौप देना चाहत थे। तब वह चारों दिशाओ मे भागने लगा था।

उसे उस प्रकार भागते जानकर भी तुमने उसपर दया नही की। यह विचार न करके कि वह तुम्हारा अनुज है, तुम उसका पीछा करने लगे। फिर मुनि के शाप से सुरक्षित पर्वत (ऋष्यमूक) पर जब सुग्रीव चला गया, तब तुम वहाँ से हटे।

दया, कुलीनता, वीरता, विद्या और उसके द्वारा प्राप्त नीति—इन सबका प्रयोजन तो यही है कि पर नारी के शील की रक्षा करे।

यदि स्वच्छ विवेकवाला भी यह सोचकर कि मै बडा बलवान् हूँ, अपने मन को

कुमार्ग पर चलाये और बलहीना पर क्रोध करे, तो वह वीरधर्म से च्युत हो जाता है। ऐसे ही यदि कोई पर पुरुष की सुरक्षित शीलवाली स्त्री के चारित्र्य को मिटाता है, तो वह भी धर्म से च्युत होता है।

धर्म क्या है?—तुमने यह नहीं सोचा। इहलोक तथा परलोक के फलों (यश और पुण्य) का विचार भी नहीं किया। यदि तुमने यह सोचा होता तो क्या अपमता के साथ अपने छोटे भाई की प्राण समान पत्नी की सगति प्राप्त करते?

इन कारणों से, तथा उस सुग्रीव के मेरे प्राणसम मित्र होने से, मैने तुम्हारे प्राण हरण किये। इतना ही नहीं पराया होने पर भी, बलहीनो के दुख को दूर करना ही मेरा ध्येय है।

तुम्हारा यही अपराध है। जब अतिसुन्दर महावीर राम ने इस प्रकार कहा, तब अनुचित कार्य करनेवाला वाली फिर कहने लगा—तुम्हारा यह कथन मेरे लिए लागू नहीं होता। क्योकि, हम वानरों के लिए अपनी इच्छा के अनुकूल कार्य करना कुछ अधर्म नहीं होता।

वाली ने कहा—हे प्रभु! पातिव्रत्य धर्म तथा उसके अनुकूल अन्य सद्गुणो से युक्त कर्म, तुम्हारे असत्य रहित कुल की स्त्रियो के लिए, कमलभव (ब्रह्मा) ने जिस प्रकार विवाह का विधान किया है, उसी प्रकार हमारे कुल की स्त्रियों के लिए नहीं किया। किंतु, हमारे यहाँ जब जैसा सयोग मिले, तब वैसा ही सबध करने का विधान है।

हे शत्रुओं की मज्जा तथा घृत से लिप्त चक्रायुध धारण करनेवाले! हमारा मन जैसा चाहता है, वैसा ही हमारा आचरण भी होता है। इसके अतिरिक्त, हम वानरों के लिए वेद प्रतिपादित विवाह का कोई विधान नहीं है। कुल परपरागत गुण भी हममे नहीं होते।

मुझे जीतनेवाले हे विजयशील! यही हमारे कुल की रीति है। अत, मैने अपने कुल धर्म के अनुसार कोई पाप नहीं किया है। यह तुम समझ लो। वाली के यह कहने पर रामचन्द्र ने उत्तर दिया—

तुम उत्तम गुणवाले देवों के पुत्र बनकर उत्पन्न हुए हो और शाश्वत धर्म मार्ग के ज्ञाता हो। तुम मृग नहीं हो। अत, विजय मालाओं से भूषित रहनेवाले तुम जैसे वीर के लिए ऐसा कार्य अनुचित ही है।

क्या धर्म, पचेद्रियो के वशीभूत शरीर से ही सबध रखता है? क्या वह विषयो का विवेचन करनेवाले विवेक से सबध नहीं रखता है? तुमने तो (शरीर से वानर होने पर भी विवेक से) धर्म के महत्त्व को भली भाँति जाना है। अत, क्या पापकर्म करना तुम्हारे लिए उचित है?

वह गजेंद्र भी जन्म से मृग जाति का ही तो था, जिसने एक मगर से ग्रस्त होकर शखधारी विजयशील भगवान् (विष्णु) को पुकारा था और अपने अनुपम विवेक के कारण मोक्ष पद प्राप्त किया था।

मेरे पितृ तुल्य वह जटायु भी तो एक गृद्ध ही था, जिसने धर्म मार्ग मे अपने मन

को निरत रखकर स्वर्ण कंकण धारिणी लक्ष्मी (सदृश सीता) के दुःख को दूर करने के प्रयत्न में भयंकर युद्ध किया था और इस संसार से मुक्ति प्राप्त की थी।

पशुओं का स्वभाव ऐसा होता है कि वे भले और बुरे के विवेक से हीन रहकर जीवन व्यतीत करते हैं। किंतु, तुम्हारे मुख से निकले वचन ही बता रहे हैं कि चिरंतन धर्म का ऐसा कोई मार्ग नहीं है, जिसे तुमने नहीं जाना हो।

यह उचित है, यह अनुचित है—इस प्रकार का विवेक किसी व्यक्ति में भी न हो, तो वह भी पशु ही होता है। यदि कोई पशु भी मनु के बताये मार्ग पर चले, तो वह देव तुल्य हो जाता है।

तुमने यम के प्रभाव को भी मिटा देनेवाले, परशु धारण करनेवाले शिव के प्रति जो भक्ति की थी, उसी के फलस्वरूप, विष्णु के द्वारा सृष्ट चार महाभूतों की शक्ति प्राप्त की थी।

जन्म से नीच कहे जानेवाले, धर्म मार्ग पर चलनेवाले, निष्पाप तपस्या करनेवाले, अनेक गुणों से युक्त देवता तथा पाप कृत्य करनेवाले—इन सब लोगों में भी बुरे आचरण करनेवाले होते हैं।

अतः, किसी भी कुल में उत्पन्न व्यक्ति की महत्ता या क्षुद्रता उसके कार्य से ही होती है। यह जानते हुए भी तुमने अन्य की पत्नी के शील को मिटाया—इस प्रकार, मनु नीति पर दृढ रहनेवाले (राम) ने कहा।

(रामचन्द्र का) यह कथन सुनकर कपियों के राजा वाली ने राम से पूछा—हे प्रभु। ऐसी बात है, तो तुम को युद्ध क्षेत्र में आकर मुझसे युद्ध करते हुए बाण छोडना चाहिए था। किंतु, ऐसा न करके, कहीं छिपकर धनुष से शर का प्रयोग तुमने क्यों किया?—इस प्रश्न का उत्तर लक्ष्मण देने लगा।

तुम्हारा भाई (सुग्रीव), पहले ही उन (राम) की शरण में आ गया था। तब उन्होंने उसे यह वचन दिया था कि नीति से भ्रष्ट हुए तुमको वे निहत करेंगे। यदि वे युद्ध क्षेत्र में तुम्हारे सम्मुख आते, तो कदाचित् तुम भी अपने प्राणों के मोह से उनकी शरण माँगते—यही सोचकर मेरे भ्राता ने तुम्हारे सामने न आकर छिपकर शर संधान किया।

कपिकुल के प्रभु वाली ने, जिसने शास्त्रों का ज्ञान रूपी संपत्ति प्राप्त की थी, लक्ष्मण के कथन को हृदयंगम किया और यह जानकर कि अति महिमावान् रामचन्द्र धर्म का विनाश कभी नहीं करेंगे, शांत हो गया और (राम के प्रति) सिर नवाकर क्षुद्र विचारों से हीन वाली कहने लगा—

हे पुरुषोत्तम। तुम प्राणियों पर मातृ समान प्रेम रखते हो। धर्म, निष्पक्षता आदि सद्गुणों की साकार मूर्त्ति हो। (वेद प्रतिपादित) सन्मार्ग के अनुसार देखा जाय, तो हम श्वान समान हैं, और हम दोषहीन भी नहीं हैं। हमारे पापों को क्षमा करो।

फिर, रामचन्द्र से वाली ने प्रार्थना की—हे प्रभु। मुझे विवेकहीन वानर तथा श्वान-सदृश तुच्छ व्यक्ति समझकर मेरे वचनों को मन में न रखो। दुःखद जन्म व्याधि के लिए अपूर्व ओषधि समान मेरे स्वामी। सब अभीष्टों को देनेवाले हे उदार। मेरी एक बात सुनो—यह कहकर वाली फिर बोला—

सधान कर प्रयुक्त किय गये बाण से मुझ आहत कर प्राण छूटने क समय श्वान सदृश मुझ क्षुद्र व्यक्ति को तुमने आत्मज्ञान प्रदान किया। त्रिदेव तुम्ही हो। अनादि परब्रह्म तुम्ही हो। पाप और पुण्य भी तुम्ही हो। शत्रु और मित्र भी तुम्ही हो। अन्य सब भी तुम्ही हो।

तुम्हारे शर ने, त्रिपुर दाह करनेवाल (शिव) आदि दवा क द्वारा मुझ दिय गय सब वरो को निष्फल बनाकर मरे दोषहीन दृढ वक्ष म प्रविष्ट होकर मरे प्राणो को पी लिया। तुम्हारे ऐसे शर के अतिरिक्त अन्य पृथक् धर्म क्या है? (अर्थात्, तुम्हारा शर स्वय धर्म स्वरूप है।)

हे देव। विचार करने पर ज्ञात होता है कि अति बलिष्ठ शूल को धारण करने वाले (शिवजी), उनकी प्रार्थना करनेवाले सब लोगो को श्रेष्ठ वर देते हैं तो वह तुम्हारे अनुपम नाम का जप करने के ही प्रभाव से ऐसा करते हैं। ऐसे प्रभावशाली नाम के विषयभूत तुमको प्रत्यक्ष देखने पर अब मेरे लिए दुष्प्राप्य फल क्या रह गया? (अर्थात् मेरी सब अभिलाषाएँ पूर्ण हो गई।)

तुम सब प्राणी, सब पदार्थ समूह, सब ऋतुएँ तथा उन ऋतुओं के फल बनकर इस प्रकार व्याप्त रहते हो, जिस प्रकार पुष्प के भीतर सुगंधि रहती है। हे अनुपम! तुम कौन हो और तुम्हारा रूप क्या है?—यह मेरे ज्ञान ने मुझे जता दिया। अब क्या शाश्वत परमपद भी मेरे लिए दुष्प्राप्य हो सकता है? (अर्थात्, वह भी सुलभ है।)

सद्धर्म को ही अपना स्वरूप बनाये रहनेवाले तुमको मैने देख लिया है। अब मुझे और क्या देखना शेष रह गया है? मेरा बहुत बडा दीर्घकालिक कर्मजात आज समाप्त हो गया (अर्थात्, अब मै उस कर्म-बधन से मुक्त हो गया)। तुम्हारा दिया हुआ यह दड ही मुझे सद्गति देनेवाला है।

हे गगन से भी उन्नत महत्त्व और विजय से युक्त नरेश! मेरा भाइ मुझ मरवाने क लिए तुम्हे ले आया और तुच्छ वानरों की अच्छी मत्रणा से शासित किये जानेवाले मेरे इस चिरकालीन क्षुद्र राज्य को स्वय लेकर मुझे मुक्ति का राज्य दिया है। इससे बढकर मेरा और क्या उपकार हो सकता है?

हे चित्र सदृश आकारवाले! इस दास का तुमसे कुछ माँगना है। मेरा भाइ (सुग्रीव) पुष्प मधु का पान करने से कभी विकृतबुद्धि होकर कोई अपराध भी कर दे, तो उसपर तुम क्रोध मत करना और जिस शर रूपी यम का प्रयोग मुझपर किया है, उसका प्रयोग उसपर मत करना।

एक और प्रार्थना है। तुम्हारे भ्राता लोग यह सोचकर कि उसने अपने बडे भाई को मरवा डाला है, मेरे भाई को कभी अपमानित न करें। हे उत्तम गुणवाले! तुम उन्हे वैसा करने से रोकना। हे प्रभु! तुमने पहले इसके कार्य को पूर्ण करने का वचन दिया था, अतएव इसने जो किया है (अर्थात्, अपने बडे भाई को मरवाया) वह भाग्य का ही खेल है। क्या भाग्य के परिणाम से मुक्त होना सभव है?

हे विजयी प्रभु! मुझसे और कुछ नही हो सकता था, तो भी मै अपने वानर

जन्म के योग्य, कम से कम इतना कार्य तो कर दिखाता कि उस मायावी राक्षस (रावण) को अपनी पूँछ में बाँधकर तुम्हारे सम्मुख ला खड़ा कर देता। मेरा उतना भी भाग्य नही हुआ। पर जो बीत गया, उसके बारे में कहने से कुछ लाभ नही। कोई कार्य पूरा करवाना हो, या कुछ महत्त्व का कार्य हो, तो उसे करने के लिए यह हनुमान् योग्य व्यक्ति है।

हे चक्रधारी! हनुमान् को तुम अपने अरुण हस्त में रखा हुआ धनुष समझो। इसके सदृश सहायक अन्य कोई नही है। नभ से भी उन्नत कंधावाले! तुम उस देवी (सीता) का अन्वेषण करके उसे प्राप्त करो।

राम के प्रति ये वचन कहकर, उस वाली ने, अपनी दोनो बाँहो को बढाकर निकट स्थित अपने भाई का आलिंगन किया और कहा—हे तात! तुम्हे कहने योग्य एक हित वचन है। उसे अपने मन मे ठीक से बिठा लो। हे पर्वतोन्नत कंधोवाले! मेरी मृत्यु पर तुम शोक मत करना। यह कहकर वह फिर आगे बोला—

हे अधिक विवेकवाले! जिस परम तत्त्व के बारे में वेद, शास्त्र, मुनि तथा कमलासन ब्रह्मा आदि वर्णन करते हैं, वही परब्रह्म धर्म मार्ग को सुरक्षित रखने के लिए शब्दायमान वीर कंकणधारी राम के रूप मे अवतीर्ण हुआ है और शत्रुनाशक धनुष लेकर यहाँ आया है। इसमे कोई संदेह नही है। तुम इसे भली भाँति जान लो।

हे स्वर्णमय पर्वत सदृश अति उज्ज्वल कंधोवाले! शाश्वत आनंद (अर्थात्, मुक्ति) रूपी संपत्ति की कामना करके, उसके योग्य मार्ग पर चलनेवाले सब प्राणी इसी का नाम जपते हैं। इसी का ध्यान करते हैं। इस बात को तुम जान लो। यदि इसके सामान्य गुणो का ही विचार करे, तो भी इसके प्रभाव का प्रमाण देने के लिए इतना पर्याप्त है कि इसने मुझे मारा है। इससे बढ़कर और कोई प्रमाण आवश्यक नही।

हे तात! जो वंचक हैं, जिन्होने असंख्य असाध्य पाप किये हैं, वैसे जन भी इस उदार के शर प्रयोग से मारे जाकर अति उत्तम मुक्ति पद को प्राप्त करते हैं, तो उन लोगो के द्वारा मुक्ति पद प्राप्त करने के बारे में कहना ही क्या है, जो इनके उभय चरणो की सेवा मे निरत रहते है?

जब भाग्य ही स्वयं सहायता देने के लिए प्रस्तुत हो, तो फिर दुर्लभ वस्तु क्या हो सकती है? अतः, इहलोक और परलोक, दोनो के फल तुमने प्राप्त कर लिये हैं। अब यही तुम्हारा कर्त्तव्य रह गया है कि लक्ष्मी तथा श्रीवत्स चिह्नो से अंकित वक्षवाले इस (राम) की आज्ञा को शिरोधार्य करके, उसी मे अपने चित्त को एकाग्र बना लो। यो त्रिभुवनों मे तुम उन्नति पाओगे।

वानर सुलभ अज्ञान और चपलता को दूर कर दो। उदारमना (रामचन्द्र) के द्वारा किये गये उपकार को कभी न भूलो। उसके लिए आवश्यक होने पर अपने प्राण भी त्यागने के लिए सन्नद्ध रहो। परमपद को प्रदान करनेवाले उस परब्रह्म की सभी आज्ञाओं का सुचारु रूप से पालन करके अपार जन्म परंपरा से अनायास ही मुक्त हो जाओ।

राज्य प्राप्त करने के आनन्द से मत्त होकर इसकी उपेक्षा न कर बैठना। उसके कमल चरणो की छाया से कभी न हटना। इसी भाँति जीवन बिताना। यह स्मरण रखना

कि नरपति जलती अग्नि की उपमा के योग्य होते हैं। इनके बताये गये सब कार्य पूर्ण करना यह न सोचना कि नरपति तुच्छ सेवकों के अपराधों को क्षमा कर देते हैं।

इस प्रकार के हित वचन अपने दुःखी भाई के प्रति कहकर वाली ने अपने सम्मुख स्थित सुन्दर (राम) को देखकर कहा—हे चक्रवर्ती कुमार! यह (सुग्रीव) अपने सारे परिवार सहित तुम्हारी ही शरण में है। यह कहकर अपने अनुज को राम के समीप प्रेषित किया और अपने दोनों कर शिर पर जोड़ लिये।

इस प्रकार, हाथ जोड़ने के पश्चात् अपने प्रेम पात्र अनुज का मुख देखकर (वाली ने) कहा—तुम मेरे प्यारे पुत्र (अंगद) को शीघ्र बुलाओ। सुग्रीव के बुलाने पर, अपने हाथों से समुद्र को मथनेवाले उस (वाली) का पुत्र अंगद शीघ्र वहाँ आ पहुँचा।

वह अंगद, जिसने कभी कल्पना में भी दुःखी मनवाले व्यक्तियों को नहीं देखा था उज्ज्वल पूर्णचन्द्र के समान वहाँ आ पहुँचा। आकर उसने अपनी आँखों से अपने प्रिय पिता को, पुष्पमय सुगंधित शय्या के बदले रक्त समुद्र के मध्य पड़ा हुआ देखा।

सूर्य चन्द्र के सदृश दो उज्ज्वल लोल कुंडलों से विभूषित तथा पुष्ट स्कंधवाले कुमार ने अपने पिता को उस दशा में पड़े हुए देखा। देखकर अपने पिता के शरीर पर ऐसा गिरा, जैसे अश्रु तथा रक्त के प्रवाह के मध्य, धरती पर पड़े हुए चन्द्र मंडल पर, गगन तल में कोई उज्ज्वल नक्षत्र आ गिरा हो।

हाय मेरे पिता! मेरे पिता! तुमने अपने मन से या कर्म से, उत्तुंग तरंग भरे समुद्र से आवृत इस धरती पर, किसी को हानि नहीं पहुँचाई। फिर, भी तुम पर यह विपदा क्यों आई? खैर जो हो, किंतु यह कैसे हुआ कि तुम्हारी आँखों के सामने ही यम भी तुम्हारे पास आ पहुँचा? उस (यम) के सामर्थ्य को निर्भय होकर मिटा देनेवाले (तुम्हारे) अतिरिक्त और कौन है?

जिस रावण ने, अष्ट दिशाओं में कील के समान ठोंक गये से अविचल रहनेवाले दिग्गजों को भी परास्त किया था, उसका मन भी तुम्हारी पुष्ट मूलवाली सुन्दर पूँछ का स्मरण होने मात्र से ऐसा धड़क उठता है, जैसे पटह बजाया जा रहा हो। हाय! उसका वह भय अब समाप्त हो गया।

हे पिता! कुलपर्वतों तथा चक्रवाल नामक गगनोन्नत पर्वतों के शिखर अब तुम्हारे सुन्दर पद चिह्नों से रहित हो जायेंगे। मंदर पर्वत, वासुकि सर्प, चन्द्रमा तथा अन्य उपकरणों को लेकर तरंगायमान समुद्र को मथने के लिए किसी से प्रार्थना करनी हो, तो अब कौन उसे मथ सकेगा?

रूई जैसे कोमल चरणोंवाली पार्वती को अपने अर्धभाग में धारण किये हुए शिवजी के चरणों के अतिरिक्त और किसीके प्रति कभी तुमने अंजलि नहीं दी। ऐसे शासन चक्र से युक्त हे मेरे पिता! तुम्हारे द्वारा क्षीरसागर के मथ जाने से ही देवगण भी मरणहीन बने हुए हैं। किन्तु, मधुर अमृत देनेवाले तुम, मृत्यु को प्राप्त हो रहे हो। तुम्हारे सदृश महिमा वाले अन्य कौन हैं?

इस प्रकार के विविध वचन कहकर अंगद रोने लगा। उसे देखकर अतिशोकातुर,

रक्त नेत्र वाली ने, जिसका मन आग म पड़े मोम के जैसा पिघल गया था, उसे आलिंगन करते हुए कहा—अब तुम दु खी मत होओ। यह, प्रभु (राम) का किया हुआ पुण्य कार्य है।

त्रुटिहीन रूप से यदि विचार करके देखो, तो विदित होगा कि जन्म लेना और मृत्यु पाना—तीनो लोको के निवासियो के लिए आदि से ही नियत ह। मरे पूर्वकृत तप के कारण ही मुझे इस प्रकार की मृत्यु मिली है। सर्वसाक्षी बने हुए महावीर ने स्वय आकर मुझे मुक्ति प्रदान की है।

हे तात! हे पुत्र! तुम बाल्यावस्था को पार कर चुके हो। यदि मेरी बात मानो, तो कहूँगा कि वही परमतत्त्व, जिससे परे और कोई तत्त्व नही है, हमारी दृष्टि के गोचर बनकर, (मनुष्य रूप मे) अपने चरणो को धरती पर रखे और कर मे धनुष धारण करके उपस्थित हुआ है। अज्ञान में डालनेवाली जन्म रूपी व्याधि की यह (राम) औषधि है। यह जान लो और इसको नमस्कार करो।

ह स्वर्णमय आभरणधारी! इमने मेरे प्राण हरण किये—यह बात किंचित् भी न सोचना। तुम अपने प्राणो की रक्षा करो। यदि इस (राम) का शत्रुओ के साथ युद्ध छिडे, तो तुम इसका साथी बनना। यह (राम), सब जीवो का उनके सस्कार के अनुसार, हित करनेवाला है। इसके कमल सदृश चरणो को अपना शिर पर धारण करके जीना।

इस प्रकार के हित वचन कहने के उपरात पर्वत से भी अधिक दृढ कधोवाले वानर राज ने अपने पुत्र (अगद) का अपनी दीर्घ बाँहो से आलिंगन कर लिया। फिर, स्वर्णमय रत्नखचित आभरण पहननेवाले रक्षक राम को देखकर बोला—

हे असत्य मनवालो के लिए अदृश्य ज्ञान स्वरूप! यह मेरा पुत्र ऐसे कधोवाला है, जो घृत लगे दीर्घ त्रिशूलधारी कालवर्ण राक्षस सेना रूपी तूल समुदाय के लिए अग्नि स्वरूप है। दोषहीन आचरणवाला है। यह तुम्हारी शरण मे है।—यों कहकर वाली ने उसे राम को दिखाया। तब—

वह (अगद) राम के चरणो पर नत हुआ। कमल सदृश विशाल नयनोवाले राम ने अपने सुन्दर करवाल को अगद के आगे बढाकर उससे कहा—यह लो। तब सातो लोक उन (राम) की प्रशसा कर उठे। वाली अपना शरीर छोड़कर उत्तम लोकों के परे रहनेवाले परमपद को जा पहुँचा।

उस समय वाली के हाथ शिथिल पड़ गये। वेगवान् बाण वाली के यम समान कठोर वक्ष म न रहकर उसको पार करके निकल गया और ऊपर उठ गया। फिर, पवित्र समुद्र के जल मे धुलकर, देवताओ के दिये पुष्पहारो से विभूषित होकर, प्रभु (राम) की पीठ से कभी न हटनेवाले विजयी तूणीर मे जा पहुँचा। (१ १५३)

अध्याय ८

शासन पटल

वाली स्वग का सिधारा। वटपत्र पर शयन करनेवाल (विष्णु क अवतार राम) उसको अनत आनद (अर्थात्, मोक्ष) देकर अपने सम्मुख खड सूयपुत्र के अरुण हस्त को अपने कर म लिय अगद का भी साथ लेकर वहाँ से चले गये। जब शूल जैसे नयनोवाली तारा ने (वाली की मृत्यु का) समाचार पाया, तब वह वहाँ आकर उसके शरीर पर गिर पडी।

वाली के शरीर से बहनेवाले भयकर रक्त प्रवाह स, उसके पवतापम स्तन, जिनका अग्रभाग मुकुलित था, कुकुमरस लिप्त जैसे हो गये। उसके घुँघुराले केश लाल हो गये। वह, वहाँ गिरे हुए मनोहर तथा विशाल कधावाले वाली के वक्ष पर इस प्रकार लाटने लगी, जिस प्रकार सूर्य के अरुण किरणो से आवृत विशाल गगन म कोई विद्युत् कौध रही हो।

तारा विषण्ण हुई। दीन और व्याकुल हुइ। आह भरी। द्रवितहृदय हुई। अपने दोनो करो को सिर पर जोडकर रखा। शिथिल हुई। उसका केश पाश गलित होकर बिखर पडा। वह ऊँचे स्वर म निम्नलिखित प्रकार के वचन कह कहकर रो पडी। उसके कठ की ध्वनि से बाँसुरी, मधुर नादवाला याक् और वीणा के नाद भी लज्जित हो गये

हे मेरे अत्युत्तम अपूर्व प्राण। हे मेरे हृदय। ह मरे प्रभु। तुम्हारी पवत सदृश भुजाओं के मध्य, नित्य सुरक्षित रहती हुई, मैने कभी वेला हीन दु ख सागर को देखा भी नही था। अब मैं तुम्हारी यह दशा देखकर बहुत त्रस्त हा रही हूँ।

तुम कभी मेरे प्रतिकूल नही हुए। तुम्हारे इस दु ख को देखकर भी मे प्राण छोडे विना जीवित हूँ। अत , अब तुम मुझे अपने निकट नही बुलाओगे। हे मेरे भाग्य देवता। प्राणो के जाने पर क्या देह जीवित रह सकती है ?

हे मेरे प्रभु। क्या यमदेवता यह नही जानते कि तुम्हारे द्वारा सुरभिमय अमृत दिये जाने क कारण ही व अमर बने हुए ह ? क्या वे इतने क्षुद्र हैं कि अपने प्रति (तुम्हारे द्वारा) किये उपकार का स्मरण नही करते ?

तुम सब दिशाओ मे जाकर, सच्ची भक्ति के साथ, न कुम्हलानेवाले पुष्पो से, अपने अर्धांग मे उमादवी को धारण करनेवाले देव की पूजा किये विना, इतनी देर तक यही पडे हो। क्या यह उचित ह ?

ह प्रभा। पुष्पशय्या पर, मृदु वस्त्रो के आवरण पर, शयन करनेवाले तुम अब भूमि पर पडे हा। यह देखकर मरा मन द्रवित हो रहा है। मे तुम्हारे सम्मुख खडी हाकर आँसू बहा रही हूँ। फिर भी, तुम मुझम कुछ नही कह रहे हो। मुझसे कौन सा अपराध हुआ है ?

ह कभी असत्य न बोलनेवाले पुण्यात्मा। मै यहाँ रहकर इस प्रकार दु खी हो रही हूँ और तुम सत्य परायण देवो के लोक मे जाकर सुख भोग रह हो। ह प्रभु। क्या

तुम्हारा यह कथन असत्य ही है कि मै तुम्हारा प्राण हूँ ? (अर्थात्, तुम जो यह कहते थे कि तुम मेरे प्राण हो, क्या वह कथन झूठ ही था ?)

युद्ध के अभ्यस्त कंधोंवाले ! यदि यह सत्य है कि मैं तुम्हारे हृदय में हूँ, तो शत्रु का शर मेरे प्राण भी हर लेता। यदि यह सत्य है कि तुम मेरे हृदय में रहते हो, तो तुम निश्चय ही जीवित रहते। हम दोनों ही एक दूसरे के हृदय में नहीं थे।

हे मेरे प्रभु ! देवताओं ने तुम्हारा यह उपकार स्मरण करके कि तुमने उन्हें अमृत ला दिया था, जिससे वे अमर बन सके, अब क्या (तुमको स्वर्ग में आये हुए देखकर) उन्होंने तुम्हें कल्पपुष्प प्रदान करके, तुम्हें अपना मित्र समझकर, तुम्हारी आवभगत करके तुम्हारा सत्कार कर रहे हैं ?

तुम तो अमरता प्रदान करनेवाला अमृत भी (देवों को) ला देनेवाले हो। छिपे रहकर शर छोड़ने के लिए तैयार होकर आया हुआ राम यदि अपने मुँह से माँगता, तो क्या तुम अपना सर्वस्व भी उसको नहीं दे देते ?

मैंने पहले ही कहा था (कि राम सुग्रीव की सहायता करने के लिए आया है)। मेरा कहना न मानकर, यह कहते हुए कि वह राम वैसा अनुचित कार्य नहीं करेगा, तुम अपने भाई से युद्ध करने लगे और युगांत तक जीवित रहने योग्य तुम मृत्यु को प्राप्त हो गये। मैं तुम्हें फिर कब देखूँगी ?

यदि तुम प्रहार करते, तो मेरुपर्वत भी चूर चूर हो जाता। आह ! एक शर ने तुम्हारे सामने होकर तुम्हारे वक्ष को कैसे विदीर्ण कर दिया ? क्या यह देवों की माया है ? मैं नहीं समझ रही हूँ। अथवा यहाँ जो मरा पड़ा है, वह कोई दूसरा ही वाली है ?

हे नाथ ! तुम्हारे भाई ने उत्तम यश की गरिमा से युक्त रहकर तुम से वैर किया, जिसके परिणाम स्वरूप तुम मृत्यु को प्राप्त हुए और हमारा सर्वस्व विनष्ट हो गया। हाय ! तुम हमारी यह दशा क्यों नहीं देखते ?

अपूर्व अमृत के समान विपदाओं को दूर करनेवाले उस राम ने अब एक वीर का अहित सोचकर क्या कार्य कर दिया ? क्या यह वचन केवल कथन ही है (किंतु, यथार्थ नहीं है) कि धर्म पर स्थिर रहनेवालों की कसौटी, उनके कार्य ही होते हैं ?

इस प्रकार के अनेक वचन कहकर, अति दुःखित हो, बुद्धिभ्रष्ट हो वह निश्चेष्ट पड़ी रही। उसकी वह दशा देखकर नीतिनिपुण तथा दृढ पर्वत के सदृश हनुमान ने—

वानर स्त्रियों के द्वारा उसको उसके निवास पर पहुँचवा दिया और वाली के अंतिम कृत्य करवाये। फिर, श्रीरामचन्द्र के पास जाकर सब वृत्तांत सुनाया।

तब सूर्यदेव, जो अपने प्रकाश से अंधकार को निर्मल कर देता है, अपने गम्य स्थान अस्ताचल पर जा पहुँचा। वह (सूर्य) पर्वत सदृश वानरराज (वाली) के मुख की समता कर रहा था (अर्थात्, रक्तवर्ण दीखता था)।

संध्या के समय सूर्य अस्त हुआ। उदारशील (राम) सीता का स्मरण करते हुए, विभ्रांत होकर शिथिल तथा द्रवितहृदय हो उठे। और, इस प्रकार (कष्टों से) भरे हुए उस निशा सागर को बड़ी कठिनाई से पार किया।

सूर्य, यह सोचकर कि उसका पुत्र (सुग्रीव) स्वर्ण-मुकुट धारण करनेवाला है बडी उमग से भर गया। (उस राजतिलक के उत्सव मे) सहयोग देने के लिए लक्ष्मी का भी आगमन हो—इस उद्देश्य से, उस (सूर्य) ने अपने अरुण करो से उत्तम कमल रूपी कपाट खोल दिये।

उस समय, करुणानाथ (राम) ने अपने उत्तम मतिवाले अपने अनुज को देखकर यह आदेश दिया—हे तात ! तुम अपने हाथो से सूर्य पुत्र को यथाविधि राज्य पर अभिषिक्त कर दो।

आज्ञापालक, महिमावान् लक्ष्मण ने तुरत ही जाकर नीति से स्खलित न होने वाले तथा युद्ध मे कुशल हनुमान् से कहा—हे वीर ! इस शुभ कार्य के लिए आवश्यक समस्त सामग्री को तुम अभी ले आओ—तब,

अभिषेक के योग्य तीर्थ-जल, मगल-द्रव्य, प्रशसनीय स्वर्णमुकुट आदि उपकरण—सब हनुमान् के द्वारा लाये गये। पुरुषोत्तम (राम) के भाई लक्ष्मण ने महिमा भरे सुग्रीव से व्रत आदि कर्त्तव्य कराये। फिर—

ब्राह्मण लोग आशीर्वाद दे रहे थे। देव मधु पूर्ण पुष्प बरसा रहे थे। सद्धर्म के पथपर चलनेवाले मुनि (पुरोहित बनकर) कृत्य करा रहे थे। धर्मात्माओं के बताये विधि से लक्ष्मण ने उस महाभाग (सुग्रीव) को मुकुट पहनाया।

स्वर्णमय किरीट धारण करके सुग्रीव ने असत्य रहित प्रभु (राम) के महिमामय चरणो को प्रणाम किया। तब प्रभु ने, जो अर्थपूर्ण वाणी के भी परे हैं, अपने सुन्दर वक्ष से उसे लगा लिया, और कहा—

हे वीर ! तुम यहाँ से अपने प्राकृतिक निवास स्थान (अर्थात् , किष्किन्धानगर) मे जाओ, और अपने द्वारा करणीय कार्यों का ठीक ठीक विचार कर यथाविधि उन्हे पूरा करो। यो जिस राज्य भार को तुमने अपने ऊपर लिया है, उसके लिए आवश्यक सब कार्य करो और युद्ध में मरे हुए वाली का जो प्रिय पुत्र है, उसके साथ उत्तम ऐश्वर्य के साथ चिर काल तक जीते रहो।

सत्य से भरित, विवेकपूर्ण मन्त्रियो के साथ तथा दोष रहित सदाचारी एव पराक्रमी सेनापतियों के साथ पवित्र मैत्री का भाव रखो, और तुम स्वय भी त्रुटिहीन कार्य करते हुए इस प्रकार रहो कि वे (मत्री तथा सेनापति) तुम्हारे अति निकट या अति दूर न रहकर तुम्हे देवता के समान मानकर व्यवहार करें।

ससार इतना विवेक पूर्ण है कि यदि कही धूम दिखाइ पडे, तो यह अनुमान कर लेता है कि वहाँ जलती आग भी होगी। अत , तुम्हे चाहिए कि तुम शास्त्रज्ञो के द्वारा कथित कूटनीति को भी अपनाओ। तुम हँसमुख रहो। मधुर वचन बोलो और दूसरो के स्वभाव को जानकर, इस प्रकार आचरण करते रहो कि उससे तुम्हारे प्रति वैर रखनेवालो का भी हित हो।

वह दोष रहित महान् ऐश्वर्य, जिसे देखकर देवलोग भी मुग्ध होते हैं, तुमको प्राप्त हुआ है। तो उस सपत्ति के महत्त्व को ठीक ठीक पहचानकर सदा सजग रहो। क्योंकि,

तीनो लोकों के निवासी ऐसे होते है, जो मुनियो के प्रति भी घनी मित्रता रखते है, कुछ उनके वैरी होते हैं, तो कुछ तटस्थ स्वभाव रखते हैं।

उपर्युक्त तीनों प्रकार के स्वभाववाला म से तुम किसी के प्रति अहित काय न करना। अपन कर्त्तव्य काय पूरा करना। यदि कोई तुम्हारी निंदा करे, तो भी उसके प्रति निंदा रहित मधुर वचन कहना। दूसरों के धन का अपहरण करने का लोभ न रखना। ये सब धम किसी व्यक्ति का, उसके बधु परिवार सहित, उद्धार करनेवाले होते हैं। अत, तुम इसी प्रकार के धर्म का आचरण करना।

हे पुष्ट कधोंवाले। किसी को बलहीन जानकर उसे दुख न देना। मै (अपने बाल्यकाल मे) इस धम माग की सीमा को पारकर गया था और शरीर से विकृत होकर भी बुद्धि से बढी हुई कुबडी के कारण राज्यभ्रष्ट हो गया[1] और कठोर दुख सागर मे डूबा।

यह निश्चित जानो कि स्त्रियों के कारण पुरुषों को मृत्यु प्राप्त होती है। वाली का जीवन ही इसका प्रमाण है और उन्ही स्त्रियों के कारण दुख और अपवाद भी उत्पन्न होते हैं। यह तुम मेरे जीवन स जान सकते हो। इस विषय के ज्ञान से बढकर अन्य हित कारी शिक्षा क्या हो सकती है?

अपनी प्रजा की इस प्रकार रक्षा करना कि वे यह कहे कि, हमारे राजा राजा नही हैं, किन्तु हमारा लालन पालन करनेवाली माता हैं। ऐसा आचरण करते हुए भी यदि कोई व्यक्ति तुम्हारा अहित करे, तो उसे धम से स्खलित न होते हुए दड देना।

यथार्थ का विचार करे तो (विदित होगा कि) जन्म और मृत्यु सर्वदा, अपने अपने कार्यों के परिणामस्वरूप ही होती है। कमलभव ब्रह्मा ही क्यों न हो, धम से स्खलित होने पर विनाश को प्राप्त होता है। धर्म का अत जीवन का अत है— यह बडे लोगों का कथन है, अब अन्यो के बारे म क्या कहा जाय?

परस्पर के आघात से उन्माद उत्पन्न करनेवाले मल्लयुद्ध म कुशल वीर। सपन्नता और निधनता—दोनो जीवो के पुण्य और पाप के फलों के अतिरिक्त और भी कुछ है, इसे अनुपम शास्त्रो म निपुण विद्वान् भी नही जानते (अर्थात्, प्राणियो के पाप पुण्य के फलस्वरूप ही निर्धनता और सपन्नता होती है)। अत, पुण्य को छोडकर क्या पाप को ग्रहण करना कभी उचित हो सकता है?

यही राजाओं के योग्य कर्त्तव्य है। विधि के अनुसार तम राज्य करो और समीप आई हुई वर्षा ऋतु के व्यतीत होने के पश्चात् अपनी समुद्र सदृश विशाल सेना को लेकर मेरे पास आओ। अब तुम जाओ—यो उस सुन्दर (राम) ने कहा। तब सुग्रीव ने कहा—

हे उदार। वृक्षो तथा जलाशयो से भरा हुआ (किष्किन्धा के) पर्वत वानरों का निवास है, केवल यही तो इसमे दोष है। अन्यथा यह स्थान सभा मडप से विभूषित

१ इस पद्य मे उस घटना की ओर सकेत है कि रामचन्द्र बचपन में अपने धनुष से मथरा के कूबड़ का लक्ष्य करके मिट्टी का गोला मारते थे, जिससे मथरा मन ही-मन चिढ़ती थी। इसी का बदला लेने के लिए मथरा ने ऐसा उपाय किया, जिससे रामचन्द्र को राज्य-भ्रष्ट होकर वन जाना पड़ा।— अनु०

स्वर्ग से भी अधिक मनोहर है। अत, तुम कुछ दिन हमारे यहाँ आकर ठहरो, जिससे हम तुम्हारी करुणापूर्ण आज्ञा का पालन कर सकें।

हे अरिदम! तुम्हारी शरण में आकर हम तुम्हारी करुणा के पात्र बने हैं। तुमसे वियुक्त होकर जो ऐश्वर्य हम पायगे, वह दरिद्रता से भी अधिक गर्हित होगा। अत जबतक तुम्हारी देवी का अन्वेषण करने का समय न आवे, तबतक तुम हमारे साथ (नगर में) आकर ठहरने की कृपा करो—यों कहकर सुग्रीव (राम के) चरणों पर गिर पडा।

यह वचन सुनकर महाभाग ने मधुर मन्दहास करते हुए कहा—राजाओं के निवास योग्य नगर मेरे जैसे व्रतधारियों के लिए योग्य नहीं है और यदि मैं वहाँ आऊँ तो मेरी सेवा में ही तुम्हारा सारा समय लग जायगा। तुम विचार कर किये जाने योग्य उत्तम कार्य से, स्खलित हो जाओगे।

हे चिरजीव! मैंने यह प्रण किया है कि चौदह वर्ष वन में रहूँगा। अत (इस अवधि में) मैं राजाओं के निवास में नहीं ठहर सकूँगा। हे दृढ़ तथा सुन्दर कधोंवाले! वीणा नाद सदृश स्वरवाली अपनी देवी के बिना क्या मैं सुख भोग सकूँगा? यह तुमने कदाचित् सोचा नहीं।

हे तात! यह अपवाद क्या त्रिभुवनों के विनाश होने पर भी मिट सकेगा कि, राक्षस के द्वारा अपनी पत्नी के बदी बनाकर रखे जाने पर भी राम, स्वय अपने प्यारे मित्रों सहित, अपार सुखों का भोग करता रहा।

जिन लोगों ने गृहस्थाश्रम का त्याग नहीं किया है, वैसे लोगों के लिए योग्य धर्म को मैंने पूरा नहीं किया। युद्ध में धनुष लेकर किये जानेवाले कर्त्तव्य को भी मैंने पूर्ण नहीं किया। यों व्यर्थ जीवन बितानेवाले मुझ जैसे के लिए सब (सुग्रीव के साथ नगर में रहना इत्यादि) महत्त्वहीन क्षुद्र कार्य हैं। उत्तम गृहस्थ धर्म को छोडकर वानप्रस्थ व्रत का आचरण करके मैं अपने पापों का परिहार करूँगा।—यों राम ने कहा।

फिर कहने के लिए सुकर, किंतु करने के लिए दुष्कर सच्चारित्र्य में स्थिर रहनेवाले (राम) ने आगे कहा—हे वीर! शासन के सब कार्यों का यथाविधि पूर्ण करके चार मास व्यतीत होने पर, उत्तुंग तरगों से पूर्ण समुद्र सदृश अपनी सेना को साथ लेकर मेरे निकट आओ। यही तुमसे मेरी प्रार्थना है।

वानरों का नेता इसके विरुद्ध कुछ नहीं कह सका। यह सोचकर कि गगनोन्नत (गभीर) आकारवाले तथा तपस्वी वेषधारी (राम) के मन के अनुसार करना ही दोष मुक्त बनने का उपाय है, अपने विशाल नयनों से अश्रु बहाता हुआ दडवत् किया और अकथनीय दुःख को मन में भरकर वहाँ से चला।

वाली पुत्र (अगद) राम के चरण कमलों में प्रणत हुआ। उसे सकरुण देखकर नीले मेघ जैसे उस महान् ने कहा—तुम शीलवान् हो। इन (सुग्रीव) को अपने पिता का भाई जानकर उसकी आज्ञा में स्थिर रहो।

इस प्रकार के वचन कहकर सुग्रीव के साथ उसको भेज दिया। तब तुरत ही यशस्वी तथा गुणवान् अगद, उनके उत्तम चरणों को नमस्कार करके बिदा हुआ। फिर

प्रभु न मारुति का देखकर कहा—ह सुन्दर नीर। तुम भी उस राजा (सुग्रीव) के शासन के योग्य कार्य अपने विवेक से पूरा करत रहो।

प्रेम से परिपूण तथा असत्य रहित मनवाले हनुमान् ने यह कहकर कि, यह दास यहाँ रहकर (आपकी) आज्ञा के अनुसार याग्य सेवा करता रहेगा, उनके पदयुगल पर गिर पडा। तब सत्य म दृढ रहनेवाले प्रभु ने कहा—

एक प्रतापी राजा के द्वारा शासित अपार ऐश्वय से युक्त राज्य को जब दूसरा कोई वीर बलात् हस्तगत कर लेता है, तब उससे सदा भलाई ही हो, ऐसी बात नही। किन्तु, उससे कभी बुराई भी उत्पन्न हो सकती है। अत, हे तात। वैसा राज्य तुम जैसे बडे दायित्व का वहन कर सकनेवाले विवेकी पुरुष से ही स्थिर रह सकता है।

(गुणो से) परिपूण उस (सुग्रीव) के राज्य को स्थिर बनाकर, उसके पश्चात् मेरे कार्य को पूरा कर सकनेवाला (पुरुष) तुमसे बढ़कर और कौन है? अत, तुम मेरी इच्छा के अनुसार, साकार धर्म जैसे उसके पास जाओ।

चक्रधारी के ये वचन कहने पर मारुति ने नमस्कार करके कहा— हे प्रभु। आप विजयी हो। यदि आपकी यही आज्ञा है, तो यह दास वैसा ही करेगा। और, वहाँ से चला गया। पुरातन सृष्टि के नायक (राम) भी मुखपट्टधारी बडे हाथी के सदृश अपने भाई के साथ एक ऊँचे पवत पर चले गये।

आर्य (राम) की आज्ञा से सुग्रीव विशाल किष्किन्धा मे जा पहुँचा और महिमावान् मन्त्रियो तथा बधुजनो से युक्त होकर तारा को प्रणाम किया और उसको अपनी माता तथा अपने अग्रज के उपदेशो को ही अपना पिता मानकर, उत्तम रीति से शासन करता रहा।

वह अपार ऐश्वय को प्राप्त कर, आनद से शासन करता रहा। अन्य वानर उसके अनुकूल आचरण करते रहे। उसका शासन चक्र दिगन्तो म व्याप्त हुआ। अपार पराक्रम युक्त अगद को उसने राज्य का युवराज पद दिया।

उदार (राम), वहाँ से चलकर मतग महर्षि के आवासभूत गगनस्पर्शी (ऋष्यमूक) पर्वत पर जाकर ठहरे, जहाँ उनके उस भाई ने, जिसके मन की सच्ची भक्ति को भर भरकर लिया जा सकता है, प्रेम से पणशाला बनाई थी। वहाँ वे विश्राम करते रहे। (१—५४)

●

अध्याय ६

वर्षाकाल पटल

सूर्य, महिमा भरी उत्तर दिशा से (दक्षिण दिशा की ओर) चल पड़ा, मानों चित्रप्रतिमा समान उज्ज्वल तथा लावण्ययुक्त (सीता) देवी का अन्वेषण करने के लिए देवाधिप (राम) के द्वारा पहले भेजा गया दूत हो।

सजल मेघ इस प्रकार शोभायमान हो रहे थे, जिस प्रकार अनेक फनवाले सूयराज के द्वारा धारण की गई पृथ्वी रूपी दीपक मे शब्दायमान समुद्र रूपी तैल के मध्य मेरुपवत रूपी वत्ती की सूय रूपी ज्वाला से उत्पन्न अजन हो।

घने वादलों के छा जाने से अधकार भरा आकाश का रग ऐसा था, जैसे समुद्र मे उत्पन्न अति भयकर हलाहल विष को पीनवाले ललाट नेत्र (शिव) का कठ हो। उसमे सूय की किरणे भी तापहीन हो शीतल हो गई।

नील आकाश, विष के समान शीतल तथा विशाल सागर के समान, तरुणियो के अजन लगे नयनो के समान, (उनके) बिखरे केश पाशो के समान, मायावी राक्षसो के शरीरो के समान, (उनके) पापकर्मों के समान और (उनके) मन के समान ही कालिमामय हो गया।

वे मेघ, जिन्होने अनेक दिनों से शीतल समुद्र के जल को अपनी जिह्वा से चाटकर पिया था और जिनमे बिजलियाँ चमक रही थी, ऐसे लगते थे जैसे करवालधारी वीरो के युद्ध मे करवालों के आघात से घायल होकर मदजलस्रावी गजराज पडे हो।

उदर मे जल से भरी हुई काली घनी घटाएँ बडे बडे काले हाथियो की पक्तियो के समान थी और उनके उमडने से ऐसा घोर शब्द होता था मानो तरग समान काले समुद्र का विशाल जल ही अनन्त आकाश मे छा गया हो।

कौंधनेवाली बिजलियाँ, इन्द्र आदि देवताओ के चमकते हुए आभरणो की जैसी थी, पर्वतो मे फैलकर सब वस्तुओ को जलानेवाली अग्नि के समान थी तथा अनिन्दनीय दिशाओं की हँसी की जैसी थी।

वर्षाकालिक काली घन घटा एक भट्ठी की समता करती थी, जहाँ दिशा रूपी लुहार, सब वस्तुओ से अधिक कालिमापूर्ण आकाश रूपी कोयले की राशि मे उत्तर दिशा की अतिवेगवान् पवन रूपी बडी भाथी लगाकर तीक्ष्ण अग्नि ज्वालाओ को भडका रहा था।

आकाश में तथा दिशाओं मे बिजलियाँ इस प्रकार कौंध उठी, जैसे अपने प्रियतम के वियोग मे तरुणियाँ तडप उठी हों, धरती के गर्भ मे स्थित सर्प जलकर तडप उठे हो, या सूर्य किरणों को काट काटकर दिशाओ मे फेंक दिया गया हो, अथवा वज्र की लपलपाती जिह्वाएँ तडप उठी हो।

वे बिजलियाँ ऐसी थी, जैसे मणिकिरीटधारी मायावी विद्याधरों के द्वारा कोश से निकालकर घुमाये जानेवाले (शत्रुओं के) रक्त-सिंचित करवाल हों, अथवा दिक्पालों के साथ यात्रा करनेवाले दिग्गजों के मुखपट्ट हो, जो हिल डुलकर चमक रहे हो।

वे बिजलियाँ यों चमक उठी, मानों अष्ट दिशाओ मे धरती को धारण करनेवाले अष्ट महानागों की जिह्वाएँ व्याप्त हो रही हो। उस समय झझावात यों बह चला, मानों विष्णु की काति के समान काली बनी हुई घटाएँ (अपने गर्भ के भार से) नि श्वास भर रही हों।

वह वर्षाकालिक पवन ऊँच नीच का भेद किये विना पर्वतों, वृक्षों तथा अन्य सब प्रदेशों मे वारनारियो के उस चचल मन के समान फैल गया, जो (मन) केवल धन की कामना करके धन देनेवाले किसी भी व्यक्ति के समीप जा पहुँचता है।

उत्तर दिशा का वात, अपने प्रियतमा के विरह से पीडित रहनेवाली तरुणियों के तप्त स्तन तटों को और भी तपाता हुआ वह चला और इस प्रकार बह चला, मानो कोई पिशाच हो, जो (उन स्तनों को) पुष्ट मांसपिंड समझकर उनको काटकर खा डालने के लिए चल पड़ा हो।

बड़े शब्द के साथ धूलि ऊपर उठकर आकाश को छूने लगी, बिजलियाँ तीक्ष्ण तलवारों के समान घूम घूमकर चमकने लगीं। मेघ पुष्प मालाओं से अलंकृत बड़े नगाड़ों के जैसे गरजने लगे। आकाश एक बड़े युद्ध रंग के समान दृग्गित होने लगा।

मधुर मंदहास करनेवाली जानकी से बिछुड़े हुए रामचन्द्र पर मन्मथ पुष्प बाण बरसा रहा हो—उसी प्रकार बिजलियों से पूर्ण मेघ मण्डल उस स्वर्णमय पर्वत पर जल धाराएँ बरसाने लगा।

जल धाराएँ मेघों के मध्य स्थित धनुष से प्रयुक्त शरों के समान वेग से पहाड़ों पर आकर गिरती थीं, मेघों से उत्पन्न रक्तवर्ण वज्राग्नि के कण ऐसे गिरे, जैसे रात्रि के समय अत्युज्ज्वल रत्न कण बरस रहे हों।

योद्धा लोग शत्रुओं के बड़े हाथियों पर चमकते हुए बरछे प्रयुक्त कर रहे हों—ऐसे ही मेघ पर्वत पर जल धाराएँ बरसा रहे थे। उन अपाय जल धाराओं के प्रहार से शिलाखंड टूट टूटकर ऐसे लुढक रहे थे, जैसे लाल बिन्दियोंवाले उत्तम लक्षण सम्पन्न गज आहत होकर लुढक जाते हों।

मेघ, मीनकेतन (मन्मथ) था, इन्द्र धनुष ईख का कमान था, बरसती जल धाराएँ पुष्प शर थीं, पर्वत की दीर्घ घाटियाँ विरहीजन थीं, जब पर्वत शिलाओं पर जल धाराएँ यों गिरती थीं, जैसे मांसल शरीर में शर चुभ जाते हों।

देवता, यह कहकर कि पवित्र मूर्त्ति (श्रीराम) तथा कपिगण दोनों मिलकर अब हमारे शत्रुओं (रावणादि राक्षसों) को शीघ्र ही मिटा देंगे गर्जन कर उठे हों— यों मेघ गरज उठे, जल बिन्दु पुष्प वर्षा के समान बरस पड़े।

सुन्दर धनुष धारण करनेवाला राक्षस रावण, जब करवाल लिये हुए (सीता को) उठाकर आकाश मार्ग से त्वरित गति से ले जा रहा था, तब उस नारी रत्न, आभरण भूषित देवी (सीता) के नयन जिस प्रकार अश्रुवर्षा करने लगे थे, उसी प्रकार मेघ बरस पड़े।

शिर पर चन्द्र को धारण करनेवाले भगवान् (शिव) आकाश मार्ग में उड़नेवाले तीनों पुरों को दग्ध करने के लिए अग्निमुखी शर प्रयुक्त कर रहे हों—ऐसी लगती थीं चमकती हुई बिजलियाँ, वे सान पर रगड़कर पैनाये गये और चमकते हुए बरछों के समान ही विरह तप्त पुरुषों के मन को दग्ध कर रही थीं, जिससे विरहीजन तड़प उठे।

वे वर्षाकालिक सम्पत्ति का अर्जन करने के लिए दूर देशों में गये हुए जनों के वियोग में निष्प्राण बनी हुई विरहिणियों को उनके प्रियतम रूपी प्राणों को चक्रवाले रथों पर शीघ्र ला देते थे, अतः मूर्च्छा उत्पन्न करनेवाली विरह व्याधि रूपी सर्प के विनाश के लिए वे (मेघ) गरुड के समान थे।[1]

---

१ वर्षाऋतु में प्रवास में गये हुए प्रेमी अपने घर वापस आ जाते हैं अतः मेघ विरहिणियों का वियोग में दुःख को दूर करनेवाला साथी है।— अनु०

बडे मेघ, बारी बारी से गरजते हुए और जल बरसाते हुए एक दूसरे के निकट आकर टकराते थे, जैसे बडे बडे हाथी गरजते हुए और मदजल को बहाते हुए क्रोध से भर दौडकर एक दूसरे से टकरा जाते हो।

हवाएँ बारी बारी विभिन्न दिशाओं मे बहती थी। मेघ अपने चचल तथा क्रुद्ध जल बिन्दुओ को शरो की बौछार के समान अपने लक्ष्य पर प्रक्षिप्त करते। वह दृश्य ऐसा था, जैसे एक दिशा दूसरी दिशा मे युद्ध कर रही हो।

अपनी प्रियतमाओ को छोडकर दूसरे राज्यो पर विजय प्राप्त करने के लिए गये हुए राजा लोग (वर्षा के आगमन पर) लौटकर आ गये हो और उनके आगमन से पहले निष्प्राण बनी हुई (उनकी पत्नियो की) देह मे प्राण के लौट आने से वे तरुणियाँ निःश्वास भर उठी हो—उसी प्रकार वृक्षो की सूखी शाखाएँ वर्षा के आगमन से पल्लवित होकर नव सौन्दर्य के साथ विकसितमुख सी दिखाई पडती थी।

पाटलवृक्ष (पुष्पहीन हो) दरिद्रता प्रकट करते थे। दिनकर शीतल बन गया श्वेतकुमुद समृद्ध बन गये। कुवलय पुष्प निर्धन बन गये। मयूर सपत्ति पाये हुए व्यक्ति के समान नाच उठे। कोकिल वियुक्त प्रियतमो के जैसे शिथिल हो चुप हो गये।

उन पर्वत सानुओ मे जहाँ विविध रगवाले भ्रमर तथा तितलियाँ उत्तम रत्नो के समान विश्राम करती थी, मधु के भार मे झुककर हिलनेवाले अर्द्ध विकसित रक्त कान्तल पुष्प ऐसा दृश्य उपस्थित करते थे, मानो विशाल रानी रूपी तरुणी वर्षाकाल के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर यह विचार कर कि वसत को भी इस वर्षाकाल ने जीत लिया है अपने हाथ हिलाती वसन्त ऋतु का तिरस्कार कर रही हो।

करवाल समान तीक्ष्ण दतोवाले सर्प दीर्घनाल श्वेतकुमुद की लताओ से जुडन (सर्पों) के फन के जैसे ही पुष्पो को शिर पर धारण किये हुए थे प्रेम से लिपट जाते थे और उनसे हटते नही थे। वे श्वेतकुमुद भी उन काममत्त सर्पो के समान ही होकर उनसे उलझे पडे रहते थे।

इन्द्रगोप इस प्रकार फैले थे कि धरती पर तिल रखने का भी स्थान नही था वे चिरकाल के प्रवास के उपरात लौटे हुए अपने प्रियतमो से मिलनेवाली अगरु तथा पुष्प वासित कुतलोवाली तरुणियों के द्वारा बार बार थूकी हुई पान की पीक के समान ही बिखरे हुए थे।

उस गगनचुबी मेरुपर्वत से, जिसपर मधुर जबूफलो से भरे हुए वृक्ष होते है, स्वर्ण को बहाकर ले चलनेवाली (जबू नामक) नदी जिस प्रकार बहती है, उसी प्रकार जलधाराएँ कर्णिकार, वेंगे आदि पुष्पो को बहाती हुई उस पर्वत से बह रही थी।

सुन्दर तथा दीर्घनाल रक्तकुमुद तथा कर्णिकार मनोहर इन्द्रगोपो से भरे हुए ऐसे लगते थे, जैसे पृथ्वी देवी मधुरगान करनेवाले भ्रमरो को अपने विकसित करो को उठा कर स्वर्ण तथा रत्न प्रदान कर रही हो।

धैवत स्वर मे गानेवाले भ्रमर 'याल्' के समान थे। बिजली, गर्जन तथा वर्षा से युक्त मेघ चर्म से आवृत 'मर्दल' के समान थे। मयूर, ककण धारिणी नायिकाओ के समान थे।

रक्तकुमुद नाट्य रग पर रखे हुए दीपो की पक्तियो के समान थे। कोमल 'करुवल' पुष्प दर्शको के नेत्रो के समान थे।

भ्रमर और भ्रमरी के वेग से उडकर आने से उत्पन्न होनेवाली ध्वनि, उनके टकराने से उत्पन्न होनेवाली ध्वनि—दोनो ध्वनियाँ—देवागनाओ के नृत्य की ध्वनि की समता करती थी। 'कूदाल' के विशाल पुष्प ऐसे विकसित थे, जैसे उन (देवागनाओ) के अमृत समान आर्यभाषा (सस्कृत) के गीतो के गायन के उपयुक्त बडे झाल हों।

पुन्नाग के वनो से बहनेवाली नदियाँ अपने पुत्रो के लिए पुष्ट पर्वत रूपी स्तनो से स्रवित धरतीमाता की दुग्ध धाराओ के समान थी। कर्णिकार वृक्ष ऐसे थे, मानो धन की इच्छा से आकर याचना करनेवालो को सदा दान देने के लिए अपनी शाखाओ मे स्वर्ण खडो को लटकाये हुए खडे हो।

पुष्प भरे वनो मे सर्वत्र मधुर गान करनेवाला विविध चित्तियो से युक्त भ्रमर आदि कीडे भरे हुए थे, जो दर्शको को बडा आनन्द देते थे, हरिण अपने मार्ग मे पडनेवाले वृक्षो से रगड खाते हुए और उस कारण से (चन्दन, अगरु आदि) विविध सुगधो से युक्त होकर आते थे और हरिणियाँ उन्हे (उनकी गध के कारण) कोई दूसरा मृग समझकर उनसे रूठ जाती थी।

अपने प्रियतम के रथारूढ होकर प्रवास मे चले जाने पर जिस प्रकार विरहिणी तरुणियो के भाले सदृश नयन आनन्दहीन हो मुकुलित हो जाते हैं, उसी प्रकार कुवलय पुष्प बद हो गये। मन्मथ सदृश अपने प्रियतमो के आगमन पर जिस प्रकार उमग मे भरी उन तरुणियो का किंचित् दत प्रकाशन से युक्त मन्दहास छिटक पडता है, उसी प्रकार कुदलताएँ पुष्पित हो उठी।

पर्वत से प्रवहमाण जलधाराएँ स्वर्ण को बहुलता से दोनो ओर बिखेरने लगी, मानो आनन्द नृत्य करनेवाले मयूरो को देखकर उन्हे नटवर्ग समझकर राजा लोग उन्हे भूरि भूरि पुरस्कार दे रहे हो। कमललताएँ जल मध्य इस प्रकार उठी हुई थी, मानो गगनपथ मे आनेवाले मेघो को देखकर उन्हे अतिथि समझकर आनन्दित हुई (गृहस्थ धर्म मे निरत) तरुणियो के वदन हो।

कामशास्त्र मे निपुण विटो के समान ही भ्रमर सद्योविकसित मधुपूर्ण पुष्पो का आलिगन करते हुए उनके मधु का सचय करने लगे। वे ऐसे थे, मानो कविगण भरतशास्त्र के अनुसार नाटक का निर्माण करने के उद्देश्य से सफल अर्थ-व्यवस्था के अनुकूल रस सचय कर रहे हो।

हिरण अत्यन्त आनन्दित हो उठे, मानो यह सोचकर ही वे ऐसे प्रसन्न हुए हो कि हम अपनी चितवन से परास्त करनेवाली सूक्ष्म कटि युक्त अति सुन्दरी (सीता) को एक राक्षस ने हमारा ही रूप धारण कर दुःसह दुःख दिया है, इस कारण से उत्पन्न अपने आनन्द को हम शब्दों मे व्यक्त नही कर पाते।

हस छोटी नदियो मे गोते लगाकर इस प्रकार आनन्दित होने लगे, मानो

दीर्घकाल के विरह से पीडित होने के कारण अब अति प्रेम के साथ अपनी प्रियतमाओं से मिलकर भरपूर आनन्द उठा रहे हो।

अपार सागर से जल भरकर चलनेवाले काले मेघों के निकट ही पंक्ति बाँधकर उडनेवाले अति धवल बगुलो का झुण्ड कृष्ण नामक काले वर्णवाले भगवान् के वक्ष पर शोभायमान मुक्ताहार के सदृश लगता था।

सारस पक्षी, जो पंक्ति बाँधकर एक दूसरे से सटकर वर्षाकालिक काले मेघ के निकट ही गगन में उड रहे थे, वे दिव्य देवों के द्वारा लक्ष्मी के नायक के रूप में वर्णित अनुपम भगवान् के वक्ष पर शोभायमान उत्तरीय वस्त्र की समता करते थे।

अधिक ताप उत्पन्न करनेवाले धूप रूपी राजा के हट जाने तथा उत्तम सद्गुणों से भरे वर्षाकाल रूपी राजा के आगमन के कारण विशाल पृथ्वी देवी अपने महिमामय मन में आनन्दित और शरीर से रोमाञ्चित हो उठी हो—हरियाली इस प्रकार का दृश्य उपस्थित कर रही थी।

मयूर ऐसे लगते थे, मानो मधुवर्षी कमलपुष्प में उत्पन्न ब्रह्मा आदि ज्ञानवान् (देव) तत्त्व-ज्ञान के नायक (अर्थात्, वेद आदि के द्वारा प्रशस्ति विष्णु के अवतार श्रीरामचन्द्र) के दुःख को देखकर उनका उपकार करने के उद्देश्य से कानन में सर्वत्र अपनी आँखें फैलाये हुए देवी सीता का अन्वेषण कर रहे हो।

कमलपुष्प ऐसे शोभित हो रहे थे, जैसे तरुणियों के वे चरण हो, जिनमें (शत्रुओं के रक्त से) रक्तवर्ण हुए भालो तथा दृढ धनुषो को धारण करनेवाले वीर पुरुषो के केशो को भी नया रंग देनेवाले महावर का रस लगा हुआ हो। (भाव यह है कि तरुणियो के चरण महावर से अंजित थे। प्रणय कलह के समय वे तरुणियाँ अपने प्रियतमो के सिर पर पदाघात करती, तो उससे उन पुरुषो के काले केश भी लाल रंगवाले बन जाते थे।)

कोकिल मौन हो रहे, मानो उनके प्रति राघव के यह आदेश देने पर कि तुम अपनी जैसी ही बोलीवाली देवी को ढूँढकर लाओ, पृथ्वी में सर्वत्र घूम घूमकर (देवी सीता को) बुलाते रहे हो और अब थककर चुप हो गये हो।

वर्षा-सिंचित भूमि पर उगी हुई हरी घास को अघाकर चरनेवाली गायें यत्र-तत्र उगे हुए 'मालान' नामक छोटे पौधो को अपने खुरो से उखाड देती थी। वे पौधे, जिनमे सफेद पुष्प लगे थे, बिखरे हुए गाढे दही का दृश्य उपस्थित करते थे। 'पिडव' नामक पौधे के पुष्प, मधु-सदृश मीठी बोलीवाली कुड्मल-सदृश स्तनोवाली ग्वालिनो के घटो में से छलकनेवाले दूध के झाग का दृश्य उपस्थित करती थी।

'वेंगे' नामक वृक्ष, भीलनियो के केशो के समान सुरभित थे। पुन्नाग वृक्ष मछुआ स्त्रियो के केशों के समान गंध से युक्त थे, जिससे शीघ्रगामी भ्रमरकुल आकृष्ट हो रहा था। उत्पल पुष्प अन्त्यज जाति की स्त्रियो के केशो के समान गंध से युक्त थे। सद्योविकसित कुंदलताएँ ग्वालिनों के केश के समान महक रही थी।

श्रीरामचन्द्र ने देवी सीता के वदन को नहीं, किन्तु मरणदायक मन्मथ को असंख्य सहस्र पुष्पबाण प्रदान करनेवाले वर्षाकाल को ही देखा। वे दुःख सागर का पार नहीं देख पा

रहे थे। वे मूर्च्छित हो गये, नहीं तो वे किसको देखकर अपने प्राण को वश में रख सकते थे?

सीमाहीन वर्षाकाल के आगमन से मनुष्य शिथिलमन हो जाते हैं—यह कथन तपस्या करनेवाले मुनियों के विषय में भी सत्य सिद्ध होता है। तब उन प्रभु के दुःखी होने में क्या आश्चर्य हो सकता है, जो मधु तथा अमृत से भी अधिक मधुर बोलीवाली धवल (शंख) वलयधारिणी सीता की भुजाओं का आलिंगन सुख प्राप्त करते रहते थे।

नीलोत्पल, नीलकमल, अतसी पुष्प आदि की समानता करनेवाले वे प्रभु शोकोद्विग्न हुए। वे ऐसी आशंका उत्पन्न करते थे कि कदाचित् इनकी देह में प्राण नहीं हो। इस प्रकार, व्याकुल होकर हंसिनी सदृश सहज सुन्दरी सीता देवी के संबंध में निम्नलिखित वचन कह उठे—

हे काले मेघ! राक्षसों ने कंचुकाबद्ध स्तनोंवाली सीता को कहाँ ले जाकर छिपा रखा है? उन (राक्षसों) का आवास कहाँ है? यह भी मैं नहीं जान पाया हूँ, तो भी मैं जीवित हूँ। तुम जल से भरे हो, तो भी क्या तुम में दया नहीं है? मेरे प्राणों को क्यों व्याकुल कर रहे हो?

तुम विद्युत् रूपी दंतों से भयंकर हो। अपने काले रूप को गगन में सब ओर फैलाकर तुम बढ़ते हो। पापी तथा मायावी राक्षसों की समता करनेवाले तुम क्या मेरे प्राणों का हरण किये बिना नहीं हटनेवाले हो?

हे मयूर! बरछे तथा तीर के समान तीक्ष्ण नयनोंवाली तथा समुद्र में उत्पन्न दिव्य अमृत एवं कोकिल के सदृश बोलीवाली मेरी देवी को ढूँढकर नहीं लाते हो। तुम बड़े कठोर हो। मुझ एकाकी तथा निद्राहीन रहनेवाले की मनोव्यथा को जानते हुए भी क्यों अपना बल दिखाकर मुझे सताते हो?

हे लता! वर्षाकालिक उत्तरी पवन के अनुसार तुम हिल डुलकर मेरे प्राणों में घुस जाती हो। तुम अब पुष्पमय हो गई हो और उज्ज्वल ललाटवाली सीता की कटि के समान ही लचक लचककर क्यों मेरे प्राणों को गला रही हो?

हे हरिण! किसी भी स्पृहणीय वस्तु को मैं अब नहीं चाहता हूँ। पराक्रमपूर्ण कार्य भी कुछ नहीं कर पा रहा हूँ। प्रज्ञा के मिट जाने से अब मैं कैसे जीवित रह सकूँगा? मेरे प्राण समान देवी मुझसे वियुक्त हो चली गयी है। तुम कहो कि वह अब कहाँ है?

हे मेरे प्राण! पाद कटक से भूषित तथा रूई के समान मृदुल चरणोंवाली दोषहीन जानकी के साथ ही क्या तुम भी मुझे छोड़कर जाना चाहते हो? यदि ऐसा करना था, तो जब देवी मुझसे वियुक्त हुई, तभी तुम भी निश्शंक होकर मुझे छोड़ जाते। हे मिटनेवाले, (मेरे प्राण)! क्या तुम्हें उस देवी के साथ का अपना सम्बन्ध तब ज्ञात नहीं हुआ था?

हे निष्ठुर! 'कानरै' वृक्ष, जानकी के केशों के साथ तुम्हारा वैर था, अतः तुम मेरे साथ भी कड़ा वैर निकाल रहे हो? तुम उस (जानकी) को मुझे नहीं ला देते। उसके बारे में कुछ कहते भी नहीं, भला तुम कब मेरे हितकारी रहे?

कुरवक पुष्प सदृश तीक्ष्ण एवं उज्ज्वल दंतोंवाले घोर सर्प विष के समान ही यह कोमल पुष्पों से भरित कुंदलता भी प्राणहारी बन गई है। दुस्सह पीडाग्नि को प्रज्वलित कर

मुझे निरन्तर सताते रहनेवाले यह (इन्द्रगोप) क्या एक ही हैं ? । अर्थात् पीडा देनेवाले अनेक हैं)। इस रावणकोप के रहते हुए यह इन्द्रगोप[1] भी क्यों मुझे सताने लगा है ?

स्वर्णमय ललाट पट्ट (ताज) पहनने योग्य ललाटवाली सीता को धोखे से हरण करने के लिए मारीच एक स्वर्णमय हिरण के रूप में आया था। अब यम (मेरे प्राणों के हरण करने के लिए) उत्तरी पवन के रूप में आया है। अहा अहित करनेवालों का अपने इच्छानुसार रूप धरना भी संभव होता है।

भयंकर कृत्यवाले राक्षसों के समान आकाश में घोर गर्जन करनेवाले हे मेघ ! तुम बार बार चमककर कमल पुष्प के आवास को तजकर (मिथिला में) अवतीर्ण हुई उस (लक्ष्मी) देवी को दिखा रहे हो। क्या तुम्हारे मन में मुझपर इतनी दया उत्पन्न हो गई है कि उस सीता को लाकर मुझे देनेवाले हो ?

हे मोर (प्राणियों को पीडा देनेवाला है मन्मथ) ! विरह ताप मेरे अन्तर में न समाकर उमड रहा है और मेरे प्राणों को जला रहा है। अब (प्राणों के जल जाने के बाद भी) तुम मेरे अन्दर में पुन पुन शर छोडकर घाव कर रहे हो। यह तुम्हारा कार्य व्यर्थ है। प्रशंसनीय विद्या से युक्त मेरा अनुज यदि तुम्हें एक बार भी देख ले तो फिर उसके क्रोध को रोकना असंभव होगा।

हे अनंग ! धनुष और तीक्ष्ण बाण इसलिए नहीं है कि भयंकर युद्ध से डरे हुए योद्धाओं पर उनका प्रयोग किया जाय, उनका प्रयोग तो उनपर करना चाहिए जो (प्रयोग करनेवाले के) पराक्रम का आदर नहीं करते हों। तुम तो निर्दय हो यह सोचकर कि तुम्हारा बल हम जैसे दुर्बलों पर ही सफल होगा, रात दिन हमें सताया करते हो। क्या तुम्हारा यह कार्य प्रशंसा के योग्य है ?

इस प्रकार के वचन कहकर शिथिल तथा दु खित होनेवाले, अपने भाई को, जो अपना उपमान स्वयं ही था, देखकर लक्ष्मण व्याकुल हुआ और अपने सिर पर कर जोडकर इस प्रकार सान्त्वना के वचन कहने लगा—हे महात्मन् ! आपने अपने को क्या समझा है ?

विवेक एवं विद्या से सुसंपन्न हे सिंह ! हे तप संपन्न ! वर्षाकाल का भी अन्त होता है। आप क्यों इस प्रकार दु खी हो रहे हैं ? क्या आप इसलिए चिंतित हैं कि वर्षा का आगमन हो गया है ? अथवा काले राक्षसों के पराक्रम का विचार करके आप दु खी हो रहे हैं ? या यह सोच रहे हैं कि वाली के द्वारा निर्मित वानर-सेना अभी तक देवी के अन्वेषण के लिए आई नहीं है ?

वेद भले ही भ्रम में पड जाय, चन्द्र अपने स्थान से विचलित हो जाय, गगन तथा गंभीर समुद्र से आवृत धरती भी हिल उठे, किन्तु तुममें वैसी अस्थिरता (चाञ्चल्य) कभी संभव नहीं है। अनेक चन्द्रकला समान बडे दाँतों से युक्त अज्ञ राक्षसों का प्रभाव क्या तुम्हारे भव्य भृकुटि रूपी धनुष के वक्र होने मात्र में विनष्ट नहीं हो जायगा।

[1] 'कोप' और 'गोप'—दोनों शब्द तमिल में एक ही तरह लिखे जाते हैं। अत , तमिल में 'रावणगोप' और 'इन्द्रगोप शब्दों को 'रावणकोप' और 'इन्द्रकोप' भी पढ़ा जा सकता है।—अनु०

हे ज्ञानवान् ! हनुमान नामक व्यक्ति के (ज्ञान, शक्ति इत्यादि गुणों के) परिमाण को हमने जान लिया है। किन्तु, अंगद आदि ५६० समुद्र संख्यावाले वानरों के स्वरूप को हमने देखा नहीं है। पाप के समान दुःखदायक (वर्षाकाल के) मास भी शीघ्र बीत रहे हैं, आपकी धनुष समान भौंहोंवाली देवी सुलभता से आ पहुँचेगी, यह निश्चित है, (अतः) आप शोक छोड़ें।

हे प्रभो ! पहले जब अरण्यवासी वेदों के पारगामी मुनि तुम्हारी शरण में आये थे, तब तुमने प्रतिज्ञा की थी कि 'तुम लोगों को सतानेवाले मायावी राक्षसों को परास्त करके तुम्हारे कष्ट दूर करूँगा।' विधिवश तुम्हारे प्रति भी उन (राक्षसों) ने अपराध किया है, अतः उन राक्षसों का विनाश करो और मधुर यश प्राप्त करो तथा और देवों को भी स्वर्गलोक दिलाओ। अब इस प्रकार प्रज्ञाहीन हो रहना उचित नहीं है।

हे मेरे प्रभु ! शत्रु विजय करने का श्रेय तुमको ही प्राप्त होगी, अन्यथा यह यश और किसको मिल सकता ? शोक करना वीरता का कार्य नहीं है, वह तो दुर्बलता है। यह उचित है कि हम समय की प्रतीक्षा करें और उसके अनुसार कार्य करें। यदि आप अभी प्रयत्न करना चाहते हों, तो भी आपके लिए असाध्य कार्य कुछ नहीं है। आप शोक से उद्विग्न न हों—इस प्रकार (लक्ष्मण ने) कहा।

शिथिलप्राण हो निश्चेष्ट बैठे हुए आदि भगवान् (के अवतार रामचन्द्र) अनुज के वचनों से सान्त्वना पाकर शोक मुक्त हुए, इस प्रकार अनेक दिन व्यतीत हुए। एक रोग के शान्त होते ही दूसरा रोग उत्पन्न हो गया हो, ऐसे ही अब वर्षाकाल का उत्तरार्ध आरम्भ हुआ।

बड़े बड़े जलाशय भर गये। उनमें तरंगें घनी होकर उठने लगीं। काले वर्णवाले कोकिल दुर्बल हुए, ऊँचे पर्वत ठंडे हुए, विशाल दिशाएँ अदृश्य हुईं, अपने प्रियतमों से वियुक्त व्यक्ति दुःखी हुए, क्रौंचों के जोड़े एकप्राण होकर परस्पर गाढालिंगन में बँध गये।

उत्तरी पवन, स्वर्णमय आभरणों से भूषित अप्सराओं के अनिंदनीय विशाल जघन तट के वस्त्रों तथा उनके झूलों का स्पर्श करके उनके प्रेम से पीडित हुए व्यक्तियों पर ऐसे जा लगता था, जैसे जले हुए घाव में तीक्ष्ण बाण चुभ गया हो।

समुद्र भर गये, सूर्य किरणें अपना ताप तजकर ठंडी हो गईं। जल से आँके जानेवाले घटी यन्त्र के द्वारा ही समय का ज्ञान संभव था, अन्यथा यह जानना असंभव था कि कब दिन हुआ है और कब रात।

मयूर सदृश तरुणियों की कोमल मधुर बोली से पराजित होनेवाले तोते धान के पौधों में जा छिपते थे, जिससे धान की बालियाँ टूट जाती थीं। (रमणियों के) धवल तथा मृदु दंतों से पराजित मुक्ताएँ विशाल सागर की लहरों में छिपी पड़ी रहती थीं। 'नेयिदल' प्रदेश (समुद्री तटों) की युवतियों के आँगनों में उत्पन्न होनेवाले पुष्पित 'पुन्नै' वृक्ष मानो सोने की गठरी को खोल रहे थे।

ऊँचे हाथी उज्ज्वल तथा बड़ी बूँदों के गिरते रहने पर भी पर्वत के समान अचल तथा निद्राहीन स्थिर खड़े थे, जैसे काली रात तथा दिन के समय में निरंतर ध्यानरत रहनेवाले दृढचित्त तपस्वी हों।

शीत मे कॉपनेवाल हस चन्दन वृक्ष के पत्तो से छायी हुइ झोपडिया क भीतर वदिकाओ क निकट होम कुण्डो म प्रात और सध्या को जलाइ जानेवाली अगरु की लकडियो के धुएँ म घुम घुमकर अपनी ठड दूर कर लेत थ। वानरियाँ पवत कदराओ म सोई पडी थी। बलिष्ठ वानर ऐसे सिकुडे बैठे थे जैसे अष्टागयोग की प्रक्रिया के द्वारा अपनी इद्रियो का दमन करनेवाले अनुपम योगी हो।

मेघ घोर वर्षा कर रहे थे, जिससे निर्मल पर्वत निर्झरो की धाराए तरुणिया क केश पाश की सुगन्धि से सुवासित नही हो पाती था—(अथात्, तरुणियाँ उनम स्नान नही करती थी)। रत्नमय स्तभो पर डाले गये झूले सूने पडे थे। मच चमकत हुए रत्नो का आकाश मे नही फेकने थ (अर्थात्, अनाजो के खेत मे बने मचो पर खडे होकर अब कोइ पक्षियो को उडाने के लिए रत्नमय पत्थरो को नही फेकता था।)

केतकी वृक्षो के काले तथा शीतल पत्तो क मध्य कामोद्दीपक पुष्प पक्तिया म खिले थे और उनके घेरे के मध्य सारसियाँ अपने विशाल तथा सुन्दर पखो को सिकोड ऐस बदी थी, जैसे अपने प्रियतम के विरह म पीडित स्त्रियाँ हो।

नाना विहग मृदग के समान नाद कर रह थे। विविध भ्रमर सगीत कर रह थ। मयूर नृत्य की विविध भगियाँ दिखा रहे थे और अनेक प्रकार के नृत्य दिखानेवाली वश्याओ की समता करते थे। और, हरिण समुदाय, जो मेघ गर्जन से भयभीत होकर वृक्षो क नीचे आ ठहरते थे, (उस नृत्य के) दशक बने थे।

कोमल पुष्प-शाखा को परास्त करनेवाली कटि से शोभित तरुणियाँ तथा युवक अगरु धूम से आवृत होनेवाले दीपो के प्रकाश म पर्यन्त पर शयन करते थे। शीत स कॉपने वाले भ्रमर पुष्प का त्याग कर, चन्दन वृक्ष के कोटरो मे विश्राम करते थे।

मनोहर हसो के जोडे कमल शय्या को तजकर बडे वृक्षो से भरे उद्यानो म आ ठहरे थे। सुगन्धित लकडियो से बने हुए झोपडो मे धवल दतोवाली व्याध स्त्रिया के साथ उनके प्रियपुरुष निद्रा करते थ।

ग्वाले लताओ से आवृत अत्युन्नत तथा छोटे पत्तोवाले वृक्ष के नीचे बकरियो के बच्चो का गाद म लिये पडे थे। चोरो के समान छिपकर फिरनेवाले भूत भी भूखे ही दॉत कटकटाते हुए एक स्थान म खड थे।

बडे बडे दृढचित्तवाले हाथी आकाश के मेघो से वाण-सदृश पानी की बूँदो के अपने शरीर पर गिरने से सिकुड जाते थे और पर्वत के सानुओ के ऊपर जहाँ मधु के पुराने तथा असख्य छत्ते लगे थे, नही रह पाते थे और कन्दराओ के भीतर घुस जात थ।

इस प्रकार के वषाकाल म रात्रि का अधकार भी आ पहुँचा। तब ज्ञानवान (रामचन्द्र) ने अजन-सदृश ऑखोवाली तथा मदहास-युक्त जानकी की याद म ज्वाला-सी नि श्वास भरत हुए लक्ष्मण से कहा—

आभरण भूषिता, पीनस्तनी वह (सीता) मेघ क सदृश काले रगवाले तथा बिजली क सदृश दॉतोवाले राक्षस की माया का लक्ष्य बनकर पीडित हो अपने प्राण छोडेगी। मेरे लिए भी जीवित रहना सर्वथा असम्भव है। आह! यह कैसी अवस्था है।

शुभ्र वर्णवाले तथा विनाशकारी शर मेरे तूणीर म सोये पड है। मै गगनोन्नत भुजावाला होकर भी इस प्रकार की पीडा भोग रहा हूँ। मेरी एसी दशा है, मानो मेरे कठ मे बरछा चुभा हो, फिर भी म निष्प्राण नही हुआ हूँ।

पक्षी जोडो के भीतर चमकत हुए जुगनुओ के प्रकाश म अपनी सगिनियो के साथ सो रहे ह। (मन्मथ के द्वारा) चुनकर फेके गये पुष्पबाणो से मरा हृदय छिन्न हो गया है और दु सह पीडा से पीडित हो रहा हूँ। फिर भी, म जीवित हूँ।

मेघ म विद्युत् की कोंध को और वज्र के गजन को देखता तथा सुनता हुआ म विषदतवाले सप के समान पीडित होकर चुप पडा हूँ। वनवास म मने जो कार्य किये है, उनपर स्वर्गवासी (देवता) और धरतीवासी (मनुष्य) हँसेगे। अब (मेरे अपमान के लिए) और क्या आवश्यक हे ?

वेदना से पीडित होता हुआ मे (सीता को) भूलकर जीवित नही रह सकता हूँ। यदि वषा इसी प्रकार रहेगी, ता मेरा प्राण त्याग कर स्वर्ग पहुँचना निश्चित है। तो क्या मे इस अपयश को अगले जन्म मे ही मिटा सकूँगा। कदाचित् अगले जन्म म भी म गृहस्थी से सन्यास लेकर ही यह अपयश मिटा सकूँगा।

ह वीर! इस स्थान पर रहकर यदि हम राक्षसो का पता लगावें, तो बहुत समय व्यतीत होगा। अत, यह प्रयत्न (सीता का अन्वेषण) आवश्यक नही। मेरे लिए इसी मे यश है कि मै (सीता की) विरह पीडा म प्राण त्याग दूँ।

मै शर सदृश उज्ज्वल कटाक्ष पूर्ण नयनोवाली तथा श्रष्ठ आभरणो से भूषित (सीता) के प्रवाल वणयुक्त तथा कुमुद सदृश अधर का अमृतपान करता रहा। यह वर्षा मानो ताँबे को पिघलाकर बरसा रही है और मेरे शरीर को जला रही हे। तो, क्या अब ऐसे ही मरना मेरे लिए उचित ह ?

घृत की आहुति देकर प्रज्वलित की हुई अग्नि के समक्ष, जनक ने मुझसे कहा था कि यह (सीता) तुम्हारी शरण मे हे। उनके उस वचन को मेने असत्य कर दिया है। ऐसे मुझ अधार्मिक व्यक्ति मे सत्य कैसे टिक सकता हे ? अत, अब मुझे मर जाना ही उचित है।

सात्वना देने के लिए तुम हो। सात्वना पाकर सहन करने के लिए मै हूँ। ककण धारिणी (सीता) अब यहाँ आ जाय—यह सभव नही है। इस पीडा को कौन दूर कर सकता है ? क्या इस पीडा का कभी अन्त भी होनेवाला है ?

मै श्रेष्ठ शरो को चुन चुनकर प्रयोग करूँ, तो उनसे जब सत्यलोक जल जाय, देवता प्रभृति सृष्टि के अतिप्राचीन व्यक्ति मिट जायँ तथा सभी लोक एव वहाँ के प्राणी अशेष रूप से ध्वस्त हो जायँ तभी क्या मै मयूर सदृश उस (सीता) को देख सकूँगा ?

वज्र निर्घोष सदृश टकार से युक्त धनुष को धारण करनेवाले हे वीर! इस प्रकार मै सब लोको तथा वहाँ के प्राणियो को न मिटाकर पीडा का अनुभव करता हुआ बैठा हूँ, तो यह इसी डर से कि (वैसा करके) मै धर्म की रक्षा नही कर पाऊँगा, अन्यथा शत्रु राक्षस सब देवताओ के साथ मिलकर मेरे विरुद्ध आवे, तो भी वे मुझसे बच नही सकते।—राम ने इस प्रकार कहा।

तब अनुज ने कहा—हे आज्ञा रूपी चक्र से युक्त प्रभु ! जिन वर्षा ऋतु को हमने यहाँ व्यतीत करना चाहा, वह अब व्यतीत हो चुका है। शरद काल भी अब समाप्ति पर आ गया है। अत, उस चोर (रावण) के आवास को खोजकर पहचानने का समय आ पहुँचा है। अब आप क्यो शिथिलमन हो रहे है ?

अरुण नयनवाले विष्णु भगवान् के यह आज्ञा करने पर कि तुम अमृत तरगो से पूर्ण विशाल क्षीरसागर से अमृत को दे सकते थे, फिर भी वैसी आज्ञा देना उचित न समझ कर, पर्वत आदि सभी मथन उपकरणो के द्वारा उसे मथकर ही अमृत को निकलवाया था।

चक्रधारी भगवान् यदि मन से सकल्प मात्र कर ले तो समस्त लोको के टुकडे टुकडे करके उन्हे अपने मुँह मे डालकर चबा डाले, तो भी वह वैसा नही करता परन्तु अनेक बडे शास्त्रो को लेकर युद्ध करके ही सब (दुर्जनो) को वह विजित करता है।

हे महाभाग! ललाटनेत्र तथा परशुधारी शिव भगवान् जब क्रुद्ध होकर आकाश मे सचरण करनेवाले त्रिपुरो को ध्वस्त करने लगे, तब उन्होंने जो जो उपाय किये थे और जो जो उपकरण जुटाये, उन्हे कौन जान सकता है ?

यदि हम अपने अनुकूल रहनेवाले सब (मित्रो) को अपना साथी बना ले, मन्त्रणा करने योग्य सब विषयो को भली भाँति विचार कर निर्णय करें, फिर उचित समय को पहचानकर उचित ढग से कार्य करे, तब 'विजय' नामक वस्तु क्या हमसे दूर रह सकती है ?

बलवान् राक्षसो ने धर्म-मार्ग से विमुख होकर अधम मार्ग को ही अपने लिए ग्राह्य मान लिया है, उचित सन्मार्ग से जब वे (राक्षस) भ्रष्ट हो गये हैं, तब यश और विजय दोनो (तुम्हारे सिवा) अन्य किसके पास होंगे ?

स्वर्ण आभरण पहननेवाली उन देवी के कष्टो को दूर करने का समय धीरे धीरे आ पहुँचा है। अब आप दु ख मुक्त हो जायँ ? ऋषि मुनियो की सहायता करनेवाले हम क्या राक्षसो के (शस्त्रो के) लक्ष्य बनेगे ? हे मनोहर धनुष धारण करनेवाले ! आप ही कहिए।—इस प्रकार लक्ष्मण ने कहा।

युगो के अधिपति (विष्णु भगवान् के अवतार रामचन्द्र ने) लक्ष्मण के वचनो को उचित समझा। इसी प्रकार, जब वे यह सोचते हुए कि क्या इस वर्षाकाल का भी कभी अन्त होनेवाला है, कृश हो रहे, तब वर्षाकाल भी समाप्ति पर आ गया।

महान् दान कार्य मे निरत कोई उदार व्यक्ति, धरती के सभी लोगो का उनके इच्छानुसार सभी पदार्थ का दान देकर निर्धन हो गया हो और फिर, किसी उत्तम याचक के द्वारा कुछ माँगे जाने पर उसे दान देने के लिए अपने पास कुछ न होने से लज्जित हो गया हो। इसी प्रकार सब मेघ श्वेत वर्ण हो गये (अर्थात्, शरत्काल आ गया)।

पाप पुण्य नामक दो कर्मो के फल को जानने से सद्विवेक के प्राप्त होने पर जिस प्रकार अविद्या के तम मिट जाते हैं, उसी प्रकार (शरत्काल के आगमन पर) वर्षाकाल का गाढ अन्धकार मिट गया।

जिस प्रकार घोर युद्ध के समाप्त होने पर युद्ध की भेरी नि शब्द हो जाती है, उसी प्रकार जल भरे मेघ भी गर्जन करना छोडकर नि शब्द हो गये। भयकर बाणो के सदृश

वर्षा की बौछार भी थम गई। जैसे करवाल कोषो म बद करक रख दिय गये हो, वैसे ही विद्युत् भी अदृश्य हो गई।

विशाल प्रान्तवाले ऊँचे पवत अपन सानुओ क निझरो स रहित हो गय। उनके केवल कुछ जल स्रोत ही बहते रह गये। वे (पवत) एस लगन थे, मानो व यज्ञोपवीत और उत्तरीय के साथ श्वत वस्त्र भी कटि म धारण किये हो।

पर्वतो के ऊपर से मेघो के हट जाने से दिगता तक प्रवाहित हानेवाली नदियाँ जल रहित हो गई। अत , वे (नदियाँ) सन्माग पर न चलनेवाले उस व्यक्ति क समान थी, जो उत्तम पुण्य के घट जाने पर निधन हो गया हो।

गड स्थलो से मद जल बहानेवाले हाथियो के समान स्थित काले मेघ गगन के प्रदेश का उन्मुक्त छोडकर उडे जा रहे थे। चन्द्रमा इस प्रकार चमक उठा, जिस प्रकार यवनिका के उठने पर विविध नाट्य भगियाँ दिखानेवाली नर्त्तकी का वदन हो।

उत्तरी पवन पुष्प मकरन्द को बिखेरता हुआ इस प्रकार प्रवाहित हो उठा, जिससे स्वर्णमय आभरण धारण करनेवाली तरुणियो के विशाल तथा मनोज्ञ स्तनो पर अकित चन्दन, कस्तूरी, कुकुम आदि का लेप सूख गया।

हस गगन मे सभी दिशाओ म मानो यह सोचकर उड रहे थे कि दशरथ चक्रवर्त्ती के कुमार (श्रीराम) के दु ख को दूर करने के लिए उचित समय अब आ गया है। अत , हम भी (सीता) देवी का अन्वेषण करने चले।

सरोवरो का जल छल कपट से रहित तपस्वी जनो क मन के सदृश स्वच्छ हो गया। उन जलाशयो मे विचरनेवाले मीन, 'रुई पर चलना है'—इस कथन को सुनने मात्र से जिनके कोमल चरण लाल हो जात हो, ऐसी सुन्दर युवतियो के अजन लगे नयनो के समान घूम रह थे।

नालो पर विकसित कमल पुष्प रूठी हुई तरुणियो के वदन की समता करते थे। 'किडै' नामक पौधे, जिनमे अतिसुन्दर, सुगधित तथा रक्तवण पुष्प भरे थे, सुरत श्रात युवतियो के रक्त अधरो का दृश्य उपस्थित करते थे।

अनेक प्रकार के मेढक जो (वर्षाकाल मे) शिक्षा देने मे चतुर अध्यापको के पास पाठ सीखनेवाले कोलाहल से पूर्ण बटुको के समान बोल रहे थे, अब उन बुद्धिमानो के समान ही मौन हो गये, जो अपना वचन जहाँ फलप्रद होता हो, वही बोलते हैं और अन्यत्र मौन रहते हैं।

मेघो की विशाल वर्षा से हीन होकर मयूर अपने पखो को सिकोडे हुए दु खी बने हुए और मन मे कोई भी उमग या फल की कामना से रहित होकर मिथिला नगर के हस (अर्थात्, देवी सीता) के समान ही व्याकुल हो दबे पडे रहे।

समुद्र, मानो अपने तरग रूपी करो से नदी रूपी अपनी पत्नियो के उमड़ते हुए जल रूपी सुन्दर आँचल को पकडकर खीच रहे थे और वे नदियाँ मानो अपने बलवान् पति का आलिगन करके मदहास कर रही थी, जो (मदहास) मुक्ताजल का दृश्य उपस्थित करते थे।

गुवाक (सुपारी) वृक्षो के फल, शास्त्रो के ज्ञानमय वचनो का श्रवण करनेवाले

पुरुषो के समान तथा विरह से पीडित तरुणियो के समान ही धीरे धीरे अपने पूर्व रग का त्याग कर अनिन्दनीय सुनहले रग को प्राप्त करने लगे।

मगर नामक प्राणी, अनेक दिनो तक जल म रहने स शीत की पीडा से व्याकुल होकर जलाशयो से बाहर धूप म ऐसे पडे हुए थ कि सूर्य की काति उनके शरीर पर बिखर रही थी। इस प्रकार, जलाशयो के तटो पर अनेक स्थानो म अपने मुख को बन्द किये व सोये पडे थे।

'वजी' नामक लताए, जिनम (बैठकर) तोत मधुर स्वर म बोल रहे थे जिनम मनोहर पखोवाले भ्रमर वशो का दृश्य उपस्थित करते हुए उड रहे थ, जिनम अतिसुन्दर पल्लव थे (जो कान की समता करते थे) और जो कटि के समान ही लचक लचक जाती थी, तरुणियो के समान शोभायमान थी।

घोघे, जिनकी पीठ झुकी हुई थी, अपने नेत्रों को सिकोडकर कीचड म धॅस गये, मानो उनके द्वारा उत्पन्न किये गये मोती के (रमणियो के दाँतो से) पराजित हो जाने म व हरिण सदृश रमणियो के सम्मुख प्रकट होना नही चाहते हो।

वर्षा के कारण पुष्ट हुए समतल प्रदेशों के कमल पुष्पो के विशाल पत्तो की छाया म विश्राम करनेवाले दोषहीन केकडे अब अपनी स्त्रियों के साथ अपने बिलो म उनके द्वारो को बन्द करके ऐसे पडे थे, जैसे लोभी व्यक्ति हो। (१–१२१)

●

अध्याय १०

किष्किन्धा पटल

इस प्रकार शरत् काल जब व्यतीत होने लगा, तब वीर अग्रज राम ने अपने अनुज को देखकर कहा—हे वीर। निश्चित अवधि व्यतीत हो गई। किन्तु, निद्रा मे पडा हुआ वह राजा (सुग्रीव) अभी तक नही आया। उसका यह कैसा कार्य है?

वह (सुग्रीव) दुलभ राज्य सपत्ति को पाकर हमारे उपकारो को भूल गया है। अत उत्तम सदाचार म वह भ्रष्ट हो गया है, धर्म को भुला दिया है, इसके प्रति किये हमारे स्नेह की बात छोड दो, वह हमारे पराक्रम का भी भूल गया है। इस प्रकार वह सुखी जीवन म मत्त हो गया है।

जो कृतघ्न होकर अपूव रूप म प्राप्त स्नेह को भी भुला दे, उचित सत्य का मिटा दे एव अपने प्रण को पूर्ण न करे उसका मारना दोष नही है। अत तुम जाओ और उसकी मनोदशा को जानकर लौट आओ।

तुम जाकर यह मेरा सदेश उस (सुग्रीव) को दो कि घोर पापियो का युद्ध म निमल करके स्वर्ग भेजने तथा (लोक में) धर्म को सुरक्षित बनाने के लिए मैने जो धनुष

उठाया है, वह अभी वर्तमान है। भयंकर शर भी है। तमलोगों को मारनेवाला बाण भी मेरे पास है।

विष के समान व्यक्तियों को दण्ड देना पाप नहीं है। मनु का यही विधान है। इस बात को तुम उस (सुग्रीव) के हृदय में बिठा दो, जिसने पांच वर्ष (की आयु) में कुछ नहीं जाना।

तुम उससे यह सत्य वचन भी कहना कि यदि वह चाहता है कि नगर, प्रजा, राज्य तथा अपने बन्धुजन—इन सबके साथ स्वयं भी राज करता हुआ सुखी रहे, तो अविलंब यहाँ चला आये। यदि वह इस प्रकार नहीं आयेगा तो संसार में वानरों का नाम तक शेष नहीं रहेगा।

यदि सुग्रीव प्रभृति वानर, हमसे भी अधिक बलवान् वीर को खोजने का विचार करे, तो उनसे कहना कि तुमको (अर्थात्, लक्ष्मण को) जीतनेवाला तीनों भुवनों में तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं है।

तुम पहले उन्हें नीतिमार्ग को समझाना। यदि उस वचन से उनका मन न बदले, तो तुम क्रुद्ध न होना और वहीं उन्हें मिटा न देना। किन्तु, उनके दिये उत्तरों को मेरे पास आकर कहना।—यों कहकर यशोभूषित (रामचन्द्र) ने लक्ष्मण को विदा किया।

रामचन्द्र की आज्ञा को सिर पर धारण करके, उनके चरणों को नमस्कार करके, किंचित् भी विलंब न करके अपनी विशाल पीठ पर तूणीर बाँध तथा शर प्रयोग के लिए अतिश्रेष्ठ धनुष को कर में लिये हुए, अनन्यचित्त से वह (लक्ष्मण) दुर्गम मार्ग पर चल पड़ा।

(राम की) आज्ञा से चलनेवाला वह (लक्ष्मण) सुकुमार होते हुए भी (पूर्व में सुग्रीव जिस मार्ग से उन दोनों को किष्किंधा तक ले गया था उसी) पूर्व प्रसिद्ध मार्ग से नहीं गया, किन्तु वृक्षों और शिलाओं को चूर चूर करके उन्हें दूर फेंकता हुआ एक नया मार्ग बनाकर उसपर चला। (भाव यह है कि सुग्रीव ने प्रसिद्ध मार्ग में कोई रुकावट अथवा हानिकारक उपाय कर रखा होगा, इस विचार से लक्ष्मण उस मार्ग से नहीं गये।)

वीर कंकण से भूषित लक्ष्मण के अरुण चरणों की चाप से, स्वर्ग को छूनेवाले मेरु पर्वत जैसे ऊँचे उठे हुए पर्वत धरती में धसकर समतल हो गये। पाताल में स्थित कर्ण नेत्र (अर्थात्, सर्प या आदिशेष) भी लोगों की दृष्टि में आ गया।

बलिष्ठ वाली के भाई के पास जानेवाला मनुकुल श्रेष्ठ का अनुज, भयंकर अरण्य को भेदकर अतिवेग से आगे बढ़ता हुआ, गगन चुम्बी सालवृक्षों को छेदनेवाले (राम के) बाण की समता करता था।

किसी दिग्गज के बच्चे के खो जाने पर उसे ढूँढ़ता हुआ, उसके पद चिह्नों का अनुसरण करके दूसरा कोई दिग्गज चल पड़ा हो—सुग्रीव को ढूँढ़ता हुआ जानेवाला वह लक्ष्मण वैसे ही लगता था।

जिस प्रकार सूर्य ऊँचे उदयाचल से अस्ताचल पर जा पहुँचा हो, उसी प्रकार स्वर्ण की कांति से युक्त शरीरवाला लक्ष्मण एक ऊँचे उज्ज्वल पर्वत से (ऋष्यमूक से) दूसरे पर्वत पर (किष्किंधा पर) शीघ्र जा पहुँचा।

अपने रक्षक अग्रज के अनुपम शर के समान वह अत्युन्नत किष्किन्धा पर्वत पर जा पहुँचा। वह एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर फाँदकर जानेवाले स्वर्णरंग केसरी की समता करता था।

उसे देखकर वानर, ऐसे भागे जैसे यम को देख लिया हो। वे वालिकुमार के निकट जा पहुँचे और उससे कहा—हे प्रभु! अतिक्रुद्ध रामानुज चंडवेग से यहाँ आ रहा है। यही सुनते ही—

वह कुमार भी, साहसिक कृत्य करनेवाले लक्ष्मण के आगमन का कारण जानने के लिए (लक्ष्मण के) समीप आया और उस चक्रवर्ती कुमार के मन का भाव पहचानकर स्वर्ण का वीर कंकण धारण करनेवाले अपने पितृव्य (सुग्रीव) के प्रासाद में जा पहुँचा।

नल (नामक वानर शिल्पी) के द्वारा निर्मित प्रासाद में पुष्प दलों की शय्या पर पड़े उस सुग्रीव के निकट जा पहुँचा, जो दीर्घ कुंतलों तथा बाल स्तनोंवाली रमणियों के द्वारा अपने सुन्दर पैरों को सहलाये जाते हुए, निद्रा का अतिथि बनने की इच्छा कर रहा था।

जो स्वच्छ ज्ञानवाले राम लक्ष्मण के द्वारा प्रदत्त उस विशाल राज्य सम्पत्ति रूपी मदिरा का पान करके अतिमत्त हो गया था, जो अति उज्ज्वल स्वर्ण पर्वत के मध्य ठहरे हुए ऊँचे रजत पर्वत के समान शोभायमान था।

जो, सिंधुवार, साखू, अगरु, चंदन तथा सुगन्धित लताओं तथा सुरभित पुष्पों का स्पर्श करके बहनेवाले बाल पवन के कारण सुख निद्रा में मग्न था।

जो मधुर 'किडै' (नामक फूल) के समान अधखिली स्त्रियों के, धवल हास करनेवाले मुक्ता सदृश पैने दंतों से मधु समान जो रस उत्पन्न होता था, उसका पान करके उन्माद, मूर्च्छा तथा अन्य (तंद्रा, शिथिलता आदि) गुणों के बढ़ जाने से मत्त गज के समान पड़ा था।

जो, मुकुट, कुंडल आदि के कांति पुंजों के व्याप्त होने से ऐसा उज्ज्वल लगता था, जैसे सूर्य किरणों से आवृत हिमाचल हो।

वह सुग्रीव लेटा था। तारा के गर्भ से उत्पन्न वीर अंगद पहले उसके समीप गया और अपने विशाल करों को जोड़े, उसे निद्रा से जगाने के लिए मृदु वचन कहने लगा—

हे मेरे पिता! मेरे वचन सुनिए। उन रामचन्द्र का अनुज, अपने मुख से अपने मन के महान् क्रोध को प्रकट करते हुए अबाध्य वेग से आ पहुँचा है। अब आपका विचार क्या है? कहिए।

वह (सुग्रीव) राज्य सम्पत्ति के मोह में भूला हुआ था और सुगंधित मद्य रूपी विष भी उसके शिर पर चढ़ा हुआ था। अतएव प्रज्ञा रहित हो कोमल पर्यंक पर पड़ा था अंगद के वचनों को वह सुन नहीं सका।

यह दशा देखकर करिशावक एवं केसरी की समता करनेवाला वह युवराज (अंगद), यह सोचकर कि अब सुग्रीव के सम्मुख खड़े रहने से कुछ न होगा, दोषरहित चित्तवाले हनुमान् को बुलाने के लिए उसके पास गया।

ढहकर सब दिशाओं में दस योजन तक बिखर गये। तब वानर भय से विह्वल हो उठे।

उस दृढ तथा उन्नत प्राचीर और उस विशाल नगर द्वार के ढहकर गिरने से पत्थरों के प्रहार से शिर में चोट खाये हुए वानर व्याकुल होकर सब दिशाओं में भागकर अपने अपूर्व प्राणों को बचा पाये।

अकथनीय घोर दुःख पाकर, अपना स्थान छोडकर भागे हुए दोषहीन वे वानर भयभीत होकर घोर शब्द करने लगे। उस ध्वनि से वह (किष्किन्धा) नगरी, उन्नत शिखरवाले मदर पर्वत से मथे जानेवाले मीन भरे तथा शब्दायमान समुद्र की समता करने लगी।

अनेक वानर, भयभीत होकर, किष्किन्धा पर्वत से हटकर समीपवर्त्ती वनों में जा छिपे। उससे वह ऊचा (किष्किन्धा) पर्वत, ऐसा लगने लगा जैसा नक्षत्रपूर्ण आकाश नक्षत्रहीन होने पर दीखता है।

उस समय प्रतापी (रामचन्द्र) की आज्ञा रूपी चक्र के जैसे लगनेवाले वे (लक्ष्मण) उस स्वर्णमय नगर की वीथियों में प्रविष्ट हो चलने लगे। तारा को घेरकर खडे रहनेवाले (अंगद आदि) वानर कह उठे—अहो! वे आ गये हैं! अब क्या करें?

हे उत्तम कंकण धारण करनेवाली! उन (लक्ष्मण) का हृदय पुष्प के समान कोमल है। यदि आप राजप्रासाद के द्वार पर जाकर उन्हें रोक दें, तो वह वीर, जो विचारवान् हैं, उस ओर आँख उठाकर भी नहीं देखेंगे। यही उत्तम उपाय है।—यों हनुमान् ने कहा।

तब तारा ने (उनसे) यह कहकर कि, तुम सब लोग जाओ। मैं जाकर उन वीर (लक्ष्मण) के मन को शात करूगी—साहस के साथ पुष्पालकृत केशोंवाली अन्य सखियों सहित चल पडी। इधर अन्य वानर उनसे हटकर दूर पर खडे हो गये।

कंठ में रस्सी (का आभरण) धारण किये हुए हाथी जैसे लक्ष्मण, प्रसिद्ध वानरों के आनन्दपूर्ण आवास किष्किन्धा की राजवीथियों को पार कर विशाल राज सौध में ज्यों ही प्रविष्ट होनेवाले थे, त्यों ही सहज सुगंध भरित केशोंवाली तारा उनके मार्ग के मध्य उन्हें रोककर खडी हो गई।

मनोज्ञ लावण्य, धवल चद्र सदृश मदहास, सुन्दर कटि, उत्तम तथा नित्य यौवन पूर्ण मृदु स्तन—इनसे युक्त उत्तम मयूर तुल्य रमणियों के साथ वह तारा उस श्रेष्ठमार्ग को रोके खडी रही।

रमणियों की सेना ने दृढता से (लक्ष्मण को) इस प्रकार घेर लिया कि (लक्ष्मण के) धनुष तथा करवाल उनके आभरणों में चमक उठे। उन (रमणियों) के मंजीर, जिनमें छोटे छोटे ककड भरे थे, बज उठे। मेखलाएँ भी बडा कोलाहल कर उठीं। सर्वत्र विविध भ्रू लताएँ फैल गईं।

शब्दायमान नूपुर नगाडे बने थे। रमणियों के जघन बडे रथ थे। परस्पर अनुरूप नयन युगल बरछे थे। कठोर भौंहें युद्ध करनेवाले धनुष थीं। इस प्रकार जब वे रमणियाँ घेरकर खडी हो गईं, तब स्वय गौरव से भी गुरु होनेवाली भुजाओंवाले उन (लक्ष्मण) का

इंद्रपुत्र का सुत (अंगद) मंत्रणा में अतिकुशल वायुकुमार को साथ लिये हुए उग्र सेनापतियों के साथ चलकर (सुग्रीव के प्रासाद से) बाहर निकलकर अपनी माता के प्रासाद की ओर चला।

वहाँ पहुँचकर उसने (तारा से) प्रश्न किया कि अब क्या करना चाहिए ? तब तारा ने उत्तर दिया—तुमलोग न करने योग्य पाप कर्म सुलभता से कर डालते हो, फिर उन कर्मों के परिणाम को अनायास ही दूर करने का उपाय भी करना चाहते हो। क्या उपकार को भूलकर (कृतघ्न होनेवाले) तुमलोग (पाप से) मुक्त हो सकते हो ?

उसने फिर आगे कहा—विजयी (रामचन्द्र) ने तुम्हें सेना सहित आने की जो अवधि दी है, यदि वह व्यतीत हो जायगी, तो तुम लोगों के जीवन की अवधि भी समाप्त हो जायगी—यों मेरे कहते रहने पर भी तुमलोगों ने कुछ सुना नहीं। अब देखो, तुमलोग कैसे फँस गये हो।

जिन वीर ने अपने धनुष को ऐसा झुकाया कि यम ने वाली के अपूर्व प्राणों का हरण कर लिया और जिन्होंने तुमलोगों को अतुलित राज्य सम्पत्ति प्रदान की, वे भी आज तुम्हारी उपेक्षा योग्य हो गये हैं। तुम्हारे जैसे स्वभाववाले लोगों के लिए यह कार्य (रामचन्द्र की उपेक्षा करना) ठीक ही तो है।

देवताओं में भी उत्तम वे (राम) अपनी पत्नी के वियोग में निष्प्राण से हो मूर्च्छित पड़े हैं। इधर तुम उनकी उस व्यथा को मन में भी न लाकर सद्योविकसित नीलोत्पल समान नेत्रवाली रमणियों के प्रेमामृत का पान कर रहे हो।

(तुमलोग) सत्य से मुकर गये हो, कृतघ्न हो गये हो। तुमलोगों के पापों का परिणाम अब दीख रहा है। तुमलोग इस प्रकार गुणहीन हो गये हो। यदि उन महावीर (राम) से युद्ध मोल लोगे, तो विनष्ट हो जाओगे।—जब तारा इस प्रकार उनकी भर्त्सना करती हुई बोल रही थी, तब—

उधर बड़े बड़े पराक्रमी वानरों ने नगर के विशाल कपाट को, जो बड़ी अर्गला से बंद करने योग्य था, बन्द करके भीतर से अर्गला डाल दी और बड़ी शिलाओं को लाकर (उस कपाट के पीछे) चुन दिया।

वे वानर वीर इस प्रकार नगर द्वार को सुरक्षित करके और यह विचार कर कि (यदि कदाचित् लक्ष्मण भीतर प्रविष्ट हो जाय तो) उनसे युद्ध करने के लिए सन्नद्ध रहना चाहिए, वृक्षों को तोड़कर एवं बड़ी शिलाओं को उखाड़कर हाथ में लिये हुए, प्राकार के समीप खड़े रहे।

राजपुंगव (लक्ष्मण) ने यह सोचते हुए कि ये हमसे बचना चाहते हैं, क्रोध से मंदहास करके लक्ष्मी के निवास कमलपुष्प की समता करनेवाले अपने चरण से, उस नगर के कपाट पर अनायास ही आघात किया।

उनके दिव्य चरण का स्पर्श पाते ही वह नगर कपाट, सुरक्षा के लिए द्वार पर रखी शिलाएँ तथा दृढ प्राचीर, सब ऐसे विध्वस्त हो गये, जैसे अस्पृश्य पाप पुंज हो।

वह दृढ कपाट, वह पुरातन नगर द्वार शिलाओं से निर्मित प्राचीर, सब सहज ही

ढहकर सब दिशाओं में दस योजन तक बिखर गये। तब वानर भय से विह्वल हो उठे।

उस दृढ तथा उन्नत प्राचीर और उस विशाल नगर द्वार के टूटकर गिरने से पत्थरों के प्रहार से शिर में चोट खाये हुए वानर व्याकुल होकर दीर्घ दिशाओं में भागकर अपने अपूर्व प्राणों को बचा पाये।

अकथनीय घोर दुःख पाकर, अपना स्थान छोडकर भागे हुए दोषहीन वे वानर भयभीत होकर घोर शब्द करने लगे। उस ध्वनि से वह (किष्किन्धा) नगरी, उन्नत शिखरवाले मदर पर्वत से मथे जानेवाले मीन भरे तथा शब्दायमान समुद्र की समता करने लगी।

अनेक वानर, भयभीत होकर, किष्किन्धा पर्वत से हटकर समीपवर्त्ती वनों में जा छिपे। उससे वह ऊँचा (किष्किन्धा) पर्वत, ऐसा लगने लगा जैसा नक्षत्रपूर्ण आकाश नक्षत्रहीन होने पर दीखता है।

उस समय प्रतापी (रामचन्द्र) की आज्ञा रूपी चक्र के जैसे लगनेवाले वे (लक्ष्मण) उस स्वर्णमय नगर की वीथियों में प्रविष्ट हो चलने लगे। तारा को घेरकर खडे रहनेवाले (अंगद आदि) वानर कह उठे—अहो। वे आ गये हैं। अब क्या करें?

हे उत्तम कंकण धारण करनेवाली। उन (लक्ष्मण) का हृदय पुष्प के समान कोमल है। यदि आप राजप्रासाद के द्वार पर जाकर उन्हे रोक दें, तो वह वीर, जो विचारवान् हैं, उस ओर आँख उठाकर भी नही देखेंगे। यही उत्तम उपाय है।—यों हनुमान् ने कहा।

तब तारा ने (उनसे) यह कहकर कि, तुम सब लोग जाओ। मैं जाकर उन वीर (लक्ष्मण) के मन को शांत करूंगी—साहस के साथ पुष्पालंकृत केशोवाली अन्य सखियों सहित चल पडी। इधर अन्य वानर उनसे हटकर दूर पर खडे हो गये।

कंठ में रस्सी (का आभरण) धारण किये हुए हाथी जैसे लक्ष्मण, प्रसिद्ध वानरों के आनन्दपूर्ण आवास किष्किन्धा की राजवीथियों को पार कर विशाल राज-सौध में ज्यों ही प्रविष्ट होनेवाले थे, त्यों ही सहज सुगंध भरित केशोवाली तारा उनके मार्ग के मध्य उन्हें रोककर खडी हो गई।

मनोज्ञ लावण्य, धवल चंद्र सदृश मंदहास, सुन्दर कटि, उत्तम तथा नित्य यौवन पूर्ण मृदु स्तन—इनसे युक्त उत्तम मयूर तुल्य रमणियों के साथ वह तारा उस श्रेष्ठमार्ग को रोके खडी रही।

रमणियों की सेना ने दृढता से (लक्ष्मण को) इस प्रकार घेर लिया कि (लक्ष्मण के) धनुष तथा करवाल उनके आभरणों में चमक उठे। उन (रमणियों) के मंजीर, जिनमें छोटे छोटे कंकड भरे थे, बज उठे। मेखलाएँ भी बडा कोलाहल कर उठी। सर्वत्र विविध भ्रू लताएँ फैल गई।

शब्दायमान नूपुर नगाडे बने थे। रमणियों के जघन बड़े रथ थे। परस्पर अनुरूप नयन युगल बरछे थे। कठोर भौहें युद्ध करनेवाले धनुष थी। इस प्रकार जब वे रमणियाँ घेरकर खडी हो गई, तब स्वयं गौरव से भी गुरु होनेवाली भुजाओंवाले उन (लक्ष्मण) का

शात न होनेवाला क्रोध भी शात हो गया। वे अपने सिर को झुकाकर उनकी ओर दृष्टि उठाने से भी सकोच करते हुए खडे रहे।

लक्ष्मण, अपना कमल वदन नीचा किये, अपने विशाल धनुष को धरती पर टेके, ऐसे खडे रहे, जैसे अपनी साँसो के बीच खडे हो। तब मनोहर कचो, परिशुद्ध हृदय और दीर्घ नयनोवाली तारा, उन वानर रमणियो मे से, जो धरती की अप्सराएँ जैसी थी, पृथक होकर गद्गद स्वर मे ये वचन कहने लगी—

हे वीर। हमारा यह बडा भाग्य है कि तुम हमारे इस घर मे पधारे हो। अनतकाल तक तप करने पर ही ऐसा भाग्य प्राप्त होता है, अन्यथा इन्द्र आदि के लिए भी ऐसा भाग्य दुर्लभ है। (तुम्हारे आगमन से) हम कर्मरहित हो उत्तम गति प्राप्त कर चुकी। इससे बढकर अन्य क्या सुकृत हो सकता है?

फिर, सगीत से भी मधुर बोलीवाली उस तारा ने प्रश्न किया—हे वीर। तुम उग्र रूप धारण करके यहाँ आये हो। तुम्हे देखकर वानर सेना (तुम्हारे) आगमन का कारण न जानने से भयभीत हो रही है। तुम्हारा क्या उद्देश्य है? हे प्रभो! आज्ञा रूपी चक्र को प्रवत्तित करनेवाले (चक्रवर्त्ती श्रीराम) के चरण युगल को कभी न छोडनेवाले तुम अब (उन्हें छोडकर) किस कार्य से यहाँ आये हो?

पुष्पहार भूषित वक्षवाले (लक्ष्मण) करुणा से आर्द्र हुए। उनका क्रोध कम हुआ। यह सोचते हुए कि कौन यह वचन कह रही है, उस तारा के मुख को, जो मानो दिन मे धरती पर अवतीर्ण उज्ज्वल पूर्ण चन्द्र जैसा था, निहारकर देखा। तब उसे देख कर उन्हे अपनी माताओ का स्मरण हो आया, जिससे वे व्याकुल हो उठे।

मगल सूत्ररहित, रत्नमय अन्य आभरणो से हीन, सुगधित मधुपूर्ण पुष्पहार से आभूषित, कुकुम, चदन आदि के रस से अलिप्त, पीन एव तापमय स्तनो तथा क्रमुकवृक्ष सदृश अपने कठ को (अपने आँचल से) ढके हुए उस नारीरत्न (तारा) को देखकर उदार स्वभाववाले वे (लक्ष्मण) अपने नयनो मे अश्रु भरे खडे रहे।

उन (लक्ष्मण) के मन मे यह विचार उठने लगे कि मेरी दोनो माताएँ (अर्थात्, कौसल्या और सुमित्रा) इसी वेश मे रहती होगी, वे शिथिलचित्त होकर दीर्घकाल तक वैसे ही खडे रहे। फिर, यह सोचकर कि उनसे पूछे गये प्रश्नो का उन्हे कुछ उत्तर देना है, सुन्दर कुतलोवाली उस (तारा) को देखकर अपने उद्दिष्ट कार्य के बारे मे यो कहने लगे—

सूर्यपुत्र सुग्रीव, मनुकुल के श्रेष्ठ नरेश (राम) के प्रति दिये अपने इस वचन को कि 'मै अपनी सेना के साथ आपकी देवी का अन्वेषण कर उनका समाचार प्राप्त करूँगा' भूल गया है। मेरे अग्रज ने आदेश दिया है कि तुम शीघ्र जाकर उस सुग्रीव का हाल जानकर आओ। इसलिए मै यहाँ आया हूँ। उसके उत्तम राज्य शासन का हाल तुम बताओ—लक्ष्मण ने कहा।

हे प्रभु! क्रोध न करो। छोटे लोगो के अपराध को क्षमा करके तुम शात हो जाओ। इस प्रकार क्षमा कर सकनेवाला तुम्हारे अतिरिक्त और कौन हैं? वह अपने वचन

को भूला नही है। उसने ससार म सर्वत्र अपने अनेक दूतों को भेजा है और स्वय स्थान — वानरो की सेना के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा है। (तुम लोगों ने) उपकार का प्रत्युपकार भी क्या सभव है?

सहस्र कोटि वानर दूत, सेनाओं को बुला लाने के लिए (सुग्रीव की) आज्ञा से गये हैं। उनके लौट आने का समय भी आ गया है। तुम जो शरणागत के लिए माता से भी अधिक हितकारी हो, अपने क्रोध का शात करो। यही धर्म है, यदि अपराधी ही न हो, तो दडनीय कौन होगा?[1]

तुम लोगो ने अपने शरणागत को अभयदान देकर जो अपार सपत्ति प्रदान की है उसे प्राप्त कर यदि वह कभी तुम्हारी आज्ञा का उल्लघन करे, तो वह भी तुम्हारे ही काय का परिणाम होगा न? स्त्री के निमित्त होनेवाले युद्ध म (अपने मित्र के साथ जाकर) यदि कोई अपना शरीर न त्याग करे, तो क्या उसकी मित्रता टिक सकेगी?

तुम सरल स्वभाववाले ने उग्र शत्रु को मिटाकर (सुग्रीव को) राज्य का वैभव प्रदान किया और उसके साथ शाश्वत रहनेवाला महान् उपकार किया है। यदि वही तुम्हारी उपेक्षा करे, तो अपनी इस क्षुद्रता के कारण वह अपना महत्त्व ही नहा खो बैठेगा, किंतु इसी जन्म म दारिद्र्य को पाकर इह एव पर दोनों लोकों के सुख से वचित हो जायगा।

उस समय, युद्ध कुशल वाली के प्रताप को मिटानेवाला एक ही बाण तो था। अब (यदि तुम इस सुग्रीव को मिटाना चाहो तो) तुम्हे किसकी सहायता अपेक्षित है? तुम्हारे धनुष से बढकर तुम्हारा अन्य सहायक कौन है? तुम्हे तो देवी का अन्वेषण करने वाले लोगो की आवश्यकता है। तुम्हारे चरणो की शरण म आये हुए (सुग्रीव आदि) जन तुम्हारा काय करके कृतार्थ होगे।

तारा के ये वचन सुनकर बहुश्रुत लक्ष्मण, करुणार्द्र होकर मन म लज्जा का अनुभव करता हुआ खडा रहा। उसको इस दशा म देखकर और समझकर कि, इनका क्रोध शात हो गया, घोर युद्ध म सहायक बननेवाले दृढ स्कधो से युक्त हनुमान् उनके समीप आया।

क्रोध के समय म भी अकुरित प्रेमवाले लक्ष्मण ने अपने समीप आकर चरणों को नमस्कार करके खडे हुए हनुमान् को देखकर कहा—तुम तो अपार शास्त्र ज्ञान से युक्त हो। तुम भी कैसे पूर्व घटित वृत्तात को भूल गये? तब वचन-चतुर हनुमान् ने उत्तर दिया—हे प्रभो! सुनो—

अविकृत प्रेमवाली माता का, पिता का, गुरु का, दिव्य शक्ति से युक्त ब्राह्मणो का, गाय का, शिशुओ का और स्त्रियों का वध करनेवालों का भी कुछ प्रायश्चित्त हो सकता है। किन्तु, अनश्वर उपकार को भूल जाने का भी क्या कोई प्रायश्चित्त हो सकता है?

हे स्वामिन्! आप और वानराधिप सुग्रीव में जो सच्चा स्नेह उत्पन्न हुआ, वह

---

[1] भाव यह है कि जो अपराध करे और दड के योग्य हो वही क्षमा के योग्य भी होता है। यदि कोई अपराधी न हो और दडनीय भी न हो, तो क्षमा का भाव कहा रहेगा? —अनु०

मेरा ही तो काय था। यदि वह मैत्री मिट जाय, तो उस पाप से क्या कोई मुक्त हो सकता है? उस कारण से हमारा भी चित्त मलिन हो जायगा न?

हे हमारे प्रभु! (हमारे) तप, सुकृत, धम देवता तथा अन्य सब कुछ आप ही हैं। ऐसा मेरा सुदृढ विश्वास है। पर, यह सब रहने दीजिए। यदि त्रिलोक की रक्षा करनेवाले आप क्रोध करें, तो हमारे लिए अन्य आश्रय क्या रहेगा? (आपकी) करुणा ही (हमारे लिए) गति है।

वानरराज (आपके काय को) भूले नही है। उन्होने बलवान् वानर सेनाओ को एकत्र करने के लिए स्थान स्थान पर दूत भेजे हैं और उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे है। इसीलिए विलंब हो रहा है। आप स्वयं धम के रक्षक हैं। यदि वह आपको दिये हुए अपने वचन को तोड़ दे, तो इस लोक में उसका जन्म ही व्यर्थ होगा और नरक से भी उसको मुक्ति नही मिलेगी।

हे मत्तगज सदृश वीर! हमसे उपकार पाये बिना ही जो हमारा उपकार करता है, उसके लिए, यदि आवश्यकता पडे, तो युद्ध में उसके सहायतार्थ जाकर, उसके शत्रुओं को निहत करना हमारा धम है। यदि हम उसके शत्रु का नाश न भी कर सके, तो कम से कम उन शत्रुओ से आहत होकर अपने प्राण तो त्याग सकते हैं। इससे बढ़कर ससार मे क्या उपकार हो सकता है?

हे प्रतापी सिंह सदृश! यहाँ अब आपका खडा रहना उचित नही है। यदि हमारे शत्रु जान लेंगे, तो उससे आपकी और हमारी मित्रता भंग हो जायगी। आपकी प्रदान की हुई संपत्ति को तथा आपके ज्येष्ठ भ्राता (राम सदृश) वानराधिप का अब चलकर देखें।

हनुमान् के वचन सुनकर पर्वत समान पुष्ट भुजाओवाले लक्ष्मण ने अपना क्रोध शांत करके मन में विचार किया—यह सुग्रीव, नई सम्पत्ति के प्राप्त होने से बेसुध हो गया है और अन्यत्र जाना नही चाहता है, अतएव संकीर्णबुद्धि हो गया है, यह राम की आज्ञा का उल्लघन करनेवाला नही है।

यों सोचकर फिर वीरकंकण भूषित चरण तथा बलिष्ठ भुजाओंवाले राजकुमार (लक्ष्मण) ने हनुमान् को देखकर कहा—अभी तुमसे एक बात और कहनी है, यह तुमसे कहना ही उचित है, तुम इसपर विचार करो, यह कहकर वह आगे कहने लगा—

मैंने अपनी आखों देखा है कि (सीता) देवी के अपहरण के कारण उत्पन्न क्रोध तथा मानभंग से उत्पन्न अग्नि किस प्रकार उनके प्राणों को सता रही है, राजधर्म छोडकर दूसरों पर अत्याचार करनेवाले पापियों को उचित दंड देने का मैंने निश्चय कर लिया है। उससे मुझे भले ही अपयश प्राप्त हो, फिर भी मुझे उसकी कोई चिन्ता नही है।

अपने कोप को शात करके मै जीवित रहता हूँ, तो यह अपने प्रभु को सान्त्वना देने के लिए ही, अनेक दिन व्यर्थ व्यतीत हो गये हैं, अन्यथा (हम दोनों के क्रोध से) त्रिभुवन भी दग्ध हो जायगे, देव भी मिट जायँगे, इतना ही नही, उत्तम धर्म भी विनष्ट हो जायँगे, अविनाशी प्रारब्ध कर्म को कौन मिटा सकता है?

प्रभु ने (पहले) तुमको देखा (तुम्हारे द्वारा मित्रता करके) आपत्ति के समय में तुम्हारे स्वामी (सुग्रीव) की सहायता की और मेरे समान ही उस (सुग्रीव) को भी अपना भाई समझा। इसी कारण से उन्होंने इतने दिन यहाँ व्यतीत किये हैं, अन्यथा एक धनुष की सहायता से ही विद्युत् सदृश देवी का अन्वेषण करना कोई बड़ी बात नहीं थी।

केवल आकाश में ही नहीं, किंतु इस सारे ब्रह्मांड में। जिसमें चतुर्दश भुवन, सात बड़े पर्वत और सात कुलपर्वत हैं। जहाँ भी सीताजी हों, उस स्थान को पहचान कर, उन्हें मुक्त करके लाना (श्रीराम के शर के लिए) कोई असंभव कार्य नहीं है, फिर भी उस दिन तुमलोगों ने जो वचन दिया था, उसकी उपेक्षा करना तुम्हारे लिए उचित नहीं।

तुम लोगों ने विलंब मात्र नहीं किया। किन्तु, चिरकाल से गर्व से फूले हुए राक्षसों को जीवित रहने दिया। देवताओं को दुःखी होने दिया। परम्परा में आगत शास्त्रज्ञान तथा होमाग्नि से युक्त मुनियों को विपदा में पड़ने दिया, पाप को बढ़ने दिया। क्रोध न करनेवाले (श्रीराम) को क्रुद्ध कर दिया। तुम्हारा तो इससे अंत ही हो जायगा—यों (लक्ष्मण ने) कहा।

उत्तम कुल में अवतीर्ण (लक्ष्मण) के यह कहते ही मारुति ने उनको नमस्कार करके कहा—हे प्राचीन शास्त्रों के ज्ञाता! बीती बातों को मन में न रखो। यदि हम लोग अपने ऊपर लिये हुए कार्य को पूर्ण नहीं करेंगे, तो हम मरण के योग्य हैं, इसका साक्षी धर्म ही है। आप भीतर आइए और अपने ज्येष्ठ भ्राता (सुग्रीव) से मिलिए।

स्वर्ण वलयों से भूषित धनुष को धारण करनेवाले (लक्ष्मण) यह कहकर कि, पूर्व में हमने तुम्हारे कहे अनुसार कार्य किया और अब भी हम तुम्हारे कहे अनुसार करने को तैयार हैं, सुग्रीव के मन की थाह लेने के लिए हनुमान् के संग चल पड़े।

तारा भी, भाले सदृश नयन, रक्तकुमुद सदृश अधर, धनुष सदृश ललाट, हंस की गति, कलापी तुल्य छवि, ध्वजायुक्त रथ सदृश जघन, मुक्ता सदृश दंत, बलिष्ठ बाँस-जैसी मृदु भुजाएँ, कोकिल सदृश ध्वनि, स्वर्ण कलश तुल्य स्तन, बिजली जैसी कटि, कुमिल (नामक) पुष्प सदृश नासिका, कालमेघ तुल्य केश—इनसे युक्त रमणियों के साथ वहाँ से (अंतःपुर में चली)।

वालिपुत्र (अंगद) भी चतुर मंत्रियों के साथ जाकर वीर (लक्ष्मण) के कमल सदृश चरणों पर नत हुआ और भयमुक्त हो खड़ा रहा। तब धनुर्धारी (लक्ष्मण) ने उससे कहा—हे वीर, तुम शीघ्र जाकर अपने पिता को मेरे आगमन का समाचार दो। अंगद 'हाँ!' कहकर उन्हें नमस्कार करके चला गया।

दीर्घ बाहुवाला (अंगद) वहाँ से चलकर अपने चाचा के सौध में प्रविष्ट हुआ। वहाँ सुग्रीव के सुन्दर चरणों को दृढ़ता से पकड़ लिया और उसे निद्रा से जगाकर कहा—उस महान् (राम) का अनुज आपके सौध के द्वार पर उपस्थित है। उसका क्रोध मीनों से भरे समुद्र से भी विशाल है। फिर, उसने सारा वृत्तांत भी सुनाया।

अविमुक्त निद्रावाला (सुग्रीव) रमणियों के चलने से उत्पन्न कोलाहल को सुनकर जाग पड़ा। पूर्वघटित किसी भी वृत्तांत को न जानने के कारण उसने अंगद से प्रश्न

किया। घने स्वर्णहारों तथा पुष्पहारों से विभूषित हे वीर! हमने कोई अपराध नहीं किया। ऐसी अवस्था में उनका हमपर क्रोध करने का क्या कारण है?

(तब सुग्रीव से अंगद ने कहा—) हे पिता! निश्चित तिथि को आप (श्रीरामचन्द्र के समीप) गये नहीं। अपार संपत्ति प्राप्त करके गर्व में फूल गये। उपकार को भूल गये। इन कारणों से (लक्ष्मण का) क्रोध भड़क उठा है। नीतिशास्त्र के पंडित हनुमान् ने उनका क्रोध शांत करने के लिए उनसे प्रार्थना की, तब (लक्ष्मण ने) हमें जीवित रहने दिया।

वानर वीरों ने (लक्ष्मण के) आगमन का वेग (उग्रता) देखकर किष्किन्धानगर के गगनचुंबी दरवाजे को बंद कर दिया और आसपास के एक भी पर्वत को छोड़े बिना, सब पर्वतों को लाकर (दरवाजे पर) रख दिया। फिर उमड़ते क्रोध के साथ उन (लक्ष्मण) से युद्ध करने के लिए सन्नद्ध हो खड़े रहे।

पौरुषवान् (लक्ष्मण) ने (वानरों का) वह कार्य देखकर अपने सुन्दर कमल सदृश चरण से (फाटक को) छुआ—(अर्थात्, पदाघात किया)। उनके छूने के पहले ही, दक्षिण से उत्तर तक फैली हुई, शिला निर्मित प्राचीर, सुदृढ नगर द्वार तथा फाटक पर चुने गये पर्वत, सब टूटकर बिखर गये और चूर चूर हो गये।

यह देखकर बलवान् वानर सेना किस दशा को प्राप्त हुई—मैं क्या कहूँ? कहाँ भागकर छिपी—मैं क्या कहूँ? (वानरों की) वह दशा देखकर माता (तारा) आभरण भूषित रमणियों के साथ, बिजली सदृश तथा पत्राकार बरछा धारण किये हुए (लक्ष्मण) के सम्मुख जाकर (उनके) मार्ग में खड़ी हो गई।

कुमार (लक्ष्मण) ने स्त्रियों की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा, मन ही मन उमड़नेवाले क्रोध के साथ खड़े रहे। तब नारी रत्न (तारा) ने मधुर वचन कहकर प्रश्न किया—हे उत्तम! हमारे यहाँ आपका यों आगमन कैसे हुआ? तब उन कुमार ने अपने आगमन का कारण कह सुनाया।

माता (तारा ने) उनके आगमन का प्रयोजन ठीक ठीक समझ लिया। उनके क्रोध को शांत करते हुए ये वचन कहे—(सुग्रीव) आपकी आज्ञा को नहीं भूला है। भयंकर सेना को शीघ्र लाने के लिए दूतों को पर्वतों तथा पत्थरों से भरी विविध दिशाओं में प्रेषित कर दिया है और उनके लौटने की प्रतीक्षा कर रहा है। यही अब घटित वृत्तांत है।—यों (अंगद ने) कहा।

(अंगद के यों) कहते ही, सूर्यपुत्र कह उठा— यदि वे (राम लक्ष्मण) क्रोध करके उठ आयेंगे, तो इस धरती में तथा स्वर्ग में कौन उनके सम्मुख खड़ा रह सकेगा? धनुर्वीर वह कुमार (लक्ष्मण) जब इस प्रकार क्रोध के साथ, शीघ्र गति से आया, तो मुझे समाचार दिये बिना तुम लोगों ने क्या किया?

तब अंगद ने उत्तर दिया—विविध पुष्प मालाओं से भूषित बलिष्ठ तथा उन्नत भुजावाले हे मेरे पिता! मैंने पहले ही आपसे निवेदन किया था। किंतु, तब आप मत्त होकर पड़े थे। अतः, आपने ध्यान नहीं दिया। फिर, अन्य कोई उपाय न देखकर मैंने

हनुमान् से जाकर कहा। अब शीघ्र ही आप जाकर (लक्ष्मण से) मिलें—यही कर्त्तव्य है।

(राम लक्ष्मण के प्रति) स्नेह से पूर्ण मनवाले (सुग्रीव) ने कहा—हे कुमार! उन्होंने मेरा जैसा उपकार किया है, क्या वह अन्य किसी के द्वारा संभव है? मुझे जो संपत्ति प्राप्त हुई है, क्या उसका कोई अंत भी है? उन्होंने (रामचन्द्र ने) मुझसे अपने भिन्न कष्टों को दूर करने की आशा की थी, उन्हें मैं मदिरा के नशे में पड़कर भूल गया। अब मैं उन्हें (लक्ष्मण को) देखने के लिए लज्जित हो रहा हूँ।

मुझसे जो कार्य हुआ है, इससे बढ़कर अज्ञान भरा कार्य और क्या हो सकता है। (मद्य पीने से) यह पत्नी है, यह माता है—ऐसा विवेक भी जब नहीं रह जाता तब अन्य धर्म के विषय में क्या कहना? यह (मद्य पान) पंच महापापों में एक है। यही नहीं, हम तो पहले ही से माया में पड़े हुए हैं, उसपर मद्य के नशे में भी चूर हो जायँ तो फिर क्या कहना?

अविनश्वर ज्ञान से युक्त महात्माओं तथा वेदों ने कहा है कि जो माया वशीभूत न होकर विवेक के साथ पापों से दूर रहते हैं, जन्म मरण के दुःख से मुक्ति पायेंगे। पर हम तो ऐसे हैं, जो मदिरा में पड़े हुए कीड़ों को निकालकर मद्य पी लेते हैं। हम ऐसे हैं, जैसे घर में लगी आग को घी डाल डालकर बुझाने की चेष्टा करते हैं।

वेद शास्त्र तथा अन्य सब यही कहते हैं कि यदि कोई अपना स्वरूप पहचान लगा, तो उसका क्षुद्र जन्म मिट जायगा। हम तो पहले से ही, आत्म स्वरूप को न पहचानने के कारण व्याधिपूर्ण गंदे शरीर को पाये हुए हैं। फिर, ऊपर से मद्य पीकर मति भ्रष्ट भी हो जायँ, तो क्या यह उचित होगा?

अभयदान देकर (शरणागत की) रक्षा करनेवाले, पंचेन्द्रियों पर नियंत्रण रखनेवाले, तत्त्वज्ञान (के समुद्र) में निमग्न रहनेवाले, सुख दुःख के द्वन्द्व को मिटानेवाले ऐसे व्यक्तियों को छोड़कर क्या वे लोग सद्गति पा सकते हैं, जो दूसरों की आँख बचाकर मद्य पीते हैं और संसार के सम्मुख प्रकट रूप में हँसते खेलते रहते हैं?

शत्रुओं के द्वारा कृत हानि को, मित्रों के द्वारा कृत उपकार को, अधीत विद्या को, प्रत्यक्ष देखे पदार्थों को, शास्त्रज्ञों के उपदेशों को, अपने को प्राप्त गौरव के कारण को, अपने को प्राप्त दुःख को—यदि कोई जान ले, तो इससे बढ़कर हितकारी ज्ञान उसके लिए और क्या हो सकता है?

मद्यपान करनेवाले में वंचना, चौर्य, असत्य, मोह, परंपरा के विरुद्ध विचार, शरणागत को छोड़ देने का स्वभाव, दंभ—ये सब (दुर्गुण) आकर निवास करते हैं। कमल पुष्प में निवास करनेवाली लक्ष्मी उन्हें तजकर चली जाती है। विष तो केवल खानेवाले के प्राण हरण करता है, किंतु नरक में नहीं पहुँचाता—(मद्यपान नरक का निवास भी देता है)।

मैंने सुना था कि मदिरा पान से हानि होती है, वह सुना हुआ वचन अब प्रत्यक्ष प्रमाणित हो गया। अब फिर कहने को क्या शेष रह गया है? हनुमान् की नय निपुणता

से मै बचा। अन्यथा उग्र गति से आनेवाले वीर के क्रोध से मेरी मृत्यु होने में क्या संदेह था ?

हे तात! इस मद्यपान[1] से उत्पन्न होनेवाले दुष्परिणाम से मैं भीत हो रहा हूँ। उसका कर से स्पर्श ही नहीं, मन से स्मरण करना भी अच्छा नहीं है। यदि मैं फिर, कभी उस (मद्य) की इच्छा करूँ, तो वीर (राम) के रक्त कमल समान चरण मुझे विनष्ट कर दें—इस प्रकार सुग्रीव ने कहा।

फिर, अनेक सद्‌गुणों से पूर्ण (सुग्रीव) ने उपर्युक्त प्रकार से कहकर अंगद को यह आज्ञा देकर प्रेषित किया कि तुम लक्ष्मण के स्वागतार्थ आवश्यक सामग्री लेकर स्वयं उनके समीप जाओ। वह स्वयं भी अपनी सहधर्मिणी पत्नियों तथा परिवार के व्यक्तियों के साथ विशाल सौध द्वार पर जा पहुँचा।

(लक्ष्मण के आगमन के समय) चंदन लेप, पुष्प, सुगंधित चूर्ण, (अगरु आदि) का सुरभित धूम, पंक्तियों में रखे हुए स्वर्ण कलश, दीपों की आवलियाँ, श्रेणियों में लटकनेवाले मुक्ताहार, वितानों में हिलनेवाले मयूरपंख, ध्वजाएँ, ऊँची ध्वनि करनेवाले शंख तथा मृदंग—ये सब वीथियों में भरे थे।

वह किष्किन्धानगर इस प्रकार शोभायमान हो रहा था कि उसकी शुद्ध, दृढ स्फटिकमय भित्तियों के मध्यभाग में तथा चारों ओर उत्तम रत्नों के बने स्तंभों के मध्यभाग में (लक्ष्मण की) परछाई पड़ने से दर्शकों के मन में संदेह होता था कि क्या सहस्रों वीर हाथ में धनुष लिये आ रहे हैं।

अंगद उस समय समीप आकर (लक्ष्मण के) चरणों पर प्रणत हुआ। तब लक्ष्मण ने उससे पूछा—हे तात! तुम्हारे महाराज कहाँ हैं? अंगद ने उत्तर दिया—हे वीर केसरी! वे पुण्यवान् आपका स्वागत करने के लिए मेघस्पर्शी सौध द्वार पर खड़े हैं।

चूड़ियों और कंकणों से भूषित करोंवाली वानर रमणियाँ सुगंधित चूर्ण और वस्त्रों को उछाल रही थीं और विशाल चामरों को हिला हिलाकर हवा कर रही थीं। श्वेत छत्र ऐसा सुशोभित हो रहा था, जैसा पूर्ण उज्ज्वल चन्द्रमा आसमान में चमक रहा हो—इस प्रकार कपिकुलराज, सुन्दर धनुष को धारण करनेवाले पराक्रमी वीर (लक्ष्मण) के सम्मुख आया।

पलाश पुष्प समान अधरोंवाली रमणियाँ अर्घ्य इत्यादि के लिए उपयुक्त सामग्री लिये आ रही थीं। नगाड़े मेघों के समान गरज रहे थे। ऋषिगण वेद पाठ कर रहे थे। संगीत नाद सब दिशाओं में फैल रहा था। इस प्रकार सुग्रीव आ रहा था, तो उसके नवीन वैभव को देखकर देवता लोग भी विस्मय में पड़ गये।

महिमावान् (लक्ष्मण) का स्वागत करने के लिए श्रीयुक्त सुग्रीव आ पहुँचा। (उसके साथ आनेवाली) स्पृहणीय स्तनोंवाली वानर स्त्रियाँ नक्षत्रों के समान चमक रही थीं और सुग्रीव स्वयं उदयाचल पर उदित होकर आकाश में दृष्टिगत होनेवाले, कलाओं से

१ मद्यपान-संबंधी ऊपर के कुछ पद्य प्रक्षिप्त-से लगते हैं।—अनु०

परिपूर्ण चन्द्रमा के समान शोभित था तथा उस उदयाचल पर उदित होनेवाले अपने पिता (अर्थात्, सूर्य) के समान प्रकाशमान था।

वीर लक्ष्मण ने अपने सम्मुख कपिकुल के राजा को प्रकट होते देखा। तब उनका क्रोध भडक उठा। किन्तु, उन्होंने धर्म की व्यवस्था का विचार करते हुए अपने क्रोध को निर्मल विवेक से शांत कर लिया।

उन दोनो ने लोह स्तभो तथा पर्वतो से भी भारी भुजाओ से परस्पर आलिंगन किया। फिर, वानर स्त्रियो तथा वानर वीरो के समुदाय के साथ स्वर्ण निर्मित सौध के भीतर जा पहुँचे।

कपिकुलाधिप ने पहले से तैयार किये हुए एक उत्तम आसन को दिखाकर (लक्ष्मण से) कहा—हे वीर। इसपर आसीन होओ। तब (लक्ष्मण) मन मे सोचने लगे कि जब लक्ष्मी के नायक (राम) तृणमय पृथ्वी पर विश्राम करते है तब ऐसे आसन पर बैठना मेरे लिए उचित नही है।

फिर (सुग्रीव से) कहा—पत्थर जैसे (कठोर) मनवाली कैकेयी के लिए उज्ज्वल रत्न किरीट को त्यागकर वन मे आये हुए मेरे स्वामी (राम) जब तृण शय्या पर सोते है, तब क्या स्वर्ण विनिर्मित, पुष्पालकृत मृदुल आसन पर बैठना मेरे लिए उचित है?

लक्ष्मण के यो कहने पर सूर्यपुत्र अपने कमल सदृश नयनो मे ऑसू भरकर खडा रहा। तब मनु के वश मे उत्पन्न उत्तम क्षत्रियकुमार (लक्ष्मण) पर्वत जैसे ऊँचे उठे हुए उस प्रासाद की फर्श पर बैठ गये।

युवक, वृद्ध, असख्य स्त्रियॉ—सब उस समय अश्रुमय नयनो और मलिन दृष्टि के साथ, कुछ कह न सकने के कारण मौन रहे। मन की व्यथा से विह्वल हो रहे और पचेद्रियो का दमन करनेवाले मुनियो के समान स्थित रहे।

महाराज (सुग्रीव) ने (लक्ष्मण से) कहा—आप यथाविधि स्नान करके मधुर भोजन करे, तो हम सब कृतार्थ हो जायगे। उसके यह कहने पर अजनवर्ण (राम) के अनुज कहने लगे—

दुःख और अपवाद हमारे पेट को भर रहे है। इसीसे हम जीवित है, तो अब हमे मधुर लगनेवाला अन्य पदार्थ क्या चाहिए? अत्यन्त बुभुक्षा के होने पर भी, यदि दुःख के कारण मन फिरा हुआ रहता है, तो अमृत भी तो कडुआ ही लगता है।

प्रभु की देवी का अन्वेषण करके उनका पता लगा दोगे, तो तुम मानो हमारे अपयश रूपी अग्नि को बुझाकर हमे गगाजल मे स्नान करानेवाले होओगे। समुद्र मे उत्पन्न अमृत पिलानेवाले होओगे और हमे अन्य कोई दुःख नही रह जायगा।

पत्ते, कद, शाक फल आदि प्रभु के आहार करने के पश्चात् शेष का आहार मै करता हूँ। वही मेरा भोजन है। उससे अन्य कुछ मै नही खा सकता। यदि वैसा कुछ खाना चाहूँ, तो वह कुत्ते के जूठन के बराबर होगा। इसमे सन्देह नही।

हे राजन्। इतना ही नही, एक बात और सुनो। यहाँ से जाकर मै शाक कद

आदि लाकर सन्नद्ध करूँगा, ता तुम्हारे मित्र (राम) भा ान कर सकग, इसलिए अब एक क्षण भी मेरा यहाँ विलम्ब करना उचित न ा हे या लक्ष्मण न क ा ।

वानरपति ने यह कहकर कि जब वह मनुकुलाधिप दुःख म डूबा है, तब म सुखी जीवन व्यतीत कर रहा हूँ—यह कम वानर जाति म उत्पन्न हम जैस लाग ही कर सकत ह, व्याकुल हाकर अत्यन्त दुःखी हुआ ।

सूयपुत्र तब झट उठा, अश्रु बहाता हुआ, एश्वयमय जीवन स विरक्त हाकर, अत्यत दुःखी तथा व्याकुल चित्त क साथ, उत्तम (राम) क निकट जान की इच्छा से हनुमान् का देखकर कहने लगा—

ह नीति निपुण । गये हुए दूता क द्वारा जो सना लाई जायगी, उसका तुम अपने साथ ले आना । उस समय तक तुम यही रहो ।—या हनुमान् का आदेश देकर शीघ्र प्रभु के आवास के लिए चल पडा ।

अरुण किरणवाल (सूय) का पुत्र आशका स मुक्त चित्तवाला (लक्ष्मण) का आलिगन करके शीघ्रता से अपने भाई (राम) क आवास की ओर चल पडा । उसक साथ अगद भी चला । वानर वीर आग आग जा रह थ । वानर रमणियो का मन उनके पीछे पीछे जा रहा था । मार्ग पीछे पीछे छूट रहा था ।

नो सहस्र कोटि वानर उसके आग ओर पीछे ओर दोनो ओर जा रह थ । अति उत्तम बन्धुजन समीप म चल रहे थे । बिजली के समान उज्ज्वल आभरण धारण किय हुए सुग्रीव यो जा रहा था । उस समय—

ध्वजाओ के समुदाय सवत्र भर गये । बजनेवाले नगाड़ो की ध्वनि सवत्र भर गई । शख सवत्र बज उठ । चमकनेवाले आभरणो की काति रूपी विद्युत् पुज सवत्र भर गये । (धरती से) धूल उठने लगी और आकाश म सवत्र छा गई ।

स्वण, मुक्ता, मनोहर एव महीन वस्त्रो, उज्ज्वल रत्नो, स्फटिक खडो तथा रजत खडो से निर्मित शिविकाएँ समीप म आ रही थी, श्वेत छत्र आकाश म ऊचे उठे मनोहर ढग स आ रह थे ।

रामचन्द्र क अनुज क उज्ज्वल अरुण चरण धरती पर चलन स, सूय पुत्र भी, अपन चरणो क वीर वलयो को शब्दित करता हुआ, अपनी पालकी क पीछे पीछे (पैदल ही) धरती रूपी रथ पर जा रहा था ।

वीर ककण तथा मनोहर धनुष धारण करनेवाले लक्ष्मण तथा सुग्रीव, इतनी शीघ्रता स चलकर रामचन्द्र के आवास पर्वत पर पहुँचे कि वानरो की सना पीछे रह गई, अगद भी उनके पाश्व से पीछे रह गया । किन्तु, उनका (रामचन्द्र क प्रति) प्रेम आगे आगे जा रहा था ।

स्पृहणीय अपार सपत्ति की आसक्ति त्यागकर प्रभु क चरणो की सवा करने क लिए भक्ति सहित आगत सुग्रीव, नित्य धर्म स्वरूप (राम) के चरणो की नित्य सेवा करते रहनेवाले भरत की समता करता था ।

अपने से कभी पृथक न होनवाले (अनुज लक्ष्मण) क चल जाने स एकाकी

रामचन्द्र इस प्रकार स्थित रहे, जिस प्रकार वे समस्त सृष्टि के विनष्ट हो जाने पर एकमात्र अवशिष्ट रहते हैं। उन प्रभु के रक्त कमल जैसे चरणों का सुग्रीव ने अपने शिर से यों स्पर्श किया कि उसके वक्ष पर के रत्नहार तथा मुक्ताहार शब्द करते हुए धरती पर लोटने लगे।

इस प्रकार, सुग्रीव के प्रणाम करने पर, प्रभु ने अपनी दीर्घ लंबी मनोहर बाहुओं को फैलाकर उसे अपने वक्ष से गाढालिंगन कर लिया। तब उनके वक्ष पर स्थित लक्ष्मी भी पीडित हो उठी। प्रभु का उमडता हुआ क्रोध शांत हो गया और पूर्ववत् प्रेमभाव उमड आया। फिर, उससे आसीन होने को कहा।

रामचन्द्र ने (सुग्रीव को) अपने निकट सुखासीन करके पूछा—तुम्हारा शासन ठीक चल रहा है न? कोई विरोध नहीं है न? तुम्हारी मेघ सदृश भुजाओं के द्वारा सुरक्षित सब प्राणी, तुम्हारे श्वेत छत्र की छाया में तापहीन होकर रहते हैं न?

अर्थ गर्भित उन वचनों को सुनकर गगनचारी एक चक्रवाले रथ पर चलनेवाले (सूर्य) का पुत्र कह उठा—युगांतकालिक घने अंधकार से आवृत पृथ्वी के लिए जब आप सूर्य बने हुए हैं और मैं आपकी कृपा का पात्र बना हूँ, तो ये कार्य (शासन आदि कार्य) असाध्य कैसे हो सकते हैं?

सुग्रीव ने फिर कहा—हे महिमाशालिन्! हे प्रभु! आपकी मधुर कृपा से मैं संपत्ति प्राप्त कर सका। किन्तु, आपकी आज्ञा का उल्लंघन कर मैंने अपनी क्षुद्र वानर बुद्धि को प्रकट किया।

दीर्घ दिशाओं में जाकर, अन्वेषण कर (देवी सीता को) लाने की शक्ति रखकर भी मैंने उस प्रकार नहीं किया। किन्तु, उत्तम आभरणधारिणी (सीता) के वियोग में जब आपका निर्मल अंतःकरण व्याकुल हो रहा था, तब मैं सुखी जीवन व्यतीत करता रहा।

वीर कंकण तथा दृढ धनुष धारण करनेवाले हे उदारमना प्रभु! जब मेरा स्वभाव और विचार ऐसा है और आपकी मनोदशा ऐसी है, तो मैं भविष्य में क्या कर सकता हूँ। क्या पराक्रम दिखा सकता हूँ? इनके बारे में आपसे क्या कहूँ? (अर्थात्, अपने कार्य के बारे में मैं आपसे कुछ निवेदन करने का साहस नहीं कर पा रहा हूँ।)

लक्ष्मी का निरंतर आवास बने वक्षवाले प्रभु ने सुग्रीव से कहा—बडी कठिनाई से व्यतीत होनेवाला वर्षाकाल भी बीत गया। तुम्हारा यह अधिकार पूर्ण वचन भी ऐसा है कि उससे (देवी सीता का अन्वेषण) कार्य पूरा करने की तुम्हारी दृढता व्यक्त होती है। अतः, वह (वचन) क्षुद्र कैसे हो सकता है? तुम (मेरे लिए) भरत समान हो। ऐसे (दीनतापूर्ण) वचन कैसे कह रहे हो?

फिर, आर्य ने पुनः प्रश्न किया कि विशद ज्ञानवाला मारुति कहाँ है? तब सूर्य पुत्र ने कहा—वह जल भरे समुद्र के समान विशाल सेना को लेकर आ रहा है।

एक सहस्रकोटि दूत विशाल वानर सेना को लाने के लिए शीघ्र गति से गये हैं। सेना को जुटाकर लाने की अवधि भी पूरी होनेवाली है। अतः, आज या कल, बलवान वानर सेना के साथ वह (हनुमान्) भी आ जायगा।

आपकी नौ सहस्र कोटि की एक विशाल सेना अब मेरे साथ है। दूसरी सेना भी

अब मेरे साथ है। हमारी सेना के आने की अवधि तो कल ही है। जब सेना भी आ जाय, तो तब आगे के कर्त्तव्य के बारे में विचार करना उचित होगा।— यों सुग्रीव ने कहा।

प्रेम भरे रामचन्द्र ने कहा—हे वीर! तुम्हारे लिए यह (सेना संगठन) कोई कठिन कार्य नहीं है। तुम्हारी विनम्रता भी अच्छी है। फिर, आज का दिन का अधिक भाग बीत गया है। अब तुम जाओ, अपनी सेना के आने के पश्चात् आओ—यों प्रभु के आदेश देने पर उन्हें प्रणाम करके सुग्रीव विदा हुआ।

अरुण कमलदल सदृश नेत्रवाले (रामचन्द्र) ने अंगद के प्रति मधुर वचन कहकर यो आदेश दिया कि हे तात! तुम भी जाकर अपने पिता (सुग्रीव) के साथ विश्राम करो। फिर, अपने भाई तथा अपने ध्यान में स्थित (सीता) देवी के साथ स्वयं भी उस रात को वहीं विश्राम करते रहे।

अति महान् कीर्त्तिवाले ने (अपने अनुज के प्रति) आदेश किया कि सुग्रीव के पास तुम्हारे जाने तथा वहाँ घटित अन्य सभी घटनाओं का वृत्तांत सुनाओ। तब सबको सत्य रूप में समझने की शक्ति रखनेवाले पराक्रमी लक्ष्मण ने (सारा वृत्तांत) कह सुनाया। (१-१६)

●

अध्याय ११

सेना-सदर्शन पटल

उस दिन रात को वे (रामचन्द्र) वहीं ठहरे। प्राची दिशा के स्वर्णमय उन्नत गिरि पर सूर्य का प्रकाश फैलने के पहले ही किस प्रकार, बलवान् वानर दूतों के द्वारा लाई गई पर्वत समान सेना वहाँ आ पहुँची—अब यह हम उसका वर्णन करेंगे।

शतबली नामक वानर वीर, दस लाख गजों के बल से युक्त एक सहस्र वानर सेनापतियों को तथा सुचारु रूप से दलों में विभाजित, शरद् समान उज्ज्वल, अति मनोहर दस सहस्र कोटि संख्यावाली वानर सेना को साथ लेकर आ पहुँचा।

सुषेण नामक उत्तम वानर वीर, मेरु पर्वत को उखाड़नेवाली, सचेत होकर मदिरा का पान करने से स्वच्छ मनवाली शत सहस्र कोटि वानर सेना को साथ लेकर आ पहुँचा।

अमृत सदृश बोलीवाली रूमा का पिता, अड़तालीस सहस्र कोटि वानर सेना को लेकर आ पहुँचा, जो अपार समुद्र को भी क्षणमात्र में कीचड़ बना सकती थी।

इस धरती तथा ऊपर के लोकों में भी अपनी कीर्त्ति को सुस्थिर बनानेवाले उत्तम (हनुमान्) को जन्म देनेवाला केसरी (नामक वानर वीर) पचास लाख कोटि, उन्नत पर्वत सदृश कंधोंवाले वानरों की सेना को लेकर ऐसे आ पहुँचा, मानो कोई समुद्र ही आ गया हो।

क्रोध करने पर एक एक वानर सूर्य को भी प्रतापहीन कर देने तथा अपने बल का

अभिमान करने पर एक एक वानर अकेले ही सारी धरती को मिटा देने की शक्ति रखनेवाले प्रसन्न चित्तवाले चार सहस्र वानर वीरों की सेना को सचालित करते हुए, गवाक्ष आ पहुँचा।

अति बलवान् धूम्र नामक ऋक्षपति, दो सहस्र कोटि भालुओं की विशाल सेना का साथ लिये आ पहुँचा। ये ऋक्ष उज्ज्वल दंतवाले उस आदि वराह के सदृश बलवान् जिसने अपने दाँत पर धरती को उठा लिया था और ऋक्ष, जो इतने भयकर रूपवाले थे मानो ऊँचे तथा विशाल, पर्वतों को अपने एक रोम कूप में समा सकते थे।

चलते फिरते किसी पर्वत के सदृश रूपवाला क्रोध के कारण स्मरण करने मात्र विष एवं वज्र जैसे ही कँपा देनेवाला, पनस नामक वीर बारह सहस्र कोटि कठोर क्रोधवाले वानरों की सेना को लेकर आ पहुँचा।

नील नामक वीर, वज्रघोष तथा समुद्रघोष को भी परास्त करनेवाली अपार कोलाहल ध्वनि से युक्त अतिविशाल, बलवान् तथा कठोर यम की समानता करनेवाले पचास करोड वानरों की सेना लेकर आया।

दरीमुख नामक वानर वीर, भारी भुजावाले, दृढ वक्षवाले, बलशाली स्थिर (स्वभाववाले), उग्र, कठोर नेत्रों से अग्नि उगलनेवाले तथा पर्वत से भी अधिक विशाल आकारवाले तीस करोड वानरों की सेना रूपी समुद्र को लेकर आ पहुँचा।

प्रख्यात गज नामक वानर वीर, तीस हजार कोटि की संख्या में, संसार भर में फैले हुए कठोर क्रोध से सिंह समूह को भी कँपा देनेवाले (सेना रूपी) समुद्र के साथ आया जिसकी सेना को देखकर ऐसा विचार होता था कि इसके लिए यह धरती भी पर्याप्त नहीं है। और दूसरी एक विशाल धरती की आवश्यकता है।

विशाल पर्वत के सदृश कधोंवाला जाबवान् समुद्र की वीचियों जैसे लपककर चलनेवाली एक सहस्र साठ सौ करोड संख्यावाली, समस्त प्रदेश पर छाई हुई चलनेवाली बडी वानर सेना को साथ लेकर आ पहुँचा।

असमान बल से युक्त दुर्मुख नामक वानर वीर, कमल में उत्पन्न ब्रह्मा के यह आदेश देने से कि तुम जाकर राक्षसों को मिटा दो, दस लाख के दलों में विभाजित दो करोड वानर सेना को साथ लेकर आया।

पुष्प मालाओं से अलंकृत, पर्वत-समान विशालकाय द्विविध नामक वीर कठोर क्रोधवाले अनेक लाखों वानरों को लेकर ऊपर के गगन और पृथ्वी को धूल से आवृत करता हुआ आ पहुँचा।

साकार विजय जैसे रूपवाला, प्रभूत पराक्रमवाला, मैन्द नामक वानर, मल्लयुद्ध में श्रेष्ठ गजगोमुख नामक वीर के साथ तथा अति क्रोधवाली शतलक्षसंख्य वानर सेना के साथ आ पहुँचा।

कुमुद नामक वीर, चरखी जैसे (वेग से) चलनेवाली, पवन से भी अधिक वेगवाली तथा यम से भी अधिक कठोर, इस प्रकार चलनेवाली जैसे उज्ज्वल वीचियोंवाला समुद्र अपने स्थान से उमडकर जा रहा हो—ऐसे नौ करोड बलवान् वानरों की सेना को लेकर आ पहुँचा।

युगांत में समुद्र के उमड़ आने पर भी नाश न होनेवाला, पद्ममुख नामक वानर, उनचास कोटि बलवान्, सुन्दर तथा दीर्घ भुजाओंवाले वानरों की सेना लेकर ऐसे आ पहुँचा कि धरती की धूल उड़कर गगन में छा गई।

ऋषभ नामक वीर नौ सहस्र कोटि सशक्त भुजाओंवाले उन वानरों की सेना को लेकर आ पहुँचा, जिनकी भुजाएँ युगांत में भी विनष्ट न होनेवाले ऊँचे पर्वतों के समान बलवान थीं।

दीर्घपाद, विनत और शरभ नामक वानर वीर तरंगों से पूर्ण नीले महासमुद्र से भी अधिक विशाल रूपवाले, किसी के लिए भी गणना करने में अगम्य, क्रोध मुखवाले करोड़ों वानरों की सेना को लेकर, एक के पश्चात् एक ऐसे आ पहुँचे कि ब्रह्मांड के अंतर में और उसके बाहर भी धूलि व्याप्त हो गई।

मनोहर सहस्र किरणोंवाले सूर्य को देखकर भी भयभीत न होनेवाला हनुमान, पच्चीस सहस्र कोटि वानरों को लेकर ऐसे आ पहुँचा कि सारी दिशाओं का अंतर छोटा ज्ञात होने लगा और धरती एक ओर झुक गई।

देवशिल्पी विश्वकर्मा का मनोहर तथा सत्यनिष्ठ नल नामक पुत्र, शीघ्र एकत्र हुए लक्ष कोटि वानरों की सेना को लेकर आ पहुँचा, तो ब्रह्मा भी अनुमान नहीं कर सके कि उसकी सीमा क्या है और यम भी भ्रांत तथा व्याकुलचित्त हो उठा।

कुंभ, शंख इत्यादि वानर सेनापतियों के साथ आनेवाली वानर सेना की गणना करना इस संसार के लोगों के लिए असंभव है। यों कह सकते हैं कि वह सेना उतनी थी, जितनी राघव के तूणीर में बाण थे। इसके अतिरिक्त दूसरे ढंग से उसका वर्णन करना असंभव है।

यदि वह वानर सेना निमज्जित हो, तो सप्त महासमुद्रों का भी जल सूख जायगा और उसके स्थान में श्वेत धूलि फैल जायगी। यदि (वह सेना) एक ओर झुके, तो भूमंडल और महामेरु भी एक साथ झुक जायेंगे। यदि (वह सेना) उठकर चलने लगे, तो इस पृथ्वी में तिल भर भी स्थान नहीं रह जायगा। यदि क्रोध कर उठे, तो कराल अग्नि तथा सूर्य भी झुलस जायेंगे।

धरती पर एकत्र हुई उस वानर सेना की गणना करने लगे, तो सत्तर सहस्र ब्रह्माओं से भी उसकी गणना नहीं हो सकती। यदि (वह वानर सेना) खाने लगे, तो सभी अंडगोल उनके लिए एक एक मुट्ठी भरकर खाने के लिए भी पर्याप्त नहीं होंगे। यदि (वह सेना) आँख उठाकर देखे, तो ललाट में अग्निमय नेत्रवाले (शिव) को भी मात कर देगी।

वह वानर सेना यदि तोड़ने लगे तो उत्तर के मेरु को भी तोड़ देगी। यदि टकराना चाहे, तो विशाल आकाश के ढक्कन से भी टकरा जाय। यदि पकड़ना चाहे, तो महान् प्रभंजन को भी पकड़ ले। यदि पीना चाहे, तो सप्त समुद्रों के जल को भी अंजलि में भरकर पी जाय।

वे वानर, प्रख्यात दिशाओं के उस पार भी कूद जा सकते थे। अपने प्रभु अनुपम सुग्रीव के सोचे हुए प्रत्येक कार्य को तुरत कर देने की क्षमता रखते थे। ऐसे सडसठ

सरया म वानर-सेनापति उत्तरोत्तर उमड आनेवाली विशाल सेना का एकत्र करक जनायास ही आ पहुँचे।

व वानर सेनापति ऐसी वानर सेना को लेकर आय जा सात समुद्रों की विस्तीर्णता से भी अधिक विशाल थी। 'एक चक्र तथा उत्तम अश्ववाले रथ पर चलनेवाले सूर्य के पुत्र (सुग्रीव) के चरण जीते रहे।'—यों जयघोष के साथ उन्होंने प्रणाम करके पुष्प बरसाये।

उस प्रकार की वानर सेना के आ पहुँचते ही सूर्यपुत्र, दशरथ पुत्र के निकट शीघ्र जा पहुँचा और कहा—पाप कर्मा के लिए यम सदृश आपकी यह विशाल सेना विचार करने के पहले ही (अर्थात्, अति शीघ्र ही) आ एकत्र हुई है। आप उसे देखने की कृपा करें।

प्रभु, प्रसन्न हुए और उनके मन के समान ही उनका मुख भी विकसित हो उठा। व इस प्रकार आनंदित हुए, जैसे देवी को ही देख रहे हों। वहाँ स्थित एक ऊँचे पर्वत के शिखर पर वे जा पहुँचे। सूर्य कुमार फिर, उस सेना के मध्य लौट गया।

सुग्रीव ने उस अपार वानर सेना को यह आदेश दिया कि वह पंद्रह योजन के विस्तार में, उत्तर से दक्षिण की ओर पंक्तियों में खडी हो जाय। फिर, अतिक्रोधी वानर सेनापतियों को साथ लेकर वह (रामचन्द्र के निकट) लौट आया।

सुग्रीव लौटकर रामचन्द्र के समीप आ पहुँचा और बोला—हे पराक्रमी, विजय शील शूल धारण करनेवाले! आप उस ओर दृष्टि डालें—यों कहकर क्रमश (अपने सेना पतियों का) परिचय कराया और वहीं खडा रहा। इधर एकत्र वानर सेना तरंगायमान क्षीर सागर के समान बडे कोलाहल के साथ बढ चली।

अष्ट दिशाओं, धरती के विस्तृत प्रदेश, देवताओं के आवासभूत ऊपर के वर्तुलाकार लोक तथा वीचियों से पूर्ण सप्त समुद्रों को भी आवृत करके धूलि नीचे से ऊपर तक उठ चली, जिससे यह ब्रह्मांड धूलि से भरे हुए कुंभ के समान दीखने लगा।

यदि कहें कि (इस सेना का) समुद्र उपमान हो सकते हैं तो (यह कथन अनुचित होगा, क्योंकि) उन समुद्रों के परिमाण का पहचाननेवाले लोग भी हैं—(किन्तु उस वानर सेना के परिमाण को जानना कठिन था।) अब विद्वान् उस वानर-सेना का अन्य क्या उपमान दे सकते हैं? बीस दिन पर्यंत, दिन रात लगातार देखते रहने पर भी राम लक्ष्मण उस सेना के मध्य को भी नहीं देख पाये। फिर, उसकी अंतिम सीमा को कैसे देखा जाय?

रामचन्द्र—जो ऐसे थे कि विजय प्राप्त करने में उनके उपमान वे स्वयं ही थे और ऊपर के लोकों में, सुन्दर समुद्र से आवृत धरती पर तथा नागों के लोक में उनका उपमान अन्य कोई नहीं था, अपनी आँखों से, मन से, शास्त्र ज्ञान से तथा सहज ज्ञान से भली भाँति विचार करके, महिमापूर्ण अपने अनुज को देखकर कहने लगे—

हे विकसित पुष्पों की माला धारण करनेवाले! हमने अपनी बुद्धि से, इस विशाल वानर सेना के कुछ भाग को तो किसी प्रकार देख लिया। इसकी सीमा को देखने का भी

कोई उपाय है ? लोग कहते हैं कि उन्होंने इस भूमि में समुद्र की सीमा को देखा है। किन्तु, इस सेना समुद्र की सीमा को भली भाँति देखनेवाला कौन है ?

हे सुरभित पुष्पमाला को धारण करनेवाले ! ईश्वर के स्वरूप को, दस दिशाओं को, पंच महाभूतों को, सूक्ष्म ज्ञान को, उच्चारित शब्दों को ,विभिन्न धर्मों के परस्पर के विभेद को तथा यहाँ एकत्र इस दोषहीन वानर सेना को, संपूर्ण रूप से कौन देख सकता है ?

यदि हम इस विशाल सेना को यहाँ रोककर संपूर्ण रूप से देखने लगे और फिर कार्य करने लगेंगे, तो उसमें अनेक दिन व्यतीत हो जायेंगे। अत , ठीक ठीक विचार करके कर्त्तव्य कर्म पर मन लगाना ही उचित होगा—रामचन्द्र के यों कहने पर लक्ष्मण ने हाथ जोडकर कहा—

हे देव ! यहाँ एकत्र इन वानर वीरों के लिए तीनों लोकों में जो कार्य करना है, वह अत्यन्त सुलभ है। इनके लिए अमुक कार्य कठिन है—यह कैसे कह सकते हैं ? देवी का अन्वेषण करना (इनके लिए) अत्यन्त सुलभ है। इस सेना से पाप परास्त हो गया और धर्म जीत गया।

तरंगों से भरे जल में उत्पन्न कमल में उद्भूत ब्रह्मदेव ने इस विशाल लोक में जिन महान् प्राणियों की सृष्टि की है, वह इसलिए ही कि वे सब गौरव पर्वत जैसे इन वानरों की सेना को गिनने के लिए संख्यासूचक चिह्न बन सकें।

हे महान् शास्त्रों में निपुण ! आठों दिशाओं में अन्वेषणार्थ जानेवाले इन वानरों को सत्वर न भेजकर यहाँ रोक रखना ठीक नहीं—यों लक्ष्मण ने कहा। तब महिमामय (प्रभु) ने अलंकृत रथवाले सूर्य पुत्र से कहा। (१—४०)

●

अध्याय १२

अन्वेषणार्थ प्रेषण पटल

(श्रीरामचन्द्र ने सुग्रीव को देखकर कहा—) यह सेना श्रेणियों में विभाजित है। (इसके सैनिक) अहंकार और परस्पर के वैरभाव से रहित हैं। अत , विशाल रूप में एकत्र यह सेना किसी से भी अभेद्य है, क्या इसका परिमाण भी कुछ है ?

(सुग्रीव ने उत्तर दिया—) बुद्धिमानों के द्वारा विचार कर निश्चय किया हुआ एक संख्यावाचक शब्द है—'वेल्लम' (१८,४५,००८ करोड़ का एक वेल्लम होती है)। वैसे सत्तर वेल्लम के परिमाण में यह सेना है। इसको छोड़कर, यह कहना असंभव है कि इस सेना के परिमाण का सूचित करनेवाला अन्य कोई शब्द है।

इस सेना के वीरों में सड़सठ करोड़ विजयी सेनापति हैं। इन सेनापतियों में सब से प्रमुख महासेनापति, कठोर यम को भी भस्म करने की शक्ति रखनेवाला नील (नामक) वानर है। यों (सुग्रीव ने) कहा।

यों कहनेवाले उष्णकिरण के पुत्र को देखकर विजयी धनुर्धारी ने कहा—यहाँ खडे रहकर बातें करते रहने से क्या प्रयोजन है ? अब चलकर आगे के कार्यों के संबंध में विचार करें।

तब उस (सुग्रीव) ने महानुभाव हनुमान् को देखकर इस प्रकार आज्ञा दी—हे तात ! तुम अपने पिता (पवन) के समान ही त्रिभुवन में सञ्चरण करने की शक्ति रखते हो, तो भी उस शक्ति को न पहचान कर व्यर्थ ही विलंब कर रहे हो। क्या तुम पहले अमर वेगवान वानरों का कार्य देखना चाहते हो ?

तुम अब जाओ। उत्तम आभरणधारिणी देवी कहाँ है, इसका पता लगाओ। पहले तुम नागों के लोक (पाताल) में जाकर खोजो। धरती पर खोजो। तुम्हारा वेग तो ऐसा है कि तुम भोगभूमि स्वर्ग में भी जा सकते हो। तुम्हारा वह वेग भी तो अब प्रकट होना चाहिए।

मेरी बुद्धि कहती है कि रावण का विशाल (लंका) नगर दक्षिण दिशा में है। हे मारुति ! अब इस बलपूर्ण दिशा को जीतकर यश पाने का अधिकारी तुम्हें छोडकर और कौन है ?

हे स्वच्छ ज्ञानवाले ! मेरा खयाल है कि उदारशील (प्रभु) की देवी का अपहरण करके दक्षिण दिशा की ओर ले जाते हुए हमने रावण को देखा था। तुम इसपर विचार करो।

तारा पुत्र (अंगद), जाम्बवान् आदि अनेक वीर बडे गौरव के साथ तुम्हारे संग जावें। दो 'वेल्लम' संख्यावाली वानर सेना भी अपने साथ ले जाओ।

पश्चिम दिशा में ऋषभ, कुबेर की उत्तर दिशा में शतबली तथा इन्द्र की प्राची दिशा में विनत, बडी बडी सेनाएँ लेकर जायँ—यों सुग्रीव ने कहा।

फिर, सुग्रीव ने उन ऋषभ आदि वानरों से कहा—हे विजयी वीरो, विजय करनेवाली दो 'वेल्लम' वानर सेना के साथ घूम घूमकर देवी का अन्वेषण करना और एक मास व्यतीत होने के पूर्व ही यहाँ लौट आना।

फिर, दक्षिण दिशा में जानेवाले वानरों को देखकर सुग्रीव ने कहा—तुम यहाँ से चलकर उस विन्ध्याचल पर्वत पर जाओ, जो अपने अतिसुन्दर सहस्रों उज्ज्वल शिखरों के कारण विष्णु के विराट् रूप सा दिखाई पडता है और आगे बढकर प्रणाम करने योग्य है।

उस (विन्ध्य) पर्वत पर खोजने के पश्चात् नर्मदा नदी पर जाना, जिसमें देवता भी स्नान करते रहते हैं। जहाँ भ्रमर (पुष्पों के) मधु का पान करके पंचम स्वर में गान रहते हैं तथा जहाँ के विविध रत्नों (के प्रकाश) से अंधकार दूर होता रहता है।

फिर, हेमकूट नामक पर्वत पर जाना, जहाँ धूम्रवर्ण के अशुण पक्षी (जो संगीत सुनकर तल्लीन हो जाते हैं) मनोहर मेखलाधारिणी देव रमणियों के, आनन्द से गाये जानेवाले संगीत रूपी मधु का पान करते हुए निद्रा लेते हैं।

शीघ्र ही उस (हेमकूट) पर्वत से चलकर वहाँ के अपने साथी वानरों के साथ आगे बढ जाना। फिर, काले रंगवाली पेन्ना नदी के तटों में उत्तम गुणवाली देवी को ढूँढना और वहाँ से सत्वर आगे बढ जाना।

सुगन्धित दीर्घ अगरु वृक्ष तथा और ... जिस देश की याद ... वन हुए हैं, उसे धीरे धीरे पार करना और ... को भी पीछे छोड़कर जल से समृद्ध दंडकारण्य में जाना।

दंडकारण्य में मुंडकापवी नाम से प्रसिद्ध एक ... प्राचीन अगस्त्य मुनि निवास करते हैं। तपस्या निरत मुनियों से युक्त होने के कारण वह उपवन, दर्शन मात्र से मन की पीड़ा को दूर करनेवाला है। तुमलोग वहाँ भी देखना।

पुष्प भरित वह उपवन, उत्तम ... की संपत्ति के समान शोभायमान है, जिसका उपभोग सारे संसार के लोग करते हैं। ... के वृक्ष उत्तम शील संपन्न सुन्दरियों के अधरों के समान अकाल में भी फल देते हैं। वह दृश्य भी तुम लोग देखना।

वहाँ के निवासी सदा अपलक रहते हैं। कभी ... निद्रा में नहीं सोते। वह स्थान सूर्य के लिए भी दुर्गम है। सभी प्रकार की भोग्य वस्तुएँ वहाँ प्राप्त होती हैं।

उस स्थान को पार कर, उससे आगे पाण्डुगिरि नामक पर्वत पर जाना, जो गगन में स्थित चन्द्र को छूता है और जिसे देखकर अरुणकिरण सूर्य भी यह विचार करता है कि इसपर किंचित् विश्राम करके ही आगे बढ़ना चाहिए।

उस पर्वत के समीप एक नदी बहती है, जिसकी ... मोतियों को बहाती हुई, स्वर्ण धूलि को बटोरती हुई, रत्नों को लुढ़काती हुई, ग्वालों के आँगनों से मथानियों को समेटती हुई, वृक्षों को ढहाती हुई, पर्वत शिलाओं को ढकेलती हुई, मृगों को भी खींचती हुई बहती है। वह धारा किसी भी व्यक्ति को, पुत् नामक नरक में जाकर क्लेश भोगने से बचाती है। उस पावन धारा का नामक गोदावरी है।

उस नदी को पारकर उसके आगे सुवर्ण नामक नदी पर जाना, जो धर्म मार्ग के समान है, निर्मल करुणा के अभिलषणीय मार्ग के समान है, जिसके दोनों कूलों पर शीतल तथा विकसित पुष्पों से पूर्ण घने वृक्ष यों छाये रहते हैं कि सूर्य की किरण भी उसके भीतर प्रवेश नहीं पाती। जिसमें रत्न ऐसे चमकते हैं कि अंधकार का नाम भी मिट जाता है और जहाँ देवताओं की प्रार्थना से छह मुखवाला विलक्षण देव (कार्त्तिकेय) एकांत में रहता था।

सुवर्ण नदी को पारकर उस सूर्यकांत पर्वत को जाकर देखना, जहाँ की (कृषक) बालाएँ जब फंदे में रखकर पत्थर के टुकड़े फेंकती हैं, तब वे पत्थर धूप जैसी कांति को बिखरते हैं। वहाँ से आगे चलकर चंद्रकांत पर्वत को भी देखना। उन पर्वतों को लाँघकर अनेक विशाल देशों को पार करना। फिर, कोंकण देश में जाना, जहाँ आदिशेष, पक्षिराज (गरुड) से डरा हुआ, छिपकर अपना जीवन बिताता है। फिर, कुलिन्द देश में जाना।

जो इस बात पर झगड़ते रहते हैं कि शिव बड़े हैं या विश्व को नापनेवाले हरि बड़े हैं, ऐसे ज्ञान हीन लोगों के लिए जिस प्रकार सुगति दुर्गम होती है, उसी प्रकार दुर्गम रहनेवाला अरुन्धति नामक एक पर्वत वहाँ है, जो आकाशगंगा के अति निकट रहता है। जिसके गगनोन्नत शृंगों पर दोनों ज्योतिर्पिण्ड (सूर्य चंद्र) विश्राम करते हैं, जिसमें ऐसी

शक्ति है कि उसको नमस्कार करनेवाला को वह सब अभीष्ट प्रदान करता है। उसका प्रणाम करके आगे बढना।

भयकर तथा जलते हुए रेगिस्तानो, नदियों, विशाल जल स्रोतो, ऊँचे पर्वतो जो अगरु, चदन आदि वृक्षो एव मेघो से आवृत रहते हैं, तथा समृद्धि युक्त देशो को पीछे छोडकर आगे के मार्ग पर बढ जाना। फिर, मरकत पर्वत के पास जाना जहाँ गरुड ने विषमुख नागो को अमृत देकर अपनी माता विनता को (दासता से) मुक्त किया था। उस (पर्वत) को नमस्कार करके उसके पार्श्वमार्ग से आगे जाना।

फिर, उस ऊँचे वेंकटाचल पर जाना, जो उत्तरी भाषा तथा दक्षिणी भाषा (तमिल) की सीमा रेखा बना है, जिसपर स्वय भगवान् विराजमान रहते हैं, जो वेदो तथा शास्त्रो मे प्रतिपादित सब पदार्थों की सीमा है, जो स्वय सब धर्मों की पराकाष्ठा है, जिसका उपमान बनने योग्य कोई वस्तु नही है, जो ऐसा शोभायमान है, जैसा साकार यश हो और जिसके सानुओ मे मधु के छत्ते भरे रहते हैं।

उस वेंकटाचल पर ऐसे महात्मा लोग रहते है, जो दोनो प्रकार के (पाप और पुण्य) फलों से सबद्ध कोई कर्म नही करते, जो देवताओ से प्रशमित सपन्न जीवन तथा दूसरों पर निर्भर रहनेवाला दरिद्र जीवन—दोनो को समान मानते हैं तथा जो ऐसे अपार आत्मज्ञान से सपन्न हैं, जिसमे इस जन्म के कारणभूत कर्म बधन मिट जाते हैं। वे ऐसे महान् हैं कि हमारे द्वारा यहाँ से भी नमस्कार करने योग्य हैं।

वहाँ ऐसी नदियाँ हैं, जिनमे कपटहीन उत्तम ब्राह्मण स्नान करते हैं। ऐसे आश्रम हैं, जिनमे वेद तथा प्राचीन शास्त्रों के ज्ञाता मुनि निवास करते हैं। ऐसे रत्नमय पर्वतशृग हैं, जिनके मध्य मेघ विश्राम करते है। ऐसे स्थान हैं, जहाँ देव रमणियो के सगीत के उपयुक्त किन्नरवाद्य की तन्त्रियों से उत्पन्न नाद से गजो तथा व्याघ्रों के बच्चे सो जाते हैं।

ऊँचे शिखरों से युक्त उस वेंकटाचल के निकट जाओ, तो तुम लोगो के सभी पाप मिट जायँगे और मोक्ष प्राप्त कर लोगे। अतएव (उस पर्वत के निकट न जाकर) वहाँ से दूर हटकर जाना। फिर, वहाँ से आगे स्थित जल से समृद्ध 'तोंडे' देश मे जाना। वहाँ खोजने के पश्चात् फिर, गभीर गतिवाली, 'पोन्नि' नामक महिमामय शीतल जल से पूर्ण दिव्य कावेरी नदी के किनारों पर जाना।

तुम उस चोल देश मे जाना, जहाँ (कावेरी नदी का) जल इतना स्वच्छ है, जितना स्वर्ग को प्राप्त किये हुए महात्माओं का मन होता है। जहाँ प्रारब्धकर्म से मुक्त पुरुष गुप्त रूप से निवास करते हैं। उसे पार करके तुम लोग सत्वर आगे बढ जाना और निद्राशील व्यक्ति किस परिणाम को पहुँचते हैं, उसका स्मरण करके वहाँ से हट जाना। फिर, रत्नमय पर्वतों से युक्त मलय देश मे जाकर ढूँढना। उसके पश्चात् विशाल तमिल देश—पाण्ड्यदेश मे जाना।

दक्षिण में स्थित, तमिल देश में विशाल पोदिय नामक पर्वत है, जहाँ मुनिश्रेष्ठ (अगस्त्य) का तमिल सघ है। वहाँ जाकर उस मुनि के निरतर आवासभूत उस पर्वत को नमस्कार करके आगे बढ़ना। फिर, सुन्दर जलधारा से युक्त ताम्रपर्णी नदी को पार करके

सुगन्धित दीर्घ अगरु वृक्ष तथा और कई बड़े हुए चन्दन वृक्ष, जिस देश की याद दिलाते हुए हैं, उसे धीरे धीरे पार करना और आगे के मार्ग के देशों को भी पीछे छोड़कर जल से समृद्ध दंडकारण्य में जाना।

दंडकारण्य में सुन्दर कुंजों में प्राचीन अगस्त्य मुनि निवास करते हैं। तपस्या निरत मुनियों से युक्त होने के कारण वह उपवन, स्मरण मात्र से मन की पीड़ा को दूर करनेवाला है। तुमलोग वहाँ भी देखना।

पुष्प भरित वह उपवन, उत्तम आभिजात्य युवतियों की मुस्कान के समान शोभायमान है, जिसका उपभोग सारे संसार के लोग करते हैं। वहाँ के वृक्ष उत्तम शील सम्पन्न सुन्दरियों के अधरों के समान अकाल में भी फल देते हैं। वह दृश्य भी तुम लोग देखना।

वहाँ के निवासी सदा अपलक रहते हैं। कभी भी निद्रा में नहीं सोते। वह स्थान सूर्य के लिए भी दुर्गम है। सभी प्रकार की भाग्य वस्तुएँ वहाँ प्राप्त होती हैं।

उस स्थान को पार कर, उससे आगे पाण्डुगिरि नामक पर्वत पर जाना, जो गगन में स्थित चन्द्र को छूता है और जिसे देखकर अरुणकिरण सूर्य भी यह विचार करता है कि इसपर किंचित् विश्राम करके ही आगे बढ़ना चाहिए।

उस पर्वत के समीप एक नदी बहती है जिसकी अनादि धारा मोतियों को बहाती हुई, स्वर्ण धूलि को बटोरती हुई, रत्नों को लुढ़काती हुई, ग्वालों के आँगनों से मथानियों को समेटती हुई, वृक्षों को ढहाती हुई पर्वत शिलाओं को ढकेलती हुई, मृगों को भी खींचती हुई बहती है। वह धारा किसी भी व्यक्ति को, पुत् नामक नरक में जाकर क्लेश भोगने से बचाती है। उस पावन धारा का नाम है गोदावरी है।

उस नदी को पारकर उसके आगे सुवर्ण नामक नदी पर जाना, जो धर्म मार्ग के समान है, निर्मल करुणा के अभिलषणीय मार्ग के समान है, जिसके दोनों कूलों पर शीतल तथा विकसित पुष्पों से पूर्ण घने वृक्ष यों छाये रहते हैं कि सूर्य की किरणें भी उसके भीतर प्रवेश नहीं पाती। जिसमें रत्न ऐसे चमकते हैं कि अंधकार का नाम भी मिट जाता है और जहाँ देवताओं की प्रार्थना से छह मुखवाला विलक्षण देव (कार्त्तिकेय) एकांत में रहता था।

सुवर्ण नदी को पारकर उस सूर्यकांत पर्वत को जाकर देखना, जहाँ की (कृषक) बालाएँ जब फंदे में रखकर पत्थर के टुकड़े फेंकती हैं, तब वे पत्थर धूप जैसी कांति को बिखरते हैं। वहाँ से आगे चलकर चंद्रकांत पर्वत को भी देखना। उन पर्वतों को लाँघकर अनेक विशाल देशों को पार करना। फिर, कोंकण देश में जाना, जहाँ आदिशेष, पक्षिराज (गरुड) से डरा हुआ, छिपकर अपना जीवन बिताता है। फिर, कुलिन्द देश में जाना।

जो इस बात पर झगड़ते रहते हैं कि शिव बड़े हैं या विश्व को नापनेवाले हरि बड़े हैं, ऐसे ज्ञान हीन लोगों के लिए जिस प्रकार सुगति दुर्गम होती है, उसी प्रकार दुर्गम रहनेवाला अरुन्धति नामक एक पर्वत वहाँ है, जो आकाशगंगा के अति निकट रहता है। जिसके गगनोन्नत शृंगों पर दोनों ज्योतिष्पिण्ड (सूर्य चंद्र) विश्राम करते हैं, जिसमें ऐसी

शक्ति है कि उसको नमस्कार करनेवाला का वह सब अभीष्ट प्रदान करता है। उसका प्रणाम करके आगे बढना।

भयकर तथा जलते हुए रेगिस्तानो, नदियों, विशाल जल खातों, ऊँच पवतो जो अगरु, चदन आदि वृक्षो एव मेघो से आवृत रहते ह तथा समृद्धि-युक्त देशा का पीछे छोडकर आगे के मार्ग पर बढ जाना। फिर, मरकत पवत के पास जाना, जहाँ गरुड ने विषमुख नागो को अमृत देकर अपनी माता विनता को (दासता स) मुक्त किया था। उस (पर्वत) को नमस्कार करके उसके पार्श्वमार्ग से आगे जाना।

फिर, उस ऊँचे वेंकटाचल पर जाना, जा उत्तरी भाषा तथा दक्षिणी भाषा (तमिल) की सीमा रेखा बना है, जिसपर स्वय भगवान् विराजमान रहत हैं, जो वेदो तथा शास्त्रो म प्रतिपादित सब पदार्थों की सीमा है, जो स्वय सब धर्मों की पराकाष्ठा है, जिसका उपमान बनने योग्य कोई वस्तु नही है, जो ऐसा शोभायमान है, जैसा साकार यश हो और जिसके सानुओं मे मधु के छत्ते भरे रहते हैं।

उस वेंकटाचल पर ऐसे महात्मा लोग रहते है, जो दोनो प्रकार क (पाप और पुण्य) फलों से सबद्ध कोई कर्म नही करते, जो देवताओ मे प्रशमित सपन्न जीवन तथा दूसरों पर निर्भर रहनेवाला दरिद्र जीवन—दोनों को समान मानते हैं तथा जा ऐसे अपार आत्मज्ञान से सपन्न हैं, जिससे इस जन्म के कारणभूत कम बधन मिट जाते हैं। वे ऐसे महान् हैं कि हमारे द्वारा यहाँ से भी नमस्कार करने योग्य हैं।

वहाँ ऐसी नदियाँ हैं, जिनमे कपटहीन उत्तम ब्राह्मण स्नान करते हैं। ऐसे आश्रम हैं, जिनमे वेद तथा प्राचीन शास्त्रों के ज्ञाता मुनि निवास करत हैं। ऐसे रत्नमय पवतशृग हैं, जिनके मध्य मेघ विश्राम करते हैं। ऐसे स्थान हैं, जहाँ देव रमणियो के सगीत के उप युक्त किन्नरवाद्य की तत्रियों से उत्पन्न नाद से गजो तथा व्याघ्रों के बच्चे सो जाते हैं।

ऊँचे शिखरों से युक्त उस वेंकटाचल के निकट जाओ, तो तुम लोगों के सभी पाप मिट जायँगे और मोक्ष प्राप्त कर लोगे। अतएव (उस पवत के निकट न जाकर) वहाँ से दूर हटकर जाना। फिर, वहाँ से आगे स्थित जल से समृद्ध 'तोंडे' देश म जाना। वहाँ खोजने के पश्चात् फिर, गभीर गतिवाली, 'पोन्नि' नामक महिमामय शीतल जल स पूर्ण दिव्य कावेरी नदी के किनारों पर जाना।

तुम उस चोल देश मे जाना, जहाँ (कावेरी नदी का) जल इतना स्वच्छ है, जितना स्वर्ग को प्राप्त किये हुए महात्माओं का मन होता है। जहाँ प्रारब्धकर्म से मुक्त पुरुष गुप्त रूप से निवास करते हैं। उसे पार करके तुम लोग सत्वर आगे बढ जाना और निद्राशील व्यक्ति किस परिणाम को पहुँचते हैं, उसका स्मरण करके वहाँ से हट जाना। फिर, रत्नमय पर्वतों से युक्त मलय देश मे जाकर ढूँढना। उसके पश्चात् विशाल तमिल देश—पाड्यदेश मे जाना।

दक्षिण में स्थित, तमिल देश में विशाल पोदिय नामक पर्वत है, जहाँ मुनिश्रेष्ठ (अगस्त्य) का तमिल सघ है। वहाँ जाकर उस मुनि के निरतर आवासभूत उस पर्वत को नमस्कार करके आगे बढ़ना। फिर, सुन्दर जलधारा से युक्त ताम्रपर्णी नदी को पार करके

राजा के आवास बने ऊँचे भवनों से शोभित महेंद्र पर्वत को पार करके दक्षिण के समुद्र को देखोगे।

उन स्थानों को पार करके आगे जाना और उसका पता लगाकर, एक मास की अवधि में तुम वहाँ लौट आना। अब तुम लोग शीघ्र जाओ। — (सुग्रीव के) इस प्रकार आज्ञा देने पर, त्रिविक्रम (के अवतारभूत राम) ने मारुति को कृपा भरी दृष्टि से देखकर कहा — "नीतिनिपुण! सीता के लक्षण सुनो, जिनसे तुम्हें उसका अन्वेषण करने में सुविधा हो।" फिर आगे कहने लगे—

हे तात! (सीता की) पादांगुलियाँ ऐसी हैं मानों क्षीरसागर में उत्पन्न प्रवाल के खंडों में महावर लगाकर उनके ऊपरी भाग में अनेक चंद्रों को रख दिया गया हो। प्रसिद्ध कमल तथा अन्य पदार्थ भी उन पादों के उपमान नहीं हो सकते। इतना कहने के अतिरिक्त उन पादयुगल का उपमान क्या कहा जाय?

हे तात! जिस कच्छप को, बुद्धिमानों ने, कंकण पंक्तियों से भूषित रमणियों के चरणों के ऊपरी भाग का उपमान बताया है, उससे रात्रिकाल की वीणा से भी अधिक मधुर बोलीवाली सीता के चरणों की उपमा देना उस (चरण युगल) का अपमान करना है। इसे निश्चित जानो।

हे सत्चरित! चित्रकारों के लिए जिनके चित्र खींचना दुस्साध्य है, वैसे केश पाशों से विशिष्ट उस देवी की जानुएँ ऐसी हैं कि बहुत सोच विचार करने पर भी कोई उनका उचित उपमान नहीं पा सकता। विद्वान लोग गर्भिणी 'वराल' (नामक मछली), तूणीर, पुष्ट धानकी गाभा,[१] इत्यादि को जानुओं के उपमान कहते हैं। ऐसा तो कोई भी कह सकता है। उसे पुनः मैं कहूँ, तो इसमें क्या रस है?

केशपाश से सुशोभित सुन्दरियों की जाँघों के अति उत्तम उपमान बननेवाले जो कदली वृक्ष हैं, वे भी जब उन (सीता की) जाँघों से परास्त हो गये हैं तब उन जाँघों की अन्य उपमा क्या दी जाय? वीणा की ध्वनि को, अमृत समान मधु को और जल से पूर्ण खेतों में उत्पन्न ईख के रस को भी परास्त करनेवाली बोली से युक्त उस (सीता) की जाँघ इतनी सुन्दर है।

हे उत्तम! कंचुक बद्ध, चक्रवाक एवं कलश समान स्तनों से युक्त, 'वंजि' लता समान (पतली) कटिवाली उस (सीता) के, मेखला भूषित, चक्राकार वस्त्रावृत जघन रूपी समुद्र का क्या उपमान हो सकता है—यह मैं तुम जैसे को क्या कहूँ, जिसने समुद्रावृत धरती को शिर पर धारण करनेवाले आदिशेष के फन को देखा है तथा हिम को हटाकर ऊपर उठनेवाले एक चक्रवाले (सूर्य के) रथ को भी देखा है।

वह ऐसी है कि उसके आकार को देखकर ही (ब्रह्मा) अन्य किसी सुन्दरी का निर्माण कर सकता है। उसकी सूक्ष्म कटि के आकार का वर्णन यदि तुम सुनना चाहो, तो उसके लिए उपमान ढूँढ़ना व्यर्थ है। उस कटि को आँखों से नहीं देखा जा सकता है, केवल मैं हाथ के स्पर्श से ही उसे जान सकता हूँ। अन्य किसी उपाय से उसका वर्णन करने के लिए शब्द ही नहीं है।

१. धान का डंठल, जिसमें से अभी बाली नहीं निकल आई हो जानु का उपमान होता है। —अनु०

साधारण दृष्टि से यह कथन कि (सुन्दरियो क) उदर, वटपत्र, चित्र म अकित सूक्ष्म चित्र फलक, दुग्ध सदृश मृदुल रजत फलक, वर्त्तुलाकार दर्पण—ए ही अन्य पदार्थो क समान होते हैं, अत्युक्तिपूर्ण कथनमात्र होता ह। किंतु, सीता का उदर इतना सुन्दर ह कि उन वस्तुओ के साथ उसकी उपमा देना भी उचित नही ह।

ह समुद्र से भी अधिक विस्तृत ज्ञानवाले। यदि (सीता देवी की) नाभि का उपमान निर्दोष 'कूदालि' (नामक पुष्प) तथा 'नदि' (नामक पुष्प) का कह ता व भी क्षुद्र ही होगे। हॉ, म सोचता हूँ कि नदी की भौर उसका उपमान हो सकती ह। गगा (की भौर) को दखकर तुम यह बात समझ सकत हो।

लता सदृश उस (देवी) क उदर पर जो रोमावली ह, वह मेर प्राणो का घेरा ही हैं। यदि उसकी कोई उपमा दनी हो, तो उस अलान से दी जा सकती ह जिसपर दोषहीन कटि के तुल्य कोइ छोटी लता स्थिर होकर लिपटी हो।

वह सीता, यह सोचकर कि कमल दल पर रहने से उसक कोमल शरीर को कष्ट होता है, कमल का आसन छोडकर धरती पर अवतीर्ण हुइ ह। उसके उदर पर स्वर्णवर्ण की त्रिवली ऐसी है, मानो मन्मथ ने तीनो भुवनो की सुन्दरियो की (सीता स) पराजय को सूचित करने के लिए ही तीन रेखाऍ अकित कर दी हो।

उसके स्तनो के उपमान रत्न सपुट (रत्न की डिबिया) कहूँ स्वर्ण कलश कहूँ रक्तवर्ण कोमल नारिकेल कहूँ, प्रवाल को सान पर चढाकर बनाइ हुइ चौसर की गोटी कहूँ, दिन म प्रकट हुए चक्रवाक कहूँ? क्या कहूँ? उनक स्तनो का कोई भी उचित उपमान मैने नही देखा हे।

गन्ने को देखने पर या सुडौल बॉस को देखन पर, मेरी आखो से अश्रु की वर्षा होने लगती ह। इस प्रकार पीडा का अनुभव करने के अतिरिक्त, भ्रमरो से गुजरित पुष्प माला को धारण करनेवाली उस (सीता) को भुजाओ के उचित उपमान खोजने या कहने की दृढता मुझम नही है। अब और क्या कहूँ?

(सीता के) करो क सदृश कोई पदार्थ त्रिभुवन म कही ह—ऐसा कहना भी अनुचित हे। यदि कुछ उपमान कहने भी लगे, तो क्या 'कादल' पुष्प का उसका उपमान कहे? वह तो (सीता क करो के सामने) अत्यन्त कठिन हे। यदि मकरवीणा का उसका उपमान कहे, तो कुछ गुणो म समान होने पर भी अन्य गुणो म वह उसके अनुरूप नही है। जो स्वय अत्यन्त सुन्दर है, उससे भी अधिक सुन्दर क्या वस्तु हो सकती ह?

मनोहर अशोक वृक्ष क पल्लव तो दूर रह। कल्पवृक्ष के नवपल्लव या कमल लता क कोमल दलवाले पुष्प भी उसकी हथेली के उपमान नही हो सकते। वे, सूत्र सदृश सूक्ष्म कटिवाली उस सीता के नूपुरो से मुखर, चरणो के भी उपमान जब नही बनते तब उसकी हथेली के उपमान कैसे हो सकते ह?

धवल दत, अरुण अधर और चमकत आभरणो से युक्त, यौवनपूर्ण, मनोहर पुष्प शाखा-सदृश उस सीता क नोकदार हस्त नखो क उपमान कहना असभव ह। तात, पलाश पुष्पो पर इसलिए क्रुद्ध रहते ह कि उन्ही के कारण (जो सीता के नखो के उपमान

जनत ह) उन (तोतों) क चञ्चु सीता क नखों क उपमान नहीं रह गये ह, और उन (पलाश पुष्पों) को फाडते रहते हैं। अब उन नखों क और क्या उपमान कहें?

ह उत्तम। (सीता के) अरुण कर एवं अरुण चरण देखकर जिस प्रकार तुम्हें लाल कमल स्मरण आयेगे, उसी प्रकार रक्त कुमुद सदृश मधुभरे दिव्य नयनोंवाली उस (सीता) का कंठ देखकर, यदि तुम्हें जलनवाला अमुक वृक्ष तथा जल में उत्पन्न होनेवाला शख स्मरण आवे, तो तुम उन्हीं का उपमान मान लेना।

नील कुवलय के समान, काजल लगे नयनोंवाली सीता का मनोहर मुँह ऐसा है कि 'किडै' (नामक लाल सवार), बिंबफल, नवीन रक्तकुमुद, इन्द्रगोप, पलाश पुष्प इत्यादि उपमान के योग्य पदार्थ भी, उस मुँह के सम्मुख श्वेत भ पड जाते हैं। ऐसे रक्त तथा अमृत भरे उस मुख का उपमान वही मुख है।

रक्तवर्ण का अमृत नहीं होता। उस रंग का मधु भी नहीं होता। यदि वैसा अमृत और मधु कहीं होते भी हों, तथापि उनका पान करने पर ही वे मधुर लगते होंगे। स्मरणमात्र से वे आनददायक नहीं होंगे। अत उज्ज्वल ललाटवाली सीता के प्रवाल सम अधर के उपमान यदि हम अपने मन की पसद के कोई पदार्थ बताये, तो क्या वे उचित उपमान हो सकते है? (अर्थात्, नहीं हो सकते)।

हे अनुपम महिमावान। (सीता के) दंत कुंद मोर पखों के मूल, मुक्ता इत्यादि की समता करते हैं—यह कथन ऐसा ही है, जैसा यह कहना है कि उसकी वाणी अमृत, दुग्ध तथा मधु की समता करती है। वास्तव में, उन दाँतों के उपयुक्त उपमान कुछ नहीं हैं। यदि (देव) अमृत का कोई उपमान हो सकता है, तो उन (दाँतों) का भी उपमान हो सकता है।

हे अपार ज्ञानयुक्त। गिरगिट (की नाक), तिल पुष्प, रंध्र सहित कुंभिल (नामक पुष्प) सीता की नासिका के उपमान हैं— यदि ऐसा कहे भी, तो वे सब उपमान, निखारे गये स्वर्ण तथा उज्ज्वल रत्न की समता नहीं करते (सीता की नासिका तो स्वर्ण एव रत्न के समान भी है)। वह (नासिका) निपुण चित्रकार के लिए भी अंकित करने को दुस्साध्य है। तुम इसका विचार कर स्वयं समझ लो।

'वल्लै' लता के पत्र और कची- ये कानों के उपमान होते हैं? यह बच्चों का कथन मात्र है। यदि बडे लोग भी इसी को दुहरायेगे, तो वह उनका पागलपन होगा। तुम यह समझो कि शुक्रतारा के समान उज्ज्वल ताटकों ने जो तपस्या की थी, वह तपस्या (सीता के कानों को प्राप्त कर) सफल हुई। जो ससार की सब वस्तुओं के स्वयं उपमान हैं, उनके उपमान कहाँ मिल सकते हैं?

(सीता के) करवाल सदृश दीर्घ नयनों के, जो देवाधिदेव (विष्णु) के समान काले हैं तथा श्वेत वर्ण से भी युक्त हैं, अति विशाल समुद्र भी उपमान नहीं हो सकते। अहो! यदि कोई दूसरा उपमान खोजना भी चाहे, तो वे नयन किसी के मन में ही नहीं समाते।

यदि करवाल सदृश नेत्रवाली सीता की भौंहों का वर्णन करने लगें, तो क्या उपमान दें? यदि ऐसा उपमान दें, जो पूर्ण रूप से उपमेय की समता न करे, तो वह अधम होगा। यदि किसी पदार्थ को सुन्दर मानकर उसे उपमान कहें, तो भी उससे (सीता की भौंहों

की) सहधर्मिता सिद्ध नही हो सकेगी । दोनो छोरो पर झुके हुए ना मन्मथ चाप नहा होत। अत उसके भौहों के उपमान भी कही नही हैं।

शुक्लपक्ष की प्रथमा का चन्द्रमा, यदि उस सीता क ललाट की शोभा का अनेक दिनो तक ध्यान करता रहे और पूर्णिमा के दिन भी पूर्ण न होकर अर्द्ध ही बना रहे तो उस सीता के ललाट की कुछ कुछ समता कर सकेगा, जिसके चरणो की सुन्दरता मे खिले म प्रफुल्ल कमल प्रभा भी लजा जाती है।

हमारे अरण्य वास म आने क उपरान्त (सीता के केशो को) सजाने क लिए काई (दासी) नही रही। ऐमा होने पर भी उन केशा की सुन्दरता घटी नही। कघी करने से नही, किन्तु स्वभाव से ही उसके केश घुँघराले हैं। नीलरत्न के समान व अलक नित नवीन रहते है। अत , उनका कोई उपमान नही हे।

ब्रह्मदेव ने, काले मेघ के टुकडे को, लाल कुमुद का झुके हुए धनुषो का वल्लै' (नामक लता) क पत्तो को, उत्तम मीनो को, तथा उज्ज्वल मुक्ताओं को चन्द्रमा म जोडकर उसको सीता का वदन बना दिया। जब उस पुंडरीक (सदृश वदन) के दर्शन तुम करोगे तभी इस कथन को सच्चा मानोगे।

अनेक सूक्ष्म केशो से भारी बना हुआ अति सुगन्धित उसका केशभार एमा है मानो काले मेघ को काटकर उसपर मधु, अगरु धूम आदि की सुगन्ध चढा दी गई हो, फिर उसे घने अंधकार के द्रव म डुबो दिया गया हो और उसे ही घने तथा दीर्घ केश पाश का नाम दिया गया हो।

दिव्य कमल पुष्प मे भी आवरण के दल लगे रहते ह। सौंदर्य की सीमा बना हुआ चन्द्र भी कलक से युक्त है। इनके अतिरिक्त अन्य सभी उत्तम पदार्थो म कोई ऐसा नही है, जिसमे कुछ न कुछ दोष न हो। हंसिनी समान मनोहर गतिवाली सीता के अंग म सब गुण ही गुण हैं। कही कुछ दोष नही है।

हे तात। विचार कर देखने पर (विदित होता है कि) उत्तम नारी के सभी लक्षण मनोहर तथा सुरभित कमल म निवास करनेवाली लक्ष्मी म भी नही होत। किन्तु, कोकिल सदृश मधुर बोली, मनोज्ञ मीन सदृश नयनो, अरुण अधर तथा अप्सराओ को भी लज्जित कर देनेवाले स्तनो से युक्त उस (सीता) म सभी लक्षण विद्यमान हैं।

कमलासन (ब्रह्मा) ने बाँसुरी, वीणा, पिक, शुक, तोतली बोली आदि की सृष्टि करके अच्छी कुशलता प्राप्त करने के पश्चात् ही हार युक्त स्तनोवाली (सीता) की मधुर वाणी की सृष्टि की है। उस निर्दोष वाणी का कोई उपमान उस ब्रह्मदेव ने नही उत्पन्न किया है। क्या भविष्य म कभी करेगा भी ?

स्वर्ग, भूमि और पाताल—तीनो भुवन अतिविशाल रूप म फैले हैं। इनमे कही मीन सदृश नयनवाली उस (सीता) की मधुरवाणी का उपमान कोई वस्तु नही है। यदि कह सकते हैं, तो एक मधु है और एक क्षीर है। तो भी वे दोनों श्रवण को मधुर नही लगते। एक दूसरा उपमान अमृत भी है, पर वह भी केवल रसना को स्वाद देनेवाला ही है, (श्रवण सुखद नही है)।

हे उत्तम गुणवाले ! कमल पुष्प में निवास करनेवाली मधुर बोलीवाली राजहंसिनी तथा मनोहर चालवाली ऐसी सुन्दर गतिवाली ... स्वयं देवता भी विस्मय करते हैं। किन्तु, मुझे (यह) निश्चय नहीं होता (कि ये सीता के उपमान हो सकती हैं या नहीं)। हाँ, कविता करने में निपुण प्राचीन ... सरस शब्द गुंफन से युक्त कविता की गति ही उस (सीता) की गति की समता कर सकती है।

(सीता की देह कांति का क्या उपमान है?) आम्रवृक्ष का कोमल पल्लव भी (सीता के सम्मुख) मानो नीरस पड़ता है। सोने का रंग मंद पड़ जाता है। रत्नों की कांति पूर्ण समता नहीं करती। विद्युत् की ... (सीता से) लज्जित होकर छिप जाती है और बाहर नहीं निकलती। कमल का रंग फीका हो जाता है। तब अन्य कौन सा रंग उपमान के योग्य है? सीता की देह की कांति का उपमान उसकी देह ही है।

हे उत्तम गुणवाले! उस (सीता) की समता करनेवाली कोई भी नहीं है—केवल इस विचार को ही मन में दृढ़ रख लो और अपने चित्त में सीता को, उसके स्थान में पहचान लो, फिर उसके समीप जाकर ये अभिज्ञान वचन कहो। यों कहकर (रामचन्द्र) आगे कहने लगे—

मैं पूर्व में (विश्वामित्र) मुनि के संग चलकर प्राचीन मिथिला नगरी में दीर्घकेशवाली जनक महाराज के यज्ञ को देखने के लिए गया था। तब उस परिखा के समीप, जिसमें हंस खेल रहे थे, कन्या निवास के गोपुर में स्थित सीता का मैंने देखा। यह बात तुम उससे कहना।

अपार समुद्र से भी अधिक (विशाल तथा गंभीर) पातिव्रत्य धर्म से युक्त सीता ने प्रतिज्ञा की थी कि पर्वत समान धनुष को तोड़नेवाला व्यक्ति यदि वह मुनि के संग आया हुआ राजकुमार (राम) न होगा, तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगी। यह बात उसे सुनाना।

उस दिन, जनक महाराज की सभा में मैंने उस सीता को देखा। वह अपने मनोहर स्तन रूपी गिरि युगल का भार वहन करती हुई उस प्रकार आई, जिस प्रकार कोई मत्तगज, मुखपट्ट से आवृत परस्पर तुल्य दंतद्वय को लिये आ रहा हो। वह (स्तन भार के कारण) गगन की विद्युल्लता के समान लचकती हुई आई थी।

तुम उस (सीता) से यह बात कहना, जो मैंने उससे पहले कहा था—'हे मुग्धे! तुम मेरे संग ऐसे भयंकर कानन में जाना चाहती हो, जिसे पहले तुमने देखा भी नहीं है। अबतक तुम मेरे लिए सुख देनेवाली रही। मेरे अपने प्राणों के अनुकूल बनी रही। अब क्या तुम दुःख देनेवाली बनना चाहती हो?'

तब सीता ने कहा—'हे अपने स्वतंत्र राज्य को भी त्यागकर वन में जानेवाले प्रभु! क्या अब मेरे अतिरिक्त अन्य सब पदार्थ आपके लिए आनंददायक हो गये?' और वह अपने मीन सदृश तड़पते हुए विशाल कमल दलों की समता करनेवाले नयनों से अश्रु बहाती हुई, शरीर से निकलने के लिए तड़पते हुए अपने प्राणों के समान ही अत्यंत व्याकुल हो गई और मूच्छित होकर गिर पड़ी।—यह भी उससे कहना।

जब हम समृद्ध (अयोध्या) महानगर को छोड़कर चले थे, तब चन्द्र को छूनेवाली

पत्थरों के बने ऊंचे प्राचीर के सुन्दर द्वार का पार करने के पूर्व ही वह (सीता) कह उठी—सीमाहीन घोर अरण्य कहाँ है ?—यह भी उससे कहना।

(रामचन्द्र ने हनुमान् से) इस प्रकार के वचन कहे। फिर, यह कहकर कि सुख से जाओ, उत्तम रत्न से जडी मुँदरी भी दी और कहा—'हे बुद्धिमान्! तुम्हारे सब कार्य सफल हों'—ऐसा आशीष देकर रामचन्द्र ने हनुमान् को विदा किया। हनुमान् वीर वलय धारी (रामचन्द्र) की कृपा को आगे करके चल पडा।

अंगद प्रभृति वीर वानर, जिनका क्रोध शत्रुओं का विनष्ट कर सकता था, सूर्यपुत्र के प्रति नतशिर होकर फिर उत्तम धनुर्धारी (राम लक्ष्मण) का भी नमस्कार करके विशाल समुद्र सम सेना के साथ दक्षिण दिशा की ओर चले। (१–७४)

●

अध्याय १३

बिल-निष्क्रमण पटल

अंगद प्रभृति वे वीर, दक्षिण दिशा की ओर चले। उनके चले जाने के पश्चात् सूर्यपुत्र दक्षिण के अतिरिक्त सब दिशाओं में अन्य वानरों को भेज दिया। वे वानर आदेश दिये हुए कार्य (सीतान्वेषण) को संपन्न करने के लिए सारे संसार को भी जीतनेवाली विशाल सेना को लेकर, एक मास की अवधि के भीतर लौट आने का निश्चय करके, प्रबल गति से चल पडे।

पर्वत सदृश कंधोंवाले वानर, विद्युल्लता समान कटिवाली (सीता) का अन्वेषण करते हुए किस प्रकार पूर्व पश्चिम और उत्तर दिशाओं में गये—यह न कहकर, हम समृद्ध तमिल (भाषा और साहित्य) से संपन्न दक्षिण दिशा में गये हुए वानरों के कार्यों का वर्णन करेंगे।

वे वीर, सिंदूर और पुंजीभूत माणिक्य की कान्ति फैलने से सध्याकालिक गगन की समता करनेवाले तथा सर्पों से, चंद्र से एवं नदियों से संयुक्त रहने के कारण शिवजी की जटा की समता करनेवाले विंध्य पर्वत के सानुओं पर शीघ्र जा पहुँचे।

उन दोष रहित वीरों ने, उस दीर्घ पर्वत के मध्य उज्ज्वल रत्नों से पूर्ण शिखरों पर, मनोहर घाटियों में स्थित कंदराओं में, पर्वत के सानुओं तथा दीर्घ एवं सुन्दर प्रान्त प्रदेशों (तलहटियों) में इस प्रकार ढूंढा कि अनेक दिनों तक अन्वेषण करने का कार्य एक ही दिन में समाप्त कर लिया।

(धरती की) सीमाओं पर स्थित समुद्र ही जिसके उपमान हैं, ऐसी वह वानर-सेना उस सीता के, जो समृद्ध भूमि को निष्पाप करने के लिए अवतीर्ण हुई थी और जो सोने की पट्टी से अलंकृत अंधकार सदृश केशोंवाली थी—रहने के स्थान को खोजते हुए उस भू प्रदेश

हे उत्तम गुणवाले ! कमल पुष्प में निवास करनेवाली मधुर बोलीवाली राजहंसिनी तथा मनोहर बालकरिणी ऐसी सुन्दर गतिवाली ... [illegible] ... भी विस्मय करते हैं। किन्तु, मुझे (यह) निश्चय ... (कि ... सीता के उपमान हो सकती हैं या नहीं)। हाँ, कविता करने में निपुण ... शब्द गफन से युक्त कविता की गति ही उस (सीता) की गति की समता कर सकती है।

(सीता की देह कांति का क्या उपमान ...) आम्रवृक्ष का कोमल पल्लव भी (सीता के सम्मुख) खोटा दोख पड़ता है। ... रंग ... पड़ जाता है। रत्नों की कांति पूर्ण समता नहीं करती। विद्युत् की चमक (सीता ...) लज्जित होकर छिप जाती है और बाहर नहीं निकलती। कमल का रंग पीला पड़ जाता ... । तो, अब अन्य कौन सा रंग उपमान के योग्य है? सीता की देह की कांति का उपमान ... है।

हे उत्तम गुणवाले ! उस (सीता) की समता करनेवाली स्त्री कोई भी नहीं है— केवल इस विचार को ही मन में दृढ़ कर ले। और अपने चित्त से सीता को, उसके स्थान में पहचान लो, फिर उसके समीप जाकर ये अभिज्ञान वचन कहो— यों कहकर (रामचन्द्र) आगे कहने लगे—

मैं पूज्य (विश्वामित्र) मुनि के संग जलसंपन्न प्राचीन मिथिला नगरी में दीर्घकेशधारी जनक महाराज के यज्ञ को देखने के लिए गया था। तब उस परिखा के समीप, जिसमें हंस खेल रहे थे, कन्या निवास के ... में स्थित सीता को मैंने देखा। यह बात तुम उससे कहना।

अपार समुद्र से भी अधिक (विशाल तथा गंभीर) पातिव्रत्य धर्म से युक्त सीता ने प्रतिज्ञा की थी कि पर्वत समान धनुष को तोड़नेवाला व्यक्ति, यदि वह मुनि के संग आया हुआ राजकुमार (राम) न होगा, तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगी। यह बात उसे सुनाना।

उस दिन, जनक महाराज की सभा में मैंने उस सीता को देखा। वह अपने मनोहर स्तन रूपी गिरि युगल का भार वहन करती हुई ... प्रकार आई, जिस प्रकार कोई मत्तगज, मुखपट्ट से आवृत परस्पर तुल्य दंतद्वय को ... । वह (स्तन भार के कारण) गगन की विद्युल्लता के समान लचकती हुई आई थी।

तुम उस (सीता) से मेरे ये वचन कहना, ... मैंने उसको पहले कहा था— 'हे मुग्धे ! तुम मेरे संग ऐसे भयंकर कानन में आना चाहती ..., जिसे कदाचित् तुमने देखा भी नहीं है। अबतक तुम मेरे लिए मुझे सुख देनेवाली रही। मेरे अपूर्व प्राणों के अनुकूल बनी रही। अब क्या तुम दुःख देनेवाली बनना चाहती हो?'

तब सीता ने कहा—'हे अपने स्वतंत्र राज्य को भी त्यागकर वन में जानेवाले प्रभु ! क्या अब मेरे अतिरिक्त अन्य सब पदार्थ आपके लिए आनन्ददायक हो गये?' और वह अपने मीन सदृश तड़पते हुए विशाल कमल दल की समता करनेवाले नयनों से अश्रु बहाती हुई, शरीर से निकलने के लिए तड़पते हुए अपने प्राणों के समान ही अत्यंत व्याकुल हो गई और मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।—यह भी उससे कहना।

जब हम समृद्ध (अयोध्या) महानगर को छोड़कर चले थे, तब चन्द्र को छूनेवाली

पत्थरों के बने ऊँचे प्राचीर के सुन्दर द्वार को पार करने के पूर्व ही वह (सीता) कह उठी—सीमाहीन घोर अरण्य कहाँ है ?—यह भी उससे कहना।

(रामचन्द्र ने हनुमान् से) इस प्रकार के वचन कहे। फिर, यह कहकर कि सुख से जाओ, उत्तम रत्न से जडी मुँदरी भी दी और कहा—'हे बुद्धिमान्! तुम्हारे सब काय सफल हो'—ऐसा आशीष देकर रामचन्द्र ने हनुमान् को विदा किया। हनुमान् वीर वलय धारी (रामचन्द्र) की कृपा को आगे करके चल पडा।

अगद प्रभृति वीर वानर, जिनका क्रोध शत्रुओं को विनष्ट कर सकता था, सूयपुत्र के प्रति नतशिर होकर फिर उत्तम धनुधारी (राम लक्ष्मण) को भी नमस्कार करके, विशाल समुद्र सम सेना के साथ दक्षिण दिशा की ओर चले। (१–७४)

●

अध्याय १३

बिल-निष्क्रमण पटल

अगद प्रभृति वे वीर, दक्षिण दिशा की ओर चले। उनके चले जाने के पश्चात् सूर्यपुत्र दक्षिण के अतिरिक्त सब दिशाओं में अन्य वानरों को भेज दिया। वे वानर आदेश दिये हुए कार्य (सीतान्वेषण) को सपन्न करने के लिए सारे ससार को भी जीतनेवाली विशाल सेना को लेकर, एक मास की अवधि के भीतर लौट आने का निश्चय करके, प्रबल गति से चल पडे।

पर्वत सदृश कधोवाले वानर, विद्युल्लता समान कटिवाली (सीता) का अन्वेषण करते हुए किस प्रकार पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में गये—यह न कहकर, हम समृद्ध तमिल (भाषा और साहित्य) से सपन्न दक्षिण दिशा में गये हुए वानरों के कार्यों का वर्णन करेंगे।

वे वीर, सिंदूर और पुजीभूत माणिक्य की कान्ति फैलने से सध्याकालिक गगन की समता करनेवाले तथा सर्पों से, चद्र से एव नदियों से सयुक्त रहने के कारण शिवजी की जटा की समता करनेवाले विंध्य पर्वत के सानुओं पर शीघ्र जा पहुँचे।

उन दोष रहित वीरों ने, उस दीर्घ पर्वत के मध्य उज्ज्वल रत्नों से पूर्ण शिखरों पर, मनोहर घाटियों में स्थित कदराओं में, पर्वत के सानुओं तथा दीर्घ एव सुन्दर प्रान्त प्रदेशों (तलहटियों) में इस प्रकार ढूँढा कि अनेक दिनों तक अन्वेषण करने का काय एक ही दिन में समाप्त कर लिया।

(धरती की) सीमाओं पर स्थित समुद्र ही जिसके उपमान हैं, ऐसी वह वानर सेना उस सीता के, जो समृद्ध भूमि को निष्पाप करने के लिए अवतीर्ण हुई थी और जो सोने की पट्टी से अलकृत अधकार सदृश केशोंवाली थी—रहने के स्थान को खोजते हुए उस भू प्रदेश

म (विंध्य प्रांत मे) ऐसे फैल गए कि उनके अतिरिक्त अन्य किसी के लिए वहाँ स्थान ही नही रहा

उत्तम बुद्धिवाले वे वानर, पृथक पृथक होकर चलते। कुछ (घाटियो मे) उतर कर चलते। कुछ (शिखरो पर) चढ़कर चलते। कुछ गगन मार्ग मे उछलकर चलते। उस पर्वत के पेडो के मध्य तथा जल की धाराओ मे रहनेवाले जीवो मे से कोई भी ऐसा नही रहा, जिसे उन वानरो ने नही देखा हो। ऐसा कोई हो, तो वह ब्रह्मा की सृष्टि मे ही नही है।

धरती के शिरोभूषण के समान रहनेवाली दक्षिण दिशा (देश) मे शीघ्र गति से जानेवाले वे वानर वीर, चौदह योजन दूर गये और उस नर्मदा नदी पर जा पहुँचे, जहाँ भैंसो के बछडे काले मेघो की पंक्तियो के मध्य मिले पडे रहते है।

हसो के क्रीडा स्थल, देव रमणियो के स्नान के घाट, स्वर्गस्थ देवो के विहार स्थान, मधुपान से मत्त भ्रमर कुलो के गान से गुंजरित प्रदेश—सर्वत्र घूम घूमकर उन वानरो ने (सीता का) अन्वेषण किया।

वे वानर, जो अपूर्व नारी (सीता) का अन्वेषण करने के लिए चले थे, काली मिट्टी रूपी केश पाश को, अलक रूपी भ्रमरो से आवृत सुगंधित कमल रूपी वदन को तथा (लहरो से छिटकाई जानेवाली) मुक्ता रूपी दाँतो को देखते थे, किंतु कही सीता के पूर्ण रूप को नही देख पाते थे।

युद्ध करने के उत्साह से पूर्ण शरीरवाले, अनन्य चित्तवाले, धर्म एवं करुणा से पूर्ण स्वभाववाले वे वानर, उस नर्मदा नदी को पार करके गये, जिसमे मत्तगज और करिणियाँ पैठकर क्रीडा करती थी।

फिर, हेमकूट नामक एक ऊँचे पर्वत पर आ पहुँचे, जिसके उज्ज्वल शिखरो से लहराती हुई जल धाराएँ बह रही थी, जिसपर कांति पुंज से भरे हुए रत्न जड़े पड़े थे और जो प्रसिद्ध दक्षिण दिशा की रक्षा करता है।

वह पर्वत अपने चारो ओर इतना महान् प्रकाश फैलाता था कि आस पास के सभी पर्वत, वृक्ष तथा अन्य पदार्थ भी तपाये हुए सोने के समान चमक रहे थे। वह मुक्तो के लोक (स्वर्ग) से भी अधिक ज्योतिमय था।

वह पर्वत सब वस्तुओ पर अपनी ऐसी स्वर्ण आभा को इस प्रकार फैलाता था कि उससे उस पर्वत पर निवास करनेवाले पक्षी तथा विविध मृग, स्वर्ण धूलि से अंकित रहनेवाले अत्युन्नत मेरु के निवासियो के समान बन जाते थे।

सर्वत्र फैलनेवाली स्वर्ग कांति के व्याप्त होने से स्वच्छ कांतिवाले लाल पद्मराग समूह के साथ झड़नेवाले निर्झर एवं नदियाँ ऐसी लगती थी, जैसे भड़कती अग्नि ज्वाला मे पिघला हुआ स्वर्ण बह रहा हो।

(उस पर्वत पर आये हुए) विद्याधरो के संगीत का नाद, स्वर्ण से उतरी शंख समान (धवल) वलयधारिणी एवं रूई सदृश कोमल चरणोवाली अप्सराओ के नृत्य एवं ताल का नाद, हाथियो का चिंघाड, वाद्यमान मृदंग के समान मेघ ध्वनि— ये सब मिलकर उस पर्वत मे गूँज रहे थे।

वानरो ने उस पर्वत को देखा। भ्रम से यही सोचकर कि यह पवत तीक्ष्ण शूलधारी रावण का निवास है, उमग से भर गये और क्रोध से आँखे लाल करके चिनगारिया उगलने लगे।

इस पर्वत मे हम मुग्धा हरिणी (समान देवी सीता) के दर्शन करेंगे और प्रभु क मन के ताप को दूर करेंगे।—यो विचार कर हर्ष से उत्फुल्ल हो निश्शक उम पवत पर चढने लगे।

(उन वानरों को देखकर) हाथी और शरभ डरकर भागने लग। सवत्र व्याप्त हिंस्र सिह अस्त व्यस्त होकर भागे। पर्वत पर सर्वत्र ढूँढने पर भी सीता को कहीं न देखकर वे वानर समझ गये कि (वह रावण का आवास नही, किन्तु) यह दूसरा काइ स्थान ह। तब वे वहाँ से चले गये।

वे वानर, शत योजन विस्तीण, स्वर्ग को छूनेवाले उस स्वणमय पवत म दिन भर खाजते रहे। वहाँ देवी सीता की टोह न पाकर फिर वहाँ से उतर चले।

अगद आदि सेनापतिया ने दो 'वल्लम' सख्यावाली अपनी सना का आज्ञा दी कि तुमलोग स्वच्छ जल के पूण दक्षिण दिशा के सारे भू भाग म खोजकर महद्र पर्वत पर आ जाओ। फिर, वे उस उन्नत हमकूट पवत से पृथक् पृथक् दिशाओ म चल पट।

वज्रमय कधोवाले उत्साही तथा विजयी हनुमान् आदि वानर वीर झुड बाँधकर चल पडे। उस मार्ग मे व एक ऐसे मरु प्रदेश म जा पहुँचे, जहाँ जल का नाम तक नही था ओर जिसे देखकर सूय भी भयभीत हो जाता था।

वहाँ कोई पक्षी नही था। कोई जतु भी नही था। मधुपूण पुष्पोवाले वृक्ष ओर घास का चिह्न तक नही था। वहाँ पत्थर भी जलकर भस्म बन गये थे। वहाँ शून्य के अतिरिक्त और कुछ नही था। वहाँ सब वस्तुएँ धूल बनकर उडती थी।

वहाँ पहुँचने पर उन वानरो की सब इन्द्रियाँ काँप उठी। उनकी मति भ्रष्ट हा गई। उनके शरीर तपकर पसीने पसीने हो गये और व दक्षिण दिशा म स्थित (कुभी पाक आदि) अग्निमय नरक म पडे हुए अस्थिहीन कीटो के समान तडप उठे।

वे अपनी जिह्वा को निकाले हुए थे। ज्यो ज्यो अपने चरण धरती पर रखते थे, त्यो-त्यो ताप से उनके पैरो मे छाले निकल आते थे। उनके शरीर वहाँ की बालू से भी अधिक तप उठे, जिससे वे यो तडपने लगे, जैसे जले हुए पत्थर से चिनगारियाँ निकल रही हो।

कही विश्राम करने के लिए थोडी भी छाया न देखकर व ऐसे व्याकुल हुए कि उनके प्राण शरीर से निकलने को हो गये। उनकी वह वेदना अपार थी। उस ताप से बचने के लिए उपाय करके अत मे एक विवर के विशाल द्वार पर आ पहुँचे।

उन्होने विचार किया—अब उस रेगिस्तान मे मरने के सिवा आगे जाना असभव हे। यदि इस विवर मे प्रवेश करेंगे, तो कम से कम इस उष्णता से तो बच जायेंगे। यो उस विवर के भीतर देखने का निश्चय करके वे उसमे उत्तर पडे।

उम विवर के भीतर जाकर वे एक ऐसी कदरा म प्रविष्ट हुए, जिसम चारो

दिशाओं तथा धरती का सारा अंधकार ... मानो ... सूर्य से त्राण पाने के लिए ही वहाँ आ छिपा हो।

वे वानर ... नहीं पाते थे। ... पग ... उन्हें यह ज्ञान भी नहीं होता था कि आगे ... मार्ग भी है, या नहीं। वे उस गाढ़ अंधकार में इस प्रकार छिप गये, जैसे ... उनके आकार भी अदृश्य हो गये और वे निःश्वासमात्र भरते खड़े रहे।

अपने अगले कर्त्तव्य का कुछ निर्णय न कर पाने ... स्तब्ध खड़े होकर तथा सुसुप्त से बनकर सब वानरों ने हनुमान से प्रार्थना की कि ... मारुति! क्या तुम हमें इस विपदा से नहीं बचाओगे।

तब हनुमान् ने उन वानरों से कहा—मैं तुम्हें बचाऊँगा, व्याकुल मत होओ। तुम सब मेरी पूँछ को क्रमशः दृढ़ता से पकड़ लो, छोड़ना नहीं। फिर वह उस उत्तम मार्ग को अपने हाथों से टटोलता और शीघ्र गति से पैर बढ़ाता हुआ चला।

दीर्घ स्वर्ण पर्वत सदृश कंधावाला वह (हनुमान्) ... योजन तक गया। उस समय उसके कानों के दो विद्युत् खंड सदृश प्रकाशमान ..., अपनी कांति से घन अंधकार को दूर कर रहे थे।

उस विवर के भीतर जाकर उन वानरों ने एक अति सुन्दर नगर को देखा। वह नगर ऐसा था, मानो कमल को विकसित करनेवाली किरणों से युक्त सूर्यमंडल ही वहाँ आ छिपा हो। उसके प्रकाश से देवपुरी भी लज्जित होती थी। वह नगर कमल में निवास करनेवाली (लक्ष्मी) के वदन के समान भासमान रहता था।

उस नगर में कल्पतरु के समान वृक्ष थे। कमल वन शोभायमान थे। उसके प्राचीरों में स्वर्ण निर्मित गुंबज शोभा दे रहे थे। उन्हें देखकर देवता भी आश्चर्य चकित हो जाते थे। असुर शिल्पी मय के द्वारा अति परिश्रम से वह निर्मित किया गया था।

देवेंद्र का नगर (अमरावती) भी उस नगर की समता नहीं कर सकता था। गगन में चमकनेवाले ज्योतिर्पिण्ड (सूर्य चन्द्र) उस नगर की भूमि पर अपने प्रकाश नहीं फैलाते थे, तथापि उसके प्रासादों में लगे ... रत्न तथा स्वर्ण, अपनी कांति से दुर्निवार अंधकार को मिटाते रहते थे।

संसार में प्रशंसित राजाधिराज कुलोत्तुंग चोल की कीर्त्ति का गान करनेवाले कवियों के प्रासादों के समान ही वहाँ के प्रासादों में स्वर्ण राशि, अमूल्य तथा प्रकाशमान वस्त्रों का ढेर, कोमल चंदन रस, पुष्पहार, उज्ज्वल आभरणों की राशियाँ, ये असीम रूप में वर्त्तमान थे।

उस नगर में मुखरमान नूपुरों से भूषित चरणोंवाली रमणियाँ और सच्चरित्र पुरुष एक भी संचरण नहीं करते थे। अतः, वह नगर उस चित्र के समान था, जो न निद्रा कर सकता है, न देख सकता है और न जिसमें प्राण ही होते हैं।

उस नगर में अमृत को जीतनेवाले भोज्य पदार्थ थे। तामिल भाषा सदृश (मधुर)

मधु था। अनुपम शीतल मद्य था। मीठे फलो की राशियाँ थी। इसी प्रकार की अन्य अनेक वस्तुएँ वहाँ भरी पडी थी और सर्वत्र सुरभि फैली हुई थी।

वानर वीरो ने इस प्रकार के अविनश्वर तथा विशाल नगर को अपने सम्मुख देखा और यह सोचा कि यही शत्रु रावण की नगरी है। वे परस्पर यही बात करते हुए आनन्द और आश्चर्य से भर गये और उस स्वर्णमय नगर के द्वार मे होकर उसमे प्रविष्ट हुए।

उस नगर मे प्रविष्ट होकर वे सर्वत्र (सीता को) ढूँढ़ने लगे। उन्होने घूम घूमकर देवताओ, मनुष्यो तथा त्रिभुवन के अन्य प्राणियो के चित्र मात्र देखे। किन्तु, किसी सजीव प्राणी को नही देखा।

वहाँ तालाब थे, सरोवर थे। दिव्य सुगधि से पूर्ण उद्यान थे। नील कुवलय तुल्य नयनोवाली रमणियो की कठ ध्वनि जैसे गानेवाले कोकिल बाल थे। शुक एव मनोहर पख वाले हस थे। किन्तु, वहाँ मयूर सदृश आकारवाली (नारी) एक भी दिखाई नही पडी।

उन्होने उस नगर के भीतर जाकर उसकी दशा देखी और सोचा—यह कोई मायापुरी है। फिर विचार किया—हमे पाताल का कठोर जीवन प्राप्त हुआ है। फिर सदेह किया—कदाचित् हमलोग पवित्र स्वर्गलोक मे पहुँच गये हैं।

फिर सोचा—हम तो मरे नही हैं, नही, हमने इस स्वर्ग को पाने के लिए कुछ प्रयत्न ही किया है। हम पिछली (जीवन की) घटनाओ को भूले भी नही हैं। हमारे मन मे अब भी सशय उत्पन्न हो रहा है (यदि हम देवता होते, तो सशयहीन होते)। हम पलके भी मार रहे हैं। मूच्छित व्यक्तियो जैसे व्यापार भी हम मे नही है। हम किस दशा मे हैं—यह हम कैसे जान सकते हैं?—यो कहते हुए वे भ्रात से खडे रहे।

उस समय जाबवान् कहने लगा—जिस राक्षस (रावण) ने अपनी सहज वचकता से नवोत्पन्न बाँस के समान भुजावाली (सीता) देवी का अपहरण किया है, उसीने हमे फँसाने के लिए यहाँ ऐसा एक यत्र बना रखा है। इसका कही कोई अत नही दिखाई पड़ता। (ऐसा जान पडता है कि) प्राचीन पापो के परिणामस्वरूप, अबतक का हमारा सारा उत्साह मिट जायगा।

तब जाबवान् को देखकर हनुमान् ने क्रोध से कहा—यदि इस विवर से हमारा बाहर निकलना असभव हो जाय, तो हम सगर पुत्रो से भी अधिक बलवान् होकर इस पृथ्वी को खोद डालेगे और उस पार निकल जायेगे। वैसा न हो, तो इस प्रकार हम धोखे मे डालनेवाले सब राक्षसो को मिटाकर हम ऊपर उठ जायेगे। तुम किंचित् भी भय मत करो।

हनुमान् के वचन से दृढचित्त होकर कुछ वानर वीर नगर मे गये। वहाँ एक स्वय प्रभा नामक तपस्विनी को देखा, जो ऐसी थी, मानो सारी तपस्या स्त्री के उस रूप मे साकार बनी बैठी हो और जो स्वर्णमय जटा धारण किये हुए थी।

उसका वदन सोलहो कलाओ से पूर्ण चन्द्र के समान था, कटि मे आभूषण पहने थी। रेखावाले चक्रवाक तथा स्वर्णकलश सदृश उसके स्तन धूलि धूसरित हो रहे थे। उज्ज्वल अरुण तथा काले रगवाले मीन सदृश उसके नयनो की दृष्टि नासाग्र पर स्थिर थी।

वह अपने रथ सदृश जघनभाग को, परस्पर तुल्याकार कदली के समान जाँघो के

साथ संयुत करके, (सब अंगों को) समेटकर, श्वास को रोककर बैठी थी, जिससे उसकी अत्यन्त कंपनशील सूक्ष्म कटि बिलकुल निःस्पन्द हो गई थी और उभरे स्तनों का भार थम गया था।

कमल पुष्पों के उपमान बननेवाले उसके अति सुन्दर पल्लव के समान कर, मनोहर स्वर्ण जाँघों के मध्य स्थिर रूप में संयुत पड़े थे। (उसके हृदय में) कामादि अंतःशत्रुओं का समूल विनाश हो गया था। उसमें कामना का नाम तक नहीं रह गया था। उसकी इंद्रियाँ सद्ज्ञान में निमग्न हो गई थीं।

घने, दीर्घ तथा काले रंगवाले उसके केश पाश घनी जटा बनकर पृथ्वी पर लोट रहे थे। काम बंधन उसे छोड़कर चला गया था। मन का पाश (आसक्ति) भी छूट चुका था। उसके नयनों से करुणा फूट रही थी।

वह तपस्विनी इस प्रकार आसीन थी। उसके समीप पहुँचकर वानरों ने उसको प्रणाम किया और अरुन्धती कहने योग्य सीता ही समझकर उतावले हो उठे। फिर, हनुमान् से उन (वानरों) ने कहा—क्या यही (सीता) देवी हैं? (राम के द्वारा) बताये चिह्नों को देखकर कहो?

मारुति ने उत्तर दिया—(देवी सीता का) कौन सा गुण, कौन सा चिह्न इसमें है—मैं क्या बताऊँ? (अर्थात्, कोई भी चिह्न इसमें नहीं है)। क्या इस प्रकार के लक्षणवाली कहीं राम की पत्नी हो सकती है? यदि अस्थियों की माला मुक्ताहार की समता कर सके, तो यह स्त्री भी सीता की समता कर सकेगी।

उस समय, उस दिव्य स्त्री ने अपना ध्यान भंग करके उन वानरों को देखा। उनका अपने सम्मुख आना अनुचित समझकर वह क्रुद्ध हो उठी और उनसे प्रश्न किया—मेरे इस नगर में किसी का प्रवेश करना असंभव है। तुम इस नगर के निवासी भी नहीं हो, तो तुम यहाँ क्यों आये? कौन हो तुम? बताओ।

वानरों ने उत्तर दिया—उपद्रवी राक्षसों ने माया और वंचना करके सीता का अपहरण किया है। दोषरहित धर्ममार्ग की रक्षा करनेवाले रामचन्द्र के हम दूत हैं और उस स्थान की खोज में इस संसार में घूम रहे हैं, जहाँ राक्षस ने सीता को छिपा रखा है।

वानरों के यह कहते ही, बैठी रहनेवाली वह (स्वयंप्रभा) उठकर खड़ी हो गई। उसके हृदय में उन (वानरों) पर दया उत्पन्न हुई और वह पर्वत सदृश आनन्द से फूल उठी। फिर, उन (वानरों) से यह कहकर कि आप सबका स्वागत है, (आपके आगमन से) मैं आनन्दित हुई—दोनों नयनों से आनंदाश्रु बहाने लगी।

नवीन तथा मनोहर हरिण के सदृश दीर्घ नयनोंवाली उस तपस्विनी ने प्रश्न किया—रामचन्द्र कहाँ रहते हैं? तब कठोर आसक्ति से हीन मारुति ने (रामचन्द्र का) सारा वृत्तांत, आदि से अंत तक, कह सुनाया।

उन वचनों को सुनकर वह बोली—अपने दोषरहित तप के प्रभाव से आज मुझे शाप से विमुक्ति प्राप्त हुई। यह कहकर उन वानरों के प्रति आदर भाव दिखाने लगी।

उन्हे सुगधित जल से स्नान कराकर, अमृत समान सुस्वादु भोजन दिया और मन को माद देनेवाले मधुर वचन कहे।

मारुति ने उस तपस्विनी के पुण्य-चरणों को नमस्कार करके प्रश्न किया—सार्वभौम यश के योग्य तपस्या करनेवाली हे देवी! आप मुझसे कहे कि इस नगर के अधिपति कौन हैं? तब घनी जटाधारिणी उस तपस्विनी ने सारा वृत्तात कह सुनाया।

हे उत्तम! हरिणमुख मय ने, शास्त्रोक्त विधान से, अपना मुँह ऊपर की ओर उठाये, धूप और वायु का ही आहार करते हुए कठोर तपस्या की थी। उसी के फलस्वरूप चतर्मुख ने यह विशाल नगर उसको प्रदान किया।

इसी प्रकार यह नगर उत्पन्न हुआ। उस दानव (मय) ने अप्सराओं में से एक सुन्दरी का सग प्राप्त करना चाहा। वह सुन्दरी मेरी प्राण सखी थी। उस असुर की प्राथना पर मै स्वर्णनगर (अमरावती) से उस सुन्दरी को इस विवर के भीतर ले आई।

वह अप्सरा और वह दानव—दोनो चक्रवाक के जोडे के समान समागम सुख मे मत्त होकर, सब कुछ भूलकर अनेक दिनो तक इस विशाल नगर मे निवास करते रहे। ताटक धारिणी उस अप्सरा के साथ गाढे स्नेह पाश मे बँधी हुई मै भी यही रहने लगी।

हे बलशालिन्! जब अनेक दिन व्यतीत हुए, तब देवेद्र उस उत्तम आभरण धारिणी अप्सरा का अन्वेषण करने लगा। फिर, क्रोधी होकर उसने उस बलवान् असुर को मिटा दिया और मयूरपख के मूल भाग के समान धवल हासवाली उस अप्सरा से क्रोध से कहा कि तुम्हारा कार्य अत्यन्त क्षुद्र है।

देवेंद्र ने यों क्रुद्ध होकर उससे कहा—तुम सारी घटनाओं को कह सुनाओ। भली भाँति पके हुए बिंबफल जैसे अधरवाली (हेमा नामक) उस अप्सरा ने आँखो के सकेत से सूचित किया कि इस मेरी सखी के कारण ही यह अपराध हुआ। तब इन्द्र ने सत्य को जानकर मुझसे कहा—तुम इसी नगर मे इसकी (नगर की) रक्षा करती हुई पडी रहो।

उसकी यह आज्ञा होते ही, उसे नमस्कार कर मैने उससे पूछा—इस दु ख से मुझे कब मुक्ति मिलेगी? कुछ अवधि निर्धारित कीजिए। तब इन्द्र यह कहकर अदृश्य हो गया कि जब राम की आज्ञा से बलवान् वानर इस नगर मे आयेंगे, तब तुम्हारी विपदा का अत होगा।

हे उत्तम! यहाँ मेरे भोजन के लिए फल आदि है, लेप के लिए चदन आदि हैं, पुष्प हैं, इतना ही नही, मनोहर वर्णवाले अनेक वस्त्र हैं, अन्य (आभरण आदि) वस्तुएँ भी हैं। किंतु इन सबका त्याग कर, आपके आगमन की ही प्रतीक्षा करती हुई चिरकाल से मै तपस्या करती रही हूँ?

हे उत्तम! यह विवर शत योजन विस्तीर्ण है। इस विवर से बाहर के लोक में जाने का मार्ग मैं नही जानती। यदि तुम लोग मेरी सहायता करो, तो मेरे उद्धार का मार्ग निकल आयगा। उसका कोई उपाय अपने मन में सोचो—यों उसने कहा।

स्वयंप्रभा के इस प्रकार कहने पर हनुमान् ने इन्द्रियों पर दमन करनेवाली उस

तपस्विनी के कमल समान चरणों को प्रणाम करके ... —तभी मैं देवताओं के निवासभूत स्वर्ग प्रदान करूँगा।

अन्य वानरों ने हनुमान से विनती की — ... इस विवर के द्वार के घने अंधकार में प्रवेश करके मृत्यु ... आगे का कर्त्तव्य भी तुम्हीं सोचो। अवर्णनीय महिमावाले हनुमान ने वैसा ही करने का निश्चय किया।

हनुमान् ने अन्य वानरों से यह कहा कि ... और मंदहास के साथ सिंह जैसे उठ खड़ा हुआ। उसने अपने हाथों को ऊपर उठाकर, अपने शरीर को गगनतल तक यों बढ़ाया कि वह विवर, जो ऊपर के गगन से बहुत नीचे स्थित था, फट गया और गगन से एकाकार हो गया।

वायुपुत्र के दोनों हाथ दो उज्ज्वल लता के समान ऊपर उठ गए थे। जब वह विवर को भेदता हुआ ऊपर की ओर उठा, तो देखनेवालों के मन भय से भर गये। (उस समय) वह क्रोध के साथ पृथ्वी को उठानेवाले ... के समान दृष्टिगत हुआ।

उस समय वह (हनुमान्) उस वामन भगवान के सुन्दर चरण की समता कर रहा था, जिस (वामन) ने (बलि से) तीन पग भूमि माँगकर, दो पग से सारी सृष्टि को मापते हुए, कमल में निवास करनेवाले, उत्तम स्वरूपवाले ब्रह्मा की सृष्टि (अर्थात्, ब्रह्माण्ड) को आवृत करनेवाले आकाश रूपी आवरण को तोड़ दिया था।

हनुमान् ने एक शत चतुर्दश योजन दूर तक उस विवर को भेद दिया और विवर में स्थित उस नगर को उखाड़कर पश्चिम के समुद्र में फेंक दिया। फिर, मेघ के समान गरज उठा। वह दृश्य देखकर देवता भी काँप उठे।

हनुमान के द्वारा फेंका गया वह नगर अब भी पश्चिमी समुद्र में, विवर द्वीप के नाम से प्रख्यात है। विशाल ललाटवाली स्वयंप्रभा के साथ, पर्वत के समान कंधोंवाले वानर वीर वहाँ से बाहर निकले और अपने मार्ग पर आये। सुन्दर ललाटवाली स्वयंप्रभा स्वर्णमय स्वर्ग में जाने के लिए उद्यत हुई।

मेरु सदृश सुन्दर स्तनोंवाली वह अति सुन्दरी स्वयंप्रभा, अत्युत्तम हनुमान की अनेक प्रकार से प्रशंसा करने के पश्चात् कल्प वृक्षों से युक्त स्वर्णमय स्वर्गलोक में जा पहुँची, जहाँ हेमा नामक उसकी सखी निवास करती थी।

पराक्रमी वानर हनुमान के बल विक्रम की प्रशंसा करते हुए चल पड़े। वे दिन भर चलकर एक जलाशय के तटपर जा पहुँचे। उस समय रश्मिमाली प्रतापी सूर्य भी अस्ताचल पर जा पहुँचा। (१—७०)

●

अध्याय १४

मार्ग-गमन पटल

वानरों ने उस सुन्दर जलाशय को देखा। उसके मधुर जल को अजलि म भर भर कर पिया। उसके तट पर स्थित मधुर फल और मधु का आहार किया। वहाँ एक मनोहर स्थान पर सुखद निद्रा की। उनके सोते समय, एक असुर वहाँ आ पहुँचा।

वह पर्वत की समता करता था। विशाल समुद्र की बराबरी करता था। कठोर हिंसक यम की तरह लगता था। क्रूरता का आगार जान पड़ता था। किंचित् भी सदगुण से नितान्त विहीन था। गगनगत चन्द्रकला के सदृश एव विष समान दाँतोवाला था और अपनी आँखो से कोपाग्नि उगल रहा था।

बडे बड़े मेघ, जो सृष्टि के आदिकारण थे, उसकी बाँहों पर एव उसके महदाकार शरीर पर फैले हुए थे, जिससे उसके शरीर पर अनुपम जल धारा बहती रहती थी। अत, वह निर्झरों से युक्त पर्वत के समान था।

वह दुष्ट असुर इतना प्रतापी था कि देव और असुर—दोना के लिए वह अजेय था, तो अन्य कोई उसके साथ युद्ध करने का विचार तक कैसे अपने मन म ला सकता था।

चमकते हुए लाल लाल केशोवाला, अपनी गति से चाक की समता करनेवाला वह असुर अपने हाथो को मलता हुआ उन वानरो के पास, जो धम से पूर्ण चित्तवाले थे और मार्ग गमन से श्रात होकर निद्रा म मग्न पडे थे, जा पहुँचा।

यम सदृश उस (तुमिर नामक) असुर ने, यह कहता हुआ कि यह मेरा जलाशय है, यह जानते हुए भी यहाँ आनेवाले ये क्षुद्र प्राणी कौन है? यह कैसा आश्चर्य है? उत्तम अगद के पुष्पालकृत वक्ष पर हाथ से प्रहार किया।

वीर अगद निद्रा मे जगकर और यह सोचकर कि यह असुर ही लकेश्वर है, अपने को मारनेवाले उस असुर को ऐसा मारा कि युद्ध मे निपुण वह असुर निष्प्राण हो गिर पड़ा।

उस समय, बिजली गिरने से टूटनेवाले पर्वत के समान, आहत होकर चिल्लाता हुआ जब वह असुर गिरा, तब भूतग्रस्त से होकर सोये पडे रहनेवाले सब वानर अगद नामक आभरण से भूषित अपनी भुजाओं पर ताल ठोकते हुए उठ खडे हुए।

मारुति ने तारा पुत्र से पूछा—यह कौन है? इसने क्या किया? अगद ने उत्तर दिया—हे सत्यनिरत। मै कुछ नही जानता।

तब जाबवान् ने कहा—मैने भली भाँति सोचकर जान लिया कि यह असुर कौन है। मास लगे शूल को धारण करनेवाला यह असुर तुमिर नामधारी दैत्य है और इस गभीर सरोवर का रक्षक है।

मार्ग गमन से विश्रात वे वानर-वीर, यह सोचकर कि इस असुर के समान ही यहाँ और भी कई असुर होगे, अपनी मीठी निद्रा त्याग कर उठ बैठे और जब अरुणकिरण

प्राचो दिशा म निकला, तब मनोभिरामत कमल पर आसीन लक्ष्मी (के अवतारभूत सीता) को ढूँढ़न लगे।

सीता का अन्वेषण करनेवाले व वानर पेना (उत्तर पेनार) नदी रूपी सुन्दरी क पास जा पहुँच, जो चक्रवाक को लाज्जत करनेवाले पुलिन (सैकत राशि) रूपी स्तना, अमृतरस स पूर्ण, जल स स्थित रक्तकुमुद रूपी अधर, मनोहर तथा उज्ज्वल दता एव प्रकाशमान वदन स युक्त थी।

ज्ञान की सीमा पर पहुच हुए उन वानर वीरा न, पवत की घाटियो म, जहाँ मयूर नृत्य करत थे, नदी के मध्य म स्थित टापुओ म, पुष्प वाटिकाओ म, शीतल किनारो वाले पोखरो म, शुभ्र पुष्पो से भरे हुए सरोवरा म और निमल स्फटिक शिलाओ म—सवत्र (सीता को) खोजा।

फिर, वे उस नदी क (दक्षिणी) तट पर आ ठहरे, जो (नदी) अपने जल म स्नान करनेवाले लोगो की जन्म व्याधि का बहा देती थी और अपने अलध्य भँवरो म उत्तम रत्नो को बिखेरती थी।

(सीता क) अन्वेषण म लगे व वानर, स्नान करने क योग्य उस नदी को तैरकर अनेक अरण्यो एव पवतो को पारकर, लहराती जलधाराओ स युक्त उस (दशाव नामक) देश म जा पहुँचे, मानो वे मुक्तिलोक म ही पहुच गये हो।

चपक वनो से युक्त तथा सस्यो से समृद्ध उस दशानव (दशाणव) नामक देश का पार कर, अति प्रख्यात उस विदभदेश म जा पहुँचे, जहा उशनस नामक कवि (शुक्राचाय) उत्पन्न हुए थे।

वे वानर, वैदभ की भूमि म आकर, वहाँ क सब ग्रामा म गये और वहाँ दभ एव यज्ञोपवीत स शोभित शरीरवाले मुनियो के दर्शन करत हुए (सीता का) अन्वेषण करत रह।

व ज्ञानवान् वानर वीर, इस प्रकार अन्वेषण करत हुए, रक्त धान की फसलो स भरे विदभ देश का भी शीघ्र पारकर उस दडकारण्य म जा पहुँचे, जहाँ आराध्यान म निरत अनेक मुनि तप करत थ।

जहाँ मुनि, अपने शरीर म विषयो का उपभोग करते हुए निवास करनेवाले पचद्रिय रूपी शत्रुओं के लिए कठोर यम बनकर तपस्या करत रहत थे, उसे दडकारण्य म जाकर (सीता का) ढूँढते हुए सुन्कमर नामक स्थान म पहुँचे।

उस सरोवर का जल देवस्त्रियों क पीनस्तनो पर चदन लेप एव पुष्प मालाओं क ससग स अत्यन्त सुगधित हो रहा था। उसम स्थित पक्षी भी वहाँ की (सुगधि म भरी) मछलियो को नही खात थे।

वहाँ विद्याधरो के विरह म पीडित स्त्रियाँ, वीणा वाद्य का श्रवण कर, मन म अत्यन्त द्रवित होकर, व्याकुलता से काँप उठती थी और उनकी आँखों स अश्रुजल यो बह चलता था कि हाथी भी उसम डूब सकत थे।

रक्तकुमुद के समान मुँहवाली, कोकिल को लज्जित करनेवाली, मन्मथ के शरपुँज

सदृश दृष्टियो एव उस (मन्मथ) के धनुष के सदृश ही भौहो से शोभित एव अमृत सदृश सगीत गानेवाली सुन्दरियाँ क्रमुक वृक्षों पर लगे झूलो म बैठकर झूलती रहती थी।

इस प्रकार के सुन्दर मुडकसर के तट पर पहुँचकर व वानर वीर मन से भी अधिक तीव्र गति से ढूँढने लगे। किंतु (पचविध) शैलियो[1] म सजाने याग्य सुन्दर केश पाशोंवाली लक्ष्मी के अवतार सीता को कही भी न देखकर अत्यन्त खिन्न होकर त्वरित गति से आगे बढ चले।

फिर, वे वानर, विशाल गगन को व्याप्तकर रहनेवाले उस पाडुपर्वत पर जा पहुँचे, जो ऐसा लगता था, मानो त्रिविक्रम के दीर्घ चरण के कारण (आकाश के छिद जाने से) गगन तल से गगा की धारा ही नीचे उतर रही हो।

वह पर्वत अपनी काति से समस्त अधकार को मिटा देता था। आकाश के चद्रमा को भी मद कर देता था। वह करुणाहीन बलवान् राक्षस (रावण) को दबानेवाले कैलाश पर्वत की समता करता था।

उस गगनोन्नत उज्ज्वल पर्वत के पास पहुँचकर वानर वीर दत्तचित्त हो सीता को ढूँढने लगे। किंतु, कही भी मधुर राग सदृश बोलीवाली सीता को न देखकर मन म अत्यन्त व्याकुल और शिथिल हुए।

पवन के समान वेगवाले, निष्ठुर दृष्टियुक्त व्याघ्र के समान बलवाले, व वानर वीर उस पाडुपर्वत के प्रदेश को छोडकर आगे बढे। फिर, वे गोदावरी नदी के समीप जा पहुँचे, जो राक्षस के द्वारा अपहृत हो जानेवाली सीता के केश पाश से धरती पर खिसककर गिरी हुई पुष्पमाला से समान लगती थी।

उस गोदावरी नदी की तरगायमान जलधारा, मुक्ता के सदृश स्वच्छता लिये हुए बह रही थी। वह ऐसी थी, मानों पृथ्वी देवी, सर्वपूज्य जनक के द्वारा वेदपाठ के साथ यज्ञार्थ धरती को जोतते समय उत्पन्न अनुपम सीता के दु ख से व्याकुल होकर अश्रु बहा रही हो।

वह (गोदावरी) नदी, जो रत्नो को और स्वर्ण को बहाती हुई अनेक अरण्यो से होकर मनोहर गति से प्रवाहित हो रही थी, ऐसी थी, मानो इस धरती को नापने का सूत्र हो। या जटायु के साथ युद्ध करते समय रावण के वक्ष पर से (जटायु के द्वारा) खीचकर फेंका गया रत्नहार हो।

वे वानर वीर, जो भले बुरे का विवेचन करने में चतुर थे, उस गोदावरी नदी म भली भाँति ढूँढकर, उत्तम ककण धारिणी सीता को कहा भी न पाकर आगे बढ चले और बहुत दूर चलकर, सब पापों को मिटानेवाली सुवर्णनदी के तट पर पहुँचे।

स्वर्णकीट, मधुमक्खी, काले भ्रमर, हस तथा अन्य पक्षिगण—सबके समीप से होकर जानेवाले वानर, लाल धान तथा कमल युक्त सरोवरो से भरे हुए जल समृद्ध समतल

---

१. तमिल के प्राचीन ग्रन्थों में केश को सजाने की पाच शैलियों का वर्णन है।—अनु०

प्रदेशा को पार कर, अमृतसम जल से पूर्ण नारिकेल फलो के बागो से भरे पुलिद देश को पार कर गये।

उन्होंने सप्तकोंकण प्रदेशो को पार किया। पश्चिमी समुद्र तट पर उन प्रदेशो को, जहाँ मुक्ताराशियो, शख, नीलोत्पल आदि से पूर्ण अनेक जलाशय थे, पार किया। फिर, उस अरुधती पर्वत के निकट पहुँचे, जिसके शिखर की परिक्रमा चन्द्र भी करता करती थी और देवता जिसे प्रणाम करते थे।

अरुधती पर्वत के निकट जाकर, वहाँ सुन्दरता को भी सुन्दर बनानेवाली सीता को कही न देखकर वे आगे बढ चले। फिर, उस मरकत पर्वत पर जा पहुँचे, जहाँ गोपागनाएँ आकर (पार्वत्य स्त्रियो से) दधि के बदले मधु ले जाती थी। फिर, वहाँ से चलकर (तमिल देश की उत्तरी) सीमा बनी हुई वेकटाचल पर्वत पर जा पहुँचे।

उस वेकटाचल पर्वत के निर्झरो मे मुनि, वदज्ञ ब्राह्मण, पूर्वजन्म के पापो को मिटानेवाले तत्त्ववेत्ता, देव, अमरस्त्रियाँ, सिद्ध—सभी नित्य आकर स्नान करते हैं।

उस पर्वत पर देवता अपनी पचेन्द्रियो को तीव्र काम वासना को, दूसरो के निंदा वचनो को, रमणियो के सुन्दर दृष्टिबाणो को, जीतकर उत्तम तपस्या का आचरण करते रहते है।

उस वेकटाचल पर, जो विजयी चक्रधारी श्रीनिवास महेश भगवान् के उज्ज्वल चरणो को धारण किये है, निवास करनेवाले जीव जतु भी मोक्ष पद प्राप्त करते है, तो उन तपस्वियो के सबध मे क्या कहा जाय, जो सत्य ज्ञानवाले है।

इस प्रकार के उस वेकटाचल की अपूर्व तपस्या सपन्न भाग्यवान् लोग ही प्राप्त करते है। वे वानर वीर, शाश्वत सुख को प्रदान करनेवाले प्रभु (श्री निवास) के चरणो की नित्य सेवा करनेवाले उन तपस्वियों के चरणो पर प्रणत हुए।

कामरूप धारण करनेवाले उन वानर वीरो ने (उन तपस्वियो की) चरण धूलि को शिर पर धारण करने के पश्चात् उस वेकटाचल पर, धनुवाले केशोवाली, कलापितुल्य (सीता) देवी को ढूँढा और फिर, ब्राह्मण का वेष धारण कर उस तोण्डमडल प्रदेश मे जा पहुँचे, जो स्वच्छ एव तरगायमान जलाशयो से भरा है।

वहाँ (तोंडमण्डल) के सब प्रदेशो मे, पर्वतो की घाटियाँ, गोपों के आँगनो को घेरे हुए उद्यान, प्रभूत जल से सपन्न प्रदेश और स्वच्छ वीचियो से युक्त समुद्र से आवृत विशाल खेत हैं।

वहाँ कृषक भेड बाँधकर हल जोतते है। जब वे अपने हाथ की छड़ी हिलाकर हाँक लगाते हैं, तब चर्ममय पैरोंवाले हस उड़कर उन खेतो मे भाग जाते हैं, जहाँ शालिधान, कटहल के पेडों की जड़ मे लगे (पके) फलो से गिरे हुए मधु से सिंचित होते हैं। वे हस अपने पैरो से धान के अकुरों को रौंद देते हैं।

सुन्दरियों के केशों तक फैले हुए नयनो जैसे मधु भरे नीलोत्पल समुदाय जिन खेतो के प्रातो मे उगे रहते हैं, उनमे ग्वालिनो के जाघो के सदृश कदली वृक्ष लगे रहते हैं और उन कदली वृक्षों पर सारस एव कोकिल सोये रहते हैं।

वीथियो म अनेक वाद्यो की बडी ध्वनि का सुनकर मयूर, (समार की) वृद्धि क कारणभूत मेघ का घोष समझकर नाच नहीं उठते।[1] नृत्य करनेवाला के मृदग की ध्वनि को सुनकर हस भी (उसे मेघ गर्जन समझकर) उड नही जात। क्योकि (ऐसी ध्वनियो म) चिर परिचित रहनेवाले प्राणी उनको सुनकर भ्रम कैसे कर सकत ह?

अलकृत रथ सदृश नारिकेल वृक्ष क कामल तथा मुकुलित पुष्पो को देखकर मीन उन्हे सारस समझते हैं और भय से कपित हो उठते ह। मण्डूक, नुकीले कोरवाले शीतल कुमुद पुष्पो को देखकर, उन्हे अपने को निगलने के लिए आये हुए सप समझ लत ह और डर से चिल्ला उठते हैं।

ककडो को पकडनेवाली पचम जाति की युवतियॉ, अति धवल शखा स उत्पन्न मोतियो को देखकर उन्हे चित्तियोवाले सारस पक्षियो के अडे समझ लेती ह औ उन्हे (खाने के लिए) कछुए की पीठ पर तोडने लगती ह।

शिशु मर्कट के अत्यन्त छोटे हाथ म, शाखाओ पर पकनेवाल कटहल का काया हे। उसपर पुष्पो से भरे उद्यान म जिस प्रकार भौरे मॅडरात रहत ह, उसी प्रकार मक्खियॉ मॅडरा रही हैं।

उस तोडमडल प्रान्त म निवास करनेवाले लोग—सपन्न, सस्कृत एव तमिल क पारगत विद्वान् हैं, दुष्टो को दमन करनेवाले ह, दानी ह—इत्यादि विशेषताओ स प्रशसित होते ह। अत, क्या कामधेनु भी ऐसे गृहस्थ जनो की समता कर सकती है?

वे अनुपम वानर वीर उस सुन्दर तोडमडल को पारकर विशाल कावेरी नदी स सयुत चोल देश मे जा पहुँचे और लाल धान, ईख, सुपारी आदि से सकुल मार्गों स होकर कठिनाई से आगे बढने लगे।

वहॉ के उन जलाशयो क तटो पर, जहॉ उभरी चोचवाले सारस पक्षी निवास करते ह, नारिकेल के वृक्ष बढे हुए ह। वानर, कभी उन वृक्षो के कठभाग पर से खूब पककर नीचे गिरे हुए अति मनोहर मधुर फलो से टकराकर गिरत, तो कभी वहॉ प्रवाहित होनेवाली मधुधारा म फिसलकर गिर पडते थे।

काले रगवाले जलकौवे, बाजो की सी ध्वनि करनेवाले ईख के कोल्हुओ क पास इक्षुरस से भरे बडे बडे पात्रो को देखकर उन्हे जलाशय समझ लेते थे और पक्तियो म जाकर उनम गोते लगाते थे।

पुष्पो से भरे, भ्रमर समूहो से सकुल उद्यानो से मधु की धारा बहती रहती थी। उन प्रवाहो के यथार्थ रूप को न जानकर वानर, उन्हे मीनो से पूर्ण सरोवर समझकर उनसे हट जाते थे और वृक्षो पर जाकर विश्राम करत थे।

वहॉ के केतकी-वृक्ष फूलो के गुच्छो से लदे रहत ह। उनके पास उगे हुए आम क पेडो के झुके हुए फल, केतकी फूलो के पुष्प रज से भर जाने से वैसी ही गध से महॅकने

---

1 भाव यह ह कि वहॉ सदा वाद्यो के घोष तथा मृदग का ध्वनि होती रहती है और मयूर तथा हस उन शब्दो से भली भाति परिचित रहत है।—अनु०

लगते हैं। मत्स्य के अकुरों के समीप रहा करती थी। इस पुष्प की गंध से सुगंधित रहता है।

पाप से रहित वे वानर वीर, कावेरी नदी से सिंचित चोल देश को पारकर गृहस्थ धर्म से सुशोभित पर्वतमय चेर देश (मलयदेश) में आ पहुँचे। फिर, वहाँ से मधुर तमिल भाषा से युक्त दक्षिण (पाण्ड्य) देश में पहुँचे।

वह (पाण्ड्य) देश समस्त संसार में विख्यात मुक्ताओं और त्रिविध तमिल[1] को प्रदान करने की महिमा से पूर्ण है। अतः, यदि कहें कि वह देश स्वर्गलोक के सदृश है, तो यह उपमा कैसे उचित होगी?

सरल चित्तवाले वे वानर, इस प्रकार उस पाण्ड्यदेश में सर्वत्र ढूँढ़कर और घने केशपाशोंवाली (सीता) देवी को कहीं भी न देखकर दुःखी हुए और पग शिथिल होकर चलते रहे, जैसे उनकी मृत्यु ही निकट आ गई हो।

फिर, वे वानर, दक्षिण समुद्र से चलनेवाले पवन से युक्त भूभाग को तय करके अंत में दिग्गज सदृश प्रसिद्ध महेंद्र पर्वत पर जा पहुँचे। (१-५५)

●

अध्याय १२

संपाति पटल

वानर वीरों ने दक्षिण के समुद्र को देखा, जो जल भरे बादलों से पूर्ण आकाश के समान गरज रहा था और गगन को छूनेवाली ऊँची तरंग रूपी बाहों को उठाकर उन वानरों के सम्मुख आकर उनका यथाविधि स्वागत कर रहा था और कह रहा था कि हरिण सदृश विशाल नयनोंवाली सीता लंका में है।

अंगद आदि वीरों ने जिस सेना समुदाय को आज्ञा देकर चारों ओर भेजा था कि तुमलोग आठों दिशाओं में अन्वेषण करके महेंद्र पर्वत पर आ जाओ, वह सेना समुदाय भी ऊँची तरंगों से पूर्ण एक दूसरे समुद्र के समान वहाँ आ पहुँचा।

सब वानर बिना कुछ बाधा के वहाँ आ पहुँचे। किन्तु, कमल में उत्पन्न घुँघराली अलकों से भूषित, अनुपम पातिव्रत्य से युक्त लक्ष्मी को कहीं नहीं देखा। वे अपने अगले कर्त्तव्य को न जानते हुए अटपट शब्दों में कुछ कहने लगे।

(सुग्रीव के द्वारा निश्चित) एक मास की अवधि बीत गई। हम अपने कार्य में सफल नहीं हुए। अब श्रीरामचन्द्र भी अपने प्राण छोड़ देंगे। हम अपने राजा (सुग्रीव)

[1] त्रिविध तमिल तमिल में साहित्य के तीन अंग माने गये हैं—इयल्=कविता, इशै=संगीत और नाटकम्=नाटक।

की आज्ञा का तो पूरा पालन किया (अर्थात्, सीता का अन्वषण किया)। अब हमारे लिए करने का और कुछ नही रह गया है—यो कहत हुए अनेक प्रकार से विचार करने लगे।

क्या हम यही रहकर तपस्या करे ? यदि वह न हो, तो असा य विष का पीकर प्राण त्याग करे ? इन दोनो म से जो उचित हो, वही करेंगे। वे वानर, जिन्हे अपने प्राणा का भी भय नही था, यो सोचने लगे।

बलवान् सिह के सदृश युवराज अगद बहुत खिन्नचित्त हुआ और उन वानरा का दखकर जो तट पर टकराती हुइ बडी वीथियो से युक्त समुद्र के निकट रहनेवाले महन्द्र पवत पर ऐसे खडे थे, जैसे अनेक मेरु पर्वत पक्ति बॉधकर खड हा, कहन लगा—तुमलोगा से मुझे कुछ कहना हे।

हमलोगो ने पुरुषोत्तम रामचन्द्र के समक्ष, बडी भक्ति रखनेवाला के जेसे ही प्रण किया था कि हमलोग आकाश से आवृत विश्व म सर्वत्र जाकर सीता का अन्वषण करग। हमारा वह प्रण केवल गर्वमात्र नही था। उससे हम बडे अपयश के पात्र हो गये ह।

'हम पूरा करेंगे'—यो कहकर जो काय हमने अपने ऊपर लिया, उसे पूरा नहा कर पाये। अवधि के भीतर ही लौटकर यह कहना भी हमसे नही हो सका कि हम ढूढकर भी सीता को कही नही देख सके। अब आगे भी यह कार्य पूरा हो सकेगा—इसका भी कोई लक्षण नही दीखता, ऐसी अवस्था मे हमारा जीवित रहना क्या उचित है ?

(अवधि के व्यतीत हो जाने के पश्चात्, यदि हम लौटकर भी जायॅ, तो) मरे पिता (सुग्रीव) क्रुद्ध होगे। हमारे प्रभु राम को भी बहुत दु ख होगा। उस दशा को म अपनी ऑखो से नही देख सकूँगा। अत , मै अपने प्राण त्याग देना चाहता हूँ। हे ज्ञानवान् लोगो। मेरे इस निश्चय के बारे मे तुमलोग अपनी सम्मति दो—यो अगद ने कहा।

तब जाबवान् ने कहा—हे लौह स्तभ तथा पर्वत की ममता करनेवाली भुजाओ स युक्त। तुमने ठीक कहा, पर यदि तुम अपने प्राण छोड दोगे, तो क्या हम यहॉ तुम्हारे लिए रोते बैठे रहेगे ? या प्रेमहीन होकर लौट जायॅगे और (सुग्रीव की) सेवा म लग जायॅगे ?

हे युवराज तथा पौरुषवान् वीर। लौट आकर कहने के लिए हमारे पास हे ही क्या ? हमारा भी यही निर्णय है कि हम भी अपने प्राण त्याग देंगे। अत , तुम्हारे लिए जीवित रहना ही उचित है।

जाबवान् का कथन सुनकर अगद ने वानरो से कहा—हे पर्वत तुल्य कधोवाले वीरो। तो क्या यह उचित है कि तुम सब यहॉ मृत्यु को प्राप्त होओ और अकेले मे लौटकर आऊँ ? क्या ससार को यह भायगा ?

इस विशाल ससौंर के निवासी यह कहे कि बडे लोगो के अपवाद से डरकर जब इसक प्राण प्रिय साथियो ने प्राण त्याग दिये, तब यह जीवित ही लौट आया, इससे पहले ही मै स्वर्गलोक मे जा पहुँचूँगा। यह कहकर उसने फिर आगे कहा—

तो, मृत्यु समाचार कोई न कोई मेरी माता और मेरे पिता सुग्रीव को देगा ही। यह समाचार पाकर कदाचित् वे अपने प्राण त्याग देंगे। वह देखकर धनुर्धर वीर (राम)

एव उनके अनुज भी निष्प्राण होगे। फिर, यह समाचार जब अयोध्या में विदित होगा, तब भरत आदि क्या जीवित रह सकेंगे?

भरत, उनका अनुज, उनकी माताएँ (अयोध्या) नगर के निवासी—सब मर जायँगे, यह निश्चित है। हाय! मेरे पिता! ... नाम से जगत प्रसिद्ध तपस्या संपन्न दीप समान नारी के कारण संसार के सब लोगों को ऐसी अपार विपदा उत्पन्न हो गई है!—यों कहकर अगद दुःखी हुआ।

पर्वत समान दृढ कधों तथा ... सदृश अगद के वचनों से जाबवान् के मन में ऐसी व्याकुलता उत्पन्न हुई, जैसे किसी ने अग्नि ज्वाला को उभाड़ दिया हो। भालुओं के राजा ने बड़े प्रेम से अगद को देखकर कहा—

तुम और तुम्हारे पिता (सुग्रीव) दोनों को छोड़कर तुम्हारे वश में और कोई पुत्र नहीं है (जो शासन कार्य सँभाल सके), यही सोचकर हमने कहा (कि तुमको जीवित रहना है)। यदि यह कारण न भी हो, फिर भी नायक की मृत्यु की बात जिह्वा पर लाना उचित नहीं है।

हे विजयशील! तुम जाओ। राम और सुग्रीव जहाँ रहते है, वहाँ पहुँचकर उन्हें बताना कि सीता का पता नहीं मिला और हम सबने प्राण त्याग दिये— तुम उन लोगों के दुःख को शात करने का प्रयत्न करना— यों अपार पराक्रमवाले जाबवान् ने कहा।

जाबवान् के यों कहने पर हनुमान् ने कहा— हे सूर्यसदृश वेगवाला! हमने अभी तक त्रिभुवन के एक भाग में भी पूरा पूरा ढूँढकर नहीं देखा है, तो भी तुम लोग क्यों इस प्रकार शिथिल हो रहे हो, जैसे आगे चलने की शक्ति ही नहीं रह गई हो या कुछ सोचने का सामर्थ्य नहीं रह गया हो?

फिर, हनुमान् कहने लगा— पाताल में, ऊपर के लोक में, स्वर्णमय मेरु के शिखर पर तथा ब्रह्मांड के अन्य स्थानों में यदि हम उज्ज्वल ललाटवाली सीता का अन्वेषण करेंगे, तो हमारे राजा अवधि के व्यतीत हो जाने पर भी कुछ न कहेंगे।

अतः, अब भी सीता का अन्वेषण करना ही अच्छा है और इसी कार्य में, जिस प्रकार पुष्पालकृत केशोवाली देवी की विपदा को रोकने के लिए जटायु ने प्राण त्याग किये थे, उसी प्रकार हम भी अपने प्राण छोड़ना उचित होगा। ऐसा न करके यदि हम सभी प्राण छोड़ देंगे, तो इससे अपयश ही होगा— यों हनुमान ने कहा।

हनुमान् के यह कहते ही, गृध्रों का राजा सपाति, यह सुनकर कि उसका अनुज, अगाध शक्तिवाला जटायु, मृत्यु का ग्रास हो चुका है, शोक से भर गया और एक पर्वत के समान चलकर उन वानरों के निकट आ पहुँचा।

वह यह सोचकर कि हाय, नीतिवान मेरा भाई मर गया, विक्षुब्धमन हो रहा था। उसका शरीर काँप रहा था। वह ऐसे चल रहा था, जैसे देवेंद्र के कुलिश से पखों के कट जाने पर कोई पर्वत पैदल ही जा रहा हो।

मेरे बलवान् भाई का वध करने की शक्ति रखनेवाला ऐसा शस्त्रधारी इस धरती

पर कौन है?—यों सोचता हुआ वह अपनी आँखों से इस प्रकार अश्रु बहाने लगा, जो धारा के रूप में बहकर समुद्र को भी भर दे।

वह संपाति ऐसा था कि उसके आभरणों में स्थित, सान पर चढ़ाये गये रत्न विद्युत् की कांति बिखेर रहे थे। मद्धिम कांतिवाली उसकी आँखों से अश्रु बिंदु झर रहे थे। मन की व्यथा के कारण वह मुँह खोलकर रो रहा था। वह ऐसा था, मानो कोई मेघ गरजता हुआ धरती पर चल रहा हो और बरस पड़ा हो।

वह शीघ्र गति से इस प्रकार चल रहा था कि उसके पैरों के नीचे आकर लता वृक्ष, पर्वत आदि चूर चूर हो रहे थे। उसका आकार ऐसा था, मानो रजताचल (कैलास-पर्वत) अति प्रबल प्रभंजन के चलने से लुढ़कता आ रहा हो।

इस प्रकार वह (संपाति) आ पहुँचा। वहाँ स्थित वानर उसे देखकर भयभीत हो काँपने लगे। केवल ज्ञानवान् हनुमान्, अपनी आँखों से अग्नि कण निकालता हुआ क्रोध-पूर्ण वचन कह उठा कि हे धूर्त्त! तुम कोई कपटी राक्षस हो, जो मायावेष धारण करके आये हो। मेरे सामने पड़कर अब कैसे बच सकते हो? और उस (संपाति) के सम्मुख जाकर खड़ा हो गया।

किन्तु, हनुमान् ने उसकी मुखाकृति से पहचान लिया कि यह पापहीन चित्त वाला है। मन में दुःखी है। वर्षा के समान आँखों से अश्रु बरसा रहा है, अतः निष्कपट है।

उस (संपाति) को आते हुए देखकर सूक्ष्म शास्त्र ज्ञानवाला हनुमान् खड़ा हुआ। वह अपने मुँह से एक शब्द निकाले, इसके पहले ही संपाति ने प्रश्न किया—किसके लिए अजेय जटायु को किसने बड़ी वीरता से आहत किया? विस्तार के साथ सारा वृत्तांत बताओ।

तब हनुमान् ने कहा—यदि तुम अपना यथार्थ परिचय दोगे, तो मैं सब घटनाएँ सविस्तर तुम्हें सुनाऊँगा। तब गृध्रराज अपना वृत्तांत कहने लगा।

हे विद्युत् समान दाँतोंवाले! मैं अभी तक मृत प्राणियों में सम्मिलित नहीं हुआ और फिर भी मेरा भाई मुझसे वियुक्त हो गया है, ऐसा दुर्भाग्य है मेरा। मैं उस (जटायु) का पूर्वज (बड़ा भाई) होकर उत्पन्न हुआ हूँ—यों अपने जीवन के बारे में (संपाति ने) कहा।

उसके कहे वचनों को सुनकर, दोषहीन हनुमान् दुःख के समुद्र में डूबने उतराने लगा और बोला—वैरी रावण की तलवार से तुम्हारे अनुज की मृत्यु हुई।

हनुमान् का वचन सुनते ही संपाति ऐसे गिरा, जैसे वज्राहत पर्वत ढह गया हो। फिर, उष्ण निःश्वास भरकर व्याकुलप्राण हो निम्नलिखित वचन कहकर रोने लगा—

हे मेरे अनुज! मेरे दीर्घ पंख (सूर्य के ताप से) झुलसकर नष्ट हो गये। पंख खोकर बँधे हुए से पड़े रहने की अपेक्षा प्राण जाना ही उचित था। किन्तु, अविनाशी एक रथवाले (सूर्य) के अति उग्र आतप से भी भयभीत न होनेवाले (हे मेरे अनुज)! यह कैसा आश्चर्य है? (कि मेरे पहले ही तुम्हारी मृत्यु हो गई।)

कमल में उत्पन्न ब्रह्मदेव स्थिर है, धरती और आकाश स्थिर है, अविनश्वर धर्म भी अभी बना है, शाश्वत कल्पवृक्ष भी मिटा नहीं है। किन्तु, तुम नहीं रहे, यह कैसी दशा है!

हे वेगवान् गरुड से भी अधिक वेगवाले ! पूर्वकाल में ... अंडों के एक साथ उत्पन्न होने पर, हम दोनों एक साथ ही जन्मे थे, हम दोनों अधिकाल तक जीवित रहे । किन्तु, अब मुझे जीवित ही छोड़कर तुम अकेले वीरता पूर्ण कार्य करके मृत हो गये । यह क्या उचित था ।

हे वीर ! रावण ने, यद्यपि त्रिभुवन में अपने शत्रुओं का ... किया था, तथापि क्या वह तुम्हारे सामने टिक भी सकता था ? उसने तुम्हें मार डाला ? यह कैसा समाचार है !

इस प्रकार कहकर रो रोकर सपाति अत्यन्त शिथिल पड़ गया और मरणासन्न हो गया । तब अतिबली पर्वत समान कंधावाले ... ने समय के अनुकूल सांत्वना के वचन उससे कहे ।

हनुमान् की सांत्वना पाकर सपाति कुछ शान्त हुआ । पूछा— यमतुल्य जटायु ने, उसको मारनेवाले करवालधारी रावण से किस कारण से युद्ध किया ? तब वायु पुत्र यह वृत्तांत सुनाने लगा ।

हमारे प्रभु की देवी, नीति से अस्खलित शासनवाले (जनक) महाराज की पुत्री और उत्तम लक्षणों से पूर्ण सीता, कठोर मायावी के कपट के कारण अपने पति से वियुक्त हो गई ।

धर्म मार्ग से कभी न हटनेवाले तुम्हारे भाई ने सीता का अपहरण करके ले जाने वाले राक्षस को देखा और (रावण से) यह कहकर कि भ्रमरों से अलकृत कुंतलोंवाली देवी को छोड़कर तुम हट जाओ, बलवान् रथ से युक्त उस रावण के साथ क्रुद्ध होकर युद्ध करने लगा ।

उस सत्यव्रत (जटायु) ने उस निष्ठुर पापी के रथ को ध्वस्त कर दिया । उसकी भुजाओं को छिन्न कर डाला । यों धीरे धीरे जब इस प्रकार उसने उस (रावण) की शक्ति को भग्न किया, तब उसने महादेव के द्वारा प्रदत्त करवाल का प्रयोग किया, जिससे जटायु निहत हुआ—यों हनुमान् ने कहा ।

हनुमान् का कथन सुनकर अश्रु भरित नयनोंवाला सपाति, यह कहकर अत्यंत प्रसन्न हुआ कि हे सत्यपूर्ण ! निर्मल अंतःकरण से ही जिसकी पवित्र मूर्त्ति जानी जा सकती है, ऐसे प्रभु के निमित्त मेरे भाई ने प्राण छोड़े । यह कार्य उत्तम है । उत्तम ही है ।

हे वीर ! मेरा भाई, नव पुष्पधारी हमारे रामचन्द्र की देवी, अरुण चरणोंवाली एवं 'वजी' लता सदृश सीता की रक्षा के निमित्त अपने प्राण छोड़े । अतः, अनन्त कीर्त्ति का भाजन बनकर अमर हो गया । उसे मृत मानना उचित नहीं है ।

धर्म रूप प्रभु से प्रेम के साथ बंधुत्व स्थापित करके मेरे भाई ने अपनी इच्छा से प्राण-त्याग दिये । ऐसे दुर्लभ पुरुषार्थ से युक्त उस जटायु की मृत्यु से क्या हानि हो सकती है ? इस भाग्य से बढ़कर सुखदायक वस्तु और क्या हो सकती है ?

वह (सपाति) यों अनेक प्रकार से रोता रहा । फिर, शीतल जलाशय में जाकर अनुपम बलवाले उस सपाति ने स्नान किया । तदनतर घनी मालाओं से भूषित वानरों के प्रति ये वचन कहे—

हे वीरो । तुमलोग बहुश्रुत हो, इसलिए पापहीन हो गये हो । तुमलोग असत्य रहित भी हो । तुमलोगो ने यहाँ आकर मुझे जीवन ही प्रदान किया । मेरे भाई की मृत्यु का समाचार देकर मुझे दु ख सागर मे नही डुबोया, किन्तु मेरी विपदा ही दूर की ।

हे मधुरभाषियो । सत्य की वृद्धि करने की महिमा से युक्त हे वीरो । तुम सब उसी राम नाम का जप करो । वैसा करने पर उस प्रभु की अत्युत्तम करुणा मुझे प्राप्त होगी ।

सपाति ने यो कहा । तब वानर यह सोचकर कि हम इस कथन की परीक्षा करेगे, वैसे ही खडे रहकर नीलवर्ण उस प्रभु के हितकारी नाम का उच्चारण करने लगे । तब बलवान् भुजावाले सपाति के पख निकल आये ।

उज्ज्वल शरीरवाला सपाति, सब लोको मे व्याप्त महाविष्णु (के अवतार राम) की कृपा को प्राप्त कर पखों से युक्त हुआ । उसको पख क्या मिल गये, मानो धुँआधार अग्नि को उगलनेवाले करवाल को कोष मिल गया हो ।

सभी वानर, प्रख्यात रामचन्द्र का नाम उच्चारण करने से, पहले लुत्कते हुए आनेवाले (सपाति) का हित होते हुए देखकर विस्मय से भर गये । वे प्रसन्न हुए और स्तब्ध भी हो गये । फिर, देवाधिदेव (राम) की प्रशस्ति गाने लगे ।

उन वानरो ने उस (सपाति) को नमस्कार किया । फिर, प्रश्न किया कि तुम अपना सारा पूर्व वृत्तात कह सुनाओ । उनका वचन सुनकर सपाति अपने जीवन क बारे मे कहने लगा ।

हे मातृ तुल्य मित्रो । हम दोनो, (सपाति और जटायु) तरगायमान समुद्र से आवृत धरती के अधकार को मिटानेवाले सूर्य के सारथी अरुण के पुत्र होकर जनमे और मनोहर रगवाले पखो से युक्त अति वेगवाले गिद्धो के राजा बने ।

हम दोनो, स्वर्ग म स्थित देवलोक का दर्शन करने का विचार करके आकाश म बहुत ऊपर उडे, किन्तु उष्णकिरण (सूर्य) का रथ देखकर भी पूर्ण रूप से उसे नही देख पाये। तब अग्नि को भी तपानेवाले दिव्य अरुण किरणो से युक्त सूर्य हम पर क्रुद्ध हो उठा ।

ऊपर उडे हुए मेरे अनुज के शरीर को, सूय का आतप अत्युग्र होकर तपाने लगा। तब वह बोला—हे मेरे बडे भाई । मुझे बचाओ । तब मैने अपने पखों को उस (जटायु) पर फैला दिया और वह मेरी छाया मे आ गया । मै मरा तो नही । किंतु मेरे पख झुलस गये और मै धरती पर आ गिरा ।

मुझ धरती पर गिरे हुए को आकाश म चमकनेवाले सूर्य ने देखा और अपार करुणा से भर गया । उसने यह कहा कि जनक की प्रिय पुत्री का अपहरण हो जाने पर (उसका अन्वेषण करते हुए) आनेवाले वानर जब राम नाम का उच्चारण करेंगे, तब पहले-जैसे ही तुम्हारे पख निकल आयेंगे ।

जब मेरे पख झुलस गये, तब मै उष्ण नि श्वास भरता हुआ, लोकसारग नामक महान् तपस्वी के निवासभूत पर्वत के सानु पर आ गिरा । मेरा शरीर और मन शिथिल हो गये थे । पीडा के बढ्ने से प्राणो का भार भी मै वहन नही कर सकता था । मैने प्राण त्याग

करने का निश्चय कर लिया। इतने में अपूर्व तपस्या में निरत निशाकर मुनि ने मेरे सम्मुख आकर मुझे सांत्वना दी।

(उन्होंने कहा—) अशिक्षित मन्जना के समान (अनुचित) उत्साह के कारण तुमने देवताओं के सुरक्षित लोक में जाने का प्रयत्न किया। सूर्य के ऊपर उड़ जाने से तुम्हारे पंख झुलस गये और तुम धरती पर आ गिरे हो। अब और कुछ दिनों तक अपने प्राणों को सुरक्षित न रखकर उनका त्याग करने की चेष्टा करना अनुचित होगा। (अथात, सूर्य के कथनानुसार वानरों के आगमन तक तुम्हें प्राण धारण करना होगा।)

फिर संपाति ने कहा—हे आत बलाढ्य वीरो! उस दिन उन मुनिवर ने करुणा करके मुझसे यह भी कहा था कि जो घमंडी होता है, उसका विनाश निश्चित है। मायावी (रावण) के द्वारा जब सीता हरी जाकर अदृश्य हो जायेंगी तब उसका अन्वेषण करते हुए वानर लोग आवेंगे। उनके राम नाम का उच्चारण करने पर तुम्हारे पंख निकल आयेंगे। अत, तुम दु खी मत होओ।

हे देवविस्मयकारी कार्य करनेवाले, उत्तम वीरो! मेरे दंड से मैं छूटा जटायु, मेरी आज्ञा का भंग करने से डरकर, गगनगामी गिद्धों का राजा बना। यही हमारा वृत्तान्त है। अब तुमलोग इस स्थान पर आने का अपना वृत्तांत भी सुनाओ।

संपाति के यह कहने पर वानरों ने राम के प्रति नमस्कार करके उससे कहा—हे मातृ तुल्य! नीच कृत्यवाला राक्षस (रावण) दक्षिण दिशा में सीता देवी को ले गया है। यही सोचकर हम उस (देवी) को ढूँढ़ते हुए यहाँ आये हैं। वानरों का यह कथन सुनकर संपाति ने कहा—तुमलोग चिंता मत करो। मैं इस संबंध में तुम्हें कुछ बात बताऊँगा।

शर्करा रस के समान मधुर बोलीवाली सीता को जब वह पापी राक्षस ले जा रहा था, तब मैंने उसे देखा। वह उसे लंका में ले गया है। व्याकुल चित्तवाली उस देवी को घोर बंधन में डाल रखा है। वह देवी अब भी वहाँ है। तुम वहाँ जाकर देखो।

शब्दायमान समुद्र से आवृत वह लंका यहाँ से सौ योजन पर स्थित है। उस लंका पर, कठोर पाश से युक्त यम भी अपनी दृष्टि नहीं डाल सकता। उस क्षुद्रगुणवाले राक्षस का क्रोध अग्नि को भी शान्त करनेवाली दूसरी आग है। हे पापरहित एवं सद्गुणों में पूर्ण वीरो! तुम्हारे लिए उस लंका में जाना कैसे संभव होगा? यों संपाति ने पूछा।

आगे उसने कहा—चतुर्मुख और अर्द्धनारीश्वर की बात तो दूर, क्षीर समुद्र में शेषनाग पर शयन करनेवाला विष्णु भी हो और यम भी हो, तो उनके लिए भी विशाल समुद्र के पार स्थित उस लंका में प्रवेश करना असंभव है। हे विचारशीलो! भावी कार्यों के परिणामों को सोचकर आगे बढ़ो।

उस प्राचीन (लंका) नगरी में तुम सबका प्रवेश करना असंभव है। यदि किसी में सामर्थ्य हो, तो वह अकेले वहाँ जाय। अदृश्य रूप में वहाँ रहकर सीता देवी को (प्रभु का दिया हुआ) संदेश देकर उसके दु ख का शांत करे और लौट आये। यदि ऐसा सामर्थ्य तुममें से किसी में नहीं है, तो मेरी बात पर विश्वास करो और रामचन्द्र के पास जाकर उन्हें समाचार दो।

शासक के न होने से सारा गृध्र समाज अपने आवास को छोडकर बिखर जायगा। उस दुर्दशा को रोकने के लिए मुझे शीघ्र जाना आवश्यक है। हे मित्रो! जिसमे हित हो, वही कार्य करो।—यो कहकर सपाति अपने पखो से आकाश को ढकता हुआ उड चला। (१—६६)

●

अध्याय १६

महेन्द्र-शैल पटल

कुछ वानर, यह निश्चय कर कि गृध्रराज झूठ बोलनेवाला नही है, अन्य वानरो से कहने लगे—कर्त्तव्य को शीघ्र सपन्न करनेवाले हे वीरो। हमने (सीता के समाचार को) हाथ के आँवले के समान पूरा जान लिया है। जीवन देनेवाला एक वचन हमने सुन लिया। अब कर्त्तव्य का ठीक ठीक विचार करके कुछ करो।

यदि हम सूर्यपुत्र और उज्ज्वल धनुष को धारण करनेवाले को नमस्कार करके सारा वृत्तात उन्हे सुना दे, तो हमारा कर्त्तव्य पूरा हो जायगा। फिर, भी वीरता का कार्य तो यही होगा कि हम स्वय समुद्र को पार कर सीता के दर्शन करें। हममे से समुद्र को पार करने का सामर्थ्य रखनेवाला कौन है?—यों परस्पर प्रश्न कर वे एक एक करके अपनी अपनी शक्ति का वर्णन करने लगे।

पहले हमने मरने का साहस किया। सदा अमिट रहनेवाले अपयश को लेकर लौटने का भी साहस किया। अब उन दोनो कार्यों से छुटकारा पाने का एक अच्छा मार्ग (सपाति के द्वारा) हमने प्राप्त किया है। अब समुद्र को पार कर काले राक्षसो को मिटाने का सामर्थ्य रखनेवालो! हमारे प्राणो को बचाओ।

युद्ध में विजय से भूषित होनेवाले नील आदि उत्तम वीरो ने, समुद्र पार करने की अपनी असमर्थता को स्पष्ट कह दिया। वीरता से पूर्ण युद्ध म विजयी वाली पुत्र ने कहा—मै समुद्र के उस पार तो जा सकता हूँ, किंतु लौट आने की शक्ति मुझमे नही है।

चतुर्मुख (ब्रह्मा) के पुत्र (जाबवान्) ने कहा—हे भुजबल से पूर्ण वीरो। वेदो के लिए भी दुर्जय भगवान् (विष्णु), सारी धरती को एक ही पग से नापने लगा था। उस समय, मै आठो दिशाओ म उस (त्रिविक्रम) की परिक्रमा करता हुआ गया और (उस भगवान् के अवतार होने की) घोषणा करता हुआ घूमने लगा था। मेरु के आघात से मेरे पैर दुखने लगे थे। अत, अब इस महान् समुद्र पर उछलकर जाने और लका की परिखा के पार बने हुए प्राचीर पर कूदने और उस नगर के राक्षसो को भयभीत कर सीता का अन्वेषण करने की शक्ति मुझमे नही रह गई है।

फिर ब्रह्मपुत्र जाबवान् ने अगद से कहा—वानर वीरों में उत्तम सिंह सदृश हे कुमार। हम अब अत्यन्त दु खी होकर किसके पास जाकर प्रार्थना करें कि तुम समुद्र के पार जाओ। ऐसा विचार करने से भी तो हमारा यश मिटता है।

अब हमारे यश को सुरक्षित रखनेवाला यह मारुति ही है, जिसने पहले रामचन्द्र के सम्मुख जाकर (सुग्रीव का) उनका सखा बनाया था। यही (मारुति) कर्त्तव्य का ठीक ठीक विचार करके उसे पूरा करने का सामर्थ्य रखता है। उसकी समानता करनेवाला और कोई नही है। इस प्रकार कहकर फिर, जाबवान हनुमान के भुजबल की प्रशसा करते हुए ये वचन कहने लगा।

(जाबवान् हनुमान को देखकर कहने लगा—) ब्रह्मदेव भी मर सकता है, किन्तु तुम्हारी मृत्यु कभी नही होगी। तुमने सर्वशास्त्रों का गहन अध्ययन किया है। विषयो का ठीक ठीक प्रतिपादन करने की शक्ति भी तुममे है। तुम्हारे बल और क्रोध को देखकर काल भी काँप उठता है। तुममे कर्त्तव्य कर्म करने की दृढता है। विष का पान करनेवाले शिवजी के समान ही तुममे घोर युद्ध करने की शक्ति भी विद्यमान है।

अत्युष्ण रक्तवर्ण अग्नि से, जल से तथा वायु से भी तुम्हें हानि नही होगी। अनेक विध प्रसिद्ध दिव्य आयुधों से भी तुम्हारा विनाश नही हो सकता। यदि तुम्हारा उपमान कुछ बताना हो, तो केवल तुम्ही अपने उपमान हो। एक बार कूदो, तो तुम इस ब्रह्माड से परे भी जा पहुँचोगे।

अच्छे गुणों को ही नही, बुरे गुणों को भी पहचान कर स्पष्ट कहने की सामर्थ्य तुममे है। स्वय ही कर्त्तव्य को जानकर उसे पूर्ण करने की शक्ति तुममे है। तुम (शत्रुओ पर) विजय पा सकते हो। (लका मे जाकर) लौट आने की शक्ति भी तुम रखते हो। यदि वे अपना बल दिखावें, तो उन्हें मारने की शक्ति भी तुममे है। तुम्हारा भुजबल कभी घटता नही।

तुम्हारी महिमा मेरु से भी ऊँची है। मेघ से बरसनेवाले जल की बूँद मे भी प्रवेश कर जाने की शक्ति तुममे है। धरती को भी उठा लेने का बल तुममे है। कोई भी पाप भावना तुममे नही है। तुम्हारी ऐसी शक्ति है कि सूर्य को भी अपने सुन्दर करों से छू सकते हो।

तुमने उचित उपायों को ठीक ठीक सोचकर, धर्म का नाश किये बिना, युद्ध कुशल वाली का वध करवाया। तुम्हारा बुद्धि कौशल ऐसा है। प्रसिद्ध देवेन्द्र ने जब वज्र से तुम पर आघात किया था, तब तुम्हारा एक छोटा सा रोयाँ भी टूटकर नही गिरा।

तुम्हारी भुजाओं मे ऐसी शक्ति है कि यदि तीनों लोक भी तुम्हारा सामना करने आयें, तो उन भुजाओ के लिए त्रिभुवन की वस्तुएँ भी कुछ चीज नहीं होंगी। धरती के अधकार को मिटानेवाले सूर्य के निकट, उसके रथ के आगे आगे चलते हुए, तुमने सस्कृत (के व्याकरण) का ज्ञान प्राप्त किया था।

तुम नीति मे स्थिर हो, सत्य पूर्ण हो, मन मे कभी स्त्री सगति का विचार

तक नही लात। सब वेदा का अध्ययन किया है। ब्रह्मा की आयु मे भी अधिक आयु वाले हो। तुम भी ब्रह्माओ म से एक कहलाते हो।

उस महिमामय प्रभु (राम) की भक्ति से युक्त हो। अपन कर्त्तव्य का पूण ज्ञान रखते हो। तुमने अपने ऊपर (सीता का अन्वषण करन का) दायित्व लिया ह। बिना किसी बाधा के उसे पूर्ण करने का सामथ्य भी तुमम है। तुमने अपने मन म दृढ रूप स यह स्थापित कर लिया है कि एकमात्र पुण्य ही मदा स्थिर रहनेवाला है।

समय अनुकूल न होने पर तुम दबकर रह सकत हो। यदि युद्ध छिड जाय ता उसम सिह के समान शक्तिमान् हो सकते हो। साच विचार करके जो काय आरभ किया हो, केवल उसी को नही, किंतु, किमी भी कार्य को पूण करने की शक्ति तुमम है। कठिन बाधाएँ उत्पन्न होने पर भी तुम पीछे हटनेवाले नही हा।

विजयशील इन्द्र से लेकर, मब व्यक्ति तुम्हारे चारित्र्य को ही आदर्श मानकर चलते है। तुम अत्यन्त सहनशील हो। अत, सब कार्यो को ठीक ढग स साचकर करने का सामथ्य तुममे है। सभी इच्छित वस्तुआ का प्राप्त करन की शक्ति भी तुमम ह।

तुम्ही इस समुद्र को पार करन की शक्ति रखत हो। अत, यहाँ से शीघ्र जाओ ओर हम सबको जीवन देकर यश प्राप्त करो। इसमे तुम्हारी माता तुल्य मीता देवी भी प्रमन्न होगी और विपदा रूपी अपार सागर को पार कर सकगी—इम प्रकार ब्रह्मपुत्र (जाबवान्) ने कहा।

जाबवान् ने जब ऐसा कहा, तब अत्यन्त ज्ञानवान् हनुमान् के दीन मुख पर मदहास इस प्रकार विकसित हुआ, जिम प्रकार कमलपुष्प के मध्य रक्तकुमुद विकसित हो उठा हो। उसके कमल जैसे कर मुकुलित हा गये। मब वानरों के आनंदित होते हुए, उसने अपने भावो को इन शब्दा मे प्रकट किया—

तुम लोग ऐसे हो कि कुछ सोचने के पूर्व ही, ऊँची तरगो स पूर्ण सातो समुद्रों को पार कर सकते हो, सब लोको का जीत सकते हा और मीता देवी का अन्वषण करके उन्हे ला सकते हा। ऐसा होने पर भी मुझ ज्ञानहीन की लघुता को प्रकट करने के लिए ही तुमने मुझे यह आदेश दिया हे। अब मेरे समान भाग्यवान् और कौन होगा ?

यदि तुम लोग कहोगे कि लकापुरी को उखाडकर ले आओ, या यदि कहोग कि लाक कटक राक्षसो को मिटाकर, स्वणमय ताटकधारिणी कलापी तुल्य सीता को ल आओ, तो मै तुम्हारे आदेश के अनुमार ही वह कार्य करूँगा। शीघ्र ही तुम अपनी आँखों से देखोगे।

जिस प्रकार विष्णु भगवान् ने धरती का नापा था, उमी प्रकार एक शतयोजन को एक पग मे समाता हुआ मैं इस विशाल समुद्र को पार करूँगा। यदि इन्द्र आदि देवता भी आकर (रावण की ओर से) मेरे साथ युद्ध करेंगे ता भी लका म निवास करनवाले सब राक्षसो का विनाश करके अपने कार्य को मे अवश्य पूरा करूँगा।

यदि समुद्र उमडकर सारी धरती को डुबोने लगे, या यह सारा ब्रह्माड ही टूटकर अतरिक्ष म उड जाय, तो भी मै, मरे प्रति दिखाई गई तुम्हारी कृपा और प्रभु की आज्ञा इन